वेदपुराणेष्वैतिह्यसन्दर्भाः

(इतिहासस्य मूलस्रोतांसि)

लेखक—

डा० कुँवरलाल जैन व्यासशिष्य

इतिहासविद्याप्रकाशन, दिल्ली (भारत)

"यह महाग्रन्थ मानवसंसाधनविकास मन्त्रालय भारत सरकार की आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुआ ।"

इतिहास विद्या-प्रकाशन
बी-२६-धर्मकालोनी
नांगलोई, दिल्ली—११००४१

प्रकाशन-वर्ष—१९९०
मूल्य ११३ रुपयेमात्र

मुद्रक—आचार्य प्रिंटिंग प्रेस
दयानन्दमठ, गोहाना रोड
रोहतक—१२४००१
दूरभाष—७२८७४

(अभूतपूर्वसंकलनम्)

शोधार्थिनां कृतेऽनिवार्यो भागद्वयात्मको ग्रन्थः

(हिन्दी-अनुवाद सहितः)

वेदपुराणेष्वैतिह्यसन्दर्भाः

तत्र प्रथमे भागे—"वैदिकग्रन्थेष्वैतिह्यसन्दर्भाः"

द्वितीये भागे—"पुराणेष्वैतिह्यसन्दर्भाः"

पुराणेषु वंशपाठः, वंशानुचरितं, परिशिष्टानि च

संकलनकर्त्ता अनुवादकश्च—

डा० कुँवरलाल जैन 'व्यासशिष्य'

इतिहास विद्याप्रकाशन, दिल्ली

आमुखम्

प्रायेण द्विशतीपूर्वं पाश्चात्याः भेदनीतिपद्धतिपद्धत्या भारतीयानां धर्मसम्प्रदायसाहित्यसंस्कृतिकलाविज्ञानादिषु सर्वत्र मिथ्याभेदं प्रवर्तयामासुः, यथा चोक्तं शास्त्रेषु—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृत्ताः ।

(ईशोपनिषदि)

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।

(गीतायाम्)

तदनुसारेण ते मिथ्याभिमानिनो वेदवाङ्मये पुराणवाङ्मये च भेदं चक्रुः । तेषां मते प्राचीना ऋषयः, आचार्याः कवयश्च मिथ्यावादिनोऽभूवन्-परन्तु नीरजस्तमा ऋषयः किमर्थमसत्यमवादिषुरिति ज्ञातुं न शक्यते—

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये ।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ।।
आप्ताः शिष्टा विबुधास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम् ।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ।।

(चरकसंहितायाम्)

किन्तु पाश्चात्यानां तथा तेषामनुयायिभारतीयानां मते वैदिकग्रन्थेषु वर्णिता ऋषयो राजानश्चान्ये महापुरुषाः पुराणेषूल्लिखितेभ्यः पुरुषेभ्यः पृथक् चासन् । इयं मिथ्यादृष्टिः प्रचलितपाठ्यपुस्तकादिषु दरीदृश्यते । किन्तु पुरातनन्यायाचार्याणां सम्मतौ वेदानां पुराणानां च प्रणेतारः (कर्त्तारः) समाना एव ऋषयो बभूवुः, यथा चोक्तं न्यायाचार्येण भाष्यकारेण वात्स्यायनेन—''प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते—ते वा खल्वेते अथर्वा-

ङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन्। इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदः।''
(न्यायभाष्यः ४।१।६२)

छान्दोग्यवचनेन च वात्स्यायनस्य वचनं परिपुष्यते—'एते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्। (३।४।१२)

वैदिकब्राह्मणग्रन्थेषु पुराणानां गाथाश्लोकाः समुदाहृता विद्यन्ते, यथा शतपथब्राह्मणे चेयं गाथा—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्याग्निः क्षत्ता विश्वेदेवाः सभासदः।।

(श० ब्रा० १३।१।१।१)
(तथा भागवतपुराणे १६।१२।२८)

एवं चान्या बह्व्यो गाथास्तत्र ब्राह्मणेषूपलभ्यन्ते। संकलनेऽस्मिन् प्रयत्नेन मया सर्वं तदैतिह्यं संग्रहीतम् विद्यते।

निश्चयेन हि संस्कृतज्ञा इतिहासशोधकाश्च विद्वांसोऽनेन संकलनेन लाभान्विता भविष्यन्ति तथा तेषां मिथ्यादृष्टिश्च दूरीभविष्यति। सत्यज्ञानेन च राष्ट्रियस्यैक्यस्य मार्गश्च प्रशस्तो भविष्यति।

मया तु यथासंभवं सर्वमितिवृत्तं यच्च, यत्र क्वचित् वैदिकग्रन्थेषूपलभ्यते तत्सर्वं संग्रहीतम्। अनेन संकलनेन वेदपुराणयोरैक्यं च पुष्टं भविष्यति-तथा चोक्तं शौनकाचार्येण—

''इतिहासः पुरावृत्तमृषिभिः परिकीर्त्यते'', (बृहद्देवतायाम् ४।४६) तथा चाह व्यासो भगवान्—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं चेन्न संविद्यान्न स स्याद् विचक्षणः।।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

लेखक—
डा० कुंवरलाल जैन 'व्यासशिष्य'
संकेत :—बी-२६-धर्मकालोनी
नांगलोई, दिल्ली-४१

१—६—१६६०

आमुख

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः ॥

यह उक्ति दासत्वकाल एवं स्वतन्त्र-भारत में पाश्चात्य तथा-कथित इतिहासकारों एवं तदनुयायी भारतीय इतिहासकारों पर पूर्णतः चरित्रार्थ होती है। अंग्रेजों या पाश्चात्यों का उद्देश्य भारतीय-इतिहास लिखना नहीं था, वे भारत को सदा-सदा गुलाम बनाये रखना चाहते थे एवं ईसाई-सम्प्रदाय में दीक्षित कर आंग्लसंस्कृति का दास बनाये रखना चाहते थे और वे इस उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे हैं, इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि मैकाले का भूत आज भी भारतीय विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं राजकीय-संस्थानों पर शतसहस्रशः रूप में छाया हुआ है। दासता के समय से भी अधिक आज स्वतन्त्र-भारत में अंग्रेजीभाषा एवं आंग्लप्रभुता का वर्चस्व है। यह विडम्बना है कि अंग्रेजी के बिना प्रायः प्रत्येक भारतीय अपने को हीन समझता है। यही अंग्रेजों का उद्देश्य था।

भारत की एकता, अखण्डता, संस्कृति की प्रगति एवं वर्चस्व के लिए—मैकाले के भूत को मारने के लिए सच्चा इतिहास ही एकमात्र प्रमुख साधन है, क्योंकि इसी के आधार पर—झूठा (मिथ्या) इतिहास लिखकर भारत का विघटन किया गया और यह विघटन प्रक्रिया आज भी प्रवृद्धि पर है। सच्चे इतिहास से इसे बदला जा सकता है। अंग्रेजों द्वारा भारत का सच्चा इतिहास लिखना न उद्देश्य था और वह हो भी नहीं सकता था। उन्होंने वैदिक परम्परा को पुराण परम्परा से पृथक् सिद्ध करने की चेष्टा की—मैकडानल एवं कीथादि की ऐसी ही चेष्टा थी और वे इस कार्य में पर्याप्त सफल रहे। इस कथन को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

पुराण, आज भी अपनी अनेक विकृतियों के पश्चात् भी प्राचीनतम भारतीय एवं आदिम विश्वइतिहास के मूलस्रोत हैं, यह मैंने अपने अनेक शोधग्रन्थों में सिद्ध किया है। वेद या वैदिकवाङ्मय

मूलत: 'इतिहास-ग्रन्थ' नहीं है। पुराण सहित 'इतिहास' की २१ प्रकार की विद्यायें प्राचीन भारत में प्रचलित थीं और उनका विपुल वाङ्मय विद्यमान था। वेद और पुराण परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं, जैसा कि—"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" उक्ति से सिद्ध है।

वर्तमान पुराणपाठों में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां हैं, जिनको शोध के द्वारा दूर किया जा सकता है और मैंने यह कार्य किया भी है। भ्रान्ति या विकृति के एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। यथा 'दिव्य-मानुष' कालगणना एक ही थी, परन्तु पुराणों में 'परिवर्तयुग' को, उत्तरकाल में 'चतुर्युग' समझकर कालगणना में महती भ्रांति उत्पन्न होगई, इस भ्रांति से पोंगापन्थी अभी भी मुक्त नहीं हो पारहे हैं। वैदिकवाङ्मय मे भी अनेक भ्रांतियां दूर हो सकती हैं। पं० भगवद्दत्त, भ्रांतिवंश, द्रोणाचार्य को भरद्वाज वार्हस्पत्य का साक्षात् पुत्र मानते थे। महाभारत के यावक्रीतोपाख्यान (वनपर्व) में यवक्रीत के पिता का नाम भी भरद्वाज है, परन्तु, जैमिनीयब्राह्मण के उद्धरण से यह भ्रांति दूर होती है कि यवक्रीत के पिता भरद्वाजगोत्रीय सोमस्तम्ब थे। दोनों (पौराणिक एवं वैदिक) यावक्रीतोपाख्यान' में साम्य है, यदि कुछ भ्रांति है तो वह वैदिक-ग्रंथ से दूर हो जाती है। अत: ऐतिहासिकशोध हेतु इस संकलन का महत्त्व स्वयं प्रकट है।

डा० कुंवरलाल जैन 'व्यासशिष्य'

——

प्रथमो भागः

(वैदिकग्रन्थेष्वैतिह्यसन्दर्भाः)

विषयानुक्रमणी

ग्रन्थस्य द्वितीयो भागः—

तस्य पूर्वखण्डम्

इतिहासपुराणेषु वंशपाठः

विषयसूची

— —

द्वितीयभागस्य–उत्तरखण्डम्

(हरिवंशपुराणे–वंशानुचरितम्)

विषयसूची

——

महाग्रन्थस्य परिशिष्टात्मको भाग:

पुराणेष्वितिहासनिदर्शनम्

परिशिष्टम्—

—०—

डॉ० कुँवरलाल जैन व्यासशिष्य
रचित ग्रन्थ

१.	पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम	८०-००
२.	पुराणों में इतिहास	७५-००
३.	पुराणों में भारतोत्तरवंश	६०-००
४.	भारत का आदि इतिहास	१२५-००
५.	चतुर्दश मनुओं का इतिहास	३०-००
६.	पुराणों में ऐतिहासिक परिवर्तयुग	७५-००
७.	Indian Asuras Colonized Europe	८०-००

प्राप्तिस्थान—
इतिहास विद्या प्रकाशन, बी–२६
धर्मकालोनी, नांगलोई
दिल्ली—४१

——

श्रीपरमात्मने नमः

ऋग्वेदे ऐतिह्यसन्दर्भाः

(इन्द्रसम्बन्धिसन्दर्भाः)

कौशिक इन्द्रः-

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब। (ऋ० १।१०।११)

अर्थ—हे इन्द्र कौशिक ! मदमस्त होकर सोमपान करो।

बलवधः-

त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्। (१।११।५)

अर्थ—हे वज्रधारक इन्द्र ! आपने बल असुर के गोमान् बिल (दुर्ग) को तोड़ दिया।

शुष्णवधः-

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः। (१।११।७)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने मायाओं द्वारा मायावी शुष्ण का संहार किया।

अहि (वृत्र) वधः-

काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।

वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः।

(१।३२।१०)

इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।

(१।३२।१३-१४)

अर्थ—"दिशाओं के मध्य में वृत्रासुर (अहिदानव) का शरीर पड़ा हुआ था। इन्द्रशत्रु वृत्र घोर अन्धकार में सोया हुआ था।"

इन्द्र और अहि (दानव) युद्ध कर रहे थे। इसमें मघवा (इन्द्र) की जीत हुई। हे इन्द्र ! जब तुमने युद्ध में जाते हुए उसको देखा तो मारने की इच्छा से तुम्हारे हृदय में भय समा गया।

इलीबिशवध -

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा।

वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः॥ (१।३३।१२)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने शोषक (हत्यारे) अति बलशाली इलीबिश असुर के दृढ़ दुर्गों का विनाश किया।

वज्रनिर्माणम्—

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं ।
त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।। (१।३२।२)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने पर्वत (दुर्ग) पर आश्रय लिए हुए अहिदानव को मारा । त्वष्टा (शिल्पी) ने तुम्हारे तेजस्वी वज्र का निर्माण किया ।

इन्द्रकर्माणि—

(ऋजिश्वकुत्सयोर्रक्षा)--विप्रुशम्बरार्बुदासुराणां पुरनाशः-
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ।
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ।
(१।५१।५-६)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने नृमण (=नरमार=नरमारक) विप्रु (असुर) के पुर (दुर्ग) को ध्वस्त किया और दस्यु-संहार के अवसर पर ऋजिश्वा की रक्षा की ।

हे इन्द्र ! आपने दस्युहत्या के समय ही कुत्स (ऋषि) की रक्षा की और अतिथिगु (राजा) के लिये शम्बर (असुर) का वध किया ।

महान् (=अति बलशाली) अर्बुद असुर पर आक्रमण करके उसे पादप्रहार से मार डाला । हे इन्द्र ! आप सदा दस्यु संहार के लिये ही जन्मे हो ।

कक्षीवते वृचयादानम्—

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो । (१।५१।१३)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने ऋषि (वाग्मी) कक्षीवान् को वृचया (पत्नी) देकर बालकों को दिया ।

आप वृषणाश्व की मेना (स्त्री) होगये ।

नमुचिवधः—

नम्या यदिन्द्र सख्या परावति ।
निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् । (१।५३।७)

हे इन्द्र ! आपने दूरदेशवासी, मायावी असुर नमुचि को उसका सखा बन कर (सन्धि करके) मारा ।

करञ्जपर्णय वङ्गृदादीनामसुराणां वधः—

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्व शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ।
त्वमेत्ताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।

षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो निचक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ।
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ।

(१।५३।८-१०)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने करञ्ज को मारा, पर्णय को अतिथिग्व की रक्षा के लिये मारा। आपने वृङ्गद के सौ पुरों को नष्ट किया। सुश्रवा के द्वारा आप इन बीस राजाओं के पास गये। आपने साठ हजार निन्यानवें असुरों का रथचक्र से वध किया। आपने सुश्रवा की रक्षा की। आपकी रक्षाओं के द्वारा आपने कुत्स (सौश्रवस) अतिथिग्व महान् राजा युवक की रक्षा की और उनके शत्रुओं का नाश किया।

असुरवृन्दिवधः—

यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ।
नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो
रोरुवद् वना । (१।५४।४)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने मायावी वृन्दी असुर की पैनी, चमचमाती अशनि (वज्राश्म) को युद्ध में नष्ट कर दिया तथा श्वसन शुष्ण वृन्दी के सिर को काट डाला।

यदुतुर्वसुप्रभृतीनां राज्ञामिन्द्रसाहाय्यम्—

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमैतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ।

(१।५४।५-६)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने नेतृशील राजा तुर्वश और वयःशील महान् यदु की रक्षा की। आपने धनहेतु ऐतश के रथ की रक्षा की और निन्यानवें असुरपुरों का ध्वंस किया।

ऐतशरक्षा—

प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्ये सुष्विमावदिन्द्रः । (१।६१।१५)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने सूर्य के तेज से स्पर्धा करने वाले ऐतश की सौवश्य युद्ध में रक्षा की।

इन्द्र आंगिरसः सरमा च—

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ।

(१।६२।३)

अर्थ—इन्द्र और आंङ्गिरसों के यज्ञ में देवशुनी सरमा ने अपने पुत्र के लिये भोजन प्राप्त कर लिया। वृहस्पति ने पर्वत का भेदन करके गायें प्राप्त कर लीं।

पुरुकुत्ससुदासपुरुराजान:-

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः॥

(१।६३।७)

अर्थ—हे इन्द्र आपने युद्ध करते हुए पुरुकुत्स की रक्षा हेतु सात पुरों को नष्ट कर दिया और सुदास तथा पुरु को महान् राजा बनाया।

सोमपतिः व्यंसः (विदेहमाथवः)-

अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने।

(१।७६।३)

हे इन्द्र! आपने सोमपति व्यंस (विदेह माथव) की घोड़ों द्वारा रक्षा की, यह सोमपति विदेह बड़ा दानी था।

दध्यङ्ङाथर्वण:-

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत। (१।८०।१६)
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिकुतः। जघान नवतीर्नव।
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वप्रतिश्रितम्॥
तद्विदच्छर्यणावति। (१।८४।१३-१४)

अर्थ—दध्यङ् ऋषि के मनस्वी पिता अथर्वा ने बुद्धि या यज्ञविद्या का विस्तार किया। यज्ञों द्वारा अथर्वा ने धर्ममार्ग का विस्तार किया।

इन्द्र ने दधीचि (दध्यङ्) ऋषि की हड्डियों से (वज्र बनाकर) निन्यानवें बार असुरों को मारा। अश्व का सिर पर्वत पर रखा हुआ था, उस पर्वत का नाम शर्यणावत था।

इन्द्रवज्रम्-

त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम्॥

(१।८५।९)

अर्थ-त्वष्टा ने जिस सुवर्णमय वज्र को बनाया, जिसमें सहस्रों धारें कीं। इन्द्र ने उस वज्र को धारण किया, तदनन्तर उस वज्र से वृत्र को मारा, तब वह वृत्र समुद्र में चला गया या डूब गया।

ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधसंज्ञकैः राजभिः इन्द्रस्तुतिः–

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ।
एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ।
दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ॥

(१।१००।१६-१८)

अर्थ–ऋजाश्व के घोड़े रोहित, श्यावा, तेजस्वी और ललाम हैं। वृषणशील (गतिशील) घोड़े मदमत्त होकर धुरों द्वारा रथ को धारण किए हुए हैं वे प्रजाओं में विख्यात हैं। हे वृष्ण ! हे इन्द्र ! आपकी स्तुति में यह उक्थ वार्षगिरि के वंशज गाते हैं। ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस् अनुगामी अश्वों से जाते हैं। शिम्यु दस्युओं को इस प्रकार मारकर हे इन्द्र ! तुमने समस्त पृथ्वी को निष्कण्टक कर दिया।

व्यंसशम्बरपिप्रूणां वधः–

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना ।
यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् । (१।१०१।२)

अर्थ—जिसने अति क्रोध से व्यंस को और जिसने शम्बर को मारा, जिसने अव्रत पिप्रु तथा बलशाली दस्यु अशुष को काटा वह इन्द्र···था।

मानुषयुगं मघवा च–

तदूचिषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् (१।१०३।४)
शुष्णं पिप्रुं कुवयं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य (१।१०३।८)

मघवा (धनवान् इन्द्र) के नाम कीर्तनीय (यशस्वी) हैं जिसने मानुषयुगों में शुष्ण, पिप्रु, कुवय और वृत्र को मारा तथा शम्बर के पुरों का विनाश किया।

पुरुर्दिवोदासः (दिव्यदाता)–

भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय···
···अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ॥ (१।१३०।७)

अर्थ—दिव्यदाता पुरु के लिये इन्द्र ने नब्बे पुरों का भेदन किया। उग्र इन्द्र ने अतिथिगु दिवोदास (पुरु) के लिये शम्बर (असुर) के गिरि (पर्वत-दुर्ग) का अपहरण किया।

कीकटप्रमगन्दवधार्थम् इन्द्रस्य स्तुतिः—

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥
(३।५३।१४)

अर्थ—कीकट (मगध) देश में वहां के कीकट म्लेच्छ (दस्यु) गण क्या करते हैं। वे न तो दूध दोहते हैं और न दूध (घर्म) गर्म करते हैं अर्थात् यज्ञ नहीं करते। हे मघवन्! प्रमगन्द (मगध) के धन सम्पत्ति को हमारे लिये लाओ और नीच कीकटों को हमारे लिये मारो।

पञ्चाशत्सहस्राणि कृष्णानामसुराणां वधः—

त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः सहस्राऽत्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥
(४।१६।१३)

अर्थ—हे इन्द्र! आपने मृगयाशील (आक्रमणकारी) पिप्रु असुर का वैदथि ऋजिश्वा राजा के लिये वध किया; पचास सहस्र कृष्ण असुरों को मारा और उनके सुदृढ़ पुरों का विनाश किया, यह आपने अतिशय महान् कार्य किया।

कौलितरदासशम्बरस्य वधः—

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ।
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः ।
अधि पञ्च प्रधीरिव ।
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः ।
अर्णा चित्ररथावधीः ।
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।
दिवोदासाय दाशुषे ।
अस्वापयद् दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासानामिन्द्रो मायया ॥ (४।३०।१४, १५, १७, १८, २०, २१)

अर्थ—हे इन्द्र! आपने बड़े पर्वत के नीचे कौलितर दास शम्बर को मारा। वर्ची दास (असुर) के शतसहस्र सैनिकों का वध किया जिस प्रकार पांच प्रधी घूमती हैं। शचीपति इन्द्र ने तुर्वस और यदु को (समुद्र के) पार किया। चित्ररथ के शत्रुओं को मारा। दानी दिवोदास के लिये (असुरों के) सैकड़ों अश्ममय पुरों (नगरों) को तोड़ा। दभीति (राजा) के लिये इन्द्र ने तीस सहस्र दासों (असुरों) को सुला दिया (मार दिया)।

उशना इन्द्रश्च—

उशना यत् सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अ्रज सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ।
प्राण्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अ्रनासो दस्यूंरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ।
स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ।
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।।

(५।२९।९-१२)

अर्थ—उशना शीघ्रगामी अश्वों के द्वारा रथ से आपके पास पहुंचे । हे इन्द्र आपने कुत्स के लिये शुष्णदानव का वध किया और कुत्स को राजा बनाने के लिए सूर्य को काटा । आपने अनासिक और मृध्रवाक् (म्लेच्छ) असुरों का विनाश किया । गौरिवीति की स्तुतियों ने आपकी वृद्धि की । आपने वैदथि के लिये पिप्रु असुर को मारा । आपने ऋजिश्वा की मित्रता के कारण उसका सोमपान किया । नवग्वा और दशग्वा सोम सवन करके आपकी स्तुतियों द्वारा अर्चना करते हैं ।

नमुचिवधः—

अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ।
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्रः शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।

(५।३०।७-९)

अर्थ— मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए, हे इन्द्र ! आपने दास (असुर) नमुचि का सिर काट दिया । यह मेरे (ऋषि के) लिये आपने अच्छा किया कि नमुचि का सिर मथ डाला । दस्यु (नमुचि) ने स्त्रियों की सेना बनाई, किन्तु आपने सोचा कि अबलाओं की सेना मेरा क्या बिगाड़ लेगी ।

शम्बरचुमुरिवधः—

अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती: ।
त्वं श्रद्धाभिर्मन्दासानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन् षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ।

(६।२६।५-६)

अर्थ—पर्वत के नीचे, हे इन्द्र ! आपने दस्यु शम्बर को मारा और विचित्र रक्षाविधि से दिवोदास (दिव्यदाता) की रक्षा की । सोमपान करते हुए श्रद्धावश दभीति की रक्षा के लिये चुमुरि को मारा । पिठीनस में रजि को मारते हुए आपने इन्द्राणी के साथ साठ सहस्र असुरों को मारा ।

अभ्यावर्तीचायमानरक्षणम्–

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद् हरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ।
त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमाना पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ।
द्वयां अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थिवानाम् ॥

(६।२७।५–८)

अर्थ—इन्द्र ने वारशिख को मारकर उसका धन अभ्यावर्ती चायमान राजा को दे दिया। हे इन्द्र ! आपने हरियूपीया (हड़प्पा) में वृचीवन्तों को मारा, और इससे पूर्व आधे असुरों को मारा जो तीस सहस्र कवचयुक्त असुर सैनिक यव्यवती में मारे गये। बाणों से मारे गये वृचीवन्त मिट्टी के पात्रों की भांति फूटकर गिरे। आपने वृचीवान् का प्रचुर धन दैववात (देववातपुत्र प्रस्तोक साञ्जय) को दिया। हे अग्ने (इन्द्र) ! मुझ (गर्गभारद्वाज) को सम्राट् अभ्यावर्ती चायमान ने दो रथ और बीस गायें वधूओं के साथ दीं। राजा की पार्थिव दक्षिणा अक्षुण्ण थी।

बलपणिः–

रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीं वचोभिरभि योधयदिन्द्रः ।

(६।३९।२)

अर्थ—वल (पणिराज) के प्रासाद को भग्न करते हुए इन्द्र अक्षत रहा, वाणी और शस्त्र दोनों से इन्द्र ने पणियों से युद्ध किया।

दाशराज्ञे युद्धे ऐक्ष्वाकस्य सुदासस्य इन्द्रसाहाय्यम्–

अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ।
पुरोडा इत् तुर्वसो यक्षुरासीद् राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद् विषूचीः ।
आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् ।
दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्ना विव्यक् पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ।
ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ।

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन् नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ।
अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं निवृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय संख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ।
वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुर सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भागजेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ।
नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ।
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जुहुर्विश्वानि भोजनानि सुदासे ।
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन् निजहि वज्रमिन्द्र ।
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ।
प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ।
चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टस्यः कृशनिनो निरेके ।
इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ।।

(ऋग्वेदे सूक्तम् ७।१८।५-२५)

अर्थ—इन्द्र ने सुदास के लिए परुष्णी नदी के भारी बहाव को घटा दिया और इससे वह शीघ्र पार करने योग्य होगई। वह हमारे स्तुति करने योग्य है। इन्द्र ने दुष्ट शिम्यु और उसके अभिशप्त मित्रों को नदियों का बहता हुआ गन्द बनाया। अर्थात् वे मरे हुए नदी में बह रहे थे।

तुर्वस ने पुरोडाश की बलि दी, इसी प्रकार यक्षु और मत्स्यों ने किया। वे सम्पत्ति के योग्य अधिकारी थे। भृगुओं (भार्गवों) और द्रुह्यु ने उनका अनुसरण किया। विभिन्न बहाव के मार्गों में उन्होंने एक-दूसरे की सहायता की जैसी कि सच्चे मित्र करते हैं।

पक्थों (पठान), भलानसों, अलिनास, विषाणिन और शिवियों ने इन्द्र का प्रशस्ति गान किया। सहभोजी मित्रों ने सुदास (आर्य) के नेतृत्व में तृत्सुओं के पास गमन किया जिससे वे शत्रुओं और उनकी गायों को जीत सकें।

दुष्ट मूर्ख शत्रुओं ने घृणित कार्य किया कि उन्होंने परुष्णी के बहाव को विभक्त कर दिया जिससे नदी में ठीक से आवागमन हो सके। परन्तु राजा सुदास ने अपना बल विस्तार किया और पुरोहित कवि ने पुरोडाश रखते हुए भय अनुभव किया।

सुदास के बल परुष्णी को पार करते ही चले गये जो शत्रुओं के लिए महान् संकट था। वे इसी प्रकार बढ़ते गये, जैसे अश्व तेजी से अपने लक्ष्य पर पहुंचता है। इन्द्र ने सुदास के हितार्थ उसके शत्रुओं को जो भागे जा रहे थे, नष्ट कर दिया।

सुदास ने अपने शत्रुओं को उसी प्रकार नष्ट किया जैसे कि ऋत्विक् यज्ञ-स्थली की घास काटता है। सुदास ने यशःप्राप्ति की कामना से इक्कीस और दो वकर्ण राजाओं को बुरी तरह परास्त कर दिया।

इन्द्र ने शस्त्र में पेच के द्वारा वृद्ध और विद्वान् कवष को मार डाला और द्रुह्यु को नष्ट कर दिया। दूसरी ओर जो तुम्हारे भक्त थे, वे प्रसन्न हुए और आपसे मैत्री बनाये रखने का निश्चय किया।

इन्द्र ने एक ही क्षण में शत्रुओं के सात दुर्गों को नष्ट कर दिया तथा अन्य दुर्गम स्थानों को भी नष्ट कर दिया। इन्द्र ने अनु की सम्पत्ति को तृत्सु को दे दिया और पुरु (पौरव राजा) को जीत लिया जो यज्ञ में अशुद्ध वाणी बोलते थे।

अनु और द्रुह्यु के वंशज छियासठ हजार थे, जो परास्त हो गये या समाप्त हो गये। अन्य छियासठ महावीरों का भी यही हाल हुआ। ये इन्द्र के महान् प्रशंसनीय कार्य थे।

इन्द्र की सहायता से तृत्सुओं ने शत्रुओं को नष्ट कर दिया, जिस प्रकार बहने वाला पानी शीघ्रता से बह जाता है। शत्रुओं ने अपनी समस्त धन सम्पत्ति सुदास के हवाले कर दी। उन्होंने छोटी-छोटी वस्तुओं की गणना की।

हे इन्द्र! आपके अनेक शत्रुओं ने आत्मसमर्पण किया। भेद की पराजय आपके कारण ही हुई। अपने तीव्र वज्र को हे इन्द्र छोड़ो जिससे शत्रुनाश हो। अपनी स्तुति करने वाले मनुष्य का नाश मत करो।

यमुना और तृत्सुओं ने इन्द्र को प्रसन्न किया और भेद का सर्वनाश किया। अजास, शिग्रव और यक्षु आपके लिये बलि (कर) लाये, विशेष घोड़ों को लाये।

पराशर, शतयातु और वसिष्ठ जो अपने आश्रमों से दूर आगये, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आपकी स्तुति की और आपकी उपेक्षा नहीं की। अतः सुखकारक दिन हमारे रक्षकों (राजाओं) के आगये।

दो सौ गायें तथा दो रथ, श्रेष्ठ घोड़ियो के साथ, पिजवन (ऐक्ष्वाक) और देववात के नाती सुदास ने दी। हे अग्ने (इन्द्र) ! मैं होता के समान उसकी प्रशंसा करता हूं। पैजवन के दान की प्रशंसा करता हूं।

हमारे दिव्यदाता (दिवोदास=दिव्यदाता) पिता के समान हे मरुतो ! सुदास की सहायता और समर्थन करते रहो। जिससे उसका एकछत्रराज्य चिर-काल पर्यन्त रह सके।

इन्द्रकृतं कुत्सादीनां रक्षणम्—

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्।
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम्।
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु।
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शतमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन्॥ (७-१९।२-५)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने कुत्स की रक्षा की, जिसने अपने शरीर से युद्ध में आपकी सेवा की। हे धृष्णो ! आर्जुनेय (सहस्रार्जुनपुत्र) सुदाता (सुदास) वीतहव्य की रक्षा के लिये दास प्रतापी कुयव को मारा ! हे भूमि के दाता इन्द्र ! आपने महापुरुष (=पुरु) ऐक्ष्वाक राजा पौरुकुत्सि त्रसदस्यु की, दस्युहत्या के समय, रक्षा की। हे इन्द्र ! आप नरसंहारक (शत्रुसंहारक=नृमण) हैं। देववीति के पुत्र दभीति की रक्षा में आपने दस्युराज (असुरराज) चुमुरि और धुनि को मार डाला। आपके महान् पराक्रमों से हे वज्रहस्त ! शीघ्र ही निन्यानवें असुरपुर नष्ट होगये। आपने नगर बसाते हुए सैकड़ों असुरों के साथ वृत्रासुर और नमुचि को मारा।

व्यास इन्द्र—ऋग्वेद (७।२०।३) में उल्लिखित।

दाशराज्ञे सुदासरक्षणम्—वशिष्ठागस्त्ययोर्जन्मकथा च—

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त।
सूर्यस्य वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः।
विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।

तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत् त्वा विश आजभार।
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त।
स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः।
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥

(७।३३।३, ६, ८, १२-१३)

अर्थ—इस प्रकार हे इन्द्र ! आपने सुदास को सिन्धु पार कराया, इस प्रकार भेद को मारा, इस प्रकार दाशराज्ञयुद्ध में सुदास की रक्षा की। यह सब कुछ वसिष्ठ (अज्ञातनामा वसिष्ठवंशज वासिष्ठ) के वेदमन्त्रों (स्तुतियों) से सम्पन्न हुआ। तृत्सुओं (ऐक्ष्वाकवंशजों) के पुरोहित वसिष्ठ थे, वसिष्ठों द्वारा उनके यश का विस्तार हुआ।

वसिष्ठजन्म—ये वासिष्ठगण (ऋषि) सूर्य की ज्योति और समुद्र की गम्भीर महिमा को धारण करते हैं। वायुगति के समान तीव्र प्रभावशाली वसिष्ठों के मन्त्रस्तोम हैं। मित्र और वरुण-उभयदेवों ने एक उठती हुई विद्युत्ज्योति (उर्वशी अप्सरा) को देखा। तब वसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म हुआ। प्रजाओं ने वसिष्ठ और अगस्त्य का भरणपोषण किया। ब्रह्मन् हे वसिष्ठ ! तुम मित्र और वरुण द्वारा मन से उर्वशी द्वारा उत्पन्न हुए। देव वरुण के स्खलित वीर्य को विश्वेदेवों ने पुष्करपर्ण (पृथिवीकमल) पर ग्रहण किया। वसिष्ठ (आदिम=मैत्रावरुण) दोनों के जन्म को जानते हैं। यम द्वारा परिधि की रक्षा करते हुए, अप्सरा से वसिष्ठ हुए। यज्ञ (वरुणक्रतु) में नमस्कार करते हुए वरुण और मित्र ने वीर्यसिंचन किया, तब कुम्भमध्य से एक मान (आकृति) उदित हुई, जिसको वसिष्ठ ऋषि कहते हैं। (तदनन्तर उसी से अगस्त्य उत्पन्न हुए।)

दाशराज्ञयुद्धम्—

यत्र राजभिदशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह।
दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः।
दाशराज्ञे परियन्ता विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्॥

(७।८३।६-८)

अर्थ—इन्द्र और वरुण ने दस राजाओं से घिरे हुए (ऐक्ष्वाक) सुदास की तृत्सुओं के साथ रक्षा की। दश (म्लेच्छ) अयज्ञशील राजा इकट्ठे होकर सुदास से लड़े। दाशराज्ञयुद्ध में सुदास को पूरी तरह घेर लिया। इन्द्र और वरुण ने सुदास की रक्षा की।

इन्द्ररूपी पराशरः (वासिष्ठः शक्तिपुत्रः)—

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरः। (ऋ० ७।१०४।२१)

अर्थ—(सौदास कल्माषपाद के समय) पराशर इन्द्ररूप में राक्षसों के हन्ता (मारनेवाले) हुए।

इन्द्रेण अपालायाश्चर्मरोगस्य चिकित्सा—

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि।
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम्॥ (८।९१।६-७)

अर्थ—हे देव इन्द्र! मेरा शरीर उर्वर (रोमयुक्त) नहीं है। अतः मेरे शरीर और शिर को बालयुक्त कर दीजिये। इन्द्र (शतक्रतु) ने रथ के छिद्र में शकट के छिद्र में, युग के छिद्र में तीन बार डालकर अपाला (आत्रेयी) को पवित्र किया और उसको सूर्यसदृश त्वचा (और बालों से) युक्त कर दिया।

सुपर्णेन इन्द्रस्य सोमाहरणम्

मनोजवा अयमान आयसीमतरत् पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत्॥ (८।१००।८)

अर्थ—सुपर्ण (गरुड़ वैनतेय) ने लौहे के पुर (दुर्ग) को भेदकर मनोजवगति से जाकर इन्द्र का सोम अपहरण कर लिया।

वैकुण्ठ इन्द्रः

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि।
अहं दस्युभ्यः परिनृम्णमाददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने।
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसम्। (१०।४८।२-३)
अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे···।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम्।
अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं संवृत्रेव दासं वृत्रहारुजम्।
यद् वर्धयन्तं प्रथमन्तमानुषग् दूरे पारे रजसो रोचनाकरम्।
अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम्।
(१०।४९।५, ८)

अर्थ—मैं विकुण्ठा का पुत्र इन्द्र हूं; मैंने रुद्ध त्रित आथर्वण के लिये गायों की सृष्टि की। मैं अहिदानव का दमनकर्त्ता हूं। मैंने दस्युओं का वध किया। दधीचि आंगिरस को दान दिया। मेरे लिये त्वष्टा ने लोहमय (कठोर) वज्र बनाया।

मैंने श्रुतर्वा के लिये मृगय (असुर) का वध किया। मैंने आयु (राजा) के लिये नम्रवेश बनाया, मैंने सव्य के लिये पङ्गृभि को मारा। मैंने वृत्रहा इन्द्र के समान नवगु बृहद्रथ दास को मारा। प्रदीप्त दूर देश में जो बढ़ता ही जा रहा था, उसके तेजस्वी दस्यु का तेज नष्ट किया। मैंने नहुष, तुर्वसु और यदु की रक्षा की।

अश्विनौ—तयोरैतिह्यसन्दर्भाः

याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम्।
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे।
याभिः कण्वं प्र सिषान्तमावतं ताभि॰॰॰॥
याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः।
याभिः कर्कंधुं वय्यं च जिन्वथः।
याभिः शुचन्ति धनसां सुषं सदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये।
याभिः पृश्निगुं पुरु कुत्समावतं ताभिः॰॰॰॥
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामम़ुञ्चतं ताभिः॰॰॰॥
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिः॰॰॰॥
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिः॥
याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिः॰॰॰॥
याभी रसां क्षोदसोद्गः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिः॰॰॰॥
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मान्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिः॰॰॰॥
याभिर्महामतिमतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिः॰॰॰॥
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिवीमावतं ताभिः॰॰॰।
याभिर्नरा शंयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिः।
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मना।

याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिः ।।१७।।
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गो अर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिः ।।१८।।
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथूरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदासं ऊहथुः सुदेव्यं ताभिः···।।१९।।
× × ×
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिः·· ।।२३।।

(१।११२।४-१९, २३)

यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ।१।
वीडुपत्यभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ।२।
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवां अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ।३।
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ।१०।

(१।११६।१-३, १०)

ऋषिं नरावंहसः पांचजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।

(१।११७।३)

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।।

(१।११९।६)

तिस्रः क्षपास्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ।४।
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ।५।
यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ।६।
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुंभां असिञ्चतं सुरायाः ।

(१।११६।१-७)

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ।
अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः ।

(१।११६।१२-१३)

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।
शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥

(१।११६।१५-१६)

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता: ॥

(१।११६।१८)

दश रात्रीरशिवेन नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्त: ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथु: सोममिव स्रुवेण ॥

(१।११६।२४)

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं मह: क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ।

(१।११७।७-८)

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११॥
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथु: शचीभि: ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३॥
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथु: पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०॥
त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ॥

(१।११८।२)

अश्विनौ सम्बन्धी ऐतिहासिक सन्दर्भ

अर्थ—जिन रक्षणों के द्वारा आप त्रिबन्धुर (तीन आसनों वाले) हुए अश्विनौ ! उनके द्वारा आइये ।

जिनके द्वारा आपने रेभ को बन्धनमुक्त किया और वन्दन को स्वर्ग देखने के लिये प्रेरित किया ।

जिनके द्वारा कण्व को शिक्षा दी ।

जिनके द्वारा अन्तसमीपवाले तेजी से जानेवाले भुज्यु की निर्यथित रक्षाओं द्वारा रक्षा की, जिनके द्वारा वयशील ककर्धु को जीवित किया । जिनके द्वारा शोक

करते हुए निषण्ण एवं तप्त अत्रि की रक्षा की और पृश्निगु पुरुकुत्स की रक्षा की, जिनके द्वारा···

जिन बुद्धियों द्वारा आपने दूर गये हुए अन्ध श्रोण को चक्षुयुक्त कर दिया। जिसके द्वारा वर्तिका ग्रसित को छुड़ाया···उनके द्वारा···हे अजर अश्विनौ ! आपने जिस प्रकार मधुमान् समुद्र में वसिष्ठ का उद्धार किया, जिनके द्वारा आपने श्रुतर्य (सौश्रवस) कुत्स की रक्षा की · आपने विश्पला की, कांपती हुई शरीरवाली की युद्ध में रक्षा की · । जिनके द्वारा वश अश्व्य की रक्षा की उनके द्वारा · आप सुदाता हैं, आपने औशिज वणिक् दीर्घअना के लिये मधुकोश का क्षरण किया··· आपने काक्षीवत स्तोता की रक्षा की।

जिस बुद्धि से आपने रसा नदी जो सूखी थी, उसको जलपूर्ण कर दिया और अनश्व रथ को विजयशील बनाया, जिनके द्वारा त्रिशोक के नदी बहाई··· उन बुद्धियों द्वारा ।

जिनके द्वारा दूर सूर्य के पास जाते हुए मान्धाता की क्षेत्रों (युद्धों) में रक्षा की, जिनके द्वारा विप्र भरद्वाज की रक्षा की।

जिन रक्षणों के द्वारा महामति अतिथिगु कशासेवी दिवोदास की शम्बरवध के समय रक्षा की···। जिनके द्वारा पुरभेत्ता त्रसदस्यु की रक्षा की।

जिसके द्वारा वम्र और जिनके द्वारा कन्ति की सेवा की, जिनके द्वारा व्यश्व की रक्षा की।

हे नरो (अश्वियो) ! आपने जिन बुद्धियों के द्वारा शंयु को, अत्रि को तथा पूर्वकाल में मनु को मार्ग दिखाया।

हे अश्वियो ! जिनके द्वारा आप स्यूमरश्मि के हितार्थ शारी (पक्षी) के पास गये।

जिनके द्वारा हे अश्वियो ! आपने पठर्वा के जठर की अग्नि को प्रदीप्त किया।

हे नरो ! आपने पज्रिय कक्षीवान् की बुद्धि को तेज किया, जिससे उसने वर्षणशील (वेगवान्) अश्व की शफा से कारोतर बनाकर सुरा के सौ कुम्भ निकाले (सींचे)।

हे अश्विनौ आपको दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि ने अश्व सिर से मधुविद्या प्रदान की। आप अभिमत फल के कर्त्ता हैं, अतः हमारी बुद्धि बारम्बार बुलाती है आपने बहुतों की प्रतिरक्षा की है।

हे अश्विनो ! आपने खेल नामक राजा की पत्नी विश्पला का पैर कट जाने,

जैसे किसी पक्षी का पक्ष कट गया हो, आपने आयसी (लोहे) की जांघ उसी समय लगादी, जिससे वह चल सके।

पिता ने ऋज्राश्व को अन्धा बना दिया, जबकि उसने भेड़ियों को सौ भेड़ें खिला दीं। आपने कृपा करके उसकी आंखें लगा दीं क्योंकि आप नासत्य और दस्र नाम के देवभिषक् हैं।

हे अश्विद्वय ! जब आप दिवोदास (काशिराज) और भरद्वाज के पास गये, तब आपका सेवक धनयुक्त प्रशात्र रथ लाया, जिसमें वृषभ और शिशुमार नियुक्त थे।

आपने महायुद्ध में शर्यात की रक्षा की।

आपने अङ्गिरा और मनु की रक्षा की।

जिसके द्वारा आपने विमद की पत्नी की रक्षा की और जिसके द्वारा सुदेव्य की रक्षा की।

हे शतक्रतु ! आपने आर्जुनेय कुत्स, दभीति की ऊर्ध्वसन्ति और पुरुषन्ति की रक्षा की।

हे अश्विद्वय ! आपने सैन्यहन्ता रथ के द्वारा पत्नी के पास बालक विमद को पहुंचाया। आपने हे नासत्यो ! अतिशीघ्रगामी और बलशाली घोड़ों द्वारा देवों के उत्साह से प्रेरित होकर, आपके रासभ ने युद्ध में सहस्रों वीरों को जीता।

कोई मरणशील मनुष्य जैसे धन को त्यागता है, उसी प्रकार आपने तुग्र के पुत्र भुज्यु को समुद्र में युद्धार्थ भेजे गये की प्रयत्नशील पुरुषों की नावों के द्वारा रक्षा की, वे आपकी नावें अन्तरिक्ष में जल के ऊपर चल रही थी।

हे नासत्यो ! आपने च्यवन ऋषि की वृद्धावस्था को उसी प्रकार दूर कर दिया जैसे कवच को पहिनकर कोई उतार देता है। पुनः आपने पुत्रों द्वारा त्यक्त च्यवन की आयु भी बढ़ाई और उसे युवती कन्या का पति बना दिया।

पांचजन्य ऋषि अत्रि को आपने पापगणों से मुक्त किया।

आपने रेभ की रक्षा की और परितप्त अत्रि को घर्म से बचाया। हे नासत्यो ! समुद्र में डूबे हुए तुग्रपुत्र भुज्यु को आपने तीन रथों के द्वारा गहन समुद्र के पार कर दिया और लगातार तीन रात और तीन दिन तक पक्षी के समान उड़ने वाले सौ पैरों वाले छः घोड़े आपके रथ में थे। हे अश्वियो ! आपने समुद्र में वीरतायुक्त महान् कार्य किया, क्योंकि आपने शतारित्रों से युक्त नाव पर बैठे भुज्यु को बिना किसी आलम्बन के पार लगा दिया।

हे अश्विद्वय ! आपने पेदु नाम के राजा को सफेद घोड़ा दिया। उसका शाश्वत कल्याण किया। आपका कर्म और दान सदा महान् और कीर्तनीय है। हे अर्य आप सदा पूजनीय हैं।

हे अश्वियो ! आपने दशरात्रि और नौ दिन तक जल में बहते हुए रक्षकों रहित रेभ ऋषि को उसी प्रकार कूप में से निकाला जिस प्रकार स्रुवा से सोम को उठाते हैं।

रक्षा के लिये पुकारने वाले कृष्णीय विश्वक ऋषि को आपने आश्चर्ययुक्त कर्म द्वारा विनष्ट विष्णाप्व पुत्र दे दिया, जैसे नष्टपशु को कोई धर्मात्मा पुरुष उसके स्वामी के पास पहुंचा दे।

हे अश्वियो ! आपने पति की कामना करनेवाली घोषा को पिता के घर रह रही को पति दिया।

आपने कण्व के लिये शोण अश्व के बदले रुशती दी। आपने नार्षद कण्व के लिये महान् यश दिया जो कीर्तनीय है।

हे अश्वियो ! आपने मान (कुम्भ) के पुत्र ब्राह्मण अगस्त्य को, उसके द्वारा स्तुति करने पर बल प्रदान किया। विश्पला की चिकित्सा की। आपने वृद्ध च्यवन को अपनी चिकित्सा से युवा बना दिया। हे अश्विद्वय ! आपने थके हुए शंभु ऋषि को स्तरी गाय दूध के लिये दी। आपने उसकी बिना दूध देनेवाली गाय को दूध देनेवाली बनाया।

हे अश्विद्वय ! आपने अपनी प्रतिभा से पुरुमित्र राजा की पत्नी को उसका बालक विमद लाकर दिया। आप त्रिबन्धुर, त्रिवृत्, त्रिचक्र रथ द्वारा शीघ्र नीचे आओ।

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्या अधत्तम्।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८॥
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य।
तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूढमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ।११।
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ।१४।
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ।१७।
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता।

आजह्नावीं समनसोप वाजै स्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ।१९।
परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतां अजरयू अयातम् ।२०।
एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ।२१।
(ऋ० १।११६।८, ९, ११, १४, १७, १९, २०, २१)

सप्तवध्रिऋर्षिः—

श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुंचतम् ।
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः । ५-७८-६
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आगच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्तः धामभिः ।
(१।८५।११)

अर्थ—हे अश्विद्वय ! आपने बर्फ के समान शीतल जल से अत्रि ऋषि की प्रज्वलित अग्निज्वाला को निवारित किया और उसके लिये अन्न प्रदान किया । ऋबीस में से हे अश्विनो आपने अत्रि को भली-भांति निकाल दिया ।

हे नासत्यो ! आपने गोतम ऋषि के पास जलपूर्ण कूप पहुंचाया । उस कूप के ऊपर पानी था और द्वार नीचे था, जिससे उसमें से सदा पानी गिरता रहा और इस प्रकार सहस्रों धनहेतु पानी निकलता रहा ।

हे भिषग्वर नासत्यो ! आपका वह कर्म प्रशंसनीय, आराधनीय और कल्याणयुक्त था, जब आपने पृथिवी के अन्दर छिपे हुए निधि के समान वन्दन ऋषि को कूप में से निकाला ।

हे नासत्यो ! पुरुभोज युद्ध में वर्तिका को भेड़िये के मुख से आपने निकाल दिया । आप स्तुति करने योग्य हैं अतः मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करें ।

हे अश्विद्वय ! आपके रथ पर सूर्य (सविता) की पुत्री आ बैठी जो आपकी रक्षा द्वारा सदा जयन्ती (विजयशीला) थी । कार्ष्म काष्ठ के पास वह जयन्ती सर्वप्रथम पहुंची । तब समस्त देवों ने इस (विजय) का हृदय से अनुमोदन किया । उस समय आप श्री से सम्पन्न थे ।

हे नासत्यो ! आप धन, श्रेष्ठ बल, श्रेष्ठ सन्तान, आयु, सुवीर्य आदि समस्त पदार्थों को भक्तों तक पहुंचाते हैं । आप उदारचित्त हैं । आपने जह्नु की सन्तान को ये समस्त वस्तुएं प्राप्त कराईं । आपने दिन को तीन भागों में विभक्त किया है । हे अश्विद्वय ! आपने युद्ध में सहस्रों की प्राप्ति के लिये वश ऋषि की रक्षा

की। हे वीर्यवान् अश्विद्वय! आपने पृथुश्रवा के शत्रुओं को निःशेष (समाप्त) कर दिया।

विष्णुसम्बन्धिन ऐतिह्यसन्दर्भाः

विष्णुत्रिविक्रमः—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। (१।२२।१७)

अर्थ—विष्णु ने विक्रमण किया और तीन (लोकों) में तीन पद रखे।

वराहो विष्णुः—

मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥

(१।६१।७)

अर्थ—

वरुणः—

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
परि स्पशो निषेदिरे॥ (१।२५।१३)

अर्थ—धवल वस्त्र धारण किये हुए वरुण हिरण्यमय कवच पहिने हुए हैं। उनके गुप्तचर चारों ओर हैं।

वरुणस्य शुनःशेपकृता स्तुतिः—

शुनःशेपो यमह्वाद् गृभीतः। सोऽस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥

(१।२४।१२, १४)

अर्थ—मैं शुनःशेप गृहीत हूं और वरुण को मुक्ति के लिए पुकारता हूं, वह राजा वरुण मुझे अपने पाश से मुक्त करे।

हे राजन्! हे असुर (बलवान्) वरुण! आप प्रचेता हो, हमारे किये हुए पापों को नष्ट करो।

वरुणप्रासादे वसिष्ठगमनम्—

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम्।
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम्॥

(७।८६।३-४)

गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेंखं हिरण्ययं शुभे कम्।
अव सिन्धु वरुणो द्यौरिव स्थाद्॥ (७।८७।५)

अर्थ—हे पिता वरुण! मैं आपसे अपना पाप पूछता हूं, जिस कारण तुम मुझ (अपने पुत्र एवं) ज्येष्ठ स्तोता को दण्ड देना चाहते हो ॰॰। स्तुत वरुण ने मुझे मुक्त कर दिया और मैं नाव में समुद्र के मध्य अन्तरिक्ष में, सुखकारक झूले

की तरह झूल रहा हूं। समुद्र में भी वरुणदेव (सहस्रस्तम्भ महल में) इस प्रकार रहते हैं, जैसे स्वर्ग (आकाश) में हो।

ऋभवः=तेषाम् ऐतिह्यसन्दर्भाः

ऋभुभिः-चमत्काराः कृताः-

उतं त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्।
अकर्त चतुरः पुनः। (१ २०।६)
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। (१।२०।२)
तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। (१।२०।३)
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम्॥ (१। ।)

अर्थ—हे ऋभुदेव! आपने त्वष्टा देव के लिये नया चमस बनाया और पुनः उसके चार चमस कर दिये।

इन्द्र के लिये ध्वनिमय दो घोड़े बनाये और अश्विनीकुमारों के लिये विशाल सुखमय रथ (विमान) बनाया तथा सबर्दुघा (अमृतदुग्धा) धेनु का निर्माण किया।

सौधन्वना ऋभव—

तत् सविता वोऽमृतत्वमासुवद्गोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम्।
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः॥ (१।११०।३-४)

अर्थ—हे ऋभुओ आपको सविता ने अमृत पद प्रदान किया, जिसे सुनकर आप उनके पास आये। आपने असुर (त्वष्टा) के लिये एक चमस के चार चमस किये। युवा होने से आप कर्मों के साधक हो। आप बुद्धिमान् होने के कारण आप मरणधर्मा होने पर भी अमर हो। हे सुधन्वा (आंगिरस) के पुत्र ऋभुगण आप सूरचक्षु (अतिविद्वान्) हो।

ऋभवः—ऋभुर्विभ्वा वाजश्च—

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपमुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवां अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन।
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवां अयातन॥
(१।१६१।६-७)

अर्थ—इन्द्र के लिये हरी (दो घोड़े) बनाये, अश्विनीकुमारों का रथ बनाया और बृहस्पति के लिये सवर्दुघा धेनु (या विश्वरूप) बनाई, ऋभु, बिभ्वा और वाज—जो सुधन्वा आंगिरस के पुत्र थे, वे अपने कर्म द्वारा यज्ञ में भाग पाने के अधिकारी हुए, वे दोनों के पास आये। उन्होंने अपने कौशल से गाय (सवर्दुघा) का निर्माण किया। जो बूढ़ी गायें थीं, उन्हें जवान बनाया। सौधन्वन ऋभुओं ने घोड़े से घोड़े को बनाया और उन्हें रथ में जोतकर देवों के पास आये।

मरुतः (मर्त्याः देवाः मरुद्गणः)

रुद्रस्य गणाः—
(सैनिकाः)—

रुद्रस्य मर्या अरेपसः।
सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवपसः।
वक्षःसु रुक्मां अधि येतिरे शुभे।
अंसेष्वेषां निमिमृक्षुर्ऋष्टयः॥ (१।६४।२, ४)
शूरा इव इत् युयुधयः न जग्मयः श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यः राजान इव त्वेषसंदृशो नरः॥
(१।८५।८)
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा विवावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन॥
(५।५९।६)
वाशीमन्तो ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषंगिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम्।२।
ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनुषु पिपिशे।७।
(५।५७।२, ७)
आ विद्युन्मद्भिः मरुतः स्वर्कैः रथेभिः यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयः न पप्तत सुमायाः॥ १।८८।१
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा अन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि।
(५।५९।७)

अर्थ—रुद्र के गण (सैनिक) मरुत मरणधर्मा और निष्पाप हैं। गले में स्वर्णमाला पहने हुए हैं। इनके कन्धों पर भाले हैं। शूरों के समान योद्धा, युद्धों में यशःकामना से युद्ध करते हैं। मरुद्गणों से सारा संसार भयभीत होता है। ये राजाओं के समान तेजस्वी हैं। इनमें कोई बड़ा नहीं, कोई मध्यम नहीं और न

कोई छोटा है। अपने बल से वृद्ध (बड़े) हैं। ये जन्म से कुलीन हैं। पृश्नि इनकी माता है। दिव्यलोक से मर्त्यलोक में आये हैं।

बर्छियां धारण करने वाले, भाले धारण करने वाले, उत्तम धनुषों के धारक, बाण चलानेवाले और तूणीर रखते हैं। इनकी माता पृश्नि है, इनके अश्व श्रेष्ठ हैं और रथ उत्तम हैं। अस्त्र-शस्त्र धारण करते ये युद्धों में जाते हैं। मरुतों के कन्धों पर भाले होते हैं। बाहुओं में ओज (तेज) और बल है। वे नरसंहारक (शत्रु-संहारक) और शिरों पर भी आयुध रखते हैं। रथों में आयुध रखते हैं और शोभा से इनका शरीर प्रदीप्त है। आकाशयान या पंखयुक्त शरीर ?—वे निष्पाप नरवीर हमारे पास पक्षीसदृश पंख लगाकर आते हैं। इनको देखते ही इनकी स्तुति करो। वे बिजली के समान तेजस्वी चमकीले शस्त्रों से युक्त और पर्ण (पंख) लगाकर रथों से आते हैं। हे मरुतो! आप पक्षियों के समान पंखों से उड़कर हमारे पास आते हो। तुम्हारी सुमाया (कौशल = शिल्पविज्ञान) अद्भुत है।

हे वीरो! पक्षियों के समान श्रेणीबद्ध होकर वेगपूर्वक आकाश मार्ग से विशाल पर्वत शिखरों पर उड़कर पहुंचते हो। इनके पंखयुक्त घोड़े पर्वतों के टुकड़े वहां से जल को नीचे गिराते हैं।

(मरुद्गण दिन-रात पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष में विचरण करते थे)—'यत् अक्तून् व्यहानि व्यन्तरिक्षं विरजांसि व्यजथ यथा नावः। दुर्गाणि वि मरुतो न रिष्यथ। (ऋ० ५।५४।४)

दानस्तुतिष्वैतिह्यम्

स्वनयस्य भाव्यस्य दानम्–

अमन्दान्त्स्तोमान् अंभरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रमभिमिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः।
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कञ्छतमश्वान् प्रयतान्त्सद्य आदम्।
शतं कक्षीवां असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमाततान।
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः॥
षष्टिः सहस्रमनुगव्यमागात् सनत् कक्षीवां अभिपित्वे अह्नाम्।
चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणा सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः।

(१।१२६।१-४)

अर्थ—मैं सिन्धु के तटवासी राजा स्वानय भावयव्य की स्तुति श्रेष्ठ स्तोत्रों और बुद्धि से करता हूं। जिसने अपने यश की इच्छा से मुझे सहस्रों सवों का दान दिया। मैंने राजा से स्तूयमान सौ निष्क स्वर्णकण्ठाभरण) और श्रेष्ठ सौ

अश्व ग्रहण दिये। कक्षीवान् (मैंने) असुरराज स्वनय भावयव्य की सौ गायें ग्रहण की। राजा का यश स्वर्ग तक छा गया। स्वनय राजा ने मुझे वधूयुक्त दश रथ श्याम घोड़ों के साथ दिये। राजा ने साठ हजार गायों के साथ यह दान दिया। दशरथों के ४० शोणाश्व सहस्रों के आगे पंक्ति बनाते हैं। मद बहानेवाले, हिरण्यवर्ण अश्वों को पज्रा और कक्षीवन्तों ने प्राप्त किया।

त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः पौरुकुत्स्यस्त्रसदस्युः, भारतोऽश्वमेधश्च (राजानः)–

त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत।
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।
—•••नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः। (५।२७।१, ३, ६)

अर्थ– त्रैवृष्ण (त्रिवृष्णपुत्र) त्र्यरुण ने हे अग्ने हे वैश्वानर ! मुझे (भौम आत्रेय ऋषि को) दशसहस्र गायों का दान दिया। बीस सौ बैल घोड़ों से युक्त (रथों में) दिये।

त्रसदस्यु ने नविष्ठ को……।

अश्वमेध भारत (भरतवंशज) ने त्र्याशिर सोम के समान दान (दिये)।

रुशमान ऋणंचय–

औच्छत् सा रावी परितक्म्यायां ऋणंचये राजनि रुशमानाम्।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत् सहस्रा।
चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रहीष्म रुशमेष्वग्ने।
(५।३०।१४-१५)

अर्थ—वह परितक्म्या रात्रि बीत गई ऋणंचय राजा जो रुशमानों का स्वामी था, उसने शीघ्रगामी वेगवान् भूरे घोड़े चार सहस्र और चार सहस्र अन्य पशु दान में दिये, हे अग्ने ! हमने रुशम जनों में यह दान ग्रहण किया।

वव्रः दानवः–

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्यमाददुग्रः। (५।३२।८)

अर्थ—वव्र ने मुझे शयनशील मधुप के समान धन का दान दिया।

गरिक्षितः पौरुकुत्स्यस्त्रसदस्युः–

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराण।
वहन्तु मा दश श्वेतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे।
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणा क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत्।
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।

मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं नः गावः प्रयता अपि ग्मन् ।

(५।३३।८-१०)

अर्थ—पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु विद्वान् ने अनेक श्रेष्ठ दान दिये। गैरिक्षित (पर्वतवासी) त्रसदस्यु ने यज्ञों में दश श्वेत अश्व और शोणाश्व दिये। उसने मुझे वायु के समान दौड़ने वाले घोड़े यज्ञ में दान दिये। गतिमान् सहस्रों अश्व देकर श्रेष्ठ स्वामी ने मेरी अर्चना की। उन सुचिपूर्ण दानों का मैंने सेवन किया। महान् धन उसी प्रकार संवरण ऋषि के घर गया, जिस प्रकार गायें व्रज (घोष) में जाती हैं।

शाण्डस्य दानम्—

उत म ऋज्रे पुर यस्य रघ्वी सुमीलहे शतं पेरुके च पक्वा ।
शण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषा च ऋष्वान् ।
सं वां शता नासत्या सहस्राऽश्वानां पुरुपन्था गिरेदात् ।

अर्थ—शाण्ड ने मुझको जिस पुर छोटा साथा सौ येरुक और पशु दान में दिये। उसने दश सहस्र वशायें दान में दी और सैकड़ों हजारों अश्व हे नासत्य मेरी स्तुति पर दिये।

पाकस्थामा कौरयाणः—

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः । (८।३।२१)

अर्थ—मुझे हे मरुतो ! कौरयाण पाकस्थामा ने जो दान दिया।

कुरुङ्गः—

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ।
धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ।।

(८।४।१९-२०)

अर्थ कुरुङ्ग राजा के दिव्य यज्ञों में मुझे विशाल दान मिला। मैं (ऋषि) उस तुर्वसु राजा को तेजस्वी और भाग्यशाली मानता हूं, जिसने अपनी बुद्धि से काण्व प्रियमेध ऋषि को यूथश साठ हजार घोड़े और गाय दान में दीं।

चैद्यकशुदानम्—

यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ।
यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत । (८।५।३७)

अर्थ—चैद्यकशु राजा ने मुझ (ब्रह्मातिथि काण्व) को सौ उष्ट्र और दश

सहस्र गायें दान में दी। दश हिरण्यमय गायों (या वृषभों) से राजा ने मेरा सम्मान किया।

तिरिन्दरः पार्शव्यः (यादवः)–

शतमहं तिरिन्दरे सहस्र पर्शावा ददे। राधांसि याद्वानाम्।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्र दश गोनाम्। ददुष्पज्राय साम्ने।
उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत्।
श्रवसा याद्वं जनम्। (८।६।४६-४८)

अर्थ—यादवजनों के यश के लिए यदुराज तिरिन्दर पार्शव्य ने मुझे (वत्स काण्व ऋषि को) एक लाख का दान दिया। तीन सौ घोड़े और दशसहस्र गायें पज्र सामगान के लिये दिये। ककुभवाले चार चार जोड़ों के ऊंट दान में दिये, यादवों के यश हेतु।

सोभरिः, त्रसदस्युश्च—

तत्रागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टमवसे।
सम्राजं त्रासदस्यवम्।
अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम्।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः।
उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता वसुर्दियानां पतिः॥
(८।१९।३२, ३६, ३७)

अर्थ—सोभरिगणों ने सहस्रों साण्डों को प्राप्त किया, सम्राट् त्रसदस्यु से। पौरुकुत्स्य सम्राट् पुरुकुत्स ने मुझे पचास वधुयें दीं। वह महनीय आर्य और सत्पति (श्रेष्ठ राजा) है। उसने मुझे तेज दौड़नेवाले तीन सप्तक श्याम अश्व दान में दिये। वह महान् वसुपति और दानपति था। उसने मुझे यह दान सुवास्तु नदी के तट पर तुग्व तीर्थ में दिया।

कानीतस्य पृथुश्रवसो दानम्—

यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्यादेय।
षष्टिं सहस्राश्वकस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा।
दश श्यावा ऋधद्रयो वीत वारास आशवः।
मथ्रा नेमिं निवावृतुः। दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः।
रथं हिण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमक्रत श्रवः॥
(८।४६।२१-२४)

अर्थ—पृथुश्रवा कानीत राजा ने अश्वपुत्र अश्व्य वश ऋषि को साठ हजार ऊंट और बीस सौ गायें दान दीं। दशसहस्र श्यावी और दशसहस्र त्र्यरुषी गाय। दश श्यामाश्व श्रेष्ठ एवं विना बालों वाले दान दिये। पृथुश्रवा कानीत, जो महान् राजा विद्वान् सूरि था, उसने एक सोने का रथ मुझे दान दिया।

कुरुश्रवणस्त्रासदस्यवः (कवषः एलूष ऋषिः)—

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्। मंहिष्ठं वाघतामृषिः।
यस्य या हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया।
स्तवे सहस्रदक्षिणे। (१०।३३।४-५)

अर्थ—मैं कवष एलूष ऋषि त्रसदस्युपुत्र कुरुश्रवण की स्तुति करता हूं। स्तुतिकर्ताओं में महान् में कवष श्रेष्ठ राजा की स्तुति करता हूं। जिसके द्वारा दान की हुई तीन हरी घोड़ियां मेरे रथ को चला रही हैं।

मनोः सावर्णेर्दानम्—(अस्य भ्रातृव्यो नाभानेदिष्ठो मानव ऋषिः)—

सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रुवो देवेष्वक्रत।
प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोकमेव रोहतु।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे।
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णे देवाः प्रतिरन्त्वायुः ॥ (१०।६२।७-११)

अर्थ—सावर्ण मनु ने मुझे सहस्र अष्टकर्णी गायें दान में दीं, जिससे मनु का यश देवों में फैल गया। हमारी प्रार्थना है कि मनु के पुत्र पौत्रों की सृष्टि हो, जो हजारों सैकड़ों घोड़े एकदम दान में देते हैं। सावर्ण्यमनु की दक्षिणा सिन्धु (समुद्र) के समान फैल गई। सहस्रों का दान देनेवाले ग्रामणी मनु की दक्षिणा सूर्य से प्रतिस्पर्धा करने लगी। देवगण मनु को अमित आयु प्रदान करें।

प्लायोगिरासङ्गः—(कण्वाय घोराय दानम्)—

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः।
अधो क्षणो दश मह्यं रुशन्तो नडा सरसो निरतिष्ठन्।
(८।१।३३)

अर्थ—हे अग्ने ! प्लायोगि आसंग राजा ने मुझ (घोरपुत्र कण्व) को दश सहस्र वृषभ दान में दिये, जो तालाब में बेत (नड=नल) के समान (असंख्य रूप) में खड़े थे।

ऋग्वेदे प्रकीर्णका ऐतिह्यसन्दर्भाः

आयुर्नहुषो इला च—

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इलामकृण्वन् मनुषस्य शासतीम् । (१।३१।११)

अर्थ—हे अग्ने ! देवों ने मनुष्यों के लिए आयु और नहुष को विश्पति—या सम्राट् बनाया और आपने इला को मनुष्यों की शासिका बनाया ।

त्रित आप्त्यः— (आप्ति का पुत्र त्रित)—

त्रितस्तद् वेद आप्त्यो···। (१।१०५।६)
त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये । (१।१०५।१७)

अर्थ—आप्ति का पुत्र त्रित जानता है ।···

कूप (कुए) में पड़े त्रित ने रक्षा के लिए देवों को बुलाया ।

आयवः नहुषः—

चत्वारो मा मशशरिस्य शिश्वस्त्रयो
राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः । (१।१२२।१५)

अर्थ—चार मशशरि के और तीन आयुः पुत्र नहुष के शिशु···।

रोमशा—

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथा ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका । (१।१२६।७)

अर्थ—हे इन्द्र ! मेरे को स्पर्श करो ।···मेरे को···मत समझो । मेरा सम्पूर्ण शरीर गन्धार देश की भेड़ के समान ऊर्णावान् है ।

दीर्घतमा मामतेयः—

न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपिग्ध ।
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।। (१।१५८।४-६)

अर्थ—मातृसम नदियों ने मुझे गलाया या बहाया नहीं, मुझे दासों ने बुरी तरह बांध रखा था । त्रैतन नाम के दास ने मेरा शिर काटना चाहा, तब स्वयं उसका पेट और कन्धे काट लिये ।

दीर्घतमा मामतेय दश (मानुष युग=१००० वर्ष) युग जीवित रहा ।

देवश्रवा देववातश्च भारतौ—

अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।।
(३।२३।२)

अर्थ—देवश्रवा और देववात—भारत क्षत्रियों ने रक्षा करनेवाली अग्नि को मथा।

विपाट्छुतुद्री—

विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ (३।३३।१)

अर्थ—विपाशा और शुतुद्रु नदी वेग से बहती है।

भरताः—

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
(३।३।१२)

अर्थ—गायों की इच्छा वाले भरत नदियों को पार कर गये।

वामदेवः गौतमः—

अहं मनुरहमभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा।
(४।२६।१)

अर्थ—मैं ही मनु हूं, मैं ही विवस्वान् सूर्य हूं। मैं ही ऋषि कक्षीवान् हूं। मैंने (इन्द्र रूप में) अर्जुनपुत्र कुत्स को मारा था, मैं ही कवि (ऋषि) उशना हूं। मुझे देखो।

पौरुकुत्स्यः त्रसदस्युः—

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम्।
पुरुकुत्सानी हि वां दाशत्। (४।४२।८-९)

अर्थ—दौर्गहबन्धन में सप्त ऋषि हमारे पिता (रक्षक) थे। उन्होंने मुझ त्रसदस्यु के लिए अर्चनीय देव इन्द्र का यज्ञ किया। पुरुकुत्सानी (मेरी पत्नी) ने आपको दान दिया।

स्वर्भानुः (राहुः सैंहिकेयः)—

अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुरा धात् स्वर्भानोरप माया अधुक्षत्।
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ॥
अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन्। (५।४०।८-९)

अर्थ—अत्रि ने स्वर्ग (आकाश) में सूर्य का नेत्र लगाया, स्वर्भानु (राहु) की माया दुही।

जिस सूर्य को स्वर्भानु असुर अन्धेरे से ढक लेता है, अत्रिवंशीय ऋषियों ने सर्वप्रथम इस तथ्य को जाना, दूसरे विद्वान् यह जानने में असमर्थ रहे।

प्रातर्दनी क्षत्रश्रीः—

प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥
(६।२६।८)

अर्थ—प्रतर्दन का पुत्र क्षत्रश्रीः (प्रथमदाशराज्ञ युद्ध का विजेता) दस्युओं के वध में और दान देने में सर्वश्रेष्ठ था।

पूषा—

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदयाकवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ (६।५३।७)
यास्ते पूषन्नावो अन्तःसमुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
(६।५८।३)

अर्थ—हे पूषन् ! हे केव ! पणियों के हृदयों को अपने शस्त्र से काट दो।

हे पूषन् ! आपकी जो नावें या पनडुब्बियां अन्तःसमुद्र (भीतर) और अन्तरिक्ष में (विमान) चलते हैं।

दिवोदास बाध्रयश्वः

इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ॥
(६।६१।१)

अर्थ—वध्र्यश्व के पुत्र, दानी दिवोदास को आपने यह तीव्र अच्युत ऋण (धन) दिया, दान के लिये।

मेधातिथिः काण्वः—

काण्वं मेध्यातिथिम्। मेषो भूतोऽभि यन्नयः।
शिक्षा विभिन्नो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्। अष्टाः परः सहस्रा ॥
(८।२।४०-४१)

अर्थ—मेध्यातिथि काण्व को, हे इन्द्र ! आप मेष बनकर ले गये और बिभिन्दु के अड़तालीस हजार (पशु) दान में दिये।

ऋषिरक्षणम्—

यथा चित् कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम्।
अत्रिं शिञ्जाररमश्विना। यथोत कृत्व्ये धनेऽशुं गोष्वगस्त्यम्।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥ (८।५।२५-२६)

अर्थ—हे अश्विनौ ! आदने प्रियमेध काण्व की स्तुत होकर रक्षा की। अत्रि—अगस्त्य की—रक्षा की। वाजियों में सोभरि की रक्षा की।

तुर्वशयदू—

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् ॥ (८।७।१८)

अर्थ—हे इन्द्र ! आपने तुर्वस और यदु तथा धनस्पृही कण्व की रक्षा की।

पृथी वैन्यः—

पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवदेतो अश्विना चेतयेथाम् ॥
(८।९।१०)

अर्थ—

आदित्य मनुष्य—

ये चिद्धि मृत्युबन्धवः आदित्या मनवः स्मसि । (८।१८।१८)

अर्थ—ये आदित्य मनुष्य और मरणधर्मा हैं। (अदिति के बारहपुत्र)

चित्रः (आखुराजः)—

चित्र इद् राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ (८।२१।१८)

अर्थ—चित्र ही राजा है, और तो केवल राजक (छोटे राजा) हैं, चित्र ने सरस्वती के किनारे मेघ के समान सहस्र अयुत धन की वर्षा की।

यम-यमी-संवादः (ऋग्वेद १०।१० सूक्त)	यमयमीसंवाद ।
शंखः यामायनः (१०।१५ सूक्तस्य द्रष्टा)	शंख यामायन ।
दमनो यामायनः (१०।१६ —)	दमन यामायन ।
देवश्रवा यामायनः (१०।१७ —)	देवश्रवा यामायन ।

सरण्यूः—

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदर्दुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत् तदासीज्जहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ।
(१०।१७।१-२)

अर्थ—त्वष्टा ने अपनी पुत्री सरण्यू के लिये दहेज दिया। समस्त विश्व भुवन उसे देखने एकत्रित हुआ। यम की माता विवाह के पश्चात् छिप गई जो महान विवस्वान् की पत्नी थी। अमृता सरण्यू को छिपाया गया मर्त्यों से और उसी के समान बनाकर सुवर्णा (नाम की स्त्री) विवस्वान् को देदी गई। विवस्वान् ने अश्विनों को ले लिया। सरण्यू ने दो पुत्रों को छोड़ दिया।

संकुसुको यामायनः (१०।१८)	संकुसुक यामायन ।
मथितो यामायनः (१०।१९)	मथित यामायन ।
ऐन्द्रो विमदः (१०।२०)	विमद ऐन्द्र ।
ऐन्द्रो वासुकः (१०।२७)	वसुक ऐन्द्र ।

उपमश्रवा मैत्रातिथिः—

अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि । (१०।३३।८)

अर्थ – मित्रातिथि का पुत्र उपमश्रवा।

अगस्त्यः—

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिताः ।
पणीन् न्यक्रमीरभि विश्वान् राजन्नराधसः । (१०।६०।६)

अर्थ—अगस्त्य की शोर करनेवाली लाल घोड़ियों ने पणियों की ओर प्रस्थान किया, जो सब धनवान् थे ।

असमातिः रथप्रोष्ठः (ऐक्ष्वाकः)—(१०।६०।४, ५)—असमाति रथप्रोष्ठ ।

गयः प्लातः (१०।६३)—गय प्लात ।

अष्टौ आदित्याः—

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवां उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यत् ॥ (१०।७२।८)

अर्थ—अदिति के आठ पुत्र उत्पन्न हुए, वह अदिति सात पुत्रों के साथ देवों के पास चली गई, परन्तु आठवें मार्तण्ड (मृताण्ड =विवस्वान्) सूर्य को फेंक दिया ।

पुरुरवोर्वशीसंवादः—

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥
(१०।९५।१६)

अर्थ—मैं वेश बदलकर चार वर्षों तक मनुष्यलोक (भारतवर्ष) में रही । मैं (उर्वशी) केवल, उस समय दिन में थोड़ासा घी खाकर तृप्त होकर विचरण करती थी ।

आर्ष्टिषेणो देवापिः शन्तनुश्च—

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ॥
(१०।९८।५, ७)

अर्थ—आर्ष्टिषेण देवापि ऋषि देवों की सुमति को जानकर (अपने भ्राता) शन्तनु के पुरोहित बने और वर्षा के लिए यज्ञ कराया ।

मुद्गलः, मुद्गलानी च—

तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ।
ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत् सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा मुद्गलानीम् ॥
इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत् सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥
(१०।१०२।५, ६, ९)

अर्थ—

———

[२]

अथर्ववेदसंहितायामैतिह्यसन्दर्भाः

दाक्षायणाः शतानीकस्य—

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकस्य सुमनस्यमानाः।

(१।३५।१)

अर्थ—दाक्षायण ऋषियों ने जब प्रसन्नचित्त होकर शतानीक (के यहा में, उसके शरीर से) स्वर्ण बांधा।

सालावृकाः (असुराः) इन्द्रश्च—

तयाहं शत्रून्साक्ष इन्द्रः सालावृकां इव। (२।२७।५)

अर्थ—उसके द्वारा मैंने शत्रुओं का वध किया, जिस प्रकार इन्द्र ने सालावृक असुरों का किया था।

भृगुः (भार्गवः जमदग्निः), वैतहव्याश्च—

ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्।
गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्यां अवातिरत्॥ (५।१८।१०, ११)

अर्थ—वे (सहस्रार्जुन अर्जुन के वंशज) वैतहव्य क्षत्रिय ब्राह्मण (जमदग्नि) की गाय भोगकर पराजित हुए। गाय ने ही उनको (वैतहव्यों) को मारा और नष्ट कर दिया।

परिक्षित् (परीक्षित्)—

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवो मर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः।
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन्।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया।
कतरत् ते आहराणि दधि मन्थाम् परिश्रुतम्।
जाया पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।
अभीव स्वः प्रजिहीते यवः पस्वः पथोबिलम्॥
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः। (२०।१२७।७-१०)

अर्थ—विश्वजनीन (सार्वभौम) सम्राट् परीक्षित् देव (तुल्य) है, जो मर्त्यों का शासन करते हैं। राजा परीक्षित् अग्नि की स्तुति (यज्ञ) करते हैं। सिंहासनारूढ़ राजा सबका कल्याण करता है। उसने राज्य को अपना कुटुम्ब (परिवार) बनाया है। (परीक्षित् के राज्य में) स्त्रियां अपने पति से पूछती हैं—हे पतिदेव ! मैं आपके लिये क्या लाऊं, दही, परिस्रुत (सुरा-पेय) या मन्थ ?

जिस प्रकार आकाश व्याप्त है, उसी प्रकार राजा परीक्षित् के राष्ट्र में प्रजा का कल्याण होता है और वह धन्यधान्य से सम्पन्न है।

सृञ्जयानां वैतहव्यानां च पराभवः—

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन्॥ (५।१९।१)

अर्थ—वैतहव्यों और सृञ्जयों की कीर्ति ने आकाश को छू लिया था, वे बहुत बढ़े चढ़े हुए थे, परन्तु भृगु (जमदग्नि, भार्गव) को मारकर वे नष्ट होगये।

जमदग्निः, वीतहव्यः, असितः (काश्यपश्च)—

यां जमदग्निरखनद्दुहित्रे केशवर्धनीम्।
तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः॥ (६।१३७।१)

अर्थ—जिस केशवर्धनी गाय की दोहन (या यज्ञ) के लिए जमदग्नि ने रक्षा की, उसको वीतहव्य (सहस्रार्जुनपुत्र) ने (जमदग्नि के गुरु) असित (काश्यप) ऋषि के घर से अपहरण कर लिया।

पञ्चजनाः पृथ्वीदोहनञ्च

असुरा आसुरीमाया च—

सोदक्रामत्सासुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति।
तस्य विरोचनः प्राह्लर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम्।
तां द्विमूर्धा त्वधोक्तां मायामेवाधोक्।
तां मायामसुरा उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति एवं वेद।

अर्थ—वह (   ) चला और असुरों के पास आया, असुरों ने उसे बुलाया—हे माये ! आओ। उस पृथ्वीदोहन=मन्थन) का वत्स प्राह्लादि विरोचन वत्स था, लोहे का बर्तन दोहनपात्र था। उस माया का दोहनकर्त्ता द्विमूर्धा असुरराज था, जिसने माया का दोहन किया। उस माया के आधार पर जीवन धारणा करते हैं।

पितृजनाः—

सोदक्रामत्स पितॄनागच्छत्तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति।

तस्या यमो राजा वत्स आसीद्रजूतपात्रं पात्रम् ।
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक्तां स्वधामेवाधोक् ।
तां स्वधां पितर उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति एवं वेद ।

अर्थ—वह चला और पितरों के पास आया। पितरों ने उसे बुलाया हे स्वधे ! हमारे पास आओ। उसका यमराज वत्स था, दोहनपात्र चांदी का था, उसको अन्तक मार्त्यव (यमपुत्र) ने दोहा, स्वधा को दोहा, उसी स्वधा (अन्न) के ऊपर पितर जीवित रहते हैं, वह उनका उपजीवनीय है, यह जाना।

मनुष्याः—

सोदक्रामत्सा मनुष्यानागच्छत्तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ।
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।।
तां पृथी वैन्योऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ।
कृषिं च सस्यं मनुष्या उपजीवन्ति । कृष्टिराधिरुपजीवनीयो भवति एवं वेद ।

अर्थ—वह चला और मनुष्यों के पास आया, मनुष्यों ने उसे बुलाया। मनु वैवस्वत वत्स था, पृथिवी पात्र थी। पृथु वैन्य ने उसका दोहन (पृथ्वीमन्थन) किया। उसने कृषि और सस्य का दोहन किया। कृषि और सस्य से ही मनुष्य जीविका चलाते हैं, यह सर्वविदित तथ्य है।

सप्तऋषयः (सन्ततिश्च)—

सोदक्रामत्सा सप्त ऋषीनागच्छत्तां सप्त ऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ।
तस्या सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ।
तां बृहस्पतिरांगिरसोऽधोक्तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ।
ब्रह्म च तपश्च सप्त ऋषय उपजीवन्ति···।

अर्थ—वह चला और सप्तर्षियों के पास आया। सप्तर्षियों ने उसको बुलाया—हे ब्रह्मण्वती आओ। उसका सोम राजा वत्स था और छन्द ही पात्र था। बृहस्पति आंगिरस ने उसका दोहन किया और ब्रह्म (वेद) और तप का दोहन किया। ब्रह्म और तप पर ही सप्तर्षि और (उनकी सन्तति) जीवित रहती है।

देवजाति—

सोदक्रामत्सा देवानागच्छत्तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ।
तस्या इन्द्र वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ।
तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ।
तामूर्जां देवा उपजीवन्ति···।।

अर्थ—वह चली और वह देवों के पास आई, देवों ने उसका आह्वान किया हे ऊर्क् आओ ! उसका इन्द्र वत्स था, चमस पात्र था। उसको सविता देव ने दोहा, उस ऊर्जा (शक्ति) को दोहा, उसी ऊर्जा से देव जीवित रहते हैं।

गन्धर्वाप्सरसः—

सोदक्रामत्सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत्तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त 'पुण्यगन्ध' एहीति।
तस्याश्चित्र रथो सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्पुष्करपर्णं पात्रम्।
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्तां पुण्यमेव गन्धमधोक्।

अर्थ—वह चली और गन्धर्वों और अप्सराओं के पास आई। गन्धर्वों और अप्सराओं ने बुलाया—हे पुण्यगन्ध आओ। उसका सौर्यवर्चस (सूर्यवर्चागन्धर्व का पुत्र) चित्ररथ वत्स था और वसुरुचि सौर्यवर्चा (द्वितीय भ्राता) ने उसको दुहा। पुण्यगन्ध को ही उसने दोहा।

यक्षराक्षसाः (इतरजनाः)—

सोदक्रामत्सेतरजनानागच्छत्तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति।
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम्।
तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक्तां तिरोधामेवाधोक्।
तां तिरोधामितरजना उपजीवन्ति···।

अर्थ—वह चली और इतरजन (यक्षराक्षसों) के पास आई। इतरजनों ने उसे बुलाया हे 'तिरोधान' (माया—गुप्तमाया) आओ। उसका कुबेर वैश्रवण वत्स था और आमपात्र (कच्चा बर्तन) पात्र था। उसको रजतनाभि काबेरक (कुबेर पुत्र) ने दोहा, उसने तिरोधान (माया) को दोहा। यक्षराक्षस माया से ही अपना जीवन चलाते हैं।

नाग—

सोदक्रामत्सा सर्पानागच्छत्तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति।
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम्।
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्तां विषमेवाधोक्।

अर्थ—वह आई और सर्पों के पास गई, उसको सर्पों ने बुलाया। हे 'विषवती' आओ। विशाला का पुत्र वैशालेय तक्षक (नाग) उसका वत्स था। अलाबुपात्र था। ऐरावत धृतराष्ट्र नाग ने उसका दोहन किया और विष का ही दोहन किया।

वशा कलिगन्धर्वश्च—

वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिस्सह। (१०।१०।१३)

अर्थं—कलि गन्धर्वों के साथ वशा समुद्र में ठहर गई ।

द्वादश आदित्याः—

इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।
ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।। (११।२४।३६)

अर्थ—इन्द्र, बृहस्पति, सूर्य, वरुण, मित्र, विष्णु, भग, अंश, विवस्वान्, सविता, धाता, पूषा और त्वष्टा—हमारे पापों को दूर करें। यह हमारी प्रार्थना है ।

(टिप्पणी—बृहस्पति को छोड़कर शेष बारह अदिति के पुत्र द्वादश आदित्य देव थे)

———

[३]

तैत्तिरीयसंहितायामैतिह्यसन्दर्भाः

देवासुराः—

देवासुराः संयत्ता आसन्, ते देवा विजयमुपयन्तोऽग्नौ वायं वसु सन्यदधत···।
तं पूषाऽऽधत्त तेन पूषाऽऽर्ध्नोत्···।
तं त्वष्टाऽऽधत्त तेन त्वष्टाऽऽर्ध्नोत्···।
तं मनुराधत्त तेन मनुरार्ध्नोत्···।
तं धाताऽऽधत्त तेन धाताऽऽर्ध्नोत्। (१।५।१)

अर्थ—देव और असुर युद्ध के लिए सन्नद्ध थे। देवगण ने विजय प्राप्त करते हुए अग्नि में इच्छित धन (वाम वसु) को रखा।···(सर्वप्रथम) वाम वसु को पूषा ने अग्नि में रखा, इससे पूषा की समृद्धि हुई···। तदनन्तर, उसको त्वष्टा ने रखा, इससे उसकी वृद्धि हुई। तदनन्तर मनु ने अग्नि में वामनीय वसु को डाला, इससे उनकी समृद्धि हुई। तदनन्तर धाता ने वह रखा, इससे धाता की ऋद्धि हुई।

कसर्णीरः काद्रवेयः—

सर्पा वै जीर्यन्तोऽमन्यन्त, स एतं कसर्णीरः काद्रवेयो मन्त्रमपश्यत्, ततो वै जीर्णस्तनूपाघ्नत। (१।५।४।१)

अर्थ—सर्प जीर्ण (नष्ट) होते जा रहे थे, ऐसी अवस्था में कसर्णीर काद्रवेय ने इस मन्त्र को देखा। तब उन्होंने (नागों ने) अपने जीर्णतनु की रक्षा की।

परमेष्ठी प्रजापतिः—

परमेष्ठिनो वा एष यज्ञोऽग्र आसीत् तेन स परमां काष्ठामगच्छत्, तेन प्रजापतिं निरवासयत्, तेन प्रजापतिः परमां काष्ठामगच्छत्, तेनेन्द्रो निरवासयत्, तेनेन्द्रः परमां काष्ठामगच्छत्॥ (१।६।९।२)

अर्थ—यह यज्ञ पहिले परमेष्ठी (प्रजापति कश्यप) ने किया, जिससे वह

परमावस्था (श्रेष्ठतम अवस्था) को प्राप्त हुए, तदनन्तर इन्द्र ने यज्ञ किया, तब वह परम श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त हुआ।

असुरपराभवः–

यज्ञं वै देवा अदुह्नन्, यज्ञोऽसुरां अदुह्नत्,
ते असुरा यज्ञदुग्धा पराभवन् (४।१।७।१)

अर्थ—देवों ने यज्ञ को दुहा। (अर्थात् यजन किया) और यज्ञ ने असुरों को दुहा, वे यज्ञदुग्ध असुरगण पराजित हुए।

इडा–

पाकयज्ञेन मनुरश्राम्यत्, सेडा मनुमुपावर्तत, तां देवासुरा व्यह्वयन्त,
प्रतीचीं देवाः पराचीमसुराः, सा देवानुपावर्तत। (१।७।१।३)

अर्थ—पाकयज्ञ करने के पश्चात् मनु ने विश्राम किया, इडा मनु के पास आई। देवों और असुरों ने इडा को विविध प्रकार से बुलाया। पश्चिम में देवों ने और पूर्व में असुरों ने, तब वह इडा देवों के पास आई।

संश्रवस्तुमिञ्जौ –

संश्रवा ह सौवर्चनस्तुमिञ्जमौपोदितिमुवाच—यत्सत्रिणां
होताऽभूः। (१।७।२।१)

अर्थ—सुवर्चनस् का पुत्र संश्रव उपदिति के पुत्र से बोला—तुम सत्रियों के होता हो जाओ।

वामनो विष्णुः—

देवासुरा एषु लोकेष्वस्पर्धन्त, स एतं विष्णुर्वामनमश्यत्।
ततो वै स इमांल्लोकानभ्यजयत्। (२।१।३।१)

अर्थ—देवों और असुरों में विश्व विजय की होड़ थी। इस बात को विष्णु वामन ने देखा। उस विष्णु ने इन लोकों को जीत लिया।

यमः—

देवाश्च वै यमश्चास्मिंल्लोकेऽस्पर्धन्त।
स यमो देवानामिन्द्रियं वीर्यमयुवत···। (२।१।४।१)

अर्थ—देव और यम इस लोक में प्रतिस्पर्धा करने लगे। उस यम ने देवों के ऐन्द्रियक बल को अलग कर दिया।

बलस्य पशवः–

इन्द्रो बलस्य बिलमपौर्णोत्, स य उत्तमः पशुरासीत्,
तं पृष्ठं प्रति संगृह्योदाकखिदत्,
तं सहस्रं पशवोऽनूदायन्त्स उन्नतोऽभवत्। (२।१।५।१)

अर्थ—इन्द्र बल के बिल (गुहा) में गया, जो उत्तम पशु वहां था, उसको पीठ पीछे संग्रह करके'''। इन्द्र के पास सहस्र पशु आगये, वह इन्द्र उन्नत (समृद्ध) होगया।

इन्द्रः—

इन्द्रो वै सदृङ्देवताभिरासीत्, स न व्यावृत्तिमगच्छत्, स प्रजापतिमुपाधावत्। (२।२।८।५)

अर्थ—इन्द्र अन्य देवताओं के समान ही था। वह व्यावृति को प्राप्त नहीं हुआ। तब वह प्रजापति (पिता कश्यप) के पास दौड़ा गया।

देवाक्रमणम्—

देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा मिथो विप्रिया आसन्,
तेऽन्योऽन्यस्मै ज्यैष्ठायातिष्ठमानाश्चतुर्धा व्यक्रामन्नग्निर्वसुभिः
सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैः स इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावत्
(२।२।११।५)

अर्थ—देवासुरगण युद्ध के लिए तैयार थे। देवगण परस्पर एक दूसरे का अप्रिय सोचते थे। वे परस्पर किसी को बड़ा न मानकर, उन्होंने चार प्रकार से आक्रमण किया, वसु ने अग्नि के साथ, सोम ने रुद्रों के साथ, इन्द्र ने मरुतों के साथ, वरुण ने आदित्यों के साथ विप्रिय किया। तब इन्द्र प्रजापति के पास दौड़ा गया।

आनुजावर इन्द्रः—

इन्द्रो वै देवानामानुजावर आसीत्, स प्रजापतिमुपाधावत्।
(२।३।७।१)

अर्थ—इन्द्र देवों में छोटा (अनुज) था। वह प्रजापति के पास दौड़ा गया।

असुराणां विजयः—

देवासुराः संयता आसन्, तान् देवानसुरा अजयन्,
ते देवाः पराजिग्याना असुराणां वैश्यमुपायन्। (२।३।७।१)

अर्थ—देव और असुर युद्धार्थ सन्नद्ध थे। असुरों ने देवों को जीत लिया। पराजित देवगण असुरों के वश में होगये।

रजनः—

रजनो वै कौणेयः क्रतुजितं जानकिं चक्षुर्वन्यमयात्।
तस्मा एताभिष्टिं निरवपद्। तयैवास्मिन् चक्षुरधात्। (२।३।८।१)

अर्थ—कुणि के पुत्र रजन जानकि क्रतुजित् के चक्षु की कामना की। रजन ने यह इष्टि सम्पन्न की और उसके द्वारा क्रतुजित् की आंखें ठीक कर दीं।

देवानामसुराणां च पक्षधराः—

देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षांसि पिशाचास्तेऽन्यत-स्तेषां देवानामुत अल्पं लोहितमकुर्वन् तद्रक्षांसि रात्रीभिरसुम्नन्। तान्त्सुब्धान् मृतानभि व्यौच्छत्, ते देवा अविदुर्यो नोऽयं रक्षांसि वा इमं घ्नन्तीति। ते रक्षांस्युपामन्त्रयत, तान्यब्रुवन् वरं वृणामहे यदसुरान् जयाम तन्नः सहासदिति, ततो वै देवा असुरानजयन्। तेऽसुरान् जित्वा रक्षांस्यापानुदन्त तानि रक्षांस्यनृतमकर्त्तेति समन्तं देवान् पर्यविशन्॥ (२।४।१।१-८)

अर्थ—देव, मनुष्य और पितर एक ओर थे और असुर, राक्षस तथा पिशाच दूसरी ओर थे। वे (असुरगण) देवों को घायल कर देते थे। तब राक्षस उन घायल देवों को अलग करके मार देते थे। देवों को यह पता चल गया कि राक्षस (देवों को छिपकर) मार देते हैं। देवों ने राक्षसों को बुलाया कि हम वर वरण करें या सन्धि करें। जब हम असुरों को जीत लें तब आप लोग हमारा साथ दो। देवों ने असुरों को जीत लिया। तदनन्तर देवों ने राक्षसों को भी समाप्त कर दिया। तब राक्षसों ने कहा—देवो आप अनृत और दुष्कर्मकर्त्ता हो और वे ऐसा कहकर देवों में घुस गये।

वीर्यवत्तम इन्द्रः—

देवासुराः संयता आसन्। ते देवा अब्रुवन्, यो नो वीर्यवत्तमस्तमनु समारभामहा इति इन्द्रमब्रुवन् त्वं वै नो वीर्यवत्तमोऽसि।…

(२।४।२।१)

अर्थ—देव और असुर युद्धार्थ सन्नद्ध थे। देवों ने विचारा जो हममें से सर्वाधिक बलवान् हो, वही हमारा नेतृत्व करे। उन्होंने इन्द्र से कहा—तुम ही हम सबमें वीर्यवत्तम हो…।

सोमरोहिण्यौ राजयक्ष्मस्य जन्म च—

प्रजापतेस्त्रयस्त्रिंशद् दुहितर आसन्। ताः सोमाय राज्ञेऽददात्। तासां रोहिणीमुपैत् ता ईर्ष्यन्ती पुनरगच्छन्, ता अन्वैत, ता पुनरयाचत ता अस्मै न पुनरददात्। सोऽब्रवीदृतुमीष्व यथा समागच्छ उपैष्याम्यथ ते पुनर्दास्यामि इति। स ऋतुममीत् ता अस्मै पुनरददात्। तासां रोहिणीमेवोपैत्। तां यक्ष्म आर्च्छद् राजयक्ष्म आरदिति, तद् राजयक्ष्मस्य जन्म यत् पापीयानभवत् पापयक्ष्मस्य

यज्जायाभ्योऽविन्दत् । तज्जायेन्यस्य य एतमेतेषां यक्ष्माणां जन्म ।
(२।३।५।१-२)

अर्थ—प्रजापति (दक्ष-प्राचेतस) की तेतीस पुत्रियां थीं, जो राजा सोम को व्याही थी। सोम केवल रोहिणी के पास जाता था। शेष ईर्ष्या करती हुई सोम के पास आई। उन्होंने सोम से कामयाचना की। लेकिन सोम ने अन्य पत्नियों की इच्छा पूरी नहीं की। वह बोला—आप लोग ऋतुमती होओ, तब आना तब मैं आपकी इच्छा पूरी करूंगा। अन्य पत्नियां जब ऋतुमती हुई और सोम के पास आई, लेकिन सोम ने केवल रोहिणी का अनुगमन किया। अतः सोम को यक्ष्मा होगया। वह राजयक्ष्मा का मरीज होगया। इस प्रकार राजयक्ष्मा का जन्म हुआ। जो पापी होता है, वह पापयक्ष्मा पत्नियों (अधिक कामुकता) से प्राप्त करता है। जो पुरुष स्त्रैण (कामी) होता है, उसको यक्ष्मा घेर लेती है।

विश्वरूपस्त्वाष्ट्रः, इन्द्रेण ब्रह्महत्या—

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत् स्वस्रीयोऽसुराणां तस्य त्रीणि शीर्षाण्यासन्त्सोमपानं सुरापानमन्नादनं; स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमवदत्, परोक्षमसुरेभ्यः, सर्वस्मै वै प्रत्यक्षं भागं वदन्ति, यस्मा एवं परोक्षं तस्य भाग उदितस्तस्मादिन्द्रोऽबिभेदीदृङ् वै राष्ट्रं विपर्यावर्तयतीति तस्य वज्रमादाय शीर्षाण्यच्छिनद्यत् सोमपानमासीत् स कपिञ्जलोऽभवत् यत् सुरापानं स कलविङ्को यदन्नादनं स तित्तिरिस्तस्याञ्जलिना ब्रह्महत्यामुपागृह्णत् तां संवत्सरमबिभस्तं भूतान्यभ्यक्रोशन् ब्रह्महन्निति···॥
(२।५।१।१-२)

अर्थ—त्वष्टा का पुत्र देवों का पुरोहित था। वह असुरों की बहिन का पुत्र था। विश्वरूप के तीन शिर (और मुख) थे। एक मुख सोमपान करता था, दूसरा सुरापान और तीसरा मुख भोजन करता था। वह देवों से प्रत्यक्ष भाग मांगता था, असुरों से छिपकर मांगता था। वह सबको केवल प्रत्यक्ष भाग बताता था। जो उसका परोक्ष भाग था, वह भी प्रकट होगया। इन्द्र को भय हुआ कि यह विश्वरूप राष्ट्र की हानि कर रहा है, अतः इन्द्र ने विश्वरूप के तीनों शिर वज्र से काट दिये। जो सोमपान मुख था, वह कपिञ्जल (पक्षी) होगया, जो सुरापान-मुख था, वह कलविंक (पक्षी) बन गया। जो अनादमुख था वह तीतर बन गया।

इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी, वह एक वर्षपर्यन्त भय के मारे छिपा रहा क्योंकि सभी प्राणी कहते थे—'यह ब्रह्महत्यारा' है।

इन्द्रशत्रुः (वृत्रः त्वाष्ट्रः)—

त्वष्टा हतपुत्रो वीन्द्रं सोममाहरत्, तस्मिन्निन्द्र उपहवमैच्छत, तं नोपाह्वयत, पुत्रं मेऽवधीरिति, स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् तस्य यदत्यशिष्यत, तत् त्वष्टाऽऽहवनीयमुप प्रावर्तयत् स्वाहा 'इन्द्रशत्रुवर्धस्वेति'…। तस्मादस्येन्द्रशत्रुरभवत् स इषुमात्र-मिषुमात्रं विष्वङ्वर्धत स इमांल्लोकानवृणोद्यदिमांल्लोकानवृणोत् तद् वृत्रस्य वृत्रत्वं तस्मादिन्द्रोऽबिभेत्, स प्रजापतिमुपाधावच्छ-त्रुर्मेऽजनीति। तस्मै वज्रं सिक्त्वा प्रायच्छदेतेन जहीति…। इन्द्रो वृत्रमहन्। (२।५।३।१-६)

इन्द्रो वृत्रं हत्वा देवताभिश्चेन्द्रियेण च व्यार्ध्यत…इन्द्रस्य वृत्रं जघ्नुष इन्द्रियं वीर्यं पृथिवीमनु व्यारत…। (२।५।३।१–२)

इन्द्रो वृत्रं हत्वा परा परावतमगच्छत्। (२।५।३।६)

अर्थ—(विश्वरूप) पुत्र के मारे जाने पर त्वष्टा ने इन्द्र के लिए सोम नहीं दिया। इन्द्र चाहता था कि उसको बुलाया जाए, परन्तु त्वष्टा ने इन्द्र का आह्वान नहीं किया। क्योंकि वह जानता था कि इसने मेरे (ज्येष्ठ) पुत्र को मारा है। इन्द्र ने यज्ञपात्र के बहाने जबरदस्ती सोमपान किया, जो अवशिष्ट सोम बचा, उसको त्वष्टा ने आहवनीयाग्नि में डालकर कहा—स्वाहा—'इन्द्रशत्रु ही बढ़े, इसलिए इन्द्र का शत्रु (वृत्रासुर) उत्पन्न होगया। वह वृत्र शनैः शनैः बहुत बढ़ गया और उसने समस्त लोकों पर अधिकार कर लिया, समस्त लोकों को आवृत करने के कारण उसका नाम 'वृत्र' होगया। इन्द्र उससे डरने लगा, तब इन्द्र भागकर (कश्यप) के पास गया—हे पिताजी ! मेरा शत्रु उत्पन्न होगया है। प्रजापति ने वज्र का सिंचन (निर्माण) करके इन्द्र को दिया और कहा— इस वज्र से वृत्र को मारो।…इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया। वृत्र को मारने से इन्द्र का बलवीर्य नष्ट होगया और देवता विमुख होगये…।

वृत्र को मारनेवाले इन्द्र का बलवीर्य पृथिवी पर बिखर गया।

वृत्र को मारकर (ब्रह्महत्या के भय से) इन्द्र दूर भाग गया।

नृमेधः परुच्छेपश्च—

नृमेधश्च परुच्छेपश्च ब्रह्मवाद्यमवदेतामस्मिन् दारावाद्रेऽग्निं जनयाव यतरो नो ब्रह्मीयानिति नृमेधोऽभ्यवदत् स धूममजनयत्। परुच्छेपोऽभ्यवदत् सोऽग्निमजयदृष इत्यब्रवीत्। (२।५।८।३)

अर्थ—नृमेध और परुच्छेप (ऋषियों) ने ब्रह्मवाद्य बोला (और सोचा) हम दोनों में से आर्द्र लकड़ी में अग्नि उत्पन्न कर सके वही 'ब्रह्मीयान्' (अधिक वेद-

वेत्ता) है। नृमेध ने ब्रह्मवाद्य द्वारा धूम उत्पन्न किया और परुच्छेप ने अग्नि उत्पन्न की…।

बृहस्पतेरेवापरनाम 'अग्निरिति'—

अग्निर्देवानां दूत आसीदुशना काव्योऽसुराणां तौ प्रजापतिं प्रश्नमैताम्। (२।५।८।५)

अर्थ—अग्नि (अंगिरा=आंगिरस बृहस्पति) ही देवों का दूत (पुरोहित) था और उशना काव्य (शुक्राचार्य) असुरों के दूत थे। वे प्रश्न पूछने प्रजापति के पास गये।

मनुवचनं भेषजम्—

मनुरवदत् तद् भेषजम्। (२।२।१०।२)

अर्थ—मनु ने (मूल मानव धर्मशास्त्र में जो कुछ कहा है और जो अप्राप्य है) जो वचन कहे हैं वे भेषज (औषधितुल्य) हैं।

विष्णुना इन्द्रस्य साहाय्यम्—

इन्द्रोऽबिभेदपि त्वष्टा तस्मै वज्रमसिञ्चत्…।
तमुद्यन्तु नाकशनोदथ वै विष्णुरन्या देवताऽऽसीत्।
सोऽब्रवीद्विष्णवेहीदमा हरिष्यावो येनायमिदमिदमिति स विष्णुस्त्रेधाऽऽत्मानं विन्यधत्त पृथिव्यां तृतीयमन्तरिक्षे, तृतीयं दिवि, तृतीयमभिपर्यावर्ताद् ह बिभेद्यत् तेनेन्द्रो वज्रमुदयच्छद् विष्णवनुस्थितः सोऽब्रवीन्मो मे प्रहार्येनाहमिदिमस्मि तत्ते प्रदास्यामि॥ (२।४।१२।३-५)

अर्थ—इन्द्र डर रहा था, यद्यपि त्वष्टा ने उसके लिए वज्र का निर्माण किया। इन्द्र वज्र को चलाने में समर्थ नहीं हुआ, तब विष्णु दूसरा देवता था, (जो इन्द्र के साथ खड़ा था)। (इन्द्र ने) विष्णु से कहा—इस (वज्र) को हरण करें (उठायें)। विष्णु ने तीन बार अपने को रखा—पृथिवी में, अन्तरिक्ष में और आकाश में… तब इन्द्र ने वज्र को ग्रहण किया, विष्णु ने कहा—वज्र को इधर मत चलाओ, मैं यहां हूं यह मैं तुम्हें ही दूंगा।

केशी दार्भ्यः—केशी सात्यकामिश्च—

केशिनं ह दार्भ्यं केशी सात्यकामिरुवाच। (२।६।२।३)

अर्थ—केशी दार्भ्य से केशी सात्यकामि बोला।

इडा—

मनुः पृथिव्या यज्ञियमैच्छत् तावब्रूतां मित्रावरुणौ गौरेवाऽऽवामीश्वरौ तौ ततो गां समैरयताम् वसिष्ठ इडामुपह्वयते। मानवीत्याह—मनुर्ह्येतामग्रेऽपश्यत्। (२।६।७।)

अर्थ—मनु पृथिवी पर यज्ञ करना चाहते थे, मित्रावरुण ने (मनु से) कहा—गाय ही हमारा ईश्वर (सम्पत्ति) है। तब मित्र और वरुण ने गाय को प्रेरित किया।···वसिष्ठ ने इडा को बुलाया। मानवी इला बोली। मनु ने इन दोनों (मित्र और वरुण) को आगे देखा।

रुद्रेण यज्ञवेधनम्—

देवा वै यज्ञाद् रुद्रयन्तरायन्त्स यज्ञमविध्यत्। (२।६।८।३)

अर्थ—देवों ने यज्ञ में रुद्र का बहिष्कार किया, उसने यज्ञ का विध्वंस किया।

अदन्तकः पूषा—

पूषा प्राश्य दतोऽरुणत् तस्माद् पूषा प्रपिष्टभागकोऽदन्तकः। (२।६।८।५)

अर्थ—पूषा के खाकर दांत टूट गये, इसलिए पूषा को यज्ञ में पिष्ट भाग मिलता है, क्योंकि पूषा बिना दांत वाला है।

शंयुबार्हस्पत्यः—

देवा वै यज्ञस्य स्वगाकर्त्तारं नाविन्दन्, ते शंयुबार्हस्पत्यमब्रुवन्। (२।६।१०।१)

अर्थ—देवों को यज्ञ के स्वगाकर्त्ता की उपलब्धि नहीं हुई। उन्होंने बृहस्पति के पुत्र शंयु को बोला।

(वह स्वगाकर्त्ता=शान्तिकारक बनाया)

विश्वामित्रजमदग्नी वसिष्ठश्च—

विश्वामित्रजमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेतां स एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्। तेन वै स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्क्तः। (३।१।७।३)

अर्थ—विश्वामित्र और जमदग्नि वसिष्ठ (वासिष्ठ) से स्पर्धा करते थे। जमदग्नि ने विहव्य मन्त्र का दर्शन किया, जिससे ऋषि ने वसिष्ठ के तेजोबल को काटा।

नाभानेदिष्ठो मानवः—

मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत्। स नाभानेदिष्ठं ब्रह्मचर्यं वसन्तं निरभजत् स आगच्छत्। सोऽब्रवीत्—कथा का निरभागिति। न त्वा निरभक्षमित्यब्रवीदङ्गिरस इमे सत्रमासते। ते सुवर्गं लोकं न प्रजानन्ति, तेभ्यं इदं ब्राह्मणं ब्रूहि। ते सुवर्गं लोकं यन्तो य एषां पशवस्तांस्ते दास्यन्तीति। तदेभ्योऽब्रवीत्—ते सुवर्गं लोकं यन्तो य एषां पशव आसन् तानस्मा अददुस्तं पशुभिश्चरन्तं यज्ञवास्तौ

रुद्र आगच्छत् । सोऽब्रवीन्मम वा इमे पशव इत्यदुर्वै मह्यमिमा-
नित्यब्रवीन्न वै तस्य त ईशत इत्यब्रवीद्यद्यज्ञवास्तौ हीयते मम
वै तदिति, तस्माद्यज्ञवास्तु नाभ्यवेत्यं सोऽब्रवीद्यज्ञे माऽऽभजाथ ते
पशून् नाभिमंस्य इति । तस्मा एतं मन्थिनः संस्रावमजुहोत् ततो
वै तस्य रुद्रः पशून् नाभ्यमन्यत । यत्रैतमेव विद्वान् मन्थिनः
संस्रावं जुहोति न तत्र रुद्रः पशूनभिमन्यते ।। (३।१।९।)

अर्थ—मनु (वैवस्वत) ने अपने पुत्रों को दायभाग दिया । दायविभाजन के समय (मनु का कनिष्ठपुत्र) नाभानेदिष्ठ ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययन) में रत था । (ब्रह्मचर्य की समाप्ति पर) नाभानेदिष्ठ (पिता के पास) आया । हे पिताजी ! आपने किस (भाई) को क्या बांटा । (मनु ने उत्तर दिया)—(हे पुत्र) मैंने तुमको कोई भाग नहीं दिया । (परन्तु आङ्गिरस ऋषिगण सत्र का अनुष्ठान कर रहे हैं, वे स्वर्गलोक को नहीं जानते । तुम जाकर उनको यह ब्राह्मण (वेदव्याख्या) सुनाओ । वे स्वर्गलोक में जाते हुए तुमको उनके जो पशु हैं, वे तुम्हें दे देंगे । (तदुपरान्त नाभानेदिष्ठ ने वहां आंगिरसों के पास जाकर) ब्राह्मण सुनाया और उनके जो पशु (तथा सम्पत्ति थी) वह आंगिरसों ने स्वर्गलोक जाते समय उसे दे दी । पशुओं के साथ उसको देखकर यज्ञशाला में रुद्रदेव आये । नाभानेदिष्ठ ने रुद्र से कहा—हे रुद्रदेव ! ये मेरे ही पशु हैं, इनको मुझे (आंगिरसों ने) दिया है । (रुद्र ने कहा)—वे आंगिरस ही इन पशुओं के स्वामी हैं । जो पशु यज्ञशाला को छोड़ देगा वही मेरा है । तदनन्तर यज्ञशाला में कोई पशु नहीं आया । नाभानेदिष्ठ ने कहा—यज्ञशाला में मुझे प्राप्त करो, पशुओं की अवमानना मत करो । तब उसने मन्थी संस्राव यज्ञ किया, तब रुद्र ने उसके पशुओं को नहीं सताया, अतः जो वेदज्ञ मन्थी संस्राव करता है उसके पशु रुद्र के शिकार नहीं होते ।

यज्ञसृष्टिः—

प्रजापतिर्देवासुरानसृजत तदनु यज्ञोऽसृज्यत । यज्ञं छन्दांसि ते
विश्वञ्चो व्यक्रामन्त्सोऽसुराननु यज्ञोऽपाक्रामद्यज्ञं छन्दांसि ते देवा
अमन्यन्तामी वा इदमभूवन्, यद्वयं स्म इति ते प्रजापतिमुपाधा-
वन्त्सोऽब्रवीत् । प्रजापतिश्छन्दसां वीर्यमादाय तद्वः प्रदास्यामि ।
स छन्दसां वीर्यमादाय तदेभ्यः प्रायच्छत् । तदनु छन्दांस्यपाक्रमन् ।
छन्दांसि यज्ञस्ततो देवा अभवन् पराऽसुराः (३।३।७।)

अर्थ—प्रजापति ने देवों और असुरों की सृष्टि करने के पश्चात् यज्ञ का आविष्कार किया । छन्दों ने यज्ञ को चारों ओर से आक्रमण किया, यज्ञ ने असुरों का अतिक्रमण किया—असुरों को छोड़ दिया । देवों ने माना छन्द ही यज्ञ है । तब

देवगण प्रजापति के पास दौड़े गये। प्रजापति ने कहा—मैं छन्दों के बलवीर्य (पराक्रम) को लेकर तुमको दे दूंगा। और प्रजापति ने छन्दों का तेज लेकर देवों को दे दिया। तब छन्द भाग गये। छन्द ही यज्ञ है, ऐसा समझकर देव जीत गये और असुर पराजित हुए।

वसिष्ठः—

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्। तं वसिष्ठः प्रत्यक्षमपश्यत्। सोऽब्रवीद् ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि। यथा त्वत्पुरोहिताः प्रजाः प्रजनयिष्यन्तेऽथ मेतरेभ्य ऋषिभ्यो मा प्रवोच इति। तस्मा एतान् स्तोमान् भागानब्रवीत्। ततो वसिष्ठपुरोहिताः प्रजाः प्राजायन्त। तस्माद्वासिष्ठो ब्रह्मा कार्यः॥ (३।५।२।१)

अर्थ—(दूसरे) ऋषियों ने इन्द्र को प्रत्यक्ष नहीं देखा। केवल वसिष्ठ ने इन्द्र को प्रत्यक्ष देखा। उसने वसिष्ठ से कहा—मैं तुम्हारे लिये ब्राह्मण (वेद व्याख्यान) कहूंगा।

क्योंकि, आपके पौरोहित्य में प्रजा प्रजाओं (और यज्ञों) की सृष्टि करेगी। इसको आप दूसरे ऋषियों को न बतायें। इस प्रकार इन्द्र ने स्तोमों (ऋचाओं) का व्याख्यान किया। इसलिये वसिष्ठ पुरोहित थे ऐसी प्रजा उत्पन्न हुई। इसलिए वसिष्ठ वंशज को ही यज्ञ में पुरोहित बनाना चाहिए।

अधिपतयः (इन्द्राः)=प्रजाध्यक्षा वा—

प्रजापतिरधिपतिरासीत्···सप्तर्षयीऽसृजन्त। धाताऽधिपतिरासीत् ···आदित्यो अधिपतिरासीत् क्षत्रसृज्यन्त इन्द्रोऽधिपतिरासीत्··· ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् वरुणोऽधिपतिरासीत्·· पूषाऽधिपतिरासीत् वायुरधिपतिरासीत्। प्रजापतिः परमेष्ठी अधिपतिरासीत्॥ (४।३।१०।)

अर्थ—प्रजापति (दक्ष) अधिपति था। सप्तर्षियों की सृष्टि हुई। धाता अधिपति था। आदित्य अधिपति था। ब्रह्मणस्पति (बृहस्पति आंगिरस) अधिपति था।···वरुण अधिपति था···। पूषा अधिपति था। वायु अधिपति था। ···प्रजापति परमेष्ठी (कश्यप) अधिपति था।

शुनःशेपः—

शुनःशेपमाजीगर्तिं वरुणोऽगृह्णात्। स एतां वारुणीमपश्यत्। (५।२।१।३)

अर्थ—अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को वरुणदेव ने पकड़ा, तब उससे इस वारुणी ऋचा का दर्शन किया।

वत्सप्री:—

वत्सप्रीर्भालान्दनोऽग्नेः प्रियं धामावरुन्धः । (५।२।१।६) ।

अर्थ—भलन्दन का पुत्र वत्सप्री (वत्सप्रि) अग्नि के प्रिय धाम को गया ।

विश्वामित्र–

विश्वामित्रोऽग्नेः प्रियं धामावरुन्ध । (५।२।३।४)

अर्थ— विश्वामित्र अग्नि के प्रिय धाम को गया ।

समकालिका ऋषयः—

याः प्राचीस्ताभिर्वसिष्ठ आर्ध्नोद्या दक्षिणा ताभिर्भरद्वाजो याः प्रतीचीस्ताभिर्विश्वामित्रो या उदीचीस्ताभिर्जमदग्निर्या ऊर्ध्वास्ताभिर्विश्वकर्मा ॥ (५।२।१०।५)

अर्थ—प्राची दिशा के द्वारा वसिष्ठ समृद्ध हुए, दक्षिण दिशा के द्वारा भरद्वाज समृद्ध हुए, पश्चिम दिशा द्वारा विश्वामित्र और उत्तरदिशा द्वारा जमदग्नि तथा ऊर्ध्वदिशा द्वारा विश्वकर्मा समृद्ध हुए ।

कनीयांसः देवाः—

देवासुराः संयत्ता आसन् । कनीयांसो देवा भूयांसोऽसुराः ।

(५।३।११।१)

अर्थ—देव और असुर युद्ध के लिये सन्नद्ध थे । देवता छोटे (और थोड़े थे) तथा असुर अधिक (तथा बड़े) थे ।

सहस्रपुत्रवन्तो राजानः–

पर आट्णारः, कक्षीवां औशिजो वीतहव्यः श्रायसः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः प्रजाकामा अचिन्वत ततो वै ते सहस्रं सहस्रं पुत्रानविन्दत । (५।६।५।३)

अर्थ—अट्णार (हिरण्यनाभकौसल्य) का पुत्र सम्राट् पर, उशिज् का पुत्र कक्षीवान् ऋषि, श्रयस् का पुत्र वीतहव्य (हैहय), पुरुकुत्स (ऐक्ष्वाक) पुत्र त्रसदस्यु ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से अभिचयन (यज्ञ) किया, तदनन्तर उनके एक-एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए ।

अथर्वा (=अग्निः=अङ्गिराः)–

प्रजापतिर्वा अथर्वाऽग्निरेव दध्यङ्ङाथर्वणस्तस्येष्टका अस्थान्येतं ह वाव । (५।६।६।३)

अर्थ—प्रजापति अथर्वा अथवा अग्नि (अंगिरा) अथवा उसके पुत्र दध्यङ् आथर्वण (दधीचि) की अस्थियां ही इष्टकायें हैं…॥

कद्रूसुपर्ण्यौ—

कद्रूर्वै सुपर्णी चात्मरूपयोरस्पर्धेताम् । सा कद्रूः सुपर्णीमजयत् । साऽब्रवीत् । तृतीयस्यामितो दिवि सोमस्तमाहर । तेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणीष्वेतीयं वं कद्रूरसौ सुपर्णी छन्दांसि सौपर्णेयाः । साऽब्रवीदस्मै वै पितरौ पुत्रान् बिभृतस्तृतीयस्यामितो दिवि··· । गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती । सुपर्णः सोममाहरत् तं सोममाह्रियमाणं गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात् । स तिस्रो रात्रीः परिमुषितोऽवसत् । ते देवा अब्रुवन्त्स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः । स्त्रिया निष्क्रीणामेति । ते वाचं स्त्रियमेकहायनीं कृत्वा तया निरक्रीन्त्सा रोहिद् रूपं कृत्वा गन्धर्वेभ्योऽपाक्रम्यातिष्ठत् तद्रोहितो जन्म गन्धर्वा अवदन्नगायन् देवाः । सा देवान् गायत उपावर्तत; तस्माद् गायन्तं स्त्रियः कामयन्ते । (६।१।६)

अर्थ—(नागमाता) कद्रू और सुपर्णी (विनता) आत्मरूप (अभिमानवश) में होड़ करने लगी (शर्त लगाने लगी) । कद्रू ने (छल से) सुपर्णी को जीत लिया । वह (कद्रू) बोली—तृतीय दिव्यलोक (देवधाम हिमालय त्रिविष्टिप तिब्बत) में सोम (अमृतघर) है उसको (तुम्हारा पुत्र गरुड़) लाये । तुम अपने को बेच दो (मेरी दासी हो) । छन्द ही सौपर्णेय (गरुड़ादि) हैं । वह (सुपर्णी-विनता) बोली—(गरुड़ से)—माता-पिता-पुत्रों का भरण-पोषण करते (और पुत्र बड़े होकर माता-पिता की सेवा करते हैं ।) दिव्य तृतीयलोक में अमृतघर है । गायत्री छन्दों में सबसे छोटी है ।···सुपर्ण (गरुड़) ने सोम (घर) का अपहरण कर लिया । गरुड़ द्वारा सोम अपहरण करते हुए गन्धर्व विश्वावसु ने उस सोमघर को चुराकर छिपा दिया । सोम छिपाये जाने पर गरुड़ तीन दिन तक (गन्धर्वलोक में) वहीं रहा । देवों ने कहा—गन्धर्व स्त्री-काम होते हैं । उन्हें स्त्री द्वारा खरीदें । उन्होंने वाक् को एक वर्ष की स्त्री बनाकर गन्धर्वों से सौदा किया । वह रोहित रूप (घोड़ी) बनाकर भाग गई, इस प्रकार रोहित (घोड़ी) का जन्म हुआ । गन्धर्वों ने कहा—हे देवो गाना गाओ । वह गाना सुनकर खड़ी रही । इसलिये स्त्री गाना सुनना या गाते हुए पुरुष को चाहती है ।

आसुर्यः त्रिपुरः रुद्रश्च—

तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन्नयस्मय्यवमाऽथ रजताऽथ हरिणी ता देवा जेतुं नाशक्नुवन् । ता उपसदैवा जिगीषन् । तस्मादाहुर्यश्चैव वेद यश्च नोपसदा वै महापुरं जयन्तीति । तमिषुं समस्कुर्वतऽग्निमनीकं सोमं शल्यं विष्णुः तेजनं तेऽब्रुवन् क इमाम—

सिष्यतीति; रुद्र इत्यब्रुवन् । रुद्रो वै क्रूरः सोऽस्यत्विति । सोऽब्रवीद् वरं वृणा अहमेव पशूनामधिपतिरसानीति । तस्माद् रुद्रः पशूनामधिपतिस्तां रुद्रोऽवास्रजत् । स तिस्रः पुरो भित्वैभ्यो लोकेभ्योऽसुरान् प्राणुदत् ॥ (६।२।३।१-२)

अर्थ—असुरों के तीन पुर थे। सबसे नीचे आयसपुर (लौहनगर) था, (मध्य-अन्तरिक्ष में) चांदी का नगर और (सबसे ऊपर आकाश में) सुवर्ण का नगर था। देवगण उन तीनों नगरों को जीतने में असमर्थ रहे। उन्होंने उपसदों (छिन्द्रों) द्वारा जीतना चाहा। इसलिये कहा जाता है, जो जानता है वह उपसदों से नगर नहीं जीतता। बाण को संस्कृत (तेज) करते हुए अग्नि को अनीक (सेना), सोम को शल्य और विष्णु को तेजन किया। वे बोले—कौन बाण छोड़ेगा। रुद्र छोड़ेगा वे बोले। रुद्र क्रूर है, अतः वही (बाण) फेंकेगा। वह (रुद्र) बोला—मैं (पहिले) वर मांगता हूं। मैं पशुओं का अधिपति (पशुपति) बनूंगा। इसलिए रुद्र पशुओं का अधिपति है। तब रुद्र ने (त्रिपुरनाश के लिये) बाण छोड़ दिया। बाण ने त्रिपुरों (=तीनों नगरों) को तोड़कर उन लोकों से असुरों का नाश कर दिया।

असुराणां वित्तम् सलावृकीरूपी इन्द्रश्च—

वराहोऽयं वाममोषः सप्तानां गिरीणां परस्ताद्वित्तं वेद्यमसुराणां बिभर्ति। तं जहि। यदि दुर्गे हन्ताऽसीति स दर्भपुञ्जीलमुद्वृत्य सप्तगिरीन् भित्त्वा तमहन्त्सोऽब्रवीद् दुर्गाद्वा आहर्ताऽवोचथा एतमाहरेति। तमेभ्यो यज्ञ एव यज्ञमाहरत् यत् तद्वित्तं वेद्यमसुराणामविन्दत ।··स इन्द्रः सलावृकीरूपं कृत्वेमां त्रिः सर्वतः पर्यक्रामत्। तदिममविन्दत।

अर्थ—वाममोष वराह सात पहाड़ों के आगे असुरों के धन को धारण करता है। उसको मारो। यदि दुर्ग में मारोगे तो वह दर्भपुञ्जील को तोड़कर सात पहाड़ों को भेदकर (भाग जायेगा)। उसको मारा (पीटा), वह बोला—दुर्ग से आहरण करूंगा, वह बोला—इस धन को लाओ। यज्ञ ने ही यज्ञ का अपहरण किया। तब असुरों के वेद्य वित्त को प्राप्त किया। इन्द्र ने सलावृकी (आसुरी) का रूप रखकर वहां तीन चक्कर लगाये। और उस वित्त (धन) को प्राप्त किया।

यतयः—

इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्। (६।२।७।५)

अर्थ—इन्द्र ने (असुर) यतियों को सालावृक (असुरों) के हवाले कर दिया।

ऐन्द्रव्याकरणम्–

वाग्वै पराच्यव्याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्विति·· तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते। (६।४।७)

अर्थ—पहिले वाली (भाषा-संस्कृत) पराची (अनुपयुक्त) और अव्याकृत (संस्कारहीन) थी। तब देवों ने कहा—इस देवभाषा को सुधारो (व्याकरणसम्मत) शुद्ध=संस्कृत करो। इन्द्र ने उसको बीच में से तोड़कर (विश्लेषण करके) उसका व्याकरण बनाया। तब से यह भाषा (संस्कृत) व्याकरणसम्मत बोली जाती है।

बृहस्पतिः; शण्डामर्कौ च—

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीच्छण्डामर्कावसुराणां; ब्रह्मण्वन्तो देवा आसन्। ब्रह्मण्वन्तोऽसुरास्तेऽन्योऽन्यं नाशक्नुवन्नभिभवितुं ते देवाः शण्डामर्कावुपामन्त्रयन्त तावब्रूतां वरं वृणावहै। ग्रहावेव नावत्रापि गृह्येतामिति। ताभ्यामेतौ शुक्रामन्थिनावगृह्णन्। ततो देवा अभवन् पराऽसुराः · । (६।४।१०।१)

अर्थ—बृहस्पति देवों के पुरोहित थे और शण्ड और मर्क असुरों के पुरोहित थे। देव और असुर दोनों ही ब्रह्मण्वन्त थे। इसलिये वे एक दूसरे को नहीं जीत सके। तब देवों ने शण्ड और मर्क को बुलाया। वे दोनों असुरपुरोहित बोले—हम वरदान चाहेंगे। हमारे भी सोमग्रह होएं। उनके लिए शुक्रामन्थी (दो सोमग्रह-प्याले) ग्रहण किये गये। अतः देवगण जीत गये और असुर पराजित होगये।

महेन्द्रः—

इन्द्रो वृत्रं हत्वा परां परावतमगच्छदपराधमिति मन्यमानः स हरितोऽभवत्। इन्द्रो वृत्रमहन्। तं देवा अब्रुवन् महान् वा अयमभूद्यो वृत्रमवधीदिति तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम्। (६।५।५।)

अर्थ—इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा। वह इस कर्म को अपराध मानकर दूर भाग गया (और छिपता रहा)। इन्द्र ने वृत्र को मार दिया, अतः देवों ने कहा—इन्द्र महान् (देव और वीर) है क्योंकि इसने (दुर्धर्ष महावीर) वृत्रासुर को मारा है। यही इन्द्र की महानता है—यह उसका महेन्द्रत्व है। (तब से इन्द्र का एक विशेषण महेन्द्र भी हुआ।)

अदितिः साध्याः देवास्तथा विवस्वानादित्य जन्म—

अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् । तस्या उच्छेषणमददुस्तत् प्राश्नात् सा रेतोऽधत्त । तस्यै चत्वार आदित्या अजायन्त । सा द्वितीयमपचत् । साऽमन्यतोच्छेषणान्म इमेऽज्ञत यदग्रे प्राशिष्यामीतो मे वसीयांसो जनिष्यन्त इति सा अग्रे प्राश्नात् । सा रेतोऽधत्त । तस्यै व्यृद्धमाण्डमजायत साऽऽदित्येभ्य एव तृतीयमपचद् भोगाय म इदं श्रान्तमस्त्विवति । तेऽब्रुवन् वरं वृणामहै । योऽतो जायता अस्माकं स एकोऽसद्योऽस्य प्रजाया-मृध्याता अस्माकं भोगाय भवादिति । ततो विवस्वानादित्योऽ-जायत । तस्य वा इयं प्रजा यन्मनुष्याः…। (६।५।६।१-२) ।

अर्थ— पुत्र की इच्छा से अदिति ने साध्य (नारायण) देवों के लिये ब्रह्मौदन पकाया । (स्वयं देवों ने खाने के पश्चात्) अवशिष्ट भोजन अदिति के लिये दिया । वह भोजन अदिति ने खाया, जिससे उसने गर्भधारण किया, तब उसने चार आदित्य पुत्रों (वरुण आदि) को जन्म दिया । पुनः उसने दुबारा ब्रह्मौदन पकाया । उसने समझा कि अवशिष्ट भोजन खाने से ये ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए हैं । यदि मैं पहिले भोजन खाऊं तो मेरे समृद्ध पुत्र उत्पन्न होंगे । इसलिए उसने (साध्यों से पूर्व) भोजन खाया । तब उसने गर्भधारण किया, तब उसके असमृद्ध (मृताण्ड)— गर्भ उत्पन्न हुआ । अदिति ने (अपने पुत्रों) आदित्यों के लिए ही भोजन पकाया । यह पकाया पवित्र भोजन मेरे लिए हो । वे आदित्य बोले—हम वर मांगते हैं । जो अब आपका पुत्र उत्पन्न हो, वह हमारी प्रजाओं (आदित्यों) में एक ही देर से उत्पन्न हो और हमको समृद्ध करे । तदनन्तर (एक ही पुत्र) विवस्वान् आदित्य (सूर्य) उत्पन्न हुआ, जिसकी सन्तान मनुष्य (वैवस्वतमनु से) हुए ।

त्वष्टा—

देवा वै त्वष्टारमजिघांसन्त्स पत्नीः प्रापद्यत । तं न प्रति प्रायच्छन् । तस्मादपि वध्यं प्रपन्नं न प्रति प्रयच्छन्ति ।

(६।५।८।४-५)

इन्द्रस्त्वष्टुः सोममभीषहाऽपिबत् । स विष्वङ् व्यार्च्छत् स आत्मन्-न्नारमणं नाविन्दत । (६।५।११।३)

अर्थ—देवों ने (पुरोहित) त्वष्टा को मारना चाहा । वह यजमानपत्नियों की शरण में गया । पत्नियों ने त्वष्टा को देवों के प्रति समर्पित नहीं किया । इसलिए शरणागत (भले ही) वध्य हो उसे समर्पित नहीं करना चाहिये ।

शत्रुघाती इन्द्र ने त्वष्टा का सोम (जबरदस्ती) पी लिया । वह चारों ओर भागा भागा घूमा परन्तु उसको कहीं शान्ति या आराम नहीं मिला ।

इन्द्रद्वारा मनुयाजनम्—

इन्द्रः पत्निया मनुमयाजयत् ...। तया मनुरार्ध्नोत्। (६।६।६।१)

अर्थ—इन्द्र ने मनुपत्नी के साथ वैवस्वत मनु का यज्ञ कराया (तब तक इन्द्र ब्राह्मण ऋषि पुरोहित था—पुरोहित (ऋत्विक्) के रूप में सौ यज्ञ कराने के कारण ही उसका नाम पड़ा 'शतक्रतु') उस यज्ञ में मनु की समृद्धि हुई।

हविष्मान् हविष्कृत् च (आङ्गिरसौ)—

अङ्गिरसो वै सत्रमासत तेषां हविष्मांश्च हविष्कृच्चाहीयतो तावकामयेतां सुवर्गं लोकमियावेति तावेतं द्विरात्रमपश्यतां तमाहरतां तेनायजेतां ततो वै तौ स्वर्गं लोकमैताम्। (७।१।४।१)

अर्थ—अंगिरा के वंशज ऋषि यज्ञ कर रहे थे। उनमें हविष्मान् और हविष्कृत् (संज्ञक ऋषियों) की उन्नति नहीं हो रही थी। उन्होंने इच्छा की हम स्वर्गलोक जायें (अर्थात् उन्नति करें।) उन्होंने द्विरात्रक्रतु का दर्शन किया (उसकी विधि जानी) उस द्विरात्रक्रतु का अनुष्ठान किया, तदनन्तर वे स्वर्गलोक गये। (समृद्धि को प्राप्त हुए)।

सोमेन्द्रयमाः—

सोमो वै सहस्रमविन्दत्। तमिन्द्रोऽन्वविन्दत्। तौ यमौ न्यागच्छत्। तावब्रवीदस्तु मेऽत्रापि। (७।१।५।१)

अर्थ—सोम ने सहस्र (रुकममुद्रायें प्राप्त की। इन्द्र को यह पता चल गया। वह यमों के पास आया। उनसे बोला—मेरा (हिस्सा) भी इसमें हो।

चत्वार आत्रेयाः (सुहोतृसूद्गातृस्वध्वर्युसुसभेयाः—

अत्रिरददादौर्वाय प्रजां पुत्रकामाय। स रिरिचानोऽमन्यत निर्वीर्यः शिथिलो यातयामा स एतं चतूरात्रमपश्यत्। तमाहरत। तेनायजत। ततो वै तस्य चत्वारो वीरा आजायन्त सुहोता सूद्गाता स्वध्वर्युः सुसभेयः। (७।१।८।१)

अर्थ—अत्रि ने पुत्र की इच्छावाले और्व (भार्गव) को अपनी सन्तान दे दी। तब अत्रि ने अपने को खाली (अकेला) पाकर निर्वीर्य, शिथिल और निरुपयोगी समझा। तदनन्तर उसने चतूरात्रक्रतु का दर्शन किया। उस क्रतु का अनुष्ठान किया। तब अत्रि के चार वीर पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम या विशेषण थे)—सुहोता, सूद्गाता, स्वध्वर्यु और सुसभेय।

जमदग्निः—

जमदग्निः पुष्टिकामश्चतूरात्रेणायजत। स एतान् पोषां अपुष्यत्। तस्मात् पलितौ जामदग्नियौ न संजानाते। (७।१।६।१)

अर्थ—पुष्टिकाम जमदग्नि ने चतूरात्रक्रतु किया। उसने पुष्टि प्राप्त की। इसलिए जमदग्नि वृद्धावस्था को नहीं जानते हैं।

आदित्याः—

आदित्या अकामन्तोभयोर्लोकयो ऋध्नुयामेति।

अर्थ—आदित्यों (अदितिपुत्रों—देवों) ने इच्छा की कि दोनों लोकों में समृद्धि प्राप्त करें।

इन्द्रः—

इन्द्रो वै सदृङ् देवताभिरासीत्। (७।३।६।१)

इन्द्रो वै शिथिल इवाप्रतिष्ठित आसीत्। सोऽसुरेभ्योऽबिभेत्। स प्रजापतिमुपाधावत्। तस्मा एतं पञ्चदशरात्रं वज्रं प्रायच्छत्। तेनासुरान् पराभाव्य विजित्य श्रियमगच्छत्। (७।३।७।१)

अर्थ—इन्द्र अन्य देवों के सदृश (सामान्य) ही था।...

इन्द्र शिथिल (तेजोहीन) और अप्रतिष्ठित था। वह असुरों से डरता रहता था। वह प्रजापति (पिता कश्यप) के पास भागा गया। उसने पञ्चदशरात्ररूप वज्र उसको दिया, जिससे असुरों को पराजित कर श्रीः को प्राप्त हुआ।

देवा एव मनुष्याः—

यथा वै मनुष्या एवं देवा अग्र आसन्। (७।४।२।१)

अर्थ—पहिले देवगण मनुष्यों के सदृश ही थे।

वसिष्ठः सौदासाश्च—

वसिष्ठो हतपुत्रोऽकामयत विन्देय प्रजामभि सौदासान् भवेयमिति।

...ततो वै सोऽविन्दत प्रजामभि सौदासानभवत्। (७।४।७।१)

अर्थ—(कल्माषपाद आदि सौदास—ऐक्ष्वाकों द्वारा) पुत्रों के मारे जाने पर वसिष्ठ (वासिष्ठ) ऋषि ने इच्छा की कि ऐसी सन्तान हो जो सौदास राजाओं को पराजित करे...। तदनन्तर उसने (ऐसी प्रजा) सन्तति (पराशररूप में) प्राप्त की जिसने सौदासों को पराजित किया।

विभिन्नेषु लोकेषु अश्वस्य नामानि—

हयो देवानवहदर्वाऽसुरान् वाजी गन्धर्वानश्वो मनुष्यान्।

(७।५।२५।२)

अर्थ—(एक ऐतिहासिक तथ्य है कि एक ही भाषा के विभिन्न रूप विभिन्न देशों में प्रचलित हुए)—देवों में उसे हय कहते थे, असुर उसे अर्वन् कहते थे, गन्धर्व वाजी कहते थे और मनुष्य (भारतवासी) अश्व कहते थे।

———

काठकसंहितायामैतिह्यसन्दर्भाः

प्रैयमेधाः—

प्रैयमेधा वै नाम ब्राह्मणा आसंस्ते सर्वमविदुः । (६।६।१०)

अर्थ—प्रियमेध (ऋषि) के वंशज प्रैयमेधा ब्राह्मण थे, जो सब कुछ (यज्ञ सम्बन्धी) जानते थे ।

कालकाञ्जाः—

कालाकाञ्जा वै नामासुरा आसन् । (८।१।१)

अर्थ—कालकाञ्ज नाम के (प्रसिद्ध) असुर थे ।

इडा—

इडा वै मनावी आसीत् । सासुरानग्निमादधानानगच्छत् । (८।४।८)

अर्थ—इडा (इला) मनु की पुत्री थी । वह अग्न्याधान करनेवाले असुरों के पास गई ।

स्यूमरश्मिः—

इन्द्रो वै यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत् । तेषामद्यमानानां स्यूमरश्मिर्ऋषिरश्वं प्राविशत् । (८।५।१०)

अर्थ—इन्द्र ने यतियों को सालावृकों के हवाले कर दिया । (जब) सालावृक उनको खा रहे थे तब स्यूमरश्मि अश्व (अश्वों) में छिप गये ।

वामदेवः कुसिदायी च—

वामदेवश्च वै कुसिदायी चात्मनोराजिमयातां तस्य कुसिदायी पूर्वस्यातिद्रहस्य कूबरं न्यगृह्णात् । (१०।५।७)

अर्थ—वामदेव और कुसिदायी ने रथदौड़ की होड़ लगाई । कुसिदायी ने तेज आगे जाते हुए वामदेव के रथ के कूबर को पकड़ा ।

बको दाल्भ्यः ; धृतराष्ट्रः वैचित्रवीर्यश्च—

नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशतिं कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानवन्वत । तान् बको दाल्भिरब्रवीद्यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि । स मह्यं करिष्यतीति

तमागच्छत् । तन्नासूर्क्षत् तं प्रकालयतैता गा ब्रह्मबन्ध इत्यब्रवीत् । पशुपतिर्गा हन्ति ताः परः पचमानश्चरेति । तासां देवसूर्ये राजान्नं प्रासुषोदिति । स कथान्युत्कर्तमपचत् । तस्मिन् पचमाने व्युदस्यत् । तस्य यत्किंचिद् धृतराष्ट्रस्यासीत् तत् सर्वं विद्राणमभि व्यौच्छत् विप्रश्निका अविन्दन् ब्राह्मणो वै त्वायमभिचरति । तस्मिन्नाथस्वेति । तमुपाशिक्षत् तस्मै बह्वददात् । (१०।६।९)

अर्थ—नैमिषारण्यवासी ऋषि यज्ञ कर रहे थे। जब वे यज्ञ कर चुके तो उन्होंने कुरुपांचाल में सत्ताईस वत्सतर (बैल) प्राप्त किये। बकदाल्भ्य ऋषि ने अपने साथी ऋत्विकों से कहा—इनको आप बांट लो। मैं (कुरुराज) धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य के पास जाऊंगा जो मुझे दान देगा। तब वह धृतराष्ट्र के पास आया। धृतराष्ट्र ने बकदाल्भ्य का अनादर किया। धृतराष्ट्र ने बकदाल्भ्य को गालियां दीं—हे ब्रह्मबन्धो ! पशुपति गायों को मार रहा है। अतः तुम भोजन करके भाग जाओ। उस देवर्षि को राजा ने अन्न (भोजन) दिया। उसने किसी प्रकार पचाया। उसके पचाने पर ही वह भोजन उगल दिया।

जो कुछ भी धृतराष्ट्र का था सब कुछ अस्तव्यस्त होगया। इस रहस्य को विप्रश्निकों (ज्योतिषियों) ने जान लिया। और उन्होंने धृतराष्ट्र को बताया—हे राजन् ! ब्राह्मण (बकदाल्भ्य) आपके साथ अभिचार कर रहा है, उससे क्षमा मांगो। तब धृतराष्ट्र ने उससे क्षमा मांगी और बहुत धन दान में दिया।

अगस्त्यः इन्द्रः मरुतश्च—

अगस्त्यो वै मरुद्भ्यः शतमुक्ष्णः पृश्नीन् प्रौक्षत् । तानिन्द्रायालभत । तं मरुतः क्रुद्धा वज्रमुद्यत्याभ्यपतन् । (१०।११।१९)

अर्थ—अगस्त्य ने सौ बिन्दुमती गायों (या बैलों) का मरुतों के लिये प्रोक्षण किया, लेकिन वे ऋषि ने इन्द्र को दे दीं। तब मरुत क्रुद्ध हो वज्र उठाकर (ऋषि पर) टूट पड़े।

सालावृकेयाः—

यतीन् वै सालावृकेया आदंस्तेषां शीर्षाणि परापतन् ते खजूरा अभवन् । (११।१०।२९)

अर्थ—असुर यतियों को सालावृक असुरों ने खा डाला, उनके शिर गिर गये वे खर्जूर होगये।

विश्वरूपस्त्रिशिराः—

विश्वरूपो वै त्रिशीर्षासीत् त्वष्टुः पुत्रोऽसुराणां स्वस्त्रीयस्स सोममेकेन शीर्ष्णापिबदन्नमकेनावयत् सुरामेकेनापिबत् । स

इन्द्रोऽमन्यत ··स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीदाधावास्येमानि शीर्षाणि छिन्द्धीति तस्य तक्षोपद्रुत्य परशुना शीर्षाण्याच्छिनत् ।

(१२।१०।२८)

अर्थ—विश्वरूप (त्वाष्ट्र) तीन शिरों वाला था। वह त्वष्टा का पुत्र और असुरों की बहिन का पुत्र था। वह एक मुख से सोम, एक से सुरा और एक से अन्न खाता था। इन्द्र ने सोचा—उसने बढ़ई से कहा दौड़कर इसके तीनों शिरों को काट दो। तब तक्षा ने परशु से उसके तीनों शिर काट डाले।

विलिस्तेङ्गा दानवी—

इन्द्रो वै विलिस्तेङ्गां दानवीमकामयत। सोऽसुरेष्वचरत्।

(१३।५।११)

अर्थ—इन्द्र ने विलिस्तेङ्गा दानवी (असुरी) को प्राप्त करने की इच्छा की। अतः वह असुरों में घूमता था।

यस्काः, गैरक्षिताः, कापेयाः (१३।१२।४१)

वत्सप्री भलिन्दनः (१६।१२।२८)

कण्वः आयसः (वीतहव्यः) (२१।९।३१-३४)

प्रतर्दनः—

भरद्वाजः प्रतर्दनं संनह्यन्तेति ततो वै स राष्ट्रमभवत्।

(२१।१०।३२)

अर्थ—भरद्वाज ऋषि ने प्रतर्दन को युद्ध के लिये तैयार किया। तब (काशी एक महान्) राष्ट्र बना।

असितो देवलः (२२।११।३२)

विश्वावसुर्गन्धर्वः—

विश्वावसुस्स तिस्रो रात्रीरुपहतोऽवसत्। स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः। बहु वै गन्धर्वेषु मिथुनीभवन्ती सभरन्ती अचारीरपः।

(२४-११-२)

अर्थ—तीन रात्रिपर्यन्त विश्वावसु गन्धर्व अपहृत होकर रहा। गन्धर्व स्त्री की इच्छा वाले होते हैं। गन्धर्वों में बहुत से जोड़े होकर जल बिहार करते हैं। (अतः उन्हें अप्सरा कहते हैं)

त्रिपुरः—

असुराणामिमाः पुरः आसन्नयस्मयीयं रजतान्तरिक्षं हरिणी द्यौस्ते देवास्संघातं संघातं पराजयन्त तेऽविदुरनायतना हि वै स्मस्तस्मात् पराजयामह इति त एताः पुरः प्रत्यकुर्वत। (२४।१०।२५)

अर्थ—असुरों के तीन नगर (या उपग्रह) थे। पृथिवी पर लौहनगर, अन्तरिक्ष में रजत (चांदी) का उपग्रह नगर और आकाश में सोने का नगर (उपग्रह) था। देवगण प्रत्येक युद्ध में पराजित होते जाते थे। तब उन्होंने जाना कि हम देवगण विना घर निवास के हैं इसीलिए पराजित होते हैं। तब देवों ने इन त्रिपुरों को नष्ट करके अपने नगर बसाये।

असुराणाम् एकविंशतिः अश्ममयीपुरः वराहश्च—

देवाश्च वा असुरा यज्ञे संयत्ता आसन्···। इन्द्र उपर्युपर्यत्यक्रामत् ·· एमूषो नामायं वराह इत्यब्रवीदेकविंशत्या पुरामश्ममयीनां पारे यत्किंयासुराणां वार्यं वसु तेन तिष्ठति तं जहि···तमिन्द्रो दाल्मूष्यमभिविसृज्य पराभिनत्। सोऽब्रवीदेष हतस्तमाहर·· तं विष्णुरपासङ्ग आहरत्।

अर्थ—देव और असुर यज्ञ में ही युद्ध के लिये उद्यत रहते थे। इन्द्र ऊपर ऊपर ही (आकाश में) आगे बढ़ गया। इन्द्र ने कहा—एमूष नाम का वराह असुरों के इक्कीस पत्थरों के नगरों के पार, जहां असुरों का श्रेष्ठ धन है (रक्षा करता हुआ) ठहरा हुआ है। इन्द्र ने दाल्मूष्य (अस्त्र) छोड़ा। वह वराह मर गया ·· अब असुरों का धन ले लो ·· विष्णु इन्द्र के साथ था।

साध्याः देवाः—

साध्या वै नाम देवा आसन्। पूर्वे देवेभ्योस्तेषां न किंचन स्वमासीत्। (२६।७।१८)

अर्थ—साध्या नाम के देवगण थे। (वर्तमान आदित्य) देवों से पूर्वकालीन। उनका कुछ भी (धन, साम्राज्य इत्यादि) नहीं था।

श्यापर्णः साकायनः—

श्यापर्णः साकायनः अषाढ़ं केशिनम् उवाच कुन्तयः पञ्चालान-भीत्यजिनन्ति। (२६।७।१८)

अर्थ—श्यापर्ण साकायन ने अषाढ़केशी से कहा कि कुन्तिराष्ट्र वाले पांचालों को···

सालावृकी—

सालावृकी संभूयासुरान् प्रविशत् सैमान्निरदहत्। (२८।४।८)

अर्थ—सालावृकी ने असुरों में प्रवेश करके उन्हें जला डाला।

दीर्घाजिह्वी असुरी (२९।१।१) दीर्घजिह्वी असुरी

त्वष्टावरुत्री–

मनोर्वै कपालान्यसंस्तैर्यावतोऽसुरानभ्युपाधत्ते पराभवन्नथ तर्हि त्वष्टावरुत्री आस्तामसुरब्रह्मौ। ता असुरा अब्रुवन्निमानि मनु-कपालानि याचेथामिति । तौ प्रातरित्वाना अभिप्रापद्येतां वायवेऽग्ना ३ वायवे इन्द्रा ३ इति। किंकामौ स्थ इत्यब्रवीदिमानि नौ कपालानि देहीति। तान्याभ्यामददात्। तान्यरण्यं पराहृत्य समपिंष्टां तन्मनोर्गावोऽभितिष्ठन्त तानि ऋषभस्समलेट् तस्य रुवतो यावन्तोऽसुरा उपाश्रृण्वंस्ते पराभवन्। तौ प्रातरित्वाना अभि प्रापद्येताम् · अथेन्द्रोऽयाचन्मनुं श्राद्धदेवं त्वष्टावरुत्री असुरब्रह्मौ जायया व्यर्धयत इति स आगच्छत्। सोऽब्रवीदाभ्यां त्वा याजया-नीति। नेत्यब्रवीन्न वा अहमनयोरीश इत्यतिथिपतिर्वातिथेरीश इत्यब्रवीत्। ता अस्मै प्रायच्छत् स प्रतिवेशी वेदिं कुर्वन्नास्ते। ता अपृच्छतां कोऽसि ब्राह्मण इति। कतमो ब्राह्मण इति।

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरम्।
श्रुतं चेदस्मिन् चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः ।।

इति ता अवित्तामिन्द्रो वा इति तौ प्रापततां तयोर्याः प्रोक्षणीराप आसंस्ताभिरनुविसृज्य शीर्षे अच्छिनत् तौ वृषश्च यवाषश्चा-भवताम्। (३०।१-३)

अर्थ—मनु के यज्ञ में कपाल रखे गये। मनु जितने कपाल रखते थे उतने ही असुर पराजित होते थे। तब त्वष्टा और वरुत्री असुरों के पुरोहित थे। उन दोनों से असुरों ने कहा—तुम दोनों इन मनु कपालों को मांगो। वे प्रातः होते ही मनु (के यज्ञस्थल) पर पहुंचे और मन्त्र पढ़ने लगे—वायवे, अग्नये, इन्द्राय इत्यादि। मनु ने पूछा—क्या चाहते हो। असुरब्रह्म बोले—हमको अपने कपाल दो। मनु ने उनको कपाल दे दिये। उनको जंगल में ले जाकर पीसा, वहां मनु के बैल खड़े थे, एक ऋषभ ने कपालों (पुरोडाशों) को चाट लिया। ऋषभ की चिंघाड़ जितने असुरों ने सुनी, वे पराजित हुए। असुरब्रह्म (त्वष्टा वरुत्री) प्रातः होने पर पुनः मनु के पास आये।···तब इन्द्र ने वहां आकर श्राद्धदेव मनु से याचना की और बताया—त्वष्टा और वरुत्री असुरों के पुरोहित हैं वे आपको आपकी पत्नी से हीन कर देंगे। इसलिये मैं आया हूं। इन्द्र ने मनु से कहा—मैं इनके साथ ही तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा। मनु ने कहा—नहीं, मैं इन असुरों का स्वामी (प्रवक्ता) नहीं हूं। मैं न तो अतिथिपति हूं और न अतिथियों का ईश हूं।

असुर ब्राह्मणों ने इन्द्र से पूछा—कौन हो? इन्द्र ने प्रत्युत्तर दिया—ब्राह्मण हूं। कौन से ब्राह्मण हो?

"ब्राह्मण के माता-पिता को क्यों पूछते हो, जिसमें ज्ञान है वही यज्ञ कराने का अधिकारी है, वही पिता है, वही पितामह है।" असुर ब्राह्मणों ने जान लिया—यह इन्द्र है। तब वे भागने लगे। उनका जो प्रोक्षणीय यज्ञिय जल था, उसको फेंककर इन्द्र ने उन दोनों के शिर काट डाले। उनके शिर ही वृष और यवाष होगये।

अररुरसुरः—

अररुर्वै नामासुर आसीत् सोऽबिभेद्यज्ञेन नो देवा अभिभविष्यन्तीति स पृथिवीं विषेणालिम्पदमेध्यां कुर्वन्निन्द्रो वृत्रमहंस्तस्येमा लोहितमनुव्यधावत् स पृथिवीमुपम्रुच्याशयत्। तमिन्द्रोऽचायत्। (३१।८।२१)

अर्थ—अररु नाम का एक असुराज था। वह डरता रहता था कि यज्ञ द्वारा देवता असुरों को पराजित कर देंगे। इसीलिये उसने पृथिवी को विष से लेप दिया और पृथिवी को अमेध्य कर दिया। जब से इन्द्र ने वृत्र को मारा, तब से असुर उसके खून का बदला लेना चाहते थे। अररु ने पृथिवी को खोदकर (दुर्ग बनाकर उसमें) सो गया (छिप गया)। इन्द्र ने उसे ढूंढ़कर मार डाला।

पृथिव्याम् असुरसाम्राज्यम्—

असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत्। ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति।...अग्निः प्राचीं दिशमुदजयद् वसवो दक्षिणां रुद्राः प्रतीचीमादित्या उदीचीम्। ते देवा इमामसुराणामविन्दत। (३१-८-२२)

अर्थ—(पूर्वकाल में—देवों से पूर्व) पृथिवी पर असुरों का अधिकार (साम्राज्य) था। (कालान्तर में समर्थ होने पर वामनविष्णु के नेतृत्व में) देवों ने असुरों से कहा—हमारा पृथिवी भाग दीजिये। अग्नि (आंगिरस बृहस्पति) ने पूर्व दिशा जीती, वसुगण ने दक्षिणदिशा, रुद्रगण ने पश्चिम दिशा और आदित्यों ने उत्तर दिशा जीती। इस प्रकार देवों ने असुरों से पृथिवी प्राप्त की।

वासिष्ठः सात्यहव्यः (३४।१७।२५)

रुद्रः—

एष ते भागस्तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहीति। (३६।१४।२७)

अर्थ—हे रुद्र! यह आपका भाग है। (इसे लेकर—खाकर) आप मूजवान् पर्वत (कैलाश ?) के परे ही रहो।

शुष्णः दानवः—

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्नसुरेषु तर्ह्यमृतमासीत् शुष्णे दानवे। स इन्द्रोऽवेदसुरेषु वा अमृतं शुष्णे दानवे इति मष्वष्ठीला

भूत्वा पथ्रप्रथेऽशयत् । तां शुष्णोऽभिव्याददात् । तस्येन्द्रश्श्येनो भूत्वा-
स्यामृतम् निरमुष्णात् (३७।१४।४०)

अर्थ—देवगण और असुरगण युद्ध के लिए तत्पर थे । असुरों में शुष्ण दानव के पास अमृत था । इन्द्र को पता चल गया कि असुरों में शुष्ण दानव के पास अमृत है । इन्द्र मध्वष्ठीला (मीठी गेंद) बनकर मार्ग में सो गया । उस मध्वष्ठीला (मिठाई) को शुष्ण ने खा लिया । इन्द्र ने श्येन बनकर अमृत को चुरा लिया ।

यातुधानाः (मायाविनो राक्षसाः)—

देवा असुरानघ्नंस्तेषां य उदशिष्यन्त ते देवानन्वरोहंस्त एनान्
वृञ्जानाः प्रत्यस्यमाना आयंस्ते देवास्समितिमकुर्वत त एतौ
ब्रह्मयातुं च देवयातुं चापश्यंस्ता एभ्यः प्रत्यवासृजंस्ता एनान्निर-
दहतां ते मनुष्यान् प्राविशंस्तजन्मानो यातुधानाः । (३७।१४।४०)

अर्थ—देवों ने असुरों को मारा, उसमें जो बच जाते थे, वे (छिपकर) देवों का पीछा करते थे । वे मायावी असुर देवों को मारकर फेंक देते थे । तब देवों ने सभा की । देवों ने ब्रह्मयातु और देवयातु (राक्षसों) को देख लिया । उन दोनों ने देवों को छोड़ दिया और मनुष्यों में प्रवेश कर गये ।

केशीदाल्भ्यः, त्रेधा पञ्चालाः—

केशिनो दाल्भ्यस्य वंशव्रश्चने गृहाज्जगृहुस्स होवाच लुशाकपिः
खार्गलिः···ततः पञ्चालास्त्रेधाऽभवन् । (३०।२।४)

अर्थ—केशी दाल्भ्य से उसका वंश उच्छेद होगया··· खर्गल का पुत्र बोला—तब से पञ्चालों (क्षत्रियों) का राष्ट्र तीन भागों में बंट गया ।

जम्भः—

जम्भो वै नामासुर आसीत् । स देवानां यज्ञमगिरत् । (२६।१।२)

अर्थ—जम्भ नाम का असुर था उसने देवों के यज्ञ को निगल लिया ।

---

[५]

कपिष्ठलसंहितायामैतिह्यसन्दर्भाः

रक्षसामञ्जनगिरिः—

इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवांसं रक्षांस्यसचन्त। तान्यञ्जनगिरिणान्तरधत्त। (३५।७)

अर्थ—वृत्र को मारते समय इन्द्र को राक्षसों ने ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। परन्तु, इन्द्र ने उनको अञ्जनगिरि के दूसरी ओर ही छिपाये रखा।

विषाद्—

विषाद् वै नामासुर आसीत्। स पृथिवीं विषेणावालिम्पत्॥ (३९।१)

अर्थ विषात् नाम का असुरराज था। उसने पृथिवी को विष से लेप दिया।

[६]

मैत्रायणीसंहितायामैतिह्यसन्दर्भाः

कपिवनो भौवायनः (१।४।५।३४)

दार्भ्यः केशी—

केशिनं वै दार्भ्यं गन्धर्वाप्सरसोऽपृच्छन्। (१।४।१२।३४)

अर्थ—केशी दार्भ्य से गन्धर्व अप्सराओं ने पूछा।

नारदः—

तद्ध स्म वा आह नारदः। (१।५।८)

अर्थ—नारद ने कहा।

वैतहोत्रः—

क्रीतो वैतहोत्रः (४।२।६।४०)

अर्थ—वैतहोत्र को खरीद लिया।

वासिष्ठः सात्यहव्यः—

एतद्ध स्म वा आह वासिष्ठः सात्यहव्यः। (४।८।७।१४)

अर्थ—सत्यहवि के पुत्र सात्यहव्य वासिष्ठ ने कहा।

[७]

ऐतरेयब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

असुराणां दिग्विजयः—

देवासुरा वा एषु लोकेषु समयतन्त। त एतस्यां प्राच्यां दिशि अयतन्त। तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते दक्षिणस्याम् दिशि अयतन्त। ते देवा अब्रुवन्नराजतया वै नो जयन्ति। राजानं करवामहा इति। तथेति ते सोमं राजानमकुर्वन् (३।४।१४)

अर्थ—देवगण और असुरगण पृथिवीलोक के निवासियों पर अधिकार की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने सर्वप्रथम प्राची दिशा में प्रयत्न किया। लेकिन असुरों ने देवों को जीत लिया। इसी प्रकार देवों ने दक्षिणादि दिशाओं में यत्न किया (परन्तु सफल नहीं हुए)। तब देवगणों ने परामर्श किया—कि हम अराजकता (राजनेतृत्व) के कारण हमारी विजय नहीं होती है। अतः सर्वप्रथम राजा का चयन करें। ऐसा विचार करके तदनुसार उन्होंने सोम को अपना राजा बनाया।

राजा वरुणः—

ते अब्रुवन् हन्त या एव न इमाः प्रियतमास्तन्वस्ता अस्य वरुणस्य राज्ञो गृहे संनिदधामहै ते वरुणस्य राज्ञो गृहे तनूः सन्यदधत् इति। (४।७।२४)

अर्थ—वे (देवगण) बोले—जो हमारे प्रिय शरीर हैं, उन्हें हम राजा वरुण के घर में रख दें, अतः उन्होंने अपने शरीर वरुण के घर में रख दिये।

कवष ऐलूषः—

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत ते कवषमैलूषं सोमादयन् दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्येऽदीक्षिष्टेति तं बहिर्धन्वोदवहन्न चैव पिपासां हन्तु सरस्वत्या उदकं मा पादिति स बहिर्धन्वोद्गहतः पिपासया वित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्। तं सरस्वती समन्तं पर्यधावत् इति ते वा ऋषयोऽब्रुन्विदुर्वा इमं देवा उपेमं ह्वयामहा इति। तथेति तमुपाह्वयन्त (८।१।१९)

अर्थ—ऋषि सरस्वती के तट पर सत्र कर रहे थे। उन्होंने कवष ऐलूष को सोम यज्ञ से यह कहकर बाहर निकाल दिया—यह दासी का पुत्र, कितव (धूर्त) और अब्राह्मण है, यह हमारे मध्य दीक्षित कैसे हो सकता है और उसको मरुस्थल के बाहर निकाल दिया। यह प्यासा सरस्वती का पानी नहीं पी सके अतः पिपासु कवष ऐलूष ने अपोनप्त्रीय ऋचा का दर्शन किया। सरस्वती नदी उसके चारों ओर बहने लगी। ऋषि ने कहा—हमको देवों ने जान लिया अतः इसको बुलायें अतः ऋषियों ने उसको बुलाया (और ब्राह्मण मान लिया)।

असुरी दीर्घजिह्वी—

असुरी दीर्घजिह्वी देवानां प्रातःसवनमवालेट्। तद्द्रव्यमाद्यत्ते देवाः प्राज्ञासिसन्त। ते मित्रावरुणावब्रुवन्। (८।५।२२)

अर्थ—असुरी दीर्घजिह्वी प्रातःसवन के हव्य को चाट जाती थी। यह बात देवों को पता चल गई। देवों ने मित्रावरुण से कहा।

मरुतामिन्द्रसाहाय्यम्—

इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन्सर्वा देवता अब्रवीदनु मोपतिष्ठध्वमुप मा ह्वयध्वमिति। तस्य (वृत्रस्य) श्वसकादीषमाणा विश्वे देवा अद्रवन् मरुतो हैनं नाजहुः। (१२।९।२०)

अर्थ—इन्द्र ने वृत्र युद्ध के समय कहा—सभी देवगण मेरे पीछे साथ रहें मुझे ही बुलायें (नेता मानें)। लेकिन वृत्र के भय से भयभीत भाग गये। परन्तु मरुद्गणों ने इन्द्र का साथ नहीं छोड़ा।

सोमपालः (सोमरक्षकः) कृशानुर्गन्धर्वः—

सोमपालः सव्यस्य नखमच्छिदत्।

अर्थ—सोमपाल (कृशानुगन्धर्व) ने सव्य पाद का नख काट दिया।

ऋभवः—

प्रजापतिरब्रवीत् सवितः तव वा इमेऽन्तेवासास्त्वमेवैभिः संपिबस्व। (१३।६।३०)

अर्थ—प्रजापति (कश्यप) ने कहा हे सवित! ये तुम्हारे शिष्य हैं (ऋभुगण), तुम्हारे साथ सोमपान करेंगे।

शाकल्यः—

अहेरिव सर्पणं शाकल्यस्य न विजानन्ति। (१४।५।४३)

अर्थ—सांप के समान शाकल्य की गति नहीं जानी जा सकती।

भरद्वाजः—

भरद्वाजो ह वै कृशो दीर्घः पलित आस। (१५।६।४९)

अर्थ—भरद्वाज, कृशकाय, दीर्घजीवी और सफेद बालों वाला था।

सूर्या=सावित्री—

प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीम्।

अर्थ—प्रजापति (सविता) ने अपनी पुत्री सूर्या—सावित्री राजा सोम को दी।

शार्यातः मानवः—

तदु शार्यातमङ्गिरसो सत्रमासत। (२०।४।३२)

अर्थ—आंगिरस ऋषियों ने शार्यात मानव का सत्र कराया।

हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्—

हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजापुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुस्तासां पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ।

यन्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न।
किंस्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आचस्व नारदेति॥
स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच।

अर्थ—वेधा का पुत्र ऐक्ष्वाक हरिश्चन्द्र निपुत्री था। उसके सौ रानियां थीं। परन्तु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। उसके घर (महल) में पर्वत और नारद आये और घर में रहे। राजा ने नारद से पूछा—"यह जो पुत्र की इच्छा करते हैं और जो इसके महत्त्व को जानते हैं और जो नहीं जानते, वे पुत्र के द्वारा क्या प्राप्त करते हैं, कृपया हे नारद जी! मुझे बतलाइये। नारद ने एक श्लोक की बातें दश में बतलाई।

दश श्लोकाः—

ऋणमस्मिन्त्संनयत्यमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवितो मुखम्॥१॥
यावन्तो पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि।
यावन्तो अप्सु प्राणिनां भूयान् पुत्रे पितुस्ततः॥२॥
शश्वत्पुत्रेण पितरोऽत्यायन्बहुलं तमः।
आत्मा हि जज्ञ आत्मनः स इरावत्यतितारिणी॥३॥
किं नु किमजिनं किमु श्मश्रूणि किं तपः।
पुत्रं ब्रह्माण इच्छध्वं स वै लोको वदावदः॥४॥
अन्नं ह प्राणः शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्॥५॥
पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।

तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ।।६।।
तज्जाया जाया भवति यदस्या जायते पुनः ।
आभूतिरेषाभूतिर्बीजमेतन्निधीयते ।।७।।
देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन् महत् ।
देवा मनुष्यानब्रुवन्नेषा वो जननी पुनः ।।८।।
नापुत्रस्य लोकोस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः ।
तस्मात्तु पुत्रो मातरं स्वसारं चाधिरोहति ।।९।।
विततो देवयानो येनाक्रमन्ते पुत्रिणो ये विशोकाः ।
तं पश्यन्ति पशवो वयांसि च तस्मात्ते मात्रापि मिथुनीभवन्ति।।१०।।

अर्थ—"पिता, पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से अनृण हो जाता है और अमरलोक को प्राप्त करता है यदि पिता उत्पन्न पुत्र के मुख को जीवित रहता हुआ देखे। जितने पृथिवी, अग्नि और जल में भोग हैं, उससे भी अधिक भोग (आनन्द) पिता को पुत्र से मिलता है। सनातनकाल से पितृगण पुत्र के द्वारा विपुल तमः (अन्धकार) का नाश करते हैं। आत्मा (शरीर) से आत्मा (शरीर) उत्पन्न होता है। वह 'पुत्र' पिता के लिये इरावती (वैतरणी) नदी के समान है, जो अतितारिणी है।

हे ब्राह्मणो ! पुत्र की इच्छा करो। अजिन वल्कल या आश्रय या तप क्या है, कुछ भी नहीं, पुत्र ही श्रेष्ठ लोक का दायक है। अन्न ही प्राण है, निवास (घर) ही शरण है, स्वर्ग ही रूपवर्धक है, पशु निर्वाह करने वाले हैं। पत्नी सखा है, दुहिता कृपणता देनेवाली है परन्तु पुत्र परमलोक में ज्योतिःस्वरूप है।

पति पत्नी में प्रवेश करके गर्भरूप में होता है, दशमे मास में पति ही पुत्र रूप में माता से उत्पन्न होता है। यह जाया (पत्नी) का जायात्व है, कि उसमें प्रवेश करके पति पुत्र रूप में पैदा होता है। यह आभूति (जन्म) ही विभूति या उत्पत्ति है, जिसमें बीज (सन्तति तन्तु) रखा जाता है। पुत्र के द्वारा देवों और ऋषियों ने पुनः अपने में महान् तेज धारण किया है। यह पुत्र या जाया ही तुम्हारी जननी है।

बिना पुत्र के लोक या परलोक नहीं, यह सभी मनुष्य जानते हैं। इसलिए पुत्र, माता और स्वसा से बढ़कर है। यह पुत्ररूपी देवयान ही पिता को वीतशोक करता है, जिससे पुत्रवान् पिता स्वर्ग में जाते हैं। इस देवयान पथ को मनुष्य, पशु और पक्षी सभी देखते हैं, इसलिए वे सन्तान उत्पन्न करते हैं।

राज्ञा वरुणयज्ञः—

स होवाच स वै मे ब्रूहि यथा मे पुत्रो जायेतेति। अथैनमुवाच वरुणं राजानमुपधाव—'पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यजे इति।

तथेति तस्य पुत्रो जज्ञे रोहितो नाम। तं होवाचाजनि वै ते पुत्रो यजस्व। नेति स होवाच। यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ मेध्यो भवति। निर्दशो न्वस्त्वथ त्वा यजा इति। स ह निर्दशो आस तं होवाच निर्दशो न्वभूद्यजस्व। मानेनेति। स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति। दन्ता न्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति। तथेति। तस्य ह दन्ता जज्ञिरे। तं होवाचाजायन्त वा अस्य दन्ता यजस्व। मानेनेति। स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता पद्यन्तेऽथ स मेध्यो भवति। दन्तान्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति। तस्य ह दन्ताः पेदिरे। तं होवाचापत्सत वा अस्य दन्ता यजस्व। मानेनेति। स होवाच यदा वै पशोर्दन्ताः पुनर्जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति।...तस्य ह दन्ताः पुनर्जज्ञिरे। तं होवाचाज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ता यजस्व। मानेनेति। स होवाच यदा वै क्षत्रियः सांनाहुको भवत्यथ स मेध्यो भवति। स ह सन्नाहं प्रापत्तं होवाच सन्नाहं तु प्राप्नोद्यजस्व। मानेनेति। स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास।

अर्थ—राजा हरिश्चन्द्र ने नारद से कहा हे ऋषे! मुझे बताइये कि मेरे पुत्र किस प्रकार हो। नारद ने राजा से कहा—तुम राजा वरुण देव की शरण में जाओ और प्रार्थना करो कि मेरे पुत्र उत्पन्न हो। मैं उस पुत्र से तुम्हारा यज्ञ करूंगा अर्थात् पुत्र बलि दूंगा। राजा ने वैसा ही किया और उसके 'रोहित' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। तब वरुण ने राजा के पास आकर कहा—पुत्र बलि दो, तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगया है। राजा ने कहा—अभी नहीं, जब तक पशु (जीव) के सूतक है तब तक वह अमेध्य होता है। जब सूतक बीत जायेंगे, तब बलि दूंगा। जब सूतक बीत गये तब वरुण ने कहा—अब बलि दो। तब राजा ने कहा—जब जीव के दांत निकल आयें, तभी मेध्य होता है। दांत निकलने पर मैं पशुबलि (पुत्र बलि) करूंगा। जब उसके दांत आये। इसके दांत निकल आये हैं, यज्ञ करो। नहीं। पशु के दांत पूरे हो जायें तब यज्ञ करूंगा। तभी पशु मेध्य होता है। जब उसके पूरे दांत होगये तब वरुण ने आकर कहा—यज्ञ करो, इसके दांत पूरे होगये हैं। राजा ने कहा जब पशु के दांत दुबारा निकल आते हैं, तभी वह मेध्य होता है। रोहित के दांत पुनः उग आये तब वरुण ने कहा—इसके पुनः दांत आगये हैं, यज्ञ करो। नहीं। जब क्षत्रिय कवचयुक्त (युवक) हो जाता है, तब मेध्य (पवित्र) होता है। जब वह रोहित सन्नाह को प्राप्त हुआ, तब वरुण ने आकर राजा से कहा—यह युवक होगया है, अब बलि दो। नहीं! तब राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र रोहित को बुलाया।

रोहितेन अरण्ये पलायनम् इन्द्रोपदेशश्च-

ततोऽयं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाहमिमं यजा इति। स ह ने—त्युक्त्वा धनुरादायारण्यमपातस्थौ। स संवत्सरमरण्ये चचार। अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह। तस्य होदरं जज्ञे। तदु ह रोहितः शुश्राव। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुमः।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति ॥१॥

चरैवेति। वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह द्वितीयं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्र पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच—

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलेग्रहि।
शेरेऽस्य पात्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति ॥२॥

चरैवेति। वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति ॥३॥

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥ चरैवेति।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह पञ्चमं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच।

चरन् वै मधु विन्दति चरन्त्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥५॥ चरैवेति।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये चचार···

चरन्वै मधु विन्दत्यपाजिन्वति परूषकम्।
उत्तिष्ठन्विन्दते श्रियं न निपद्य किंचनावति ॥६॥ चरैवेति।

चरैवेति। स सप्तमं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽजीगर्तं सौयवसमृषिमशनया परीतमरण्ये उपेयाय।

अर्थ—और कहा—हे पुत्र ! मुझे राजा (देव) वरुण ने तुम (पुत्र) को दिया था कि मैं तुम्हारे द्वारा वरुण का यज्ञ (बलि) करूं। रोहित ने कहा—पिताजी नहीं—ऐसा नहीं होगा। ऐसा कहकर रोहित धनुष लेकर जंगल में भाग गया। वह एक वर्ष तक अरण्य में घूमता रहा। इसी बीच हरिश्चन्द्र को वरुण ने अपने

पाश में बांध लिया। उसको जलोदर रोग होगया। यह बात रोहित ने सुनी। वह अरण्य से नगर में आया। मार्ग में पुरुष (ब्राह्मण) रूप में इन्द्र ने आकर रोहित को उपदेश दिया– "आराम करनेवाले को लक्ष्मी नहीं मिलती है रोहित! ऐसा सुना गया है। निठल्ला मनुष्य पापी होता है। चरणशील (कर्मशील) मनुष्य का भगवान् मित्र होता है, अतः चलते रहो, चलते ही रहो।

रोहित अरण्य से पुनः नगर में आया और पिताजी से कहा—मुझे एक ब्राह्मण ने कहा है कि चलते ही रहो चलते ही रहो। इन्द्र फिर पुरुषरूप में आकर रोहित से बोला—

"चलने वाले की जंघायें पुष्पवाली (फलयुक्त) होती हैं। कुछ होवे (करने वाले) का शरीर फल प्राप्त करता है। चलने से उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और श्रम से मार्ग में पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये चलते ही रहो। मुझसे ब्राह्मण ने चलते रहने को कहा है। वह तृतीय वर्ष पुनः जंगल में घूमता रहा। पुनः अरण्य से गांव में आया। इन्द्र पुनः पुरुषरूप में आकर बोला—"बैठे हुए मनुष्य का भाग्य बैठ जाता है। खड़े होने वाले मनुष्य का भाग्य खड़ा हो जाता है। पड़े रहनेवाले का भाग्य सो जाता है। चलनेवाले का भाग्य चलने लगता है, अतः चलते ही रहो। 'मुझसे ब्राह्मण ने चलते ही रहने को कहा है।'

चतुर्थ वर्ष पुनः रोहित जंगल में घूमता रहा। वह फिर नगर में आया। इन्द्र ने पुरुषरूप में आकर उससे कहा—

"सोने वाला मनुष्य कलियुग है। अंगड़ाई लेनेवाला द्वापर है। उठा खड़ा हुआ मनुष्य त्रेतायुग है और चलने वाला सत्ययुग है, अतः चलते ही रहो ऐसा मुझे ब्राह्मण ने कहा है।

वह पुनः पांचवें वर्ष जंगल में घूमता रहा। वर्षान्त में अरण्य से ग्राम में आया। पुनः इन्द्र पुरुषरूप में आकर बोला–

"चलने से मनुष्य मधु (अमृत) प्राप्त करता है, चलने से ही उदुम्बर (फल) मिलता है। देखो सूर्य का श्रम, जो चलने से आलस्य नहीं करता। इसलिये चलते ही रहो। ऐसा मुझसे ब्राह्मण ने कहा है।

रोहित छठवें वर्ष भी अरण्य में घूमता रहा। उससे इन्द्र ने कहा—"चलने से मधु प्राप्त करता है। परुषक (पाप) को नष्ट करता है। खड़ा होकर श्री को प्राप्त करता है। बैठकर कुछ भी प्राप्त नहीं करता। इसीलिये चलते ही रहो।

वह सातवें वर्ष पुनः जंगल में घूमता रहा। तब उसने जंगल में सूयवस के पुत्र अजीगर्त ऋषि को भूख से दुःखी देखा।

शौनःशेपाख्यानम् (विश्वामित्रेण शुनःशेपस्य रक्षा)—

तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः। शुनःपुच्छः, शुनःशेपः, शुनोलाङ्गूल इति। तं होवाच। ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहमेषामेकेनात्मानं निष्क्रीण इति। स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान उवाच नन्विममिति नो एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे सम्पादयांचक्रतुः शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। स पितरमेत्योवाच ततः हंताहमनेनात्मानं निष्क्रीण इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति। तथेति। भूयान्वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति वरुण उवाच स एतं राजसूये पुरुषपशुमालेभे।

अर्थ—उस (अजीगर्त) के तीन पुत्र थे—शुनःपुच्छः, शुनःशेपः और शुनोलांगल ! रोहित ने उससे कहा—हे ऋषे ! मैं सौ (निष्क मुद्राओं) से इन तीनों में से किसे खरीदूं। अजीगर्त ने अपने ज्येष्ठ पुत्र (शुनःपुच्छ) को रोकते हुए कहा—इसको नहीं, कनिष्ठ (शुनोलांगल) को माता ने रोका। उन्होंने मध्यम (शुनःशेप) को बेच दिया। उसके सौ (निष्क) स्वर्णमुद्रायें देकर वह (अयोध्या) में आया। उसने पिता (हरिश्चन्द्र) के पास जाकर कहा—मैंने अपने लिये (इस शुनःशेप) को खरीद लिया है। तब हरिश्चन्द्र वरुण राजा के पास गया और बोला मैं यज्ञ करूंगा। 'ठीक है।' वरुण ने कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठतर होता है, अतः राजा ने शुनःशेप का राजसूय यज्ञ में आलभन (बलि करनी चाही)।

ऋत्विजः—

तस्य ह विश्वामित्रो होतासीज्जमदग्निरध्वयुर्वसिष्ठो ब्रह्मायास्य उद्गाता।

अर्थ—उस यज्ञ में विश्वामित्र ऋषि होता थे, जमदग्नि अध्वर्यु थे, वसिष्ठ ब्रह्मा थे और अयास्य उद्गाता थे।

शपित अजीगर्तः—

तस्मा उपाकृताय नियोक्तारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौवयसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति। तस्मा अपरं शतं ददुस्त स निनियोज। तस्मा उपाकृताय याप्रीताय पर्यग्निकृताय विशसितारं न विविदुः। स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशयिष्यामीति। तस्मा अपरं शतं ददुः। सोऽसिं निशान एयायाथ ह शुनःशेपं ईक्षांचक्रे।

अर्थ—शुनःशेप को पशुबलि के उपाकृत (पवित्र) करके यूप में बांधने वाला नहीं मिला। तब अजीगर्त ने कहा—मुझे सौ सुवर्ण मुद्रायें और दी जायें,

मैं इसे यूप में बांध दूंगा। तब उसको सौ सुवर्ण मुद्रायें और दे दी गईं। उसने शुनःशेप को यूप से बांध दिया।

शुनःशेप को उपाकृत करके, आप्री मन्त्र पढ़ने के पश्चात् पर्यग्निकृत (अग्नि के चारों ओर घुमाकर) करके उसको मारनेवाला (शमिता) नहीं मिला। तब सौयवसि अजीगर्त ने कहा—मुझे अतिरिक्त सौ सुवर्ण मुद्रायें दीजिये, मैं इसका वध भी कर दूंगा। अतः उसको सौ मुद्रायें और दे दी गईं। वह तलवार को चमकाता हुआ आगे आया और शुनःशेप (अपने पुत्र) को देखा।

शुनःशेपकृता देवस्तुतिः ऋषित्वञ्च—

मानुषमिव वै मा विशयिष्यति। हन्ताहं देवता उपधावामीति। स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार–'कस्य नूनं कतमस्यामृताना-मित्येतयर्चा'। तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोप-धावेति। सोऽग्निमुपससाराग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतनामित्येतयर्चा। तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे। तमेवोपधावेति। स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्येतेन तृचेन। सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि, तमेवोपधावेति। स वरुणं राजान-मुपससारात उत्तराभिरेकत्रिंशता। तं वरुण उवाचाग्निर्वै देवानां मुखं सुहृदयतमस्तं स्तुह्यथ त्वोत्सृक्ष्यामीति। सोऽग्निं तुष्टाव। अत उत्तराभिर्द्वाविंशत्या। विश्वान्नु देवान् स्तुह्यथ त्वोत्सृक्ष्या-मीति। स विश्वान् देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य इत्येतयर्चा। तं विश्वेदेवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्सृक्ष्यामीति। स इन्द्रं तुष्टाव—'यच्चिद्धि सत्य सोमपा चैतेन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्चदशभिस्तस्मा इन्द्र स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं ददौ। तमेतया प्रतीयाय 'शश्वदिन्द्र' इति तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्सृक्ष्यामीति। सोऽश्विनौ तुष्टाव। अत उत्तरेण तृचेन तमश्विना ऊचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्सृक्ष्यामीति। स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन तस्य ह स्मर्च्युक्तायां विपाशो मुमुचे। कनीय ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां विपाशो मुमुचे-ऽगद ऐक्ष्वाक आस।

शुनःशेपेन सोमसवनम्—

तमृत्विज ऊचुस्त्वमेव नोऽस्याह्न संस्थामधि गच्छ। हैतं अथ शुनः

शेपोऽञ्जःसवं ददर्श। तमेताभिश्चतसृभिः सुषाव यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोणकलशमभ्यवनिनायोच्छिष्टं चम्वोर्भरत्येतयर्चाथ ह्यस्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः सस्वाहाकाराभिर्जुह्वां चकाराथैनमवभृथमभ्यवनिनाय 'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्' इत्येताभ्याथैनमत ऊर्ध्वामग्निमाहवनोयमुपस्थापयांचकार।

अर्थ—यह (मेरा पिता) मुझे मनुष्य होकर ऐसे मारेगा। (ऐसा सोचकर शुनःशेप ने सोचा) मैं देवों की शरण में जाऊं। वह देवताओं में प्रथम, प्रजापति की शरण में गया और उसने 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से प्रजापति की स्तुति की। प्रजापति ने शुनःशेप से कहा—अग्नि ही देवों में (हमारे) निकटतम है, अतः उसकी स्तुति करो। वह अग्नि की शरण में गया और इस ऋचा से स्तुति की—'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्'। तब अग्नि ने कहा—'सविता ही प्रसव (सन्तान) का स्वामी है, उसी की स्तुति करो। उसने सविता (देव) की स्तुति की—'त्वा देव सवितः' इत्यादि तीन ऋचाओं से। सविता ने कहा—हे शुनः शेप! तुम वरुण के ही बलि पशु हो। अतः मुक्ति के लिए उसी की स्तुति करो। तब शुनःशेप ने इक्कीस ऋग्मन्त्रों द्वारा वरुण की स्तुति की। तब वरुण ने कहा—'अग्नि देवों का मुख और श्रेष्ठ सखा है, अतः उसी की स्तुति करो, तब मैं तुमको मुक्त कर दूंगा। शुनःशेप ने अग्नि की स्तुति की—बाईस अगली ऋचाओं द्वारा। विश्वेदेवों की स्तुति करो, तब मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा। उसने विश्वेदेवों की स्तुति की 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' इस ऋचा द्वारा। विश्वेदेवों ने उससे कहा—'इन्द्र सभी देवों में ओजिष्ठ, बलिष्ठ सहिष्ठ, श्रेष्ठतम और पार लगाने वाला है, अतः उसी की स्तुति करो।' तब मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा। उसने इन्द्र की स्तुति की—'यच्चिद्धि सत्यसोमपा' इस सूक्त द्वारा जिसमें पन्द्रह ऋचायें हैं।

हिरण्यरथदान—स्तुत इन्द्र ने प्रसन्न होकर हृष्ट मन से शुनः शेप को एक हिरण्यरथ (सोने का रथ) दिया। तदनन्तर शुनःशेप ने 'शश्वदिन्द्रः' इस ऋचा से पुनः इन्द्र की स्तुति की। तब इन्द्र (वरुण) ने कहा—'अश्विनीकुमारों की स्तुति करो, तब मैं मुक्त कर दूंगा। उसने अश्विनौ की स्तुति की। उत्तर तृच द्वारा अश्विनों ने बताया—'तुम उषा की स्तुति करो तब मैं मुक्त कर दूंगा। उसने उत्तर तृच् द्वारा उषा की स्तुति की। अन्तिम ऋचा के बोलते ही उसके पाश (बन्धन) खुल गये। उधर हरिश्चन्द्र का जलोदर रोग भी दूर होगया और वरुणपाश से मुक्त होकर स्वस्थ होगया।

ऋत्विजों ने कहा—हे शुनःशेप! इस दिन की संस्था (यज्ञ) के तुम्हीं अधिकारी हो। शुनःशेप ने अंजःसव का निष्पादन किया। चार ऋचाओं द्वारा

उसने सोमसवन किया। 'यच्चिद्धि' ऋचा द्वारा उसने द्रोणकलश को पवित्र किया 'उच्छिष्टं चम्वोर्भर' इस ऋचा से उसमें सोम भरना शुरु किया। पूर्व चार ऋचाओं द्वारा सस्वाहाकार आहुतियां जुहू द्वारा दीं। तदनन्तर अवभृथ किया। 'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्' इन दो ऋचाओं द्वारा आहवनीयाग्नि का उपस्थापन किया।

विश्वामित्रेण शुनःशेपस्य रक्षणम्—

शुनश्चिेच्छेप निदित सहस्रदित्यथ ह शुनःशेपो विश्वामित्रस्यांकमाससाद। स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहीति। नेति होवाच विश्वामित्रो देवा वा इमं मह्यमरासतेति। स ह देवरातो वैश्वामित्र आस। तस्यैते कापिलेयाः बाभ्रवाः। स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्त्ववेहि विहूयावहा इति। स होवाचाजीगर्तः सौयवसिरांगिरसो जन्मनाऽस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः। ऋषे पैतामहस्तं मापगाः शुनःशेपोऽदर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत। गवां त्रीणि शतानि त्वमवृणीथ मंदगिर इति। स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्तद्वै मा तात तपति पापं कर्म मया कृतम्। तदहं निह्नवे तुभ्यं प्रति यन्तु शता गवामिति। स होवाच शुनःशेपो यः सकृत् पापकं कुर्यात्कुर्यादेनत्ततोऽपरं शौद्रान्न्यायाद् संधेयं त्वया कृतमित्यसंधेयमिति ह विश्वामित्र उपपपाद। स होवाच भीम एव सौयवसिः शासेन विशिशासिषुः। अस्थानमैतस्य पुत्रो भूर्ममैवोपेहि पुत्रतामिति। स होवाच शुनःशेपः स वै यथा नो ज्ञपया राजपुत्रः। तथा वद। यथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रतामिति।

अर्थ—शुनःशेप देवस्तुति के पश्चात् विश्वामित्र की गोद में बैठ गया। सूयवस के पुत्र अजीगर्त ने कहा—हे ऋषे! मेरे पुत्र को मुझे ही वापस दे दो। विश्वामित्र ने प्रत्युत्तर दिया—'नहीं', क्योंकि देवों ने मुझे यह दिया है। अतः शुनःशेप 'देवरात वैश्वामित्र' कहलाया। उसके वंशज ब्राह्मण 'कापिलेय' और 'बाभ्रव' हुए।

सौयवसि अजीगर्त ने पुनः निवेदन किया—हे पुत्र! हमारे पास आ जाओ। हम दोनों (माता-पिता) तुमको बुलाते हैं। वह सौयवसि अजीगर्त बोला—मेरा पुत्र सौयवसि (का नाती) और अंगिरा वंश का विद्वान् ऋषि है। हे ऋषे! उसे पैतामह (वंश) से मत हटाओ। विश्वामित्र ने कहा—शुनःशेप तथा अन्यों ने तुमको तलवार हाथ में लिये देखा था जोकि शूद्रों में भी नहीं सुना गया। तुम

मन्दबुद्धि हो, क्योंकि तुमने तीन सौ गायों में इसे बेच दिया। सौयवसि अजीगर्त ने कहा—यह घोर पाप मुझे तप्त कर रहा है।" शुनःशेप ने कहा—जो एक बार पाप कर सकता है वह दुबारा भी वही पाप कर सकता। यह अत्यन्त दुःखदायी है और इस पर समझौता नहीं किया जा सकता। विश्वामित्र ने कहा कि तुम्हारे पाप कर्म से अब कोई भी समझौता हो नहीं सकता। हे अजीगर्त ! तुम्हारा कर्म अति भयंकर था, जो तुम तलवार से अपने पुत्र को काटना चाहते थे। अब यह तुम्हारा पुत्र नहीं है यह मेरी पुत्रता को प्राप्त करेगा।

देवरातः (शुनःशेपः) वैश्वामित्रः—पञ्चाशत् म्लेच्छा वैश्वामित्राश्च—

स होवाच शुनःशेपः स वै यथा नो ज्ञपञ्जा राजपुत्रः। तथा वद। यथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रतामिति। स होवाच विश्वामित्रो ज्येष्ठो मे त्वं पुत्राणां स्यास्तव श्रेष्ठाः प्रजाः स्यात्। उपेयादेवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय इति। स होवाच शुनःशेपः संज्ञानेषु वै ब्रूयात्सौहार्दाय मे श्रियै यथाहं भरतर्षभोपेयां तव पुत्रतामित्यथ ह। विश्वामित्रः पुत्रानामन्त्रयामास 'मधुच्छन्दाः शृणोतन ! ऋषभो रेणुरष्टकः। ये के च भ्रातरः स्थनस्मै ज्यैष्ठाय कल्पध्वमिति।

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः। पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पंचाशत्कनीयांसस्तद्ये न ते कुशलं मेनिरे ताननुव्याजहार। तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः। स होवाच मधुच्छन्दाः पञ्चाशता सार्धं यन्नः पिता संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्। पुरस्त्वा सर्वे कुर्महे। त्वामन्वचो वयं स्मसीत्यथ ह विश्वामित्रः प्रतीतः पुत्रांस्तुष्टाव। ते वै पुत्राः पशुमन्तो वीरवन्तो भविष्यथ। ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरतमकर्त मा पुर एत्रा वीरवन्तो देवरातेन गाथिना। सर्वे राध्या स्थ पुत्रा एष वः सद् विवाचनम्।

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वितो।
युष्मांश्च दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि।
ते सम्यञ्चो वैश्वामित्राः सर्वे साकं सरातयः।
देवराताय तस्थिरे धृत्यै श्रैष्ठाय गाथिना ॥१॥
अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः।
जह्नूनां चाधिपत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम् ॥२॥

शौनःशेपमाख्यानं परःशतगाथापरिमितं तद्धोता राज्ञेऽभिषिक्तायाचष्टे। हिरण्यकशिपावासीन आचष्टे, हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृह्णाति यशो तथेति मानुषं दैवेन चैवेनं तन्मानुषेण च पापादेनसः प्रमुञ्चति । तस्माद्यो राजा जीनजिति स्याद् आख्यापयेतैतच्छौनःशेपमाख्यानं न ह्यस्मिन्नल्पत्रनेनः परिशिष्येत ।

सहस्रमाख्यात्रे दद्याच्छतं प्रतिगरित्र एते चैवासने ।
श्वेतश्चाश्वतरो रथो होतुः । पुत्रांल्लभन्ते ह पुत्रान् ॥

अर्थ—शुनःशेप बोला—हे राजर्षे ! जैसा आपने कहा है, वह उचित है । मैं आंगिरस होते हुए आपकी पुत्रता प्राप्त करूं । विश्वामित्र ने कहा—हे शुनःशेप ! तुम मेरे पुत्रों में ज्येष्ठ माने जाओगे। तुम्हारी प्रजा भी श्रेष्ठ होगी । इसी प्रकार तुम मेरे (श्रेष्ठ) दायभाग के अधिकारी होगे । अतः तुमसे उपमन्त्रण करता हूं ।

शुनःशेप ने निवेदन किया—हे महर्षे ! मेरी श्री और सौहार्द हेतु आप अपने विद्वान् पुत्रों को अपना मन्तव्य बता दें कि हे भरतश्रेष्ठ (उत्तम पुरोहित) मैं आपका पुत्र बन गया हूं ।" विश्वामित्र ने अपने सभी पुत्रों को बुलाया । हे मधुच्छन्दाः ! आदि पुत्रो ! सुनो । ऋषभ रेणु अष्टक आदि सभी सुनो । जितने भी तुम भाई हो वे सभी इस 'देवरात' शुनःशेप को अपना बड़ा भाई मानो ।

विश्वामित्र के एक सौ एक (१०१) पुत्र थे । पचास पुत्र मधुच्छन्दा से बड़े थे और पचास पुत्र छोटे थे । जिन पचास (ज्येष्ठ) पुत्रों को यह बात ठीक नहीं लगी, उनसे विश्वामित्र ने कहा । तुम्हारी प्रजा (सन्तान) खाई जायेगी (या नष्ट भ्रष्ट) हो जायेगी । उनके वंशज आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मूतिब म्लेच्छ होगये । वे (आर्यावर्त) की सीमा पर दस्यु बनकर रहने लगे ।

मधुच्छन्दा ने कहा—हमारे पिताजी ने जो कुछ प्रतिज्ञा की है, मैं अपने पचास छोटे भाइयों सहित मानता हूं । आपके सामने यह सब मानेंगे । हम आपके आज्ञावर्ती हैं । यह जानकर विश्वामित्र ने पुत्रों की स्तुति प्रशंसा या आशीर्वाद दिया—ये मेरे आज्ञाकारी पचास पुत्र पशुमान्, (धनवान्) और वीर होंगे । जिन्होंने मेरा सम्मान करके मुझे अनुगृहीत किया है, वे वीरपुत्र गाथी देवरात के नेतृत्व में रहेंगे । वे सब आराधनीय (प्रशंसनीय) हैं । हे पुत्रो ! तुम्हारा निर्णय अति उत्तम है । हे कुशिक (कौशिक) वीरो ! देवरात (शुनःशेप) मेरे दायभाग और वेद विद्या का हिस्सेदार होगा, यह जानो ।

वे सभी वैश्वामित्र (कौशिक) गण अपने धन सम्पत्ति और विद्या के साथ, देवरात के अनुगामी बने। उन गाथी देवरात के श्रेष्ठ्य को उन्होंने धैर्यपूर्वक माना।

यह (ऐतिहासिक तथ्य) पढ़ा और सुना जाता है कि देवरात जह्नुवंशियों (कौशिकों) के आधिपत्य (धन) और वेदविद्या दोनों सम्पत्तियों का उत्तराधिकारी ऋषि था।

इस शौन:शेपाख्यान को सौ गाथाओं या अपरिमित गाथाओं के साथ होता मूर्धाभिषक्ति राजा को सुनायें। हिरण्यकशिपु (सोने के आसन) पर बैठकर सुनायें और सोने के आसन पर बैठकर दान ग्रहण करें। इससे उसका भी लौकिक यश बढ़ता है। दैवीय और मानुष पाप से मुक्त होता है। अत: जो दिग्विजयी राजा इस शौन:शेपाख्यान को सुनता है, उसमें थोड़ा भी पाप अवशिष्ट नहीं रहता। सहस्र (सुवर्ण मुद्रायें या गायें) आख्यान सुनानेवाले को दें और सौ का दान प्रतिगर्ता (स्तुति) को देवे और साथ में उन सोने के आसनों को भी उन्हीं को दान में दे देवे। श्वेत अश्वतरयुक्त रथ होता को दान में दे। वह राजा पुत्रों को प्राप्त करता है।

ऐतरेयब्राह्मणेऽन्ये प्रकीर्णका ऐतिह्यसन्दर्भाः

विश्वन्तर: सौषद्मन:–

विश्वन्तरो ह सौषद्मनः श्यापर्णान् परिचक्षाणो विश्यापर्णं यज्ञमाजह्रे। तद्धानुबुध्य श्यापर्णास्ते यज्ञमाजग्मुस्ते ह। तदन्त-र्वेद्यासाञ्चक्रिरे। तान् ह दृष्ट्वोवाच पापस्य वा इमे कर्मणः कर्त्तार आसतेऽपूतायै वाचो वदितारो यच्छ्यापर्णा इमानुत्थापय-तेमे मेऽन्तर्वेदिमासिषतेति। रुरुविरे ये तेभ्यो भूतवीरेभ्योऽसितमृगाः कश्यपानां सोमपीथमभिजग्मुः। पारीक्षितस्य जनमेजयस्य विकश्यपे यज्ञे तैस्ते तत्र वीरवन्त आसुः। कस्वित्सोऽस्माकास्ति वीरो य इमं सोमपीथमभिजेष्यतीत्यहमस्मि वो वीर इति होवाच रामो मार्गवेयो रामो हास मार्गवेयो अनूचान श्यापर्णीयस्तेषां होत्तिष्ठतामुवाचापि नु राजन्नित्थं वेदेरुत्थापयन्तीति। (७।५।१)

अर्थ विश्वन्तरसौषद्मन ने श्यापर्णों (ब्राह्मणों) को देखते हुए विश्यापर्ण यज्ञ का अनुष्ठान किया। इसको जानकर श्यापर्ण ब्राह्मणगण उसके यज्ञ में आये। वे राजा के यज्ञ की अन्तर्वेदी में बैठ गये। उनको देखते ही राजा ने कहा—ये पाप के कर्त्ता, अपवित्र वाणी के बोलनेवाले अन्तर्वेदी में बैठे हैं, ऐसा शोर मचाया।

उनमें से जो अधिक वीर असितमृग ब्राह्मण कश्यपों के सोमपीथ यज्ञ में आये थे। पारीक्षित जनमेजय के विना कश्यपों के यज्ञ में जो वीर थे, उनमें से कोई ऐसा वीर है जो इस सोमपीथ यज्ञ को जीते। इतने में राम मार्गवेय बोला—मैं वह वीर हूं। राम मार्गवेय श्यापर्णीय अनूचान (वेदज्ञ) था। वह उठते हुए ब्राह्मणों से बोला—इन ऐसे यज्ञविद् को वेदी से उठाते हैं।

यज्ञस्य ऋषिपरम्परा–

भक्षं प्रोवाच रामो मार्गवेयो विश्वन्तराय सौपद्मनाय, तस्मिन् होवाच प्रोक्ते सहस्रमु ह ब्राह्मणास्तुभ्यं दध्मः। स श्यापर्ण उ मे यज्ञ इत्येतमु हैव प्रोवाच तुरः कावषेयो जनमेजयाय पारिक्षितायैतमु हैव प्रोचतुः पर्वतनारदौ सोमकाय साहदेव्याय सहदेवाय साञ्जयाय बभ्रवे दैवावृधाय भीमाय वैदर्भाय नग्नजिते गान्धारायैतमु हैव प्रोवाचाग्निः सनश्रुतायारिन्दमाय क्रतुविदे जानकाय। एतमु हैव प्रोवाच वसिष्ठः सुदासे पैजवनाय। ते ह ते सर्व एव महज्जग्मुरेतं भक्षं भक्षयित्वा। सर्वे हैव महाराजा ग्रासुः।

(७।५।८)

अर्थ—राम मार्गवेय ने सौषद्मन विश्वन्तर को बताया उसके प्रोक्त होने पर सहस्रों ब्राह्मण तुम्हारा ध्यान करेंगे। तुर कावषेय ने जनमेजय पारीक्षित को बताया। पर्वत नारद ऋषियों ने सोमक साहदेव्य सहदेव साञ्जय, बभ्रु दैवावृध, भीम वैदर्भ और नग्नजित् गान्धार को बताया। अग्नि (अंगिरा) ने सनश्रुत अरिन्दम और क्रतुविद् गान्धार को बताया। वसिष्ठ ने सुदास (ऐक्ष्वाक) पैजवन को बताया। सब महान् स्थान को प्राप्त हुए भक्ष को खाकर। सभी महान् राजा थे।

असुराणां दिग्विजयः–

देवासुरा वा एषु लोकेषु संयेतिरे। त एतास्यां प्राच्यां दिशि येतिरे तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते दक्षिणस्यां दिशि येतिरे तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते प्रतीच्यां दिशि येतिरे तांस्तेऽसुरा अजयंस्त एतस्मिन्नवान्तरदेशे येतिरे। य एष प्राङुदङ् ते ह ततो जिग्युः। (८।२।६)

अर्थ—देवासुरगण युद्ध में पृथिवी के लोगों को वश में करने का प्रयत्न कर रहे थे। देवों ने प्राची, दक्षिण, पश्चिम और मध्य देश में प्रयत्न किया, परन्तु असुर ही जीत गये। तदनन्तर देवों ने पूर्वोत्तर दिशा में प्रयत्न किया, तब वे असुरों पर विजयी रहे।

अष्टविधानि राज्यानि—

साम्राज्याय भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाधिपत्याय (८।३।२)

अर्थ—(आठ प्रकार की शासन विधियां)—साम्राज्य (सम्राट्), भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य (गणतन्त्र) पारमेष्ठ्य, राज्य, माहाराज्य और आधिपत्य राज्य।

सत्वताः—

दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्याय। (८।३।३)

अर्थ—दक्षिण दिशा में भौज्यराज्य के सत्वतवंशीय राजा हैं।

उत्तरकुरवः—

परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्याय ॥ (८।३।३)

अर्थ—हिमालय के पार (दूर-उत्तर में) उत्तरकुरु और उत्तरमद्र (सीक्यांग चीन, साइबेरिया और मीडिया-ईरान) वैराज्य हैं।

कुरुपञ्चालाः—

ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजान · राज्याय। (८।३।३)

अर्थ—ध्रुव (स्थिर) मध्यमादिश (मध्यदेश) में कुरुपाञ्चालों का राज्य है।

ऐन्द्रेण महाभिषेकेणाभिषिक्ता सार्वभौमाः राजानः जनमेजयः पारिक्षितः—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो जनमेजयं परिक्षितमभिषिषेच। तस्मादु जनमेजयः पारिक्षितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। तदेषामियं गाथा गीयते—

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।

अश्वं बबन्ध सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥

अर्थ—ऐन्द्र महाभिषेक द्वारा तुर कावषेय (कवष एलूषपुत्र) ने जनमेजय पारिक्षित (कौरव, द्वितीय) का राज्याभिषेक किया। जनमेजय पारिक्षित ने अश्वमेध यज्ञ किया और समस्त पृथ्वी को जीता। इस सम्बन्ध में यह गाथा गाई जाती है—"आसन्दीवती स्थान में धनधान्य देनेवाला (या धान्य खानेवाला) रुक्मी (स्वर्णमण्डित) हरितमालावाला—सारंग अश्व जनमेजय ने देवों के लिये बांधा।

शार्यातः मानवः—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शार्यातं मानवमभिषिषेच। तस्मादु शार्यातो मानवः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।

अर्थ—च्यवन भार्गव ने इसी ऐन्द्र महाभिषेक से शार्यात मानव (मनुपुत्र) का राज्याभिषेक किया, तब शार्यात मानव ने समस्त पृथ्वी को जीतते हुए अश्वमेध यज्ञ किया।

शतानीकः सात्राजितः—

देवानां हापि सत्रे गृहपतिरेतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण सोमशुष्मो वाजरत्नायनः शतानीकं सात्राजितमभिषिषेच। तस्माद् शतानीकः सात्राजितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।

अर्थ—देवों के सत्र में गृहपति सोमशुष्म वाजरत्नायन ऋषि ने शतानीक सात्राजित (सत्राजित पुत्र) का ऐन्द्र महाभिषेक सम्पन्न किया। तदनन्तर शतानीक सात्राजित ने समस्त पृथिवी को जीतते हुए अश्वमेध किया।

आम्बाष्ठाः—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदौ आम्बष्ठाभिषिषिचतुस्तद्वाम्बाष्ठा समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्यनेजे।

अर्थ—इसी ऐन्द्र महाभिषेक से आम्बष्ठा का राज्याभिषेक पर्वत नारद ने किया, तब उसने अश्वमेध करके समस्त पृथिवी को जीता।

युधांश्रौष्टिः औग्रसेनिः—

पर्वतनारदौ युधांश्रौष्टिमौग्रसेनिमभिषिषिचतुः।

अर्थ—पर्वत नारद ऋषियों ने उग्रसेन के पुत्र युधांश्रौष्टि का ऐन्द्र महाभिषेक किया।

विश्वकर्मा भौवनः—

कश्यपो विश्वकर्माणं भौवनमभिषिषेच। तस्माद् विश्वकर्मा भौवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। भूमिर्ह जगावित्युदाहरन्ति—

न मां मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन् भौवन मां दिदासिथ।
निमङ्क्ष्येऽहं सलिलस्य मध्ये मोघस्त एष कश्यपस्य सङ्गरः॥

अर्थ—कश्यप ऋषि ने ऐन्द्र महाभिषेक से विश्वकर्मा भौवन का राज्याभिषेक किया। तब अश्वमेध करते हुए उसने समस्त पृथिवी को जीता। भूमि ने यह गीत गाया "(ऐसा इतिहासविद्) उदाहृत करते हैं"—हे विश्वकर्मन् भौवन (भुवन के पुत्र) तुमने मुझे (कश्यप के लिये) दान में दिया है। लेकिन मुझे कोई भी मनष्य दान में नहीं दे सकता। क्योंकि मैं (शीघ्र-कालान्तर में) पानी (समुद्र) में डूब जाऊंगी और तुम्हारी प्रतिज्ञा-कश्यप के प्रति व्यर्थ जायेगी।"

सुदासः पैजवनः (ऐक्ष्वाकः)—

वसिष्ठः सुदासं पैजवनमभिषिषेच ।

अर्थ—वसिष्ठ—(वासिष्ठ=शक्ति का पिता) ने सुदास पैजवन (ऐक्ष्वाक कल्माषपाद सौदास का पिता) का अभिषेक किया था ।

मरुत्त आविक्षितः—

संवर्त आङ्गिरसो मरुत्तमाविक्षितमभिषिषेच ····· अश्वेन च मेध्येनेजे । तदेष श्लोकोऽभिगीतो—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।

आविक्षितस्य कामप्रे विश्वेदेवाः सभासदः ।। इति

अर्थ—मरुत्त आविक्षित के यज्ञ में मरुद्देवगण भोजन परोसनेवाले थे । वे उसी के घर में रहते थे । विश्वेदेवगण इच्छापूरक मरुत्त के सभासद् थे ।

वैरोचनो अङ्गः (बलिः) बालेयो वा—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण आत्रेयोऽङ्गमभिषिषेच । तस्मादङ्गः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे । स होवाच–
"अलोपाङ्गो दश नागसहस्राणि दश दासीसहस्राणि ददामि ते ।
ब्राह्मणोप माऽस्मिन् यज्ञे ह्वयस्वेति ।"

तदप्येते श्लोका अभिगीताः—

याभिर्गोभिरुदमयं प्रैयमेधा अयाजयन् ।
द्वे द्वे सहस्रे बड्वानामात्रेयो मध्यतोऽददात् ।
अष्टाशीति सहस्राणि श्वेतान् वैरोचनो हयान् ।
प्रष्टीन् निश्चृत्य प्रायच्छद् यजमाने पुरोहिते ।
देशाद्देशात्समीहानां सर्वासामाढ्यदुहितृणाम् ।
दशाददात्सहस्राण्यात्रेयो निष्ककण्ठ्यः ।
दश नागसहस्राणि दत्वात्रेयोऽवचत्नुके ।
श्रान्तः परिकुटान् प्रैप्सद् दानेनाङ्गस्य ब्राह्मणः ।
शतं तुभ्यं शतं तुभ्यमिति स्मैव प्रताम्यति ।
सहस्रं तुभ्यमित्युक्त्वा प्राणान्त्समप्रतिपद्यत ।

अर्थ—आत्रेय ऋषि ने ऐन्द्र महाभिषेक द्वारा अंगराज (बलि या बालेय वैरोचन) क्षत्रियराजा का अभिषेक किया । तदनन्तर अंग राजा ने समस्त पृथिवी को जीतते हुए अश्वमेध यज्ञ किया । राजा अंग (वैरोचन बलि या बालेय) ने पुरोहित से कहा—"मैं दशसहस्र हाथी और दशसहस्र दासियां आपको दूंगा । यज्ञ अलोपांग (पूर्ण) होना चाहिये । इस यज्ञ में किसी (अन्य पुरोहित) को बुलाना न पड़े ।"

इस सम्बन्ध में ये गाथा श्लोक प्रसिद्ध हैं—

"जिन गायों से प्रैयमेध (काण्वों) ने उदमय राजा का यज्ञ कराया था। उनके मध्य में दो दो सहस्र श्रेष्ठ गायें आत्रेय ने (वैरोचन वलि अंग) के यज्ञ में दान दीं। अट्ठासी हजार श्वेत अश्व, प्रष्टि (पृष्ठगामी) घोड़े के साथ यज्ञ करने वाले पुरोहित को दी गई। दश सहस्र अलंकृत कन्यायें जो विभिन्न देशों से लाई गई थीं, वे स्वर्णमालाधारिणी (ब्राह्मणों को दान में) दी गईं। अंगराज के दान को देते हुए थककर आत्रेय ऋषि हाथियों की ओर देखने लगते थे। आत्रेय ने दश हजार हाथी अवचत्नुक स्थान में दान दिये। 'सौ हाथी तुम्हारे लिये' 'सौ तुम्हारे लिये' ऐसा कहते कहते आत्रेय ऋषि बेचैन हो जाते थे। जब वह 'एक हजार' हाथी दाने में देते थे, तब उनके प्राण वापस आते थे।"

भरतः दौष्यन्तिः–

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच। तस्माद् ह भरतो दौष्यन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च म मेध्येनेजे।

तदप्येते श्लोका अभिगीताः—
हिरण्येन परीवृतान् कृष्णाञ्छुक्लदतो मृगान्।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च।
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।
यस्मिन्त्सहस्रं ब्राह्मणा बद्वशो गा विभेजिरे।
अष्टासप्तर्ति भरतो दौष्यन्तेर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपञ्चाशतं हयान्।
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाऽश्वान् बध्वाय मेध्यान्।
दौष्यन्तिरत्यगाद् राज्ञो मायां मायवत्तरः।
महत्कर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्यं इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः।

अर्थ—सुवर्ण से अलंकृत श्वेतदन्त वाले सात सौ श्रेष्ठ हाथी मष्णार (मिस्र) देश में भरत ने दान में दिये। साचीगुण में भरत ने अग्निचयन (यज्ञ) किया, जिसमें ब्राह्मणों ने सहस्रों गायें प्राप्त की। दौष्यन्ति भरत ने अट्ठहत्तर (७८) अश्वमेध यज्ञ यमुना तट पर और पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ गंगातट पर किये। राजमाया में श्रेष्ठतर राजा भरत दौष्यन्ति १३३ अश्वमेध करके सभी राजाओं से आगे निकल गया। भरतसदृश यज्ञ (या कर्म) न तो पूर्व और न पश्चात् किसी

पुरुष ने नहीं किये। पूर्व या अपरजन उसी प्रकार उसके कर्मों को प्राप्त नहीं कर सकते जिस प्रकार मनुष्य हाथ से स्वर्ग या आकाश को नहीं पकड़ सकता।

दुर्मुखः पाञ्चालः—

एतं ह वा ऐन्द्रं महाभिषेकं बृहदुक्थ ऋषि दुर्मुखाय पाञ्चालाय प्रोवाच। तस्मादु दुर्मुखः पांचालो राजा सन् विद्यया समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयाय।

अर्थ—बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पांचाल को ऐन्द्र महाभिषेक का प्रवचन किया। उसने उस विद्या से समस्त पृथिवी को जीत लिया।

अत्यरातिः जानन्तिः—

एतं ह वा ऐन्द्रं महाभिषेकं वासिष्ठः सात्यहव्योऽत्यरातये जानन्तपये प्रोवाच। तस्माद् अत्यरातिर्जानन्तिरपि राजा सन् विद्यया समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयाय। स वासिष्ठः सात्य-हव्योऽजैषीर्वै समन्तं सर्वतः पृथिवीं महन् मा गमयेति स होवाचा-त्यरातिर्जानन्तिरपि यदा ब्राह्मणोत्तरकुरून् जयेयमथ त्वमु हैव पृथिव्यै राजा स्याः सेनापतिरेव तेऽहं स्यामिति। स होवाच वासिष्ठः सात्यहव्यो देवक्षेत्रं वैतन्न मर्त्यो जेतुमर्हं त्यद्रुक्षो वै म आऽत इदं दद्म इति हात्यरातिं जानन्तपिमात्तवीर्यं निःशुक्रममित्रतपनः शुष्मिणः शैब्यो राजा जघान। (८।४।७–९)

अर्थ—इस ऐन्द्र महाभिषेक (विधान को) वासिष्ठ सात्यहव्य ने अत्यराति जानन्तपि को बताया। उस विद्या से अत्यराति जानन्तपि राजा होते हुए समस्त पृथिवी को जीत लिया। वासिष्ठ सात्यहव्य ने राजा से कहा आपने प्रायः समस्त पृथिवी जीत ली है अब और आगे मत जाओ। राजा ने कहा मैं उत्तर कुरु देश को जीतना चाहता हूं। आप पृथ्वी के राजा बनें और मैं आपका सेनापति बनूंगा। वह उत्तर कुरु देवक्षेत्र है, वहां आप न जाइये, मनुष्य उसको नहीं जीत सकता। परन्तु अत्यराति नहीं माना और उसको युद्ध में शत्रुघाती शुष्मी शैब्य ने मार डाला।

———

[८]

शांखायनब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

वसिष्ठ यज्ञ—

वसिष्ठोऽकामयत हतपुत्रः प्रजायेय प्रजया पशुभिरभिसौदासान-भिभवेयमिति। स एतं यज्ञक्रतुमपश्यत। (४।४-८)

अर्थ—वसिष्ठ ने इच्छा की कि पुत्र के मर जाने पर मैं (पुनः) प्रजा और पशुओं से सम्पन्न होऊं तथा उससे सौदासों (ऐक्ष्वाकों) को पराजित करूं। अतः उसने इस यज्ञ का प्रवर्तन किया।

केशी दाल्भ्यः—

केशी ह दाल्भ्यो दीक्षितो निषसाद तं ह हिरण्मयः शकुन आपत्यो-वाचादीक्षितो वा असि दीक्षामहं वेद तां ते ब्रवाणि। सकृद्यजे तस्य क्षयाद् बिभेमि सकृदिष्टस्याहो त्वमक्षितिं वेत्थ। तां त्वं मह्यमिति। स ह तथेत्योवाच। तौ ह संप्रोचाते। स ह आसोलो वा वार्ष्णिवृद्ध इटन्वा काव्यः शिखण्डी वा याज्ञसेनः यो वा स आस स आस। तत्केशी ह दाल्भ्यो हिरण्मयाय शकुनाय सकृदिष्ट-स्याक्षितिं प्रोवाच। (७।४)

अर्थ—(पांचाल देश का राजा) केशी दाल्भ्य यज्ञ में दीक्षित होकर बैठा था। उसके पास एक सुवर्ण पक्षी उड़कर आया और बोला – हे राजन्! आप अदीक्षित हैं। मैं दीक्षा जानता हूं, वह मैं आपसे कहूंगा। एक बार एक करो, उसके क्षय से मैं डरता हूं। अहो तुम एक बार के यज्ञ के क्षय की अक्षिति को जानते हो। वह तुम मुझे बताओ। उसने कहा 'तथास्तु'। दोनों ने ही प्रवचन किया। वह वार्ष्णिवृद्ध आसोल, अथवा भ्रमणशील काव्य शिखण्डी या याज्ञसेन था। जो था, वही था। तब केशी दाल्भ्य ने हिरण्मय पक्षी को एक बार के यज्ञ की अक्षिति (अविनाश) को बताया।

कवष एलूषः—

माध्यमाः सरस्वत्यां सत्रमासत तद्धापि कवषो मध्ये निषसाद। तं हेम उपोदुर्दास्या वै त्वं पुत्रोऽसि। न वयं त्वया सह भक्षमिष्याम

इति स ह क्रुद्धः प्रद्रवत् सरस्वतीमेतेन सूक्तेन तुष्टाव। तं हेयमन्वियाय। त ऽ हेमे निरागा इव मेनिरे। तं हान्वावृत्योचुर्ऋषे। नमस्ते अस्तु मा नो हिंसीस्त्वं वै नः श्रेष्ठोऽसि। यं त्वेयमन्वेति इति। तं ह ज्ञपज्ञांचक्रुस्तस्य ह क्रोधं विनिन्युः। स कवषस्यैष महिमा सूक्तस्य। (१२।३)

अर्थ—मध्यमसंज्ञक ऋषिगण सरस्वती के तट पर यज्ञ कर रहे थे। उनके बीच में कवष (ऐलूष) बैठा था। वे उससे बोले—हे कवष ! तू दासी का पुत्र है। हम तुम्हारे साथ भक्षण नहीं करेंगे। कवष क्रुद्ध होकर वहां से चला गया। उसने सूक्त से सरस्वती की वन्दना की। वह सरस्वती उसी के आश्रम के साथ बहने लगी। तब अन्य ऋषियों ने कवष को निष्पाप माना और उसके पास जाकर बोले। हे ऋषे ! आपको हम नमस्कार करते हैं। हमारी आप हानि न सोचें। आप श्रेष्ठ हैं। क्योंकि सरस्वती नदी ने आपका अनुसरण किया है। इस कवष से क्षमा मांगी और उसके रोष को दूर कर दिया।

प्रतर्दनः दैवोदासिः, जातूकर्ण्यः, अलीकयुश्च—

अथ ह स्माह दैवोदासिः प्रतर्दनो नैमिषीयाणां सत्रमुपगम्योपासद्य विचिकित्सां पप्रच्छ।...त उ ह तूष्णीमासुस्तेषामलीकयुर्वाचस्पतो ब्रह्मास स होवाच नाहमेतद्वेद। हन्त पूर्वेषामाचार्यं स्थविरं जातूकर्ण्यं पृच्छानीति। (२६।५)

अर्थ—दिवोदास (काशिराज) का पुत्र प्रतर्दन नैमिषारण्यवासी ऋषियों के सत्र में आकर और वहां बैठकर अपनी शंका (जिज्ञासा) का समाधान पूछने लगा। वे सब वहां चुपचाप बैठे रहे। उनमें वाचस्पति का पुत्र अलीकयु ब्रह्मा था। वह बोला मैं यह नहीं जानता। चलो चलें और पूर्वाचार्यों में अतिवृद्ध जातूकर्ण्य ऋषि से पूछें।

ऐतशः, ऐतिशायनाश्च—

ऐतशो ह वै मुनिर्यज्ञस्यायुरदर्शत् स ह पुत्रानुवाच—पुत्रका यज्ञस्यायुरदर्शंस्तदभिलपिष्यामि 'मा मा दृप्तं मंध्वमिति। ते ह तथेत्यूचुस्तद्धाभिललाप। तस्य ह ज्येष्ठः पुत्रोऽभिसृत्य मुखमपि जग्राह दृपद्वै नः पितेति। तं होवाच धिक्त्वा। जाल्मास्तु पापिष्ठां ते प्रजां करोमि। यद्वै मे जाल्म मुखं नागृहीष्यः शतायुषं गामकरिष्यं सहस्रायुषं पुरुषमिति। तस्मादैतशायना आजानेयाः सन्तो भृगूणां पापिष्ठा पित्रा हि शप्ताः स्वया देवतया स्वेन प्रजापतिना। (३५।५)

अर्थ—ऐतशमुनि ने यज्ञ की आयु देख (जान) ली। उसने पुत्रों से कहा—पुत्रो ! मैंने यज्ञ की आयु जान ली है। मैं वहां बताऊंगा, मुझे दृप्त (घमण्डी) मत समझना। उन्होंने कहा ठीक है। ऐतश ने सभामध्य यह बात कही या कहना ही चाहता था कि उसके ज्येष्ठ पुत्र ने झपटकर पिता को मुख पकड़कर बन्द कर दिया। पिता ने कहा जाल्म (जालिम) तेरे को धिक्कार है। मैं तेरी सन्तान को पापी बनाता हूं। यदि तूने मेरे मुख को नहीं पकड़ा होता तो तेरी गायों को शतायु और तेरी सन्तति को सहस्रवर्ष आयु वाली करता।"

अतः भृगुओं में ऐतिशायन ब्राह्मणगण बलिष्ठ होते हुए भी घोर पापकर्म करनेवाले होते हैं। जो अपने ही पिता या प्रजापति (पूर्वज-देवतुल्य ऐतशमुनि) द्वारा शप्त हैं।

———

[६]

तैत्तिरीयब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

मुण्डिभ औदन्यवः (३।९।१५) मुण्डिभ औदन्यव।

प्लक्षो दय्यांपातिः—

अत्यंहो हाऽऽरुणिः। ब्रह्मचारिणे प्रश्नान् प्रोच्य प्रजिघाय। परेहि प्लक्ष दय्यांपातिं पृच्छ। (३।१०।९।३)

अर्थ—अहंकारी आरुणि ने ब्रह्मचारी को प्रश्न बताकर भेजा—जाओ ! प्लक्ष दय्यांपति के पास।

अहीन आश्वथ्यः—सावित्रं विदांचकार (३।१०।९।१०)

देवभागः श्रौतर्षः—

सावित्रं विदांचकार। (३।१०।९।११)

अर्थ—अहीन आश्वथ्य ने सावित्र को जाना। देवभाग श्रौतर्ष ने भी सावित्र को जाना।

शूषो वार्ष्णेयः—

आदित्येन समाजगाम। (३।१०।१०।१५)

अर्थ—शूष वार्ष्णेय आदित्यलोक में पहुंचा।

इन्द्रशिष्यः भरद्वाजः—

भरद्वाजो ह त्रिभिरायुभिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णि स्थविरं शयानम् इन्द्र उपव्रज्योवाच। भरद्वाज यत्ते चतुर्थमायुर्दद्याम् किमनेन कुर्या इति। ब्रह्मचर्यमेवैनेन चरेयमिति होवाच।

(३।१०।११।३)

अर्थ—भरद्वाज (बृहस्पतिपुत्र—आंगिरस) तीन आयु (=३०० वर्ष) पर्यन्त (अपने गुरु इन्द्र के पास) ब्रह्मचारी रहा अर्थात् वेद और विद्याओं का अध्ययन करता रहा। उस अतिवृद्धतुल्य कृशकाय जीर्ण भरद्वाज के पास आकर इन्द्र ने कहा—हे भरद्वाज! यदि मैं आपको चौथी आयु और दूं तो तुम उससे क्या करोगे। भरद्वाज ने उत्तर दिया—मैं उस आयु में भी वेद और विद्या का अध्ययन ही करूंगा—ब्रह्म का चरण ही करूंगा।

नचिकेताः—

उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। तं ह कुमारं सन्तम्। दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश। स होवाच। ततः कस्मै दास्यतीति। द्वितीयं तृतीयं च स होवाच।

(३।११।८।१)

अर्थ—वाजश्रवा आचार्य ने सर्ववेदस् यज्ञ में सर्वस्व दान कर दिया। उसके नचिकेता नाम का पुत्र था। वह अभी कुमारावस्था में। उसकी अन्तरात्मा में श्रद्धा का प्रवेश हुआ। उसने पिताजी से पूछा—आप मुझे किसको देंगे। उसने दो बार और तीन बार यह बात पूछी।…

———

[१०]

शतपथब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

मनुः श्राद्धदेवः किलाताकुली चासुरौ—

मनोर्ह वाऽऋषभ आस। तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नी वाक्प्रविष्टा तस्य ह श्वसथाद्रवथादसुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति। ते हासुरा समूदिरे पापं बत नोऽयमृषभ सचते। कथं न्विमं दभ्नुयामेति किलाताकुली इति हासुरब्रह्मा वासुतुः।

तौ होचतुः। श्राद्धदेवो वै मनुरावं नु वेदावेति। तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति। केनेति। अनेनर्षभेणेति। तथेति। तस्यालब्धस्य सा वागपचक्राम।

सा मनोरेवे जायां मनावीं प्रविवेश। तस्यै ह स्म यत्र वदन्त्यै शृण्वन्ति ततो ह स्मैवासुररक्षानि मृद्यमानानि यन्ति। ते हासुरा समूदिरऽइतो वै न रुचते भूयो हि मानुषी वाग्वदतीति। किलाताकुली हैवोचतुः। श्राद्धदेवो वै मनुरावं न्वेव वेदावेति। तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति। केनेत्यनयैव जाययेति। तथेति। तस्याऽआलब्धायै सा वागपचक्राम। (१।१।४।१४-१६)

अर्थ— मनु के पास एक ऋषभ (बैल) था। उसमें असुरों और शत्रुओं को मारनेवाली वाणी प्रवेश कर गई। जब वह बैल हुंकारता था और चिघाड़ता था तो असुरराक्षसगण मर जाते थे। तब असुरों ने सोचा—'यह ऋषभ तो हमारा बड़ा अनर्थ करता है, हम इसको कैसे मारें ? असुरों के पुरोहित थे—'किलात' 'आकुली' नाम के असुर ब्राह्मण।

उन दोनों ने सोचा। चलो हम दोनों श्राद्धदेवमनु की परीक्षा करें। तब वे दोनों मनु के पास आकर बोले—'हे मनु ! हम आपका यज्ञ करना चाहते हैं। मनु ने पूछा—'किससे'। उन्होंने कहा—इस 'ऋषभ से'। मनु ने कहा—'तथास्तु'। बैल के ग्रहण करने (ले लेने) से उसकी वाणी समाप्त होगई।

वह वाणी मनु की पत्नी मनावी (श्रद्धा) में घुस गई। जब वे उसको बोलते हुए सुनते तो असुर और राक्षस मर जाते। तब असुरों ने सोचा—"यह तो और

भी बुरा हुआ, क्योंकि (बैल की अपेक्षा) मनुष्य (और स्त्रियां) अधिक बोलते हैं। तब किलात आकुली ने सोचा—'आओ मनु की परीक्षा के लिये चलें। वे उसके पास गये और बोले—हम आपका यज्ञ करना चाहते हैं। मनु ने पूछा—किससे ?' उन्होंने बताया—'आपकी पत्नी से।' मनु ने उत्तर दिया—'तथास्तु'। पत्नी के ग्रहण (आलम्भ) से उसकी वाणी समाप्त होगई।

आप्त्याः त्रिताः—

आप्त्याः सम्बभूवतुस्त्रितो द्वित एकतः। त इन्द्रेण सह चेरुः। यथेद ब्राह्मणो राजानमनुचरति। स यत्र त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं जघान। तस्य हैतेऽपि बध्यस्य विदांचक्रुः। शश्वद्धैनं त्रित एव जघानात्य ह तदिन्द्रोऽमुच्यत देवो हि सः। (१।२।३।२)

अर्थ—आप्ति (ऋषि) के तीन पुत्र हुए—एकत, द्वित और त्रित। वे इन्द्र का अनुगमन करते थे, जैसे कि ब्राह्मण (मन्त्री) राजा के साथ घूमते हैं। जब इन्द्र ने त्रिशिरा त्वाष्ट्र विश्वरूप को मारना चाहा तो वे इन्द्र का आशय जान गये। और त्रित ने त्वाष्ट्र (विश्वरूप) को मार डाला। इन्द्र इस (ब्रह्महत्या) के पाप से बचा रहा, क्योंकि वह देव था।

वामनः विष्णुः—

देवाश्च वाऽसुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। ततो देवा अनुव्यमिवासुरथ हासुरा मेनिरेऽस्माकमवेवेदं खलु भुवनमिति। ते होचु हन्तेमां पृथिवीं विभजामहै। तां विभज्योपजीवामेति। तामौक्ष्णैश्चर्मभिः पश्चात्यप्राञ्चौ विभजमाना अभीयुः। तद्वै देवाः शुश्रुवुः। विभजन्ते ह वाऽइमामसुराः पृथिवीं प्रेत तदेष्यामो यत्रेमा सुरा विभजन्ते। के ततः स्याम यदस्यै न भजेमहीति। ते यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः।

ते होचुः। अनु नोऽस्यां पृथिव्यामा भजतास्त्वेव वोऽप्यस्यां भाग इति। ते हासुरा असूयन्त-इवोचुर्यावदेव वैष विष्णुरभिशेते तावद् वो दद्म इति।

वामनो ह विष्णुरास। तद्देवा न जिहीडिरे। महाद्वै नोऽदुर्ये नो यज्ञसम्मितमदुरिति।

ते प्राञ्चं विष्णुं निपाद्य ...।

ते छन्दोभिरभित परिगृह्य। अग्निं पुरस्तात् समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुस्तेनेमां सर्वां पृथिवीं समविन्दत ..... सोऽयं विष्णु-

ग्लानः । छन्दोभिरभितः परिगृहीतोऽग्निः पुरस्तान्नापचक्रमण-
मास । स तत एवौषधीनां मूलान्युपमुम्लोच । (१।२।५।१-८)

अर्थ—देव और असुर—प्रजापति (कश्यप) की सन्तान थे । वे अधिकार के लिये संघर्ष करते रहते थे । देवगण हार गये । असुरों ने सोचा—यह भुवन (भूलोक-पृथिवी) हमारा ही होगया है । असुरों ने कहा—'अच्छा इस पृथिवी को परस्पर (असुरों में) बांट लें और जीवन निर्वाह करते रहें । तब असुरों ने ऋषभ चर्म द्वारा पश्चिम से पूर्व तक (नापकर) बांटते रहे ।

देवों ने यह सुना और विचार किया । अरे असुर तो पृथिवी को वास्तव में बांट रहे हैं, चलो, वहां चलें जहां बंटवारा हो रहा है । यदि हमको कोई भूभाग नहीं मिला तो हम क्या करेंगे । वे देवगण विष्णु को अपना नेता बनाकर वहां गये । और उन्होंने असुरों से कहा । अपने साथ हमको भी कुछ हिस्सा दीजिये । हमारा कुछ तो भाग हो । असुरों ने ईर्ष्या और संकोच के साथ कहा—'अच्छा, हम तुमको केवल इतना भाग देते हैं जितने में यह विष्णु लेट (रह) सके । विष्णु तो वामन (बौना) था । परन्तु देवों को चिन्ता नहीं हुई । उन्होंने कहा—'इस यज्ञ (विष्णु) के बराबर भूभाग मिल जाय, वही बहुत रहेगा । उन्होंने विष्णु को यज्ञ के पूर्व की ओर लिटा दिया···इस प्रकार तीन और छन्दों से घेर पूर्व की अग्नि को रखकर देव अर्चना और श्रम करते रहे । इस प्रकार करते करते उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी ले ली । ··विष्णु थक गया था । तीनों ओर छन्दों द्वारा घिरा और पूर्व में अग्नि होने से वह वहां से भाग नहीं सका । अतः वह औषधियों की जड़ों में छिप गया ।

विदेघो माथवो राहूगणो गोतमश्च—

विदेघो ह माथवोऽग्निं वैश्वानरं मुखे बभार । तस्य गोतमो राहूगण ऋषि पुरोहित आस । तस्मै ह स्मामन्त्र्यमाणो न प्रतिशृणोति नेन्मेऽग्निर्वैश्वानरो मुखान्निष्पद्याता इति । तमृग्भिर्ह्वयतु दध्रे । वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे विदेघेति । स न प्रतिशुश्राव । उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतिंष्यर्चयो विदेघा३ । स ह नैव प्रतिशुश्राव । तं त्वा घृतस्नवीमह इत्येवाभिव्याहरथास्य घृतकीर्तावेवाग्निर्वैश्-वानरो मुखादुज्जज्वाल । तन्न शशाक धारयितुं सोऽस्य मुखान्निष्पेदे । स इमां पृथिवीं प्रापाद् ।

तर्हि विदेघो माथव आस । सरस्वत्यां स तत एव प्राङ् दहन्न भीयायेमां पृथिवीं तं गोतमश्च राहूगणो विदेघश्च माथवः

पश्चाद्दहन्तमन्वीयतुः। स इमाः सर्वा नदीरतिदहत। सदानीरेत्युत्तराद्गिरेर्निर्द्धावति। तां हैव नातिददाह। तां ह स्म पुरा ब्राह्मण न तरन्त्यनतिदग्धाग्निना।
तत एतर्हि प्राचीनं बहवो ब्राह्मणास्तद्धाक्षेत्रतरमिवास। स्रावितरमिवास्वदितमग्निना वैश्वानरेणेति। तदु हैतर्हि क्षेत्रतरमिव ब्राह्मण उ हि नूनमेवद्यहीरसिष्वदन्त्साऽपि जघन्ये नैदाघे समिमेव कोपयति तावच्छीतानति दग्धा ह्यग्निना वैश्वानरेण। स होवाच विदेहो माथवः। क्वाहं भवानीत्यत एव ते प्राचीनं भुवनतमिति होवाच सेषारयेतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा ते हि माथवाः।
(१।४।१।१-१७)

अर्थ—विदेघ का राजा माथव (वैदेह=मैथिलजनक) अपने मुख में वैश्वानर अग्नि रखता था। गोतम राहूगण (रहूगण ऋषि का पुत्र) पुरोहित था। पुरोहित ने पुकारा तो वह नहीं बोला कि कहीं मेरे मुख से अग्नि न निकल पड़े।

तब पुरोहित ने उसको (ऋग्वेद ५।२६।३) मन्त्र से बुलाया—'हे बुद्धिमान्, तीव्र प्रकाशवाले और हवन में प्रिय अग्नि! हम आपको यज्ञ में बुलाते हैं हे विदेघ।

राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसने अगली ऋचा (ऋग्वेद ८।४४।१७) से बुलाया—'हे अग्ने! अपनी चमकीली प्रकाशयुक्त ज्योतिओं को ऊपर फेंको। हे विदेघ!

राजा तब भी नहीं बोला। तब पुरोहित ने यह मन्त्र पढ़ा—'हे घृतस्नु! चित्रभानो! स्वर्ग की आंख! प्रकाश के लिए आओ। पुरोहित मन्त्र पूरा पढ़ने भी नहीं पाया था, उसने 'घृत' शब्द ही बोला था कि अग्नि वैश्वानर जल उठा। राजा अग्नि को अपने मुख में रख नहीं सका। अग्नि उसके मुख से फूटकर पृथिवी पर गिर गया।

विदेह माथव उस समय सरस्वती के किनारे पर था। उस समय अग्नि जलते जलते पूर्व की ओर बढ़ा। गोतम राहूगण और विदेघ माथव उस प्रज्वलित अग्नि का अनुगमन करते चले। अग्नि ने मार्ग की सभी नदियों को सुखा दिया। एक नदी जो उत्तरी पर्वत (उत्तरगिरि=हिमालय) से निकलती है जिसका नाम सदानीरा है, उसे वह सुखा न सका। ब्राह्मणगण, पूर्वकाल में इस नदी को पार नहीं करते थे, यह सोचकर कि अग्नि वैश्वानर ने इस नदी को जलाया नहीं। परन्तु, अब (प्राग्महाभारतयुग मे) बहुत से ब्राह्मण इस नदी के पूर्व में रहते हैं।

उस समय सदानीरा के पूर्व में भूमि क्षेत्रतर (उपजाऊ) नहीं थी। उसमें दलदल था, क्योंकि वैश्वानर अग्नि ने उसको जलाया नहीं था। अब वह बहुत उपजाऊ है, क्योंकि ब्राह्मणों ने अग्नि को चखा दिया। निदाघ (ग्रीष्म) में भी वह नदी विशाल रूप में बहती है। अग्नि वैश्वानर ने उसे जलाया नहीं, अतः वह शीत पर्याप्त होता है।

विदेह माथव ने अग्नि से पूछा—"मैं कहां पर रहूं।" अग्नि ने उत्तर दिया – 'इस सदानीरा के पूर्व में तुम्हारा निवासगृह हो। तब से अब तक यह नदी कोसल और विदेह जनपदों की सीमा है। वे माथव (मिथिजनक) की सन्तान हैं।

त्रिशिरा विश्वरूपः त्वाष्ट्रः—

त्वष्टुर्ह वै पुत्रः त्रिशीर्षा षडक्ष आस। तस्य त्रीण्येव मुखान्यासु–स्तद्यदेवं रूप आस। तस्माद् विश्वरूपो नाम। ....तमिन्द्रो दिद्वेष। तस्य तानि शीर्षाणि प्रचिच्छेद।...स त्वष्टा चुक्रोध। कुविन्मे पुत्रमवधीदिति। सापेन्द्रमेव सोममाजह्रे।

अर्थ – त्वष्टा का (बड़ा) पुत्र त्रिशिरा षडक्ष (तीन शिर, छः आंखों वाला) था। उसके तीन मुख थे। उसका ऐसा रूप था, इसीलिये उसका 'विश्वरूप' था।... ..इन्द्र उससे शत्रुता करता था, इसलिये उसके तीनों शिर काट दिये।......त्वष्टा को क्रोध हुआ। उसने क्या सचमुच मेरे पुत्र को मार दिया। इसलिये उसने अपेन्द्र (बिना इन्द्र) के सोम को ले आया।

वृत्रस्त्वाष्ट्रः - अहिर्दानवः—

स यद्वर्तमानः समभवत्। तस्माद् वृत्रोऽथ यदपात्समभवत्तस्माद-हिस्तं दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव परिजगृतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः। अथ यदब्रवीदिन्द्रशत्रुवर्धस्वेति। तस्मादु हैनमिन्द्र एव जघानाथ। यद्ध शश्वदवक्ष्यदिन्द्रस्य शत्रुर्वर्धस्वेति। शश्वदु ह स एवेन्द्रमहनिष्यत्। अथ यदब्रवीद् वर्धस्वेति। तस्मादु ह स्मेषुमात्र-मेव तिर्यङ्वर्धत इषुमात्रं प्राङ्कोपाऽवैवावरं समुद्रं दधाव पूर्वं स यावत्स आस सहैव तावदन्नाद आस। (१।६।३।८-११)

तद्वेव खलु हतो वृत्रः। स यथा दृतिर्निष्पीत एवं संलीनशिश्ये यथा निर्धूतसक्तुर्भस्त्रैवं संलीनशिश्ये। तमिन्द्रोऽभ्यादुद्राव हनिष्यन्। (१।६।३।१६)

अर्थ—क्योंकि वह 'वर्तमान' था, अतः उसका नाम 'वृत्र' पड़ा। क्योंकि वह 'अपात्' (बिना पैरों के था गिर पड़ा) इसलिये 'अहि' (सर्प) कहलाया। दनु और

दनायु (कश्यप की दो पत्नियों) ने उसका माता–पिता के समान पालन-पोषण किया अतः उसको 'दानव' (या अहिदानव) कहा गया।

क्योंकि (उसके पिता त्वष्टा ने) यज्ञ में कहा—'इन्द्र-शत्रु' (इन्द्र शत्रु ही) बढ़े, इसलिये इन्द्र ने उसको मार डाला। यदि वह 'इन्द्र का शत्रु' (तत्पुरुष समास) बढ़ो तो अवश्य ही वह इन्द्र को मार देता।

क्योंकि उसने कहा—'बढ़ो'। इसलिए वह तीर के समान टेढ़ा बढ़ा। उसने पश्चिमी और पूर्वी समुद्र को हटा दिया और जितना बढ़ा उतना ही भोजन किया (उस क्षेत्र) को वश में किया।

पिटा हुआ वृत्र भूमि पर पड़ा था, ऐसी क्षीणावस्था में जैसे मशक का पानी निकल जाय या सक्तू का थैला खाली हो। इन्द्र उसे मारने झपटा।

इन्द्रनिलयनम्—

इन्द्रो ह यत्र वृत्राय वज्रं प्रजहार। सोऽबलीयान्मत्यमानो नास्तृषीव बिभ्यन्निलयांचक्रे स परा परावतो जगाम। देवा ह वै विदांचक्रुर्हतो वै वृत्रोऽथेन्द्रो न्यलेष्टेति। तमन्वेष्टुं दधिरे। अग्नि–देवतानां हिरण्यस्तूप ऋषीणां बृहती छन्दसां तमनिरनुविवेद। तेनैतां सहाजगाम स वै देवानां वसुर्वीरो ह्येषाम्।

स इन्द्रोऽब्रवीत्। यत्र वै वृत्राय वज्रं प्राहरं तद्वयं स्म ये स कृश इवास्मि। न वै मेदं धिनोति। यन्मा धिनवत्तन्मे कुरुतेति। तथेति। देवा अब्रुवन्। (१।६।४।१-४)

अर्थ—जब इन्द्र ने वृत्र के लिये वज्र का प्रहार किया तो वह अपने को निर्बल समझकर और यह मानकर कि वृत्र अभी मरा नहीं है, कहीं छिप गया और दूर भागा। देवों ने जाना कि वृत्र मारा गया और इन्द्र छिप गया है।

देवताओं में अग्नि (आंगिरस बृहस्पति), ऋषियों में हिरण्यस्तूप और छन्दों में उसको ढूंढ़ने लगे। अग्नि (बृहस्पति) ने उसे ढूंढ़ लिया और उसके साथ एक रात्रि रहा। वह देवों में वसु और वीर था।······

इन्द्र ने कहा—'जब मैंने वृत्र को मारा तो मैं डर गया और दुर्बल होगया। यह भोजन पर्याप्त नहीं है, मेरे लिए शक्तिवर्धक भोज्य बनाओ। देवों ने कहा ठीक है।

महेन्द्रः—

महेन्द्रायेति कुर्वन्तीन्द्रो वा एष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रं हत्वा यथा महाराजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत्। तस्मान्महेन्द्रेति। (१।६।४।२१)

अर्थ—यह (आहुति) महेन्द्र के लिए है। वृत्रवध से पूर्व वह (केवल) इन्द्र था। वृत्र को मारकर वह महेन्द्र होगया। जैसे विजय के पश्चात् राजा महाराजा हो जाता है। अतः वह महेन्द्र था।

मनुर्जलौघश्च—

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे। स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति। कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघं इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढ़ा ततस्त्वा पारयितास्मीति। कथं ते भृतिरिति। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नष्ट्रा भवत्युत। मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुम्भ्यामाग्रे बिभरासि। स यदा तामतिवर्धाऽथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि। स यदा तामतिवर्धाऽथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वाऽतिनाष्ट्रो भविता स्मीति।

शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै। स औघऽउत्थिते नावमापद्या सैथीं ततस्त्वा पारयितास्मीति।

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं यत् समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे। स औघ उत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच। तेनैतमुत्तरं गिरमतिदुद्राव।

स होवाच। अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावदन्ववसर्पासीति।

स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघ ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथैह मनुरेवैकः परिशिशिषे। सोऽर्चं छ्रा्म्यं चचार प्रजाकाम तत्रापि पाकयज्ञेनेजे। स घृतं दधि मस्त्वामिक्षामित्यप्सु जुहवांचकार। ततः संवत्सरे योषित् संबभूव। स ह पिब्दमानेवोदयाय तस्यै ह स्म घृतं पदे सन्तिष्ठते। तया मित्रावरुणौ संजग्माते।

तां होचतुः कासीति। मनोर्दुहितेत्यावयोर्ब्रुष्वेति। नेति होवाच। य एव मामजीजनत तस्यै वाहमस्मीति। तस्यामपि त्वमीषाते। तद्वा जज्ञौ। तद्वा न जज्ञावति त्वेवेयाय सा मनुमाजगाम।

सैषा निदानेन। यदिडा। स यो हैवं विद्वानिडया चरत्येतां हैव प्रजातिं प्रजायते यां मनुः प्राजायत। (१।८।१।१-११)

अर्थ—नित्यप्रति के समान मनु (वैवस्वत-श्राद्धदेव) जैसे ही प्रातःकाल हाथ धोने के लिये पानी लाये, तो धोते समय उनके एक हाथ में एक लघु मत्स्य आ गई। वह उनसे बोली—मेरा पालन करो, मैं आपकी (भविष्य में) रक्षा करूंगी। मनु ने पूछा—'तू मेरी किससे रक्षा करेगी। मत्स्य ने उत्तर दिया—'जब जल-प्लावन में पृथिवी की समस्त प्रजा बह जायेगी, उस समय मैं आपकी रक्षा करूंगी। मनु ने पूछा—'मैं कैसे तुम्हें पालूं। मत्स्य ने कहा—'हम छोटी-छोटी मछलियों को बड़ी मछलियां निगल जाती हैं। मुझे आप पहिले कुम्भी (घटिका) में पालो। जब मैं बड़ी हो जाऊं तो गड्ढा खोद (तालाब बनाकर) कर उसमें रखना। जब मैं और बड़ी हो जाऊं तो मुझे समुद्र में ले जाना। तब मैं बहुत बड़ी हो जाऊंगी और मुझ पर कोई आपत्ति नहीं होगी।'

वह झष मछली तुरन्त बढ़ती गई। क्योंकि झष मछली शीघ्र बढ़ती है। मत्स्य ने मनु से कहा—"अमुक वर्ष में (अमुक दिन) जलप्लावन आयेगा, तब आप मेरे कथनानुसार नाव (पोत-जहाज) बनाना। और जब प्लावन हो तब नाव में बैठ जाना। मैं आपकी जलप्लावन से रक्षा करूंगी।"

जब मनु मत्स्य को पाल चुके और समुद्र में ले गये। तदनन्तर जिस वर्ष के लिये उसने कहा था, उसी वर्ष उसके कथनानुसार नाव बनाई गई और जब (जिस दिन) जलौघ आया तब मनु उसी नाव में बैठ गये। वह महामत्स्य तैरकर वहां मनु की नाव के पास आई। उसके सींग से मनु ने नाव बांध दी। वह शीघ्रता से उत्तर गिरि (हिमालय-मनाली-हिमाचल) में पहुंच गया।

महामत्स्य ने मनु से कहा—'मैंने आपको बचा लिया, अब वृक्ष से नाव बांध दो, परन्तु, जब तक आप पहाड़ पर हैं तब तक ऐसा नहीं करना कि जल तुमको काट दे। जब जल कम हो जाय, तब आप पहाड़ से उतरना। अतः मनु शनैः शनैः नीचे आये। इसलिए उत्तरगिरि के उस भाग को 'मनोरवसर्पणम्' (अब मनाली) कहते हैं।

इला—मनु ने सन्तान की इच्छा से पूजा और श्रम किया। उन्होंने एक पाकयज्ञ किया और घी, दधि और मट्ठा जलों में चढ़ाया। एक वर्ष पश्चात् एक योषित् (स्त्री-कन्या) उत्पन्न हुई। वह मोटी होकर निकली। उसके पैरों में घी था। मित्र और वरुण (दो ज्येष्ठ आदित्य) उसके पास आये। उन्होंने उससे पूछा—"तू कौन है?" उसने कहा—'मनु की दुहिता (पुत्री) हूं।' उन्होंने कहा—"कहो कि तू हम दोनों की (पुत्री) है।" उसने कहा—'नहीं, मैं उसी की (पुत्री)

हूं, जिसने मुझे जना है। उन्होंने (पाकयज्ञ-इडा) का भाग मांगा। उसने माना या न माना। वह वहां से चली आई और मनु के पास आई।

निदान (यज्ञशास्त्र) में यही 'इडा' है। जो कोई यह रहस्य समझकर 'इडा यज्ञ' (पाकयज्ञ) करता है वह इस प्रजा (मानवी प्रजा) को, जिसे मनु ने उत्पन्न किया, बढ़ाता है।

शंयुः (बार्हस्पत्यः)—

शंयुर्ह वै बार्हस्पत्योऽञ्जसा यज्ञस्य संस्थां विदाञ्चकार। स देवलोकमयीयाय तदन्तर्हितमिव मनुष्येभ्य आस। (१।६।१।२४)

अर्थ—शंयु बार्हस्पत्य ने यज्ञसंस्था को शीघ्र जान लिया। वह देवलोक गया और मनुष्य से छिपा रहा।

देवशासनस्य स्थिरीकरणम्—

देवाश्च वा असुराश्चोभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। सा हेयं पृथिव्य-लेलायद्यथा पुष्करपर्णमेव तां ह स्मः वातः संवहति। सोपैव देवाञ्जगामोपासुरान्सा यत्र देवानुपजगाम।.... तद्धोचुः। हन्तेमां प्रतिष्ठां दृंहामहै। तस्यां ध्रुवायामशिथिलायामग्नी आदधामहै। ततोऽस्यै सपत्नान्निर्भक्ष्याम इति। (२।१।१।८-९)

अर्थ—देव और असुर—दोनों प्रजापति (कश्यप) की सन्तान—सदा प्रति-स्पर्धा (झगड़ा) करते थे। वह पृथिवी (की जनता) कमलदल के समान कांपती थी, क्योंकि वायु इसको डगमगा रही थी। वह कभी देवों के पास जाती तो कभी असुरों के पास। (अन्त में) जब वह देवों के पास पहुंची तो, उन्होंने कहा लाओ हम इसे स्थिर (दृढ़) करें। और जब यह सुस्थिर हो जाये तब हम दोनों अग्नियों का आधान करें। इससे हम अपने शत्रुओं को यहां (भारतवर्ष) से बिल्कुल निकाल देंगे।

ब्राह्मण इन्द्रः—

इन्द्रो ह वा ईक्षांचक्रे। इमं चेद्वा इमे चिन्वते। तत एव नोऽभि-भवन्तीति। स ब्राह्मणो ब्रुवाण एकेष्टकां प्रबध्येयाय। अथ होवाच। अन्वा अहं तां दास्ये या ममेहेति। तामभिपद्या बबर्ह तस्यामाबृढायामग्निर्द्रावि शादाग्नेर्व्यवशादमन्वसुरा व्यवशेदुः। स तास्वेष्टका वज्रान्कृत्वा (असुराणां) ग्रीवा प्रचिच्छेद।

(२।१।१।१४, १६)

अर्थ—इन्द्र ने सोचा कि ये (असुर) अग्निचयन कर लेते हैं तो हमें हरा देते हैं। वह ब्राह्मण इन्द्र एक ईंट लेकर चला गया। उसने सोचा मैं भी इस ईंट

को रख दूं। उसने ईंट रख दी। अग्निचयन में थोड़ी ही कमी रह गई। पुनः उसने कहा—'अब मैं इस ईंट को निकाल लेता हूं। यह मेरी है। उसने ईंट खींच ली। तब वेदी गिर पड़ी। और वेदी के गिरने से असुर भी गिर पड़े। अब उसने उन ईंटों को वज्र बना दिया और उससे (असुरों के) गले काट डाले।

नडः (नलः) इन्द्रः यमश्च—

तस्मिन् वसतीन्द्रो यमो राजा नडो नैषधोऽनश्नंत्सांगमनोऽसन्पांसवः। (२।३।२।१)

अर्थ—जो कोई (यजमान) होता है, उसमें ये देवता बसते हैं—इन्द्र, यम, नड (नल), नैषिध (नैषध), अनश्नत्, सांगमन और असन्पांशु।

दाक्षायणयज्ञस्य परम्परा—

प्रजापतिर्ह वा एतेनाग्रे यज्ञेनेजे। प्रजाकामो बहुः प्रजया पशुभिः स्यां श्रियं गच्छेयं यशः स्यामन्नादः स्यामिति स वै दक्षो नाम। तद्यदेनेन सोऽग्रेऽयजत तस्माद्दाक्षायणयज्ञो नामोतैनमेके वसिष्ठयज्ञ इत्याचक्षते। एष वै वसिष्ठ एतयेव तदन्वाचक्षते। तेनो ह तत ईजे प्रतीदर्शः श्वैक्नः ...। तमाजगाम। सुप्ला साञ्जर्यो ब्रह्मचर्यं तस्मादेते च यज्ञमनूचेऽन्यमु च सोऽनूच्य पुनः सृञ्जयाञ्जगाम।... स वै सहदेवः साञ्जर्यस्तदप्येतन्निवचनमिवास्त्यन्यद्वा अरे सुप्ला दधे।

तेनो ह तत ईजे देवभागः श्रौतर्षः स उभयेषां कुरूणां च सृञ्जयानां च पुरोहित आस।

तेन ह तत ईजे दक्षः पार्वतिस्त इमेऽप्येतर्हि दाक्षायणा राज्यमिवैव प्राप्ता राज्यमिह वै प्राप्नोति य एवं विद्वानेतेन यजते॥

(२।४।४।२-६)

अर्थ—उसका नाम दक्ष था, क्योंकि उसने सर्वप्रथम इस (दाक्षायण) यज्ञ को किया था। इसलिये उसका नाम पड़ा—'दाक्षायण यज्ञ।' कुछ विद्वान् इसको 'वसिष्ठ यज्ञ' कहते हैं। सर्वप्रथम वसिष्ठ ने इस यज्ञ को किया था। इस यज्ञ से प्रजापति ने श्री, विभूति और सन्तान प्राप्त की। तदनन्तर प्रतीदर्श श्वैक्न ने यज्ञ किया।...

सुप्ला साञ्जर्य ब्रह्मचर्य व्रत के लिये उसके (प्रतीदर्श श्वैक्न) के पास आया। उसने इस यज्ञ एवं अन्यों के सम्बन्ध में उसे शिक्षा दी। वह सीखकर अपने राष्ट्र (सृञ्जय) गया। उन्होंने कहा—'यह जो यज्ञ सीखकर आया है' मानो देवों के साथ

आया है, इसलिये उसका नाम सहदेव साञ्जंय पड़ा। यह प्रसिद्ध हुआ कि सुप्ला ने दूसरा नाम रख लिया।

देवभाग श्रौतर्ष (श्रुतर्षि पुत्र) ने यह यज्ञ किया। वह कुरु (कौरव) राष्ट्र और सृञ्जय राष्ट्र का पुरोहित था। जो एक राष्ट्र का पुरोहित होता है, उसकी बड़ी पदवी होती है और उसकी पदवी का क्या कहना जो दो राष्ट्रों का पुरोहित हो।

दक्ष पार्वति (हिमवान् पर्वत क्षेत्र का राजा और पार्वती उमा के पिता) ने भी यह यज्ञ किया था और आज तक दाक्षायणगण (दक्षपार्वति की सन्तान) इस राज्य को प्राप्त किये हुए हैं। जो कोई इस रहस्य को समझकर इस (दाक्षायण यज्ञ) को करता है, वह भी (सनातन) राज्य प्राप्त करता है। इसलिये इस तथ्य के ज्ञाता को यह यज्ञ करना चाहिये।

अदितेरष्टौ पुत्राः—

अष्टौ ह वै पुत्रा अदितेः। यांस्त्वेतद्देवा आदित्या इत्याचक्षते। सप्त हैव तेऽविकृतं हाष्टमं जनयांचकार मार्तण्डं संदेघो हैवास यावानेवोर्ध्वस्तावांस्तिर्यङ् पुरुषसंमित इत्यु हैक आहुः।...स विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः। (३।१।३।३-४)

अर्थ—अदिति के आठ (प्रमुख) पुत्र थे। परन्तु, जो आदित्य (अदिति के पुत्र) कहलाये, वे सात ही थे। आठवें मार्तण्ड (विवस्वान्-सूर्य) उसने अविकृत रूप में उत्पन्न किया। परन्तु, वह संदिग्ध था। वह जितना ऊंचा था, उतना ही चौड़ा था। कुछ (इतिहासविद्) कहते हैं वह मनुष्य सम्मित था। यह विदस्वान् ही (मुख्य) आदित्य है उसी की यह सब (मानवी-भारतीय) प्रजा है।

म्लेच्छवाक् (आसुरीवाक्)—

तेऽसुरा आत्तवचसो हेऽलवो हेऽलव इति वदन्तः पराबभूवुः। तत्रैतामपि वाचमूदुः। उप जिस्यां स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेदसुर्या हैषा वागैवमेवैष द्विषतां सपत्नामादत्ते। वाचं तेऽस्यात्तवचसः पराभवन्ति। य एवमेतद्वेद। (३।२।२४)

अर्थ—असुरगण हेऽलव हेऽलव कहकर पराजित होगये। इस प्रकार उन्होंने अर्थहीन या अशुद्ध भाषा बोली और जो ऐसी भाषा बोलता है, वह म्लेच्छ है, इसलिये कोई ब्राह्मण (=विद्वान् पुरुष) म्लेच्छभाषा न बोले, क्योंकि यह आसुरी भाषा है। जो इस प्रकार शत्रु को (शुद्ध) भाषा से वंचित कर सकता है, उसका शत्रु परास्त हो जाता है।

सौपर्णीकाद्रवम्—

दिवि वै सोम आसीत् । अथेह देवास्ते अकामन्त नः सोमो गच्छेत्ते-नागतेन यजेमहीति । त एते माये असृजन्त सुपर्णीं च कद्रूं च । तेभ्यो गायत्री सोममच्छापतत् । तस्याऽऽहरन्त्यै गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात्ते देवा अविदुः । प्रच्युतो वै परस्तात् सोमोथ नो नागच्छति गन्धर्वा वै पर्यमोषिषुरिति ।

ते होचुः । योषित्कामा वै गन्धर्वाः । वाचमेवेभ्यः प्रहिणवामः सा नः सह सोमेनागमिष्यतीति । तेभ्यो वाचं प्राहिण्वन्त्सैनान् सह सोमेनागच्छत् । ते गन्धर्वा अन्वागत्याब्रुवन् । सोमो युष्माकं वागेवास्माकमिति ।

अर्थ—सोम दिव्यलोक में था । यहां देवों ने इच्छा की कि सोम हमारे पास आये, जिससे हम यज्ञ करें । उन्होंने दो माया (स्त्रियां) उत्पन्न कीं । सुपर्णी (विनता) और कद्रू । उनके लिये गायत्री (गरुड़) सोम पर झपटा । जब गायत्री सोमहरण कर रही थी तो विश्वावसु गन्धर्व ने सोम (घर) को चुरा लिया । यह बात देवों को पता चली । सोम गिर गया है, सोम को गन्धर्वों ने चुरा लिया, इसलिये वह हमारे तक नहीं आ सका ।

देव बोले—गन्धर्वगण स्त्रियों को चाहते हैं । हम (स्त्रीरूप) वाक् को इनके पास भेजते हैं । वह सोम और गन्धर्वों के साथ हमारे पास आयेगी । गन्धर्वों ने आकर देवों से कहा—सोम आपका है और स्त्री (वाक्) हमारी है ।

अङ्गिरसः आदित्याश्च—

द्वय्यो ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च । ततोऽङ्गिरसः पूर्वे यज्ञं संभरन् ॥ (३।५।१।७)

अर्थ—पहिले दो प्रकार की प्रजा थी—आदित्यगण और अङ्गिरसगण । अतः अङ्गिरसों ने प्राचीनकाल में यज्ञ किया ।

उच्चैःश्रवा अश्वः—

दिवि वै सोम आसीत् । अथेह देवास्ते देवा अकामयन्त । नः सोमो गच्छेत्तेनागतेन यजेमहीति । त एते मायेऽसृजन्त सुपर्णीं च कद्रूं च वागेव सुपर्णीय कद्रूस्ताभ्यां समदं चक्रुः । ते हऽर्तीयमाने ऊचतुः । यतरा नौ दवीयः परापश्यदात्मानं नौ सा जयादिति । तथेति । सा ह कद्रूरुवाच । परेक्षस्वेति । सा हि सुपर्ण्युवाच । अस्य सलिलस्य पारेऽश्वः श्वेतस्थाणौ सेवते । तमहं पश्यामीति । तमेव त्वं पश्यसीति । तं हीत्यथ ह कद्रूरुवाच तस्य वालोन्य-

ञ्जितममुं वातो धूनोति तमहं पश्यामीति । सा यत्सुपर्ण्युवाच । अस्य सलिलस्य पार इति वेदिर्वै सलिलं वेदिमेव । सा तदुवाचाश्वः श्वेतस्थाणौ सेवते इत्यग्निर्वा अश्वः श्वेतो यूपः स्थाणुरथ कद्रूरुवाच तस्य वालोन्यषञ्जितममुं वातो धूनोति । तमहं पश्यामीति । रशना हैव सा ।

सा ह सुपर्ण्युवाच । एहीदं पताव वेदितुं यतरा नौ जयतीति । सा कद्रूरुवाच त्वमेव पत त्वं वै न आख्यास्यसि यतरा नौ जयतीति । सा ह सुपर्णी पपात तद्ध तथैवास यथा कद्रूरुवाच । तामागताम-भ्युवाद त्वमजैषीः३ रहा३ मिति त्वमिति होवाचैतदाख्यानं सौपर्णी काद्रवम् ।

सा ह कद्रूरुवाच । आत्मानं त्वा जैषं दिव्यसौ सोमस्तं देवेभ्य आहर । तेन देवेभ्य आत्मानं निष्क्रीणीष्वेति । तथेति सा छन्दांसि ससृजे । सा गायत्री दिवः सोममाहरत् ।

हिरण्ययोर्ह कुश्योरन्तरवहित आस । ते ह स्म क्षुरपवी निमेषं निमेषमभिसंधत्ते । दीक्षातपसौ हैव ते आसतुस्तमेते गन्धर्वाः सोम-रक्षा जुगुपुरिमे ।

तयोरन्यतरां कुशीमाचिच्छेद । तां देवेभ्यः प्रददौ । सा दीक्षा तया देवा अदीक्षन्त । अथ द्वितीयां कुशीमाचिच्छेद तां देवेभ्यः प्रददौ । तत्तपस्तया देवास्तप उपायन्नुपसस्तयो ह्युपसदः ।।

तेनैतेन सुपर्णी देवेभ्य आत्मानं निरक्रीणीत । तस्मादाहु पुण्यलोक ईजान इति । (३।६।२।२–१५)

अर्थ—सोम दिव्यलोक में था । यहां देव थे । देवों ने इच्छा की । हमारे पास सोम (भू-लोक में) आ जाये तो हम यज्ञ करें । उन्होंने दो माया (दो स्त्रियों) की सृष्टि की । जिनके नाम थे—सुपर्णी और कद्रू । सुपर्णी वाणी थी और कद्रू यह भूमि । देवों ने उनके मध्य झगड़ा करा दिया । तब वे झगड़ने लगीं । जो हममें से सबसे दूर की वस्तु देख लेगी वही जीतेगी । कद्रू ने कहा 'अच्छा देख ।' सुपर्णी ने कहा—इस सलिल (समुद्र) के उस पार एक श्वेत अश्व एक खम्भे से बंधा हुआ है । मैं उसे देख रही हूं । क्या तुझे भी वह दिखलाई पड़ता है । कद्रू ने कहा—'हां मैं देखती हूं । उसकी पूंछ अभी लटक रही है । मैं देखती हूं कि वायु इस समय पूंछ को हिला रही है ।

अब जब सुपर्णी ने कहा—'उस सलिल के उस पार' तो सलिल का अर्थ था 'वेदी' । उससे उसका तात्पर्य वेदी से था । खम्भे के पास एक सफेद घोड़ा खड़ा

है। श्वेत घोड़े से तात्पर्य 'यज्ञ' से है। और खम्भे का अर्थ है यज्ञयूप। कद्रू ने जो कहा था कि इसकी पूंछ अभी लटक रही थी। अब उसको वायु हिला रहा है। मैं उसे देख रही हूं। यह केवल रस्सी थी।

तब सुपर्णी ने कहा—'चलो वहां तक उड़ चलें और देखें कि हममें से किसकी जीत हुई। कद्रू ने कहा—तुम ही जाओ और बता देना कि हममें से किस से किसकी विजय हुई।'

सुपर्णी वहां तक उड़ी और कद्रू ने कहा था—वही ठीक निकला। जब वह वापिस आई तो कद्रू ने उससे पूछा—'तुम जीती या मैं' उसने कहा—'तुम' इसको 'सौपर्णी काद्रव आख्यान' कहते हैं।

तब कद्रू ने कहा—'सचमुच मैंने तुमको जीत लिया। दिव्यलोक में सोम है। उसको देवों के लिये लाओ और देवों के ऋण से मुक्त होओ। तथास्तु। वह छन्दों को लाई। वह गायत्री द्यौलोक से सोम को ले आई।

वह सोम दो स्वर्ण के प्यालों में था। आंख मारते ही वे प्याले तेज तेज धुरों से घिरे हुए थे, जो यन्त्र द्वारा घूम रहे थे। वे थे दीक्षा और तप। उनकी सोम-रक्षक गन्धर्व रक्षा कर रहे थे।

उसने (गरुड़) ने एक प्याला खोला और देवों को दे दिया। वह दीक्षा थी…। अब उसने दूसरा प्याला खोला और देवों को दे दिया। यही 'तप' था। इससे देवों ने तप किया। अर्थात् उपसद। क्योंकि उपसद ही तप है।

खदिर द्वारा सोम चखा।

इस प्रकार सुपर्णी ने देवों के ऋण से छुटकारा पाया, इसीलिये कहा जाता है कि यज्ञ करने करनेवाले को पुण्यलोक की प्राप्ति होती है।

सुकन्योपाख्यानम्—

भृगवो वाङ्गिरस वा स्वर्गं लोकं समाश्नुवत तच्च्यवनो वा भार्गवश्च्यवनो वाङ्गिरसस्तदेव जीर्णिः कृत्यारूपो जहे। शर्यातो ह वा इदं मानवो ग्रामेण चचार। स तदेव प्रतिवेशो निविविशे। तस्य कुमाराः क्रीडन्त इमं जीर्णिं कृत्यारूपमनर्थ्यं मन्यमाना लोष्टैर्विपिषिषुः। स शर्यातिभ्योश्चुक्रोध। तेभ्योऽसंज्ञां चकार। पितैव पुत्रेण युयुधे। भ्राता भ्रात्रा। शर्यातो ह वा ईक्षांचक्रे यत्किमकरं तस्मादिदमापददीति। स गोपालांश्चाविपालांश्च संह्वयित्वा उवाच। स होवाच। को वोऽद्येह किंचिदद्राक्षीदिति। ते होचुः पुरुष एवायं जीर्णिः कृत्यारूपः शेते। तमनर्थ्यं मन्यमानाः कुमारा लोष्टैर्व्यक्षिपन्निति। स विदांचकार। स वै च्यवन इति। स रथं

युक्त्वा सुकन्यां शार्यातीमुपाधाय प्रसिष्यन्द स आजगाम यत्रर्षिरास तत्। स होवाच। ऋषे नमस्ते यन्नावेदिषं। तेनाहिंसिषमियं सुकन्या तया तेऽपह्नुवे संजानीतां मे ग्राम इति। तत ह तत एव ग्रामः संजज्ञे। स ह तत एव शर्यातो मानव उद्युयुजे नेदमपरं हिंसानीति।

अश्विनौ ह वा इदं भिषज्यन्तौ चेरतुः। तौ सुकन्यामुपेयतुस्तस्यां मिथुनमीषाते तन्न जज्ञौ। तौ होचतुः। सुकन्ये! कमिमं कमिमं जीर्णिं कृत्यारूपमुपशेष आवामनुप्रेहीति। सा होवाच। यस्मै मा पितादान्नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति। तद्धाऽयमृषिराजज्ञौ। स होवाच सुकन्ये किं त्वेतदवोचतामिति। तस्मा एतद्वाचचक्षे। स ह व्याख्यात उवाच यदि त्वैतत्पुनर्ब्रवतः सा त्वं ब्रूतान्न वै सुसर्वाविव स्थः। सुसमृद्धा विवाथ मे पतिं निन्दथः इति तौ त्वा ब्रुवतः केनावामसर्वो स्वः केनासमृद्धाविव सा त्वं ब्रूता पतिं नु मे पुनर्युवानं कुरुतमथ वां वक्ष्यामीति तां पुनरुपेयतुस्तां हैतदेवोचतुः। सा होवाच। न वै सुसर्वाविव स्थो न ससमृद्धा विवाथ मे पतिं निन्दथ इति तौ होचतुः केनावामसर्वौ स्वः कनासमृद्धाविति सा होवाच पतिं नु मे पुनर्युवानं कुरुतमथ वां वक्ष्यामीति। तौ होचतुः। एतं ह्रदप्रभ्यर स येन वयसा कमष्यिते तेनोदैष्यति तं ह्रदमभ्यवजहार स येन वयसा चकमे तेनोदेयायातेति।

तौ होचतुः। सुकन्ये केनावामसर्वौ स्वः केनासमृद्धाविति। तौ हर्ऽषिरेव प्रत्युवाच कुरुक्षेत्रेऽमी देवा यज्ञं तन्वते ते वां यदा यज्ञादन्तर्यन्ति। तेना सर्वौ स्थस्तेनासमृद्धाविति। तौ ह तत एवाश्विनौ प्रेयतुस्तावाजग्मतुर्देन्यज्ञ तन्वानान्त्स्तुते बहिष्पवमाने।

तौ होचतुः। उप नौ ह्वयध्वमिति ते ह देवा ऊचुर्न वामुपह्वयिष्यामहे बहुमनुष्येषु संसृष्टमरिष्टं भिषज्यान्ताविति। तौ होचतुः। विशीर्ष्णा वै यज्ञेन यजध्वम् इति कथं विशीर्ष्णेत्युप नु वौ ह्वयध्वमथ वो वक्ष्याव इति तथेति तां उपाह्वयन्त ताभ्यमेतमाश्विनं ग्रहमग्रहंस्तावध्वर्यु ज्ञस्याभवतां तावेततयज्ञस्य शिरः प्रतिदधतुस्तस्मादेषस्तुते बहिष्पवमाने ग्रहो गृह्यते। स्तुते हि बहिष्पवमानऽआगच्छताम्।

तौ होचतुः। मुख्यो वा आवां यज्ञस्य स्वो यावध्वर्यू इह नाविमं पुरस्ताद् ग्रहं पर्याहरताभि द्विदेवत्यानिति ताभ्यामेतं पुरस्ताद् ग्रहं पर्याजह्रुरभि द्विदेवत्यांस्तस्मादेव दशमो ग्रहो गृह्यते तृतीय एव

वषट्क्रियतेऽथ यदश्विनाविति। दध्यङ् ह वाऽस्यामाथर्वणः मधु नाम ब्राह्मणमुवाच। (४।१।५।१-१८)

(च्यवन, शर्यात और सुकन्या)

अर्थ—जब भृग्वांगिरस ऋषिगण स्वर्ग को चले गये, तब च्यवन भार्गव या च्यवन आंगिरस का जीर्ण और भयंकर शरीर मात्र रह गया। उसी समय मानव (मनुपुत्र) शर्यात अपने कुटुम्ब के साथ उधर आया और वहीं बस गया। समूह (ग्राम) के कुमारों ने खेलते हुए उस जीर्ण एवं भयंकर पुरुष को देखा और उसको अनिष्टकारक समझ उसको ढेले (पत्थर) मारे। च्यवन ने शार्यातों पर क्रोध किया और उनको पागल बना दिया, जिससे पिता पुत्र से भाई भाई से लड़ने लगा। शर्यात ने विचार किया कि हमने क्या ऐसा किया है, जिससे यह विपत्ति आई है। उसने गोपालकों एवं भेड़पालकों (गड़रियों) को बुलाया और पूछा—"क्या आप लोगों ने आज कोई नई बात देखी या की है।" उन्होंने उत्तर दिया कि एक जीर्ण एवं भयंकर पुरुष वहां लेटा हुआ है, उसको अनिष्टकारक समझकर कुमारों ने उस पर पत्थर फेंके। शर्यात ने पता चलाया तो ज्ञात हुआ कि वह च्यवन है।

शर्यात ने रथ जोतकर, उसमें अपनी पुत्री सुकन्या को बिठाया और च्यवन के पास पहुंचा। उसने कहा—'ऋषे! नमस्ते! मुझे पता नहीं चला, इसलिये (कुमारों ने) आपको कष्ट दिया। प्रतीकारार्थ मैं अपनी पुत्री सुकन्या को आपको देता हूं और आप आशीर्वाद दें कि हमारे लोग स्वस्थ रहें। तदनन्तर वह ग्राम (नगरवासी) स्वस्थ होगया। लेकिन शर्यात मानव, वहां से शीघ्र लौट आया कि ऋषि पुनः किसी प्रकार अप्रसन्न न हों।

अश्विनी—उसी समय देववैद्य अश्विनीकुमार चिकित्सा करते हुए वहां घूम रहे थे। वे सुकन्या के पास पहुंचे कि यह हमको वर ले, परन्तु, वह मानी नहीं। वे दोनों बोले—'सुकन्ये! तू जिस जीर्ण एवं कुरूप पुरुष के पास रहती है (वह अनुचित है), अतः हमारे पास आजा।' वह बोली—'मेरे पिता ने मुझको जिसे ब्याहा है, मैं आजीवन उसी के पास रहूंगी। ऋषि च्यवन को यह बात ज्ञात होगई।

च्यवन ऋषि ने पूछा—"सुकन्ये! इन दोनों ने तुझसे क्या कहा?" सुकन्या ने सभी बातें बता दीं। ऋषि ने कहा—'यदि तुमसे यह पुनः कुछ कहें तो कहना, यदि आप दोनों पूर्ण हैं, तब मेरे पति की निन्दा क्यों करते हो? यदि वे कहें कि हम (अश्विनी) किस बात में कम हैं तो कहना कि पहिले मेरे पति को युवा कर दो, तब और बातें करूंगी।

अश्विनी उसके पास आये तो सुकन्या ने उपर्युक्त बातें कहीं। उसने कहा—"आप लोग न तो पूर्ण हो, न समृद्ध (धनवान्), फिर मेरे पति की निन्दा क्यों करते हो।" उन्होंने उत्तर दिया—'हममें क्या कमी है, हम निर्धन कहां हैं ?' सुकन्या ने कहा—'पहिले मेरे पति को युवा कर दो, तब मैं बताऊंगी ?" वे बोले - 'पति को इस सरोवर में (स्नानार्थ) ले आओ, वह जिस अवस्था की इच्छा करेगा, वैसा ही हो जायेगा।'

सुकन्या, च्यवन को सरोवर के पास ले आई, (सरोवर में स्नान के पश्चात्) च्यवन ने जिस आयु (युवावस्था) की इच्छा की, वैसे होकर निकले। अश्विनौ बोले—'सुकन्ये ! हम किस बात में अपूर्ण हैं और किस में असमृद्ध हैं ?" तब च्यवन ऋषि ने स्वयं उत्तर दिया—'कुरुक्षेत्र में देवगण यज्ञ कर रहे हैं और आप दोनों को बाहर निकाल दिया है। यही आपमें अपूर्णता है, यही असमृद्धि है कि आप यज्ञ में सोमभाग के अधिकारी नहीं हो।

यह सुनकर दोनों अश्विनीकुमार लौटे और वहां पहुंचे जहां (कुरुक्षेत्र में) देवगण बहिष्पवमान स्तुति करने के पश्चात् यज्ञानुष्ठान कर रहे थे। अश्विनीकुमारों ने देवों से कहा—'हमको भी यज्ञ में बुलाओ।' देव बोले—'हम नहीं बुलाते।' आप तो चिकित्सा करते-करते सब प्रकार के मनुष्यों में घूमते फिरते हो। अश्विनी बोले—'अरे आप तो 'विशीर्ष्ण' (विना शिर का) यज्ञ करते हो। 'विशीर्ष्ण यज्ञ कैसे ?' 'हमको बुलाओ, तब बतायेंगे।'

'अच्छा'। तदनन्तर देवों ने अश्विनौ का आह्वान किया। उनके लिए आश्विनग्रह का विधान किया। वे दोनों यह के अध्वर्यु बन गये। उन्होंने 'विशीर्ष्ण यज्ञ' को 'शीर्ष्ण यज्ञ' बना दिया। बहिष्पवमान की स्तुति के पश्चात् यह ग्रह लिया जाता है, वे बहिष्पवमान के पश्चात् ही आये थे।

अश्विनीकुमार बोले—'हम अध्वर्यु हैं। हम ही यज्ञ में मुख्य हैं। हमारे इस पहिले ग्रह को द्विदेवत्यों को दे दो। उन्होंने पहिले ग्रह (सोमचषक) को द्विदेवत्यों के लिए दे दिया। इसलिए यह—दशम ग्रह है और तृतीय वषट्कार है। यही आश्विन ग्रह है।·····दध्यङ् आथर्वण ने 'मधुब्राह्मण' अश्विनीकुमारों को सिखाया था।

शण्डामर्कौ—

शण्डामर्काविव्यसुररक्षसे·····। यत्र वै देवाः असुररक्षसान्यपजघ्निरे तदेतावेव न शेकुरपहन्तुं यद्ध स्म देवाः किं च कर्म कुर्वते तद्ध स्म मोहयित्वा क्षिप्र एव पुनरद्रवतः। ते ह देवा ऊचुः। उपजानीत यथेमावपहनामह इति। ते होचुर्ग्रहावेवाभ्यां गृह्णाम। तावभ्यवैष्यतस्तौ स्वीकृत्यापनिष्यामह इति। ताभ्यां ग्रहौ

जगृहुस्ताभ्य स्तावभ्यवैतां तौ स्वीकृत्यापाघ्नत। तस्माच्छण्डामर्काभ्यामिति गृह्येते देवताभ्यो हूयेते। (४।२।१।४–६)

अर्थ—शण्ड और मर्क दो असुर राक्षस (पुरोहित थे) हैं। उनके लिए ग्रह (सोमचषक) लिये जाते हैं। और देवों के लिये इनकी आहुति दी जाती है।

जब देवों ने असुरों और राक्षसों को मार भगाया तो वे इन दोनों (असुर पुरोहितों) को न भगा सके। देवता जो कुछ कर्म (यज्ञ) करते, तो वे दोनों यज्ञ में विघ्न डालकर भाग जाते थे। तब देवों ने सोचा "कोई उपाय करें, जिससे हम, इन दोनों को भगा (समाप्त कर) सकें।"

उन्होंने कहा—'इन दोनों के लिये दो ग्रह लें। वे इन ग्रहों को पीने आयेंगे। हम इनको पकड़कर मार देंगे। उन दोनों के लिये ग्रह लिये गये और जब वे अपने ग्रह पीने आये तो पकड़कर उन्हें मार दिया गया। इसलिये शण्ड और मर्क के लिये ये दो ग्रह ग्रहण किये जाते हैं और देवताओं के लिए उनकी आहुति दी जाती है।

समकालिका ऋषयः (आचार्याः)–

(१) राम औपतस्विनि (४।६।१।७)

(२) बुडिल आश्वतराश्विः (४।६।१।६)

(३) याज्ञवल्क्यः वाजसनेयः (४।६।१।१०)

कौकूस्तः–

चतुर्विंशतिमेवैताः प्रथमगर्भाः षष्ठौहीर्दक्षिणा ददावृषभं पञ्चविंशं हिरण्यमेतदु ह स ददौ॥ (४।६।१।१३)

अर्थ—कौकूस्त ने चौबीस प्रथमगर्भा गायें अपने प्रथम सन्तान के साथ दी थीं और पच्चीसवां वृषभ (सांड) तथा सोना।

भद्रसेनः आजातशत्रवः–

एतया वै भद्रसेनमाजातशत्रवमारुणिरभिचचार।

अर्थ—इस ऋचा द्वारा आरुणि ने भद्रसेन अजातशत्रु के पुत्र के साथ अभिचार किया।

पुरुः—

पुरुर्ह नामासुर रक्षसामास। (६।८।१।१४)

अर्थ—असुरराक्षसों में एक 'पुरु' नाम का असुरराक्षस था।

पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला च चाप्सराविति।

(८।६।१।१६, यजुर्वेद १५।१५)

अर्थ—पुञ्जिकस्थला और क्रतुस्थला नाम की अप्सरायें थीं ।

मेनका च सहजन्या चाप्सरसाविति—

(८।६।१।१७) (यजु० १५।१६)

अर्थ—मेनका और सहजन्या दो अप्सरायें थीं ।

हेतिप्रहेती—

यातुधाना हेति रक्षाँसि प्रहेतिरति ।

(८।६।१।१७), (यजु० १५।१६)

अर्थ—हेति और प्रहेति यातुधान (मायावी) राक्षस थे ।

प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ (८।६।१।१७) (यजु० १५।१७)

विश्वाची घृताची चाप्सरसौ (८।६।१।१८) (यजु० १५।१८)

उर्वशी च पूर्वचितिश्चाप्सरसौ (८।६।१।२०) (यजु० १५।१९)

इन्द्रबृहस्पती—

ते देवा इन्द्रमब्रुवन् । त्वं वै नः श्रेष्ठो बलिष्ठो वीर्यवत्तमोऽसि । त्वमिमानि रक्षांसि प्रतियतस्वेति । तस्य वै मे ब्रह्म द्वितीयमस्त्विति । तथेति । तस्मै वै बृहस्पतिं द्वितीयमकुर्वन्ब्रह्म वै बृहस्पतिस्त इन्द्रेण चैव बृहस्पतिना च दक्षिणतोऽसुरान् रक्षांसि नाष्ट्रा अपहत्याभयेऽनाष्ट्रं एतं यज्ञमतन्वत । (९।२।३।३)

अर्थ—देवों ने इन्द्र से कहा—'तुम हमारे में श्रेष्ठ, बलिष्ठ और महावीर हो । तुम इन राक्षसों को मारो, (जो यज्ञ में विघ्न करते हैं) 'मेरे साथ दूसरा (ब्राह्मण=पुरोहित=मन्त्री) होना चाहिये । ऐसा ही हो । अतः बृहस्पति को उसका ब्राह्मण (पुरोहित) बनाया गया । इन्द्र और बृहस्पति ने दक्षिण से असुरों और राक्षसों सदृश विघ्नों को मारकर यज्ञ को निर्विघ्न एवं अभय होकर किया ।

परमेष्ठी प्रजापतिः—

सहस्रायुषो जज्ञिरे···। स परमेष्ठीं प्रजापतिं पितरमब्रवीत् । कामप्रं वा अहं यज्ञमदर्शं तेन त्वा याजयानीति । तथेति । तमयजत्स ।··· स प्रजापतिरिन्द्रं पुत्रमब्रवीत् । अनेन त्वा कामप्रेण यज्ञेन याजयानि येन मामिदं परमेष्ठ्यीयजदिति । तथेति तमयजत्स ।

(११।१।६।१५-१८)

अर्थ—(प्रजापतिगण) सहस्रों वर्षों की आयु वाले थे । उस (प्रजापति) ने परमेष्ठी प्रजापति से कहा—"मैंने कामनाओं की पूर्ति करनेवाले यज्ञ का दर्शन किया है, जिससे मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा । अतः उन्होंने वैसा यज्ञ कराया । पुनः प्रजापति (कश्यप) ने अपने पुत्र इन्द्र से कहा—'मैं यह कामप्र यज्ञ तुम्हारे लिए

कराऊंगा । क्योंकि परमेष्ठी ने यह यज्ञ मेरे लिए किया था । अतः कश्यप ने यज्ञ कराया ।

विख्याता याज्ञिका आचार्याः

शाण्डिल्यायनः--

अथ ह शाण्डिल्यायनः प्राच्यां जगाम । तं ह दैयाम्पातिरुवाच । (९।५।१।६४)

अर्थ --शाण्डिल्यायन (शाण्डिल्य का वंशज) पूर्व दिशा में गया । वहां उससे दैयाम्पाति बोला ।

शाण्डिल्यः —

तद्धैतच्छाण्डिल्यः कंकतीभ्योऽहरह कर्म प्रदिश्य प्रवव्राज । (९।४।४।१७)

अर्थ—शाण्डिल्य आचार्य ने नित्यप्रति कंकतियों को कर्म का उपदेश देकर प्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण किया ।

शाण्डिल्यः साप्तरथवाहनिश्च–

तद्धैतच्छाण्डिल्यश्च साप्तारथवाहनिश्च । आचार्यान्तेवासिनौ व्यूदाते । (१०।१।४।१०)

अर्थ—आचार्य शाण्डिल्य और साप्तारथवाहनि—आचार्य और शिष्य ने यह विद्या कही ।

तुरः कावषेयः—

अथ ह स्माह शाण्डिल्यः । तुरो ह कावषेयः कारोत्यां देवेभ्यो-ऽग्निं चिकाय । तं ह देवा पप्रच्छुर्मुने ।…(९।५।२।१६)

अर्थ—शाण्डिल्य ने बताया । तुर कावषेय (कवषपुत्र) ने कारोती में देवों की अग्नि का चयन किया—अर्थात् अग्निचयन यज्ञ किया । देवों ने उससे पूछा—हे मुने !…।

धीरः शातपर्णेयः—

धीरो ह शातपर्णेयः । महाशालं जाबालमुत्ससाद । (१०।३।१)

अर्थ—धीर (आचार्य)—शातपर्णि का पुत्र, महाशाल (महाविद्यालय या विश्वविद्यालय) के आचार्य जाबाल के पास गया ।

श्वेतकेतुरारुणेयः—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः । यक्ष्यमाण आस । तं ह पितोवाच । कानृत्विजो-ऽवृथा इति । स होवाचायं त्वेव मे वैश्वावसव्यो होतेति । (१०।३।४।१)

अर्थ —आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु यज्ञ कर रहा था। पिता ने पूछा—हे पुत्र! तुमने किन-किन ऋत्विजों का चयन किया है। श्वेतकेतु ने उत्तर दिया—'मेरा 'वैश्वावसव्य' होता है।

श्यापर्णः सायकायनः—

एतद्ध स्म तद्विद्वाञ्छ्यापर्णः सायकायन आह। यद्वै म इदं कर्म समाप्स्यत ममैव प्रजा राजानोऽभविष्यत्। (१०।४।१।१०)

अर्थ—श्यापर्ण सायकायन ने कहा—यदि मेरा यह कर्म (यज्ञ) पूर्ण हो जाय तो मेरी सन्तति साल्वों की राजा हो जाती।

वामकक्षायणः—

एतद्ध वै तांच्छाण्डिल्यः। वामकक्षायणाय प्रोच्योवाच श्रीमान् यशस्वन्नादो भविष्यसीति। (१०।४।१।११)

अर्थ—शाण्डिल्य ने यह (अग्निविद्या) वामकक्षायण को सिखाकर कहा— "इससे तुम श्रीमान्, यशस्वी और अन्नाद होगे।"

शाकायनिनः (१०।४।५।१)

श्रौमत्य हालिङ्गवः (१०।४।५।२)

चेलकः शाण्डिल्यायनः (१०।४।५।३)

कुश्रिः—

कुश्रिर्ह वाजश्रवसोऽग्निं चिक्ये। तं होवाच सुश्रवाः कौश्यः— 'गौतम! यदग्निमचैषी।'

अर्थ—कुश्रि आचार्य ने वाजश्रवा (ऋषि) के लिए अग्निचयन किया। सुश्रवा कौश्य ने (कुश्रि से कहा)—हे गौतम! आपने जो अग्निचयन किया है।

समकालिकाः प्रमुखा याज्ञिकाः—

अरुण औपवेशिः, सत्ययज्ञः पौलुषिः, महाशालो जाबालः, बुडिल आश्वतरिः, इन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयः, जनः शार्कराक्ष्यः, अश्वपतिः कैकयः। (१०।६।१।१)

अरुण औपवेशिः—गौतमस्य वंशजः।

सत्ययज्ञः पौलुषिः—प्राचीनयोग्यस्य वंशजः।

जाबालः—औपमन्यवस्य वंशजः।

बुडिलः इन्द्रद्युम्नश्च—वैयाघ्रपादस्य वंशजौ।

शार्कराक्ष्यः—सायवसः वंशजः।

उद्दालक आरुणिः—

उद्दालको हारुणिः। उदीच्यान्वृतो धावयांचकार। तस्य निष्कऽ-

उपाहित ऽ आसैतद्ध स्म वै तत्पूर्वेषां वृतानां धावयतामेकधनुमाहितं भवत्युपवल्हाय बिभ्यतां तान् उदीच्यानां ब्राह्मणान् भीर्विवेद। कुरुपाञ्चालानां वा अयं ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रः · । केन वीरेणेति स्वैदायनेनेति शौनको ह स्वैदायन आस। (११।४।१।२)

अर्थ—उद्दालक आरुणि (अरुणपुत्र) समावृत होकर उदीच्य जनपदों में घूमता था—उसने निष्क धारण कर रखा था; वह निष्क (ग्रीवालंकार) मानो पूर्वाचार्यों (शास्त्रार्थियों) का लक्षण था, मानो युद्धार्थी का धनुष हो। उदीच्य ब्राह्मणों को भय सताने लगा। तह (आरुणि उद्दालक) कुरुपाञ्चालों का ब्रह्मा ब्राह्मणपुत्र है··· ··किस वीर के साथ इसका शास्त्रार्थ हो। स्वैदायन के साथ। स्वैदायन शौनकगोत्रीय आचार्य था।

याज्ञवल्क्यः (वाजसनेयः)—

तद्धैतज्जनको वैदेहः। याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ। वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य ३ इति वेद सम्राडिति।···वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनुशतं ददामीति होवाच। (११।३।१।२,४)

अर्थ—विदेहों का राजा जनक था। उसने याज्ञवल्क्य से पूछा—'हे याज्ञवल्क्य ! क्या आप अग्निहोत्र (के विधान) को जानते हो ? याज्ञवल्क्य ने कहा—हे सम्राट् ! मैं जानता हूं। हे याज्ञवल्क्य ! आप निश्चय ही अग्निहोत्र को जानते हो। अतः आपको मैं सौ गायें दान में देता हूं।

पुरूरवोर्वश्युपाख्यानम्—

उर्वशी हाप्सराः। पुरुरवसमैडं चकमे। तं ह विन्दमानोवाच। त्रिःस्थऽन्हो वैतसेन दण्डेन हतावकायां स्म मा निपद्यासै मो स्म त्वा नग्नं दर्शमेष वै नः स्त्रीणामुपचार इति। सा हास्मिञ्ज्योगुवास। अपि हास्माद् गर्भिण्यास। तावज्ज्योग्घास्मिन्नुवास। ततो ह गन्धर्वा समूदिरे। ज्योग्वा इयमुर्वशी मनुष्येष्ववात्सीदुपजानीत। यथेयं पुनरागच्छेदिति तस्यै हाविद्ध्र्युरणाऽउपबद्धाऽऽस। ततो ह गन्धर्वा ऽ अन्यतरमुरणं प्रमेथुः। सा होवाच अवीर इव बत मेऽजन इव पुत्रं हरन्तीति द्वितीयं प्रमेथुः साह तथैवोवाच। अथ हायमीक्षांचक्रे। कथं नु तदवीरं कथमजनं स्याद्यत्राहं स्यामिति। स नग्न एवानूत्पपात। चिरं तन्मेने यद्वासः पर्यधास्यतः। ततो ह गन्धर्वा विद्युतं जनयांचक्रुस्तं यथा दिवैव नग्नं ददर्श। ततो हैवेयं तिरोबभूव। पुनरैमीत्येत्तिरोभूतां स आध्या जल्पन्

कुरुक्षेत्रं समया चचारान्यतः। प्लेक्षेति बिसवती तस्यै हाध्यन्तेन वव्राज । तद्ध ता अप्सरस आतयो भूत्वा परिपुप्लुविरे ।
तं हेयं ज्ञात्वोवाच । अयं वै स मनुष्यो यस्मिन्नहमवात्समिति । ता होचुस्तस्मै वा आविरसामेति । तथेति तस्मै हाविरासुः । तां हायं ज्ञात्वाऽभिपरोवाद ।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे च ।
नाहन्नित्युप नु स्म सं नु वदावहा इति ॥
हैवैनां तदुवाच ।
तं हेतेरा प्रत्युवाच ।
किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषासामग्नियेव पुरूरवः।
पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि । इति ।
न वै त्वं तदकरोर्यदहमब्रवं दुरापा वा ऽ अहं त्वयेतहर्यस्मि ।
पुनर्गृहानिहीति हैवेनं तदुवाच ।
अथ हायं परिद्यून उवाच ।
सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासोऽद्युः ।
सुदेवोऽद्योद्वा बध्नीत प्र वा पतेत्तदेनं वृका वा श्वानोऽहनुरति हैव तदुवाच ।

तं हेतरा प्रत्युवाच—
पुरूरवो मा मृथा प्रपप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्यत ।
इति मैतदाद्दथा न वै स्त्रैणं सख्यमस्ति पुनर्गृहानिहीति । हैवेनं तदुवाच ।

यद् विरूपाचरम् मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृद् अह्न आश्ना ता देवेदं तातृपाणा चरामि ।
इति तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्चं बह्वृचाः प्राहुस्तस्मै ह हृदयमव्ययाञ्चकार ।

सा होवाच । संवत्सरतमीं रात्रिमागच्छतात्तान्म एकां रात्रिमन्ते शयितासे जात उ तेऽयं तर्हि पुत्रो भवितेति । स ह संवत्सरतमीं रात्रिमाजगामेद्धिरण्यविमितानि ततो हैनमेकमूचुरे तत्प्रपद्यस्वेति । तद्धास्मै तामुपप्रजिघ्युः ।

सा होवाच । गन्धर्वा वै ते प्रातर्वरं दातारस्तं वृणासा इति । तं वै त्वमेव वृणीष्वेति । युष्माकमेवैकोऽसानीति ब्रूतादिति । तस्मै ह प्रातर्गन्धर्वा वरं ददुः । स होवाच युष्माकमेवैकोऽसानीति । ते होचुः । न वै सा मनुष्येष्वग्नेर्यज्ञिया तनूरस्ति ययेष्ट्वास्माकमेकः स्यादिति । तस्मै स्थाल्यामोप्याग्निं प्रददुरनेनेष्ट्वाऽस्माकमेको भविष्यसीति तं च ह कुमारं चादाय वव्राज । सोऽरण्ये एवाग्निं निधाय कुमारेणैव ग्राममेयाय । पुनरेमीत्येतिरोभूतं योऽग्निरश्वत्थं तं या स्थालीं शमीं तां स ह पुनर्गन्धर्वानियाय । ते होचुः । संवत्सरं चातुष्प्राश्यमोदनं पच । स एतस्यैवाश्वत्थस्य तिस्रः तिस्रः समिधो-घृतेनान्वज्य समिद्वतीभिर्घृतवतीभिर्ऋग्भिरभ्याधात्स यस्ततो-ऽग्निर्जनिता । स एव स भवितेति ।

ते होचुः । परोक्षमिव वा एतदाश्वत्थीमेवोत्तरारणिं कुरुष्व । शमी-मयीमधरारणिं स यस्ततोऽग्निर्जनिता । स एव स भवितेति । स आश्वत्थीमेवोत्तरारणिं चक्रे । आश्वत्थीमधरारणिं । स यस्ततो-ऽग्निर्जज्ञे । स एव स आस । तेनेष्ट्वा गन्धर्वाणमेक आस ।

(११।५।१।१-१७)

अर्थ—उर्वशी अप्सरा ने पुरूरवा ऐड (=ऐल=इलापुत्र) की कामना की। उसको प्राप्त करके बोली—'हे वीर ! मेरे साथ दिन में मैथुन न करना, अकामा के पास मत आना । मैं आपको (दूसरों के समक्ष) नग्न नहीं देखूं । ये मेरी शर्तें हैं । तदनन्तर वह उर्वशी, पुरूरवा के पास दीर्घकाल पर्यन्त रही । वह उससे गर्भिणी भी होगई । जब बहुत दिन तक वह उसके पास रही तब गन्धर्वों ने परस्पर कहा—'यह उर्वशी मनुष्यों में बहुत दिनों तक रह रही है । अब विचार करो कि वह हमारे पास कैसे आये । उनको ज्ञात हुआ कि दो उरण (मेढ़े) उसके पास बंधे रहते हैं । तब गन्धर्वों ने उनमें से एक उरण को चुरा लिया ।

उर्वशी ने पुरूरवा से कहा—'आप निर्वीर्य और अनाथ की भांति मेरे पुत्र (तुल्य) दूसरे उरण को भी गन्धर्व ले जा रहे हैं । पुरूरवा ने कहा—"मैं कैसे अवीर और तुम कैसे अनाथ हो ? मैं यहां पर हूं ।" वह नंगा ही दौड़ा । बहुत देर पश्चात् उसने जाना कि वह नंगा है । तब गन्धर्वों ने विद्युत् (बिजली) उत्पन्न कर दी और दिन जैसा प्रकाश होगया, जिससे वह नग्न दिखाई पड़ गया । इस (नियम भंग) से उर्वशी उससे दूर होगई ।

उसके विरह में पुरूरवा कुरुक्षेत्र में घूमता रहा ।

अप्सरायें उर्वशी के पास प्रतिपक्षी बनकर फुदककर आईं । उर्वशी उसको

देखकर बोली—देखो यह वही मनुष्य है, जिसके साथ में मर्त्यलोक (भारतवर्ष) में रही। वे बोलीं हम उसके समक्ष प्रकट हो जायें। उन्होंने वैसा ही किया। वे प्रकट होगईं। उसको देखकर वह पुरूरवा बोला—"हे पत्नी उर्वशी! तू मन से ठहर जा। तू बड़ी कठोर है। हम परस्पर बातें करेंगे।"

उर्वशी बोली—"हे पुरूरवा! आप मुझसे क्या बात करेंगे। मैं अग्नियों की भांति आक्रांत होगई जैसे उषा चली जाती है। अपने घर दूर चले जाओ। मैं अब आपके लिये दुष्प्राप्य वायु की भांति हूं।"

"मैंने आपसे जो कुछ वचन (शर्त) कही थी, उसका आपने पालन नहीं किया अब मैं दुष्प्राप्य हूं। अतः अब अपने घर चले जाओ।" उदास और टूटा हुआ पुरूरवा बोला—तुम मुझसे बहुत दूर चली गई। यह मेरा बड़ा दुर्भाग्य है। तुम नरक में पड़ी हो तुमको कहीं जंगली भेड़िये नहीं खा जायें।

"हे पुरूरवा! आप व्यर्थ में मरें नहीं। आप कहीं पतित न हों। तुमको भयंकर भेड़िये न खा जायें। स्त्रियों की मित्रता (स्थायी) नहीं होती, उनके हृदय सालावृक (भेड़ियों) के समान होते हैं।

अतः अब मेरी कामना मत करो, स्त्रियों की मित्रता नहीं होती। तुम अपने घर जाओ, यह उसने कहा।

"मैं रूप बदलकर मनुष्यों में चार वर्ष तक रही। मैं दिन में एक बार थोड़ा सा घी खाती थी। और तृप्त होकर रहती थी।

इस प्रकार पन्द्रह ऋचाओं में यह पुरूरवा-उर्वशी संवाद चलता है ऐसा ऋग्वेदीय आचार्य कहते हैं।

उर्वशी बोली—वर्ष की अन्तिम रात्रि में आप मेरे पास आना तब मैं एक रात्रि तुम्हारे साथ सोऊंगी। जब तक तुम्हारा यह पुत्र हो जायेगा। वह वर्ष की अन्तिम रात्रि में आया। गन्धर्वों ने उसे देख लिया और उनमें से एक बोला यहां आओ। और वे उसे अपने पास ले गये।

उर्वशी बोली—गन्धर्वगण प्रातः आपको वरदान देंगे। तब आप यह वर मांगना—'मैं आपका ही एकमात्र होकर रहूं। प्रातःकाल होने पर गन्धर्व पुरूरवा को वर देने लगे। पुरूरवा ने वर मांगा—'मै आपका होकर ही रहूं।' उन्होंने कहा—'मनुष्यों में अग्नि का यज्ञियरूप नहीं है, जिससे तुम यज्ञ करके हमारे जैसे हो सको।' उन्होंने स्थाली में अग्नि रखकर कहा—'इससे यज्ञ करके हमारे सदृश और हमारे एकमात्र प्रिय हो जाओगे।' तदनन्तर पुरूरवा उस कुमार को लेकर चल दिया। वह अरण्य में अग्नि को स्थापित करके कुमार के साथ नगर में आ गया। 'मैं पुनः जाऊंगा।' ऐसा पुरूरवा, अग्नि, अश्वत्थ, स्थाली और शमी को

लेकर पुनः गन्धर्वों के पास आया। उन्होंने कहा—वर्ष में चातुष्प्राश्य ओदन पकाना। इस अश्वत्थ की तीन समिधायें घी से चिपड़कर समिद्वती और घृतवती ऋचाओं से रखना, तब अग्नि उत्पन्न होगी। वही वह होगा।

गन्धर्वों ने कहा—हे पुरूरवा! इस आश्वत्थी अरणि को ऊपर और शमीमयी को अधरारणि करके अग्नि को उत्पन्न करना। तब वह अग्नि उत्पन्न होगी। उसने आश्वत्थी को अधरारणि और शमीमयी को उत्तरारणि किया, तब अग्नि उत्पन्न हुई। इस प्रकार अग्नि उत्पन्न करके वह पुरूरवा गन्धर्वों का प्रियतम हो गया।

शौचेयः प्राचीनयोग्यः—

शौचेयो ह प्राचीनयोग्यः। उद्दालकमारुरणिमाजगाम। ब्रह्मोद्यमग्निहोत्रं विविदिषिष्यामीति (११।५।३।१)

अर्थ—प्राचीनयोग्य शुचि का पुत्र था। वह उद्दालक आरुणि के पास आया और बोला—"मैं ब्रह्मोद्य अग्निहोत्र जानना चाहता हूं।"

जनको वैदेहः—

जनको ह वै वैदेहो ब्राह्मणैर्धावयद्भिः समाजगाम। श्वेतकेतुनाऽऽरुणेयेन सोमशुष्मेण सात्ययज्ञिना याज्ञवल्क्येन। (११।६।२।१)

अर्थ—श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म सात्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य भ्रमण करते हुए जनक वैदेह के पास आये।

मधुः पैङ्ग्यः—(११।७।२।८)

केशिगृहपतिः, खण्डिक उद्भारिः—

केशीगृहपतीनामु ह सम्राडदुघां शार्दूलो जघान। स सत्रिण आमन्त्रयांचक्रे। खण्डिक एवोद्भारिरस्य प्रायश्चित्तिं वेद।
(११।८।४।१)

अर्थ—केशिगृहपतियों की सम्राडदुघा (गाय) को सिंह ने मार दिया। उसने सत्रियों को बुलाया। खण्डिक उद्भारि प्रायश्चित्त को जानता था।

प्रोतिःकौशाम्बेयः, कौसुरिबिन्दिरुद्दालक-आरुणौ ब्रह्मचर्यमवसताम्।
(१२।१२।२।१४)

अर्थ—प्रोतिःकौशाम्बेय और कौसुरिबिन्दि उद्दालक आरुणि के पास वेदाध्ययनार्थ रहते थे।

नाकः मौद्गल्यः—(१२।५।२।१)

वसिष्ठ इन्द्रश्च—

वसिष्ठो ह विराजं विदांचकार। तां हेन्द्रोऽभिदध्यौ।
(१२।६।१।३८)

अर्थ—वसिष्ठ विराट छन्द को जानते थे, यह इन्द्र ने ध्यान दिया।

नमुचिवधः, इन्द्रस्य बलस्खलनं चिकित्सा च—

विश्वरूपं वै त्वाष्ट्रमिन्द्रोऽहन्। तं त्वष्टा हतपुत्रोऽभ्यचरत्सोऽभिचरणीमपेन्द्रं सोमाहरत्तस्येन्द्रो यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत्स विष्वङ् व्याच्छत्तस्येन्द्रियं वीर्यमङ्गादङ्गादस्रवत्।

अथ ह वै तर्हि नमुचिनैवासुरेण सह चचार। स ऐक्षत। नमुचिरपुनर्वा अयमभूद्धन्तास्येन्द्रियं वीर्यं सोमपीथमन्नाद्यं हराणीति तस्यैतयैव सुरयेन्द्रियैव वीर्यं सोमपीथमन्नाद्यमहरत्स ह न्यर्णः शिश्ये। तं देवा उपसंजग्मिरे श्रेष्ठो वै नोऽयमभूत्तमिमं पाप्माऽविदद्धन्तेमं भिषज्यामेति।

अर्थ—विश्वरूप त्वाष्ट्र को इन्द्र ने मार दिया। पुत्र के मरने पर त्वष्टा ने इन्द्र के प्रति अभिचार करते हुए इन्द्रभाग के बिना सोम यज्ञ किया। इन्द्र ने यज्ञ में जबरदस्ती प्रवेश करके सोम पी लिया। उसका सम्पूर्ण शरीर अस्वस्थ हो गया और उसका ऐन्द्रिक (इन्द्रिय) बल वीर्य प्रत्येक अंग में से निकल गया।

तदनन्तर वह इन्द्र असुरेन्द्र नमुचि के साथ रहने लगा। उसने देखा कि नमुचि बलवीर्य सम्पन्न है, अतः मैं इसके बलवीर्य सोम और अन्न से पुष्ट शरीर का हरण करूं। उसने नमुचि की सुरा से ही उसका ऐन्द्रिक बल, सोम और अन्न हरण कर लिये। तब इन्द्र निःसंज्ञ होकर सोने लगा। तब देवगण उसके पास आये और बोले—"यह इन्द्र तो हम में सर्वश्रेष्ठ था, यह पाप (अपराध) को प्राप्त हुआ, अतः इसका उपचार करें।

अश्विभ्यामिन्द्रस्य सरस्वत्या च चिकित्सनम्—

तेऽश्विनावब्रुवन्। युवं वै ब्रह्माणौ भिषजौ स्थो युवमिमं भिषज्यतामिति। तावब्रूतामस्तु नौ भाग इति। तेऽब्रूवन्य एवोऽजः स वां भाग इति। तथेति। तस्मादाश्विनो धूम्रो भवति। ते सरस्वतीमब्रुवन्। त्वं वै भैषज्यमसि। त्वमिमं भिषज्येति। साऽब्रवीदस्तु मे भाग इति। तेऽब्रुवन्य एषोऽविः स ते भाग इति। तथेति। तस्मात्सारस्वतो मेषो भवति।...तावश्विनौ च सरस्वती च। इन्द्रियं वीर्यं नमुचेराहृत्य तदस्मिन् पुनरदधुस्तं पाप्मनोऽत्रायन्त सुत्रातं बतैतं पाप्मनोऽत्रास्महीति। तद्वाव सौत्रामण्यभवत्तत्सौत्रामण्यै सौत्रामणीत्वं त्रायते मृत्योरात्मानमप पाप्मानं ह ते य एवमेतत्सौत्रामण्यै सौत्रामणीत्वं वेद।

अर्थ देवों ने अश्विनीकुमारों से कहा—आप सर्वोत्तम वैद्य हैं। आप इसका इलाज करें। वे दोनों बोले—'यज्ञ में हमारा भाग भी हो।' वे बोले—'यह जो

बकरा है, वह तुम्हारा भाग है। ठीक है। धूम्रवर्ण का अज अश्विनौ का भाग होता है।

तब देवों ने सरस्वती से कहा—'आप ही औषधि हैं। अतः इस (इन्द्र) का इलाज करो। वह बोली—'मेरा भाग भी होना चाहिये।' देवगण बोले—'यह जो मेढ़ा (भेड़) है, वह तुम्हारा भाग है। इसलिए मेष सरस्वती के लिए होता है।

अश्विनीकुमारों और सरस्वती ने नमुचि के ऐन्द्रियक बल का आहरण करके उसे इन्द्र में स्थापित किया। उन्होंने इन्द्र को पाप से बचाया। 'ओह हमने इसे पाप से बचाया', इसलिए इस यज्ञ का नाम 'सौत्रामणी' हुआ। यही 'सौत्रामणी' का 'सौत्रामणीत्व' है।

संधिभंग:—

·· नमुचये न त्वा दिवा न नक्तं हनानि न दण्डेन न धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न शुष्केण नार्द्रेणाथ म इदमहार्षीदिदं म ऽआजिहीर्षथेति। ··

तावश्विनौ च सरस्वती च अपां फेनं वज्रमसिञ्चन्न शुष्को नार्द्र इति तेनेन्द्रो नमुचेरसुरस्य व्युष्टायां रात्रावनुदित आदित्ये न दिवा न नक्तमिति शिर उदवासयत्। तस्मादेतदृषिणाऽभ्युक्तम्—

"अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्र उदवर्तयः।

विश्वा यदजयः स्पृध इति॥ (१२।७।१।१-१४, २।१-४)

अर्थ—(इन्द्र से नमुचि की सन्धि थी कि वह)—नमुचि को न दिन में न रात्रि में मारेगा। न दण्ड से, न धनु से, न थप्पड़ से, न मुष्टि से, न शुष्क (स्थान में), न आर्द्र (नदी आदि में) मारेगा।···

अश्विनीकुमारों और सरस्वती ने जल के फेन से वज्र का सिञ्चन किया, वह वज्र न शुष्क था न आर्द्र था (फेनयुक्त था), अतः इन्द्र ने नमुचि असुर का शिर तब काटा, जब न रात्रि थी, न दिन था, सूर्योदय होने वाला था। अतः ऋषि ने कहा है—"जल के फेन से इन्द्र ! आपने नमुचि का शिर काट डाला और सभी शत्रुओं को जीत लिया।"

दुष्टरीतुः पौंसायनः—

दुष्टरीतुर्ह पौंसायनः। दशपुरुषं राज्यादपरुद्ध आस। देवोत्तरसमूहपाटवं चाक्रं स्थपतिं सृञ्जया अपरुरुधुः स होवाच। दुष्टरीतुं पौंसायनं सौत्रामण्या त्वा याजयानि। यदिदं सृञ्जयेषु राष्ट्रं तत्त्वयि धास्यामीति। तथेति। तयैनमयाजयत्। तदु ह बह्लिकः प्रातिपीयः शुश्राव। कौरव्यो राजा यो ह वा अयं दुष्टरीतुः

पौंसायनो दशपुरुषं राज्यादपरुद्धोऽभूत्तमयं चाक्रः स्थपतिः सौत्रामण्या याजयिष्यति । यदिदं सृञ्जयेषु राष्ट्रं तद्धास्मिन् धास्यतीति । (१२।९।३।३)

अर्थ— दुष्टरीतु पौंसायन (का सृञ्जयराष्ट्र) दशपीढ़ियों से राज्य से वञ्चित था । देवोत्तरसमूहपाटवचाक्र स्थपति को सृञ्जयों ने रोक लिया । वह (चाक्र) दुष्टरीतु पौंसायन से बोला—'मैं आपको सौत्रामणी यज्ञ कराऊंगा और सृञ्जयों का जो राष्ट्र है, वह आपको दिलाऊंगा । ठीक है । उसने उसका सौत्रामणी यज्ञ करवाया ।

बल्हिक प्रातिपीय (प्रतीप के पुत्र) ने सुना । वह कौरव्यराजा था । (उसने सुना)—"दुष्टरीतु पौंसायन, जिसका राज्य दश पीढ़ियों से अपरुद्ध था, उसको स्थपति चाक्र सौत्रामणी यज्ञ कराके सृञ्जयराष्ट्र उसे दिला देगा ।"

दश प्रजापतयो दशजनाश्च (पञ्चजना वा)

(श०ब्रा० १३।४।३।१-१५)

मनुर्वैवस्वतो मानवी प्रजा च—

मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विशस्त इमे आसत······ तानुपदिशत्यृचो वेद···।।३।।

अर्थ—मनु वैवस्वत राजा था और मनुष्य उसकी प्रजा थे । वे बैठते थे तब मनु उनको ऋग्वेद पढ़कर सुनाता था ।

यमो वैवस्वतः पितरश्च—

यमो वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य पितरो विशस्त इम आसत इति स्थविरा उपसमेता भवन्ति । तानुपदिशति यजूंषि वेद ।।६।।

अर्थ— यम वैवस्वत राजा था और पितृगण उसकी प्रजायें थीं, जब स्थविर (वृद्ध-पितृगण) इकट्ठे बैठते थे, तब यम उनको यजुर्वेद सुनाता था ।

वरुण आदित्यः—

वरुण आदित्यो राजेत्याह । तस्य गन्धर्वा विशस्त इम आसत इति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति । तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः ।।७।।

अर्थ—वरुण आदित्य (अदितिपुत्र) राजा था और गन्धर्व उसकी प्रजा । वे युवा अलंकृत होकर सभा करते थे तब वरुण उनको अथर्ववेद की शिक्षा देता था ।

सोमः वैष्णवः—

सोमः वैष्णवो राजेत्याह । तस्याप्सरसो विशस्ता इमा आसत

इति । युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति । ता उपदिशत्यङ्गिरसो वेदः ॥८॥

अर्थ—सोम वैष्णव (विष्णु का पुत्र) राजा था और अप्सरायें उसकी प्रजायें थीं । वे इकट्ठी होती थी, तब सोम उनको आंगिरसवेद का उपदेश देता था ।

अर्बुदः काद्रवेयः—

अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह । तस्य सर्पा विशस्त इम आसत इति । सर्पाश्च सर्पविदश्चोपसमेता भवन्ति तानुपशति—सर्पविद्यावेदः । ॥९॥

अर्थ—अर्बुद काद्रवेय (कद्रू का पुत्र) राजा था और नाग उसका पुत्र था । जब नाग और सर्प विद्याविशारद विद्वान् एकत्रित होते थे, तब अर्बुद काद्रवेय उनको सर्पविद्यावेद का उपदेश देता था ।

कुबेरः वैश्रवणः—

कुबेरो वैश्रवणो राजेत्याह । तस्य रक्षांसि विशस्तानीमान्यासत इति सेलगाः पायकृत उपसमेता भवन्ति । तानुपदिशति देवजन-विद्यावेदः ॥१०॥

अर्थ—कुबेर वैश्रवण (विश्रवा मुनि का पुत्र) राजा था और (यक्ष तथा) राक्षस उसकी प्रजा थे । वे पापी (अपराधी-हिंसक) दस्यु (डकैत) इकट्ठा होते थे तब कुबेर उनको देवजनविद्यावेद सुनाता था ।

असितः धान्वः—

असितो धान्वो राजेत्याह । तस्यासुरा विशस्त इम आसत इति । कुसीदिन उपसमेता भवन्ति । तानुपदिशति मायावेदः ॥११॥

अर्थ—आसितधान्व राजा था, उसकी प्रजा असुर (पणि) गण थे । वे व्यापारी—ब्याजखोर जब इकट्ठा होते हैं तो असित धान्व उनको मायावेद का उपदेश देता है ।

मत्स्यः सांमदः—

मत्स्यः सांमदो राज्येत्याह । तस्योदकचर विशस्त इम आसत इति । मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशति इतिहासो वेदः ॥१२॥

अर्थ—मत्स्य सांमद राजा था । जलचर या जलोपजीवी (मछुआरे आदि) उसकी प्रजा थीं । मत्स्यजन और मछुआरे इकट्ठे होते हैं, उनको वह (मत्स्य पुराण इतिहासवेद की शिक्षा देता था ।

तार्क्ष्यः वैपश्यतः—

तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह। तस्य वयांसि विशस्तानीमान्यसात इति। वयांसि च वायोविद्यकाश्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशति पुराणं वेदः ॥१३॥

अर्थ—तार्क्ष्य वैपश्यत राजा था। पक्षी (और पक्षिसदृश उड़नेवाली मानव प्रजा) उसकी प्रजा थे। पक्षिगण एवं पक्षिविद्याविशारद (उड्डयन विद्याविद्) एकत्रित होते थे तब वह उनको पुराण (मत्स्यपुराण) सुनाता था।

इन्द्रो देवगणश्च—

धर्म इन्द्रो राजेत्याह। तस्य देवा विशस्त इम आसत इति। श्रोत्रियाऽप्रतिग्राहका उपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति सामानि-वेदः ॥१४॥

अर्थ—धर्मराज इन्द्र राजा था। उसकी प्रजा थी देवगण। वे श्रोत्रिय (वेदपाठी) एवं दान नहीं लेनेवाले एकत्रित होकर सामवेद सुनते थे।

पारिप्लवोपाख्यानम्—

पारिप्लवमाख्यानमाचष्टे। तस्मात्पारिप्लवं षट्त्रिंशतं दशाहा-न्याचष्टे ॥१५॥

अर्थ—(अश्वमेध यज्ञ में) पारिप्लवोपाख्यान सुनाया जाता है। (पूरे यज्ञ में) दश वार—छत्तीस दिन (अर्थात् ३६० दिन) यह आख्यान सुनाया जाता है।

अश्वमेधकर्त्तारो राजानः (श० ब्रा० १३।५।४।१-१३। ७।१।१५)

जनमेजयः पारिक्षितः—

एतेन हेन्द्रोतो देवापः शौनकः। जनमेजयं पारिक्षितं याजयांचकार। तदेतद् गाथयाऽभितम्—

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।
आबध्नादश्वं सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः॥

एते एव पूर्वेऽहनी। ज्योतिरतिरात्रस्तेन भीमसेनमेते एव पूर्वेऽहनी गौरतिरात्रस्तेनोग्रसेनमेते एव पूर्वेऽहनी आयुरतिरात्रस्तेन श्रुतसेन-मिति एते पारिक्षितीयास्तेदतद् गाथयाऽभिगीतम्—

पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधैः परोऽवरम्।
अजहुः कर्म पापकं पुण्या पुण्येन कर्म करोति॥ (१३।५।४।१-३)

अर्थ—इसके (अश्वमेध) द्वारा देवापशौनक पुरोहित ने जनमेजय पारिक्षित का यज्ञ कराया था। यह (यश) इस गाथा के द्वारा गाया जाता है—

"जनमेजय ने आसन्दीवती (नगर) में धान्याद, रुकमी, हरितमाली, सारंग अश्व को देवों के लिए बांधा।"

ज्योतिरात्र इसके पूर्वाह है, जिनमें भीमसेन को, गौरतिरात्र पूर्वाह में उग्रसेन को और आयुरतिरात्र पूर्वाह में श्रुतसेन को यज्ञ कराया गया। इन पारिक्षितों (चार परिक्षितपुत्रों) की गाथा इस गीत के द्वारा गाई जाती है—

"पारिक्षित यजमानों ने अश्वमेध यज्ञों के द्वारा अपने पूर्वावर पापकर्मों से मुक्ति पाई और उन पुण्यात्माओं ने पुण्यकर्म किया।"

कौसल्यः परः(हैरण्यनाभः)—

पर आह्लार ईजे कौसल्यो राजा। तदेतद् गाथयाऽभिहितम्।
अह्लारस्य परः पुत्रोऽश्वं मेध्यमबन्धयत्।
हैरण्यनाभः कौसल्यो दिशः पूर्ण अमंहतेति ॥४॥

अर्थ—कोसलदेश के राजा (हिरण्यनाभ पुत्र) कौसल्य पर ने (अश्वमेध) किया। इस गाथा द्वारा (उसका यश) गाया जाता है—

"अह्णार (अट्णार-हिरण्यनाभ) के पुत्र पर ने मेध्य अश्व को बांधा और सभी दिशाओं को जीत लिया।"

पुरुकुत्स ऐक्ष्वाकः—

विश्वाजिदतिरात्रस्तेन ह पुरुकुत्सो दौर्ग्रहेणेजे ऐक्ष्वको राजा।
तस्मादेतदृषिणाऽभ्यनूक्तम्—
अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौग्रहेण बध्यमाने॥
(ऋग्वेद ४।४२।८)

अर्थ—पुरुकुत्स ऐक्ष्वाक विश्वजित अतिरात्र द्वारा दौर्ग्रह ( ) से यज्ञ किया। अतः ऋग्वेद में ऋषि ने कहा है—"हमारे पितर (पूर्वज) सात ऋषि थे, जिन्होंने दौग्रह से आबद्ध होकर यज्ञ किया।"

मरुत आवीक्षितः—

महाव्रतमतिरात्रस्तेन ह मरुत आवीक्षित ईज आयोगव राजा।
तस्य ह ततो-मरुतः परिवेष्टारोऽग्निः क्षत्ता विश्वेदेवाः सभासदो बभूवुस्तदेतद् गाथयाऽभिगीतम्—
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्याग्निः क्षत्ता विश्वेदेवाः सभासदः ॥६॥

अर्थ—महाव्रत अतिरात्र के दिन (अश्वमेध यज्ञ में) मरुत आवीक्षित (आवीक्षित्पुत्र या अयोगुपुत्र) ने यज्ञ किया। उसके यज्ञ में मरुद्गण भोजन परोसने वाले थे और अग्नि (आंगिरस संवर्त ऋषि) क्षत्ता (क्षत्रधारक) थे तथा

विश्वेदेव सभासद थे। (यही तथ्य) निम्न (पौराणिक) गाथा द्वारा गाया गया है— "मरुद्गण परिवेष्टा थे, जो राजा मरुत के घर रहते थे। अग्नि (आंगिरस) ऋषि क्षत्ता था और विश्वेदेव सभासद्गण थे।"

क्रैव्यः पाञ्चालः—

एतेन क्रैव्य ईजे पाञ्चालो राजा। "क्रिवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते", तदेतद् गाथयाऽभिगीतम्—

अश्वं मेध्यमालभते क्रिवीणामतिपूरुषः।
पञ्चालः परिवक्रायां सहस्रशतदक्षिणम् ॥७॥

अथ द्वितीयया—

सहस्रमासन्नयुता शता च पञ्चविंशतिः।
दिक्तो दिक्तः पञ्चालानां ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥

अर्थ—अश्वमेध द्वारा पञ्चालराज क्रैव्य ने यज्ञ किया। प्राचीनकाल में पञ्चालों का ही नाम 'क्रिवि' था। यज्ञ यश को निम्न गाथा से गाया जाता था—

"क्रिवियों (पंचालों) के महान् राजा ने परिव्रका (नगरी) में लाखों गायों की दक्षिणा वाला अश्वमेध यज्ञ किया।"

"दिशाओं दिशाओं में (असंख्य) ब्राह्मणों ने पञ्चाल राजा की लाखों सहस्रों एवं पच्चीस सौ गायें प्राप्त कीं।"

ध्वसा द्वैतवनः—

हैतेन ध्वसा द्वैतवन ईजे मात्स्यो राजा यत्रैतद् द्वैतवनं सरस्तदेतद् गाथयाऽभिगीतम्—

चतुर्दश द्वैतवनो राजा संग्रामजिद् हयान्।
इन्द्राय वृत्रघ्नेऽबध्नात्तस्माद् द्वैतवनं सरः ॥

अर्थ—ध्वसा द्वैतवन मात्स्य राजा ने द्वैतवन में अश्वमेध यज्ञ किया। जहां पर द्वैतवन है, वहीं पर द्वैतवन तालाब (झील) है। गाथा है—

"विजयी राजा ध्वसा द्वैतवन ने चौदह अश्वमेध यज्ञ किये अर्थात् जहां द्वैतवन सरोवर है वहां उसने वृत्रघ्न इन्द्र के लिये घोड़े बांधे।"

भरतः दौष्यन्तिः—

तेन हैतेन भरतो दौष्यन्तिरीजे। तेनेष्ट्वेमां व्यष्टिं व्यानशे यया भरतानां तदेतद् गाथयाऽभिगीतम्—

अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु।
गंङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशतं हयान्।

त्रयस्त्रिंशं शतं राजाऽश्वान् बद्धवाय मेध्यान् ।
सौद्युम्निरत्यष्टादन्यानभयान् मायावत्तरः ।
शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे ।
परः सहस्रानिन्द्रायाश्वान्मेध्यान्यं आहरद्विजित्य पृथिवीं सर्वाम् ।
महद्यशो भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्यं इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः ।। (११-१४)

अर्थ—अश्वमेध द्वारा भरत दौष्यन्ति ने यज्ञ किया। जिससे उसका यश समस्त सृष्टि (संसार) में व्याप्त होगया। इन गाथाओं में उसका यश गाया गया है—

"भरत दौष्यन्ति ने अठ्हत्तर अश्वमेध यज्ञ यमुना के तट पर और पचपन अश्वमेध यज्ञ गंगातट पर किये। एक सौ तैंतीस अश्वमेध यज्ञ करके सौद्युम्नि (ऐल) राजा भरत ने अन्य सभी श्रेष्ठ राजाओं के यश का अतिक्रमण किया।"

'शकुन्तला अप्सरा ने नाडपिती स्थान में भरत को उत्पन्न किया था। समस्त पृथिवी को जीतकर सहस्रों मेध्य अश्व इन्द्र के लिये बांधे।"

"भरत के महान् यश को, उससे पूर्व के और पश्चात् के प्राप्त नहीं कर सके, पंचमानव यानि समस्त पृथिवीवासियों में— उसका यश महत्तम था। जिस प्रकार हाथों से, मनुष्य आकाश को नहीं पकड़ सकता, उसी प्रकार उसका यश नहीं पकड़ा जा सकता।"

ऋषभः याज्ञतुरः—

ऋषभो याज्ञतुर ईजे शिक्नानां राजा। तदेतद् गाथयाऽभिगीतम्—
याज्ञतुरे यजमाने ब्राह्मणा ऋषभे जनाः ।
अश्वमेधे धनं लब्ध्वा विभजन्ते स्म दक्षिणा ।।१५।।

अर्थ—"यज्ञ करने वाले राजा ऋषभ याज्ञतुर से विपुल धन प्राप्त करके ब्राह्मणजन दक्षिणाओं को परस्पर बांटते थे।"

शोणः सात्रासाहः—

शोणः सात्रासाह ईजे पञ्चालो राजा तेदतद् गाथयाऽभिगीतम्—
सात्रासाहे यजमानेऽश्वमेधेन तौर्वशः ।
उदीरते त्रयस्त्रिंशाः षट् सहस्राणि वर्मिणाम् ।
षट् षट् षड्ढा सहस्राणि यज्ञे कोकपितुस्तव ।
उदीरते त्रयस्त्रिंशाः षट् सहस्राणि वर्मिणामिति ।
सात्रासाहे यजमाने पञ्चाले राज्ञि सुस्रजि ।
अमाद्यदिन्द्रः सोमेनातृप्यन् ब्राह्मणा धनैः ।। (१६-१८) ।।

अर्थ—पंचाल शोण सात्रासाह (सत्रसह का पुत्र) ने अश्वमेध यज्ञ किया। उसका यश इन गाथाओं द्वारा गाया गया है—

"सात्रासाह यजमान के अश्वमेध में तैंतीस बार छः हजार (१९८०००) कवचयुक्त तौर्वशा (तुर्वसु के वंशज) क्षत्रियगण (युद्धार्थ) निकलते थे। हे कोक के पिता! आपके यज्ञ में छः-छः हजार करके तैंतीस बार (६००० × ३३ = १९८००० एक लाख अट्ठानवें-सहस्र) क्षत्रिय कवचयुक्त होकर युद्ध के लिये निकले।"

"पांचालराज सात्रासाह, जो सुन्दर (स्वर्ण) माला पहिनते थे, के यज्ञ में सोम से इन्द्र और धन से ब्राह्मण पूर्ण तृप्त होगये।

शतानीकः सात्राजितः—

सात्राजित ईजे काश्यस्याश्वमादाय। ततो हैतदर्वाक् काशयोऽग्नी-ऽत्यादधत श्रात्तसोमपीथाः स्म इति वदन्तः। तदेतद्गाथयाऽभिगीतम्—

शतानीकः समन्तासु मेध्यं सात्राजितो हयम्।
आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिति ॥२२॥
श्वेतं समन्तासु वशं चरन्तं शतानीको धृतराष्ट्रस्य मेध्यम्।
आदाय सह्वा दशमास्यमश्वं शतानीको गोविनतेन हेजे।
महद्यशः भरतानां न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव पक्षाभ्यां नोदापुः सप्त मानवाः ॥२३॥

अर्थ—काशिराज के अश्वमेध के घोड़े को पकड़कर सात्राजित शतानीक (भारत) राजा ने यज्ञ किया। इससे पूर्व काशिक्षत्रिय अग्नियों को रखते हुए सोमपीथी बने हुए थे।

(शतानीक सात्राजित का) यश निम्न गाथाओं द्वारा गाया जाता है—"जिस प्रकार भरत (और शत्रुघ्न-दाशरथियों) ने सात्वत (यादवों) का यज्ञाश्व हरण कर लिया, उसी प्रकार शतानीक सात्राजित (भरतवंशी) ने काशिराज धृतराष्ट्र का श्वेत घोड़ा छीनकर यज्ञ किया।" बलवान् शतानीक ने दशमासपर्यन्त गोविनत यज्ञ किया। भरतों के महान् यश को सप्त मानव (क्षत्रियगण) उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते, जिस प्रकार मर्त्य (पक्षी) पंखों द्वारा आकाश को नहीं छू सकते।

भृगुर्वारुणिः—

भृगुर्ह वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययाऽतिमेने। तद्ध वरुणो विदांचकराति वै मा विद्यया मन्यते इति। (११।६।१।१)

अर्थ—भृगु, वरुण का पुत्र था। वह भृगु अपने को विद्या में अत्यधिक ज्ञानी समझकर घमण्ड करने लगा। वरुण को यह बात पता चल गई कि मेरा पुत्र भृगु विद्या का घमण्ड करता है।

पुरुषं नारायणं प्रजापतिरुवाच (१२।२।२।१३)—प्रजापति ने नारायण पुरुष से कहा।

शतपथे चतुर्दशकाण्डे बृहदारण्यके ऐतिह्यसन्दर्भाः

कुरुक्षेत्रम्—देवयजनम्—

देवा ह वै सत्रं निषेदुः। अग्निरिन्द्रः सोमो मखो विष्णुर्विश्वेदेवा अन्यत्रैवाश्विभ्याम्।···तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास। तस्मादाहुः कुरुक्षेत्र देवानां देवयजनमिति। (१४।१।१।१-२)

अर्थ—देवगण सत्र करने बैठे। अग्नि (बृहस्पति आंगिरस), इन्द्र, सोम, मख, विष्णु और विश्वेदेव, केवल अश्विनों को छोड़कर।

कुरुक्षेत्र—देवयजन-यज्ञस्थल था। इसलिये कहा जाता है कुरुक्षेत्र तो देवों का भी देवयजन अर्थात् यज्ञस्थल है।

सप्तऋषयः—

इमावेव गोतमभरद्वाजौ। इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी। इमावेव वसिष्ठकाश्यपौ। नामैतद्यदत्रिरिति।

अर्थ—(अन्तिम सप्तर्षि थे)—"गोतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ (वासिष्ठ=वसुमान्) कश्यप (काश्यप=) और अत्रि (आत्रेय श्यावाश्व)।

दधीचा अथर्वणा ऋषिणा अश्विभ्याम् अश्वशिरसा मधुविद्याप्रदानम्—

एतं शुक्रमेतं यज्ञं विदांचकार। यथा यथैतद्यज्ञस्य शिरः प्रतिधीयते यथैष कृत्स्नो यज्ञो भवति॥

स हेन्द्रेणोक्त आस। एतं चेदन्यस्मा अनुब्रूयास्तत एव ते शिर-च्छिन्द्यामिति। तदु हाश्विनोरनुश्रुतमास तौ हैत्योचतुः। उप त्वाऽयावेति। किमु नु वक्ष्यमाणावत्येतं शुक्रमेतं यज्ञम्।····स होवाच। इन्द्रेण वा उक्तऽस्मेतं चेदन्यस्माऽनुब्रूस्तत एव ते शिर-च्छिन्द्यामिति। तस्माद्वै बिभेमि यद्वै मे स शिरो न छिन्द्यान्न वामुपनेष्य इति। तौ होचतुः। आवां त्वा तस्मात्त्रास्यावहे इति। कथं मा त्रास्येथे इति। यथा नौ उपनेष्यसेऽथ ते शिरश्छित्वाऽन्यत्रोपनिधास्यावोऽथाश्वस्य शिर आहृत्य तत्ते प्रतिधास्यावस्तेन नावनुवक्ष्यसि। स यदा नावनुवक्ष्यस्यथ ते तदिन्द्रः शिरश्छेत्स्य-त्यथ ते स्वं शिर आहृत्य तत्ते प्रतिधास्याव इति। तथेति। तौ

होपनिन्ये । तौ यदोपनिन्येऽथास्य । शिरश्छित्वाऽन्यत्रापनिदधतु-रथाश्वस्य शिर आहृत्य तद्धास्य प्रतिदधतुस्तेन हाभ्यामनूवाच । स यदाभ्यामनूवाचाथास्य तदिन्द्रः शिरश्चिच्छेदाथास्य स्वं शिर आहृत्य तद्धास्य प्रतिदधतुः । (१४।१।३।१८-२४)

तस्मादेतदृषिणाऽभ्यनूक्तम्—

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा ।
प्रदीपमुवाचेत्ययतं तदुवाचेति ॥२५॥

दध्यङ् ह वा आभ्यामथर्वणो मधु नाम ब्राह्मणमुवाच । तदेनयोः प्रियं धाम तदेवैनयोरेतेनोपगच्छति···। (१४।१।४।)

अर्थ—यह शुक्र (तेज) है, यह यज्ञ है यह जाना । जिस प्रकार यज्ञ का शिर रखा जाता है, जिस प्रकार यज्ञ पूर्ण होता है ।

इन्द्र ने (मधुविद्या दध्यङ् आथर्वण को पढ़ाकर चेतावनी दी)—"यदि तुमने यह विद्या किसी और को बताई तो मैं तुम्हारा शिर काट दूंगा । यह बात अश्विनीकुमारों ने सुन ली । वे (दधीचि के पास) आकर बोले । हम आपके पास आये हैं । हे ऋषे ! क्या हमसे यह मधुविद्या नहीं कहोगे कि यही तेज है यही यज्ञ है । ऋषि ने कहा—हे अश्विनौ ! इन्द्र ने मुझे यह चेतावनी दे रखी है कि यदि मैं यह विद्या किसी और को बताऊं तो वह मेरा शिर काट देगा । इसी से मैं डरता हूं कि वह मेरा शिर न काट दे । इसलिये मैं आपको नहीं बताऊंगा । अश्विनौ बोले—हम आपकी इन्द्र से रक्षा करेंगे । ऋषि ने पूछा—आप मुझे कैसे बचायेंगे । अश्विनौ ने कहा—हे ऋषे ! जब आप हमको विद्या देंगे, तब (उससे पूर्व) हम आपका शिर काटकर अन्यत्र रख देंगे और घोड़े का शिर आपको लगा देंगे । तब आप अश्वशिर से हमें विद्या देना । और जब इन्द्र उस शिर को काट देगा तब आपका शिर हम लगा देंगे । ऋषि ने कहा ठीक है । ऋषि ने अश्विनौ का उपनयन किया । तदनन्तर अश्विनौ ने दधीचि का शिर काटकर अन्यत्र (छिपाकर) रख दिया और घोड़े का शिर लगा दिया । और उस अश्वशिर से उपदेश दिया । जब ऋषि अश्वशिर से मधुविद्या बता चुके, तब इन्द्र ने उनका शिर काट दिया । तदनन्तर अश्विनौ ने ऋषि का शिर लाकर लगा दिया ।

अतः ऋषि ने कहा है—"दध्यङ् आथर्वण ने अश्वशिर से मधुविद्या अश्विनौ को बताई ।"

दध्यङ् ने अश्विनौ को मधुब्राह्मण का प्रवचन दिया । तब वह उनके प्रिय धाम गया और जो ऐसा करता है वह उनके प्रिय धाम जाता है ।

मधुब्राह्मणस्याचार्यपरम्परा (श.ब्रा. १४।५।५।२०-२२)

अथ वंशः—

तदिदं वयं शौर्पणाय्याच्छौर्पणाय्यो गौतमाद् गौतमो वात्स्याद् वात्स्यो वात्स्याच्च पाराशर्याच्च पाराशर्यः सांकृत्याच्च भारद्वाजाच्च भारद्वाज औदवाहेश्च शाण्डिल्याच्च शाण्डिल्यो वैजवापाच्च गौतमो वैजवापायनाच्च वैष्टपुरेयाच्च वैष्टपुरेयः शाण्डिल्याच्च रौहिणायनाच्च रोहिणायनः शौनकाच्चात्रेयाच्च रैभ्याच्च, रैभ्यः पौतिमाष्यायणाच्च कौण्डिन्याययानाच्च कौण्डिन्यायनः कौण्डिन्यात् कौण्डिन्यः कौण्डिन्याच्चाग्निवेश्याच्च । (१४।५।५ २०)

अग्निवेश्यः सैतवात् । सैतवः पाराशर्यात्पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्यो भारद्वाजाद् भारद्वाजो भारद्वाजाच्चासुरायणाच्च गौतमाच्च। गौतमो भारद्वाजाद् भारद्वाजो वैजवापयानाद् वैजवापायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः घृतकौशिकाद् घृतकौशिकः पाराशर्या-यणात् पाराशर्यायणः पाराशर्यात् पाराशर्यो जातूकर्ण्याद् जातूकर्ण्यो भारद्वाजाद् भारद्वाजो भारद्वाजाच्चासुरायणाच्च यास्काच्चा-सुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिभारद्वाजाद् भारद्वाज आत्रेयात् ।।२१।।

आत्रेयो माण्टेः माण्टिर्गौतमाद् गौतमो गौतमाद् गौतमो वात्स्याद् वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात् कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात् कुमारहारीतो गालवाद् गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद् विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातो बाभ्रव्याद् वत्सनपाद्बाभ्रव्यः पथः सौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूते-स्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वाष्ट्राद् विश्वरूपस्त्वाष्ट्रो-ऽश्विभ्यामश्विनौ दधीच आथर्वणाद्दध्यङाथर्वणोऽथर्वणोदैवादथर्वा दैवो मृत्योः प्राध्वंसनान्मृत्युप्राध्वंसनः प्रध्वसनात्प्रध्वसनः एकर्षे-रेकर्षिविप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनात् सनातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणे ब्रह्म स्वयभु-ब्रह्मणे नमः ।।२२।। (१४।५।५।२०-२२)

अब मधुविद्या का विद्यावंश कहा जाता है—"हमने शौर्पणाय्य से मधुविद्या पढ़ी ।"

(शौर्पणाय्य से पूर्व का विद्या वंश इस प्रकार है)—

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
१	शौर्पणाय्य	गौतम से
२	गौतम	वात्स्य से
३	वात्स्य	पाराशर्य से
४	पाराशर्य	सांकृत्य और भारद्वाज से
५	भारद्वाज	औदनवाहि और शाण्डिल्य से
६	शाण्डिल्य	वैजवाप से
७	गौतम	वैजवापायन और वैष्टपुरेय से
८	वैष्टपुरेय	शाण्डिल्य और रौहिणायन से
९	रौहिणायन	शौनक, आत्रेय और रैभ्य से
१०	रैभ्य	पौतिमाष्यायण और कौण्डिन्यायन से
११	कौण्डिन्यायन	कौण्डिन्य से
१२	कौण्डिन्य	कौण्डिन्यू से
१३	कौण्डिन्य	अग्निवेश्य से
१४	अग्निवेश्य	सैतव से
१५	सैतव	पाराशर्य से
१६	पाराशर्य	जातूकर्ण्य से
१७	जातूकर्ण्य	भारद्वाज से
१८	भारद्वाज	भारद्वाज आसुरायण और गौतम से
१९	गौतम	भारद्वाज से
२०	भारद्वाज	वैजवापायन से
२१	वैजवापायन	कौशिकायनि से
२२	कौशिकायनि	घृतकौशिक से
२३	घृतकौशिक	पाराशर्यायण से
२४	पाराशर्यायण	पाराशर्य (व्यास) से
२५	पाराशर्य (व्यास)	जातूकर्ण्य से
२६	जातूकर्ण्य	भारद्वाज से
२७	भारद्वाज	भारद्वाज, आसुरायण और यास्क से
२८	आसुरायण	त्रैवणि से
२९	त्रैवणि	औपजन्धनि से

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
३०	औपजन्धनि	आसुरि से
३१	आसुरि	भारद्वाज से
३२	भारद्वाज	आत्रेय से
३३	आत्रेय	माण्टि से
३४	माण्टि	गौतम से
३५	गौतम	गौतम से
३६	गौतम	वात्स्य से
३७	वात्स्य	शाण्डिल्य से
३८	शाण्डिल्य	कैशोरकाप्य से
३९	कैशोरकाप्य	कुमारहारीत से
४०	कुमारहारीत	गालव से
४१	गालव	विदर्भीकौण्डिन्य से
४२	विदर्भीकौण्डिन्य	वत्सनपाद बाभ्रव्य से
४३	वत्सनपाद् बाभ्रव्य	पन्था सौभर से
४४	पन्था सौभर	अयास्य आंगिरस से
४५	अयास्य आंगिरस	आभूति त्वाष्ट्र से
४६	आभूति त्वाष्ट्र	विश्वरूप त्वाष्ट्र से
४७	विश्वरूप त्वाष्ट्र	अश्विनीकुमारों से
४८	अश्विनीकुमारद्वयी	दध्यङ् आथर्वण से
४९	दध्यङ् आथर्वण	अथर्वाद्दैव (देववरुणपुत्र) से
५०	अथर्वाद्दैव	मृत्यु प्राध्वंसन से
५१	मृत्यु प्राध्वंसन	प्रध्वंसन से
५२	प्रध्वंसन	एकर्षि से
५३	एकर्षि	विप्रचित्ति (दानव) से
५४	विप्रचित्ति (दानव)	व्यष्टि से
५५	व्यष्टि	सनारु से
५६	सनारु	सनातन (ऋषि) से
५७	सनातन	सनक से
५८	सनक	परमेष्ठी (कश्यप) से
५९	परमेष्ठी (कश्यप)	स्वयम्भु ब्रह्मा (दक्ष प्राचेतस) से

बृहदारण्यके मधुविद्याया विद्यावंशः

वंशः– (पाठान्तरम्)

अथ वंशः । पौतिमाष्यो गौपवनाद् गौपवनः पौतिमाष्यात् पौतिमाष्यो गौपवनाद् गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात् कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतमः आग्निवेश्यादाग्निवेश्यः शाण्डिल्याच्चानभिम्लाताच्चानभिम्लात आनभिम्लातादनभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लातो गौतमाद् गौतमः सैतवप्राचीनयोग्याभ्यां सैतवप्राचीनयोग्यौ पाराशर्यात्पाराशर्यो भारद्वाजाद् भारद्वाजो भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो भारद्वाजाद् भारद्वाजः पाराशर्यात्पाराशर्यो बैजवापयनाद् बैजवापायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः घृतकौशिकाद् घृतकौशिकः पाराशर्यायणात् पाराशर्यायणः पाराशर्यात् जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजाद् भारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद् गौतमो गौतमाद् गौतमो वात्स्याद् वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात् कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुमारहारितो गालवाद् गालवो विदर्भी कौण्डिन्याद् विदर्भी कौण्डिन्यो वत्सनपातो बाभ्रवाद् वत्सनपाद् बाभ्रवः पन्थः सौभरात् पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आंगिरस आभूतेस्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपस्त्वाष्ट्राद् विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्यामश्विनौ दधीच आथर्वणाद्दध्यङ्ङाथर्वणोऽथर्वणो दैवादथर्वा दैवो मृत्योः प्राध्वंसनात्मृत्युः प्राध्वंसनः प्रध्वंसनात् प्रध्वंसन एकर्षेरेकर्षिर्विप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनात्सनातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयम्भु ब्रह्मणे नमः ।। (बृ० उ० २।३)

अर्थ—(पाठान्तर) —मधुविद्या का वंश । (पौतिमाष्य अन्तिम आचार्य था उससे पूर्व की गुरुशिष्यपरम्परा इस प्रकार थी) —

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
१	पौतिमाष्य	गौपवन से
२	गौपवन	पौतिमाष्य (अन्य) से
३	गौपवन	कौशिक से

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
४	कौशिक	कौण्डिन्य से
५	कौण्डिन्य	शाण्डिल्य से
६	शाण्डिल्य	कौशिक और गौतम से
७	गौतम	आग्निवेश्य से
८	आग्निवेश्य	शाण्डिल्य और अनभिम्लात से
९	अनभिम्लात	अनभिम्लात से
१०	अनभिम्लात	गौतम से
११	गौतम	सैतव और प्राचीनयोग्य से
१२	सैतव और प्राचीनयोग्य	पाराशर्य से
१३	पाराशर्य	भारद्वाज से
१४	भारद्वाज	भारद्वाज और गौतम से
१५	गौतम	भारद्वाज से
१६	भारद्वाज	पाराशर्य से
१७	पाराशर्य	वैजवापायन से
१८	वैजवापायन	कौशिकायनि से
१९	कौशिकायनि	घृतकौशिक से
२०	घृतकौशिक	पाराशर्यायण से
२१	पाराशर्यायण	पाराशर्य से
२२	पाराशर्य	जातूकर्ण्य से
२३	जातूकर्ण्य	आसुरायण और यास्क से
२४	आसुरायण	त्रैवणि से
२५	त्रैवणि	औपजन्धनि से
२६	औपजन्धनि	आसुरि से
२७	आसुरि	भारद्वाज से
२८	भारद्वाज	आत्रेय से
२९	आत्रेय	माण्टि से
३०	माण्टि	गौतम से
३१	गौतम	गौतम (अन्य) से
३२	गौतम	वात्स्य से
३३	वात्स्य	शाण्डिल्य और कैशोर्य काप्य से

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
३४	कैशोर्य काप्य	कुमारहारित से
३५	कुमारहारित	गालव से
३६	गालव	विदर्भीकौण्डिन्य से
३७	विदर्भीकौण्डिन्य	वत्सनपाद बाभ्रव से
३८	वत्सनपाद बाभ्रव	पन्था सौभर से
३९	पन्था सौभर	अयास्य आंगिरस से
४०	अयास्य आंगिरस	आभूति त्वाष्ट्र से
४१	आभूति त्वाष्ट्र	विश्वरूप त्वाष्ट्र से
४२	विश्वरूप त्वाष्ट्र	अश्विनीकुमारों से
४३	अश्विनीकुमार	दध्यङ् आथर्वण से
४४	दध्यङ् आथर्वण	दैव अथर्वा से
४५	दैव अथर्वा	मृत्यु प्राध्वंसन से
४६	मृत्यु प्राध्वंसन	प्रध्वंसन से
४७	प्रध्वंसन	एकर्षि से
४८	एकर्षि	विप्रचित्ति से
४९	विप्रचित्ति	व्यष्टि से
५०	व्यष्टि	सनारु से
५१	सनारु	सनातन से
५२	सनातन	सनग से
५३	सनग	परमेष्ठी से
५४	परमेष्ठी	ब्रह्मा से

वाजसनेययाज्ञवल्क्यजनकयोः समकालिका आचार्याः (श०ब्रा०)

जनको वैदेहः (१४।६।१।१) जनक वैदेह
याज्ञवल्क्यः (१४।६।१।२) याज्ञवल्क्य (वाजसनेय)
अश्वलः (१४।६।१।२) अश्वल
जरत्कारव आर्तभागः (१४।६।२।१) जरत्कारव आर्तभाग

भुज्युर्लाह्यायनिः—

अथ हैवं भुज्युर्लाह्यायनि पप्रच्छ। याज्ञवल्क्येति होवाच। मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम। ते पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहानैम। तस्यासीद्

दुहिता गन्धर्वग्रहीता । तमपृच्छाम । कोऽसीति । सोऽब्रवीत्सुधन्वाऽऽङ्गिरस इति । तं यदा लोकानामन्तानपृच्छामाथैनमब्रूम क्व पारिक्षिता अभवन् क्व पारीक्षिता अभवन्निति । तत्त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य—क्व पारिक्षिता अभवन्निति । (१४।६।३।१)

अर्थ—भुज्यु लाह्यायनि ने पूछा—'हे याज्ञवल्क्य ! हम मद्र देश में चरकों के रूप में घूम रहे थे, तब हम पतञ्जल काप्य के घर गये । उसकी पुत्री को किसी गन्धर्व (भूत) ने ग्रस्त कर लिया था । हमने पूछा—"तुम कौन हो ?" वह बोला—"मैं अंगिरा का पुत्र सुधन्वा हूं । जब हमने उससे लोक (ब्रह्माण्ड) का अन्त पूछा तथा हमने कहा—'पारिक्षित कहां रहे ?' पारिक्षित कहां रहे ? अतः हम आपसे पूछते हैं कि 'पारिक्षित कहां गये ?'

कहोडः कौषीतकेयः (१४।६।४।१) कहोड कौषीतकेय ।
उषस्तश्चाक्रायणः (१४।६।५।१) उषस्त चाक्रायण ।
गार्गी वचन्क्वी (१४।६।६।१) गार्गी वचन्क्वी ।

उद्दालक आरुणिः—

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पपृच्छ । याज्ञवल्क्येति होवाच । मद्रेष्ववसाम । पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्यासीद् भार्या गन्धर्वगृहीता । तमपृच्छाम कोऽसीति । सोऽब्रवीत्कबन्ध आथर्वण इति । (१४।६।७।१) ।

अर्थ—उद्दालक आरुणि ने पूछा—'हे याज्ञवल्क्य ! हम मद्रदेश में थे और पतञ्जल काप्य के घर में हम यज्ञविद्या का अध्ययन कर रहे थे । काप्य की पत्नी को गन्धर्व ने पकड़ रखा था । हमने उससे पूछा—'कौन हो ?' उसने कहा—'मैं अथर्वा का पुत्र कबन्ध हूं ।'

विदग्धः शाकल्यः (१४।६।६।१) विदग्ध शाकल्य
उदङ्क शौल्वायनः (१४।६।१०।२) उदङ्क शौल्वायन
जित्वा शैलिनः (१४।६।१०।५) जित्वा शैलिन
बर्कु वर्ष्णिः (१४।६।१०।८) बर्कु वर्ष्णि
गर्दभीविपीतो भारद्वाजः (१४।६।१०।११) गर्दभीविपीत भारद्वाज
सत्यकामो जाबालः (१४।६।१०।१४) सत्यकाम जाबाल
श्वेतकेतुरारुणेयः (१४।६।१।१) अरुणपुत्र श्वेतकेतु
जैवलः प्रवाहणिः (१४।६।१।१) प्रवाहणपुत्र जैवल

मन्थकर्मपरम्परा—

उद्दालक आरुणिः वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वो-

वाच ··वाजसनेयो याज्ञवल्क्यो मधुकाय पैङ्ग्यायान्तेवासिने । मधुकः पैङ्ग्यश्चूडाय भागवित्तयेऽन्तेवासिने । चूडो भागवित्तिः जानकय आयस्थूणायान्तेवासिने ।·· जानकिरायस्थूणः सत्यकामाय जाबालायान्तेवासिने । (१४।६।३।१५-२०)

अर्थ—मन्थकर्म को उद्दालक ने वाजसनेय याज्ञवल्क्य शिष्य को पढ़ाया। वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने शिष्य मधुक पैङ्ग्य को, मधुक पैङ्ग्य ने भागवित्ति चूड़ को, चूडभागवित्ति ने जानकिआयस्थूण को और उसने अपने शिष्य सत्यकाम जाबाल को पढ़ाया।

याज्ञवल्कीयकाण्डस्य विद्यावंश (४।६।३)

अथ वंशः—

पौतिमाष्यो गौपवनाद् गौपवनः पौतिमाष्यात् पौतिमाष्यो गौपवनाद् गौपवनः कौशिकात् कौशिकः कौण्डिन्यात् कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्य कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतम आग्निवेश्यादाग्निवेश्यो गार्ग्याद् गार्ग्यो गार्ग्याद् गार्ग्यो गौतमाद् गौतमः सैतवात् सैतवः पाराशर्यायणात् पाराशर्यायणो गार्ग्यायणाद् गार्ग्यायण उद्दालकायनादुद्दालकायनो जाबालायनाज्जाबालायनो माध्यंदिनायनान्माध्यंदिनायनः सौकरायणात् सौकरायणः काषायणात् काषायणः सायकायनात् सायकायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः घृतकौशिकाद् घृतकौशिकः पाराशर्यायणात् पाराशर्यायणः पाराशर्यात् पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणीरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भाद्वाजाद् भारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्टेमाण्टिर्गौतमाद् गौतमो गौतमाद् गौतमो वात्स्याद् वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात् काप्यात् कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात् कुमारहारितो गालवाद् गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद् विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातबाभ्रवाद् वत्सनपादबाभ्रवः पथः सौभरात् पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य—आंगिरस आभूतेस्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात् त्वाष्ट्राद् विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्याश्विनौ दधीच आथर्वणाद् दध्यङ्ङाथर्वणोऽथर्वणो दैवादथर्वा दैवो मृत्यो प्राध्वंनान्मृत्युः प्राध्वंसनः प्रध्वंसनात् प्रध्वंसन एकर्षेरेकर्षिर्विप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः

सनारु: सनातनात् सनातनः सनगात् सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ।

अर्थ—(पौतिमाष्य अन्तिम आचार्य था उससे पूर्व की गुरुशिष्यपरम्परा इस प्रकार थी)—

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
१	पौतिमाष्य ने	गौपवन से
२	गौपवन (अन्य) ने	पौतिमाष्य (अन्य) से
३	पौतिमाष्य (अन्य) ने	गौपवन (अन्य) से
४	गौपवन ने	कौशिक से
५	कौशिक ने	कौण्डिन्य से
६	कौण्डिन्य ने	शाण्डिल्य से
७	शाण्डिल्य ने	कौशिक और गौतम से
८	गौतम ने	आग्निवेश्य से
९	आग्निवेश्य ने	गार्ग्य से
१०	गार्ग्य ने	गौतम से
११	गौतम ने	सैतव से
१२	सैतव ने	पाराशर्यायण से
१३	पाराशर्यायण ने	गार्ग्यायण से
१४	गार्ग्यायण ने	उद्दालकायन से
१५	उद्दालकायन ने	जाबालायन से
१६	जाबालायन ने	माध्यंदिनायन से
१७	माध्यंदिनायन ने	सौकरायण से
१८	सौकरायण ने	काषायण से
१९	काषायण ने	सायकायन से
२०	सायकायन ने	कौशिकायनि से
२१	कौशिकायनि ने	घृतकौशिक से
२२	घृतकौशिक ने	पाराशर्यायण से
२३	पाराशर्यायण ने	पाराशर्य से
२४	पाराशर्य (व्यास) ने	जातूकर्ण्य से
२५	जातूकर्ण्य ने	आसुरायण और यास्क से
२६	आसुरायण ने	त्रैवणि से

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य
२७	त्रैवणि ने	औपजन्धनि से
२८	औपजन्धनि ने	आसुरि से
२९	आसुरि ने	भारद्वाज से
३०	भारद्वाज ने	आत्रेय से
३१	आत्रेय ने	माण्टि से
३२	माण्टि ने	गौतम से
३३	गौतम ने	गौतम (अन्य से)
३४	गौतम ने	वात्स्य से
३५	वात्स्य ने	शाण्डिल्य से
३६	शाण्डिल्य ने	कैशोर्य काप्य से
३७	कैशोर्यकाप्य ने	कुमारहारीत से
३८	कुमारहारीत ने	गालव से
३९	गालव ने	विदर्भीकौण्डिन्य से
४०	विदर्भीकौण्डिन्य ने	वत्सनपाद्बाभ्रव से
४१	वत्सनपाद्बाभ्रव ने	पन्थासौभर से
४२	पन्थासौभर ने	अयास्य आंगिरस से
४३	अयास्य आंगिरस ने	आभूति त्वाष्ट्र से
४४	आभूति त्वाष्ट्र ने	विश्वरूप त्वाष्ट्र से
४५	विश्वरूप त्वाष्ट्र ने	अश्विनीकुमारों से
४६	अश्विनीकुमारद्वयी ने	दध्यङ् आथर्वण से
४७	दध्यङ् आथर्वण ने	दैव अथर्वा से
४८	दैव अथर्वा ने	मृत्यु प्राध्वंसन से
४९	मृत्यु प्राध्वंसन ने	प्रध्वंसन से
५०	प्रध्वंसन ने	एकर्षि से
५१	एकर्षि ने	विप्रचित्ति से
५२	विप्रचित्ति ने	व्यष्टि से
५३	व्यष्टि ने	सनारु से
५४	सनारु ने	सनातन से
५५	सनातन ने	सनग से
५६	सनग ने	परमेष्ठी से
५७	परमेष्ठी (कश्यप) ने	स्वयम्भू ब्रह्मा (दक्ष प्राचेतस) से

आदित्य (विवस्वत्) शिष्यपरम्परा
(शतपथब्राह्मणस्य विद्यावंशः)

अथ वंशः—

तदिदं वयं भारद्वाजीपुत्राद् भारद्वाजीपुत्रो वात्सीमाण्डवीपुत्राद् वात्सीमाण्डवीपुत्रः पाराशरीपुत्रात् पाराशरीपुत्रो गार्गीपुत्राद् गार्गीपुत्रः पाराशरीकौण्डिनीपुत्रात् पाराशरीकौण्डिनीपुत्रो गार्गीपुत्राद् गर्गीपुत्रो वाडेयीपुत्राद् बाडेयीपुत्रो मौषिकीपुत्रान्मौषिकीपुत्रो हारिकर्णीपुत्राद् हारिकर्णीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद् भारद्वाजीपुत्रः पैङ्गीपुत्रात् पैङ्गीपुत्रः शौनकीपुत्राच्छौनकीपुत्रः काश्यपीबालाक्यमाठरीपुत्रात् काश्यपीबालक्यमाठरीपुत्रः कौत्सीपुत्रात्कौत्सीपुत्रो बौधीपुत्राद् बौधीपुत्रः शालङ्कायनीपुत्राच्छालङ्कायनीपुत्रो वार्षगणीपुत्राद् वार्षगणीपुत्रो गौतमीपुत्राद् गौतमीपुत्र आत्रेयीपुत्रादात्रेयीपुत्रो गौतमीपुत्राद् गौतमीपुत्रो वात्सीपुत्राद् वात्सीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद् भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रात् पाराशरीपुत्रो वार्कारुणीपुत्राद् वार्कारुणीपुत्र आर्तभागीपुत्रादार्तभागीपुत्रः शौङ्गीपुत्राच्छौङ्गीपुत्रः सांकृतीपुत्रात्सांकृतीपुत्रः आलम्बीपुत्रात् आलम्बीपुत्र आलम्बायनी पुत्रादालम्बायनीपुत्रो जायन्तीपुत्राज्जायन्तीपुत्रो माण्डूकायनीपुत्रान्माण्डूकायनीपुत्रो माण्डूकीपुत्रान्माण्डूकीपुत्रः शाण्डिलीपुत्राच्छाण्डिलीपुत्रो राथीतरीपुत्राद् राथीतरीपुत्रः क्रौञ्चिकीपुत्राभ्यां क्रौञ्चिकीपुत्रौ वैदभृतीपुत्राद् वैदभृतीपुत्रो भालुकीपुत्राद् भालुकीपुत्रः प्राचीनयोगीपुत्रात् प्राचीनयोगीपुत्रः सांजीवीपुत्रात्सांजीवीपुत्रः कार्शकेयीपुत्रात्कार्शकेयीपुत्रः प्राश्नीपुत्रात् प्राश्नीपुत्र आसुरवासिनः प्राश्नीपुत्र आसुरायणादासुरायण आसुरेरासुरिर्याज्ञवल्क्याद्याज्ञवल्क्य उद्दालकादुद्दालकोऽरुणादरुण उपवेशेरुपवेशिः कुश्रेर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो बाध्योगाज्जिह्वावान् बाध्योगोसितावार्षगणादसितो वार्षगणो हरितकश्यपाद्धरितकश्यपः शिल्पात्कश्यपाच्छिल्पः कश्यपः कश्यपान्नैध्रुवेः कश्यपो नैध्रुविर्वाचो वागम्भिण्या अम्भिण्यादित्यादादित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते। (१४।९।४।३०-३३)

समानमासांजीवीपुत्रात् सांजीवीपुत्रो माण्डूकायनेर्माण्डूकायनिर्माण्डव्यान्माण्डव्यः कौत्सात् कौत्सो माहित्थेर्माहित्थिर्वामकक्षा-

यणाद् वामकक्षायणः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यो वात्स्याद् वात्स्यः कुश्रेः कुश्रिर्यज्ञवचसो राजस्तम्बायनाद् यज्ञवचा राजस्तम्बायनस्तुरात् कावषेयात् तुरः कावषेयः प्रजापतेः प्रजापतिर्ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयम्भु ब्रह्मणे नमः। (१४।९।४।३४)

अर्थ—(शतपथब्राह्मण का समस्त विद्यावंश इस प्रकार है—"अज्ञातनामा आचार्य कहता है)" हमने भारद्वाजीपुत्र से (शतपथब्राह्मण) पढ़ा, (इससे पूर्वाचार्य इस प्रकार थे)—

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य (गुरु)
१	भारद्वाजीपुत्र ने	वात्सीमाण्डवीपुत्र से
२	वात्सीमाण्डवीपुत्र ने	पाराशरीपुत्र से
३	पाराशरीपुत्र ने	गार्गीपुत्र से
४	गार्गीपुत्र ने	पाराशरीकौण्डिनीपुत्र से
५	पाराशरीकौण्डिनीपुत्र ने	गार्गीपुत्र से
६	गार्गीपुत्र ने	गर्गीपुत्र से
७	गर्गीपुत्र ने	बाडेयीपुत्र से
८	बाडेयीपुत्र ने	मौषिकीपुत्र से
९	मौषिकीपुत्र ने	हारिकर्णीपुत्र से
१०	हारिकर्णीपुत्र ने	भारद्वाजीपुत्र से
११	भारद्वाजीपुत्र ने	पैङ्गीपुत्र से
१२	पैङ्गीपुत्र ने	शौनकीपुत्र से
१३	शौनकीपुत्र ने	काश्यपीबालक्यमाठरीपुत्र से
१४	काश्यपीबालक्यमाठरीपुत्र ने	कौत्सीपुत्र से
१५	कौत्सीपुत्र ने	बौधीपुत्र से
१६	बौधीपुत्र ने	शालंकायनीपुत्र से
१७	शालंकायनीपुत्र ने	वार्षगणीपुत्र से
१८	वार्षगणीपुत्र ने	गौतमीपुत्र से
१९	गौतमीपुत्र ने	आत्रेयीपुत्र से
२०	आत्रयीपुत्र ने	गौतमीपुत्र से
२१	गौतमीपुत्र ने	वात्सीपुत्र से
२२	वात्सीपुत्र ने	भारद्वाजीपुत्र से
२३	भारद्वाजीपुत्र ने	पाराशरीपुत्र से
२४	पाराशरीपुत्र ने	वार्कारुणीपुत्र से

क्र०सं०	शिष्य	पूर्वाचार्य (गुरु)
२५	वार्कारुणीपुत्र ने	आर्तभागीपुत्र से
२६	आर्तभागीपुत्र ने	शौंगीपुत्र से
२७	शौंगीपुत्र ने	सांकृतीपुत्र से
२८	सांकृतीपुत्र ने	आलम्बीपुत्र से
२९	आलम्बीपुत्र ने	आलम्बायनीपुत्र से
३०	आलम्बायनीपुत्र ने	जायन्तीपुत्र से
३१	जायन्तीपुत्र ने	माण्डूकायनीपुत्र से
३२	माण्डूकायनीपुत्र ने	माण्डूकीपुत्र से
३३	माण्डूकीपुत्र ने	शाण्डिलीपुत्र से
३४	शाण्डिलीपुत्र ने	राथीतरीपुत्र से
३५	राथीतरीपुत्र ने	क्रौञ्चिकीपुत्रद्वयी से
३६	क्रौञ्चिकीपुत्रद्वयी ने	वैदभृतीपुत्र से
३७	वैदभृतीपुत्र ने	भालुकीपुत्र से
३८	भालुकीपुत्र ने	प्राचीनयोगीपुत्र शे
३९	प्राचीनयोगीपुत्र ने	सांजीवीपुत्र से
४०	सांजीवीपुत्र ने	कार्शकियीपुत्र ने
४१	कार्शकियीपुत्र ने	प्राश्नीपुत्र से
४२	प्राश्नीपुत्र ने	आसुरवासी से
४३	प्राश्नीपुत्र ने	आसुरायण से
४४	आसुरायण ने	आसुरि से
४५	आसुरि ने	याज्ञवल्क्य से
४६	याज्ञवल्क्य ने	उद्दालक से
४७	उद्दालक ने	अरुण से
४८	अरुण ने	उपवेशि से
४९	उपवेशि ने	कुश्रि से
५०	कुश्रि ने	वाजश्रवा से
५१	वाजश्रवा ने	जिह्वावान् बाध्योग से
५२	जिह्वावान् बाध्योग ने	असित वार्षगण से
५३	असित वार्षगण ने	हरितकश्यप से
५४	हरितकश्यप ने	शिल्पकश्यप से
५५	शिल्पकश्यप ने	नैध्रुविकश्यप से
५६	नैध्रुविकश्यप ने	वाक् अम्भिणी से
५७	वाक् अम्भिणी ने	आदित्य (विवस्वान्) से

आदित्य द्वारा शुक्लयजुः (शुक्लयजुर्वेदमन्त्रों) की व्याख्या (शतपथ ब्राह्मण में) वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने की है। इस प्रकार संजीवीपुत्र (सं० ४०) तक शिष्यपरम्परा समान है। उससे पूर्व एक और पृथक् परम्परा थी।

क्र० सं०	शिष्य	गुरु
१	सांजीवीपुत्र ने	माण्डूकायनि से
२	माण्डूकायनि ने	माण्डव्य (अणीमाण्डव्य) से
३	माण्डव्य ने	कौत्स से
४	कौत्स ने	माहित्थि से
५	माहित्थि ने	वामकक्षायण से
६	वामकक्षायण ने	शाण्डिल्य से
७	शाण्डिल्य ने	वात्स्य से
८	वात्स्य ने	कुश्रि से
९	कुश्रि ने	यज्ञवचा राजस्तम्बायन से
१०	यज्ञवचा राजस्तम्बायन ने	तुर कावषेय से
११	तुर कावषेय ने	प्रजापति से (या पिता कवष एलूष से)
१२	प्रजापति ने	स्वयम्भू ब्रह्मा से

———

[११]

जैमिनीयब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

प्रथमे काण्डे

भृगुर्वारुणिः—तस्य अतिमानम्—

भृगुर्ह वारुणिरनूचान आस। स हात्य एव पितरं मेनेऽइति देवान् अत्य ब्राह्मणान् अनूचानान्। स ह वरुण ईक्षांचक्रे न वै मे पुत्रः किंचन प्रजानाति । हन्तैनं प्रज्ञापयामीति । तस्य ह प्राणान् अभिजग्राह। स ह तताम। स ह तान्तः परलोकं जगाम। स हामुष्मिन् लोक आजगाम। पुरुष एव पुरुषं संवृश्च्याथैनं जघास। स होवाचाभूद् बतेदं किं स्विद् इति। तं होचुः पितरं वरुणं पृच्छासि स त इदं प्रवक्ते ति।

द्वितीयं हाजगाम…।

तृतीयं हाजगाम…।

चतुर्थं हाजगाम…।

पचमं हाजगाम…।

षष्ठं हाजगाम…।

स ह एवाववृत्ते। स ह वरुणम् एव आजगाम। तं होवाचागस्ताता इति। आगां तातेति। अदर्शं तातेति। किं तातेति। पुरुष एव पुरुषं संवृश्च्याथैनम् अघसद् इति। ये वा अस्मिन् लोकेऽग्निहोत्रम् अजुह्वतो नैवंविदो वनस्पतीन् संवृश्च्याभ्यादधति । तान् वा अमुष्मिन् लोके वनस्पतयः पुरुषरूपं कृत्वा प्रत्यदन्ति । तस्य का निष्कृतिरिति। यद् एवैतद् समिधम् अभ्यादधाति सा तस्य निष्कृतिस्तया तद् अतिमुच्यते इति।

स होवाच न वै किलान्यत्राग्निहोत्राल्लोकजित्या अवकाशोऽस्ति। अद्यैव मे अग्न्याधेयस्योपवसथ इति। तस्य ह तथा चक्रुः। स य एवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति नैनम् अमुष्मिन् लोके वनस्पतयः पुरुष–

रूपं कृत्वा प्रत्यदन्ति । न पशवो न व्रीहियवा नास्येष्टापूर्तं श्रद्धा चाश्रद्धां गच्छतोऽपहते लोहितकुल्याम् अवरुद्धे घृतकुल्याम् ।

अर्थ—भृगु वारुणि (वरुणपुत्र) वेद का विद्वान् था। (वेदविद्या पढ़कर वह अपने को बहुत अधिक ज्ञानी समझने लगा, अतः वह पिता वरुण, अन्य देवों एवं वेदज्ञ ब्राह्मणों (ऋषियों) को कुछ भी नहीं समझता था। तब वरुण ने देखा कि मेरा पुत्र (कोई विशेष) विद्वान् नहीं परन्तु घमण्ड बहुत करता है। अतः उसको उसके अज्ञान का अनुभव कराता हूं।

वरुण ने उसके प्राण (बुद्धि) का हरण कर लिया। भृगु दुःखी हुआ। वह निःसंज्ञ (बुद्धिहीन होकर) दूसरे लोक (परदेश) गया, वहां उसने देखा कि आदमी ही आदमी को काटकर खा रहा है। उसने सोचा अरे यह क्या हो रहा है। (वहां के प्राणियों ने) उसको बताया—'अपने पिता वरुण से पूछना। वही तुमको यह बतायेगा।

वह और आगे दुबारा गया।
तीसरी बार गया…।
चौथी बार गया …।
पांचवीं बार गया… ।

छठी बार गया (और हर बार एक नई बात देखी)…।

भृगु दुःखी होकर अपने लोक (देश) में लौट आया। वह वरुण के पास आया। वरुण ने कहा—'बेटा! आ गये।' भृगु ने कहा—'हां पिताजी (मैं देखकर) आ गया हूं। (वरुण ने पूछा)—'क्या देखा?' भृगु ने बताया—'(वहां उस देश में) मनुष्य ही मनुष्य को मार खा जाता है।' (तब वरुण ने कहा)—'हे भृगो! जो मनुष्य इस लोक में अग्निहोत्र न करते हुए पेड़ों को काटते हैं और जलाते हैं ऐसे मनुष्यों को परलोक में वनस्पतियां पुरुष बनकर खा जाती हैं। उसे रोकने का क्या उपाय है? जो मनुष्य समिधा रखकर उसमें अग्निहोत्र करता है, यही इसकी निष्कृति है, वह पुरुष मुक्त हो जाता है और इस अग्निहोत्र के अतिरिक्त इस पाप से मुक्ति का और कोई उपाय नहीं। आज ही मैं अग्न्याधान करता हूं और भृगु ने वैसा ही किया। जो विद्वान् अग्निहोत्र करता है, उसको वनस्पतियां पुरुष बनाकर नहीं खातीं। उसके पशु व्रीहि यव, इष्टापूर्त, श्रद्धा और अश्रद्धा अपहृत नहीं होती और लोहित कुल्या और घृतकुल्या को रोक लेता है।

समानकालिकाः पञ्च ब्राह्मणाः (आचार्याः)—

आरुणिर्वाजसनेयो याज्ञवल्क्यो बर्कु वार्ष्णिः प्रियो जानश्रेयो बुडिल आश्वतराश्विर्वैयाघ्रपाद्य इत्येते ह पंच महाब्राह्मणा आसुः। ते

होतुर्जनको वा अयं वैदेहोऽग्निहोत्रेऽशिष्टः स नोऽतिवदन्न इव मन्यते। एतं तम् अग्निहोत्रो कथां वादयिष्याम इति। (१।२२)

अर्थ—आरुणि, वाजसनेय, बर्कुःवर्ष्णि, प्रिय जानश्रुतेय, बुडिल आश्वतराश्वि और वैयाघ्रपाद्य ये पांच महाब्राह्मण—महान् आचार्य थे। उन्होंने परस्पर विचार विमर्श किया कि "यह जनक वैदेह अग्निहोत्र में अशिष्ट है। वह हमको इस विषय में अतिवादी मानता है, (चलो चलें) उससे अग्निहोत्रविषयक शास्त्रार्थ करें।"

असितमृगाः पुरोहिताः–

कुसुरुबिन्दो हौद्दालकिस्सोमानाम उज्जगौ। तम् उ ह असितमृगाः कश्यपानां पुत्रा ऊचुः। (१।७५)

अर्थ—कुसुरुबिन्द औद्दालकि ने सोम यज्ञ में सामगान किया। कश्यपों के पुत्र (वंशज) असितमृगसंज्ञक ब्राह्मण बोले।

अत्रिः—

स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसाविध्यत्। तं देवाश्चर्षयश्चाभिषज्यन्। तेऽत्रिमब्रुवन्। ऋषे त्वम् इदम् अपजहीति। (१।८०)

अर्थ—स्वर्भानु (राहु) असुर (विप्रचित्ति) पुत्र ने आदित्य पर तम से घात किया। देवों और ऋषियों ने आदित्य के उपचार का विचार किया। उन्होंने अत्रि ऋषि से कहा—हे ऋषे! आप आदित्य के घात को ठीक करो।

कपिवनो भौवायनः–

कपिवनो ह स्माह भौवायनः। (१।८९)

अर्थ—कपिवन (भुवन का वंशज और) भौवन का पुत्र था।

इन्द्रसोमयोः प्रजानाम् आधिपत्यम्—

इन्द्रश्च वै सोमश्चाकामयेताम्। सर्वासां प्रजानाम् ऐश्वर्यम् आधिपत्यम् अश्नुवीवहीति। तावेतां प्रतिपदमपश्यताम्। तया स्तुवताम्। ततो वै तौ सर्वासां प्रजानामैश्वर्यमाधिपत्यम् च आश्नुवाताम् इति। (१।९५)

अर्थ—इन्द्र और सोम ने इच्छा की कि हम प्रजा के ईश्वर और अधिपति (सम्राट्) बनें। उन्होंने इसके लिये सतत प्रयत्न किया और उन्होंने प्रजाओं का ऐश्वर्य और आधिपत्य भोगा।

सध्र्यश्वः तैग्मायुधिः—

सध्र्यश्वो ह स्माह तैग्मायुधिः। (१।११४)

अर्थ—तिग्मायुध का पुत्र सध्र्यश्व बोला।

उत्तरकुरवः मार्जश्शैलनश्च—

उत्तरकुरवो हातुरं अवषट्कृतस्यैव सोमस्य कुरुपञ्चाला भक्षयन्तीति तद् उ ह स्माह मार्जश्शैलनः ॥ (१।११८)

अर्थ—उत्तर कुरुवासियों ने कहा कि कुरुपञ्चालवासी अवषट्कृत सोमपान करते हैं। मार्जश्शैलन ने कहा।

रुरुः—

रुरु इतिवृध्रः पशुकामस्तपोऽतप्यत। स एतत् सामापश्यत्। यद् उ रुरु इतिवृध्रोऽपश्यत्, तस्माद् एव रौरवम् इत्याख्यायते।

(१।१२१)

अर्थ—रुरु इतिवृध्र ने पशुओं की इच्छा से तप किया। उसने यह साम देखी (रची)। क्योंकि यह साम रुरु इतिवृध्र ने देखी, इसलिये उसका नाम 'रौरव साम' प्रसिद्ध हुआ।

युधाजीवः वैश्वामित्रः—

युधाजीवो वैश्वामित्रः प्रतिष्ठाकामस्तपोऽतप्यत। स एतत् सामापश्यत् ॥

अर्थ—विश्वामित्र के पुत्र (या वंशज) युधाजीव ऋषि ने इस साम के दर्शन के लिये तप किया और उसने यह साम (यौधाजीव साम) रची।

बृहस्पतिरुशना, त्रिशीर्षा गन्धर्वः इन्द्रश्च—

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद्, उशना काव्योऽसुराणाम्। तेषां ह त्रिशीर्षा गन्धर्वो विजयस्यावेत्। स हैवास। तस्य हाप्स्वन्तरे नौनगरं परिप्लवम् आस। तद् इन्द्रोऽवबुध्यत—त्रिशीर्षा वै नो विजयस्य वेदेति। तस्य जायाम् आच्छेद् एतस्यैव विजयस्य कामाय। ताम् अब्रवीत् पृच्छतात् पतिं य इमे देवासुरासंयत्ता ज्योग् अभूवन् कतर एषां ज्येष्यन्तीति।...सेयं पतिं पप्रच्छ य इमे देवासुरास्संयत्ता ज्योग् अभूवन् कतर एषां जेष्यन्तीति। मौच्चैरिति होवाच। कर्णिनी वै भूमिरिति। तद् इदम् अप्यैतद् आहुर्मोच्चैः कर्णिनी वै भूरिति। नेति होवाच ब्रह्म वेति। स होवाच ब्राह्मणाविमौ समं विदतुरिति। बृहस्पतिरियं देवेषूशना काव्योऽसुरेषु।...तद्धैवेन्द्रोऽनुबुध्य शुको भूत्वोत्पपात। तं हान्वीक्ष्य पतन्तम् उवाच। येषां असौ हरितवर्णकः पतति, ते जेष्यन्तीति। स होशनसं काव्यमाजगामसुरेषु। तं होवाच ऋषे! कम् इमं जनं वर्धयस्यस्माकं वै त्वमसि, वयं वा तवास्मान् अभ्युपावर्तस्वेति।

कथेति होवाच । केन मोपमन्त्रयस इति । या इमा विरोचनस्य प्राह्लादेः कामदुघास्ताभिरतिताभिर्ह प्रतित्वेव प्रदुद्रवुः । तौ हासुरा अन्ववजह्निरे । तौ हान्वाजग्मतुः । स होवाच, ऋषेऽनु वै नाविमेऽसुरा अग्मन् इति । स वै तथा कुर्विति होवाच यथा नावेते नान्वागच्छात् इति । तौ हाभिः कामदुघाभिर्देवानां जग्मतुः । तौ हागतौ महयांचक्रे—

ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानाम् ऋभुर्वीर उशना काव्येन । स चिद् विवेद निहितं यद् आसाम् अपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् । इति···।

उशना वै काव्यो देवेष्वमर्त्यं गन्धर्वलोकम् ऐच्छत ।

···यद् उशना काव्योऽपश्यत् तस्माद् औशनम् इत्याख्यायते ।।

(१।१२६-१२७)

अर्थ—बृहस्पति देवों के पुरोहित थे और उशना काव्य असुरों के पुरोहित थे । (देवासुरों की) विजय को त्रिशीर्षा गन्धर्व जानता था । उसका नगर नौनगर (अर्थात् समुद्र के मध्य नावों पर बसा हुआ था ।) तैरता था । यह बात इन्द्र को ज्ञात हुई कि त्रिशीर्षागन्धर्व को हमारी (देवों और असुरों) विजय का ज्ञान है । अतः इन्द्र विजय की कामना से त्रिशीर्षा की पत्नी के पास पहुंचा और उसको कहा कि "जो ये देवासुरगण युद्धार्थ संनद्ध हैं, अपने पति से पूछो कि इस युद्ध में किस पक्ष की विजय होगी ।···उसने (गन्धर्वपत्नी ने) अपने पति से पूछा—'ये जो देव और असुर दीर्घकाल से युद्ध कर रहे हैं, उनमें कौन जीतेगा ?' गन्धर्व ने कहा – 'धीरे बोलो । भूमि के भी कान होते हैं ।' उसने कहा—मैं नहीं जानता । पुरोहित जानते हैं । ये दो ब्राह्मणपुरोहित – देवों में बृहस्पति और असुरों में उशना काव्य—ये युद्ध के परिणाम को जानते हैं । यह सुनकर इन्द्र तोता बनकर (शुक्राचार्य से मिलने हेतु) उड़ गया । तब त्रिशीर्षा गन्धर्व ने चिल्लाकर कहा— 'जो यह हरा तोता (इन्द्र) उड़ रहा है, वे (देवगण) जीतेंगे ।

इन्द्र उठकर उशना काव्य के पास आया और बोला—'ऋषे ! इन (असुर) जनों की वृद्धि क्यों कर रहे हो ? हम तो तुम्हारे ही आदमी 'हैं और आप हमारे हो । अतः हमारे पास आओ । उशना काव्य ने पूछा—क्यों, किसलिये मुझे बुला रहे हो ?

ऋषे ! प्रह्लादपुत्र विरोचन की जो कामदुघा गायें हैं वे आपके पास आ गई हैं । उनको असुरों ने चुराया था । इधर ये असुर हमारी ओर आ रहे हैं । ये हमारी ओर नहीं आयें, ऐसा उपाय करो । वे दोनों पुरोहित गायों के साथ देवों के पास आये । उनकी देवों ने पूजा की—

"ऋषि, विप्र, पुरोहित, उशना महान् ज्ञानी है, वीर है, वह अपने काव्य (बुद्धि) से गुहा में निहित गुप्त गायों को भी भली-भांति जानते हैं।

...उशना काव्य ने देवों में अमर गन्धर्वलोक की कामना की और वहां गये।...

इस साम को उशना काव्य ने रचा (देखा) इसलिये उसको 'औशनस साम' कहते हैं।

नोधाः काक्षीवतः–

नोधा वै काक्षीवतो ज्योग् अप्रतिष्ठितश्चरन् सोऽकामयत प्रतितिष्ठेयम् इति। स ह देवान् ब्रह्म विभजमानान् उपावपतत। स होवाचर्षिरस्मि मन्त्रकृत्, स ज्योग् अप्रतिष्ठितोऽस्मि। तस्मै म एतद् दत्त येन प्रतितिष्ठेयम् इति। तस्मै ह ब्रह्मणो रसस्य ददुः। तद् एव नौधसम् अभवत्। (१४७)

अर्थ—कक्षीवान् का पुत्र नोधा चिरकाल तक, अप्रतिष्ठित ही रहा। उसने इच्छा की कि मुझे लोक में प्रतिष्ठा (सम्मान) मिले। वह देवों के पास गया, जहां वे वेद (विद्या या मन्त्रों) को बांट रहे थे। वह बोला—"मैं ऋषि मन्त्रकृत् हूं परन्तु चिरकाल से अप्रतिष्ठित हूं। कृपया मुझे यह वेद का रस (साम) दे दीजिये, जिससे प्रतिष्ठित हो सकूं। देवों ने उसे वेद का रस दे दिया। इसीलिये उस साम को 'नौधसम साम' कहते हैं।

जीतः वसिष्ठः—

वसिष्ठो वै जीतो हतपुत्रोऽकामयत, बहुप्रजया पशुभिः प्रजायेयेति। (१।१५०)

अर्थ—जीत (जित् का पुत्र) वसिष्ठ (वासिष्ठ) अपने पुत्रों के मर जाने पर सोचने लगा कि मेरे बहुत सी प्रजा और पशु उत्पन्न हों।

तरन्तपुरुमीढौ—

तरन्तपुरुमीढौ वै वैतदश्वी माहेयौ मह्या आर्चनानस्यै पुत्रौ। तौ ह यन्तौ स्त्रीः पर्येत्योवाच। तौ ह क्रुध्यन्ताविवोचतुः। कथं नावित्थं ब्रूयाद् इति। तं वा अर्वीष उपवेपति। सा हेयं स्त्रीः श्रद्धाय देवर्षी या मन्त्रकृतावबोचताम्। इत्यर्वीष उपोवाप। तौ ह पुनरायन्तौ पर्येत्योवाच—यं वै कुमारम् अवोचतम्। अर्वीष उपवेपत्ययं वै सोऽर्वीष उपोप्तश्शेते इति। तौ हासाध्व इव कृत्वा मेनाते। तावकामेयताम्। उद् इत इयाव गातुं नाथं विन्देवहि। सम अयं कुमारो जीवेद् इति। को नामकुमार इति। सुदीतिर्नाम। (१।१५१)

अर्थ—वितदश्‍व और आर्चनानसी 'मही' के पुत्र थे। तरन्त और पुरुमीढ़, (उनको पिता के नाम पर वैतदश्‍वी और माता के नाम पर माहेय भी कहा जाता था) मार्ग में उनको जाते हुये एक स्त्री आकर बोली। वे ऋषि क्रुद्ध होकर बोले—"हमसे मार्ग में इस प्रकार क्यों बात कही।" वह बालक ज्वर से कांप रहा था। उस स्त्री ने श्रद्धावश और यह समझकर कि ये देवर्षि हैं, मन्त्रकृत् ऋषि हैं—अतः मेरे पुत्र की चिकित्सा कर देंगे।

जब मार्ग में वे ऋषि पुनः जारहे थे, तो वह एक स्त्री आकर बोली—"कि वह कुमार ज्वर से कांप रहा था, वह निःसंज्ञ पड़ा है। तब ऋषियों ने सोचा—'हमसे बड़ा अपराध हुआ। तब उन्होंने चाहा कि चलें और उस बालक को जीवित करके उसका कल्याण करें! 'उस कुमार का क्या नाम था?' उसका नाम 'सुदीति' था।

जमदग्निः, माहेनाः (हैहयाः) क्षत्रियाश्च—

जमदग्निर्ह वै माहेनानां पुरोहित आस। तान् वित्तेनात्याददौ। त उ हैनमु उपजिहिंसुः। स ह ईक्षांचक्रे कथं न्वहम् एषां सप्तसप्तैकाहानि ग्राम्याणां पशूनां हन्याम् इति।... ततो वै स तेषां सप्तसप्तैकाहानि ग्राम्याणां पशूनाम् अहन् । तद् एषोपगीता—

अतिमात्रम् अवर्धन्त नोद इव दिवम् अस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा माहेना असंहेयं पराभवन्॥ (१।१५२)

अति महत्ता को प्राप्त हुये माहेन (हैहय) क्षत्रियगण आकाश को छूने लगे थे, परन्तु, अवध्य भृगु (भार्गव=जमदग्नि) को मारने से वे पराभव को प्राप्त हुये। (श्लोकार्थ)

जमदग्नि माहेन (हैहय) क्षत्रियों का पुरोहित था। उसने उनको अपरिमित धन से सम्पन्न किया, परन्तु उन्होंने उसको मारना चाहा और बाद में मार भी दिया। जमदग्नि ने देखा कि मैं इनके यज्ञिय ग्राम्य पशुओं को मार दूं और उसने उनके ग्राम्य पशु मार दिये। तदनन्तर (इतिहास में) यह गीत गाया जाता है। (ऊपर)

वैतदन्यः कलिः, पंचजनाश्च—

देवाः पितरो मनुष्यास्तेऽन्यत आसन् असुराः रक्षांसि पिशाचा अन्यतः। त एषु लोकेषु अस्पर्धन्त। अथ कलयो गन्धर्वा अन्तस्थाश्चेरुर्नेतरान् नेतरान् आद्रियमाणाः। ते देवाः पितरो मनुष्या असुरान् रक्षांसि पिशाचान् अभ्यभवन्। त इमान् लोकान् व्यभजन्त। देवलोकं एव देवा अभजन्त, पितृलोकं पितरो मनुष्यलोकं मनुष्याः। ततः कलयो

गन्धर्वा एत्याब्रुवन्। अनु न एषु लोकेष्वा भजतेति। नेत्यब्रुवन्। अनाद्रियमाणा वै यूयम् अचारिष्ट नेतरान् नेतरान् आद्रियमाणा इति। अथ न वै वो मनसान्वासिष्महे इत्यब्रुवन्। अन्वेव न आभजतेति। नेत्यब्रुवन्। साधुविभक्ता नौ लोकास्तान् न शक्ष्यामस्सं-लोभयितुम् इति। तेऽब्रुवन् यद् वयं इह स्वयं पश्यामस्तद् अस्माकम् अस्त्विति। तेभ्यः एता कलिन्दाः प्रायच्छन्। एतासु श्राम्यतेति। तद् यत् कलिभ्यः कलिन्दाः प्रायच्छंस्तत् कलिन्दानां कलिन्दत्वम्। स एतत् कलिर्वैतदन्यः सामापश्यत्।···यद् उ कलि वैतदन्यो-ऽपश्यत् तस्मात् कालेयम् इत्याख्यायते। (१।१५५)

अर्थ—(युद्ध में) देव, पितर और मनुष्य एक ओर असुर, राक्षस और पिशाच दूसरी ओर थे। वे लोकों (देशों और जातियों) में स्पर्धा करते थे (कि उस पर हमारा अधिकार हो जाये)। कलिगन्धर्व दोगले थे। वे समय-समय पर दोनों पक्षों की ओर चले जाते थे।) परन्तु किसी पक्ष का आदर नहीं करते (उनकी सहायता नहीं करते) थे। जब देव-पितृ मनुष्यों ने असुर, राक्षस-पिशाचों को जीत लिया तब उन्होंने इन लोकों (देशों) को बांट लिया। देवलोक (देवजाति या देश) को देवों ने, पितृलोक (देश) को पितरों ने और मनुष्यलोक को मनुष्यों ने बांट लिया। तब कलि-गन्धर्व आकर बोले—'हमको भी (कुछ या कोई) लोक (देश) दीजिये। देवादि बोले—'नहीं' क्योंकि आप लोग किसी का भी आदर (सहायता) नहीं करते हुये इधर-उधर घूमते रहे। "हम आपके साथ मन से हैं। अतः हमको भाग दो।" तब देवादि ने कहा हमने लोक (देश) भली-भांति बांट लिये हैं, अब लालच की कोई संभावना नहीं है। तब कलिगन्धर्वों ने कहा—'हम जिस वस्तु को स्वयं देख लें, वही हमारी हो जाये, तब देवों ने उन्हें कलिन्द (फल) दिये और कहा—इन पर ही सन्तोष करो, क्योंकि कलिन्द कलिगन्धर्वों को दिये गये, यही कलिन्दों का कलिन्दत्व है।

वितदन् के पुत्र कलि ने यह साम रची, क्योंकि कलि वैतदन्य ने यह साम देखी, अतः उसको 'कालेय साम' कहा जाता है।

दीर्घजिह्वी असुरी, इन्द्रः सुमित्रश्च—

दीर्घजिह्वी ह वा असुर्यास। सा ह स्म सोमं सोमम् अवलेढ़ि। उत्तरे समुद्रे आस। स यो ह स्म दक्षिणे समुद्रे सूयते यः पूर्वे योऽपरे तं ह स्म तत एवावलेढि। तां हेन्द्रो जिघृक्षन् न शशाक गृहीतुम्। स होवाच मा कश्चन यष्टेयं वै दीर्घजिह्वी सोमं सोमम् एवावलेढीति।

अथ ह सुमित्रः कौत्सो दर्शनीय आस। स तं होवाच 'सुमित्र दर्शनीयोऽसि' सुलापा वै दर्शनीयेन स्त्रियः। इमां दीर्घजिह्वीं लिलापयिषस्वेति।" तां हेत्योवाच—'दीर्घजिह्वि कामयस्व मेति।" सा होवाचैकं तव शेपोऽङ्गेऽङ्गे मम मुष्काः, न वैतत् संपद्यते इति।

सा ह पुनरेत्य वोचैकं तव शेपोऽङ्गेऽङ्गे मम मुष्काः, न वै तत् संपद्यते इति वै माम् इयम् आहृति अङ्गे अङ्गे वा तव शेपांसि करोमीति होवाच। तानि हाभिप्रावृत्येयाय। तां होवाच दीर्घ-जिह्वि ! कामयस्व मेति। सा तोवाचैकं तव शेपोऽङ्गेऽङ्गे मम मुष्का न वै तत् संपद्यत इति। अङ्गे अङ्गे वाव मम शेपांसीति होवाच। अङ्गं ते पश्यानीति।

तानि हास्यै दर्शयांचकार। तानि हास्यैच्छन्दयांचक्रुः। स वा एहीति होवाच। को नामासीति। सुमित्रो नामेति। कल्याणं वै ते नामेति होवाच। तौ ह संनिपेदाते। तस्यां ह यदार्थं चक्रेऽथ हैनां तद् एवाभिसंजग्राह। स होवाच नन्वरे त्वं सुमित्रोऽत्रोचथा इति। स होवाच सुमित्र एवाहं सुमित्रायास्मि दुर्मित्रो दुर्मित्रायेति।

(१।१६१-१६३)

अर्थ—दीर्घजिह्वी नाम की एक असुरी थी। जहां-जहां सोमक्रतु होता था, वहीं सोम चट कर जाती थी। वह उत्तर समुद्र तट पर सोमसवन करता था और जो पूर्व समुद्र या पश्चिम समुद्र तट पर सोम निकाला जाता, वह समस्त सोम को चाट जाती थी। इन्द्र ने उसको पकड़ने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह पकड़ नहीं सका। वह बोला, कोई (अभी) यज्ञ नहीं करे, क्योंकि दीर्घ-जिह्वी सोम को चट कर जाती है।

सुमित्रकौत्स (कुत्स पुत्र) एक सुन्दर युवक था। इन्द्र ने उससे कहा हे ! सुमित्र ! तुम अतीव सुन्दर हो ! स्त्रियां सुन्दर पुरुष के साथ खूब बातें करती हैं। इस दीर्घजिह्वी में वार्ता करने की इच्छा उत्पन्न करो। सुमित्र दीर्घजिह्वी के पास जाकर बोला—'तुम मुझसे प्रेम करो। वह बोली—'हे सुमित्र ! आपके एक ही शेप (पुरुषेन्द्रिय) है और मेरे अंग-अंग में योनियां हैं। अतः हमारा प्रेम संभव नहीं। (जब सुमित्र दुबारा उसके पास गया तो) फिर भी वह बोली—'आपके एक ही शेप है और मेरी अनेक योनियां हैं, यही एक दुःख की बात है। मैं तुम्हारे शरीर में अनेक शेप लगा देती हूं। ऐसा होने पर पुनः सुमित्र दीर्घजिह्वी के पास गया और पुनः बोला—'दीर्घजिह्वी मेरे से प्रेम करो।

वह बोली—'सुमित्र ! तुम्हारे एक ही शेप है और मेरे अंग-अंग में योनियां हैं, अतः यह संभव नहीं। तब सुमित्र ने बताया—'मेरे अंग-अंग में भी अनेक शेप हैं। दीर्घजिह्वी बोली—'मैं आपके अंगों को देखना चाहती हूं। सुमित्र ने अपने अंग-अंग दिखाये। उसने उसकी कामना की। वह बोली—'आओ मेरे पास आओ। परन्तु यह तो बताओ, तुम्हारा नाम क्या है ? वह बोला—मेरा नाम 'सुमित्र' है।

वह बोली—'बड़ा ही शुभ नाम है। वे दोनों साथ चल दिये। जब सुमित्र ने उसकी इच्छापूर्ति करदी तो शीघ्र ही उसको पकड़वा दिया। तब दीर्घजिह्वी बोली—'तुम तो अपना नाम 'सुमित्र' बता रहे थे, (तुम तो बड़े 'दुर्मित्र-दुष्टमित्र निकले) सुमित्र बोला—'होने को तो मैं 'सुमित्र ही हूं। परन्तु ''दुष्टों के लिए 'दुर्मित्र' बन जाता हूं।''

अर्चनानाः श्यावाश्वः—

यद् उ श्यावाश्वः अर्चनानसोऽपश्यत् तस्माच्छ्यावाश्वम् इत्याख्यायते। (१।१६४)

अर्थ—अर्चनानस् के पुत्र श्यावाश्व ने यह साम देखी, अतः इसको 'श्यावाश्व साम' कहा जाता है।

नृमेधसुव्रतौ—

नृमेधश्च वै सुव्रतश्च भ्रातरौ। तौ ह निकातिवया दधाते। स ह नृमेधस्सुव्रतस्योज्जगौ। तद्ध यज्ञायज्ञीयेनैवास्तुतम् आस। अथ हैनम् आसस्रुः। यजमानस्य वै तत् उद्गातुः पुत्रम् अमीमरताम् अन्तकधृतिं सौव्रतिं नकिरश्च शकपूतश्चेति तं ह बाहू परामृशन्नुवाच 'ब्राह्मणा एष वो यज्ञस्तेन यं कामयन्ते त याजयतानेन त्वा अहं तद् याजयिष्य इति। तं हौदुम्बर्याम् अनुवेष्ट्य शणशलाकाभिरुपादोपयांचकार। सोऽकामयतोद् इत इयां गातुं नाथ विन्देय न मायम् अग्निदहेद् इति।...ततो वै स गातुं नाथम् अविन्दत। नैनम् अग्निरदहत्। अपि तच्छुल्वकं प्रददाह येनानुवेष्टित आस। (१।१७१)

अर्थ—नृमेध और सुव्रत-दोनों भाई थे। उन्होंने यज्ञ किया। नृमेध ने सुव्रत का उद्गान किया। उसने यज्ञायज्ञिय साम से स्तुति की। उसका दुष्परिणाम निकला। यजमान और उद्गाता का पुत्र मर गया। अन्तकधृति सौव्रति का हाथ पकड़कर 'नकिरश्च शकपूतश्च' इस प्रकार मन्त्र बोलकर ब्राह्मण बोला—'यह तुम्हारा यज्ञ है, उससे यजन करो और मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा। ब्राह्मण

ने सुव्रत को औदुम्बरी में बैठाकर शणशलाकाओं से लपेटकर आग लगादी। तब सुव्रत ने रक्षक की कामना की कि मुझे कहीं यह अग्नि जला न दे। तब उसने अग्नि की स्तुति की और आग ने उसे जलाया नहीं। बल्कि उस शुल्वक को ही जलाया, जिससे वह लपेटा गया था।

हरिवर्ण आङ्गिरसः—

यद् उ हरिवर्ण आङ्गिरसोऽपश्यत् तस्माद्धारिवर्णम् इत्याख्यायते। (१।१८३)

अर्थ—इस साम को हरिवर्ण आङ्गिरस ने देखा, इसलिये साम को 'हरिवर्ण-साम' कहा जाता है।

त्रितः (एकतद्वितत्रिता आप्त्याः)—

आप्त्यान् साते नयतोऽरण्ये पिपासाविन्दत्। ते धन्वन् कूपम् अविन्दन्। तन्नैकतोऽवरोढुम्। अकामयत। न द्वितः। तत् त्रितोऽवरोहत्। तौ यदा पिबताम् अतृप्यताम्। अथ हैनं तद् एव रथचक्रेणापिधाय गोभिः प्रैताम्। सोऽकामतोद् इत् इयां गातुं नाथं विन्देयेति। तं पर्जन्यो वृष्ट्योर्ध्वम् उदप्लावयत्। अभि हि तद् रथचक्रम् उत्प्लावयांचकार येनापिहित आस। स पदेनान्वैत्। तं प्रतिख्यायन्तम् ऋक्षोऽन्यो भूत्वा मर्कटोऽन्यो वनम् अवास्कन्दताम्। तद् उ भ्रातव्यहा साम...। यद् उ त्रित आप्त्योऽपश्यत्। तस्मात् त्रैतम् इत्याख्यायते। (१।१८४)

अर्थ—बन में जाते हुये आर्य्यों को पिपासा लगी। उन्होंने मरु प्रदेश में कूआं ढूढ़ लिया। पानी पीने के लिये एकत और द्वित ने नहीं उतरना चाहा। केवल त्रित को नीचे उतारा। जब एकत और द्वित ने पानी पी लिया और तृप्त होगये, तब रथ के पहिये से कूयें को ढ़ककर बैलगाड़ी लेकर चल पड़े। उसने (त्रित ने) अपनी रक्षा हेतु भगवान् की प्रार्थना की। तब मेघ ने वर्षा करके उसके ऊपर तैरा दिया। जिस रथचक्र से कुंआं ढ़का हुआ था, वह चक्र पानी में बहने लगा। तब त्रित पैदल ही चला। उसको मार्ग में आते हुये ऋक्ष और मर्कट ने - यह भ्रातव्यहा (शत्रुनाशक) साम है जिसको त्रित ने देखा। इसलिये इसको 'त्रैतसाम' कहते हैं।

पृथुरश्मिः (क्षेत्रकामः)—

इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्। तेषाम् अद्यमानानां त्रयः कुमारा पर्यशिष्यन्त। रायोवाजः, पृथुरश्मिः, बृहद्गिरिः। त इन्द्रम् अस्तुवन्। तान् अब्रवीत् किंकामा कुमाराः स्तुथेति।

बिभृह्येव नो मघवन् इत्यब्रुवन्।...तान् अब्रवीत् किंकामो वा एकः किंकाम एकः किंकाम एक इति। सोऽब्रवीद् रायोवाजः पशुकामोऽहम् अस्मीति। तस्या इलां प्रायच्छत्। अथाब्रवीत् पृथुरश्मिः क्षेत्रकामोऽहम् अस्मीति। स एव पृथुवैन्यः। अथाब्रवीद् बृहद्गिरिरन्नाद्यकामोऽस्मि तस्मा अथकारं प्रायच्छत्। अन्नं वा अथकारः। (१।१८६)

अर्थ—इन्द्र ने यति (असुरों) को सालावृकों को दे दिया। उनके खाने से तीन कुमार बचे—रायोवाज, पृथुरश्मि और बृहद्गिरि। उन्होंने इन्द्र की स्तुति की। उसने पूछा—"किस इच्छा से मेरी स्तुति कर रहे हो? "हे मघवन् (भगवान्) हमारा भरण पोषण करो। ऐसा उन्होंने कहा—'आप में एक (प्रथम) क्या चाहता है, दूसरा क्या चाहता और तीसरा क्या चाहता है?" वह रायोवाज बोला—'मैं पशुओं को चाहता हूं।" इन्द्र ने उसको इला (पशु) दे दिया। पृथुरश्मि ने कहा—"मैं क्षेत्रकाम हूं (भूमि चाहता हूं) वह पृथुवैन्य (का अवतार) था। बृहद्गिरि ने कहा—'मैं अन्नाद्यकाम हूं। उसको अथकार दे दिया। अन्न ही अथकार है।

भारद्वाजायनाः सौभरं साम च—

भारद्वाजायनान् ह सत्रम् आसीनान् पप्रच्छुः। केन प्रजाकामा अस्तोढ्वम् इति सौभरेणेति। केनान्नाद्यकामा इति सौभरेणेति। केन वृष्टिकामा इति सौभरेणेति। (१।१८६)

अर्थ—भारद्वाजायनों से, जो सत्र कर रहे थे, पूछा गया, प्रजा के इच्छुक आपने किस (साम) से स्तुति की? उन्होंने कहा—"सौभरसाम से", किससे अन्नाद्यकाम और किससे वृष्टिकाम होकर स्तुति की। "सौभरसाम से"।

अष्टादंष्ट्रो वैरूपः (१।१९१)—अष्टादंष्ट्र वैरूप।

अर्धिनः देवाः—

अहोरात्रयोर्वै देवासुरा अधिसंयत्ता आसन्। ते देवा अब्रुवन् अर्धिनो वा अस्य भुवनस्याभूम कथं सत्रा रात्रिम् अभिजयेम याभिप्रयुनजमहा इति। (१।१९६)

अर्थ—देवगण और असुरगण दिनरात्रि युद्ध करते थे। वे देवगण बोले—'हम आधे भुवन (भूमण्डल) के मालिक हैं।

कनीयस्विनो देवाः—

कनीयस्विनः वै देवा आसन्, भूयस्विनोऽसुराः। (१।१९८)

अर्थ—देव छोटे (एवं थोड़े) थे और असुर बड़े (और अधिक) थे।

वीतहव्य आश्रायसः—

वीतहव्य आश्रायसो ज्योग् अपरुद्धश्चरन्। सोऽकामयताव स्व ओकसि गच्छेयम्····· ततो वै सोऽव स्व ओकस्यगच्छत्।

(१।२१४)

अर्थ—अश्रायसपुत्र वीतहव्य बहुत समय तक राज्यच्युत होकर इधर-उधर भटकता रहा। तब उसने चाहा कि मैं अपने घर (राज्य) में जाऊं।···तदनन्तर वह अपने घर (राजगद्दी) को प्राप्त हुआ।

गौरवीतिः शाक्त्यः (१।२१५)—गौरवीति शाक्त्य (शक्ति पुत्र)
कण्वो नार्षदः (१।२१६)—कण्व नार्षद (नृषद पुत्र)
श्रुतकक्षः काक्षीवतः (१।२१७)—श्रुतकक्ष काक्षीवत (कक्षीवान् पुत्र)
वेणुर्वैश्वामित्रः (१।२२०)—वेणु वैश्वामित्र (विश्वामित्र पुत्र)

अपाला आत्रेयी उपाख्यानम्—

अपाला ह वा आत्रेयी तिलका वा रुच्छ्वसाप्यास (दुष्टत्वचा ? इति साधीयान् पाठः) साऽकामयताप पापं वर्णं हनीयेति। सैतत् सामापश्यत्। तेनास्तुत। सा तीर्थम् अभ्यवयती सोमांशुम् अविन्दत। तं समखादत्। तस्यै ह ग्रावाण इव दन्ता ऊदुः। स इन्द्र आद्रवद्। ग्रावाणो वै वदन्तीति। साभिव्याहरत्। 'कन्या वार अवायती सोमम् अपि स्रुताविदत्। अस्तं भरन्त्यब्रवीत् 'इन्द्राय सुनवै त्वा शुक्राय सुनवै त्वा इति'' अस्यै वा इदं ग्रावाण इव दन्ता वदन्तीति विदित्वेन्द्रः पराङ् आवर्तत। ···

ताम् अब्रवीद्—'अपाले किं कामासीति' साऽब्रवीत्। 'इमानि त्रीणि विष्टपा। तानीद्र विरोहय। शिरस् ततस्योर्वराम्। आद इदं म उपोदरे। सर्वास्ता रोमशा कृधि।'' खलति हास्यै पितास। तं हाखलतिं चकार। उर्वरा हास्यै न जज्ञे। उपस्ये हास्यै रोमाणि नासुः। तानि उ ह जज्ञिरे। तां खे रथस्यात्यबृहत्। सा गोधाभवत्। तां खेऽनसोऽत्यबृहत्। सा कृकलास्यभवत्। तां खे युगस्यात्यबृहत्। सा संश्लिष्टिकाभवत्। तद् एवाभ्यनूच्यते—

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालाम् इन्द्र त्रिषु पूत्वायाकृणोस्सूर्यत्वचम्॥
तस्यैह यत् कल्याणतमं रूपाणां तद् रूपम् आस॥ (१।२२०-२२१)

अर्थ—अपाला अथवा तिलका आत्रेयी की त्वचा खराब थी। उसने चाहा कि मेरा दुष्ट रूप (पापवर्ण) समाप्त हो जाये। उसने एक साम का दर्शन किया

और उससे (इन्द्र की) स्तुति की। वह तीर्थ (जल) की ओर जा रही थी, कि उसने सोम का अंश प्राप्त किया और उसे खाने लगी। उसे खाने पर उसके दांत पत्थरों (सोम पीसने वाले) के समान बजने लगे। तब इन्द्र वहां आया कि पत्थर कहां बज रहे हैं ? अपाला बोली—'मैं कन्या हूं। पानी की ओर जाते हुए मैंने सोम पाया। उसे घर की ओर ले जाते हुई बोली—'मैं इन्द्र के लिए सोम निकालती हूं, मैं शुक्र (तेज) के लिए सोम निकालती हूं। जब इन्द्र को ज्ञात हुआ कि इसके दांत ही पत्थरों की सी ध्वनि कर रहे हैं, वह दूर चला गया।

(पुन: आकर इन्द्र) अपाला से बोला—"अपाले ! क्या चाहती हो ? वह बोली—'इन्द्र ये तीन स्थान (अंग) हैं, इनको चढ़ाइये। शिर को बालयुक्त बनाओ, उदर और समस्त अंग रोमश (बालयुक्त) कीजिये।"

अपाला का पिता गंजा था। उसको इन्द्र ने ठीक किया था। अपाला के बाल उगे नहीं। उपस्थ (गुदा) में उसके बाल नहीं थे। उन सब स्थानों पर बाल उग आये। इन्द्र ने रथ के छेद में उसको बढ़ाया, वह गोधा होगया। उसने छकड़े के छेद में बढ़ाया, तब कृकलास (गिरगिट) होगया। उसने जूये (युग) के छेद में उसे चढ़ाया। तब झौंक हो गई। इसीलिए निम्न मन्त्रार्थ कहा जाता है—

"रथ के छेद में, छकड़े के छेद में और युग के छेद में, हे इन्द्र ! आपने अपाला को डालकर पवित्र किया और उसकी त्वचा सूर्यवर्ण (तेजस्वी) होगई।"

दिवोदासो वाध्र्यश्वि:—

दिवोदासो वै वाध्र्यश्विरकामयतोभयं ब्रह्म च क्षत्रं चावरुन्धीय। राजा सन्न् ऋषि: स्याम इति…ततो वै स उभयं ब्रह्म च क्षत्रं चावरुन्ध। राजा सन्नृषिरभवत्। (१।२२२)

अर्थ—वध्र्यश्व का पुत्र दिवोदास (पांचाल) ने चाहा कि 'मैं ब्राह्मण और क्षत्रिय-दोनों के गुण प्राप्त करूं। राजा होकर ऋषि बनूं। अत: उसने क्षत्रियत्व एवं ब्रह्मत्व दोनों को प्राप्त किया। वह राजा होकर भी ऋषि बन गया।

घृतश्च्युत्मधुश्च्युतौ (आङ्गिरसौ)—

घृतश्च्युच्च वै मधुश्च्युच्चाङ्गिरसां स्वर्गं लोकं यताम् अहीयेताम्। तावकामयेताम्। अनुत्पतेव स्वर्गं लोकम्। तौ तपोऽतप्येताम्। तौ स्तुत्वैव घृतश्च्युते मधुश्च्युते इत्येव स्वर्गं लोकम् अनुदपतताम्। (१।२२४)

अर्थ—घृतश्च्युत् और मधुश्च्युत् आङ्गिरस ऋषि स्वर्गलोक जाने वालों में पीछे रह गये। तब उन्होंने सोचा, हम छलांग लगाकर ही स्वर्गलोक पहुंच जायें। तब उन्होंने तप किया।…वे स्तुति करके ही छलांग लगाकर स्वर्गलोक चले गये।

मेधातिथिः काण्वः १।२२६)—मेधातिथि काण्व।
सुमेधाः (१२२७)—सुमेधा ऋषि।
पूर्वातिथिः—

पूर्वातिथिर्वा आर्चनानस् श्यावाश्वात् कनीयान्। (१।२२७)

अर्थ—पूर्वातिथि ऋषि—अर्चनानस् का पुत्र, श्वावाश्व का अनुज था।

कुत्सलुशौ—

कुत्सश्च लुशश्चेन्द्रं व्यह्वयेताम्। स कुत्सस्य हवम् आगच्छत्।…तं लुशोऽभ्यवदत् 'प्रमुञ्चस्व परि कुत्साद् इहागहि, किम् त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते।" तम् अभ्यावर्तत।… आत्मानं कुत्स उदजयत् महिमानं लुशः। (१।२२८)

अर्थ—कुत्स और लुश ने इन्द्र को (पृथक्-पृथक्) बुलाया। वह (इन्द्र) कुत्स के बुलाने पर आगया। तब लुश ने कहा—'हे इन्द्र! तुम्हारे जैसा बलवान् मुष्कों में बंधा क्यों पड़ा है, कुत्स से छुड़ाकर मेरे पास आओ। तब इन्द्र लुश के पास आगया। आत्मबल में कुत्स जीता और महिमा में लुश जीता।

असितः देवलः—

पुरुषान् इव हासीनान् असितो दैवल उवाच। क एत आसत इति। (१।२३३)

अर्थ—बैठे हुये पुरुषों ने असित दैवल (देवल के पुत्र) ने कहा—ये कौन-कौन बैठे हुये हैं।

महावृषः—

अथ ह हृत्स्वाशया आल्लकेयो महावृषो राजा पुत्रं दीक्षयांचकार तस्य ह सोमशुष्मः सात्ययज्ञिरुद्गीथायोढ आस। तमु ह महावृषाणां दूता आसस्रु रागच्छ समितिर्वा इयम् इति। तद्ध प्रधावयन्नुवाच उद्गातर् एतं ते पुत्रं परिददानीति। स हेष्ट्वा पुनराजगाम। स होवाचोद्गातः क्व यज्ञं प्रत्यतिष्ठिपः क्व यजमानं क्वास्य पशून् इति। तद्ध न प्रत्युवाच। स होवाच पुनर्मे पुत्रं दीक्षयत न वै विद्म यत्र मे पुत्रम् अक्रद् इति। तम् ह पुनर् दीक्षयांचक्रुः। (१।२३४)

अर्थ—हृत्स्वाशयो आल्लकेय महावृष नाम के राजा ने अपने पुत्र को यज्ञार्थ दीक्षित किया। उसने सोमशुष्म सात्ययज्ञि को उद्गाता के रूप में बरण किया था। महावृष के दूत ने विघ्न उत्पन्न किया और कहा—"आओ यह समिति है। वह दौड़ता हुआ बोला—हे उद्गात! मैं अपने पुत्र को देता हूं। वह यज्ञ कराके पुनः लौटा। राजा ने पूछा—हे उद्गाता! यज्ञ कहां प्रतिष्ठित था। कहां यजमान

था और कहां पशु थे ? उसने प्रत्युत्तर नहीं दिया। उसने कहा—मेरे पुत्र को पुनः दीक्षित करो। मुझे नहीं मालूम है, मेरा पुत्र क्या किया गया। और पुनः उसको दीक्षित किया।

सुचित्रः शैलनो जनकश्च—

सुचित्रश्शैलनो जनकं वैदहं समूदे। स होवाच श्रद्धाम् आविदद्।
ऋत्विजो मे ह्वयन्त्व् इति। तस्मै ह कुरुपंचलान् ऋत्विज ऊहुः।
तेषु आगतेषु शैलनो विभयांचकार। (१।२४५)

अर्थ—सुचित्र शैलन ने जनक वैदेह से संवाद किया। वह बोला—'मैंने श्रद्धा को प्राप्त किया है (मुझे पूर्ण विश्वास है मैं यज्ञों में निपुण हूं)। मेरे लिए ऋत्विज बुलाइये। उसके लिए कुरुपञ्चाल के ब्राह्मण ऋत्विज (यज्ञकर्त्ता) लाये गये। उनके आने पर शैलन डरने लगा।

समानकालिकाः केचन आचार्याः

नगरी जानश्रुतेयः (१।२४८)—नगरी जानश्रुतेय
प्रकुर्वार्ष्णः (१।२४८)—प्रकुर्वार्ष्ण (बर्कु वार्ष्णः)
आरुणिः (१।२४८)—आरुणि (अरुण पुत्र—उद्दालक)
उपजीवः खालायनः (१।२४९)—उपजीव खालायन
श्वेतकेतुरारुणेयः (१।२४९)—श्वेतकेतु आरुणेय (उद्दालक पुत्र)
शाट्यायनिः (१।२४९)—शाट्यायनि
नगरी दाल्भ्यः (१।२५७)—नगरी दाल्भ्य
शकलः गौपायनः (१।२५८)—शकल गौपायन
वसिष्ठः चैकितानेयः (१।२५८)—वसिष्ठ चैकितानेय
सत्ययज्ञः पौलुषिः (१।२६४)—सत्ययज्ञ पौलुषि)

आरुण्यादयः महाब्राह्मणाः

अथैतेषां महतां ब्राह्मणानाम् समुदितम्। आरुणोः जीवलस्य कारीरादेरषाढ़स्य सावयसस्येन्द्रद्युम्नस्य भाल्लवेयस्येति।......
अथ होचुरषाढं सावयसं यत् त्वम् शार्कराक्षाणां वाव ग्रामण्य एवासि त्वम् इदं प्राषिथेति। (१।१७१)
ते हारुणिम् ऊचुस्त्वं वै न आचार्योऽसि त्वं प्रथमो ब्रूष्वेति॥
(१।२७२)

अर्थ—इन महाब्राह्मणों (आचार्यों) का संवाद हुआ। आरुणि (उद्दालक), जीवल, कारीरि, अषाढ़सावयस और इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय।

वे बोले –'हे अषाढ़सावयस ! तुम शार्कराक्ष (क्षत्रियों) के अग्रणी (पुरोहित) हो। इसलिए आपने यह (महत्त्व) प्राप्त किया है।

वे बोले—'हे आरुणि ! आप हमारे (वरिष्ठ) आचार्य हैं अतः आप बतायें···।

पृथुर्वैन्यः—

पृथुर्ह वैन्यो दिव्यान् व्रात्यान् पप्रच्छ। (१।२७७)

अर्थ—पथुवैन्य ने दिव्य व्रात्यों से (यज्ञविषयक प्रश्न) पूछा···।

ऊर्जः जानायनः कपिवनः भौवायनश्च (१।२८४)—

ऊर्ज जानायन और कपिवन भौवायन।

केशी दार्भ्योऽन्ये चाचार्याः—

अथ हाहीनसम् आश्वत्थि केशी दार्भ्यः केशिनस् सात्यकामिनः पुरोधाया अपरुरोध। स ह स्थविरतरोऽहीना आस। कुमारतरः केशी। तं होवाचाथ केशिन्! किं मे विद्वान् राजन्यम् उपाहृथा इति। (१।२८५)

अर्थ—केशी दार्भ्य ने आहीन आश्वत्थि, जो केशी सात्यकामि का पुरोहित था, को रोका। वह बोला हे केशिन्! आप विद्वान् मुझ राजन्य (राजा या क्षत्रिय) को क्या उपहार लाये हो।

संगमनः क्षैमिः—

अथ ह संगमनः क्षैमिः सत्ययज्ञं पौलुषिं पप्रच्छ आचार्येण प्रहित आरुणिना। (१।२८५)

अर्थ—आचार्य आरुणि द्वारा प्रेषित संगमन क्षैमि ने सत्ययज्ञ पौलुषि से पूछा।

ब्रह्मदत्तः चैकितानेयश्चान्ये आचार्याः—

ब्रह्मदत्तं चैकितानेयं गलुना आर्क्षायणोऽनुव्याजहार। तथा त्वा अयं दाल्भ्यः 'श्यावाश्वम्' अगासीद्...।

अथ ह ब्रह्मदत्तं चैकितानेयं ब्रह्मदत्तः प्रासेनजितः कौसल्यो राजा पुरो दधे॥ (१।३३७)

अर्थ—गलुना आर्क्षायण ने ब्रह्मदत्त चैकितानेय से कहा कि दाल्भ्य ने आपके लिए (यज्ञ में) 'श्यावाश्व साम का गान किया था।···

कौसल्यराजा ब्रह्मदत्त प्रासेनजित ने ब्रह्मदत्त चैकितानेय को पुरोहित बनाया।

नैमिषीयाः—(सोमशुष्मगृहपतयः)—

अथ ह वै नैमिषीया इति सत्त्रिणस् सोमशुष्मगृहपतयस् सत्रं

निषेदुः । तेषां महेन्द्रो व्यर्धमिष्यन् मर्कटरूपेण पुरोडाशं प्रममाथ । अथ हैषां शितिबाहुर् ऐषकृतोऽध्वर्युर् अनूचान आस । (१।३६३)

अर्थ—नैमिषीय सोमशुष्मगृहपति सत्री सत्र कर रहे थे । महेन्द्र (इन्द्र) ने वानर रूप में उनके यज्ञ में विघ्न करने के लिए पुरोडशों को खा लिया । शितिबाहु ऐषकृत् उनका वेदज्ञ पुरोहित था ।

द्वितीयकाण्डे

केशी दार्भ्यः, सुत्वा याज्ञसेनश्च—

केशी ह दार्भ्यो दर्भपर्णयोदिदीक्षे । अथ ह सुत्वा याज्ञसेनो हंसो हिरण्मयो भूत्वा यूप उपविवेश । तं ह केशी शुनीति नाम्नाभ्युवाद । स ह चुक्रोध । स्थविरोऽस्मि पञ्चालानां राजा । स उ वै दीक्षितोऽस्मि । को नु मार्हेन नाम्नैवाभिवदितुम् इति । स होवाच 'मा क्रुधः । अभिवदिता ते तेनास्मि । यद् अहम् एतस्यै विशस् त्वत्पूर्वो राजासम् ॥ (२।५३)

अर्थ—केशीदार्भ्य ने दर्भपर्णों में दीक्षा ली । तदनन्तर सुत्वा याज्ञसेन सुवर्णमय हंस (परमहंस—संन्यासी) बनकर यूप में घुस गया । केशीदार्भ्य ने उसे कहा—'कुत्ता' । वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और बोला—मैं अत्यन्त वृद्ध हूं और पांचालों का राजा हूं । वह बोला—'मैं दीक्षित हूं । मुझको कौन इस (कुत्ता) नाम से पुकार सकता है । केशी बोला—'क्रोध मत करो । मैं आपको अभिवादन करता हूं (इस नाम द्वारा), तुम्हारे से पूर्व मैं इस प्रजा का राजा था ।"

दन्तालः धौम्यः, आल्लकेयश्च—

हृत्वाशया आल्लकेयो दन्तालस्य धौम्यस्यान्तेवास्यास । अथ ह दन्तालो धौम्यस्त्रयं वेदम् आप्रपदं विदांचकार । (२।५५)

अर्थ—हृत्वाशया आल्लकेय दन्ताल धौम्य का शिष्य था । दन्ताल धौम्य तीनों वेदों (वेदत्रयी) के प्रत्येक शब्द को जानता था ।

जनको वैदेहः वाजसनेयश्च—

जनको ह वैदेह बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे ते । तद् उ ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमाजग्मुः । स ह सहस्रं गवाम् अवरुन्धान उवाच—ब्राह्मणा एता वो यो ब्रह्मिष्ठस्स उदजताम् इति । स होवाच वाजसनेयो अर्वाचीरेतास्सोम्येति । तं होचुस्त्वं नु नो ब्रह्मिष्ठोऽसी३ इति । स होवाच नमो वो ब्रह्मिष्ठायास्तु । गोकामा एव वयं स्म इति । ते होचुः को न इमं प्रक्ष्यतीति । स होवाच विदग्ध शाकल्योऽहम् इति । (२।७६)

अर्थ—जनक वदेह ने बहुदक्षिण यज्ञ किया। वहां कुरुपञ्चाल देश के वहुत से ब्राह्मण आये। जनक ने एक सहस्र गायें प्रस्तुत करते हुए कहा—हे ब्राह्मणो! आप में से जो भी (सबसे बड़ा) बह्मिष्ठ हो, वही इन गायों को हांक ले जाये। वाजसनेय (याज्ञवल्क्य) ने (अपने शिष्य से) कहा—सौम्य इन गायों को हांक ले जाओ। वे ब्राह्मणगण बोले—(क्या) तुम ही (एकमात्र) बह्मिष्ठ हो? वाजसनेय ने कहा—आप में जो ब्रह्मिष्ठ है, उसको नमस्कार! हम तो केवल गायें चाहते हैं। वे बोले—हममें से कौन प्रश्न पूछेगा? उनमें से विदग्ध शाकल्य ने कहा—"मैं पूछूंगा।"

इन्द्रस्य बहुरूपाणि—कौशिकश्च—

मेधातिथेर्ह मेषो भूत्वा राजानं पपौ।
वृषणाश्वस्य ह मेना भूत्वा मघवा कुल उवास।
ततो हैव गौरो भूत्वार्णवम् अवचस्कन्द।
अहिल्यायै ह मैत्रेय्यै जार आस।
यद्ध वा असुरैर्महासंग्रामं संयेते तद्ध वेदान् निराचकार। तान् ह विश्वामित्रादधिजगे। ततो हैव कौशिक ऊचे। (२।७९)

अर्थ—मेधातिथि काण्व का मेष बनकर इन्द्र ने सोम को पी लिया। वृषणश्व की स्त्री बनकर मघवा (इन्द्र) ने कुल में वास किया। तदनन्तर गौर होकर समुद्र पर झपटा। मैत्रेयी अहिल्या का जार (यार) बना।

वह इन्द्र असुरों के साथ महासंग्राम करता रहा, तब (दीर्घकाल में) वेदों को भूल गया। (युद्ध के पश्चात्, उसने) विश्वामित्र से वेदों को पुनः पढ़ा। तब से उसका नाम भी 'कौशिक' होगया।

दर्भः शातानीकिः—

दर्भम् उ ह शातानीकिं पञ्चाला राजानं सन्तं नापचायांचक्रुः। अपि ह स्मैनं कुमारा दर्भ दर्भेति ह्वयन्ति। तस्य हैतौ ब्राह्मणावासतुरहीना आश्वत्थिः केशी सात्यकामिरिति। तौ हैनम् उपसमेयतुः। स ह ध्यायन् निषसाद। तं होचतुः। किं नु राजन्यो ध्यायतीति। स होवाच न हि मे ध्येयम्। पञ्चाला वैमे मे राजानं सन्तं नापचायन्ति अपि मा कुमारा दर्भ दर्भेति ह्वयन्ति। तद् एवैतद् ध्यायामीति। तं होचतुरपचितिरिति वा अयं यज्ञक्रतुरिति। तेन त्वा याजयावेति तथेति। तेन हैवं याजयांचकार। स हैषु तथामात्रम् अपचितिं जगाम। यद् प्राप्येतर्हि पञ्चाला दर्भान् कुशा इत्याचक्षते। (२।१००)

अर्थ—सतानीक के पुत्र 'दर्भ को राजा होते हुये भी पांचालगण सम्मान नहीं देते थे। यहां तक कि बालक भी उसको 'दर्भ-दर्भ' कहकर पुकारते थे। उसके पास दो ब्राह्मण आचार्य थे। अहीना आश्वत्थि और केशी सात्यकामि। वे दोनों राजा के पास गये। राजा चिन्तामग्न बैठा था। वे बोले राजा से—हे राजन्! क्या सोच रहे हो? राजा बोला—'मैं कुछ भी नहीं सोच रहा हूं। परन्तु, ये पञ्चाल मुझे राजा के समान आदर नहीं देते। बालक भी मुझे 'दर्भ-दर्भ' कहकर पुकारते हैं। यही मैं सोचता हूं। इसका उपाय यज्ञक्रतु है। हम आपका यज्ञ करायेंगे। 'ठीक है' राजा ने कहा। उन्होंने यज्ञ कराया तथा राजा को पञ्चालों में यथोचित सम्मान मिला। तब से पञ्चालगण दर्भों को 'कुश-कुश' कहने लगे।

सुदक्षिणः क्षैमिः (२।११३)—क्षेम का पुत्र सुदक्षिण।

पुण्यकेशः यौधेनिः—

पुण्यकेशो यौधेनिरीजे शैव्यो राजा। (२।११३)

अर्थ—शैव्यों के राजा पुण्यकेश यौधेनि (यौधेय या यौधेनि) (युधनि का पुत्र) ने यज्ञ किया।

खण्डिक औद्गारिः केशी दार्भ्यश्च—

खण्डिकश्च हौद्गारिः केशी च दार्भ्यः पञ्चालेषु पतिस्पृधाते। स ह खण्डिकः केशिनम् अभिप्रजिघाय।…तस्य हैते ब्राह्मणा आसुः अहीना आश्वत्थिः, केशी सात्यकामिः, गङ्गिना राहक्षितो लुशाकपिः खार्गलिरिति।…ततो वै सा खण्डिकं निः॰ारयामास ततो वै केशी दार्भ्योऽभवत्। परा खण्डिकः। (२।१२३, १२४)

अर्थ—खण्डिक औद्गारि और केशी दार्भ्य पञ्चालों में प्रतिस्पर्धा थी। खण्डिक ने केशी को राजा के पास भेजा। उसके यहां ये ब्राह्मण थे—अहीना आश्वत्थि, केशी सात्यकामि, गङ्गिना राहक्षित, लुशाकपि खार्गलि।… केशी ने खण्डिक को राज्य से बाहर निकलवा दिया। केशी दार्भ्य की विजय हुई और खण्डिक का पराभव हुआ।

उदरः शाण्डिल्यः—

उदरः शाण्डिल्य इयक्षांचक्रे। अथ हास्य जाया गन्धर्विण्यास।

अर्थ—उदर शाडिल्य (आचार्य) ने यज्ञ करना चाहा। उसकी भार्या गन्धर्विणी (गन्धर्वदेशीय अप्सरा) थी।

किल्विषी इन्द्रः—

इन्द्रं वै भूतानि पर्यचक्षत। त्रिषीर्षाणं त्वाष्ट्रम् अवधीत्। यतीन्

सालावृकेभ्यः प्रादात्। अररुर्मुखान् अवधीद् बृहस्पतेः प्रत्यवधीद् संधां संहिताम् अतीत्य नमुचेरसुरस्य शिरः प्राच्छेत्सीद्, इत्येतेभ्यो देवकिल्विषेभ्यः स हारण्य एव चचारानभ्यवयन् देवान्। स उ ह देवान् उवाच याजयत मेति। नेति होचुः। एता वै त्वया संधा अतीता एतानि देवकिल्विषाणि कृतानि न त्वा याजयिष्याम इति। (२।१३४)

अर्थ—प्राणियों ने इन्द्र के पापों को देखा कि उसने त्वाष्ट्र त्रिशिरा विश्वरूप को मारा, यतियों को सालावृकों के हवाले कर दिया। अररुप्रमुखों को मारा, बृहस्पति का अपकार किया, संधियों को तोड़कर नमुचि असुर का शिर काट डाला, इन महापापों के कारण वह जंगल में ही घूमता रहा। पुनः उसने देवों के पास सन्देश भेजा मेरा यज्ञ करायें, परन्तु उन्होंने मना किया कि हम तुम्हारा यज्ञ नहीं करायेंगे।

नृमेधाः औशिजः (२।१३६)—उशिक का पुत्र नृमेधा।

दिवो गार्ग्यः—

दिवो गार्ग्य ईजे। केशी दार्भ्य ऋजिष्वा वातवत इति। स हर्जिश्वा वातवतोऽवतताम्। उ ह वृषशुष्मेण कुमारेणार्जिश्वेनोत्ताक्षेणोपनिषेदुः। (२।१६०)

अर्थ—दिव गार्ग्य ने यज्ञ किया। केशी दार्भ्य और ऋजिष्वा वातवत द्वारा। ऋजिष्वा वातवत दुःखी हुआ। कुमार वृषशुष्म और ऋजिष्वा पास दुःखी होकर बैठे।

उग्रायुधः मानश्चित्रः, अलन्दः वात्स्यश्च (२।१६५)—

उग्रायुध (मनश्चित्र पुत्र) और अलन्द वात्स्य (आचार्य)।

शुनस्कर्णः—

शुनस्कर्णो ह वै वार्ष्णकः पुण्यकृद् अपापकृद् आस। (२।१६७)

अर्थ—वृष्णिक का पुत्र शुनस्कर्ण पुण्यात्मा और निष्पाप था।

मनुयमौ—वैवस्वतौ—

मनुश्च वै यमश्च वैवस्वतावास्ताम्। सोऽकामयत मनुरस्मै मां लोकाय राजाय देवास्सुवीरन्नमुष्मै यमम् इति। (२।१६९)

अर्थ—मनु और यम-दोनों ही विवस्वान् के पुत्र या वैवस्वत थे। मनु ने इच्छा की देवगण मुझे इस (मनुष्यलोक-भारतवर्ष) का राजा बनायें और यम को उस लोक (पितृलोक-फारस का)।

मरुतः—

मरुतो वा अकामयन्तौजिष्ठा बलिष्ठा भूयिष्ठा वीर्यवत्तमा देवानां स्याम, जयेम स्वर्गलोकम् इति । (२।१७५)

अर्थ—मरुतों ने चाहा कि हम देवों में औजिष्ठ, बलिष्ठ, भूयिष्ठ और वीर्यवत्तम बनें और स्वर्गलोक को जीत लें ।

वरुणस्य राजसूयः—

वरुणो वा अकामयत–सर्वेषां देवानां राज्याय सूयेयेति । स एवं राजसूयं यज्ञम् अपश्यत् । तमाहरत तेनायजत । ततो वै सर्वेषां देवानां राज्यायासूयत । (२।१९६)

अर्थ—वरुण ने इच्छा की कि मैं सभी देवों के लिए राज्य बनाऊं । उसने राजसूय यज्ञ का दर्शन किया, उसको किया, उससे यज्ञ किया और सभी देवों के लिए राज्य बनाया ।

अभिप्रतारण कौरवः साल्वाश्च—

तेन (त्रिष्टोमेन) हैतेनाभिप्रतारणो राजा नेजे । द्विरात्रान्तं हैव चक्रे । तम् उ ह ब्राह्मण उवाच पराकुरवः कुरुक्षेत्रं जेष्यन्ते । प्रजाम् एवाहरत न क्षेत्राणीति । त एते कुरवः कुरुक्षेत्रं पराजित्य चरन्ति, सल्वा एते कुरुक्षेत्रे । (२ २१६)

अर्थ—अभिप्रतारिण राजा ने त्रिष्टोम को (पूरा) नहीं किया, केवल द्विरात्रपर्यन्त किया । अतः ब्राह्मण (पुरोहित) ने कहा—कौरव कुरुक्षेत्र को हार जायेंगे । प्रजा को ले आइये, क्षेत्रों को नहीं । कौरव (या कुरुजन) पराजित होकर कुरुक्षेत्र में ही विचरण करते हैं और सल्व (साल्व) क्षत्रिय (असुर) कुरुक्षेत्र में (शासन करते हैं) ।

सप्तर्षीणां कामना:—

स वसिष्ठोऽकामयत अग्र्या मे मुख्या प्रजा स्याद् इति । ततो वैतस्याग्र्या मुख्या प्रजाभवत् । त एते अप्येतर्हि वसिष्ठाः कुरुष्वाग्र्याः चैव मुख्याश्च मन्यन्ते ।

अपि ह स्म तेन पथा पुरा कुरवो न यान्ति येन भारद्वाजा ययुः । अथ ह स्मोत्क्रोशन्ति भरद्वाजबलम् इति । तस्माद् उ भारद्वाज एवानुज्ञातः सभायां दण्ड्यं प्रहरेत् । (२।२१७)

अथाकामयत जमदग्निर्भूमानं प्रजया पशुभिर्गच्छेयं इति ।...

अथाकामयत गौतमः—श्रद्धानीया मे प्रजा ब्रह्मवर्चसिनी स्याद् इति । (२।२१८)

अथाकामयतात्रिर्भूयिष्ठा म ऋषयः प्रजायाम् आजायेरन् इति।...ततो वै तस्य भूयिष्ठा ऋषयः प्रजायाम् आजायन्त। परस्सहस्रं हास्य प्रजायां मन्त्रकृत आसुः। अपि ह अस्य स्त्रियो मन्त्रकृत आसुः। तस्माद्योऽप्यात्रेयीं हन्ति यं पर्य् एव चक्षते। अथाकामयत विश्वामित्रो—राज्यं मे प्रजा गच्छेद् इति...ततो वै तस्य राज्यं प्रजागच्छत्। अष्टको हास्य प्रजायाम् अभिषिषिचे। (२।२१९)

तदु ह वागस्त्यः पश्चेवानुबुबुध—ऋषयो ह वा इमे प्रजा अस्मिन् लोके विधाय स्वर्गलोकम् अग्मन्निति। सोऽकायताहम् अपि प्रजा अस्मिन् लोके विधाय स्वर्गं लोकम् अनुगच्छेयम् इति।

तस्माद् यद् आगस्त्यो ब्राह्मणान् प्राप्नोति अनुचर इवैव भवति। तस्माद्ध अगस्तयो बहिर्धेव कुरुपञ्चालेभ्यः। (२ २२०)

अर्थ—वशिष्ठ ने इच्छा की कि मेरी सन्तान अग्रणी और मुख्य बने। अतः उनकी प्रजा अग्रणी और मुख्य हुई। वे वशिष्ठ ब्राह्मण कुरुओं में भी अपने को मुख्य और अग्रणी मानते हैं।

जिस मार्ग से भारद्वाजगण जाते थे, उस मार्ग से कुरुजन नहीं जाते। वे चिल्लाते हैं—'भरद्वाजों का अद्भुत बल'। इसलिये भारद्वाज से आज्ञा लेकर सभा में सजा देनी चाहिये।

जमदग्नि ने इच्छा की कि मैं सन्तान और पशुओं से भरपूर रहूं...।

गौतम ऋषि ने कामना की कि मेरी प्रजा श्रद्धावान् और ब्रह्मवर्चसिनी होये।

अत्रि ऋषि ने इच्छा की कि मेरी सन्तान में ऋषि या ऋषियों का बाहुल्य रहे। अतः उनकी प्रजा (सन्तति) में अत्यधिक ऋषिगण उत्पन्न हुये। उनमें (अत्रियों में) सहस्रों मन्त्रकर्त्ता ऋषि थे। जो कोई आत्रेयी को मारता है तो उसे घोर पाप लगता है।

विश्वमित्र ऋषि ने इच्छा की कि मेरी सन्तति को राज्य (भी) प्राप्त हो, अतः उनकी सन्तति ने राज्य को भी प्राप्त किया। (प्रतीकरूप अष्टक का नाम उल्लिखित है)—अष्टक उनकी प्रजा में राज्य पर अभिषिक्त हुआ।

अगस्त्य ने पश्चात् जाना कि उपर्युक्त ऋषिगण इस लोक में प्रजा उत्पन्न करके स्वर्ग चले गये। अतः मैं भी प्रजा करके स्वर्ग जाऊं। इसलिये आगस्त्य जब भी किसी ब्राह्मण (ऋषि) को देखता है, वह उसका अनुचर हो जाता है, आगस्त्य ब्राह्मण कुरुपांचलों से बाहर ही होते हैं।

स्थपतिर्बुधः—

दिव्या वै व्रात्या व्रात्याम् अधावयन् बुधने स्थपतिना। (२।२२१)

अर्थ—दिव्य व्रात्य बुध स्थपति द्वारा व्रात्या में दौड़ाये गये।

परशुहस्ता मरुतः—

अथ हेन्द्रो वृत्रं हनिष्यन् मरुत उवाच परशुवधहस्ता माम् अभितः परिक्रीडत, स वीतभी वृत्रं पाप्मानं हनानि। तम् उ ह मरुतः परशुवधहस्ता अभित परिचिक्रीडुः। स ह वीतभीर्वृत्रं पाप्मानम् अहन्। (२।२३२)

अर्थ—वृत्र को मारते समय इन्द्र ने मरुतों से कहा—'आप लोग परशु धारण करके मेरे दोनों ओर खड़े होकर परिक्रीडा करो, जिससे मैं निर्भय होकर वृत्र को मार सकूं। मरुद्गणों ने तदनुसार परशु हाथ में लेकर इन्द्र के दोनों ओर क्रीडा की और इन्द्र ने निर्भय होकर पापी वृत्र को मार गिराया।

शौनकः कापेयः, अभिप्रतारिणश्च (२।२६८)—

शौनक कपिपुत्र और अभिप्रतारी (कौरव) राजा।

मौण्डिभ उदन्युः यवक्री रैभ्यश्च तयोः उपाख्यानम्—

तेन हैतेन मौण्डिभ उदन्युरीजे उदन्यूनां राजा। तद्ध यवक्री सोमस्तम्बिरास्तावं प्रति निषसाद।...अथ ह यवक्रीः सोमस्तम्बिस्तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यास। स ह स्म माम् अच्छा भ्रूते। या ह स्मैन कामयते, म्रियते ह स्म। यो ह स्मैनं न कामयते म्रियते उ एव। स ह यज्ञवचसो राजस्तम्बायनस्य जायां अच्छोचे। सा हेक्षांचक्रे—यदि वा एनं कामयिष्ये यदि च न, मरिष्यत्येव स्या। हन्तैनं कामयै। ब्राह्मणस्य चित् स्या प्रियं कृत्वा म्रियताद् इति। तं होवाचोद्स्तिष्ठ। अथ त्वाभ्येष्याम इति। तां हालं कुर्वाणां रुदतीं पतिराजगाम। तां होवाच—किम् अलंकुरुषे किं रोदिषीति। सा होवाच मरिष्यसि हीत्यात्मानम् एवैतत् कृपये। यवक्रीर् चेत्याम् अच्छावोचतेति। स होवचाज्यम् अत आहरतेति। तद्ध पवित्राभ्यां उत्पूय जुहवांचकार—

यो नो अद्य आयाति भारद्वाजस्य संस्कृता।
प्रेणीम् अग्निप्रियाम् अग्ने तां मह्यम् आवह इति।

तस्यै ह तद्रूपाम् एवाप्सराम् उत्थापयांचकार। तां होवाचासौ यवक्रीः, तद् इहीति। द्वितीयं ह जुहवांचकार—

गन्धर्वम् उग्रं बलिनम् अश्मघातिनम् अंसलम्।

भारद्वाजस्य हन्तारं विश्वज्योतिषम् आवह। स्वाहा। इति। तस्यै हायःकूटहस्तं गन्धर्वम् ईर्ष्युम् उत्थापयांचकार। तं होवाचासौ ते जाया यवक्रीयम् अध्यगात्। तद् इहीति। तस्यै हायत्या उपतस्तार। सा ह सिष्मिये। स होवाच नाहं--किल ते स्त्रिके स्मेतव्यम्। अथ स्मयस इति। कथा हेति। मरिष्यसि हीति। सा ह प्रगृह्णन्त्युवाच 'न खलु त्वं पुरुषेत्थंपदी स्त्रियं पेचिष इति। लोमशौ हास्या अधस्तात् पादावासतुः। संनिपन्नौ वा हासंनिपन्नौ वासतुः। अथ हेदम् एवायःकूटहस्तो गन्धर्वोऽभि-विचक्रमे। स होवाच। नमस्तेऽस्तु। कास्य प्रायश्चित्तिरिति।

अस्ति वा न वेति होवाच। यद् एव ते किंच पितुः स्वं तस्य सर्वस्य पुरा सूर्यस्योदेतोश्शिरश्छिन्द्धि। सा वै सा नेति। स ह तथा छेत्तुम् उपचक्रमे। ते होचुरद्दपद् यवक्रीर् विबध्नामेति। नेति ह पितो-वाच। देवेषितो वै मे पुत्रः करोति। एष एव तद् वेद यद् अत्र श्रेय इति। तद्ध बधिरो ग्रामे तक्षा प्रतिषिध्यमानं न शुश्राव। तस्य ह घ्नन् परेयाय। स ह को नु नो जनस्तृणेढ़ीति। स एवास्य प्रजघानेत्येके। घ्नन्तम् एवैनं सूर्योऽभ्युदियाय। तस्योदिते स गन्धर्वः प्रजघानेत्येके। यथा ह तु ममार तथा स। शश्वद्धास्य स एव गन्धर्वः प्रजघान।

तद् उ ह मौण्डिभोऽनुबुध्योवाच--संमिनुत मे सदोहविर्धाने, याज-यत मा ब्राह्मणाः। अमृत ह वै स ब्राह्मणोऽनुव्याहारीति। तस्य ह तथा चक्रुः। तद् ह सौमस्तम्बिरनुबुध्याजगाम। स ह तथैवास्तावं प्रतिनिषसाद। तस्य हायं पूषा रयिर् भग इत्येता एव प्रतिपदश्-चक्रुः। स होवाच--न वै किलायं राजन्यबन्धुरिमं यज्ञक्रतुं विदांचकार। न वै किल मेऽनेनेक्तो न पुत्रम् अवधीत्। एतावद् वाव किल त्यस्य पुत्रस्यायुरभूद् इति। तं ह तच्छशाप मरिष्यत्य-हायं राजन्यबन्धुः। परा इमे मौण्डिभा भविष्यन्तीति। त एते पराभूता गोतमा ब्रुवाणाश्चरन्ति। (२।२६९-२७२)

अर्थ - इस यज्ञ के द्वारा मौण्डिभ उदन्यु, जो उदन्यु क्षत्रियों का राजा था, ने यजन किया। यवक्रीः सौमस्तम्बि आस्ताव (स्तुतिरथाय) के पास बैठा था। यवक्रीः सोमस्तम्बि (सोमस्तम्ब भारद्वाजगोत्रीय का पुत्र) तेजस्वी और ब्रह्मचारी (महान् वेदज्ञ) था। वह जिस स्त्री से ठीक बातें करता, वही उसकी कामना करने लग जाती थी और जो उसकी कामना नहीं करती थी, वही मर जाती थी।

यवक्रीः ने यज्ञवचाः (रैभ्यपुत्र) राजस्तम्वायन की पत्नी से बातें की। उसने देखा कि यदि मैं इसकी कामना करूं तो यह मर जायेगा। अतः मैं कामना करती हूं। ब्राह्मण का प्रियकर्म करके मरना अच्छा है। उससे बोली—'खड़े हो जाइये! मैं तुम्हारे पास आऊंगी। उसको शृंगार करती हुई (या परिहास करती हुई) तथा रोती हुई का पति आगया। पति ने कहा—"क्यों अलंकरण कर रही हो और क्यों रो रही हो?" यह (यवक्रीः) मर जायेगा, इसलिये अपने पर ही मुझे दया आरही है। यवक्री ने मुझसे अच्छा वाक् (बातें) की हैं। यज्ञवचा राजस्तम्बायन (रैभ्यपुत्र=वंशज) ने कहा आज्य (घी) लाओ। उनको दो कुशों से पवित्र करके आहुति दो—"जो इस समय प्रेणी (अप्सरा) संस्कृत होकर भारद्वाज (यवक्रीः) की रक्षा कर रही है, हे अग्ने! वह अग्निप्रिया को मेरे लिए लाओ।" अतः जिस (उस आहुति से) एक सुन्दर अप्सरा निकली। उससे बोला—"यह यवक्रीः है, अतः यहां आओ।"

द्वितीय आहुति का होम किया—"हे अग्ने! भयंकर गन्धर्व (राक्षस), जो अतिबली, पत्थर मारनेवाला और मोटा हो, जो भारद्वाज (यवक्रीः) को मार दे, जिसके चारों ओर ज्वाला हो, उसको लाओ। स्वाहा।

ऐसा मन्त्र पढ़ते ही लोहे का मुद्गर हाथ में लिए हुए एक गन्धर्व जो अतिक्रोधी था, आग में से निकला। राजस्तम्वायन यज्ञवचा बोला—हे यवक्रीः! यह तेरी पत्नी है। यह आगई। 'इधर आओ।' उस अप्सरा ने आकर यवक्रीः की सेवा की। उसको बड़ा विस्मय हुआ। वह बोला—'तुम्हें स्त्रियों पर हंसना नहीं चाहिये और तुम हंस रहो हो! यह क्यों? 'यह मरेगी' वह पैर पकड़ती हुई बोली—तुम पुरुष हो। इस प्रकार स्त्रियों को मारो (पकाओ) मत! स्त्री के पैर नीचे से बालयुक्त थे।

वह मुद्गरहस्त गन्धर्व यवक्री के पीछे दौड़ा। यवक्री बोला—नमस्ते! इसका प्रायश्चित्त बताओ। गन्धर्व बोला—'प्रायश्चित्त है या नहीं मुझे नहीं मालूम। तुम्हारे पिता का जितना सर्वस्व है तथा तुम्हारा सूर्योदय से पूर्व नाश करूंगा। वह यवक्रीः को मारने दौड़ा। वे बोले यवक्री दृप्त है। इसको बांधें। उसके पिता ने कहा—'नहीं' देवप्रेरणा से मेरा पुत्र यह कार्य कर रहा था। यह जानता है कि क्या काम करना उचित है। बधिर तक्षा ने गांव में मना करते हुए भी नहीं सुना। वह उसको मारता हुआ दूर भागा। किसने मारा यह ठीक पता चला नहीं, उस बढ़ई ने मारा। ऐसा कुछ (इतिहासकार) कहते हैं। कुछ कहते हैं सूर्योदय के पश्चात् उस गन्धर्व ने मारा। कुछ भी हो यवक्रीः मारा गया और निश्चय ही गन्धर्व ने उसको मारा।

मौण्डिभ ने तथ्य जानकर कहा—'मेरे हविर्धान (शकट) तैयार करो, हे ब्राह्मणो मेरा यज्ञ कराओ। वह ब्राह्मण (यवक्रीः) तो मर गया। तब सोमस्तम्बि (यवक्रीः का पिता) आया, वह आस्ताव के प्रति बैठ गया। वह मन्त्र पढ़ने लगा—'पूषा रयिः भग इत्यादि' वह बोला—'यह नीच राजा यज्ञक्रतु को जानता नहीं। नहीं इसने ही मेरे पुत्र को मारा। मेरे पुत्र की आयु ही इतनी थी। (उसने क्रोध और दुःख में) शाप दिया—यह नीच क्षत्रिय राजा मरेगा। अतः मौण्डिभ पराजित होगा। अतः गौतमगण भी पराभूत इसी प्रकार घूमते हैं।

प्रतिदर्शः वैभावतः—

दत्वश्च ह सौतेमनसो मित्रविच्च दंष्ट्रद्युम्नः। तौ ह प्रतिदर्शस्य वैभावतस्य श्क्वेनस्य राज्ञो ब्रह्मचारिणावासतुः। तयोर्ह मित्रवद् दंष्ट्रद्युम्न आचार्यकर्म चकार। गा ह स्म रक्षति। अथ हेतरोऽध्या-यम् चचार। (२।२२६)

अर्थ—दत्व सौतेमना और मित्रवित् दंष्ट्रद्युम्न—प्रतिदर्श वैभावत श्क्वेन राजा के ब्रह्मचारी थे। उनमें मित्रविद् दंष्ट्रद्युम्न आचार्यकर्म (यज्ञादि) करता था और दत्व सौतेमना गायों की रक्षा करता था।

खण्डिक औद्गारिः, केशी दार्भ्यः उच्चैःश्रवा कौवषेयश्च—

खण्डिकश्च हौद्गारिः, केशी च दार्भ्यः पञ्चालेषु पस्पृधाते। स ह खण्डिकः केशिनम् अभिबभूव। स ह केशी खण्डिकेन निबाढ उच्चैःश्रवसं कौवषेयं जगाम कौरव्यं राजानं मातुर्भ्रातरम्। (२-२७९)

अर्थ—पंचालों में खण्डिक औद्गारि और केशी दार्भ्य परस्पर प्रतिस्पर्धा करते थे। खण्डिक ने केशी को दबोच लिया, (शास्त्रार्थ, धनार्जनादि में), तब खण्डिक द्वारा बाधित केशी उच्चैःश्रवा कौवषेय कौरव्य राजा के पास गया, जो उसका मामा था।

उच्चैःश्रवाः कौवषेयः—

उच्चैःश्रवाः कौवषेय ईजे स्थविरो राजा कौरव्यः। (२।२८०)

अर्थ—अतिवृद्ध उच्चैःश्रवा कौवषेय कौरव्य राजा ने यज्ञ किया।

जमदग्निः औवौं पलितौ (२।२८५)—जमदग्नि और दो और्वपलित।

गोर्ष्णः खालतेयः (२।३०६)—खलति का पुत्र गोर्ष्ण।

राजत्रयी आरुणिश्च—

तेन हैतेन जबालम् आरुणिर्याजयांचकार। स ह त्रयाणां निगृघ्ना-नां पुरोधां जगाम काश्यस्य कौसल्यैक्ष्वाकस्येति। तच्छ्रियं दृष्ट्वा श्वेतकेतुः पित्रा वदते। (२।३२९)

अर्थ—इस यज्ञ को आरुणि ने जबाल (राजा) को कराया, उसने तीन निर्लोभी राजाओं का पौरोहित्य-कर्म किया—काशीराज, कौसल्य ऐक्ष्वाक और (जबाल का)

सात्यहव्यः वासिष्ठः—

अथ ह वै निष्करणीया इति ब्राह्मणाः पूर्विणस्सत्रं निषेदुः। तेषां ह स्म वासिष्ठः सात्यहव्यः आसद्य सोमं भक्षयित्वा प्रधावति।
(२।३५७)

अर्थ—ब्राह्मण शुद्धि करणीय है। ऐसा सोचकर पूर्वीब्राह्मण सत्र करने बैठे। उनमें सत्यहवि का पुत्र सात्यहव्य वाशिष्ठ यज्ञ में बैठकर सोम पीकर चलता बना।

शक्तिर्वासिष्ठः सौदासाश्च (कल्माषपादादयः)—

शक्ति ह वासिष्ठं सौदासा अग्नौ आसुः। स ह आस्यमान उवाचेन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथेति।......अथ वसिष्ठ आजगाम। स होवाच—'किं मे पुत्र पुत्रः प्रास्यमानोऽब्रवीद् इति।' तस्मै होचुः...एतावद् एवास्य व्याहृतम् आसीद्।...
(२।३९२)

अर्थ—शक्ति वाशिष्ठ को सौदासों (ऐक्ष्वाक कल्माषपादादि) ने अग्नि में डाल दिया। जब वह आग में फेंका जारहा था तब उसने कहा—"हे इन्द्र (भगवन्)! हमारे यज्ञ को उसी प्रकार पूरा करो, जिस प्रकार पिता पुत्रों का पोषण करता है।" तदनन्तर वशिष्ठ आगये। उन्होंने पूछा—'आग में फेंके जाते समय मेरे पुत्र ने क्या कहा था—अन्य लोगों ने बताया—'उसने कहा था कि...।

प्रवतिः कौशान्तेयः—

प्रवतिर्ह कौशान्तेयः कुसुरबिन्दस्यौद्दालकेर्ब्रह्मचारी आस! तं होवाच—सूतपुत्र! कति ते पिता संवत्सरस्याहानि अमन्यतेति।
(२।४३१)

अर्थ—प्रवति कौशान्तेय कुसुरविन्द औद्दालकि का ब्रह्मचारी था, औद्दालकि ने उससे पूछा—'सूतपुत्र! तुम्हारा पिता वर्ष में कितने दिन मानता था।

पणयो असुरा सरमा च—

अथ ह वै पणयो नामासुरा देवानां गोरक्षा आसुः। ताभिरह पातास्थुः। त ह रसायां निरुध्य बलेनापिदधुः। ते देवा अलिक्लवम् ऊचुः—'सुपर्णमा नो गा अन्विच्छेति। तथेति। स हानुप्रपपात। ता हान्वाजगाम रसायाम् अन्तर्बलेनापिहिताः। तस्मै

हान्वागताय सर्पिः क्षीरम् आमिक्षाम् दधीत्येतद् उपनिदधुः। तस्य ह सुहित आस। तं होचुस्सुपर्णैष एव ते बलिर्भविष्यत्येतद् अन्नं मा नः प्रवोच इति। स ह पुनरापपात। तं होचुस्सुपर्ण विदो गा इति। का कीर्तिश्चिद् गवाम् इति होवाच। एषैव कीर्तिर्गवाम्। इति तस्य हेन्द्रो गलम् उत्पीडयन्न् उवाच गोष्वेवाहं किल तवोषुषो मुखम् इति। स ह दधिद्रप्सं वामिक्षां वोदास। सोऽयं बभूव योऽयं वसन्ना भूमिकपठुर जायते। तं ह तच्छशाप श्लीलं जाल्म ते जीवनं भूयाद् यो नो गा अवुविद्य ता न प्रवोच इति। तस्य हैतद् जघनार्धे यत् पापिष्ठं तज्जीवनम्।

ते सरमाम् अब्रुवन्। सरमे इमा नस्त्वं गा अन्विच्छेति। तथेति। सा हानुप्रससार। सा ह रसाम् आजगाम। एषा ह वै सा रसा येषार्वाक् समुद्रस्य वापायती। तां होवाच प्लोष्ये त्वा गाधा मे भविष्यसीति। प्लवस्व मेति होवाच न ते गाधा भविष्यामीति। सा हावाच्यकर्णौ प्लोष्यमाणा ससार। सा हेक्षांचक्रे कथं नु मा शुनी प्लवेत हन्तास्यै गाधासानीति। तां होवाच मा मा प्लोष्ठा गाधा ते भविष्यामीति। तथेति। तस्यै ह गाध आस। सा ह गाधेनातिससार। ता हान्वा जगाम रसायाम् अन्तर्बलेनापिहिताः। तस्यै हान्वागतायै तथैव सर्पिः क्षीरम् आमिक्षाम् दधीत्येतद् एवोपानिदधुः। सा होवाच नाहम् एतावद् अप्रिया देवानाम्। गा अविदं यद् वोऽश्नीयाम्। त उ वै देवानाम् स्तेयं कृत्वा चरथैतासां वा अहं गवां पदवीरस्मि। न मा लापयिष्यध्वं नेन्द्रस्य गा उपहरिष्यध्वम् इति। सा हानाशिष्य उवास। सा ह जराय्व् अपास्तं विवेद। तद्ध चखाद। तां हैक उपजगौ 'त्यम् इव वै घ्नती सरमा जारुं खादतीति'। तद् इदम् अप्येतर्हि निवचनं 'त्यम् इव वै घ्नती सरमा जारुं खादतीति'। जरायु ह सा तच्चखाद। सा ह पुनराससार। तां होचुस्सरमेऽविदो गा इति।

अविदम् इति होवाचेमा रसायाम् अन्तर्बलेनापिहिताः। ता यथा मन्यध्वम् एवं आजहीर्षतेति। तां ह तद् इन्द्र उवाच अन्नादीम् अरे ते सरमे प्रजां करोमि या नो गा अन्विविद् इति।

ते हैते विदर्भेषु माचालास्सारमेया अपि ह शार्दूलं मारयन्ति॥

(१।४४०-४४२)

अर्थ—पणि नाम के असुर देवों की गायों के रक्षक (गोपालक) थे। वे गायों को चुरा ले गये। उन्होंने गायों को रसा (नदी) के पार बल के पास छिपा दिया। देवों ने अलिक्लव सुपर्ण से कहा—'हे सुपर्ण! हमारी गायों को ढूंढो। 'ठीक है' ऐसा कहकर वह उड़ा। वह वहां गया जहां बल ने गायों को (गुफा) में छिपा रखा था। उसके आने पर पणियों ने घी, दूध और पनीर तथा दही से उसका स्वागत किया। उसकी भलीभांति आवभगत की। पणियों ने कहा—'हे सुपर्ण! यह तुम्हारी बलि (रिश्वत) है। हमारे विषय में देवों को बताना नहीं और वह पुनः वापस उड़कर आगया। देवों ने पूछा—'सुपर्ण! क्या गायों का पता चला। गायों का क्या ब्यौरा है। गायों का यह वर्णन है। तब इन्द्र ने उसका गला पकड़कर दबाया और सूंघने पर कहा—तुम्हारे मुख से दूध की गन्ध आरही है। उसने दधिद्रप्स की उल्टी करदी। यह सुपर्ण पृथ्वी का कपट है। इन्द्र ने उसको शाप दिया। तेरा जीवन पापमय रहेगा। जालिम! तूने गायों का पता करने पर भी हमें नहीं बताया।

अतः जो भी पापियों का जीवन होता है, वैसा ही तुम्हारा पापिष्ठ जीवन होगा।

तदनन्तर देवों ने सरमा (शुनी) से कहा—हे सरमे! तुम हमारी गायों को खोजो। उसने कहा—'अच्छा' वह दौड़ती चली गई। वह रसा (तल= रसानदी) के पास आई। यही रसा है, जिसके नीचे समुद्र बहता है। वह रसा (नदी) से बोली—'मैं पार करूंगी, कृपया गाधा (कम पानी वाली) हो जाओ। रसा ने कहा—'तैरो! परन्तु मैं गाधा नहीं होऊंगी। सरमा अवाच्यकर्ण (कान डुबाकर) तैरती हुई आगे बढ़ी। रसा ने देखा कि सरमा शुनी कैसे मुझे पार करती है। अतः मैं गाधा (उथली) हो जाऊं। और उससे कहा—तैरो मत गाधा हो जाती हूं। अतः रसा कम पानी वाली होगई। अतः ऐसी नदी को वह शीघ्र चलकर ही पार होगई। वह वहां पहुंची जहां बल (पणिराज) ने देवों की गायें छिपा रखी थी। सरमा को देखते ही पणियों ने उसका घी, दूध, पनीर और दही से स्वागत किया। वह बोली—'मैं देवों का वैसा अप्रिय नहीं करूंगी, (जैसा सुपर्ण ने किया) मुझे गायों का पता चल जायेगा, तभी खाऊंगी। आपने देवों की गायें चुराई हैं और मैं गायों का स्थान खोज रही हूं। मुझे लालच मत दो और इन्द्र की गायें लाकर दो। वह भूखी ही वहां रही। उसने देखा जरायु नीचे फेंका हुआ पड़ा है। उसी को उसने खा लिया। उनमें से एक ने कहा—हे सरमे! हया को मारती सी जारु को खाती हो! तुम जेर को खाती हो। उसने जेर को ही खाया था।

वह पुनः देवों के पास आई। देवों ने उससे पूछा—सरमे ! क्या गायें मिल गईं। वह बोली—'गायों का पता चल गया। गायें बल ने गुहा के अन्दर छिपा रखी हैं। अब आप जैसा उचित समझें वैसे उनको वापस लायें। तब इन्द्र ने कहा - 'हे सरमे ! मैं तेरी प्रजा को अन्नादी (अन्न खाने वाली) करता हूं कि तूने हमारी गायों का पता लगाया है।

(सरमा की प्रजा) माचाल सारमेय (इतने बलिष्ठ होते हैं कि) शार्दूल (सिंह) को भी मार देते हैं।

तृतीयकाण्डे

सुदाः पैजवन ऐक्ष्वाकः, वसिष्ठश्च—

वसिष्ठो वै सुदासः पैजवनस्यैक्ष्वाकस्य राज्ञः पुरोहित आस। स सुदाः पैजवनो वसिष्ठे बडवान् न्यधत्त यथा पुरोहिते निदधेत तथा वसिष्ठस्सनिं प्रयन्न् अब्रवीद् युक्ताश्वं कनीयांसं भ्रातरम् एतेषां नो भार्याणाम् अध्यक्षः स्या इति। स युक्ताश्वो राजबडवानां शिशून्जातान् विपर्यहरत्। ये कल्याणा आसँस्तान् आत्मनेऽकृत। ये पापीयांसस्तान् राजबडवासु। ते तद् अन्वबुध्यन्त—शिशून् ह जातान् विपर्यहार्षीद् इति। तम् अबाधन्त स्तेनोऽयमृषिरिति सोऽकामयत—श्रद्धां विन्देयोप मा ह्वयेरन्न् इति ।यद् उ युक्ताश्वोऽपश्यत् तस्माद् 'यौक्ताश्वम्' इत्याख्यायते। (३।२३-२४)

अर्थ—सुदास पैजवन ऐक्ष्वाक राजा के पुरोहित वसिष्ठ थे। सुदास पैजवन ने वशिष्ठ के पास (पालन-पोषण के लिए) घोड़ियां रख दी जैसे कि पुरोहित के पास रखी जाती हैं। वसिष्ठ को देते हुए राजा सुदास ने कहा—हे वसिष्ठ जी ! यह मेरा छोटा भाई युक्ताश्व इन (भार्या=भरण-पोषण) की घोड़ियों का अध्यक्ष होगा। यह युक्ताश्व राजा बडवाओं के पैदा होनेवाले बच्चों (घोड़ों) को छिपा देता था और जो अच्छे होते थे, उनको अपना बना लेता था तथा जो खराब होते थे उन्हें राजबडवाओं में ही रहने देता था। अन्य राजपुरुषों को इस बात का पता चला कि युक्ताश्व ने उत्पन्न अच्छे घोड़ों को चुरा लिया है। उसको रोका और कहा 'यह युक्ताश्व ऋषि चोर है। उसने इच्छा की कि पुनः विश्वास अर्जित करूं, मुझे लोग चोर कहकर न पुकारें।……युक्ताश्व ने साम का दर्शन किया जिसको 'यौक्ताश्व साम' कहते हैं।

केचन ऋषयः

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः (३।२६)—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र।

कुङ् आङ्गिरसः (३।३२)—कुङ् आङ्गिरस।

पुरुमुद्ग आङ्गिरसः (३।४३)—पुरुमुद्ग आङ्गिरस।

गौतमो राहूगणः (३।४४)—गौतम राहूगण।

शुक्तिराङ्गिरसः (३।५३)—शुक्ति आङ्गिरस।

तिरश्चिराङ्गिरसः (३।५६)—तिरश्ची आङ्गिरस।

दध्यङ्ङाथर्वणः—

दध्यङ् ह वा आथर्वणस्तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यास। तं ह स्म यावन्तोऽसुरा परापश्यन्ति तेह स्म तद् एव विशीर्षाणाश्शेरते। स उ ह स्वर्गं लोकम् उच्चक्राम। स हेन्द्रोऽसुरैरभिबाढ़ उवाच 'क्व नु स दध्यङ् भवाद् इति। तस्मै होचुस्स्वर्गं भगवस्स लोकम् उदक्रामद् इति। स होवाच नैवास्येह किंचित् परिशिष्टम् अस्तीति। तस्म होचुरासीद् एवेदम् अश्वशीर्षं येनाश्विभ्यां देववेदं प्राब्रवीत्। तत्तु न विद्म यत्राभवद् इति। तद् वा अन्विच्छेतेति। तद्धान्वीषुः।

"इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्।
तद् विदच्छर्यहाणावति" इति।

शर्यहाणावद्ध नामैतत् कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरस्कम्। तद् एतद् अनुविद्याजह्रुः। तद् अस्मै प्रायच्छन्। तद्ध स्मासुराणां प्रकाशे धारयति। तं ह स्म यावन्तोऽसुरा परापश्यन्ति ते ह स्म तद् एव विशीर्षाणाश्शेरते। स ह तैरस्थिभिर्नवनवतीर्जघानासुराणाम्। तद् एतद् भ्रातृव्यहा विजितः। इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव। (३।६५)

अर्थ—दध्यङ् आथर्वण ऋषि तेजस्वी और ब्रह्मचारी थे। उनको जब असुर देख लेते थे तो बिना शिर के ही लेट जाते थे—औंधेमुंह गिर पड़ते थे। यथासमय दध्यङ् स्वर्ग पधार गये। असुरों से बाधित इन्द्र बोला—'दध्यङ् को क्या हुआ।' देवगण बोले—'वह स्वर्गलोक सिधार गया।' इन्द्र ने पूछा—'क्या यहां उसका कोई अवशेष है?" वे बोले—"हां अश्वशीर्ष है, जिससे उसने अश्विनीकुमारों को देववेद (मधुविद्या) पढ़ाई थी। परन्तु पता नहीं कि वह कहां है। 'उसको ढूंढ़ो।' तब देवों ने उसे ढूढ़ा। 'अश्वशिरः को ढूढ़ते हुए वह शर्यहाणावति पर्वत पर मिला।

शर्यहाणवत् नाम का सरोवर कुरुक्षेत्र के नीचे अवस्थित है। वह शिर ढूंढ़ कर लाया गया। वह इन्द्र को दिया गया और उसको असुरों के सम्मुख प्रकट किया। उसको देखते ही असुर औंधेमुंह गिर जाते थे। इन्द्र ने दधीचि (अश्वशिरः) की हड्डियों से दस्युओं को निन्यानवें बार मारा।

अभीशुः श्यावाश्विः (३।६८)—श्यावाश्व (आत्रेय) पुत्र अभीशु।

कण्वो: नार्षदः—

कण्वो वै नार्षदोऽसुरस्यासुरस्य दुहितरमविन्दत। तस्यां हास्य त्रिशोकनभाकौ पुत्रौ जज्ञाते। सा हि क्रुद्धा ज्ञातीन् आययौ। तं हासुरा अवलेपेनावलिम्पन्त ऊचुरत्र व्युष्टां विजानीहि यदि ब्राह्मणोऽसीति। तद् उ हाश्विनावनुबुबुधाते। अश्विना उ ह वै देवानां बद्धमुचौ। तौ हेनम् अदृश्यमाणाव् एत्योचतुः यदैव त्वाववीणां समाघ्नता उपर्य् उपर्य् अतिपतावोऽथ व्युष्टा विजानीतात्। ते ह स्मेमे रात्रिम् उत्पतन्युत्तिष्ठत व्यापद् धुर् युङ्ग्ध्वं सीराणीति। न वाव नु व्युच्छतीति ह स्माह। अथ हेमौ वीणां समाघ्नता उपर्य्-उपर्य् अतिपेततुः। स होवाचापहरतेदम् एतर्हि व्यापद् धुर् युङ्ग्ध्वं सीराणीति।

ते होचुर्ब्राह्मणो वा अयम् ऋषिरासीत्। दुरपहरा वा अस्य जाया। हन्तास्मा इमां ददामेति। तां हास्मै ददुः। सा होवाच पुनर् वाव त्वा परोक्षेणैव जिघांसन्ति। अश्रौषं वा एषां संवदमानानाम्। आसन्दीं वै ते हिरण्मयीम् प्रच्छाये निधास्यन्ति। तस्यां मोपवेशीरिति। ते ह प्रययुः। तस्मै ह हिरण्मयीम् आसन्दीं प्रच्छाये निदधुः। तस्यां ह प्रमत्त उपविवेश। सा हैतं तत् शिला भूत्वाभिसंविविष्टे। तद् उ ह त्रिशोकनभाकौ पुत्रावनुबुबुधाते—असुरा ह वै नौ पितरं शिलयाभिसमविवेष्टन्न इति। तावगच्छताम्। सोऽकामयत नभाकः प्रेनान् दम्भयेयम् इति। स एतन्नाभकं सूक्तम् अपश्यत्। तेनेनान् अभ्यष्टौत्। तस्यां पर्यदृश्यत॥

यथा मणौ मणिसूत्रं परिदृश्येतैवम्। अथाकामयत त्रिशोको एनाम् अस्येयम् इति स एतत् सामापश्यत्। तेनैन्सं द्वेधा व्यास्यत्। तस्यै तान्तो निवर्तत। तम् अकामयत जीवेद् इति। तम् आयि जीवेत्येवाभ्यमृशत्। सोऽजीवत्। तस्मै तम इवासीत्। सोऽकामत दिवेवास्मै स्याद् इति। तम् आयि दिवेत्येवाभ्यमृशत्। तस्मै

दिवेवासात्। तम् अकामयत स्वर्गं लोकम् अगमयत् यद् उ त्रिशोकोऽपश्यत्। तस्मात् त्रैशोकम् इत्याख्यायते। (३।७२-७४)

अर्थ—नृषद् के पुत्र कण्व ने अखग असुर (राज) की पुत्री से विवाह किया। उससे उसके त्रिशोक और नभाक-दो पुत्र उत्पन्न हुये। वह क्रुद्ध होकर असुरों के पास आई। उस कण्व को असुरों ने अवलेपन में लेप करके कहा—यदि तुम ब्राह्मण (ऋषि) हो तो व्युष्ट (प्रातःकाल) को जानना। अश्विनी देवों को यह बात ज्ञात हुई। अश्विनी देवों को बन्धन से मुक्त करानेवाले हैं। अश्विनी देवों ने छिपकर कण्व से कहा—जब हम वीणा बजायें और ऊपर-ऊपर ही घूमते (उड़ते रहें), तब तुम प्रातःकाल समझना। असुरगण रात्रि में उड़ते हुये जागते रहे और बोले—'हलों को जोतो।' कण्व ने सोचा—रात्रि समाप्त नहीं हो रही है। तब अश्विनों ने वीणा बजाते हुये ऊपर-ऊपर आये। कण्व बोला—लाओ—ये बैल जोतो। असुर बोले—यह ब्राह्मण ऋषि था (है) इसकी पत्नी का अपहरण करना दुष्कर है। आओ चलें इसका दमन करें। अतः उसकी पत्नी उसे दे दें। अतः कण्व को उसकी पत्नी दे दी। वह बोली—'आपको वे असुर छिपकर (अन्यथा) मारना चाहते हैं। मैंने उनको इस सम्बन्ध में बात करते सुना है। तुम्हारे लिए वे छाया में एक कुर्सी रखेंगे। आप उस पर बैठना मत। असुर चले गये। (परन्तु) कण्व के लिए प्रच्छाया में कुर्सी रख गये। प्रमत्त होकर कण्व उस पर बैठ गया। उस आसन्दी (कुर्सी) ने शिला बनकर उसको लपेट लिया। तब कण्व के पुत्र—त्रिशोक और नभाक ने जाना कि असुरगण ने हमारे पिताजी को शिलाओं द्वारा लपेट दिया है। वे आये—नभाक ने सोचा—'मैं असुरों का दमन करूं। उसने 'नाभकसूक्त' (मन्त्रों) का दर्शन किया। उस सूक्त से असुरों की स्तुति की। कण्व शिला के मध्य दिखलाई पड़ा। जिस प्रकार मणियों में मणिसूत्र दिखाई पड़ता है। अब त्रिशोक ने विचारा इस शिला को दूर फेंक दूं। उसने 'साम' (मन्त्र) का दर्शन किया। इससे शिला के दो टुकड़े होगये और दूर गिर गई। कण्व मूर्च्छित उसमें था। उसने चाहा यह (मेरा पिता कण्व) जीवित हो जाये। उसने 'ओयि' 'जीव' कहकर उसका स्पर्श किया। वह जीवित होगया। कण्व की आँखों के सामने अन्धकार छा गया। त्रिशोक ने चाहा कि इसकी आँखों के सामने प्रकाश हो जाये। उसने 'आयि' 'दिव' कहकर स्पर्श किया। तब प्रकाश होगया। तब उसने चाहा 'मेरा पिता स्वर्ग लोक जाये और उसको स्वर्ग में पहुंचा दिया।...

इस साम का दर्शन त्रिशोक ने किया, अतः इसको "त्रिशोक साम" कहा कहा जाता है।

भरद्वाजस्य पृश्निः (साम) (३।७५)—

भरद्वाज की 'पृश्नि' साम।

श्वित्रः आङ्गिरसः, ऊर्णायुर्गन्धर्वश्च (३।६६)—

श्वित्रआङ्गिरस और ऊर्णायु गन्धर्व।

वत्सप्रिः भालन्दनः—

वत्सप्रियं वै भालन्दनं प्रतिसत्रिणोऽब्राधन्त—स्तेनस्ते पितेति। सोऽकामत। श्रद्धां विन्देतोप मा ह्वयरेन्न् इति।...स एतत् सामापश्यत्।...यद् उ वत्सप्रिर्भालन्दनोऽपश्यत् तस्माद् वात्सप्रय् इत्याख्यायते। (३।८१)

अर्थ—वत्सप्रि भालन्दन के विरोधी सत्रवाले उसको चिढ़ाते थे—"तेरा पिता चोर है।" वत्सप्रि ने चाहा कि पुनः विश्वास (श्रद्धा) अर्जित करूं कि ये लोग मुझे ऐसा न कहें। अतः उसने यह साम देखी (रची) क्योंकि इसका दर्शन वत्सप्रि भालन्दन (भलन्दनपुत्र) के किया था, अतः उनको 'वात्सप्रय् साम' कहते हैं।

सिन्धुक्षित् भारतः—

सिन्धुक्षिद् वै भारतो राजा ज्योग् अपरुद्धश्चरन्। सोऽकामयताव स्व ओकसि गच्छेयम् इति। सिन्धुं हैव चचार। सास्य सिन्धुक्षित्ता। स एतत् सामापश्यत् तेनास्तुत। ततो वै सोऽव स्व ओकस्यगच्छत्। (३।८२)

अर्थ—भरतवंशीय राजा सिन्धुक्षित् चिरकाल तक राज्यच्युत होकर घूमता रहा। (कालान्तर में उसने इच्छा की कि पुनः अपने घर जाऊं। (राज्य प्राप्त करूं)। वह सिन्धु के तट पर ही घूमता रहा। यही उसके 'सिन्धुक्षित्' नाम होने का कारण है। उसने साम का दर्शन किया। उससे देवस्तुति की। तदनन्तर वह अपने घर (राज्य) को वापस गया।

शकलः (शाकलं साम) (३।९३)—शकलदृष्ट "शाकलशाम"।

वृशोपाख्यानम्—

वृशो वै जानस् त्रियारुणस्य त्रैवृष्णस्यैक्ष्वाकस्य राज्ञः पुरोहित आस। अथ ह स्म ततः पुरा राजभ्यः पुरोहिता एव रथान् संगृह्णन्त्यौपद्रष्ट्रायाय नेद् अयं पापं करवद् इति। तौ हाधावयन्तौ ब्राह्मणकुमारं पथि क्रीडन्तं रथचक्रेण विचिच्छिदतुः। इतरो हाधावयन्न् अभिप्रययावापेतर आययाम। स हाधिगत्य न शशाकापायन्तुम्। तं ह तद् एव विचिच्छिदतुः। तस्मिन् होदाते त्वं हन्तासीति त्वं हन्तासीति। स ह वृशोऽभीशून् प्रकीर्यावतिष्ठन्न उवाच—त्वं हन्तासीति। नेति होवाच। यो वै रथं संगृह्णाति

स रथस्येशे। त्वं हन्तासीति। नेति हेतर उवाचाप वां वा अहम् आयांसं, स त्वं अभिप्रामौषीस्त्वम् एव हन्तासीति।

तौ वै पृच्छावहा इति। तौ हेक्ष्वाकून् एवं प्रश्नम् एयतुः। ते हेक्ष्वाकव ऊचुर्—यो वाव रथं संगृह्णाति स रथस्येशे। त्वम् एव हन्तासीसि वृशम् एव पराब्रुवन्। सोऽकामयोद् इत इमां गातुं नाथ विन्देय। सम् अयं कुमारो जीवेद् इति।…

स क्रुद्धो जनम् अगच्छत्। अनृतं मा व्यवोचन्न् इति। तेषां अग्नेर् हरोऽपाक्रामत्। यः सायम् औदनम् अध्यदधुः। प्रातस् सोऽपच्यत। यं प्रातस् सायं सः। ते होचुर्ब्राह्मणं वा अनार्यम् अपाराम। तेषां नोऽग्नेर् हरोऽपाक्रमीत्। एतेनं अनुमन्त्रयामहा इति। तम् अन्वमन्त्रयन्त। स आगच्छद् यथा राज्ञा ब्राह्मणोऽनुमन्त्रयमाण आगच्छेद् एवम्। स आगत्याकामयत पश्येयम् इदम् अग्नेर्हर इति। स एतत् सामापश्यत्। तद् अभ्यगायत तद् अपश्यत— पिशाची वा इयं त्रियरुणास्य जाया। सैनत् कशिपुना छादयित्वा-ध्यास्ते इति। तद् अभिव्याहरत्—

कुमारं माता युवतिस्समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे इति। इत्यैवेनम् इदम् अग्नेर्हर ऊर्ध्वम् उदद्रवत् सर्वां प्रादहत्। ततौ वै ते यथायथम् अग्नेर्हरो व्यहरन्त। यथायथम् एभ्योऽग्निरपचत्।

(३।९४-९६)

अर्थ—वृश ऋषि 'जन' का पुत्र था (अतः उसको वृशोजान कहते थे)। वह ऐक्ष्वाक राजा त्र्यरुण त्रैवृष्ण का पुरोहित था (यह उस प्राचीनकाल की बात है) जब पुरोहित (ब्राह्मण) राजाओं का रथ हांकते थे और औपचारिक रूप से वह पाप (बुरा) कर्म नहीं माना जाता था। उन दोनों (राजा और पुरोहित) ने रथ में बैठकर रथ को दौड़ाते हुए रथ के पहिये से मार्ग में खेलते हुए एक बालक को कुचल दिया (मार दिया)। उनमें एक रथ दौड़ा रहा था और दूसरा डोरियां पकड़ रहा था। वह रथ को नियन्त्रित नहीं कर सका। परस्पर वे एक दूसरे से कहने लगे—'तुम हत्यारे हो' 'तुम हत्यारे हो'। वृश डोरियों को फेंककर एक ओर खड़ा होगया और बोला—'तुम हत्यारे हो'। राजा के कहा—"नहीं मैंने बालक को नहीं मारा है। जो रथ की डोरियां पकड़ता है वही दुर्घटना का उत्तरदायी होता है। अतः बालक की हत्या का दोष तुम्हारा है।" वृश ने कहा—"नहीं, जब मैंने नियन्त्रण करना चाहा तब तुमने रथ को तेज कर दिया था। अतः तुम ही हन्ता हो।"

तब (उन्होंने) निश्चय किया कि चलो (वृद्ध) ऐक्ष्वाकों से पूछें। वे प्रश्न पूछने गये। उन ऐक्ष्वाकों ने कहा—'जो रथ की डोरियां पकड़ता है (हांकता है) वही रथ का जिम्मेदार होता है। अतः हे वृश ! तुम ही हत्या के दोषी हो। वृश ने चाहा इस संकट से कैसे मुक्ति पाऊं, किसकी शरण में जाऊं। जिससे यह कुमार जीवित हो जाये।

वृश क्रुद्ध होकर पौरजनों में गया और बोला—'इक्ष्वाकुओं ने झूठ बोला है और मेरे साथ अन्याय किया है। तदनन्तर नागरिकों की चूल्हों की अग्नि का तेज लुप्त होगया। जो सायं का भोजन पकाने रखा वह सुबह तक पकता था और जो प्रातः का भोजन पकाने रखा वह सायं तक पकता था।' वे बोले—'अनार्य ! दुष्ट ब्राह्मण के पास चलें और अनुमन्त्रणा करें, जिसके कारण अग्नि का तेज (ताप) नष्ट होगया। उन्होंने ब्राह्मण से बातचीत की। वृश उसी प्रकार आये, जिस प्रकार राजा द्वारा निमन्त्रित ब्राह्मण आता है। उसने आते ही चाहा कि अग्नि के तेज को देखूं। उसने साम (मन्त्र) का दर्शन किया, उसको गाया तो देखा कि 'त्र्यरुण की पत्नी ही पिशाची है।' यही अग्नि तेज को कशिपु से ढके हुए है। वृश ने मन्त्र पढ़ा—'कुमार की युवति माता उसको छिपाये हुए है और पिता को नहीं देती। इस मन्त्र के पढ़ते ही अग्नि का तेज ऊपर उठा और सब कुछ जलाने लगा। तदनन्तर अग्नि का तेज (ताप) ग्रहण करने लगे। पूर्ववत् अग्नि भोजन पकाने लगा।

मनुः, ओघश्च—

> मनुर्वा अकामयत बहुः प्रजया पशुभिः प्रजायेय मानवीः प्रजाः सृजेयेति।…अथो आहुस्ता एवास्य प्रजास्सृष्टा रक्षांस्यजिघांसन्निति। सोऽकामयताप रक्षांसि हनीयेति। ओघो वा इमान् लोकान् निरमार्ट्। सोऽमन्यत मनुरिदं वावेदम् अभूद् इति। सोऽकामयतोद् इत इमां गातुं प्रतिष्ठां विन्देयेति। स एते सामनी अपश्यत्। ताभ्याम् अस्तुत। ते एनं हिरण्मय्यौ नावौ भूत्वोपाप्लवेताम्। तयोः प्रत्यतिष्ठत्। ते एनम् उदपारयेताम् ॥ (३।१९८।९९)

अर्थ—मनु (वैवस्वत) ने चाहा कि मैं बहुत प्रजा और पशुओं को उत्पन्न करूं और मानवी (अपनी) प्रजा को बढ़ाऊं। कहा जाता है कि उस प्रजा को राक्षसों ने मारना चाहा। मनु ने इच्छा की राक्षसों को समाप्त करूं। (तब भाग्य से) जलप्लावन ने सभी लोकों (प्रजाओं) को बहा दिया (मार दिया)। मनु ने माना कि यह मेरी इच्छा के कारण ही हुआ है। तदनन्तर उसने चाहा कि

यशस्वी प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। उसने दो मन्त्रों का दर्शन किया। उनसे उसने देवस्तुति की। वे ही दो साम मनु के लिये हिरण्मयी दो नावें बन गईं। (वस्तुतः नाव एक ही थी) और तैरने लगीं। मनु उनमें प्रतिष्ठित हुआ। उन नावों ने उसको जलप्रलय में पार लगाया।

वम्रो वैखानसः (३।९९)—वम्र वैखानस (ऋषि)

कक्षीवान्, प्रियमेध, काक्षीवतो नाकुलिश्च (३।१०१)—कक्षीवान्, प्रियमेध और काक्षीवत नाकुलि ऋषि।

शिशुः (शिशुः आंगिरसः=शैशवम् साम)—शिशु आंगिरस को शैशव साम।

सुकन्योपाख्यानम्—

च्यवनो वै भार्गवो वास्तुपस्य ब्राह्मणम् अवेत्। स पुत्रान् अब्रवीद् वास्तुपस्य वै ब्राह्मणं वेद ! तं मा वास्तौ निधाय त्रिः पुनः प्रयाणं प्रयातेति। तेऽब्रुवन् न शक्ष्याम अक्रोशनवन्तो भविष्यामः। पितरम् अहासिषुरिति। ते वक्ष्यन्तीति। नेति होवाच। तेन वै यूयं वसीयांसो भविष्यथ तेनो एव मम पुनर्युवताया आशा। हित्वैव मा प्रयातेति तान् अज्ञापयत्। तं सरस्वत्यै शैशवे निधाय त्रिः पुनः प्रायणं प्रायन्। सोऽकामयत वास्तौ हीनः पुनर्युवा स्यां-कुमारीं जायां विन्देय। सहस्रेण यजेयेति। स एतत् सामापश्यत्। तेनास्तुत।

तं तुष्टुवानं शर्यातो मानवो ग्रामेणाध्यवास्यत्। तं कुमारा गोपाला अविपाला मृदा शकृत्पिण्डैर् आसपांसुभिः अदिहन्। सोऽसंज्ञां शार्यात्येभ्योऽकरोत्। तन्न माता पुत्रम् जानान् न पुत्रो मातरम्। सोऽब्रवीच्छर्यातो मानवः—'किं इहाभितः किंचिद् अद्राष्ट, यत इदम् इत्थम् अभूद् इति। तस्मै होचुर्नंनु ततोऽन्यत् स्थविर एवायं निष्ठावच्छेते। तम् अद्य कुमारा गोपाला अविपाला मृदा शकृत्पिण्डैर् आसपांसुभिरधिक्षन्। तत इदम् इत्थम् अभूद् इति।

स होवाच च्यवनो वै स भार्गवोऽभूत्। स वास्तुपस्य ब्राह्मणं वेद ! तं नूनं पुत्रा वास्तौ हित्वा प्रायासिषुरिति। तम् आद्रुत्याब्रवीद् ऋषे ! नमस्तेऽस्तु। शार्यात्येभ्यो भगो मृडेति। अथ ह सुकन्या शार्यात्या कल्याण्यास। स होवाच—स वै मे सुकन्या देहीति। नेति होवाच। अन्यद् धनं ब्रूष्वेति। नेति होवाच। वास्तुपस्य वै

ब्राह्मणं वेद । तां म इहोपनिधायासायम् एवाद्य ग्रामेण यातादु इति । ते वै त्वा मन्त्रयित्वा प्रतिब्रुवामेति । ते होचुर्मन्त्रयित्वा—एकं वै द्वे त्रीणि परमम् अनया धनानि लभेमह्यथैनयेह सर्वम् एव लप्स्यामहे । हन्तास्मा इमां ददामेति । तां हास्यै ददुः । तां होचुः–कुमारि ! स्थविरो वा अयं निष्ठावो नालम्—अनुसरणाय । यदैव वयं युनजामहा अथान्वाधावताद् इति । सा हेयं युक्तं ग्रामम् अनुसरिष्यन्त्यनूतस्थौ । स होवाचाहे परिधाव सखायं जीवहायिनम् इति । सा यदीतीयाय यदीति ।

कृष्णसर्प उ हैवेना प्रत्युत्तस्थौ । सा ह तद् एव निर्विद्योपविवेश । अथ हाश्विनौ दर्विहोमिणौ भिषज्यन्ताविदं चेरतुरनपिसोमौ । तौ हैनाम् एत्योचतुः—कुमारि ! स्थविरो वा अयम् असर्वो नालं पतित्वनायावयोर् जायैधीहि । नेति होवाच । यस्मा एव मा पितावदत् तस्य जाया भविष्यामीति । तद्धायम् आजुघोष ! अथ हैमौ प्रेयतुः । स होवाच—कुमारि ! कोन्वेष घोषोऽभूद् इति । पुरुषौ मेमाव् उपगाता यत् कल्याणतमं रूपाणां तेन रूपेणेति । तौ त्वा किम् अवोचताम् इति । कुमारि ! स्थविरो वा अयम् असर्वो नालं पतित्वनायावयोः जायैधीति । सा त्वं किम् अवोच इति । नेति अहम् अवोचम् । यस्मा एव मा पितादात् तस्य जाया भविष्यामीति ।

तद्धास्य प्रियम् आस । स होवाचाश्विनौ वै तौ दर्विहोमिणौ भिषज्यन्ताविदं चरतोऽनपिसोमौ । तौ त्वैतद् एवागत्य श्वो वक्तारौ । तौ त्वं ब्रूताद् । युवं वा असर्वौ स्थो यौ देवौ सन्ताव् असोमपौ स्थः सर्वो वै मम पतिर्यस्सोमप इति । तौ वै त्वा वक्तारौ कस्तस्येशे यद् आवम् अपि सोमपौ स्यावेति । अयं मम पतिरिति ब्रूतात् । तेनो एव मे पुनर्युवताया आशेति । तौ हेनां श्वोभूत एत्यैतद् एवोचतुः । सा होवाच—युवं वा असर्वौ स्थो यौ तौ होचतुः कस्तस्येशे यद् आवम् अपि सोमपौ स्यावेति । अयं मम पतिरति होवाच ।

तं होचतुः ऋषेऽपि सोमपौ नौ भगवः कुर्व् इति । तथेति होवाच । तौ वै नु मा युवं पुनर्युवानं कुरुतम् इति । तं ह सरस्वत्यै शैशवम् अभ्यवचकृषतुः । स होवाच—कुमारि ! सर्वे वै सदृशा उदेष्या-

मोऽनेन मा लक्ष्मकेण जानीतात् इति । ते ह सर्व एव सदृशा उदेयुः यत् कल्याणतमं रूपाणां तेन रूपेण । तं हेयं ज्ञात्वावविभिदे—'अयं मम पतिरिति ।' तं होचतुः, ऋषे ! अकुर्वावं तव तं कामं यस्तव कामोऽभूत् । पुनर्युर्वाभूः । आवं त्वं तथानुशाधि । यद् आवम् अपि सौमपौ स्यावेति ।

स होवाच—देवा वा एते कुरुक्षेत्रेऽपशीर्ष्णा यज्ञेन यजमाना आसते । ते तं कामं नाप्नुवन्ति यो यज्ञे कामः । तद् यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत । तद् यद् दध्यङ् आथर्वणोऽन्वपश्यत् । तं तद् गच्छतम् । स वां तद् अनुवक्ष्यति । ततोऽपि सोमपौ भविष्यथ इति । तद् यत् तद् यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यतेति सौऽसाव् आदित्यः । स उ एव प्रवर्ग्यः तौ ह दध्यञ्चम् आवर्थणम् आजग्मतुः । तं होचतुः; ऋषे ! उप त्वा यावेति । कस्मै कामायेति । एतद् यज्ञस्य शिरोऽनुवक्ष्यावहा इति । नेति होवाच । इन्द्रो वै तद् अभ्यपश्यत् । स माऽब्रवीद्—यदि वा इदम् अन्यस्मै ब्रूयाश्शिरस्ते छिन्द्याम् इति । तस्माद् बिभेमीति । स वै नाव् अनेनाश्वस्य शीर्ष्णानुब्रूहीति । तथेति होवाच । स वै नु वां संवदमानौ पश्यानीति । तौ ह इमौ स्वं शिरो निधामेदम् अश्वस्य शिरः प्रतिसंधाय तेन ह स्म संवदमानाव् आसाते । साम गायमानाव् ऋचं यजुर्भि व्याहरन्तौ । ताभ्यां ह श्रद्धाय तेनाश्वस्य शीर्ष्णानूवाच ।

तद् इन्द्रोऽन्वबुध्यत—प्र हाभ्याम् अवोचद् इति । तस्यानुद्रतस्य शिरः प्राच्छिनत् । इदम् अश्वशीर्षम् । अथ यद् अस्य स्वं शिर आसीत् तद् इमौ मनीषिणौ प्रतिसमधताम् । तौ ह देवान् आजग्मतुर् अपशीर्ष्णा—यज्ञेन यजमानान् । तान् होचतुर् अपशीर्ष्णा वै यज्ञेन यजमाना आध्वे । तं तं कामं नाप्नुथ यो यज्ञे काम इति । कस्तद् यज्ञस्य शिरो वेदेति । आवम् इति । तद् वै प्रतिसंधतम् इति । ताभ्यां वै नौ गृहं गृह्णीतेति । ताभ्याम् एतम् आश्विनं ग्रहम् अगृह्णन् ।...

अथ ह च्यवनो भार्गवः पुनर्युवा भूत्वा गच्छच्छर्यातं मानवम् । तं प्राच्यां स्थल्याम् अयाजयत् । तद् अस्मै सहस्रम् अददात् । तेनायजत । (३।१२०-१२८)

अर्थ—च्यवनभार्गव ऋषि वास्तुवेद रहस्य को जानते थे । उन्होंने अपने पुत्रों से कहा—'मैं वास्तुवेद को जानता हूं ।' तुम मुझे घर में रखकर तीन बार प्रयाण

करना। वे पुत्र बोले—नहीं हम यात्रा पर नहीं जा सकते। अतः उन्होंने पिता को छोड़ दिया। तथापि वे बोले—हमें वास्तुविद्या बताइये। पिता ने कहा—नहीं, इससे तुम धनवान् हो जाओगे। मैं पुनः यौवन की आशा रखता हूं! वे पुत्र च्यवन को सरस्वती के एक सरोवर के किनारे छोड़कर चले गये। च्यवन ने चाहा—घर बार से मैं हीन हूं। मैं पुनः कुमारी पत्नी को प्राप्त करूं और जवान हो जाऊं। तब सहस्रों गायों से यज्ञ करूं। उसने साम का दर्शन किया और देवों की स्तुति की।

च्यवन जब स्तुति कर रहा था, तब शर्यात मानव अपने ग्राम (कुटुम्ब) के साथ वहीं था। उसके कुमारों, गोपालों और अविपालों ने मिट्टी के ढेलों, गोबर और धूल को च्यवन के शरीर पर फेंका। च्यवन ने शर्यातों को निःसंज्ञ (पागल) बना दिया। (वे ऐसा व्यवहार करने लगे कि) न तो माता पुत्र को कुछ समझती और न पुत्र माता को। वह शर्यात मानव बोला—'आप लोगों ने इधर किसी को देखा है। जिससे यह अनाचार या अनहोनी हो रही है।' ग्रामीण बोले—'एक वृद्ध यहां निश्चल पड़ा है, इसके अतिरिक्त हमने कुछ नहीं देखा। आज कुमारों, गोपालों और अविपालों ने मिट्टी शकृत्पिण्ड और धूल से उसे ढक दिया। इसके बाद ही यह हुआ।

(शर्यात समझ गया) कि वह च्यवन भार्गव है। वह वास्तुविद्या को जानता है। उसके पुत्र उसको घर छोड़कर चले गये। शर्यात दौड़कर च्यवन के पास आकर बोला—'ऋषि जी को मेरा नमस्कार। आप शर्यातों का कल्याण कीजिये। शर्यात की पुत्री सुकन्या अतीव रूपवती थी। च्यवन ने कहा—'मुझे यह कन्या दे दो।' शर्यात ने उत्तर दिया—'नहीं और कोई धन मांग लो।' 'नहीं' मैं वास्तुवेद जानता हूं। इस कन्या को यहां छोड़कर ग्राम (कुटुम्ब) जाओ। उनसे मन्त्रणा करके उत्तर देना। उन्होंने परस्पर सलाह की—कि हम इस कन्या से एक, दो, तीन और अपरिमित धनधान्य प्राप्त करेंगे, अतः इसे ही ऋषि को दे दें। अतः सुकन्या च्यवन को दे दी। उससे बोले—हे राजकुमारी! यह ऋषि चलने फिरने में असमर्थ है। अतः हम तुमको नियुक्त करते हैं और इसको साथ ले जाना। अतः सुकन्या च्यवन को साथ लेकर ग्राम के साथ चल दी। च्यवन बोला—दौड़ो! मैं वृद्ध हूं। अतः सुकन्या च्यवन को (पीठ पर बिठाकर) ले जाती थी।

सुकन्या कृष्णसर्प के समान खड़ी होगई। वह च्यवन को बिठाकर बैठ गई। दर्वि से होम करने वाले दोनों अश्विनीकुमार चिकित्सा करते हुए वहां घूम रहे थे। वे सोम पीने के अधिकारी नहीं थे। वे सुकन्या के पास आकर बोले—

'राजकुमारी ! तुम्हारा पति बूढ़ा है, इसके पास कुछ भी नहीं है, यह तुम्हारा पालन नहीं कर सकता । अतः तुम हमारी पत्नी बन जाओ । सुकन्या ने कहा— 'नहीं' जिसको मेरे पिता ने मुझे दिया है, मैं उसी की पत्नी रहूंगी । तब बड़ा शोर हुआ । वे दोनों चले गये । तब च्यवन ने कहा—'कुमारी ! यह शोर किस बात का था । दो पुरुष मेरे पास आये थे, उनका रूप बहुत सुन्दर था ।' उन्होंने तुमसे क्या कहा—च्यवन ने पूछा । सुकन्या ने बताया—'हे कुमारी ! यह तुम्हारा पति बूढ़ा और असमर्थ है । यह तुम्हारा पति बनने योग्य नहीं है । अतः हमारी पत्नी बन जाओ ऐसा उन्होंने मुझसे कहा ।' च्यवन ने पूछा–'तुम क्या बोली ।' मैंने कहा–'नहीं, मेरे पिता ने जिसको दिया है मैं उसकी पत्नी रहूंगी ।' सुकन्या च्यवन को बहुत प्रिय होगई । ऋषि ने कहा—'अश्विनौ दर्विहोमी हैं । वैद्य हैं, परन्तु सोमाधिकारी नहीं हैं । वे जब कल तुम्हारे पास आयेंगे, तब उनसे कहना— 'आप देव होकर भी सोमपान के अधिकारी नहीं । मेरा पति सोमप है, अतः तुम सर्वगुणसम्पन्न नहीं हो । वे तुमको बतायेंगे कि 'हम सोमप कैसे हो सकेंगे ?' तब तुम कहना कि 'मेरे पति को युवक बना दो, यही इनकी इच्छा है, वे तुम्हें सोमप बना देंगे ।'

अश्विनीकुमार प्रातः आये और बोले । तब सुकन्या ने कहा—'आप दोनों सर्वगुणसम्पन्न नहीं हैं ।' तब वे बोले—'हम सोमप कैसे हो सकते हैं । वह बोली—'ये मेरे पति (यह काम कर सकते हैं) वे बोले—'ऋषे ! हे भगवन् ! हमको सोमप बनाइये ।' ऋषि ने कहा—'अच्छा ।' ऋषि ने कहा—'आप भी मुझे पुनः जवान कर दें । अश्विनीकुमारों ने च्यवन को सारस्वत सरोवर में नहलाया । वह बोला—हे कुमारी ! हम तीनों ही एक सदृश रूप के तालाब से निकलेंगे । मुझको इस चिन्ह से पहचान लेना (कि मैं च्यवन) हूं । वे तीनों ही सदृश होकर सरोवर से निकले —'तीनों का ही रूप समान रूप से अति सुन्दर था । सुकन्या ने तथाकथित लक्षण (चिन्ह) से उनमें भेद किया और पहिचाना— यह मेरे पति हैं ।'

अश्विनीकुमार बोले—'हे ऋषे ! आपकी जो इच्छा थी, वह हमने पूरी कर दी । आप पूरे युवक होगये । हमारा काम भी करो, जिससे हम यज्ञों में सोमपान के अधिकारी हो जायें । ऋषि ने बताया—'देवगण कुरुक्षेत्र में बिना शिर का यज्ञ कर रहे हैं । वे उस उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं, जिसके हेतु वे यज्ञ कर रहे हैं । यज्ञ का शिर कटा हुआ है । यह तथ्य दध्यङ् आथर्वण ने जान लिया है । तुम दोनों दध्यङ् के पास जाओ । वह आपको वह विद्या सिखायेगा, जिससे आप सोमपान कर सकोगे । यज्ञ का जो शिर काटा गया है, वह आदित्य है, वही प्रवर्ग्य

है। अश्विनीकुमार दध्यङ् आथर्वण के पास आये। उससे बोले—'ऋषे! हम आपके पास आये हैं।' ऋषि ने पूछा—'किस इच्छा से आये हो?' आप हमें यज्ञशिरः बतायें। ऋषि बोले 'नहीं' क्योंकि इन्द्र यह जानता है, उसने मुझसे कहा है—'यदि यह विद्या तुम और किसी को बताओगे तो मैं तुम्हारा शिर काट दूंगा। अतः मैं डरता हूं।' अश्विनौ बोले—'आप हमें यह विद्या अश्वशिर द्वारा बतायें।' ऋषि ने कहा—'अच्छा', परन्तु ध्यान रहे इन्द्र हमें बातचीत करता देखेगा।' अश्विनौ ने अश्व शिर दध्यङ् का शिर काटकर वहां लगा दिया और उसी से उनको उपदेश दिया। उसी से ऋषि ने साम गाते हुए ऋचा और यजु बोले। उनकी श्रद्धा के कारण ऋषि ने अश्वशिर से उपदेश दिया।

इन्द्र को पता चल गया कि दध्यङ् ने अश्विनौ को विद्या दी है। उसने दौड़कर दध्यङ् का (अश्व) शिर काट दिया। तदनन्तर मनीषी अश्विनीकुमारों ने ऋषि का अपना शिर लगा दिया। तब अश्विनी देवों के पास गये जो शिरहीन यज्ञ कर रहे थे। वे बोले—'हे देवो! आप बिना शिर का यज्ञ कर रहे हो। तुम्हारी वह इच्छा पूरी नहीं होगी, जिसके लिये यज्ञ कर रहे हो।

'यज्ञ का शिर कौन जानता है?' देवों ने पूछा—'हम दोनों जानते हैं।' उन्होंने प्रतिसंधान किया। उनके द्वारा भी सोमपान (अश्विनग्रह) ग्रहण किया गया और देवों ने भी वह ग्रहण किया।

अब च्यवनभार्गव युवा होकर शर्यात मानव के पास गया। उसने शर्यात का यज्ञ प्राच्यस्थली में कराया। शर्यात ने च्यवन को सहस्रदक्षिणा दान दी। उससे भी च्यवन ने यज्ञ किया।

तरन्तपुरुमीढ़ौ—

अथ ह तरन्तपुरुमीढ़ौ वैतदश्वी।

अर्थ—तरन्त और पुरुमीढ़ वितदश्व के पुत्र थे।

वरुणः—

वरुणो वै राजा सधमादम् इवान्याभिर्देवताभिरासीत्। सोऽकामयत सर्वेषां देवानां राज्याय सूयेयेति। स प्रजापतौ शतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यम् अवसत्। तस्मा एतत् सामाब्रवीद्—एतद् वै मे राज्यं रूपम्। गच्छ राजानं त्वा देवाः करिष्यन्ति इति। स देवान् अभ्यैत्। तमायान्तं देवाः प्रत्यावारोहन्। तान् अब्रवीन्मा मा प्रत्यवरुक्षत। भ्रातरो वै मम यूयं स्थ। यादृशा वै यूयं स्थ तादृङ् अहम् अस्मि इति। नेत्यब्रुवन्। यद् वै नः पितुः प्रजापते रूपं तत् त्वयि पश्याम इति। तं प्रत्येवावारोहन्। तस्मा एतां राजासन्दीं

न्यदधुः। तस्याम् एवम् अभ्यषिञ्चन्त—वसवो राज्याय, रुद्रा वैराज्याय आदित्या स्वाराज्याय, विश्वेदेवा साम्राज्याय, मरुतः सार्ववश्याय, साध्याश्चाप्त्याश्च पारमेष्ठ्याय। (३।१५२)

अर्थ—राजा वरुण अन्य देवताओं के समान ही थे। वरुण ने कामना की कि सभी देवों का राज्य बने। वह प्रजापति (कश्यप के आश्रम) में के पास सौ वर्ष तक ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययन) किया। प्रजापति ने वरुण को यह साम बताई—'यही मेरे राज्य का रूप है, जाओ, सभी देवगण तुमको राजा बनायेंगे। वह देवों के पास गया। उसको आते देख देवता अपने आसनों से उतरने लगे। वरुण ने उनसे कहा—उतरो मत! आप मेरे भ्राता ही हैं। जिस प्रकार के आप हैं उसी प्रकार मैं हूं। देवों ने कहा—'नहीं महाराज! हम आपमें अपने पिता प्रजापति (कश्यप) का रूप देखते हैं (क्योंकि आप आयु और विद्या में हमसे बड़े हैं)। अतः वे देवगण सिंहासनों से उतर आये। उसको ही राज्यसिंहासन दिया और राजसिंहासन पर बैठाकर उसका राज्याभिषेक किया। वसुओं ने राज्य के लिये, रुद्रों ने वैराज्य (गणराज्य) के लिये, आदित्यों ने स्वराज्य के लिये, विश्वेदेवों ने साम्राज्य के लिये, मरुतों ने सर्ववश्यता के लिये और साध्य तथा आप्त्यों ने पारमेष्ठ्य (माहाराज्य) के लिये—वरुण का अभिषेक किया।

अभिप्रतारणः—

अभिप्रतारणो जीर्णश्शयानः। पुत्रा हास्य दायं बिभेजिरे।
(३।१५६)

अर्थ—अभिप्रतारण (राजा) बूढ़ा था, वह (बिस्तर पर) लेटा रहता था। तब उसके पुत्रों ने सम्पत्ति का बंटवारा किया।

विदन्वान् भार्गवः—

शर्यातो वै मानवः प्राच्यां स्थलयाम् अयजत। ते ह ऋषयो याजयांचक्रुः। तद् उभये देवमनुष्यास्सोमं समपिबन्। तद् उभयैर्देवैर्मनुष्यैरुत्तमं सोमम् संपीतः। तस्मिश्च्यवनो भार्गवोऽश्विभ्यां ग्रहं अग्रह्णात्। तम् इन्द्रश्चमसम् अवागृह्णात्—'कोऽयम् अज्ञातश्चमसः प्रचरतीति। तस्य विदन्वान् भार्गवः प्रत्यहन्, कस्तं चमसं मीमांसितुम् अर्हति यं वयं प्रयच्छेमेति।

ते देवा अक्रुध्यन्नक्रुध्यन्नृषयः। ते नवनवतयो मरुत ऋष्टिहस्ता अतिष्ठन्न् इदानीम् इदं पर्याकरिष्यामोऽथेदं सर्वं मर्दिष्यत इति। अथ ह ऋषयो मदम् आसुरम् उदाह्वयन्। स उत्तृन्दन्न् एवान्तरिक्षे शीर्ष्णाभ्यधात्। सा महती समद् आसीत्। सोऽग्निर् इन्द्रम्

अब्रवीत्—'व्येतु ते क्रोधः श्रेयांसो वा एतेऽस्मत्। यदि वा एतान् क्रोधयिष्यति नेह किंचन परिशेक्षते। एतेभ्यो वै वयं जाता स्म इति। स्याग्निरेव क्रोधं व्यनयत्। स इन्द्रो वीतक्रोधः सह देवैः प्राद्रवत्।··· स एतानि विदन्वान् भार्गवः सामान्यपश्यत्।

अथ ह मद आसुरो बिभयांचकार। एष मद आसुरस्सुरायां विनिहितः। (३।१६०-१६१)

अर्थ – शर्यात मानव ने प्राच्यस्थली में यज्ञ का आयोजन किया। ऋषियों ने यज्ञ किया। वहां देव और मनुष्य दोनों ने सोमपान किया। देवों और मनुष्यों दोनों ने उत्तम सोमपान किया। उस यज्ञ में च्यवन भार्गव ने अश्विनीकुमारों को सोमपान का अधिकारी बनाया। तब इन्द्र ने चमस छुड़ाकर कहा—'यह कौन अज्ञात (व्यक्ति) चमसों का प्रचरण कर रहा है। विदन्वान् भार्गव ने इन्द्र पर प्रत्याक्रमण किया—चमस का विवेचन करने वाले तुम कौन होते हो। जब हमने यह दिया है।

देव और ऋषि परस्पर क्रोध में भर गये। उन्नचास मरुत्गण बछियां हाथों में लेकर खड़े होगये और बोले—'हम सबको ठीक करते हैं, हम सबका मर्दन करेंगे। तब ऋषियों ने 'मद' (नशे) रूपी असुर का आह्वान किया। वह सबको मारता हुआ अन्तरिक्ष में शिर उठाये था। सब बड़े उन्मत्त थे। अग्नि (बृहस्पति) ने इन्द्र से कहा—'क्रोध को दूर करो। ये ऋषिगण हम (देवों) से श्रेष्ठतर हैं। यदि आप क्रोध करेंगे तो (ऋषियों के कोप से) यहां कुछ भी नहीं बचेगा। इन्हीं ऋषियों से हम उत्पन्न हुए हैं। अतः अग्नि ने क्रोध को दूर किया। इन्द्र शान्त होकर वहां से चम्पत होगया।··· विदन्वान् भार्गव ने इन सामों का दर्शन किया।···आसुर मद (नशा) डर गया। यह मद आसुर शराब में निहित होता है।

असमातो राथप्रौष्ठः—

असमातिं राथप्रौष्ठं गौपायना अभ्यदासन्! ते खाण्डवे सत्रम् आसत। अथ हासमातौ राथप्रौष्ठे किराताकुली ऊषतुरसुमायौ। तौ ह स्माग्नाव् अधिधायौदनं पचतोऽग्नौ मांसम्। वपन्तो ह स्म पुरस्ताद् इतो लुनन्तो ह स्म पश्चाद् अनुयन्ति तावन् मायिनौ ह आसतुः। तद् वै तच्छश्वद् इक्ष्वाकवोऽसुरा अशनम् जग्ध्वा पराभूताः। तम् असमातिं राथप्रौष्ठं गौपायनानाम् आहुतयोऽभ्यपतन्। सोऽब्रवीद् इमौ किलाताकुली इमौ वै मा गौपायनानाम् आहुतयोऽभिपतन्ति।·· तौ परेत्य सुबन्धोर्गौपायनस्य स्थपतः प्रमत्तस्यासुम्

आहृत्यान्तपरिधिं न्यधत्ताम्। परिधिमन्तो ह तर्ह्यग्नय आसुः। ततः सुबन्धाव् अप्तबुद्धेऽन्वबुध्यन्ताहाष्टां वा अस्यासुम् असुरमायाव् इति। तेऽब्रुवन् एतं सुबन्धोरसुम् अन्वयामेति। ते खाण्डवात् प्रायन्…।

ते सुबन्धुनावतन्तुमता सुबन्धुतीर्थेनैव ह् वृणिनीं प्राञ्चस्तीर्त्वागच्छन्त असमातिं राथप्रौष्ठम्।…

तान् अब्रवीत् किंकामा आगातेति। सुबन्धोरेवासुं पुनर्वनुम इत्यब्रुवन्। एषोऽन्तपरिधीत्यब्रवीत्। तम् आददध्वम् इति। तम् निराह्वयन्—

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत्।
इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धो एहि निरेहि॥ इति।

तं सुबन्धुम् असुं पुनः प्राविशत्। स यथापुरम् अभवत्। तद् आभ्यां किराताकुलीभ्याम् आचक्षतेमे वा ऋषयोऽसुं निराह्वयन् इति। ताव् अधारयमाणौ निराद्रवताम्। तयोरिमान् एव पराख्याय सर्वा माया अपाक्रमन्। तयोर्ह यत् पापिष्ठतमं रूपाणां तद् रूपम् आस।
अथ ह ततः पुरा मायया तदर्शनीयौ आसतुः। तयोरन्यतरोऽग्निं प्रप्लवमाणोऽब्रवीद्–इत्थं वै स करोति सत्यम्। यस्सत्यम् अनृतेन जिघांसतीति। अथेत्थं गा न्यकृन्तन्। तौ तद् एवाम्रियेताम्॥

(३।१६८।१७०)

अर्थ—गोपयन के पुत्र सुबन्धु (आदि ऋषि) असमाति राथप्रौष्ठ (ऐक्ष्वाक) के यहां थे। वे खाण्डवप्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ = दिल्ली) में यज्ञ कर रहे थे। इसी समय किलात आकुली नाम के दो असुर पुरोहित असमाति राथप्रौष्ठ के घर ठहरे हुए थे। वे असुर महामायावी थे। वे बिना अग्नि के भोजन (ओदन) और मांस पकाते थे। वपन करने से पूर्व ही (पशु) को काट देते और पश्चात् उसके पीछे चले जाते थे। इस प्रकार सदा ही ऐक्ष्वाक राजाओं का भोजन खाकर असुर-किरात आकुली उन्हें परास्त करते रहते थे। इधर-गौपायन ऋषियों की आहुतियां पतित होगईं। दोनों असुरों ने सोये हुए प्रमत्त (गैरहोश) सुबन्धु के प्राणों को निकाल लिया और परिधि (यज्ञस्थल) में रख दिया। अग्नियां परिधियुक्त थीं। सुबन्धु के गैरहोश (मूर्च्छित) होने पर उन असुर मायावियों ने उसके प्राण खींच लिये। वे (गौपायन) बोले—'हम सुबन्धु के प्राणों का अनुसरण करें। वे खाण्डव गये। प्राणहीन सुबन्धु का अनुसरण करते हुए सुबन्धु तीर्थ होते हुए ध्वनि का अनुसरण

करते हुए पूर्व में असमाति के पास पहुंचे।' राजा बोला—'आप किस इच्छा से आये हो।' हम सुबन्धु के प्राणों की वापसी चाहते हैं। 'यह अन्तपरिधि में है।' राजा ने कहा। 'वह हमें दे दो।' गौपायनों ने कहा। उसको बुलाया – 'यह माता है, यह पिता है, यह जीवप्राण आया। यह तुम्हारा प्रसर्पण (प्राण निकलता है) हे सुबन्धो आओ, पुनः आओ।''

सुबन्धु का प्राण पुनः उसके शरीर में प्रवेश कर गया। वह पूर्ववत् स्वस्थ होगया। सुबन्धु ने बताया कि इन किराताकुली असुरों ने मेरे प्राण ले लिए थे। और इन ऋषियों ने मेरे प्राण वापस बुलाये। वे अघार करते हुए किराताकुली भाग गये। उनके जाते ही उनकी सब माया लुप्त होगई। उनका घोर भयंकर पापी रूप था। वे मायाबल से रूपवान् (सुन्दर) बने हुए थे। उनमें से एक अग्नि में तैरता हुआ बोला— 'यह जो (माया) कर रहा था, यह सत्य है। वह सत्य को अनृत द्वारा मारना चाहता था। इस प्रकार गायें काटी। इस प्रकार वे असुर (अपनी माया से ही) मर गये।

विश्वामित्रः—भरताः, महावृषाश्च—

विश्वामित्रो वै भरतानाम् अनस्वत्या महावृषान् अयात्। तद्ध गंगायै वा यमुनायै वा बृहत् प्रतिकूलम् आस। ते होचुर्महावृषाः—कौश्वित् तावेतहर्य अनड्वाहौ याविदम् इयद् बृहत् उद्वहेताम् इति। स होवाच विश्वामित्रस्तौ न्वै मम रोहिताविति। रोहितौ हास्यानड्वाहौ आसतुः। ते महावृषास्ते वा अंशम् अवहरावहे। यदि तवैतद् अनडवाहाव् उद्वहातो वस्न्य एव त्वं अनांसिपूरयासै यद्यु नोद्वहातो वस्न्या उ वयं त्वां जयेमेति। तथेति। ते हांशम् अवजह्रिरे। (३।१८३)

अर्थ—विश्वामित्र ऋषि भरतों की बैलगाड़ियों के साथ महावृष देश में गये। वहां मार्ग में गंगा और यमुना के बड़े कछार (किनारे) थे। महावृष बोले—'कौन से बैल इतने भारी वजन को ढोयेंगे।' विश्वामित्र ने कहा—'मेरे रोहित (लाल) बैल हैं। उनके रोहित बैल थे। वे महावृषों के भार को ढोयेंगे। यदि तुम्हारे बैल बोझ ढो सकते हैं तो छकड़ों को भर लो। यदि वे नहीं ढो पायेंगे तो हम इस सम्पत्ति को जीत जायेंगे। 'ठीक है', विश्वामित्र ने कहा। उन्होंने अंश को जीत लिया।

वैखानसाः—

वैखानसा इत्यृषिका इन्द्रस्य प्रिया आसुः। तान् ह रहस्युः मारिम्लवो मारयांचकार। (३।१९०)

अर्थ—वैखानस नाम के ऋषिक (छोटे ऋषि) इन्द्र के प्रिय थे। उनको रहस्युः मारिम्लव ने मार दिया⋯॥

त्रेधा भरतराष्ट्रम्—

त्रेधा भरतेषु राष्ट्रम् आसीत्। वैतहव्येषु तृतीयम् मित्रवत्सु तृतीयम्, कृतवेशेषु तृतीयम्। सोऽकामयत कृतवेशो ह त्व् इमे द्वे राष्ट्रे एकधा राष्ट्रं स्याद् इति। स एतद् द्विनिधनं सामापश्यत्। तेनेमे द्वे राष्ट्रे एकधाराष्ट्रम् अभवत्।

अर्थ—भरतों का राष्ट्र तीन भागों में विभक्त था। एक भाग वीतहव्य, दूसरा मित्रवान् और तीसरा कृतवेश। कृतवेश ने चाहा—'दो राष्ट्र एक हो जायें। उसने द्विनिधन साम का दर्शन किया, तदनन्तर दो राष्ट्र एक होगये।

संकृतिगौरवीतिः (जन्म)—

शाकल्यास्तरसपुरोडाशास्सत्रम् आसत। स गौरवीतिश्शाकल्यो मृगम् अहन्। तं तार्क्ष्यस्सुपर्ण उपरिष्टाद् अभ्यवापतत् तम् अब्रवीद् ऋषे! मा मेऽस्थः। यत्कामोऽसि तं ते कामं समर्धयिष्याम इति। किंकामः खल्वहम् अस्मीत्यब्रवीत्। असितस्य धाम्नस्य दुहितरं कामयसे। तस्यै त्वा निवक्ष्यामीति। अथ हासितो धाम्न्य् ईर्ष्युरास। तस्य हान्तरिक्षे प्रासाद आस। तद्धास्य दुहितरं जुगुपुः। तं ह पत्रनाड्याम्—उपगुह्यास्यै कुमार्यै निवहति। तं ह स्मैतेनेव साम्ना प्रातर्बोधयति "जार बुध्यस्वेति।" तद् एव जराबोधीयस्य जराबोधीयत्वम्। सेयं कुमारी गर्भम् अधत्त। स कुमारोऽजायत। तम् असुरा विच्छिद्य परास्यन्तोऽब्रुवञ्जामीगर्भो वा अयम्, रक्षो वा इदम् अजनीति⋯। स एव संकृतिर्गौरवीतोऽभवत्॥ (३।१९७)

अर्थ—शाकल्यों ने मांसमय पुरोडाश सत्र किया। गौरवीति शाकल्य ने मृग मारे। तार्क्ष्य (तृक्ष के पुत्र) सुपर्ण ऊपर उड़कर उसके ऊपर गिरा। गौरवीति शाकल्य ने कहा—हे ऋषे! मेरे ऊपर मत बैठो। जो आपकी इच्छा है, उसको मैं सम्पन्न करूंगा। 'मेरी क्या इच्छा है।' यह तार्क्ष्य सुपर्ण ने पूछा। 'तुम असित धामा (असुर असित धान्व) की पुत्री को चाहते हो।' उस राजकुमारी को मैं तुम्हारे लिए लाऊंगा। असित धाम्न (असित धान्व) ईर्ष्यालु था। उसका अन्तरिक्ष में महल था। वहीं उसकी पुत्री को छिपा दिया। तार्क्ष्य सुपर्ण वहीं पत्रनाडी में छिपाकर असुरराजकुमारी से संभोग करता था। वह कुमारी अपने जार को प्रातः इस साम से जगाती थी—'जार (यार) जागो।' यही जारबोधीय साम

का जारबोधीयत्व है। राजकुमारी ने गर्भ धारण किया। असुरों ने उस बालक को पकड़कर कहा—'यह हमारी बहिन का पुत्र है। (संभवतः) राक्षस ने इसको उत्पन्न किया है।···वही बालक संकृति (वर्णसंकर) गौरवीति हुआ।

कुत्सः (इन्द्रस्य औरवपुत्रः)—

कुत्सो ह वा औरव इन्द्रस्योरोरधि निर्मित आस। यादृश एवेन्द्रस्तादृशः; यथात्मनो निर्मित स्याद् एवम्। तं ह संग्रहीतारं चक्रे। तं ह जाययाभिजग्राह शच्या पौलोम्या।···तं ह बबाधे—मल्लोऽसीति। स होवाच—'मघवन्! मामुयाभूम। तेभ्यो व नस्त्वं तद् देहि। येन वयं जीवाम। त्वद् वै वयं जाता स्म इति। स वा एतान् अन्तरांसयोः पांसून् प्रध्वंसयस्वेति। तान् ह प्रध्वंसयांचक्रे। ते हैव रजसश्च रजीयांसश्च नाम महाञ्जनपद उत्तस्थौ। तेषां ह राजास। तस्य होपगुः सौश्रवसः पुरोहित आस। स होवाच—'मा कश्चन यष्ट। स हेन्द्र उपगुं सौश्रवसम्··· एत्योवाच—याजयानि त्वेति। स ह कुत्सम् एवोपयाय तं होवाच—कम् अयज। उपगुम् इति। एतम् उपगुं जिनीतेति। तं ह जिग्युः।···स ह कुत्सम् एवोपयाय। तं होवाच—कम् अयज। उपगुम् इति। तम् उ ह स्वयम् एवोत्थाय संवृश्च्योदके प्रचकार। तद् उ ह सुश्रवा स्थौरायणः पितानुबुबुधे—कुत्सो ह वै म औरवः पुत्रं संवृश्च्योदके प्राकारीद् इति। तम् आद्रुत्याब्रवीत्—क्व मे पुत्रम् अकर इति। एष उदके प्रकीर्णश्शेते इति। तं हान्वभ्येयाय। तस्य हेन्द्रो रोहितो भूत्वा मुखात् सोमं निष्पपौ। स हेक्षांचक्रे—अयं वावेन्द्रः। इमम् एव स्तवानि। अयम् एव म इमं समैरयिष्यतीति। तम् अब्रवीत् किंकामो मा स्तौषीति। इमम् एव मे पुत्रं समैरयेत्यब्रवीत्। तम् 'एव मथाया' इति उदमथ्नात्। तं समैरयत्। (३।२००-२०२)

अर्थ—कुत्स इन्द्र का औरव पुत्र था, क्योंकि वह उसके पेट के ऊपर खेलकर बड़ा हुआ था। जिस प्रकार इन्द्र था, उसी प्रकार आकारादि में कुत्स था, मानो उसके आत्मरूप जैसा बनाया हो। उसको इन्द्र ने अपना संग्रहीता (खजांची) बनाया। इन्द्र ने उसको शची पौलोमी के हवाले कर दिया। शची उसको बाधा उत्पन्न करने लगी कि यह मल्ल है। कुत्स बोला—'हे मघवन्! मैं शची के पास नहीं रह सकता। हमें उनको दे दो जहां हम जीवित रह सकें। मैं आपसे ही उत्पन्न या पलित पोषित हूं। कुत्स ने कंधों के ऊपर के धूलकणों को छिटका। उनसे रजस और रजीयान् नाम के महान् जनपद उत्पन्न होगये।

कुत्स उनका राजा होगया । उसका पुरोहित था उपगु सौश्रवस (सुश्रवा का पुत्र)। उसने घोषणा कर दी कोई यज्ञ नहीं करेगा । इन्द्र ने उपगु सौश्रवस के पास आकर कहा—'मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा ।' वह कुत्स के पास आया । उसने पूछा—किसको यज्ञ कराया । इन्द्र ने कहा—'उपगु को' । इन्द्र ने कहा—'इस उपगु को जीतो ।'

उपगु को जीत लिया । इन्द्र पुनः कुत्स के पास आया और पूछा—'किसका यज्ञन किया ।' उत्तर मिला—'उपगु का' । तब कुत्स ने उपगु को काटकर पानी में डाल दिया । तब उपगु के पिता सुश्रवा स्थौरायण को पता चला कि कुत्स औरव ने मेरे पुत्र उपगु को काटकर पानी में डाल दिया है । वह पिता दौड़कर कुत्स के पास आया और पूछा—'मेरे पुत्र का क्या किया । कुत्स ने उत्तर दिया—'यह पानी में पड़ा लेटा है ।' तब सुश्रवा वहां आया । तब इन्द्र ने रोहित (अश्व) होकर उसके मुख से सोम पी लिया । सुश्रवा ने देखा—'यह इन्द्र है अतः मैं इसकी स्तुति करूं ।' यही मेरे पुत्र में प्राण संचार कर सकता है । इन्द्र ने उससे पूछा—'किस इच्छा से मेरी स्तुति कर रहे हो ?' वह बोला—हे भगवन् ! इस मेरे पुत्र में प्राण संचार कीजिये । तब उसने उसका उद्मन्थन किया और उसके प्राण वापस हुए ।

विरूप आङ्गिरसः—(३।२०६)—विरूप आङ्गिरस ।

इडन् काव्यः—(३।२११)—इडन् काव्य ।

आशुः भार्गवः—(३।२११)—आशु भार्गव ।

मृगयुः देवः (ऋषिः)—

मृगयुर्वै देवोऽकामयतोभयेषां पशूनाम् ऐश्वर्यम् आधिपत्यम् गच्छेयं ये च ग्राम्या ये चारण्या इति । (३।२१२)

अर्थ—मृगयु देव (ऋषि) ने इच्छा की कि मैं दोनों प्रकार के पशुओं का ईश्वर और अधिपति बनूं जो ग्राम्य और आरण्य पशु हैं ।

पुरुहन्मा वैखानसः (३।२१५)—पुरुहन्मा वैखानस ।

अयास्यः द्विगत् (३।२१६)—अयास्य द्विगत् ।

हारायणः आङ्गिरसः (३।२१७)—हारायण आङ्गिरस ।

बृहदुक्थ आङ्गिरसः (३।२१६)—बृहदुक्थ आङ्गिरस ।

नेपातिथिः काण्वः (३।२१६)—नेपातिथि काण्व ।

व्यश्वः—

व्यश्वं वै साकमश्वं गर्भे सन्तं गयः पितृव्यः पर्यपश्यद्—ऋषिर्जनिष्यत इति । तं जातं परास्ताव् ऽब्रवीज्जातक्षणेऽजनीति । तं

छाया नाजहात्। तं मुसलम् आदायाभ्यैद् हनिष्यन्। तदस्य मुसलं प्रत्यक् पतित्वा शिरोऽच्छिनत्। (३।२२१)

अर्थ—व्यश्व ऋषि के चाचा ने देखा कि व्यश्व के पेट में अश्व का गर्भ है। ऋषि उसको जनेगा। उसके जनने पर वह आकर बोला—व्यश्व! तुमने अश्व उत्पन्न कर दिया। उसकी छाया पीछा नहीं छोड़ती है। उसने मुसल लेकर उस छाया को मारना चाहा। वह मुसल नीचे गिरा और उसका शिर काट दिया।

सहस्रं काक्षीवताः—

कक्षीवान् बहु प्रजया पशुभिः प्राजायत श्रियं राज्यम् अगच्छत्। ते ह वै सहस्रं काक्षीवता आसुः। तैर्ह वै स पुत्रैः श्रियं राज्यं जगाम। (३।२२४)

अर्थ—कक्षीवान् की बहुत प्रजा थी, वह महान् श्री और राज्य को प्राप्त हुआ। कक्षीवान् के एक सहस्र पुत्र थे। उसके पुत्रों को लक्ष्मी और राज्य प्राप्त हुआ।

स्वाशिरोऽप्सरा: (३।२२६)—स्वाशिरा अप्सरा।

उदलो दैवरातः (३।२२८)—उदल दैवरात (शुनःशेप का पुत्र उदल)

पञ्चवाजा: कौत्सः (३।२२९)—पंजवाजा कौत्स।

संवर्त आंगिरसः (३।२३३)—संवर्त आंगिरस।

विश्वामित्रः भरताः, अभयद आसमात्यः (ऐक्ष्वाकश्च)—

भरता ह वै सिन्धोरपरतट आसुरिक्ष्वाकुभिरुद्वाढ़ाः। तेषु ह विश्वामित्रजमदग्नी ऊषतुः। स हेन्द्रोऽभयदम् आसमात्यं हरी ययाच। तौ हास्मै न ददौ। तयोर्हादत्तयोर्जुहावेन्द्रकोश इति।··· तस्मिंस्तिष्ठन् विश्वामित्रजमदग्नी। इमा इक्ष्वाकूणां गा विन्दध्वम् इति। तद्धेमाव् अपरतटे सन्तौ शुश्रुवतुः। तौ होचतुर्भरतान्—इन्द्रो वै नाव् अयं ह्वयतीमा इक्ष्वाकूणां गा विन्दध्वम् इति। एत, गा विन्दामहा इति। तौ वै न इमं गाधं कुरुतम् इति। ते वै युङ्ध्वम् इति। ते ह युयुजिरे। ते हाभ्यवेयुः। तौ होचतुः या वः पल्यूल्यस्ता अपास्येति। ता हापासुः। अथ ह राजन्यबन्धुर्यस्मै पल्यूल्यास तां हाधोऽक्षं बबन्ध। ताव् अकामयेतां—गाधो नाव् अयं स्याद् इति। स एतद् विश्वामित्रः सामापश्यत् तेनास्तुत "पुरां भिन्दुर्युवा कविरित्यादि"। इत्येता आवदन्तौ प्रत्यैताम्··। इति हैवाप उपतस्थिरे। ताभ्यां ह गाध आस। ते ह गाधेनातिययुः।

तद् यस्मिन्न् इयं पलपूलान्य् आस । तद्धैवापोऽवचिच्छिदुः । अनशद् वा इयम् इति त एव नंशवः । योगो नोद्यत इति । त एवायोगव इति । इदम् एवाद्य वसामेति त एव वसातयः । तद् उ हैव कुमारिकाः क्रीडन्तीर्जहुः । स एव यौषितोरभवत् । अथ ह वा इमानि वनानीमाश्च नद्योऽपरतार आसुः पुरासिन्धोरासुः । तौ ह ह पश्चात् प्राचीः प्ररुरुधतुः । ततो यान्युक्षशर्धं तान्यासंस्तानीमानि लवणानि । अथ ये तस्थुस्त एते क्षुद्रा वनस्पतयोऽभवन् । अथ ह वा इमानि पीरुस्तच्छमैतद्, अथ या नदीस्तारयांचक्रुस्ता इमा नद्यो विवसति होत्रमास्तारयांचक्रुः । तासु ह तार्यमाणासु सिन्धोर-प्रियम् आस । स होवाच—

ननु ब्रह्मे ति शुश्रुम गाथिनं पितरं तव ।
कुतस्त्वा सहस्रम् आगमद् विश्वामित्र बलं तव । इति

स होवाच—'उत पुत्रो ममतायै गर्भे दीर्घतमा वदन् । विपश्चित् तद् अभ्यजायत यज्ञस्थाङ्गानि कल्पयन् कथोदन्वः पणायसि ।

(३।२३८-२३९)

अर्थ—ऐक्ष्वाकक्षत्रियों द्वारा परास्त भारत क्षत्रियगण सिन्धु के दूसरे किनारे पर अवस्थित थे । उनमें विश्वामित्र और जमदग्नि ऋषि भी रह रहे थे । इन्द्र ने असमति के पुत्र अभयद ऐक्ष्वाक राजा से दो घोड़े मांगे । राजा ने वे घोड़े इन्द्र को नहीं दिये । तब इन्द्र ने आक्रोश में कहा—'हे विश्वामित्र और जमदग्नि ! आप लोग इन इक्ष्वाकुओं की गायों को प्राप्त करो । नदी के दूसरे तट पर दोनों ऋषियों ने यह सुना । वे भरतों से बोले—'इन्द्र हमसे पुकारकर कह रहा है कि इक्ष्वाकुओं की गायें प्राप्त करलो । आओ ! गायें ढूंढ़े । भरतों ने कहा—हे ऋषिद्वयि ! इस नदी को उथली कर दो । ऋषियों ने कहा—'अपनी सवारियां तैयार करो । तब भरतों ने अपनी सवारियां कसीं । वे आगे बढ़े । वे बोले जो आपके पास क्षार (लवण) है, उसे फेंक दो । उन्होंने फेंक दिया । राजन्यबन्धु ने रथ के अक्ष (धुरे) के नीचे बांध दिया ।

दोनों ऋषियों ने इच्छा की कि यह नदी हमारे लिए उथली हो जाये । विश्वामित्र ऋषि ने साम का दर्शन किया और इन्द्र की स्तुति की—'पुरों का भेदन करने वाला युवा, विद्वान् इन्द्र' (इत्यादि); इस प्रकार वे भरतगण आगे बढ़े । आगे पानी था । परन्तु उथला था । अतः उसे पार कर गये । जिनके पास लवण था, उसको पानी ने काट दिया । वह नष्ट होगया, वे ही नंशु होगये । कोई योग (उपाय) नहीं रहा, अतः वे ही क्षत्रिय आयोगव होगये । अब यहीं बस जायें, ऐसा

सोचने वाले वसाति क्षत्रिय कहलाये। जो कुमारी खेलती हुई चली गई, वही यौषित हुईं। अतः ये वन और नदियां जो सिन्धु के उस पार थी, वे पहिले सिन्धु की ही थी। बाद में वे पूर्व की तरफ होगई। बैलों ने जो गुदा से वायु (या पुरीष) छोड़ी वही सिन्धु तट पर लवण (लूना नदी) बन गये और जो (मनुष्य या पशु) रुक गये, वे ही वनस्पति होगई। जो पीरु था वह शम होगया और जिन्होंने नदियों को पार किया, वे ये नदियां बन गईं। उनको पार करना सिन्धु के लिए अप्रिय था। राजा अभयद बोला—"हे विश्वामित्र! हमने तो सुना है कि आपके पिता 'गाथी' ब्राह्मण थे। आपमें यह सहस्र (अपार) बल कहां से आ गया।"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"ममता के पुत्र दीर्घतमा ने गर्भ में कहा बोला था और उत्पन्न होने पर उसने यज्ञ विद्या का निर्माण किया।"

दाशराज्ञ युद्धः (प्रथमः) क्षत्रः प्रातर्दनश्च—

क्षत्रं वै प्रातर्दनं दाशराज्ञे दश राजानः पर्ययतन्त मानुषे। तस्य ह भरद्वाजः पुरोहित आस। तम् उपाधावद् ऋषे उप त्वा धावाम। इह नः प्रजानीहि। सोऽकामयत भरद्वाजो जयेम संग्रामम् इति।…
सोऽब्रवीत् स्तुत्वा 'आ वै न इन्द्रो हवं गमिष्यति।'
जेष्यामो वा इमं संग्रामम् इति॥

अथ होपमा सावेदसो कल्याण्यास क्षत्रस्य प्रातर्दनस्य जाया। तस्यै ह भ्रातरं जघ्नुः। तद्ध ध्रुवनम् आस। तां ह परिधावन्तीम् इन्द्रोऽभिदध्यौ। स ह शुष्काजिनं परिधायाभ्यवेयाय। तस्य ह विवधे अपूमभूत् इतरार्धेऽपासक्त आस आमिक्षा सर्पिषा संयतेतरार्धे। स हास्या अन्तिकं नर्तितुं दध्रे। ता ह स्म नयत् सर्पिषा प्रलिम्पति। तं ह स्म यद् अपसेधत्यथ ह स्मास्या अन्तिकम् एव नृत्यति। सायम् आस। व्यपेयुः। तां ह पतिः पप्रच्छ—किम् अत्र किञ्चित् दिवादोऽद्राक्षीत् इति सा होवाच। न नु ततोऽन्यत् एव मेऽद्यान्तिकम् अनर्तीत्। तस्य विवधेऽपूपमभूत् इतरार्धेऽपासक्तोऽभूद् आमिक्षा सर्पिषा संयतेतरार्धे। तं यद् अपासीत् स मथमेघान्तिकम् एवानर्तीद् इति। स होवाच वै न इन्द्रो हवम् अगमत्। जेष्यामो वा इमं संग्रामम्।

इन्द्रो वै सोऽभूत्, तं मोद्धिसिष्ठाः, तं सखीकृत्य ब्रूताज्जयाम संग्रामम् इति। श्वो ह भूते परिसस्रुः। स हायम् तादृशेनैव विवधेन परस्तराम् इव नर्तितुं दध्रे। तं ह स्म यत् प्रेप्स्यत्यथ

ह स्येतरः परस्तराम् एव। सा हेक्षांचक्रे—हन्तैनम् अभिवदानीति। तं हाभ्युवाद…।

तं हानुसंद्रुत्योवाच—जयाम संग्रामम् इति। स हाजिनम् उपाघ्नान

उवाच—यथेमाम् अभूः व्यपापतानि भास्वति।

एवं क्षत्रस्य मानुषाद् व्युपापतत शत्रवः॥

इति हैवैणेयलोमानि शातयाञ्चक्रे। ते हैवाश्वरथा उत्तस्थुः। तैर्वै स तं संग्रामम् अजयत्। सोऽब्रवीद् भरद्वाजो न वै दारेऽसृजन्मेति। (३।२४६-२४८)

अर्थ प्रतर्दन के पुत्र क्षत्र (अलर्क) को मानुष (प्रथम) दाशराज्ञ युद्ध में दश राजाओं ने घेर लिया था। उसका पुरोहित भरद्वाज ऋषि था। राजा दौड़ा भरद्वाज के पास गया और बोला—'ऋषे ! मैं आपके पास (क्यों ?) आया हूं, यह जानें। (पता चलने पर) भरद्वाज ने चाहा हम संग्राम जीतें। वह इन्द्र की स्तुति करता हुआ बोला—'इन्द्र हमारे साथ युद्ध में जायेगा और हम संग्राम जीतेंगे। क्षत्र प्रातर्दन की पत्नी सवेदसपुत्री उपमा थी। वह श्रेष्ठ महिला थी। युद्ध में उसका भाई मारा गया। बड़ा हाहाकार हुआ। रानी को भागती देखकर इन्द्र ने ध्यान दिया। वह शुष्काजिन (सूखा मृगचर्म) ओढ़कर वहां युद्धभूमि में आया। उसके विवध में एक ओर पूये थे और दूसरी ओर आधे में आमिक्षा घृत के साथ। इन्द्र उसके पास आकर नाचने लगा। वह (प्रातर्दन क्षत्र महिषी) उपमा पर नाचता हुआ घी डाल देता था। जो उसको छेड़ता था तब वह उस (रानी) के पास नाचता था। सायंकाल था। सब चले गये थे। तब राजा ने रानी से पूछा—'तुमने दिन में यहां क्या कुछ देखा था। वह बोली—'मेरे पास एक व्यक्ति नाच रहा था, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा। उसकी पोटली में एक ओर पूये और दूसरी ओर दही था। वह उसको फेंककर मेरे पास नाचा था। राजा क्षत्र बोला—क्या इन्द्र हमारे युद्ध में आया है ? हम निश्चय ही संग्राम जीतेंगे।

"वह निश्चय ही इन्द्र था। उसको मारना छेड़ना नहीं। उसको मित्र बनाकर पूछना कि क्या हम युद्ध में जीतेंगे ?" दूसरे दिन प्रातः पुनः सब आये। वह इन्द्र पूर्ववत् विवध लेकर नाचने लगा। जो कोई उसके पास जाकर कुछ पूछना चाहता वह दूर चला जाता। रानी ने सोचा इसको नमस्कार करूं। (तब नमस्कार के पश्चात् इन्द्र और रानी में संवाद हुआ) तब इन्द्र दौड़कर राजा के पास जाकर बोला—'वह मृगचर्म को बजाता हुआ बोला—'जिस प्रकार यह मृगचर्म चमकती हुई बजाने पर गिरती है, इसी प्रकार तुम्हारे शत्रु मानुष दाश-

राज्ञ युद्ध में पतित होंगे (गिरेंगे)। तब उसने ऐणेय बाजों को शान्त किया। तब राजा के अश्व और रथ उठ खड़े हुए। तब राजा क्षत्र प्रातर्दन ने वह संग्राम (दाशराज्ञ युद्ध-प्रथम) जीता।

दीर्घतमा मामतेयः—

तस्य कनीयान् भ्राता दीर्घश्रवाः। (३।२५७)

अर्थ—दीर्घतमा मामतेय का छोटा भाई दीर्घश्रवा था।

कशीतिः सौभरः—

कशीतिं वै सौभरं सत्रे यक्ष्माविन्दत्। (३।२६६)

अर्थ—सोभरि के पुत्र कशीति सौभर को सत्र में यक्ष्मा होगई।

विश्वमनाः—

विश्वमनसं वै अरण्य ऋक्षोऽविन्दत्। सोऽकामयतापर्क्षं हनीयेति। तमिन्द्रोऽपश्यत्।···विश्वमनसं ऋक्षोऽविदद् इति।

अर्थ—विश्वमना को जंगल में ऋक्ष मिला। उसने चाहा—रीछ को मारूं। इन्द्र ने देखा कि विश्वमास को ऋक्ष मिला है। (२६७)

असितादयः—

प्रैणी सोमाहितो मधुच्छन्दा वैश्वामित्रोऽसितो दैवलः। (२७०)

अर्थ—सोमहित का पुत्र प्रैणी, विश्वामित्रपुत्रमधुच्छन्दा और देवल का पुत्र असित ऋषि।

अकूपारः कश्यपः—

अकूपारो वै कश्यपः कलिभिस्सह समुद्रम् अभ्यवषत्। तस्मिन् प्रतिष्ठाम् ऐच्छत्।···ततो वै स समुद्रे प्रतिष्ठामविन्दतेमाम् एव पृथिवीम्। (३।२७३)

अर्थ—अकूपार कश्यप कलि (गन्धर्वों) के साथ-साथ समुद्र (द्वीपों) में गये, उसमें रहना चाहा। अतः वह समुद्र में प्रतिष्ठित हुआ तथा पृथिवी को भी पाया।

---

[१२]

ताण्ड्यब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

उशना: काव्य:—

उशना वै काव्योऽसुराणां पुरोहित आसीत्तं देवा कामदुघाभिरुपामन्त्रयत एतान्यौशनशानि प्रायच्छन् कामदुघा वा औशनशानि। (७।५।२०)

अर्थ—उशना काव्य असुरों के पुरोहित थे, देवों ने उशना को कामदुघा गायों द्वारा बुलाया और उनको वे गायें दे दीं। अत: उनको 'औशनस' कहा जाता है।

नोधा: काक्षीवत: —

देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त। तन्नोधा काक्षीवत आगच्छत्तेऽब्रुवन्नृषिर्न आगंस्तस्तस्मै ब्रह्म ददामेति। (७।१०।१०)

अर्थ—देव वेद का बंटवारा कर रहे थे, उनके पास नोधा काक्षीवत आये, अत: देव बोले—'ऋषि हमारे पास आये हैं, अत: अब वेद इनको दें।

इन्द्रो यतयश्च—

इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त रायोवाजो बृहद्गिरि: पृथुरश्मिस्तेऽब्रुवन् को नः पुत्रान् भरिष्यतीत्यहमितीन्द्रोऽब्रवीत्तांस्त्रिककुबधिनिधायाचरत्स:। (८।१।४)

अर्थ—इन्द्र ने यति असुरों को सालावृकों के हवाले कर दिया, उनमें केवल तीन शेष बचे—रायोवाज, पृथुरश्मि और बृहद्गिरि—वे बोले हमारे पुत्रों का भरण-पोषण कौन करेगा—'मैं करूंगा' इन्द्र ने कहा और वज्र को रखकर चल दिया।

साध्या: देवा:—

साध्या वै नाम देवा आसंस्ते सर्वेण यज्ञेन सह स्वर्गम् लोकामायन्। (८।४।१)

अर्थ—साध्य नाम के देव थे, वे सब यज्ञों के साथ स्वर्गलोक आये।

श्यावाश्वोऽर्चनानाः—

श्यावाश्वमर्चनानासं सत्रमासीनं धन्वोदवहन्।

अर्थ—जब श्यावाश्व अर्चनानास् सत्र कर रहे थे तो मरुभूमि में जल बहने लगा।

कूशाम्बः स्वायवः—

एवदृस्स वा प्राह कूशाम्बः स्वायवो ब्रह्मा।

अर्थ—कूशाम्ब स्वायव ब्रह्मा ने कहा…।

अष्ट्रादंष्ट्रो वैरूपः—

अष्ट्रादंष्ट्रो वैरूपोऽपुत्रोऽप्रजो अजीर्ण इमांल्लोन्विच्छिदिवां अमन्यत…। (८।९।२१)

अर्थ—विरूप (आंगिरस) के पुत्र अष्ट्रादंष्ट्र ने अपुत्र, अप्रज और अजीर्ण इन लोकों को विच्छिन्न समझा।

वीतहव्यः श्रायसः—

वीतहव्यः श्रायसो ज्योग्निरुद्ध एवत्सामापश्यत्। (९।१।९)

अर्थ—श्रायस् के पुत्र वीतहव्य चिरकाल तक राजच्युत रहा और उसने (ऋषि बनकर) साम (वैतहव्यसाम) का दर्शन किया।

अकूपारा आंगिरसी—

अकूपाराऽऽङ्गिरसी आसीत्तस्या यथा गोधायास्त्वगेवं त्वगासीत्तामेतेन त्रिः साम्नेन्द्रः पूत्वा सूर्यत्वचसमकरोत्तद्वाव सा तह्र्यकामयत। (९।२।१४)

अर्थ—अकूपारा आङ्गिरसी (या अपाला आत्रेयी या तिलका) की चमड़ी गोधा की त्वचा के समान (मोटी व भयंकर) थी, इन्द्र ने इस साम से तीन बार पवित्र करके उसकी चमड़ी को सुन्दर और तेजस्वी बनाया, तब अकूपारा आंगिरसी ने कामना की।

तुरश्रवाः पारावताश्च—

तुरश्रवश्च वै पारावतानाञ्च सोमौ संसुतावास्तां तत एते तुरश्रवा सामनी अपश्यतत्ताभ्यामस्मा इन्द्रः शलमनिनां यमुनाया हव्यं निरावहत्। (९।४।१०)

अर्थ—तुरश्रवा और पारावतों का सोम निकाला रखा था, तब तुरश्रवा ने दो सामों का दर्शन किया, उनके द्वारा इन्द्र ने तुरश्रवा के लिये शलमनियों का हव्य यमुना में बहाया।

अर्बुदः सर्पः—

अर्बुदः सर्पः एताभिर्मृतां त्वचमपाहत। (९।८।८)

अर्थ—अर्बुद नाग ने इन सामों द्वारा अपनी मृत त्वचा को छोड़ा।

गिरिक्षित् औच्चामन्यवः—

गिरिक्षिदौच्चामन्यवेति होवाचाऽभिप्रतारी काक्षीसेनिः।

(१०।५।७)

अर्थ—अभिप्रतारी काक्षीसेनि बोला—"गिरिक्षित् औच्चामन्यव"।

भारद्वाजायनाः—

भरद्वाजायना वै सत्रमासत। (१०।१२।१)

अर्थ—भरद्वाजायनों ने सत्र किया।

युक्ताश्व आङ्गिरसः—

युक्ताश्वो वा आङ्गिरसः शिशू जातौ विपर्यहरत्तस्मान्मन्त्रोऽपाक्रामत्स तपोऽतप्यत स···। (११।८।८)

अर्थ—युक्ताश्व ने दो उत्पन्न शिशुओं को चुरा लिया, जिससे उसका मन्त्रज्ञान लुप्त होगया। तब उसने पुनः तप किया।

अयास्य आङ्गिरसः—

अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षितानामन्नमाश्नात्तं शुगार्च्छत्, स तपोऽतप्यत···। (११।८।१०)

अर्थ—अयास्य आङ्गिरस ऋषि ने दीक्षित आदित्यों का अन्न खा लिया इससे वह बीमार होगया, तब उसने तप किया।

वैडवः वसिष्ठः—

वसिष्ठो वा एतेन वैडवः स्तुत्वाऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत्।

(११।८।१४)

अर्थ—वैडव वसिष्ठ ने साम से स्तुति की और तुरन्त स्वर्ग के दर्शन किये।

हविष्मांश्च हविष्कृच्चाङ्गिरसावास्ताम् (११।१०।१०)—हविष्मान् और हविष्कृत नाम के दो आङ्गिरस ऋषि थे।

यमो यमी च—

एतेन वै यमी यमं स्वर्गं लोकमगमयत्। (११।१०।२२)

अर्थ—यमी ने यम को स्वर्गलोक पहुंचा दिया।

तिरश्चाङ्गिरसः—

अङ्गिरसः स्वर्गलोकं यन्तो रक्षांस्यन्वसचन्त। तान्येतेन तिरश्चाङ्गिरसः (१२।७।१२)

अर्थ—अङ्गिरसों के स्वर्गलोक जाते समय राक्षस भी उनके साथ वहां चले गये। तिरश्चांगिरस ने इस साम द्वारा राक्षसों···।

दध्यङ् आंगिरसः—

दध्यङ् वा आङ्गिरस देवानां पुरोधानीय आसीत्। (१२।८।६)

अर्थ—दध्यङ् आंगिरस देवों का पुरोहित था।

कल्याण आंगिरसः—

आङ्गिरसो वै सत्रमासत। तेषामाप्तस्पृतः स्वर्गो लोक आसीत् पन्थानं तु देवयानं न प्राजानंस्तेषां कल्याण आङ्गिरस ध्यायमुदव्रजत् स ऊर्णायुं गन्धर्वमप्सरानां मध्ये प्रेङ्खमाणमुपैत्स इयामिति।...स ऐत् कल्याणः। सोऽब्रवीदाप्तो वै नः स्वर्गो लोकः। (१२।११।१०–११)

अर्थ—आंगिरस ऋषिगण सत्र कर रहे थे। उनमें आप्तस्पृत स्वर्गलोक (में) था। देवयान के पथ को न जानने पर कल्याण आंगिरस ध्यानमग्न हुआ। वह झूलता हुआ अप्सराओं के मध्य में ऊर्णायु गन्धर्व के पास पहुंचा—उसने सोचा 'मैं स्वर्गलोक जाऊं'। वह वहां गया। कल्याण आंगिरस बोला—'आप्तस्पृत' ही हमारा स्वर्गलोक है।

वृशो जानः—

वृशो वै जानस्त्र्यरुणस्य त्रैधातवस्यैक्ष्वाकस्य पुरोहित आसीत् स ऐक्ष्वाकोऽधावयत् ब्राह्मणकुमारं रथेन व्याच्छिनत्स पुरोहितमब्रवीत्तव मा पुरोधायमिदमीदृगुपागादिति। (१३।३।१२)

अर्थ—वृश जान त्र्यरुण त्रैधातव ऐक्ष्वाक का पुरोहित था। उसने रथ में बैठाकर ऐक्ष्वाक को दौड़ाया और ब्राह्मणकुमार को काट दिया, तब राजा पुरोहित से बोला—'आप अब हमारे पुरोहित नहीं हैं जो तुमने ऐसा किया है।'

वध्र्यश्व आनूपः—

एतेन वै वध्र्यश्व आनूप पशूनां भूमानमाश्नुत। (१३।३।१६)

अर्थ—अनूप के पुत्र वध्र्यश्व ने इसके द्वारा बहुत पशुओं का उपभोग किया।

शिशुरांगिरसः—

शिशुर्वा आंगिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्। स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत। तं पितरोऽब्रुवन्नधर्मं करोषि यो नः पितॄन् सतः पुत्रका इत्यामन्त्रयस इति। सोऽब्रवीदहं वाव वः पिताऽस्मि। यो मन्त्रकृदस्मि इति। तं देवेष्वपृच्छन्त। ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृदिति। (१३।३।२४)

अर्थ—शिशु आंगिरस (अपान्तरतमा सारस्वत, दधीचि और सरस्वती का पुत्र) ऋषियों का भी ऋषि (मन्त्रदाता) था। उसने वेद पढ़ाते हुए अपने पितरों (चाचा आदि) को 'पुत्र' कह सम्बोधित किया। तब वे पितर बोले—"आप अन्याय कर रहे हो जो अपने बड़े बूढ़ों को पुत्र कहते हो।" तब शिशु आंगिरस ने प्रत्युत्तर दिया—'मैं ठीक कहता हूं, मैं आपका पिता हूं, क्योंकि मैंने तुम्हें वेद (और शास्त्र) पढ़ाया है।' वे दोनों (गुरु-शिष्य) इसका समाधान पूछने देवों के पास गये। देवों ने निर्णय दिया—'यह मन्त्रदाता शिशु (ऋषि) निश्चय आपके पितृतुल्य है।'

अवशिष्टा अरुरुयतित्रयी–(वर्णव्यवस्थायाः प्रारम्भः)—

इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिर्बृहद्गिरी रायोवाजस्तेऽब्रुवन् को न इमान् पुत्रान् भरिष्यत्यहमितीन्द्रोऽब्रवीत्तानधिनिधाय परिचर्य्यं चरद्वर्धंस्तान् वर्द्धयित्वाऽब्रवीत् कुमारका वरान् वृणीध्वमिति, क्षत्रं मह्यमित्यब्रवीत् पृथुरश्मिः, ब्रह्मवर्चसं मह्यमित्सब्रवीत् बृहद्गिरिः पशून् मह्यमित्यब्रवीद्रायोवाजः । (१३।४।७)

पार्थुरश्मं राजन्याय बार्हद्गिरे ब्राह्मणाय रायोवाजीयं वैश्याय। (१३।४।१८)

अर्थ—इन्द्र ने (अरुरु) यतियों को सालावृकों के हवाले कर दिया, उनमें से केवल तीन बचे—पृथुरश्मि, बृहद्गिरि और रायोवाज। वे बोले—"इन हमारे पुत्रों का भरण पोषण कौन करेगा। 'मैं करूंगा' उनसे इन्द्र ने कहा और उनकी परिचर्या करवाई जिससे वे बड़े हुए तब इन्द्र ने कहा वर मांगो—पृथुरश्मि ने क्षत्रियत्व, ब्राह्मणत्व बृहद्गिरि ने और पशु (और कृषि) रायोवाज ने मांगे।··· इन्द्र ने पृथुरश्मि की सन्तति को राजन्य, बृहद्गिरि की सन्तति को ब्राह्मण और रायोवाजकी को वैश्य बना दिया।

पुरुषन्ती तरन्तपुरुमीढ़ौ च—

ध्वस्रे वै पुरुषन्ती तरन्तपुरुमीढ़ाभ्यां वैतदश्विभ्यां सहस्राण्यदित्सताम्। (१३।७।१२)

अर्थ—ध्वस्र (स्थान) में पुरुषन्ती (राजा) ने वितदश्वि के पुत्र तरन्त और पुरुमीढ़ को हजारों (गायादि) देना चाहा।

विदन्वान् भार्गवः

विदन्वान्वै भार्गव इन्द्रस्य प्रत्यहन्। (१३।११।१०)

अर्थ—विदन्वान् भार्गव ने इन्द्र का मुकाबला किया।

कर्णश्रवा आंगिरसः (१३।११।१५)—कर्णश्रवा आंगिरस।
इनुष्टिरांगिरसः (१३।११।२३)—इनुष्टि आंगिरस।

दृत इन्द्रोतः—

दृत ऐन्द्रोत इति होवाचाऽभिप्रतारी काक्षसेनिः। (१४।१।१२)

अर्थ—अभिप्रतारी काक्षसेनि ने कहा—'दृत इन्द्रोत'।

वैखानसाः—

वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसंस्तान् रहस्युर्देवमलिम्लुडमुनिर्भरणेऽमारयत्। तं देवा अब्रुवन्—क्व त ऋषयोऽभूवन्निति। (१४।४।७)

अर्थ--वैखानस इन्द्र के प्रिय थे, रहस्युर्देवमलिम्लुच् ने इनको मारा, तब देव बोले - 'वे ऋषि कहां पर थे।'

शर्करः शिशुमारः (१४।५।१५)—शर्कर शिशुमार।
सुहविरांगिरसः (१४।२।२५)--सुहवि आंगिरस।

वत्समेधातिथी (काण्वौ)—

वत्सश्च वै मेधातिथिश्च काण्वावास्तां तं वत्सं मेधातिथिराक्रोशदब्राह्मणोऽसि शूद्रापुत्र इति। (१४।६।६)

अर्थ—वत्स और मेधातिथि काण्व वंशज ऋषि थे। मेधातिथि ने वत्स को कोसा—'तू अब्राह्मण और शूद्रापुत्र है।'

उपगुः सौश्रवसः

उपगुर्वै सौश्रवसः कुत्सस्यौरवस्य पुरोहित आसीत्।···कुत्स औरव उपगाः सौश्रवसस्योद्गायत। औदुम्बर्या शिरोऽच्छिनत् स सुश्रवा इन्द्रमब्रवीत्। (१४।६।८)।

अर्थ—उपगु सौश्रवस कुत्स औरव (राजा) का पुरोहित था। कुत्स औरव ने उपगा सौश्रवस के लिये साम गान किया। उपगु का शिर औदुम्बरी से कट गया, तब सुश्रवा इन्द्र से बोला।

च्यवनो वै दाधीचः (१४।६।१०)—च्यवन दाधीच।
देवः मृगयुः (१४।९।१२)—देव मृगयु।
पुरुहन्मा वैखानसः (१४।९।२९)—पुरुहन्मा वैखानस।
द्विगत् भार्गवः (१४।९।३२)—द्विगत् भार्गव।
बृहदुक्थः (१४ ८।३८)—बृहदुक्थ।
उद्बुद् भार्गवः (१४।९।३९)—उद्बुद भार्गव।
नीपातिथिः (१४।१०।४)—नीपातिथि।

व्यश्व आंगिरसः (१४।१०।६)—व्यश्व आंगिरस।
कक्षीवान् औशिजः (१४।११।१७)—कक्षीवान् औशिज।

असितो दैवलः—

असितो वा एतेन दैवलस्त्रयाणां लोकानां दृष्टिमपश्यत्।
(१४।११।१९)

अर्थ—असित दैवल ने तीनों लोकों का दर्शन किया।

इषिरः (१४।११।२०)—इषिर।
उदलो वैश्वामित्रः (१४।११।३४)—उदल वैश्वामित्र।

दिवोदासः—

दिवोदासं वै भरद्वाजपुरोहितं नानाजनाः पर्यायन्त स उपासीदहषे गातुं मे विन्देति। (१५।३।७)

अर्थ—(काशिराज) दिवोदास, जिसके पुरोहित भारद्वाज ऋषि थे, उसको अनेक राजाओं ने घेर लिया, तब राजा ने कहा—"हे ऋषे! रक्षा का मार्ग बताइये।"

दीर्घश्रवा राजन्यः (१५।३।२५)—दीर्घश्रवा राजन्य।
शम्मद आंगिरसः (१५।५।११)—शम्मद आंगिरस।
दावसुरांगिरसः (१५।५।१४)—दावसु आंगिरस।

विश्वमनाः—

विश्वमनसं वै ऋषिमध्यायमुद्व्रजितं रक्षोऽगृह्णीत् तमिन्द्रोऽयाचदृषिं वै रक्षोऽग्रहीदिति। (१५।५।२०)

अर्थ—विश्वमना ऋषि को अध्ययन के लिए जाते समय राक्षस ने पकड़ लिया। इन्द्र ने कहा ऋषि को राक्षस ने पकड़ लिया।

वसिष्ठपुरोहिता भरताः—

स इन्द्रं प्रत्यक्षमपश्यत् स एनमब्रवीद् ब्राह्मण ते वक्ष्यामि। यथा त्वत्पुरोहिता भरताः प्रजनिष्यन्तेऽथ ततो वै वसिष्ठपुरोहिता भरता प्राजायन्त। (१५।५।२४)

अर्थ—वसिष्ठ ने इन्द्र को प्रत्यक्ष देखा। इन्द्र ने वसिष्ठ से कहा—'मैं आपसे ब्राह्मण (वेद व्याख्यान) कहूंगा।' आप भरतों के पुरोहित होंगे तब भरतों की वृद्धि होगी। अतः वसिष्ठ के पुरोहित होने पर भरतों की बहुत वृद्धि (प्रजा वृद्धि) हुई।

अकूपारः कश्यपः (१५।५।३०)—

चित्ररथः कापेयाश्च—चित्ररथं कापेया अयाजयन्। (२०।१२।५)

अर्थ—चित्ररथ का यज्ञ कापेय ऋषियों ने कराया।

कपिवनः भौवायनः (२०।२३।४) कपिवन, भुवन का पुत्र।

इन्द्रमरुत्यमाः—

इन्द्रो मरुतः सहस्रमजिनात् तौ यमोऽश्रृणोत् स आगच्छत्। सोऽब्रवीदुपमाऽस्मिन् सहस्रे ह्वयेथामिति। (२१।१।१)

अर्थ—इन्द्र ने मरुतों को सहस्र जीते। यम ने यह सुना, वह वहां आया और बोला—"इनको सहस्र (यज्ञ) में मत बुलाओ।"

विश्वामित्रः—

जन्हुवृचीवन्तो राष्ट्रं आहिंसन्त। स विश्वामित्रो जाह्नवो राजैतमपश्यत्। स राष्ट्रमभवदराष्ट्रमितरे। (२१।१२।२)

अर्थ—जन्हु के वंशज वृचीवन्तों ने राष्ट्र का विनाश किया। राजा विश्वामित्र (वे भी जन्हु के वंशज) जान्हव ने यह देखा। अतः वह राजा (राष्ट्र) हुए और अन्य जान्हव वृचीवन्त अराजक (राष्ट्रहीन) हुए।

स्थपतिर्बुधः–

देवा वै व्रात्याः सत्रमासत बुधेन स्थपतिना। ते ह वा अनिर्य्याच्यं वरुणं राजानं देवयजनं दिदीक्षुस्तान् ह वा वरुणो राजाऽनुव्याजहाराऽन्तरेमि। (२४।१८।२)

अथ ह वै तर्हि नौषधीषु पय असीन्न क्षीरे सर्पिः।…

तदेष श्लोकोऽभ्यनूच्यते—

किमकर्त्तेति यत्पुत्रान् मुहुर्देवां अपृच्छत।

मही बुधस्याऽसीद्दीक्षा स क्षीरे सर्पिराहरत्।

महीं दीक्षां सौमायनो बुधो यदुयच्छदनन्दत् सर्वमाप्नोन् मन्मांसे मेदोऽधा इति।

दरिद्रा आसन् पशवः कृशाः सन्तो व्यस्थकाः।

सौमायनस्य दीक्षायां समसृज्यन्त मेदसेति। (२४।१८।२-७)

अर्थ—व्रतशील देवगण सत्र कर रहे थे। बुध स्थपति की अध्यक्षता में। उन्होंने अनिर्याच्य (जो किसी से कुछ मांगता नहीं) वरुण राजा को देवपूजन के लिये दीक्षित किया। वरुण राजा ने उनसे कहा मैं इन (औषधियों) के अन्दर जाता हूं। क्योंकि उस समय तक औषधियों में न रस था और दूध में घी। अतः यह श्लोक कहा जाता है—'देवों से, पुत्रों से (पृथ्वी पूछती है)'– आप लोगों ने क्या किया। बुध की यज्ञ दीक्षा के समय से दूधों में घी होने लगा। मही ने सौमायन बुध की दीक्षा में रसादि का आहरण किया और सबको आनन्दित

किया। मज्जा, मेद और मांस को शरीरों में स्थापित किया गया। इससे पूर्व पशु बहुत दरिद्र (दुग्धहीन) और निर्बल एवं अस्थिहीन थे। सौमायन बुध की दीक्षा के समय ही चर्बी और मांस उनमें उत्पन्न की गई।

साप्यो वैदेहो नमिः—

नमी साप्यो वैदेहो राजाऽञ्जसा स्वर्गं लोकमैत्। स एतदवभृथ-मभ्यवैद्य एष उत्तरेण स्थूलार्मं हृदस्तद्धास्य शतं गावः सहस्रं सम्पेदुः। (२५।१०।१८)

अर्थ—वैदेह राजा नमी साप्य शीघ्र ही स्वर्गलोक को चला गया। वह स्थूलार्म के उत्तर में हृद (सरोवर) में अवभृथस्नान किया। उसकी सौ गायें शीघ्र ही एक हजार होगईं।

इन्द्रो रुशमा च—

इन्द्रश्च रुशमा चांशं प्रास्येतां यतरो नौ पूर्वो भूमिं पर्येति स जयतीति, भूमिमिन्द्रः पर्यैत् कुरुक्षेत्रं रुशमा; सोऽब्रवीदजैषं त्वेत्यहमेव त्वामजैषमितीन्द्रोऽब्रवीत्तौ देवेष्वपृच्छतां, ते देवा अब्रुवन्नेतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रमिति, तौ न व्यजयेताम्। (२५।१३।३)

अर्थ—इन्द्र और रुशमा ने अपना अंश (पाशा) फेंका कि जो (अंशपात) भूमि तक पहिले पहुंचेगा, वही जीतेगा। उस भूमि पर पहिले इन्द्र पहुंचा और कुरुक्षेत्र में रुशमा पहुंचा। वह बोला मैं जीता, तो इन्द्र बोला—नहीं मैंने आपको जीता। तब दोनों ने अन्य देवों से निर्णय के लिए कहा। देवों ने कहा—'प्रजापति की वेदी कुरुक्षेत्र तक है अतः आप दोनों में कोई नहीं जीता।'

तुरो देवमुनिः (२५।१४।५)—तुर (कावषेय) देवमुनि (था)।

प्रमुखाः नागराजानः—

एतेन वै सर्पा एषु लोकेषु प्रत्यतिष्ठन्···। जर्वरो गृहपतिः धृतराष्ट्र ऐरावतो ब्रह्मा पृथुश्रवा दौरेश्रव स उद्गाता। ग्लानश्चाजगावश्च प्रस्तोतृप्रतिहर्त्तारौ। दत्तस्तापसो होता। शितिपृष्ठो मैत्रावरुणः, तक्षको वैशालेयो ब्राह्मणाच्छंसी, शिखानुशिखौ नेष्टापोतारो, अरुण आटोऽच्छावाकः, तिमिघो दौरेश्रुतोऽग्नीत्, कौतस्तावध्वर्यू, अरिमेजयश्च जनमेजयश्चार्बुदो ग्रावस्तुदजिरः सुब्रह्मण्यः चक्रापिशङ्गावुन्नेतारौ, षण्डकुषण्डावभिगरापगरौ। एतेन वै सर्पा अपभृत्यमजयन्। (२५।१५।१-३)

अर्थ—इस (सत्र) के द्वारा सर्प (नाग) गण इस पृथिवीलोक में प्रतिष्ठित हुए। जर्वर गृहपति था, धृतराष्ट्र ऐरावत ब्रह्मा, पृथुश्रवा दौरेश्रवा उद्गाता,

ग्लाव और अजगाव प्रस्तोता तथा प्रतिहर्त्ता थे। दत्ततापस होता, शितिपृष्ठ मैत्रावरुण, तक्षक वैशालेय ब्राह्मणच्छंसी शिख और अनुशिख नेष्टा और पोता थे। अरुण आट अच्छावाक तिमिर्घ दौरेश्रुत अग्नीत्, दो कौस्तवन्ध अध्वर्यु थे, अरिमेजय और जनमेजय तथा अर्बुद—ग्रावस्तुत् थे, अजिर सुब्रह्मण्य था, चक्क और पिशंग उन्नेता थे, षण्ड और कुषण्ड अभिगर तथा अपगर थे। इस यज्ञ के द्वारा सर्पों (नागजाति) ने मृत्यु को जीत लिया।

सहस्रपुत्रवन्तो राजानः—

> पर आह्लारकस्त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यो वीतहव्यः आयसः कक्षीवानौशिजः···(२४।१६।३)

अर्थ—पर अह्णारक (ऐक्ष्वाक, हिरण्यनाभ कौसल्यपुत्र), त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य, वीतहव्य आयस; और कक्षीवान् औशिज (के सहस्र-सहस्र पुत्र थे।)

आचार्यसम्प्रदायः—

> (सामविधानब्राह्मणे) सोऽयं प्राजापत्यो विधिस्तमिमं प्रजापतिर्बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिर्नारदाय, नारदो विष्वक्सेनाय, विष्वक्सेनो व्यासाय पाराशर्याय, व्यासः पाराशर्यो जैमिनये जैमिनिः पौष्पिञ्ज्याय, पौष्पिञ्जिः पाराशर्यायणाय, पाराशर्यायणो बादरायणाय, बादरायणस्ताण्डिशाट्यायनिभ्यां ताण्डिशाट्यायनिनौ बहुभ्यः (३।९।३)

अर्थ—यह प्राजापत्य विधि है, इसको प्रजापति ने बृहस्पति को बताया, बृहस्पति ने नारद को, नारद ने विष्वक्सेन (ब्रह्मदत्तपुत्र) को बताया विष्वक्सेन ने व्यास को, व्यास ने जैमिनि को, जैमिनि ने पौष्पिञ्जि को, पौष्पिञ्जि ने पाराशर्यायण को, पाराशर्यायण ने बादरायण को, बादरायण ने ताण्डि और शाट्यायनि को और उन दोनों ने बहुत से शिष्यों को पढ़ाया।

—

देवताध्यायसंहितोपनिषद्वंशब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

युगादिकथनम्—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्ब्राह्मं यदुच्यते।
नाकस्य पृष्ठे तं कालं दिवि सूर्य इव रोचते।
ततः कृतयुगस्यादौ ब्रह्मभूतो महायशाः।
सर्वज्ञो धृतिमानृषिः पुनराजायते स्मरन् ।।२४।।

अर्थ—सहस्रयुगपर्यन्त का ब्राह्मदिन कहा जाता है, नाक (स्वर्ग) के पीछे (ऊपर) यह काल आकाश में सूर्य के समान चमकता है। कृतयुग के प्रारम्भ में महायशस्वी, सर्वज्ञ, धृतिमान् ब्रह्मा (कश्यप) ऋषि पुनः जन्म लेते हैं।

वंशब्राह्मणम्—

उपाजायत शर्वदत्ताद् गार्ग्यात्। शर्वदत्तो गार्ग्यो रुद्रभूतेर्द्राह्यायणात्। रुद्रभूतिर्द्राह्यायणस्त्रातादैषुमात्। त्रात ऐषुमतो निगडात् पार्णवल्केः। निगडः पार्णवल्किः गिरिशर्मणः काण्ठेविद्धेः। गिरिशर्मा काण्ठेविद्धिर्ब्रह्मवृद्धेश्छन्दोगमाहकेः। ब्रह्मवृद्धिश्छन्दोगमाहकिर्मित्रवर्चसः स्थैरकायनात्, मित्रवर्चाः स्थैरकायनः सुप्रतीतादौलुन्द्यात्। सुप्रीत औलुन्द्यो बृहस्पतिगुप्ताच्छायस्थे। बृहस्पतिगुप्तः शायस्थिर्भवत्रात्ताच्छायस्थेः। भवत्रातः शायस्थिः कुस्तुकाच्छार्कराक्ष्यात्। कुस्तुकः शार्कराक्ष्यः श्रवणदत्तात् कौहलात्। श्रवणदत्तः कौहलः सुशारदाच्छालङ्कायनात्। सुशारदः शालङ्कायन ऊर्जयत औपमन्यवात्। ऊर्जयन्नौपमन्यवो भानुमत औपमन्यवात्। भानुमानौपमन्यवः आनन्दजाच्चान्धनायनात् आनन्दजश्चान्धनायनः शाम्बाच्छार्कराक्ष्यात् काम्बोजाच्चौपमन्यवात्। शाम्बः शार्कराक्ष्यः काम्बोजश्चौपमन्यवो मद्रकाराच्छौङ्गायनेः। मद्रकारः शौङ्गायनिः स्वातेरौष्ट्राक्षेः स्वातिरौष्ट्राक्षिः सुश्रवसो वार्षगण्यात् सुश्रवा वार्षगण्यः प्रातरह्नात् कौहलात्। प्रातरह्नः कौहलः केतोर्वाज्यात्।

केतोर्वाद्यो मित्रविन्दात् कौहलात्। मित्रविन्दः कौहलः सुनीथात् कापटवात्। सुनीथः कापटवः सुतेमनसः शाण्डिल्यायनात्। सुतेमनाः शाण्डिल्यायनोंऽशोर्धानंजयात्। (प्रथम खण्ड)

अंशुर्धानंजयोऽमावास्याच्छाण्डिल्यायनाद्राधाच्च गौतमात्। राधो गौतमो गातुर्गौतमात् पितुः। गाता गौतमः संवर्गजितो लामकायनात् संवर्गजिल्लामकायनः शाकदासात् भाडितायनात्। शाकदासो भाडितायनो विचक्षणात्ताण्ड्यात्। विचक्षणस्ताण्ड्यो गर्दभीमुखाच्छाण्डिल्यायनात्। गर्दभीमुखशाण्डिल्यायन उदरशाण्डिल्यात् पितुः। उदरशाण्डिल्योऽतिधन्वनश्च शौनकान्मशकाच्च गार्ग्यात्। मशको गार्ग्यः स्थिरकात् गार्ग्यात् पितुः। स्थिरको गार्ग्यो वासिष्ठाच्चैकितायनेयात्। वासिष्ठश्चैकितायनेयनो वासिष्ठादारहेण्याद्राजन्यात्। वासिष्ठ आरेहण्यो राजन्यः सुमन्त्रात् बाभ्रवात् गौतमात्। सुमन्त्रो बाभ्रवो गौतमः शूषाद्वाह्नेयाद्भारद्वाजात्। शूषो वाह्नेयो भारद्वाजोऽरालाद्दार्तेयाच्छौनकात्। अरालो दार्तेयः शौनको दृतेरैन्द्रोताच्छौनकात् पितुः। दृतिरैद्रोतः शौनक इन्द्रोताच्छौनकात् पितुरेव। इन्द्रोतः शौनको वृषशुष्माद् वातावतात्। वृषशुष्मो वातावतो निकोथकात् भायजात्यात्। निकोथको भायजात्यः प्रतिथिर्देवतरथात्। प्रतिथिर्देवतरथो देवतरस शावशायनात् पितुः। देवतराः शावशायनः शवसः पितुरेव। शवा अग्निभुवः काश्यपात्। अग्निभूः काश्यप इन्द्रभुवः काश्यपात्। इन्द्रभूः काश्यपो मित्रभुवः काश्यपात्। मित्रभूः काश्यपो विभण्डकात् काश्यपात् पितुः। विभण्डकः काश्यप ऋष्यशृंगात् काश्यपात् पितुः। ऋष्यशृगेः काश्यपः काश्यपात् पितुरेव। काश्यपोऽग्नेः। अग्निरिन्द्रात्। इन्द्रो वायोः। वायुर्मृत्योः। मृत्युः प्रजापतेः। प्रजापतिर्ब्रह्मणः। ब्रह्मा स्वयम्भूः। (द्वितीय खण्ड)

क्र०सं०	शिष्य	गुरु
१	शर्वदत्त गार्ग्य ने	रुद्रभूति द्राह्यायण से
२	रुद्रभूति द्राह्यायण ने	त्राता ऐषुमत से
३	त्राता ऐषुमत ने	निगड पार्णवल्कि से
४	निगड पार्णवल्कि ने	गिरिशर्मा काण्ठेविद्धि से
५	गिरिशर्मा काण्ठेविद्धि ने	ब्रह्मवृद्धि छान्दोगमाहकि से

क्र०सं०	शिष्य	गुरु
६	ब्रह्मवृद्धि छान्दोगमाहकि ने	मित्रवर्चा स्थैरकायन से
७	मित्रवर्चा स्थैरकायन ने	सुप्रतीत औलुन्ध्य से
८	सुप्रतीत औलुन्ध्य ने	बृहस्पतिगुप्त शायस्थि से
९	बृहस्पतिगुप्त शायस्थि ने	भवत्रात शायस्थि से
१०	भवत्रात शायस्थि ने	कुस्तुक शार्कराक्ष्य से
११	कुस्तुक शार्कराक्ष्य ने	श्रवणदत्त कौहल से
१२	श्रवणदत्त कौहल ने	सुशारद शालंकायन से
१३	सुशारद शालंकायन ने	ऊर्जयन् औपमन्यव से
१४	ऊर्जयन् औपमन्यव ने	भानुमान औपमन्यव से
१५	भानुमान औपमन्यन ने	आनन्दज अन्धनायन से
१६	आनन्दज अन्धनायन ने	शाम्ब शार्कराक्ष और काम्बोज औपमन्यव से
१७	शाम्ब शार्कराक्ष्य और काम्बोज औपनयन ने	मद्रकार शौंगायनि से
१८	मद्रकार शौंगायनि ने	स्वाति औष्ट्राक्षि से
१९	स्वाति औष्ट्राक्षि ने	सुश्रवा वार्षगण्य से
२०	सुश्रवा वार्षगण्य ने	प्रातरन्ह कौहल से
२१	प्रातरन्ह कौहल ने	केतोर्वाद्य से
२२	केतोर्वाद्य ने	मित्रविन्द कौहल से
२३	मित्रविन्द कौहल ने	सुनीथ कापटव से
२४	सुनीथ कापटव ने	सुतेमना शाण्डिल्यायन से
२५	सुतेमना शाण्डिल्यायन ने	अंशु धानंजय से
२६	अंशु धानंजय ने	अमावस्या शाण्डिल्यायन, राधागौतम से
२७	राधागौतम ने	गातागौतम से
२८	गातागौतम ने	संवर्गजित् लामकायन से
२९	संवर्गजित् लामकायन ने	शाकदास भाडितायन से

क्र०सं०	शिष्य	गुरु
३०	शाकदास भाडितायन ने	विचक्षण ताण्ड्य से
३१	विचक्षण ताण्ड्य ने	गर्दभीमुख शाण्डिल्यायन से
३२	गर्दभीमुख शाण्डिल्यायन ने	उदरशाण्डिल्य (अपने पिता से)
३३	उदरशाण्डिल्य ने	अतिधन्वा शौनक और मशकगार्ग्य से
३४	मशकगार्ग्य ने	स्थिरक गार्ग्य अपने पिता से
३५	स्थिरक गार्ग्य ने	वासिष्ठ चैकितायनेय से
३६	वासिष्ठ चैकितायनेय ने	वासिष्ठ आरेहण्य राजन्य से
३७	वासिष्ठ आरेहण्य राजन्य ने	सुमन्त्रबाभ्रव गौतम से
३८	सुमन्त्रबाभ्रव गौतम ने	शूषवान्हेय भारद्वाज से
३९	शूषवान्हेय भारद्वाज ने	अराल दार्तेय शौनक से
४०	अराल दार्तेय शौनक ने	दृति ऐन्द्रोत शौनक से
४१	दृति ऐन्द्रोत शौनक ने	इन्द्रोत शौनक पिता से
४२	इन्द्रोत शौनक ने	वृषशुष्म वातावत से
४३	वृषशुष्म वातावत ने	निकोथक भायजात्य से
४४	निकोथक भायजात्य ने	प्रतिथि देवतरथ से
४५	प्रतिथि देवतरथ ने	देवतरस् शावशायन पिता से
४६	देवतरस् शावशायन ने	शवा पिता से
४७	शवा ने	अग्निभू काश्यप से
४८	अग्निभू काश्यप ने	इन्द्रभू काश्यप से
४९	इन्द्रभू काश्यप ने	मित्रभू काश्यप से
५०	मित्रभू काश्यप ने	विभण्डक काश्यप से
५१	विभण्डक काश्यप ने	ऋष्यश्रृंगकाश्यप अपने पिता से
५२	ऋष्यश्रृंग काश्यप ने	काश्यप पिता से
५३	काश्यप ने	अग्नि (आंगिरस) से
५४	आंगिरस (अग्नि) ने	इन्द्र से
५५	इन्द्र ने	वायु (ऋषि) से
५६	वायु (ऋषि) ने	मृत्यु (यम वैवस्वत) से
५७	मृत्यु (यम वैवस्वत) ने	प्रजापति (विवस्वान् अपने पिता) से
५८	प्रजापति ने	ब्रह्मा (कश्यप मारीच) अपने पिता से

अन्या गुरुशिष्यपरम्परा (अर्वाचीना) गोभिलपरम्परा

क्र०सं०	शिष्य	गुरु
१	कालब्रव अर्यमभूति ने	कालब्रव भद्रशर्मा कौशिक से
२	भद्रशर्मा कौशिक ने	पुष्पयशा औदव्रजि से
३	पुष्पयशा औदव्रजि ने	शंकर गौतम से
४	शंकर गौतम ने	अर्यमराधा गोभिल और पूषमित्र गोभिल से
५	पूषमित्र गोभिल ने	अश्वमित्र गोभिल से
६	अश्वमित्र गोभिल ने	वरुणमित्र गोभिल से
७	वरुणमित्र गोभिल ने	मूलमित्र गोभिल से
८	मूलमित्र गोभिल ने	वत्समित्र गोभिल से
९	वत्समित्र गोभिल ने	गौलगुलवीपुत्र गोभिल से
१०	गौलगुलवीपुत्र गोभिल ने	बृहद्वसु (अपने) पिता से
११	बृहद्वसु गोभिल ने	गोभिल से
१२	गोभिल	राधा गौतम से

———

[१४]

गोपथब्राह्मणे ऐतिह्यसन्दर्भाः

अथर्वा प्रजापतिः—

अथर्वा वै प्रजापतिः। (१।४)

अर्थ—अथर्वा (ऋषि भी एक) प्रजापति थे।

मैत्रेयः ग्लावः—

मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगाम स तस्मिन् वसतो विज्ञायोवाच। (३।३१)

अर्थ—ग्लाव मैत्रेय मौद्गल्य के पास आया और रहता हुआ जानकर (जिज्ञासु बन) बोला।

जनमेजयः पारीक्षित्—

जनमेजयो ह वै पारीक्षितो मृगयाञ्चरिष्यन् हंसाभ्यामाशिक्षन्नुपावतस्थ इति। (२।५)

अर्थ—जनमेजय पारीक्षित मृगया (शिकार करता हुआ) घूम रहा था हंसो से शिक्षा लेता हुआ ठहर गया।

विचारी काबन्धिः मान्धाता च—

विचारी ह वै काबन्धिः कबन्धस्याथर्वणस्य पुत्रो मेधावी मीमांसकोऽनूचान आस। स ह स्वेनातिमानेन मानुषवित्तं नेयाय। तं मातोवाच—त एवैतदन्नमवोचंस्त इममेषु कुरुपञ्चालेष्वङ्गमगधेषु काशिकौसल्येषु शाल्वमतयेषु शिव्युशीनरेषूदीच्येष्वन्नमदन्तीत्यथ वयं तवैवातिमानेनानन्नाद्या स्मो वत्स वाहनमन्विच्छेति। स मान्धातुर्यौवनाश्वस्य सार्वभौमस्य राज्ञः सोमं प्रसूतमाजगाम। (२।६)

अर्थ—कबन्ध आथर्वण का पुत्र, विचारी काबन्धि बड़ा विद्वान्, मेधावी, मीमांसक और वेदज्ञ था। अपने स्वाभिमान के कारण उसने मानवीय सम्पत्ति की इच्छा नहीं की। उसकी माता बोली—ये (ऋषिगण) अन्न का ही क्या कहते हैं, वे कुरु पंचाल, अंग बंग, मगध, काशी कौसल, शाल्व, मतय शिवि और उशीनर उदीच्य जनपदों में अन्नादि का उपभोग करते हैं। हम तुम्हारे स्वाभिमान के कारण अनन्नाद्य (सम्पत्ति होने से वंचित) हैं।

तब विचारी काबन्ध सार्वभौम सम्राट् मान्धाता यौवनाश्व के सोमयज्ञ में आया।

उद्दालक आरुणिः—

उद्दालको ह वा आरुणिरुदीच्यानान् वृतो धावयाञ्चकार तस्य ह निष्क उपाहित बभूव। तद्धोदीच्यान् ब्राह्मणान् भयं विभेद, उद्दालको ह वा अयमायाति कौरुपाञ्चालो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रः, स ऊर्ध्वं पर्यादधीत केनेमं वीरेण प्रति संयतामहा इति।···तं ह स्वैदायनं शौनकमूचुः, "स्वैदायन त्वं वै नो ब्रह्मिष्ठोऽसि। (३।६)

अर्थ—(विद्याध्ययन समाप्त करके) समावृत उद्दालक आरुणि उदीच्य जनपदों में भ्रमण कर रहा था, उसने स्वर्ण (विजय) माला पहन रखी थी, उदीच्य ब्राह्मणों में भय का संचार हुआ कि उद्दालक आ रहा है, वह कुरुपञ्चालों का ब्राह्मण महान् विद्वान् और याज्ञिक है, कहीं वह हमारे ऊपर नहीं हो जाये, किस वीर (विद्वान्) के द्वारा उसे परास्त करें। वे स्वैदायन शौनक से बोले—"तुम ही हमारे मध्य सबसे महान् वेदज्ञ हो।"

प्रियमेधा—

प्रियमेधा ह वै भरद्वाजा यज्ञविदो मन्यमानास्ते ह न कञ्जना वेदविदमुपयन्ति। (३।१२)

अर्थ—प्रियमेध नाम के भरद्वाजवंशज ब्राह्मण अपने को बड़ा भारी याज्ञिक विद्वान् मानकर किसी भी वेदज्ञ के पास नहीं जाते थे।

वसिष्ठः—

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्। तं वसिष्ठ एव प्रत्यक्षमपश्यत्। सोऽबिभेत् इतरेभ्य ऋषिभ्यो मा प्रवोचदिति। सोऽब्रवीत् ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि। (२।१३ उ० भा०)

अर्थ—दूसरे ऋषियों ने इन्द्र को प्रत्यक्ष नहीं देखा, केवल वसिष्ठ ने उसे प्रत्यक्ष देखा। वसिष्ठ डरा कि यह इन्द्र दूसरे ऋषियों को वेद न पढ़ाये। इन्द्र ने आकर वसिष्ठ से कहा—'मैं तुमको ब्राह्मण (ग्रन्थ) पढ़ाऊंगा।

वामदेवः—

तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्। तान् विश्वामित्रदृष्टान् वामदेवो असृजत। (उ० भा० ६।१)

अर्थ—सम्पातमन्त्रों का दर्शन सर्वप्रथम विश्वामित्र ने किया, तदनन्तर विश्वामित्रदृष्ट उन्हीं सम्पातों को वामदेव ऋषि ने पुनः रचा।

दन्तावलो धौम्रः

दन्तावलो धौम्र यावतिं तावतिं काले पारीक्षितं जनमेजयमभ्याजगाम···(२।५)

अर्थ—दन्तावल धौम्र जब कभी भी पारीक्षित जनमेजय के पास आ जाते थे।

पुरुष: नारायण:—

पुरुषं ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच। (५।११)

अर्थ—प्रजापति ने पुरुष नारायण से कहा।

ऐतशायन:—

ऐतशायना आजानेयाः सन्तः पापिष्ठा अन्येषां बालहृतः॥ (२।६)

अर्थ—'ऐतशायन बलिष्ठ होते हुए भी पापी और दूसरों का भाग खाने वाले होंगे।

प्रेदि: कौशाम्बेय:—

प्रेदिर्ह कौशाम्बेयः कौसरुबिन्दुद्दालक आरुणौ ब्रह्मचर्यमुवास। (४।२४)

अर्थ—प्रेदि कौशाम्बेय कौसरुबिन्दु उद्दालक आरुणि के यहां ब्रह्मचारी रहा।

अत्रि:—

··आदित्यं हि तमो जग्राह तदत्रिरपनुनोद। तं होवाच वरं वृणीष्वेति। स होवाच दक्षिणीया मे प्रजा स्यादिति। तस्मादात्रेयाय प्रथमं दक्षिणा यज्ञे दीयन्ते इति ब्राह्मणम्। (२।१७)

अर्थ—आदित्य को अन्धकार (अज्ञान) ने घेर लिया। उसका अन्धकार अत्रि (ऋषि) ने दूर किया। आदित्य ने कहा—'वर मांगो।' ऋषि ने कहा—"मेरी प्रजा दक्षिणावाली हो।" इसलिए आत्रेय ब्राह्मण को सर्वप्रथम दक्षिणायें दी जाती हैं।

श्वेतकेतुरारुणेय: (३।३)—श्वेतकेतु आरुणेय।

प्राचीनयोग्य: (३।१७)—आचार्य प्राचीनयोग्य।

बुडिल आश्वतरि: (२ ६)—अश्वतर आचार्य का पुत्र बुडिल आश्वतरि।

श्रुतर्षि: गिरिजो बाभ्रव्यश्च—

इमं श्रुतर्षिः पशोर्विभागं विदांचकार, तमु गिरिजाय बाभ्रव्यायान्यो मनुष्येभ्यो प्रोवाच। (३।१८)

अर्थ—(यज्ञ) में पशु के अंगों का विभाग श्रुतर्षि ने जाना, उसको उसने गिरिज बाभ्रव्य को बताया और बाभ्रव्य ने दूसरे मनुष्यों को बताया।

— — — —

ऐतरेयारण्यके ऐतिह्यसन्दर्भाः

सुदास शब्दस्यार्थः—

शोभनं फलं दानं यस्येन्द्रस्यास्ति सोऽयमिन्द्रः सुदासः। (१।२।२)

अर्थ जिस किसी राजा (या मनुष्य) या इन्द्र का श्रेष्ठ दान होता है वही 'सुदास' कहा जाता है।

भरद्वाजः—

भरद्वाजो ह वा ऋषीणामनूचानतमो दीर्घजीवितमस्तपस्वितम आस। (१।२।२)

अर्थ—भरद्वाज ऋषियों में सर्वाधिक विद्वान्, दीर्घजीवी और तपस्वी थे।

हिरण्यदन् बैदः—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह हिरण्यदन् बैदः। (२।१।५)

अर्थ—बिद के पुत्र ऋषि हिरण्यदन्त बैद ने यह बात कही।

महिदास ऐतरेयः (२।१।८)—महिदास ऐतरेय।

माण्डूकेयो माक्षव्यः (३।१।१)—मक्षु का पुत्र माण्डूकेय माक्षव्य।

शूरवीरो माण्डूकेयः (३।१।१)—शूरवीर माण्डूकेय।

शाकल्यः (१।२।१)—शाकल्य।

ह्रस्वो माण्डूकेयः (३।१।५)—ह्रस्व माण्डूकेय।

मध्यमः प्रातीबोधीपुत्र माण्डूकेयः (३।१।५)—प्रातीबोधीपुत्र मध्यम माण्डूकेय।

जातूकर्ण्यगालवाग्निवेश्यायनाः (५।३।३)—जातूकर्ण्य, गालव और आग्नि-वेश्यायन।

तैत्तिरीयारण्यके ऐतिह्यसन्दर्भाः

केचन ऋषयः—

पञ्चकर्णो वात्स्यायनः। सप्तकर्णश्च प्लाक्षिः। प्राणात्रातः गार्ग्यः (१७ २-३)

अर्थ—पंचकर्ण वात्स्यायन, सप्तकर्ण प्लाक्षि और प्राणाव्रात गार्ग्य।

वत्स ऋषिः—

विष्णुना विधृते भूमी इति वत्सस्य वेदना। (१।८।२)

अर्थ—पृथिवी और आकाश (नक्षत्र) विष्णु (गुरुत्वाकर्षण बल) द्वारा धार्यमाण (स्थिर) हैं, ऐसा वत्स का विज्ञान है।

व्यासः पाराशर्यः—

स होवाच व्यासः पाराशर्यः। (१।६।२)

अर्थ—व्यास पाराशर्य ने यह बात कही।

अष्टौ आदित्याः

मित्रश्च वरुणश्च धाता चार्यमा च।
अंशश्च भगश्च इन्द्रश्च विवस्वांश्चेति एते। (१।१३।३)

अर्थ—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान् आठ आदित्य।

प्रचेताः—

प्रचेता वा रुद्रैः पश्चादुपदधताम्। (१।२०।१)

अर्थ—प्रचेता को रुद्रों के पश्चात् रखें।

शण्डिलाः (१।२२।१०)—(शण्डिल के वंशज)—**शाण्डिल।**

वातरशना ऋषयः—

ततो अरुणकेतवो वातरशना ऋषयः उदतिष्ठन्। ये नखाः। ते वैखानसाः। ये बालाः। ते बालखिल्याः।

अरुणकेतु (लाल या गेरुआ केतु वाले) वात (वायु) भक्षण करने वाले ऋषि खड़े हुए। नख वाले वैखानस और बाल (तुल्य) बालखिल्य।

अरुणः स्वायम्भुवः (१।२६।१)—**स्वयम्भू पुत्र अरुण।**

कुबेरो वैश्रवणः (तस्य वैशिष्ट्यम्)—

अद्धयस्तिरोधाऽजायत तत्र वैश्रवणः सदा।
तिरोधेहि सपत्नान्न ये अपोश्नन्ति केचन।
त्वाष्ट्रीं मायां वैश्रवणः रथं सहस्रबन्धुरम्।
पुरुचक्रं सहस्राश्वम् आस्थायायाहि नो बलिम्।
यस्मै भूतानि बलिमावहन्ति धनं गावो हस्तिहिरण्यमश्वान्।
सुदर्शने च क्रौञ्चे च मैनाके च महागिरौ।
सनद्वारदृगमत्ता संहार्यं नगर तव।

हिरण्यनाभये वितुदये कौबेराय बलिः ।
क्षत्रं क्षत्रं वैश्रवणः । ब्राह्मणा वयं स्म ।
राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।
स मे कामान् कामकाय मह्यम् कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः । (१।३१।५-६)

अर्थ—कुबेर वैश्रवण मायावी ने जन्म लिया । हे कुबेर ! हमारे शत्रुओं को दूर रखो, जो दुष्ट जल में विचरण करते हैं । आप त्वाष्ट्री माया से निर्मित सहस्र वन्धनों, बहुत पट्टियों वाले और सहस्रों घोड़े (या सहस्र अश्वशक्ति) वाले रथ पर आओ और हमारी बलि को ग्रहण करो ।

जिसको प्राणी (मनुष्य) बलि देते हैं—धन, गाय, हाथी, ऊंट (हिरण्य) और अश्व के रूप में ।

सुदर्शन पर्वत, क्रौंच पर्वत और मैनाक पर्वत पर आपका सनातन द्वार और आंखों वाले अजेय नगर हैं । हिरण्यनाभि और बड़ी तोंद वाले वैश्रवण कुबेर को बलि । वैश्रवण क्षत्रिय है हम ब्राह्मण हैं । राजाधिराज (यक्षेश्वर) कुबेर जो कठोर बल को सहन करने वाले हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं । वह कुबेर मेरे सदृश इच्छा वाले की कामना पूरी करे । कुबेर कामेश्वर है । महाराज, वैश्रवण कुबेर को नमस्कार ।

राक्षसाः—

रक्षांसि ह वा पुरोनुवाके तपोग्रमतिष्ठन्त । तान् प्रजापतिः रणेनापामन्त्रयत तानि वरमवृणीताऽऽदित्यो नो योद्धा इति । तानि प्रजापतिरब्रवीद्योधयध्वमिति । तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति । (२।२)

अर्थ—प्राचीनकाल में राक्षसों ने उग्र तप किया । प्रजापति ने उन्हें युद्ध के लिए मन्त्रणा की । राक्षसों ने वर मांगा कि हमारे आदित्य से लड़ेंगे । प्रजापति ने कहा— 'लड़ो ।' मन्देह राक्षसों को अरुणद्वीप में फेंक दिया ।

अजाः पृश्नयः—

अजाव् ह पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानर्षत्त ऋषयो- ऽभवन्, तदृषीणामृषित्वम् । (२।६।१)

अर्थ—अजपृश्नि नाम के ऋषियों को तपस्या करते हुए, वेद (स्वयम्भू) स्वयं उनके पास आया, अतः वे ऋषि होगये, यही ऋषियों का ऋषित्व है ।

सप्तऋषयः (विशिष्टाः)

महाहविर्होता । सत्यहविरध्वर्युः । अच्युतपाजा अग्नीत् ।

अच्युतमना उपवक्ता। अनाधृष्यश्चातिधृष्यश्च यज्ञस्याभिगरौ। अयास्य उद्गाता।

अर्थ—महाहविर्ऋषि होता थे। सत्यहवि (वासिष्ठ) अध्वर्यु थे। अच्युतपाजा अग्नीत्, अच्युतमना उपवक्ता, अनाधृष्य और अतिधृष्य यज्ञ के अभिगर्ता (स्तुतिकर्ता) थे तथा अयास्य (आङ्गिरस) उद्गाता थे।

देवानां सत्रम्—

देवा वै सत्रमासत। ऋद्धिपरिमितं यशस्कामाः तेऽब्रुवन्। यन्नः प्रथमं यश ऋच्छात्। सर्वेषां नस्तत्सहासदिति। तेषां कुरुक्षेत्रं वेदिरासीत्। खाण्डवो दक्षिणार्ध आसीत्। तूघ्नमुत्तरार्धः। परीणज्जघनार्धः। मरव उत्करः। तेषां मरवं वैष्णवं यश आर्च्छत्। ...ते देवा अश्विनावब्रुवन्। भिषजौ वै स्थः। इदं यज्ञस्य शिरः प्रतिधत्तमिति। (५।१।६)

अर्थ—देवगण सत्र कर रहे थे। ऋद्धि और यश की कामना से। वे बोले—'पहले हमको यश मिले।' वह सदा हमारे साथ रहे। उनकी कुरुक्षेत्र वेदि थी। खाण्डव वेदि का दक्षिणार्ध था, तूघ्नं उत्तरार्ध तथा परीणत् जघनार्ध था। मरु उत्कर (कूड़ादान) था। उनके यज्ञ को वैष्णव यश प्राप्त हुआ।

वे देवगण अश्विनीकुमारों से बोले—'आप वैद्य हैं।' इस यज्ञ का शिर स्थापित करो।

भृगुर्वारुणिः—

भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। (६।१।१)

अर्थ—भृगु वरुण का पुत्र था। वह अपने पिता के पास गया और बोला—"हे पिताजी! मुझे ब्रह्मज्ञान बताइये। वरुण ने भृगु को ब्रह्मज्ञान सिखाया।

[१६]

कौषीतक्युपनिषदि ऐतिह्यसन्दर्भाः

चित्रो गार्ग्यायणिः—

चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यक्ष्यमाण आरुणिं वव्रे । स ह पुत्रं श्वेतकेतुं प्रजिघाय याजयेति । (१।१)

अर्थ—चित्र गार्ग्यायणि ने यज्ञ करने के लिए (ऋत्विक रूप में) आरुणि (उद्दालक) का वरण किया । आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजा कि (जाओ) "यज्ञ कराओ ।"

कौषीतकिः (२।१)—(कुषीतक का पुत्र) कौषीतकि ।

पैङ्ग्यः (२।२)—मधुक पैङ्ग्य ।

सायंमनः प्रातर्दनिः (२।५) —प्रतर्दन का पुत्र सायंमना ।

शुष्कः भृङ्गारः (२।६)—भृङ्गर का पुत्र शुष्क ।

प्रतर्दनो दैवोदासिः—

प्रतर्दनो ह दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम । युद्धेन पौरुषेण च । तं हेन्द्र उवाच—'प्रतर्दन वरं ददानीति । स होवाच प्रतर्दनः । त्वमेव मे वरं वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यसे इति ।··· त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनम् अरुरुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम् । बह्वीः संधा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालकञ्जान् । तस्य मे लोम चचामीयत । (३।१)

अर्थ—दिवोदास (काशिराज) का पुत्र प्रतर्दन इन्द्र के प्रियधाम (भवन= महल) में गया । युद्ध में पौरुष (वीरता) के कारण (इन्द्र ने उसे बुलाया) । इन्द्र ने उससे कहा—'हे प्रतर्दन ! मैं तुम्हें वर देना चाहता हूं ।' प्रतर्दन ने उत्तर दिया—'हे देवराज ! आप ही मेरे लिए वह वर दीजिये, जिससे आप मनुष्य के लिये हितकारी समझते हैं ।'···इन्द्र ने कहा—'मैंने त्रिशीर्षा त्वाष्ट्र (विश्वरूप) को मारा । अरुरुप्रमुख यति (असुरों) को सालावृकों के हवाले कर दिया । अनेक

सन्धियों को तोड़कर मैंने ऊर्ध्वलोक में प्रह्लादवंशजों को मारा, अन्तरिक्ष में पौलोमों और पृथ्वी पर कालकंजों को मारा पर मेरा बाल बांका नहीं हुआ।

गार्ग्यो बालाकिः अजातशत्रुश्च—

अथ गार्ग्यो ह वै बालाकिरनूचानः संस्पृष्ट आस। सोऽवसदुशीनरेषु सवशमत्स्येषु कुरुपंचालेषु काशिविदेहेष्विति। स हाजातशत्रुं काश्यमेत्योवाच—'ब्रह्म ते ब्रवाणीति' तं होवाचाजातशत्रुः सहस्रं दद्मस्ते इत्येतस्यां वाचि। जनको जनक इति वा उ जना धावन्तीति।

तं होवाचाजातशत्रुः—मृषा वै किल या समवादयिष्ठाः। ब्रह्म ते ब्रवाणीति। तत उ ह बालाकिः समित्पाणिः प्रतिचक्रम उपायानीति। तं होवाचाजातशत्रुः। (४।१८)

अर्थ—गार्ग्य बालाकि नाममात्र से ही वेदज्ञ था। वह उशीनर, शवस (वसाति), मत्स्य, कुरु, पंचाल, काशि और विदेह जनपदों में रहा। वह काशिराज अजातशत्रु के पास आकर बोला—'मैं आपको ब्रह्मज्ञान बताऊंगा।' अजातशत्रु ने उससे कहा—'मैं आपके इस वाक्य के लिए एक सहस्र (मुद्रायें) देता हूं। लोग केवल जनक ही जनक का नाम लेकर दौड़ते रहते हैं।

अजातशत्रु ने बालाकि गार्ग्य से कहा—'आपका सब ज्ञान मिथ्या है। अब मैं आपको ब्रह्म का उपदेश देता हूं। तब गार्ग्य बालाकि ने शिष्यवत् समित्पाणि होकर (गुरु के रूप में) अजातशत्रु के पास ज्ञान होने की प्रतिकामना की। तब अजातशत्रु ने उसको ब्रह्मज्ञान दिया।

———

[१७]

मैत्रायण्युपनिषदि ऐतिह्यसन्दर्भाः

बृहद्रथः—

बृहद्रथो वै नाम राजा विराज्ये पुत्रं निधापयित्वा इदमशाश्वतं मन्यमानः शरीरं वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम। स तत्र परमं तप आस्थायऽऽदित्यमुदीक्षमाण ऊर्ध्वबाहुतिष्ठति। अन्ते स सहस्रा-स्यान्तिकमाजगामाग्निरिवाधूमकेतुस्तेजसा निर्दहन्निवात्मविद् भगवान् शाकायन्यः—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति राजान-मब्रवीत्... ऐक्ष्वाकान्यान् कामान् वृणीष्वेति शाकायन्यः राजेमां गाथां जगाद।

परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्न-कुवलयाश्वयौवनाश्ववध्र्यश्वाश्वपतिशशबिन्दुहरिश्चन्द्राम्बरीषन-हुषशर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादयः । अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः। (१-४)

अर्थ— बृहद्रथ (ऐक्ष्वाक) नाम का राजा अपने राज्य पर पुत्र को बिठाकर और इस शरीर को नाशवान् समझकर वैराग्यभाव से जंगल में गया। वहां उसने परम तप किया। वह तप करते हुए सूर्य को देखता हुआ ऊपर भुजा उठाकर तप करता था। अन्त में सहस्रों दिन पश्चात् उसके पास तेजस्वी, बिना धुएं की आग के समान तेजस्वी, तेज से दूसरों को भस्म सा करते हुए महान् ब्रह्मज्ञानी भगवान् शाकायन राजा के पास आये और बोले—'राजन्! उठो उठो और मुझसे वर मांगो। हे ऐक्ष्वाक! दूसरी इच्छा की पूर्ति के लिए भी वर मांगो।...राजा ने गाथा गाई।

दूसरे चक्रवर्ती और महावीर राजा हुए हैं—(उनमें) कुछ हैं—सुद्युम्न भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व (मान्धाता), वध्र्यश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, नहुष, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त, भरत इत्यादि।

———

छान्दोग्योपनिषदि ऐतिह्यसन्दर्भाः

अङ्गिराः—

ते हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्रे। (१।२।१०)

अर्थ—अंगिरा ने उद्गीथ की उपासना की।

बृहस्पतिः—

तेन तं ह बृहस्पतिरुद्गीथमासांचक्रे। (१-२।११)

अर्थ—बृहस्पति ने उद्गीथ की उपासना की।

अयास्यः—

तेन तं हायास्य उद्गीथमुपासांचक्रे। (१।२-१२)

अर्थ—तदनन्तर अयास्य (आंगिरस) ने उद्गीथ की उपासना की।

बको दाल्भ्यः—

तेन तं ह बको दाल्भ्यो विदांचकार। स ह नैमिषीयानामुद्गाता बभूव। (१।२।१३)

अर्थ—तदनन्तर, इसको बक दाल्भ्य ने जाना। वह नैमिषारण्यवासी ऋषियों का उद्गाता हुआ।

उद्गीथे कुशला आचार्यत्रयी—

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः। शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति। (१।८।१)

अर्थ—उद्गीथ (गायन) में तीन प्रसिद्ध आचार्य (ऋत्विक्) हुए—शिलक शालावत्य, चैकितायन दाल्भ्य और प्रवाहण जैवलि।

अतिधन्वा शौनकः—

तं हैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वोवाच। (१।९।३)

अर्थ—इस (उद्गीथ शास्त्र) को अतिधन्वा शौनक ने उदर शाण्डिल्यायन से कहा।

उषस्तिश्चाक्रायणः—

मटचीहतेपु कुरुष्वटिकया सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास।

अर्थ—कुरुदेश में ओलों से फसल नष्ट हो जाने पर जाया अटिका के साथ उषस्ति चाक्रायण हाथियों के ग्राम में रहता था।

बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः—

बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुदवव्राज। तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव, तमन्ये श्वान उपसमेत्युचुरन्नं वो भगवनागायत्व-शनायाम वा इति। (१।१२।१-२)

अर्थ - बक दाल्भ्य या अपरनाम ग्लाव मैत्रेय स्वायाध्याय के लिए चले। (मार्ग में) उनके सामने एक सफेद कुत्ता आया, उससे और दूसरे कुत्तों ने कहा—'भगवन् हमारे भोजन के लिए गाइये, हम भूखे हैं।

अथर्वाङ्गिरसः—

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्। (३।४।२)

अर्थ—अथर्वा और अंगिरा के वंशज ऋषियों ने ही इतिहास और पुराणों का प्रवचन किया।

मधुविद्यापरम्परा—

ब्रह्मा प्रजापतय उवाच, प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजास्तद्धैतदुद्दाल-कायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच। (३।११।४)

अर्थ—ब्रह्मा (परमेष्ठी कश्यप) ने प्रजापति (विवस्वान्) को (मधुविद्या) पढ़ाया, प्रजापति ने मनु को और मनु ने प्रजा को (गुरुशिष्यपरम्परा द्वारा) पढ़ाया। तदनन्तर पिता (अरुण) ने अपने ज्तेष्ठ पुत्र उद्दालक आरुणि को यह विद्या या ब्रह्मज्ञान बताया।

महिदास ऐतरेयः, तस्यायुः—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः।···स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्। (३।१६।७)

अर्थ—महिदास ऐतरेय (वेद का महान्) विद्वान् था, वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहा।

देवकीपुत्रः कृष्णः—

तद्धैतद्धारे आङ्गिरस कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव। सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रति प्रद्येताक्षितमस्यच्युत-मसि प्राणसंशितमसीति। (३।१७।६)

अर्थ—घोर आंगिरस ऋषि ने यह (ब्रह्मविद्या) देवकीपुत्र कृष्ण को पढ़ाकर कहा - 'आप अपिपासु—(अजिज्ञासु-पूर्णज्ञानी) हो जाओगे (और वे वैसा ही)

होगये और वह इन तीन गुणों को प्राप्त होगा—अक्षित, अच्युत और प्राणसंशित (अतिसूक्ष्मप्राण)।

सयुग्वा रैक्वः जानश्रुतिः पौत्रायणश्च—

जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति।

अथ ह हंसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवं हंसो हंसमभ्युवाद होहोऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्त्वा मा प्रधाक्षीरिति।

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तं सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति। यो नु कथं सग्युग्वा रैक्व इति।

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव। संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति यः कथं सयुग्वा रैक्व इति।

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश। तं हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहं ह्यरा इति ह प्रतिजज्ञे। स ह क्षत्ताविदमिति प्रत्येयाय।

तं हाभ्युवाद रैक्वेदं सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायायं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति। तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः शूद्राननैव मुखेनालापयिष्यथा इति हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास स तस्मै होवाच। (४।१-२)

अर्थ—जानश्रुति पौत्रायण नाम का राजा श्रद्धावश बहुत दान, भोजन देनेवाला था। उसने अपने राज्य में सर्वत्र धर्मशालायें बनवाईं कि यहां लोग मेरा अन्न खायेंगे।

एक रात, कुछ हंस (दिव्यपुरुष) उड़कर आये, उनमें एक ने दूसरे से कहा—'अरे भल्लाक्ष ! ओ भल्लाक्ष ! देखो ! जानश्रुति पौत्रायण का तेज सूर्य के समान फैला हुआ है, तू उसका स्पर्श न कर, कहीं वह (तेज) तुझे भस्म न कर दे।

तब उस हंस ने प्रत्युत्तर दिया—'तू ! व्यर्थ ही इस राजा की इतनी बड़ाई कर रहा है। क्या तूने उस सयुग्वा (गाड़ी वाले) रैक्व का नाम सुना है। तब उसने पूछा—वह सयुग्वा रैक्व कैसा है।

हंसों की वार्ता को जानश्रुति पौत्रायण ने सुन लिया। उसने (प्रातः) उठते

ही क्षत्ता (सेवक) से कहा—'अरे तू गाड़ी वाले रैक्व के समान मेरी स्तुति क्यों करता है।' सेवक ने पूछा—'यह सयुग्वा रैक्व कौन है।'

(सेवक उसे ढूंढ़ने गया)—उसने एक छकड़े के नीचे खाज खुजलाते हुए रैक्व को देखा और उसके पास बैठ गया और पूछा—'क्या आप ही सयुग्वा रैक्व हैं। तब रैक्व ने कहा—'हां मैं ही हूं।' तब इस प्रकार पहचानकर लौट आया।

(राजा रैक्व के पास जाकर बोला)—'हे रैक्व! ये सहस्र गायें, यह निष्क (स्वर्णमाला) और खच्चरियों से जुता रथ यह पत्नी और यह ग्राम जिसमें आप बैठे हैं, ले लीजिये और हे भगवन्! मुझे ज्ञान दीजिये।

तब उस (राजकन्या) को (विद्या ग्रहण का द्वार) समझते हुए रैक्व बोला—'अरे शूद्र! तू ये (वस्तुयें) लाया है। क्या तू इस विद्या ग्रहण के द्वार (दान) से ही मुझसे ज्ञान लेना चाहता है।

इस प्रकार जहां रैक्व रहता था वह रैक्वपर्ण नाम का ग्राम महावृष देश में प्रसिद्ध है।

कापेयः शौनकः, अभिप्रतारी काक्षसेनिश्च

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणां च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः। (४।३।५)

अर्थ—एक समय शौनक कापेय (कपि ऋषि का वंशज) और अभिप्रतारी काक्षसेनि को जब भोजन परोसा जा रहा था, तब एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा मांगी। किन्तु उन्होंने उसे भिक्षा नहीं दी।

सत्यकामो जाबालः—

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवतस्यामि किं गोत्रो न्वहमस्मीति सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद···जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो त्वमसि,···स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति। स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच।

(४।४।१-३)

अर्थ—सत्यकाम जाबाल ने अपनी माता जबाला से मन्त्रणा की कि 'हे माता! मैं ब्रह्मचारी (वेद पढूंगा) बनूंगा। मेरा क्या गोत्र है।' वह उससे बोली—'हे वत्स! मैं नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है। तुम अपने को 'सत्यकाम जाबाल' ही बताना।···वह हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर बोला।

उपकोसलः कामलायनः—

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे—जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास। तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन् परिचचार।

अर्थ—उपकोसल कामलायन, सत्यकाम जाबाल के (गुरुकुल में) ब्रह्मचारी रहा। उसने बारह वर्ष गुरु की अग्नियों की सेवा की।

गोश्रुतिः वैयाघ्रपाद्यः—

सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपाद्यायोक्त्वोवाच। (५।२।३)

अर्थ—सत्यकाम जाबाल ने गोश्रुति वैयाघ्रपाद को प्रवचन दिया।

श्वेतकेतुरारुणेयः—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानां समितिमेयाय तं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच। (५।३।१)।

अर्थ—आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालों की सभा में गया, वहां प्रवाहण जैवलि ने उससे पूछा।

पञ्च महाशाला महाश्रोत्रिया ब्राह्मणाः—

प्राचीनशाल औपमन्यवः, सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमांसाञ्चक्रुः को नु आत्मा किं ब्रह्मेति। ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति ते हन्ताभ्यागच्छामेति तं हाभ्याजग्मुः। तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकयः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तं ह हन्ताभ्यागच्छामेति तं हाभ्याजग्मुः। तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार। स ह प्रातः संजिहान उवाच—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥ (५ ११।१–४)

अर्थ—पांच महाशाल (जिनके अपने महाविद्यालय थे) और महाश्रोत्रिय (अनूचान वेदज्ञ) विद्वान् थे— प्राचीनशाल औपमन्यव, सत्ययज्ञ पौलुषि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य और बुडिल आश्वतराश्वि। वे इकट्ठे होकर विचार करने लगे कि 'आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है। उन्होंने निश्चय किया कि आरुणि उद्दालक ने वैश्वानर आत्मा का अध्ययन किया है और वह आत्मा को जानते हैं, चलो उनसे चलकर पूछें। (वे उद्दालक के पास गये तब उन्होंने कहा)—"हे भाग्यवानो! (मैं आत्मा को सम्यक् नहीं जानता) अश्वपति कैकय ने वैश्वानर आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया है, चलो वहीं चलें।

उनके आने पर अश्वपति कैकय ने उनका पृथक्-पृथक् अर्घ्यादि से स्वागत किया और प्रातः आकर बोला—'हे आचार्यो! मेरे राज्य में न चोर है, न कोई कायर पुरुष है और न कोई शराबी है और ऐसा व्यक्ति कोई नहीं, जिसने

अग्निहोत्र नहीं किया हो, अविद्वान् कोई नहीं और व्यभिचारी कोई नहीं, तब व्यभिचारिणी होगी कहां से ?'

श्वेतकेतुरारुणेयः—

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस। तं ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम्। न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽनूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति। स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध आस। (६।१।१)

अर्थ—श्वेतकेतु आरुणेय (अरुण का पौत्र और उद्दालक का पुत्र) था। उसके पिता ने कहा—'सौम्य! हमारे कुल (वंश) में कोई भी पुरुष ब्रह्मबन्धु (नीच ब्राह्मण) और बिना वेदाध्ययन के कोई नहीं हुआ। अतः वेद पढ़ो। तब श्वेतकेतु ने बारह वर्ष की आयु से चौबीस वर्ष पर्यन्त सभी वेदों का अध्ययन कर लिया और वह महामनस्वी तथा महान् वेदज्ञ बन गया।

नारदः सनत्कुमारश्च—

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद। ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच। ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं, पित्र्यं राशिं दैवं निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥ (७।१।१-२)

अर्थ—नारदजी सनत्कुमार (कार्तिकेय) के पास आकर बोले—'भगवन्! मुझे ज्ञान बताइये।' सनत्कुमार ने पूछा—'हे नारद! पहिले यह बताइये आपने क्या-क्या पढ़ा है, उसे छोड़कर मैं आगे पढ़ाऊंगा।' तब नारद ने कहा—'हे भगवन्! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चतुर्थ अथर्ववेद का अध्ययन किया है। वेदों के भी वेद इतिहासपुराण को मैं सम्यक् जानता हूं। इनके अतिरिक्त पित्र्य (परलोकविद्या), राशि (गणित) दैव (देवविद्या), विधि (न्यायशास्त्र) वाक्योवाक्यविद्या, ऐकायन (भक्तिशास्त्र), देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या (भौतिकी) क्षत्रविद्या (धनुर्वेद) नक्षत्रविद्या (ज्यौतिष) और सर्पदेवजनविद्या का अध्ययन किया है।

प्रजापतिसकाशे इन्द्रस्य एकशतवर्षाणां ब्रह्मचर्यम्—

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः।

तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः । तस्मादप्यद्येहाददानम् अश्रद्दधानमयजमाहुरासुरो बतेत्यसुराणां ह्येषोपनिषत्प्रतेस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति संस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते।···एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि। वसापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाणीति ।···वसापराणि-द्वात्रिंशतं वर्षाणीति।···वसापराणि पंचवर्षाणीति। स ह्यपराणि पंचवर्षाण्युवास तान्येकशतं सम्पेदुरेते तत्तद्यदाहुरेकशतं ह वै वर्षाणि मघवा प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच।

(८।७-१२)

अर्थ—देव और असुर—दोनों ने जाना कि आत्मज्ञान के बिना कल्याण नहीं, जिस आत्मा को जानने पर व्यक्ति सर्वलोकों और सर्वकामों (इच्छाओं) की प्राप्ति करता है। ऐसा समझकर देवों में इन्द्र और असुरों में विरोचन एक-दूसरे से संविदा (समझौता) किये बिना ही हाथ में समिधा रखकर (शिष्यभाव से) प्रजापति (कश्यप) के पास आये। "आज भी असुर बिना दान बिना (भगवत्) श्रद्धा और बिना यज्ञ असुरगण मृत शरीर को भोजन, वस्त्र और आभूषणों से सजाकर दाह संस्कार (अन्तिम संस्कार) करते हैं और सोचते हैं इस लोक को जीत लेंगे। यही 'असुर उपनिषद्' है।

(इन्द्र के बत्तीस वर्ष ब्रह्मचर्यवास के अनन्तर प्रजापति ने पुनः कहा) हे इन्द्र ! मैं तुझको ब्रह्म (आत्मा) की और व्याख्या (प्रवचन) करूंगा, अतः बत्तीस वर्ष और ब्रह्मचारी रहो।···(प्रजापति ने तीसरी बार पुनः कहा)—'बत्तीस वर्ष और ब्रह्मचारी रहो।' (पुनः चौथी बार कहा)—'पांच वर्ष और वास करो।' अतः पांच वर्ष और वहीं रहा। अतः एक सौ एक वर्ष ब्रह्मचारी रहा। अतः (इतिहास में प्रसिद्ध हुआ कि) इन्द्र प्रजापति के पास एक सौ एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहा। इतने समय तक प्रजापति ने उसे आत्मज्ञान दिया।

विद्यापरम्परा—

तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच। प्रजापतिर्मनवे, मनुः प्रजाभ्यः।

(८।१५।१)

अर्थ - यह आत्मज्ञान ब्रह्मा (=कश्यप) ने प्रजापति (=विवस्वान्) को बताया। प्रजापति ने (अपने पुत्र) वैवस्वत मनु को बताया और मनु ने प्रजा को बताया।

———

[१६]

कठोपनिषदि ऐतिह्यसन्दर्भाः

वाजश्रवाः; नचिकेता च—

उशन् ह वै वाजश्रवाः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।। (१।१।१)

अर्थ—वाजश्रवा ने इच्छा करते हुए अपने सर्वस्व का दान कर दिया, उनका नचिकेता नाम का पुत्र था ।

यमः (मृत्युः)—

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा ।
विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।। (२।३।१८)

अर्थ—(वैवस्वत) यम=मृत्यु द्वारा प्रोक्त इस समस्त योगविधि को नचिकेता ने प्राप्त किया ।

मुण्डकोपनिषदि

ब्रह्मणः (वरुणस्य) ज्येष्ठपुत्रः भृगुः=अथर्वा—

ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय जेष्ठपुत्राय प्राह ।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ।
शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्न पप्रच्छ ।

(१।१।१-३)

अर्थ—ब्रह्मा (वरुण) ने यह ब्रह्मविद्या, जो सब विद्याओं का मूल है, अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा (भृगु) को बताई । ब्रह्मा ने जो विद्या अथर्वा को दी थी, वह, उसने (अपने अनुज) अंगिरा को पढ़ाई । अंगिरा ने सत्यवह भारद्वाज को और भारद्वाज ने (अन्य) आंगिरस को पढ़ाई । महाशाल शौनक विधिवत् विद्याग्रहण हेतु आंगिरस के पास आये ।

त्रेता—

तद्धेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि ।। (१।२।१)

अर्थ—इस सत्य को ऋषियों ने मन्त्रों में देखा (जाना) और उनका त्रेता (युग) अथवा त्रेताग्नि में विस्तार किया।

प्रश्नोपनिषदि

पिप्पलादस्य शिष्याः—

सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कम्बन्धी कात्यायनस्ते··· समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः। (१।१)

अर्थ—सुकेशा भारद्वाज, सत्यकाम शैव्य, सौर्यायणी गार्ग्य, आश्वलायन कौसल्य, भार्गव वैदर्भि और कबन्धी कात्यायन—ये पांच आचार्य पिप्पलाद के पास समित्पाणि (शिष्य बनकर) आये।

हिरण्यनाभः कौसल्यः—

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ भगवन्! हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ। (६।६)

अर्थ—सुकेशा भारद्वाज ने पूछा—'हे भगवन्! हिरण्यनाभ कौसल्य राजकुमार ने मेरे पास आकर पूछा—'हे भारद्वाज आप क्या षोडशकला वाले पुरुष को जानते हो?'

केनोपनिषदि

हैमवती उमा—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं। तां होवाच किमेनदधक्षमिति। सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदांचकार। (खण्ड ३, ४)

अर्थ—वह इन्द्र उसी आकाश में (जिसमें यक्ष अन्तर्धान हुआ था) एक अत्यन्त शोभामयी स्त्री के पास आया। और हैमवती (हिमवान् पर्वत प्रदेश के राजा दाक्षायण की पुत्री) उमा (पार्वती) से बोला – 'यह यक्ष कौन है। उमा ने कहा—'यही ब्रह्म है, यह ब्रह्म की ही विजय से आप महिमान्वित हुए हो।' अतः इन्द्र ने जाना ब्रह्म ही (सब कुछ) है।

———

जैमिनीयोपनिषदि ऐतिह्यसन्दर्भाः

सुदक्षिण: क्षैमि:—

सुदक्षिणो ह वै क्षैमिः प्राचीनशालिर्जाबालौ ते ह सब्रह्मचारिण आसुः। यत्र भूयिष्ठाः कुरुपञ्चालाः समागता भवितारस्तन्न एष संवादः। जाबालौ दिदीक्षाते शुक्रश्च गोश्रुच्च। तयोर्ह प्राचीन-शालिर्वृत उद्गाता। (३।७ ८)

अर्थ— सुदाक्षिण क्षैमि, प्राचीनशाल और जाबाल—ये तीनों ब्रह्मचारी थे। शुक्र और गोश्रुत - जाबालों ने दीक्षा ली। उनका उद्गाता प्राचीनशालि आचार्य था।

उच्चैःश्रवा: कौपयेय: कौरव्य:—

उच्चैःश्रवा ह कौपयेयः कौरव्य राजा आस। तस्य केशी दार्भ्यः पाञ्चालो राजा स्वस्रीय आस। तौ हान्योऽन्यस्य प्रियावासतुः। स होच्चैश्रवाः कौपयेयोऽस्माल्लोकात् प्रेयाय। तस्मिन् प्रेते केशी दार्भ्योऽरण्ये मृगयां चचार प्रियं विनीयमाणः। (३।२९।१-३)

अर्थ—उच्चैश्रवा कौपयेय कौरव्य राजा था। केशी दार्भ्य पाञ्चाल राजा उसका स्वस्रीय (बहिन का पुत्र) था। उच्चैःश्रवा कौपयेय इस लोक को छोड़कर परलोक सिधार गया, तब उसके मरने पर केशी दार्भ्य जंगल में घूमता हुआ बुरे समय को काटता रहा।

भगेरथ ऐक्ष्वाक:—

भगेरथो हैक्ष्वाको राजा कामप्रेण यज्ञेन यक्ष्यमाण आस। तदु ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मण ऊचुः। एतान् हैनान् पंच प्रश्नान् पप्रच्छ तेषां ह कुरुपञ्चालानां बको दाल्भ्यो अनूचान आस। (४।६।७)

अर्थ—भगेरथ ऐक्ष्वाक कामप्र (कामपूरक) यज्ञ कर रहा था। कुरुपञ्चाल ब्राह्मण बोले। भगेरथ ने पाँच प्रश्न पूछे। कुरुपञ्चालों का वेदज्ञ बक दाल्भ्य था।

प्रतीदर्श:—

प्रतीदर्शोऽस्याभयदस्याऽऽसमात्यस्योज्जगौ। (४।८।७)

अर्थ—प्रतीदर्श (ऐमावत) अभयद आसमात्य (ऐक्ष्वाक) का उद्गाता था।

अगस्त्यः (स्थविरतमः)–

ऋषयो ह सत्रमासांचक्रिरे ··· तान् होवाच को व स्थविरतमः इति। अहमगस्त्यः। (४।१४-१५)

अर्थ—ऋषि सत्र कर रहे थे। (उनमें कोई) बोला—'आप में कौन सर्वाधिक वृद्ध (और विद्वान्) है।' 'मैं हूं अगस्त्य हूं' अगस्त्य ने कहा।

विद्यावंशः—

तदेतद् ब्रह्मा प्रजापतयेऽब्रवीत्। प्रजापतिः परमेष्ठिने प्राजापत्याय। परमेष्ठी प्राजापत्यो देवाय सवित्रे । देवः सविताग्नये। अग्निरिन्द्राय। इन्द्रः काश्यपाय। काश्यप ऋष्यश्रृङ्गाय। ऋष्यश्रृंगः काश्यपो देवतरसे श्यावसायनाय काश्यपाय। देवतराः श्यावसायनः काश्यपः श्रुषाय वह्लेयाय काश्यपाय। श्रुषो वाह्लेयः काश्यपः=इन्द्रोताय दैवपाय शौनकाय। इन्द्रोतदेवपायः शौनको दृतय ऐद्रोतये शौनकाय। दृतिरिन्द्रोतिः शौनकः पुलुषाय प्राचीनयोग्याय पुलुषः प्राचीनयोग्यः सत्ययज्ञाय पौलुषये प्राचीनयोग्याय। सत्ययज्ञः पौलुषिः प्राचीनयोग्यः सोमशुष्माय सात्ययज्ञाय प्राचीनयोग्याय। सोमशुष्मः सात्ययज्ञिः प्राचीनयोग्यो हृत्स्वाशयायाऽऽलकेयाय महावृषाय राज्ञे। हृत्स्वाशय आल्लकेयो महावृषो राजा जनश्रुताय काण्ड्वयाय जनश्रुतः काण्ड्वयः सामकाय जानश्रुतेयाय काण्ड्वयाय। सामको जानश्रुतेयः कण्ड्वयो नगरिणे जानश्रुतेयाय कण्ड्वयाय। नगरी जानश्रुतेयः कण्ड्वयः शुङ्गाय शाट्यायनाय आत्रेयाय। शुङ्गः शाट्यायनिरात्रेयो रामाय क्रातुजातेयाय वैयाघ्रपद्याय। रामः क्रातुजातेयो वैयाघ्रपद्यः शङ्खाय बाभ्रव्याय। शङ्खो बाभ्रव्यो दक्षाय कात्यायनाय आत्रेयाय। दक्षः कात्यायनिरात्रेयः कंसाय वारकये। कंसो वारकिः प्रौष्ठपदाय वारक्याय। प्रौष्ठपदो वारक्यः कंसाय वारक्याय। कंसो वारक्यो जयन्ताय वारक्याय । जयन्तो वारक्यः कुबेराय वारक्याय। कुबेरो वारक्यो जयन्ताय वारक्याय। जयन्तो वारक्यो जनश्रुताय वारक्याय। जनश्रुतो वारक्यः सुदत्ताय पाराशर्याय। सुदत्तः पाराशर्योऽषाढ़ायोत्तराय पाराशर्याय। अषाढ़ोत्तरः पाराशर्यो विपश्चिते शकुनिमित्राय पाराशर्याय। विपश्चिच्छकुनिमित्रः पाराशर्यो जयन्ताय पाराशर्याय । जयन्तः पाराशर्यः

श्यामजयन्ताय लौहित्याय श्यामजयन्तो लौहित्यः पल्लिगुप्ताय लौहित्याय। पल्लिगुप्तो लौहित्यः सत्यश्रवसे लौहित्याय। सत्यश्रवा लौहित्यः कृष्णधृतये सात्यकये। कृष्णधृतिः सात्यकिः श्यामसुजयन्ताय लौहित्याय श्यामसुजयन्तो लौहित्यः कृष्णदत्ताय लौहित्याय। कृष्णदत्तो लौहित्यो मित्रभूतये लौहित्याय। मित्रभूतिर्लौहित्यः श्यामजयन्ताय लौहित्याय। श्यामजयन्तो लौहित्यः त्रिवेदाय कृष्णराताय लौहित्याय। त्रिवेदः कृष्णरातो यशस्विने जयन्ताय लौहित्याय। यशस्वी जयन्तो लौहित्यो जयकाय लौहित्याय। जयको लौहित्यः कृष्णराताय लौहित्याय कृष्णरातो लौहित्यो दक्षजयन्ताय लौहित्याय। दक्षजयन्तो लौहित्यो विपश्चिते दृढजयन्ताय लौहित्याय। विपश्चिद् दृढजयन्तो लौहित्यो वैपश्चिताय दार्ढजयन्तये दृढजयन्ताय लौहित्याय। वैपश्चितो दार्ढजयन्तिर्दढ़जयन्तो लौहित्यो वैपश्चिताय दार्ढजयन्तये गुप्ताय लौहित्याय। (३ ४०-४२)

अन्यो लघुविद्यावंशः (गायत्र्योपनिषत्परम्परा)–

एवं वा एतं गायत्र्यस्योद्गीथमुपनिषदममृतमिन्द्रोऽगस्त्यायोवाच। अगस्त्य इषाय श्यावाश्वये। इषः श्यावाश्विर्गौषूक्तये। गौषूक्तिर्ज्वालायनाय। ज्वालायनः शाट्यायनये शाट्यायनो रामाय क्रातुजातेयाय वैयाघ्रपद्याय। रामः क्रातुजातेयो वैयाघ्रपद्यः शङ्खाय बाभ्रव्याय। शङ्खो बाभ्रव्यो दक्षाय कात्यायनाय आत्रेयाय। दक्षः कात्यायनिरात्रेयः कंसाय वारक्याय। कंसो वारक्यः सुयज्ञाय शाण्डिल्याय। सुयज्ञः शाण्डिल्यो अग्निदत्ताय शाण्डिल्याय। अग्निदत्तः शाण्डिल्यः सुयज्ञाय शाण्डिल्याय। सुयज्ञः शाण्डिल्यो जयन्ताय वारक्याय। जयन्तो वारक्यो जनश्रुताय वारक्याय। जनश्रुतो वारक्यः सुदत्ताय पाराशर्याय। सैषा शाट्यायनी गायत्र्यस्योपनिषदेवमुपासितव्या। (४।१७।२)

क्र०सं०	गुरु	शिष्य
१	ब्रह्मा (प्रचेता) ने	प्रजापति (दक्ष) को
२	प्रजापति ने	परमेष्ठी प्राजापत्य (मारीच कश्यप) को

क्र०सं०	गुरु	शिष्य
३	परमेष्ठी प्राजापत्य (कश्यप मारीच) ने	देव सविता को
४	देवसविता ने	अग्नि (बृहस्पति आंगिरस) को
५	अग्नि ने	इन्द्र को
६	इन्द्र ने	काश्यप (विभण्डक) को
७	काश्यप ने	ऋष्यशृंग को
८	ऋष्यशृंग ने	देवतरा श्यावसायन काश्यप को
९	देवतरा श्यावसायन काश्यप ने	श्रुषवाह्नेय काश्यप को
१०	श्रुषवाह्नेय काश्यप ने	इन्द्रोत दैवाप शौनक को
११	इन्द्रोत दैवाप शौनक ने	दृति ऐन्द्रोत शौनक को
१२	दृति ऐन्द्रोत शौनक ने	पुलुष प्राचीनयोग्य को
१३	पुलुष प्राचीनयोग्य ने	सत्ययज्ञ पौलुषि को
१४	सत्ययज्ञ पौलुषि ने	सोमशुष्म सात्ययज्ञ प्राचीन-योग्य को
१५	सोमशुष्म सात्ययज्ञ प्राचीनयोग्य ने	हृत्वाशयाल्लकेय महावृष को
१६	हृत्वाशयाल्लकेय महावृष ने	जनश्रुत काण्डिव्य को
१७	जनश्रुत काण्डिव्य ने	सायक जानश्रुति को
१८	सायक जानश्रुति काण्डिव्य ने	नगरी जानश्रु काण्डिव्य को
१९	नगरी जानश्रुति काण्डिव्य ने	शुंग शाट्यायन आत्रेय को
२०	शुंग शाट्यायन आत्रेय ने	राम क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य को
२१	राम क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य ने	शंख बाभ्रव्य को
२२	शंख बाभ्रव्य ने	दक्ष कात्यायन आत्रेय को
२३	दक्ष कात्यायन आत्रेय ने	कंस वारकि को
२४	कंस वारकि ने	प्रोष्ठपद वारकि को
२५	प्रोष्ठपद वारकि ने	कंस वारकि (द्वितीय) को
२६	कंस वारकि ने	जयन्त वारकि को
२७	जयन्त वारकि ने	कुबेर वारकि को
२८	कुबेर वारकि ने	जयन्त वारकि (द्वितीय) को
२९	जयन्त वारकि ने	जनश्रुत वारकि को
३०	जनश्रुत वारकि ने	सुदत्त पाराशर्य को
३१	सुदत्त पाराशर्य ने	अषाढोत्तर पाराशर्य को

क्र०सं०	गुरु	शिष्य
३२	अषाढोत्तर पाराशर्य ने	विपश्चित् शकुनिमित्र पाराशर्य को
३३	विपश्चित् शकुनिमित्र ने	जयन्त पाराशर्य को
३४	जयन्त पाराशर्य ने	श्यामजयन्त लौहित्य को
३५	श्यामजयन्त लौहित्य ने	पल्लिगुप्त लौहित्य को
३६	पल्लिगुप्त लौहित्य ने	सत्यश्रवा लौहित्य को
३७	सत्यश्रवा लौहित्य ने	कृष्णधृति सात्यकि को
३८	कृष्णधृति सात्यकि ने	श्यामसुजयन्त लौहित्य को
३९	श्यामसुजयन्त लौहित्य ने	कृष्णदत्त लौहित्य को
४०	कृष्णदत्त लौहित्य ने	श्यामजयन्त लौहित्य को
४१	मित्रभूति लौहित्य ने	श्यामजयन्त लौहित्य को
४२	श्यामजयन्त लौहित्य ने	त्रिवेद कृष्णरात को
४३	त्रिवेद कृष्णरात ने	यशस्वी जयन्त लौहित्य को
४४	यशस्वी जयन्त लौहित्य ने	जयक लौहित्य को
४५	जयक लौहित्य ने	कृष्णरात लौहित्य (द्वितीय) को
४६	कृष्णरात लौहित्य ने	दक्ष जयन्त लौहित्य को
४७	दक्ष जयन्त लौहित्य ने	विपश्चित् दृढ़जयन्त लौहित्य को
४८	विपश्चित् दृढ़जयन्त लौहित्य ने	वैपश्चित् दार्ढजयन्त लौहित्य को
४९	वैपश्चित् दार्ढजयन्त लौहित्य ने	वैपश्चित् दार्ढजयन्त गुप्त लौहित्य को

अर्थ—(अन्य विद्यावंश)—गायत्रोद्गीथोपनिषदमृत को इन्द्र ने अगस्त्य को बताया। (उसके पश्चात् विद्यावंश इस प्रकार रहा)—

क्र०सं०	गुरु	शिष्य
१	इन्द्र ने	अगस्त्य को
२	अगस्त्य ने	इष श्यावाश्वि को
३	इष श्यावाश्वि ने	गौषूक्ति को
४	गौषूक्ति ने	ज्वालायन को
५	ज्वालायन ने	शाट्यायनि को

क्र०सं०	गुरु	शिष्य
६	शाट्यायनि ने	रामक्रतुजातेय वैयाघ्रपद्य को
७	रामक्रतुजातेय वैयाघ्रपद्य ने	शंख बाभ्रव्य को
८	शंख बाभ्रव्य ने	दक्ष कात्यायन आत्रेय को
९	दक्ष कात्यायन आत्रेय ने	कंस वारकि को
१०	कंस वारकि ने	सुयज्ञ शाण्डिल्य को
११	सुयज्ञ शाण्डिल्य ने	अग्निदत्त शाण्डिल्य को
१२	अग्निदत्त शाण्डिल्य ने	सुयज्ञ शाण्डिल्य (द्वितीय) को
१३	सुयज्ञ शाण्डिल्य ने	जयन्त वारकि को
१४	जयन्त वारकि ने	जनश्रुत वारकि को
१५	जनश्रुत वारकि ने	सुदत्त पाराशर्य को

———

[२१]

निरुक्तशास्त्रे ऐतिह्यसन्दर्भाः

इन्द्रागस्त्यसंवादः—

अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरुप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सांचकार, स इन्द्र एत्य परिदेवयांचक्रे। (१।५)

अर्थ—अगस्त्य ने इन्द्र के लिये हवि बनाकर मरुद्देव गणों को देनी चाही। इन्द्र आकर विलाप या दुःख प्रकट करने लगा।

कम्बोजः—

शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते। कम्बोजाः कम्बलभोजाः कमनीयभोजा वा। विकारमस्यार्येषु भाषन्ते शव इति। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदीच्येषु। (२।१।२)

अर्थ—शव या शवति धातु गति अर्थवाली काम्बोज (देश) में बोली जाती है 'कम्बोज' का अर्थ है 'कम्बलभोज' (कम्बलों का उपभोग करनेवाले) या 'कमनीय भोजा' (इच्छित भोजन करनेवाले)। 'आर्यभाषा' (शुद्ध संस्कृत) में इसका प्रयोग 'शव' शब्द के रूप में होता है। 'दाति' धातु लवन (काटने) के अर्थ में प्राच्य जनपदों में और दात्र (दरांत) उदीच्य में बोला जाता है।

अक्रूरमणिः—

दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः 'अक्रूरो ददते मणिम्' इत्यभिभाषन्ते ।

(२।१।२)

अर्थ—'दण्ड' शब्द 'दद' धातु—धारण करने के अर्थ में है, (तथा इतिहास पुराण में प्रसिद्ध उदाहरण है) अक्रूर मणि धारण करते हैं ऐसा कहा जाता है ।

देवापिः शन्तनुश्च—

तत्रेतिहासमाचक्षते । देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः । स शन्तनुः कनीयानभिषेचयाञ्चक्रे । देवापिस्तप प्रतिपेदे । शन्तनो राज्ये द्वादश वर्षाणि देवो न ववर्ष । तमूचुर्ब्राह्मण अधर्मस्त्वया चरितो ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितं तस्मात्ते देवो न वर्षतीति । स शन्तनुर्देवापिं शिशिक्ष राज्येन । तमुवाच देवापिः पुरोहितस्तेऽसानि याजयानि च त्वेति ।

(२।३।१०)

अर्थ—इस सम्बन्ध में इतिहास कहा जाता है । आर्ष्टिषेण देवापि और शन्तनु—दो कौरव्य (कुरुवंशीय) भ्राता थे । छोटे भाई शन्तनु ने अपना राज्याभिषेक करा लिया और देवापि तप के लिये चला गया । तब शन्तनु के राज्य में बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई । ब्राह्मणों ने शन्तनु से कहा—'आपने अधर्म किया है, बड़े का अतिक्रमण करके आपने अपना अभिषेक कराया है, इसलिए वर्षा नहीं हो रही है । तब शन्तनु ने देवापि को राज्य देना चाहा । देवापि ने उससे कहा—'मैं तुम्हारा पुरोहित होऊंगा और तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा ।

विश्वामित्रः सुदासश्च—

विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव । स वित्तं गृहीत्वा विपाट्छुतुद्र्योः संभेदमाययौ । स विश्वामित्रो नदीस्तुष्टाव । (२।७।२४)

अर्थ—विश्वामित्र ऋषि सुदास पैजवन (ऐक्ष्वाक) के पुरोहित थे । वह धन को लेकर विपाशा और शुतुद्री नदियों के संगम पर आये । विश्वामित्र ने नदियों की स्तुति की ।

कुशिकः—

कुशिको राजा बभूव । (२।७।२५)

अर्थ—कुशिक राजा थे ।

वृत्रः—

तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः । त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः ।

(२।५।१६)

अर्थ—यह वृत्र कौन है ? नैरुक्तक आचार्यों के मत में—मेघ है। 'त्वष्टा का पुत्र असुर (अहि)' है यह ऐतिहासिकों का मत है।

स्वायम्भुवमनुवचनम्—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ (३।१।४)

अर्थ – बिना किसी भेद (लिंग) के सन्तान (पुत्र या पुत्री) का दायभाग पर अधिकार होता है, ऐसा स्वायम्भुव मनु ने (मानवीसृष्टि) के आदि में कहा था।

स्त्रीदानविक्रयादि–

स्त्रीणां दानविक्रयतिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः। पुंसोऽपीत्येके शौनःशेपे दर्शनात्। (३।१।४)

अर्थ—स्त्रियों के दान विक्रय और अतिसर्ग होते हैं। पुरुषों का भी होता है जैसा शौपःशेप (आख्यान) में देखा गया है।

पंचजनाः–

गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके। (३।२।८)

अर्थ --गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस एकमत से पंचजन हैं।

केचन ऋषयः—

प्रियमेधः····। प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः। अर्चिषु भृगुः सम्बभूव। अङ्गारेष्वङ्गिराः····। अत्रिर्न त्रय इति। विखननाद् वैखानसः। भरणाद् भरद्वाजः। (३।३।१७)

अर्थ – प्रियमेध (ऋषि)···प्रस्कण्व···'कण्व का पुत्र',·· विखनन से वैखानस (ऋषि), भरण से भरद्वाज (ऋषि)···।

त्रितः—

त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ। तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति।·· एकतो द्वितः त्रित इति त्रयो बभूवुः। (४।१।६)

कूये में पड़े हुए त्रित को यह सूक्त प्रतिभासित हुआ। वेद में इतिहासमिश्रण, ऋङ्मिश्रण और गाथामिश्रण होता है। एकत, द्वित और त्रित—ये तीन (भाई) थे।

तुग्वः—

सुवास्तु नदी तुग्वं तीर्थं भवति।

अर्थ—सुवास्तु नदी और तुग्व तीर्थं है।

नोधा—

नोधा ऋषिर्भवति । (४।२।२५)

अर्थ—नोधा ऋषि थे ।

च्यवन—

च्यवन ऋषिर्भवति । (४।२।१९)

अर्थ—च्यवन ऋषि थे ।

शंयुः—

अथापि शंयुर्बार्हस्पत्य उच्यते । (४।३।२१)

अर्थ—शंयु बृहस्पति ऋषि का पुत्र था ।

नदः—

ऋषिर्नदो भवति । (५।१।२)

ऋषि नद था ।

उर्वशी—

उर्वश्यप्सरा···तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द ।

अर्थ—उर्वशी अप्सरा थी । उसके दर्शन से मित्र और वरुण का वीर्य स्खलित होगया ।

इन्द्रो दुर्भिक्षश्च—

इन्द्र ऋषीन् पप्रच्छ दुर्भिक्षे केन जीवति इति । तेषामेकः प्रत्युवाच—

शकटः शाकिनी गावो जलमस्यन्दनं वनम् ।
उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नव वृत्तयः ।। (६।२।४)

अर्थ—इन्द्र ने ऋषियों से पूछा—'दुर्भिक्ष में मनुष्य किस प्रकार जीवित रहता है ।' उनमें से एक ने उत्तर दिया—'शकट, शाकिनी, गाय, सरोवर (बिना बहनेवाला जल), जंगल, समुद्र, पर्वत और राजा, ये अकाल में जीवनोपाय हैं ।

कक्षीवान्—

कक्षीवान्···औशिज उशिजः पुत्रः । (६।३।१०)

अर्थ—कक्षीवान्-औशिज-उशिक् (उशिज्) के पुत्र थे ।

कुरुङ्गः—

कुरुङ्गो राजा बभूव । (६।४।२२)

अर्थ-कुरुङ्ग राजा था ।

शिरिम्बिठः—

अपि वा शिरिम्बिठो भारद्वाजः । (६।६।३०)

अर्थ—शिरिम्बिष्ठ भारद्वाज था।

पराशर:

पराशर: पराशीर्णस्य स्थविरस्य जज्ञे। (६।६।३०)

अर्थ—पराशर अत्यन्त वृद्ध वसिष्ठ (के पुत्र शक्ति) के उत्पन्न हुए।

कीकट:—

कीकटो नाम देशोऽनार्यनिवास: (६।६।३२)

अर्थ—कीकट नाम अनार्य निवास (दस्युपूरित) देश है।

मुद्गलो भार्म्यश्व:—

'सूभर्वं सहस्रं गवां मुद्गल प्रधने जिगाय।' तत्रेतिहासमाचक्षते मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिर्वृषभं च द्रुघणं च व्यवहृत्याजिं जिगाय। भार्म्यश्वो भृम्यश्वस्य पुत्र:। (९।३।२३)

अर्थ—मुद्गल ने राजा सूभर्व से हजार गायें युद्ध में जीती। इस सम्बन्ध में इतिहास है। मुद्गल भार्म्यश्व ऋषि ने युद्ध में द्रुघण (मुद्गर) लेकर बाजी जीती। भार्म्यश्व भृम्यश्व का पुत्र।

आर्जकीया = विपाशा—

आर्जकीयां विपाडित्याहु:। पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद् विपाडुच्यते। पूर्वमासीदुरुञ्जिरा। (९।३।२५)

अर्थ—आर्जकीया नदी को ही विपाशा कहते हैं। इसमें मुमूर्षु वसिष्ठ ऋषि के बन्धन टूटे अत: यह 'विपाशा' कहलाई। पहिले इसका नाम उरुञ्जिरा था।

विश्वकर्मा भौवन:-

तत्रेतिहासमाचक्षते—विश्वकर्मा भौवन सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुह्वाञ्चकार। स आत्मानमप्यन्ततो जुह्वाञ्चकार। (१०।३।२६)

अर्थ—विश्वकर्मा भौवन ने सर्वमेध यज्ञ में सब प्राणियों को होम दिया और अन्त में अपने को भी होम कर दिया।

ऋभव:—

ऋभुर्विभ्वा वाज इति सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रय: पुत्रा: बभूवु:॥ (११।२।१६)

अर्थ—ऋभु, विभ्वा और वाज—ये सुधन्वा आङ्गिरस के तीन पुत्र थे।

विरूपस आङ्गिरस:—

विरूपस इदृषयस्त इद् गम्भीरवेपस:। ते अङ्गिरस: सूनवस्ते अग्नेः परिजज्ञिरे॥ (ऋ० १०।६२।५)

बहुरूपा ऋषयस्ते गम्भीरकर्माणो वा गम्भीरप्रज्ञा वा ते अङ्गिरस: पुत्रास्ते अग्नेरधि जज्ञिरे। (११।२।१७)

अर्थ—विरूपस नाम के अंगिरा के पुत्र अग्नि के चारों ओर उत्पन्न हुए। वे बहुरूपवाले अथवा गम्भीर प्रज्ञावाले अथवा गम्भीर कर्म करनेवाले थे।

अथर्वाणो भृगवो वा—

अथर्वाणो भृगवः (११।२।१०)

अर्थ—अथर्वाण ही भृगु (भार्गव ऋषि) गण हैं।

अदितिर्दाक्षायणी (११।३।२२)—अदिति दक्ष की पुत्री थी।

सरमा—

देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरैः समूद इत्याख्यानम्। (११।३।२५)

अर्थ—देवों की कुतिया इन्द्र द्वारा भेजी गई। उसने असुर पणियों से संवाद किया, यह आख्यान (इतिहास) है।

यमो यमी च—

यमी यमं चकमे। तां प्रत्याचचक्षेत्याख्यानम्। (११।३।३४)

अर्थ—यमी ने यम की कामना की। यम ने उसका प्रत्याख्यान (मना) किया। यह आख्यान (इतिहास) है।

इन्द्राणी—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्। (११।४।३९)

अर्थ—इन्द्राणी को हमने देवस्त्रियों में सौभाग्यवती सुना है।

अश्विनौ—

तत्कावश्विनौ···राजानौ पुण्यकृताविल्येतिहासिकाः। (१२।१।१)

अर्थ—अश्विद्वय कौन हैं? दो पुण्यकर्मा राजा (विवस्वान् के पुत्र) थे, ऐसा इतिहास में लिखा है।

सरण्यूः

तत्रेतिहासमाचक्षते—त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्याद् यमौ मिथुनौ जनयाञ्चकार। सा सवर्णामन्यां प्रतिनिधायाश्वं रूपं कृत्वा प्रदुद्राव। विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य सम्बभूव, ततोऽश्विनौ जज्ञाते। सवर्णायां मनुः। (१२।१।१०)

अर्थ—इतिहास कहा जाता है—त्वाष्ट्री (त्वष्टा की पुत्री) सरण्यू ने दो युगलसन्तान (मनु वैवस्वत और यम) को उत्पन्न किया। वह सरण्यू अपने सदृश स्त्री को घर पर रखकर अश्वरूप बनाकर भागी। विवस्वान् आदित्य (पति) ने भी अश्व रूप में उसका पीछा किया। तब दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। सवर्णा से (सावर्ण) मनु उत्पन्न हुए।

———

[२२]

बौधायनश्रौतसूत्रे ऐतिह्यसन्दर्भाः

सर्पसत्रम्—

जर्वरो गृहपतिर्धृतराष्ट्र ऐरावत ब्रह्मा दत्तस्तापसो होता पृथुश्रवा दूरेश्रवा उद्गाता ग्लावश्चाजगावश्च प्रस्तोतृप्रतिहर्त्तारौ शितिपृष्ठो मैत्रावरुणस्तक्षको वैशालेयो ब्राह्मणाच्छंस्युपरीतिस्तार्क्ष्यः सदस्यः शिखातिशिखौ नेष्टापोतारावरुणोऽह्योऽच्छावाकश्चक्रपिशङ्गावाग्नीध्रावजिरो माहेयः सुब्रह्मण्योऽर्बुदो ग्रावस्तुत् साण्ड उन्नेता पशुक्रो ध्रुवगोपः कौतुस्तावध्वर्यू अरिमेजयश्च जनमेजयश्चैते वै सर्पाणां राजानश्च राजपुत्राश्च खाण्डवे प्रस्थे सत्रमासत पुरुषरूपेण विषकामाः । (१७।१८)

अर्थ—(सर्पसत्र में) जर्वरनाग गृहपति था, धृतराष्ट्र ऐरावत ब्रह्मा, दत्त तापस नाग होता, पृथुश्रवा दूरेश्रवा उद्गाता, ग्लाव और अजगाव नाग प्रस्तोता और प्रतिहर्त्ता, शितिपृष्ठ नाग मैत्रावरुण, तक्षक वैशालेय नाग ब्राह्मणाच्छंशी, परीति तार्क्ष्य (नाग), सदस्य, शिख और अतिशिख नाग नेष्टा और पोता, अरुण अह्य अच्छावाक, चक्र और पिशंग अग्नीध्र, अजिरमाहेय, सुब्रह्मण्य, अर्बुदनाग ग्रावस्तुत् साण्डनाग उन्नेता, ध्रुवगोपनाग पशुक्र (पशुमारक), दो कौतुस्त नाग अध्वर्यु, अरिमेजय और जनमेजय नागों के राजा और नागकुमार खाण्डवप्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ) में पुरुषरूप में विषकामना से यज्ञ कर रहे थे।

यमो वैवस्वतः—

यमो वैवस्वतोऽकामयत पितॄणामैश्वर्यमाधिपत्यं राज्यं परीयामिति ।
(१८।४३)

अर्थ—यम वैवस्वत ने चाहा कि मैं पितरों का ऐश्वर्य और आधिपत्य प्राप्त करूं।

पुरूरवा—

पुरूरवा ह पुरा ऐडो राजा कल्याण आस। तं होर्वशी अप्सराभिदध्यौ···सायुं चामावसुं च जनयांचकार ।सा होवाचेमौ

बिभृतेमौ सर्वायुरेष्यत इति । प्राङायुः प्रवव्राज । तस्यैते कुरुपञ्चालाः काशिविदेहा इत्येतदायवम् । प्रत्यङमावसुस्तस्यैते मान्धारस्य स्पर्शवोऽराट्टा इत्येतदामावसम् । ··अथो हास्या एषा पूर्वचित्तिरप्सरा स्वसा बभूव । सा विद्युतं जनयाञ्चकार । तं सा विद्युति नग्नमनुचरव्यावथो ह राजानमागाम स्वारुहं वा अहमजीत उरुण मत्यारुदं हि नूनमिति । तस्यां प्रव्राजितायाम-प्रियविद्धः शोचंश्चचार । तं होवाच बृहस्पतिराङ्गिरसो हन्त त्वा शदेव याजयिष्याम्यापदि त्वा पुनर्जिन्विष्यामीति ।·· अथ ह कुरुक्षेत्रे विषवत्यो नाम पुष्करिण्यस्तासामुत्तराध्यां सुवर्णसवनी तस्यामेनन्निचखान तदश्वत्थो जज्ञे । तस्यारणी चक्रिरे । एतौ पौरूरवसो नाम शदोपसदौ ।

अर्थ—पुरूरवा ऐल एक श्रेष्ठ राजा था । उर्वशी अप्सरा ने उसका ध्यान किया (उससे विवाह किया) । उसने आयु और अमावसु को उत्पन्न किया । उसने उन दोनों पुत्रों का भरण-पोषण किया । जिससे पूर्ण आयु प्राप्त करें । आयु (बड़ा होने पर) पूर्व दिशा की ओर गया । उसके वंशज (भविष्य में) कुरुपांचाल, काशिविदेह, (इत्यादि) के शासक हुए और पश्चिम में गान्धार, स्पर्शव (पर्शु = फारसी), अराट्ट (इत्यादि में) अमावसु के वंशज शासक हुए ।

पूर्वचित्ति अप्सरा, उर्वशी की बहिन थी । उसने (रात में) बिजली उत्पन्न कर दी, जिससे उसने पुरूरवा को नग्न देख लिया । उसके उरण चुरा लिये, अतः वह राजा को छोड़कर चली गई । उसके चले जाने पर राजा पुरूरवा व्याकुल होकर इधर उधर घूमने लगा । बृहस्पति आंगिरस ने पुरूरवा से कहा—'हे राजन् ! मैं आपका शद के द्वारा यज्ञ कराऊंगा और आपत्ति से मुक्ति दिलाऊंगा । कुरुक्षेत्र में 'विषवती' नाम की पुष्करिणी थी । उसके उत्तरार्ध का नाम सुवर्णसवनी था । उसने उसको खोदा, उसमें एक अश्वत्थ (पीपल) उत्पन्न हुआ । उसकी दो अरणियां बनाईं । पुरूरवा के दो शद और उपसद थे ।

देवेन्द्रविजयः—

देवासुरा ह यत्र महासंग्रामं संयेतिरे । तद्धेमानि भूतानि द्वैधैव व्यपचक्रमुर्देवानेवान्यान्यसुरानेवान्यानि । बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीदुशना काव्योऽसुराणाम् । गन्धर्वो ह सूर्यवर्चा भविष्यज्ज्ञो जज्ञे । तस्य हेन्द्रो जायया उपहास्य आस । तां होवाच मुदिताङ्गि ! त्वमिदं गन्धर्वं पृच्छ । किमर्थमिदं देवासुरा न विजयन्तीति । स हान्तःसमुद्रे हिरण्यया नावया सहजानि कुमार-

याञ्चक्रेऽथो हेन्द्र आजगाम। स ह सौवर्णो पटरो भूत्वा नौमण्ड उपशिश्लेष···। स ह गत्वौशनसं काव्यमुपमन्त्रयांचक्रे जयन्त्या स ह दुहित्रा चतसृभिश्च कामदुघाभिः। स हाज्ञप्तोऽसुरेभ्योऽधि देवानुपसमियाय। ततो ह व एतद्देवा असुरान् महासंग्रामे जिग्युः। (१८।४६)

अर्थ—देवों और असुरों में महासंग्राम हो रहा था। पृथिवी के प्राणी (मनुष्य) दो भागों में बंट गये। आधे देवों के पक्ष में और आधे असुरों के पक्ष में। बृहस्पति देवों के पुरोहित थे और उशना काव्य असुरों के। गन्धर्वराज सूर्यवर्चा भविष्यज्ञ था। इन्द्र उसकी पत्नी का सखा था। इन्द्र ने उससे कहा—'हे मुदितांगि ! तुम अपने पति गन्धर्व से पूछो—कि देवों और असुरों में से कोई जीतता क्यों नहीं। वह गन्धर्व सुवर्णनौका (पण्डुब्बी) के द्वारा पत्नी के साथ समुद्र मध्य क्रीड़ा कर रहा था। तब इन्द्र सौवर्ण पटर बनकर (उसमें बैठकर) नौमण्ड में चिपक गया···।

इन्द्र ने उशना काव्य के पास जाकर उनको बुलाया, वह अपने साथ अपनी पुत्री जयन्ती और चार कामदुघा गायें भी लाया था। (वे इन्द्र ने उशना को दे दीं)। तदनन्तर उनकी आज्ञा लेकर असुरों के पास से देवों के पास आया। तब देवों ने महासंग्राम में असुरों को जीत लिया।

शुनस्कर्णः शैव्यः

शुनस्कर्णो ह शैव्यो राजा पुण्यकृद्बहुयाज्यास। (१८।४८)

अर्थ—शुनस्कर्ण शैव्य राजा पुण्यात्मा और बहुत यज्ञ करनेवाला था।

शिबिरौशीनरः

देवासुरा ह यत्र महासंग्रामं संयेतिरे। तद्ध शिबिरौशीनरो देवानां वर्गादसुराञ्जिगाय। तस्य हेन्द्रो जितवरं ददौ। स होवाच शिबिर्नैष्ठ्यं भयं न गच्छेदिति। तं वर्षिष्ठीयप्रस्थे सर्वतोमुखेन याजयाञ्चकार। (१८।४९)

अर्थ—देवासुरगण (उत्तरकालीन) महासंग्रामों में लड़ रहे थे। शिबि औशीनर ने देवों की ओर से असुरों को जीता। इन्द्र ने शिबि को जीत का वर देना चाहा। शिबि ने कहा—'हे देवराज ! हमको नैष्ठ्य (राष्ट्रीय) भय प्राप्त न हो। शिबि ने वर्षिष्ठीयप्रस्थ (नगर) में सब प्रकार के यज्ञ किये।

———

[२३]

आपस्तम्बधर्मसूत्रे ऐतिह्यसन्दर्भाः

श्राद्धदेवो मनुः—

सह देवमनुष्या अस्मिंल्लोके पुरा बभूवुः। अथ देवाः कर्मभिर्दिवं जग्मुरहीयन्त मनुष्याः। तेषां ये तथा कर्माण्यारभन्ते सह देवैर्ब्राह्मणाः चाऽमुष्मिन् लोके भवन्ति। अथैतन्मनुः श्राद्धशब्दं कर्म प्रोवाच। प्रजानिश्श्रेयसाय च। (२।७।१)

अर्थ—देव और मनुष्य पूर्वकाल में इस पृथिवी पर साथ-साथ रहते थे। देवगण अपने कर्मों द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए, परन्तु मनुष्य यहीं (पृथिवी पर) रह गये। इनमें जो ब्राह्मण देवों के समान (यज्ञ) कर्म का प्रारम्भ करते हैं वे भी स्वर्गलोक पहुंच जाते हैं।

अतः मनु ने 'श्राद्ध कर्म' का विधान किया। उसने प्रजा के कल्याण के लिये भी यह कर्मप्रवर्तन किया।

पुराणे श्लोकाः (उदाहृताः)—

अथ पुराणे श्लोकावुदाहरति—

अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजामीषिर ऋषयः।
दक्षिणेनाऽर्यम्णः पन्थानं ते श्मशानानि भेजिरे।
अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजा नेषिर ऋषयः।
उत्तरेणाऽर्यम्णः पन्थानं तेऽमृतत्वं हि कल्पते। (२।२३।३–४)

अर्थ—अतः (धर्मसूत्र में) पुराणों से श्लोक उदाहृत किये जाते हैं—"अट्ठासी हजार, जिन ऋषियों ने प्रजा की इच्छा की (उत्पन्न की) वे अर्यमा के दक्षिणमार्ग (पितृयान) से श्मशानों को ही प्राप्त हुए। परन्तु जिन अट्ठासी हजार ऋषियों ने प्रजा की इच्छा नहीं की, वे अर्यमा से उत्तरमार्ग (देवयान) से अमृत-स्थान (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

भविष्यत्पुराणस्योल्लेखः—

पुनस्सर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्यत्पुराणे। (२।२४।६)

अर्थ—पुनः भविष्य में उत्पत्ति के मूल बनते हैं ऐसा भविष्यपुराण में कहा है।

बौधायनधर्मसूत्रे ऐतिह्यसन्दर्भाः

गाथा—

अथाऽप्यत्रोशनसश्च वृषपर्वणश्च दुहित्रोस्संवादे गाथामुदाहरन्ति—
स्तुवतो दुहिता त्वं वै याचतः प्रतिगृह्णतः ।
अथाहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः । (२।२।२७)

अर्थ—(पुराण में) उशना और वृषपर्वा की पुत्रियों (देवयानी और शर्मिष्ठा) की गाथा उदाहृत की जाती है—"तू स्तुति करनेवाले की पुत्री है और मैं स्तुति की जाने वाले की पुत्री हूं। मैं अप्रतिगृहीता की पुत्री हूं और तू प्रतिगृहीता (दान लेने वाले) की पुत्री है।

कपिलः प्राह्लादिः—

तत्रोदाहरन्ति प्राह्लादिर्ह वै कपिलो नामासुर आस । (२।६।३०)

अर्थ—(इतिहास में) कपिल 'प्रह्लाद का पुत्र' असुर था। ऐसा कहा जाता है ।

---

[२४]

ऋग्वेदिके विशिष्टपरिशिष्टग्रन्थे बृहद्देवतायामैतिह्यसन्दर्भाः

यमपुत्रः संकुसुकः

नाम्ना संकुसुको नाम यमपुत्रो जघन्यजः । (२।६१)

अर्थ—वैवस्वत यम का छोटा पुत्र संकुसुक था ।

ऋषिकाः—

घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत् ।
ब्रह्मजाया जूहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः ।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च रामेशोर्वशी तथा ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती ।

श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥ (२।८२-८४)

अर्थ—निम्न ऋषिका या ब्रह्मवादिनी स्त्रियां थीं घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत्, निषद्, ब्रह्मजाया जुहू, अगस्त्य की भगिनी-अदिति (देवमाता से पृथक्), इन्द्राणी (शची), इन्द्रमाता (देवमाता अदिति), रामेशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदियां, यमी, नारी शश्वती, श्रीः, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक् (सरस्वती), श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्रि (भारद्वाजी) और सूर्या सावित्री (सविता की पुत्री)।

दधीचा अथर्वणा अश्विभ्यां मधुविद्यादानम्—

यः सहस्रतमो रश्मी रवेश्चन्द्रमुपाश्रितः।
सोऽपि त्वष्टारमेवाग्निं परं चेह च यन्मधु।
प्रादाद् ब्रह्मापि सुताय तदथर्वणः।
स चाभवदृषिस्तेन ब्रह्मणा दीप्तिमत्तरः।
तमृषिं निषिषेधेन्द्रो मैवं वोचः क्वचिन्मधु।
न हि प्रोक्ते मधुन्यस्मिञ्जीवन्तं त्वोत्सृज्याम्यहम्।
तमृषिं त्वाश्विनौ देवौ विविक्ते मध्वयाचताम्।
स च ताभ्यां तदाचष्टे यदुवाच शचीपतिः।
तमब्रूतां तु नासत्यावाश्व्येन सिरसा भवान्।
मध्वाशु ग्राहयत्वावां मेन्द्रश्च त्वावधीत्ततः।
आश्व्येन शिरसा तौ तु दध्यङ्ङाह यदाश्विनौ।
तदस्येन्द्रोऽहरत्स्वं तन्न्यधत्तामस्य यच्छिरः।
दधीचश्च शिरश्चाश्व्यं कृतं वज्रेण वज्रिणा।
पपात सरसो मध्ये पर्वते शर्यणावति॥

अर्थ—सूर्य की जो हजारवीं किरण चन्द्रमा में आश्रित है तथा पृथिवी तथा उसके ऊपर है, वही मधु है, वही त्वष्टा और अग्नि में निहित है। प्रसन्न होकर इन्द्र ने अथर्वा के पुत्र दध्यङ् को यह मधु (ब्रह्मविद्या) प्रदान किया और इस ब्रह्मविद्या से ऋषि और तेजस्वी होगये। (विद्या देने के पश्चात्) इन्द्र ने (अपने शिष्य) ऋषि दधीचि को मना किया कि इस मधुविद्या को कहीं बताना नहीं, यदि आपने इसको किसी को बताया तो मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूंगा।

तब देव अश्विनीकुमारों ने गुप्तरूप से मधुविद्या जानने की इच्छा की, ऋषि ने उनको इन्द्र की प्रतिज्ञा बताई। नासत्यों ने कहा—'आप हमको अश्वशिर द्वारा मधुग्रहण करायें। तब इन्द्र आपको नहीं मार सकेंगे।

अतः अश्वशिर द्वारा दध्यङ् ने अश्विनीदेवों को मधुविद्या पढ़ाई। अतः

इन्द्र ने दध्यङ् के शिर को काट दिया, परन्तु अश्विनों ने उनके (असली) शिर को पुनः लगा दिया।

इन्द्र द्वारा वज्र से कटा दध्यङ् का अश्वशिर शर्यणावत् पर्वत के सरोवर में गिरा।

ऋभवः (देवत्रयी)—

सुधन्वन आङ्गिरसस्यासन् पुत्रास्त्रयः पुरा।
ऋभुर्विभ्वा च वाजश्च शिष्यास्त्वष्टुश्च तेऽभवन्।
शिक्षयामास तांस्त्वष्टा त्वाष्ट्रं यत्कर्म किंचन।
परिनिष्ठितकर्माणो विश्वेदेवा उपाह्वयन्।
विश्वेषां ते ततश्चक्रुर्वाहनानि आयुधानि तु।
धेनुं सबर्दुघां चक्रुरमृतं सबरुरुच्यते।
बृहस्पतेरथाश्विभ्यां रथं दिव्यं त्रिबन्धुरम्।
इन्द्राय च हरी देवप्रहितेनाग्निनापि यत्।
एकं चमसमित्युक्ते आहेत्यथो दिवि।
उक्त्वा ततक्षुश्चमसान् यथोक्तं तेन हर्षिताः।
त्वष्टा च सविता चैव देवदेवः प्रजापतिः।
सर्वान् देवान् समामन्त्र्य अमृतत्वं ददुश्च ते ॥ (३।८३-८८)

अर्थ—पूर्वकाल में आंगिरस सुधन्वा (ऋषि) के—ऋभु, विभ्वा और वाज नाम के तीन पुत्र हुए, वे त्वष्टा के शिष्य बने। त्वष्टा ने उनको उस समस्त तक्षशास्त्र (Technonology) की शिक्षा दी जो कुछ भी शिल्पविज्ञान जानते थे। जब वे विज्ञान में दक्ष होगये तो विश्वेदेवों ने उन्हें (परीक्षार्थ) बुलाया। सौधन्वनों ने सभी देवों के लिये वाहनों और आयुधों का निर्माण किया। उन्होंने सबर्दुघा गाय का निर्माण किया, 'अमृत' को ही बृहस्पति का 'सबर' कहते हैं। पुनः उन्होंने अश्विनों के लिये त्रिबन्धुर रथ और इन्द्र के लिये दो अश्वों को बनाया। देवों द्वारा प्रेषित उनके पास अग्नि के माध्यम द्वारा भी उन्होंने अपना कौशल प्रकट किया। जब अग्नि ने कहा—'एक चमस के चार कर दो' और 'ज्येष्ठ' ने कहा तब हर्षित होकर एक 'चमस' के उन्होंने चार बना दिये।

तब त्वष्टा और देवदेव प्रजापति सविता ने सभी देवों को बुलाकर ऋभुओं को अमरत्व (देवत्व) प्रदान किया।

शुनःशेपस्य दिव्यरथः—

स्तूयमानः शश्वदिति प्रीतस्तु मनसा ददौ।
शुनःशेपाय दिव्यं तु रथं सर्वं हिरण्मयम् ॥ (३।१०३)

अर्थ—'शश्वत्' (ऋग्वेद १।३०।१६) शब्द से आरम्भ होनेवाली ऋचा द्वारा स्तुति की जाने पर मन से प्रसन्न होकर इन्द्र ने शुनःशेप को स्वर्णनिर्मित एक दिव्यरथ प्रदान किया।

सव्य आङ्गिरसः—

स्वयमिन्द्रसमं पुत्रमिच्छतोऽङ्गिरसो मुनेः।
वव्रचेव सव्यो भूत्वर्षेर्योगित्वात्पुत्रतां गतः॥ (३।११५)

अर्थ—इन्द्र के समान पुत्र की इच्छा करनेवाले अंगिरा ऋषि के, ऋषि के योग प्रभाव से स्वयं इन्द्र ही सव्य के रूप में पुत्र बन गये।

त्रितकथा—

त्रितं गास्त्वनुगच्छन्तं क्रूराः सालावृकीसुताः।
कूपे प्रक्षिप्य गाः सर्वास्तत एवापजह्रिरे॥
स तत्र सुषुवे सोमं मन्त्रविन्मन्त्रवित्तमः।
देवांश्चाह्वयत्सर्वांस्तच्छुश्राव बृहस्पतिः।
आगच्छतोऽथ तान्दृष्ट्वा क्व वसत्यस्य तत्त्वतः।
सर्वदृक्त्वं च वरुणस्यार्यम्णश्चेत्युपालभत्।
कूपेष्टकाभिर्व्रणितान्यङ्गान्येवाभवन्मम।
दृष्ट्वा सर्वानहं स्तौमि यद्यप्येको न पश्यति।
बृहस्पतिप्रचोदिता विश्वेदेवा गणास्त्रयः।
जग्मुस्त्रितस्य तं यज्ञं भागांश्च जगृहुः सह॥ (३।१३२-१३६)

अर्थ—गायों का अनुगमन करनेवाले त्रित को क्रूर सालावृकीपुत्रों (असुरों) ने कूये में डालकर उसकी समस्त गायें चुरा ले गये। त्रित ने वहीं (कूये में) सोम निकाला और सभी देवों को आह्वान किया। बृहस्पति ने उसके आह्वान को सुना। उनको आते देख उसने उपालम्भ किया—'वरुण और अर्यमा की सर्वदर्शी शक्ति कहां गई? कूप में मेरे अंग घायल होगये। मैं सभी देवों की स्तुति कर रहा हूं, परन्तु कोई भी मुझे देखता नहीं।

तदनन्तर बृहस्पति द्वारा प्रेषित विश्वेदेवों के तीन गणों (आदित्य, वसु और मरुतों) ने यज्ञ में आकर एक साथ भाग ग्रहण किया।

कक्षीवान्, राजा स्वनयश्च—

अधिगम्य गुरोर्विद्यां गच्छन् स्वनिलयं किल।
कक्षीवानध्वनि श्रान्तः सुष्वापारण्यगोचरः॥
तं राजा स्वनयो नाम भावयव्यसुतो व्रजन्।

क्रीडार्थं सानुयोऽपश्यत् सभार्यः स पुरोहितः।
अथैनं रूपसम्पन्नं दृष्ट्वा देवसुतोपमम्॥
कन्यादाने मतिं चक्रे वर्णगोत्रविरोधतः।
संबोध्यैनं स पप्रच्छ वर्णगोत्रादिकं ततः।
राजन्नाङ्गिरसोऽस्मीति कुमारः प्रत्युवाच तम्।
पुत्रोऽहं दीर्घतमस औचथ्यस्य ऋषेर्नृपः।
अथास्मै स ददौ कन्या दशाभरणभूषिताः।
तावतश्च रथाञ्छ्यावान् वीडवङ्गान्वै चतुर्भुजः।
वधूनां वाहनार्थाय धनकुप्यमजाविकम्।
निष्काणां वृषभाणां च शतं शतमदात्पुनः।
एतदुत्तरसूक्तेन शतमित्यादिनोदितम्।
शतमश्वाञ्छतं निष्कान् रथान् दश वधूमतः।
चतुर्भुजो गवां चैव सहस्रं षष्ट्युपाधिकम्।
स्वनयाद्भावयव्याद्यः कक्षीवान् प्रत्यपद्यत।
प्रतिगृह्य च तुष्टाव प्रातः पित्रे शशंस च।

अर्थ—गुरु से विद्या प्राप्त करने के पश्चात् घर जाते समय कक्षीवान् (औशिज=औतथ्य=औचथ्य) मार्ग में थककर सो गये। उसी समय राजा स्वनय (भावयव्य का पुत्र) अपनी सभा, पुरोहित और भार्या के साथ क्रीडार्थ कहीं जा रहा था। रूपसम्पन्न तथा देवपुत्र के समान कक्षीवान् को देखकर राजा ने वर्ण और गोत्र समान न होने पर उसे अपनी पुत्री प्रदान करने का विचार किया।

राजा ने उसे जगाकर उसका वर्ण और गोत्रादि पूछा—उस कुमार ने उत्तर दिया—'हे राजन्! मैं अंगिरा के वंश का हूं तथा उचथ्यपुत्र ऋषि दीर्घतमा का पुत्र हूं।

तब राजा स्वनय ने काक्षीवान् को अलंकृत दश कन्यायें प्रदान कीं, कन्याओं को ले जानेवाले दश रथ तथा उनमें जुते हुए चार-चार सबल अश्व तथा धन, वर्तन, भेड़ और बकरियां भी दीं। इनके अतिरिक्त उसने एक सौ निष्क (स्वर्णभूषण) और सौ वृषभ भी दिये। एक सौ अश्व, एक सौ निष्क, कन्याओं सहित दश रथ, चतुर्भुज रथ और साठ हजार गायें दी। तदनन्तर कक्षीवान् ने स्वनय भावयव्य की स्तुति की एवं प्रातः अपने पिता को समस्त वृत्तान्त सुनाया।

स्वनय भावयव्यपत्नी रोमशा—

प्रादात्सुतां रोमशां नाम नाम्ना बृहस्पतिर्भावयव्याय राज्ञे।
(३।१५६)

ततस्तमर्थं हरिवान् विदित्वा प्रियं सखायं स्वनयं दिदृक्षुः ।
अभ्याजगामाशु शचीसहायः प्रीत्यार्चयत्तं विधिनैव राजा ।
अभ्याजगामाङ्गिरसी च तत्र हृष्टा तयोः स चरणौ ववन्दे ।
इन्द्रः सखित्वादथ तामुवाच रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि ।
सा बालभावादथ तं जगाद उपोप मे शक्र परामृशेति ।
तां पूर्वया सान्त्व्य नृपः प्रहृष्टो अन्वव्रजत्साथ पतिं पतिव्रता: ।।

(४।१-३)

अर्थ—बृहस्पति आंगिरस ने राजा स्वनय भावयव्य (४।१-३) (भवयु का पुत्र) को अपनी पुत्री रोमशा प्रदान की (पत्नीरूप में), इस तथ्य को जानकर हरिवान् इन्द्र प्रिय सखा स्वनय को देखने के लिए उसके पास इन्द्राणी (शची) सहित वहां आये। राजा ने इन्द्र की विधिवत् अर्चना की। तब वहां बृहस्पतिपुत्री रोमशा आईं और इन्द्र तथा इन्द्राणी की चरण वन्दना की। सखीभाव से इन्द्र ने (मजाक में) पूछा— 'हे रानी ! तुम्हारे बाल हैं अथवा नहीं।' तब बालसुलभ (सहज) भाव से रानी ने 'उपोप मे' (ऋ० १।२६।७) ऋचा द्वारा कहा—'हे शक्र मुझे छूकर (मेरे बालों को) देखो। पूर्वा ऋचा द्वारा राजा ने रानी को सान्त्वना दी। तब उसने एक पतिव्रता की भांति पति का अनुगमन किया।

दीर्घतमा मामतेयः तज्जन्मकथा —

द्वावुचथ्यबृहस्पती ऋषिपुत्रौ बभूवतुः ।
आसीदुचथ्यभार्या तु ममता नाम भार्गवी ।
तां कनीयान् बृहस्पतिर्मैथुनायोपचक्रमे ।
शुक्रस्योत्सर्गकाले तु गर्भस्तं प्रत्यभाषत ।
इहास्मि पूर्वसंभूतो न कार्यः शुक्रसंगरः ।
तच्छुक्रप्रतिषेधं तु न ममर्ष बृहस्पतिः ।
स व्याजहार तं गर्भं तमस्ते दीर्घमस्त्विति ।
स च दीर्घतमा नाम बभूवर्षिरुचथ्यजः ।
य जातोऽभ्यतपद्देवान् अकस्मादन्धतां गतः ।
ददुर्देवास्तु तन्नेत्रे ततोऽनन्धो बभूव सः । (४।११-१५)

× × ×

जीर्णं तु दीर्घतमसं खिन्नास्तत्परिचारिणः ।
दासा बद्ध्वा नदीतोये दृष्टिहीनमवादधुः ।।
तत्रैकस्त्रैतनो नाम शस्त्रेणैनमपाहनत् ।
शिरश्चांसावुरश्च स्वयमेव न्यकृन्तत ।

हत्वा दीर्घतमास्तं तु पापेन महतावृत्तम् ।
आत्माङ्गान्यनुदच्चैव तत्रोदोन्मोहितो भृशम् ।
अङ्गदेशसमीपे तु तं नद्यः समुदक्षिपन् ।
अंगराजगृहे युक्ताम् उशिजं पुत्रकाम्यया ।
राज्ञा च प्रहितां दासीं भक्तां मत्वा महायशाः ।
जनयामास चोत्थाय कक्षीवत्प्रमुखानृषीन् ॥

अर्थ—उचथ्य और बृहस्पति नाम के दो ऋषिपुत्र थे। उचथ्य की भार्या ममता भार्गवी थी। कनिष्ठ बृहस्पति मैथुनार्थ ममता के पास गये। शुक्रोत्सर्ग के समय गर्भ ने उनसे कहा—'मैं पहिले से ही यहां उत्पन्न हूं। अतः तुम शुक्रमिश्रण मत करो। परन्तु बृहस्पति नहीं माना। अतः उसने गर्भ से कहा—'तुम दीर्घं तमस् (अन्धकार) वाले होगे। इसीलिये उचथ्यपुत्र का नाम 'दीर्घतमा' हुआ।

जन्म लेते ही वह अकस्मात् अन्धे होगये। उन्होंने देवों का तप किया। अतः (उत्तरकाल में) देवों ने उसे नेत्र (प्रकाश) दे दिये।

× × ×

दास परिचारकों ने खिन्न होकर उस वृद्ध और अन्धे दीर्घतमा को बांधकर नीचे नदी में फेंक दिया।

दासों में से एक त्रैतन नाम के परिचारक ने दीर्घतमा पर शस्त्र से प्रहार करना चाहा और ऐसा करते हुए उसने स्वयं अपना ही शिर, कन्धे और वक्ष काट डाले। (अथवा दीर्घतमा ने उसे मार डाला)।

महान् पाप में लिप्त उस दास का वध करने के पश्चात् दीर्घतमा ने जल में संज्ञाहीन अपने अंगों को हिलाया। नदी की धारा ने उन्हें बहाकर अंग देश के पास पहुंचा दिया। अंगराज के गृह में उशिज् की दासी थी। पुत्रप्राप्ति की आशा से दासी को राजा ने दीर्घतमा के पास भेजा। उस महातपा दीर्घतमा ने दासी की भक्ति को देखकर उसे उठाकर ऋषि कक्षीवान् आदि पुत्रों को उत्पन्न किया।

इन्द्रागस्त्यसंवादः इतिहासः पुरावृत्तम् ऋषिभिः परिकीर्त्यते—

समागच्छन्मरुद्भिस्तु चरन् व्योम्नि शतक्रतुः ।
दृष्ट्वा तुष्टाव तानिन्द्रस्ते चेन्द्रममृषयोऽब्रुवन् ।
तेषामगस्त्यः संवादं तपसा वेद तत्त्वतः ।
स तानभिजगामाशु निरुप्यैन्द्रं हविस्तदा ।
विज्ञायावेक्ष्य यद्भावम् इन्द्रो नेति तमब्रवीत् ।
न श्वो नाद्यतनं ह्यस्ति वेद कस्तद्यद्भुतम् ।

कस्यचित्त्वर्थसंचारे चित्तमेव विनश्यति ।
किं न इत्यब्रवीदिन्द्रम् अगस्त्यो भ्रातरस्तव ।
मरुद्भिः संप्रकल्पस्व वधोर्मा नः शतक्रतो ।
किं नो भ्रातरिति त्वस्याम् इन्द्रो मान्यमुपालभत् ।
अगस्त्यस्वरमित्यस्यां क्षुब्धमिन्द्रं प्रशामयत् ।
प्रादाद् संवननं कृत्वा तेभ्य एव च तद्धविः ।
सुते चकार सोमेऽथ तानिन्द्रः सोमपीथिनः ।
मरुद्भिः सह यत्रेन्द्रो मरुत्वांस्तत्र सोऽभवत् ॥ (४।४६-५६)

अर्थ—यहाँ पर ऋषियों द्वारा प्राचीन इतिवृत्तों के इतिहास कथित हैं। आकाश में भ्रमण करते हुए शतक्रतु (इन्द्र) मरुतों के साथ नीचे (पृथिवी पर) आये। उन्हें देखकर इन्द्र ने मरुतों की स्तुति की और मरुतों ने भी ऋषिरूप में इन्द्र को सम्बोधित किया। तब, अगस्त्य ऋषि इन्द्र के लिए हविःनिर्माण करके शीघ्रतापूर्वक वहां गये और उन्होंने तीन सूक्तों (ऋग्वेद १।१६६-१६८) द्वारा मरुतों की स्तुति की।

(ऋषि ने मरुतों के लिए भी हविः देने का विचार किया), तब अगस्त्य का भाव जानकर इन्द्र ने कहा—'वास्तव में न तो कल (आगामी) और न आज और जो कभी हुआ नहीं, उसे कौन जान सकता है?' अर्थसंचार की अनिश्चितता से मनुष्य का चिन्तन किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है। तब अगस्त्य ने इन्द्र से कहा—'मरुद्गण आपके भ्राता हैं। अतः मरुतों (के लिये मेरी हविः) से आप सहमत हों। शतक्रतो! आप इनका वध न करें। 'क्या मरुत मेरे भ्राता हैं?' ऐसा कहकर इन्द्र ने अगस्त्य का उपालम्भ किया। तब अगस्त्य ने क्षुब्ध इन्द्र को शान्त किया। उसे सान्त्वना देकर और संवनन करके अगस्त्य ने मरुतों को हवि दी। सोम संवनन के पश्चात् इन्द्र ने मरुतों को सोमपान के लिये बुलाया—(उन्हें सोमपीथी बनाया)।

जहां जहां इन्द्र मरुतों के साथ गये, वहीं उन्हें मरुवत् (मरुत्वान्) कहा जाता है।

अगस्त्यपत्नी लोपामुद्रा—

ऋतौ स्नातामृषिर्भार्यां लोपामुद्रां यशस्विनीम् ।
उपजल्पितुमारेभे रहः संयोगकाम्यया ।
विदित्वा तपसा सर्वं तयोर्भावं रिरंसतोः ।
श्रुत्वैनः कृतवानस्मि ब्रह्मचार्युत्तमे जगौ ।
प्रशस्य तं परिष्वज्य गुरू मूर्ध्न्यवजघ्रतुः ।
स्मित्वैनमाहतुश्चोभावनागा असि पुत्रक ॥ (४।५७, ५९, ६०)

अर्थ—यशस्विनी ऋतुस्नात लोपामुद्रा पत्नी से एकान्त में संयोग (मैथुन) करने की इच्छा से ऋषि अगस्त्य ने बातचीत शुरु की थी कि तपस्वी शिष्य ने उनके कामभाव और कामवार्ता को सुन लिया।

शिष्य ने सोचा कि मैंने यह बात सुनकर पाप किया तो (वह गुरु से क्षमा मांगने लगा) तब अगस्त्य ने उस शिष्य की प्रशंसा की और उसका शिर सूंघा और हंसकर दोनों ने कहा—पुत्र ! तुम निष्पाप हो।

शौनहोत्रो गृत्समदः, इन्द्रेण च धुनिचुमुर्योर्वधः—

संयुज्य तपसात्मानम् ऐन्द्रं बिभ्रन्महद्वपुः।
अदृश्यत मुहूर्तेन दिवि व्योम्नि चेह च।
तमिन्द्रमिति मत्वा तु दैत्यौ भीमपराक्रमौ।
धुनिचुमुरिश्चोभौ सायुधावभिपेततुः।
विदित्वा स तयोर्भावमृषिः पापं चिकीर्षतोः।
यो जात इति सूक्तेन कर्माण्यैन्द्राण्यकीर्तयत्।
उक्तेषु कर्मस्वैन्द्रेषु भीस्तावाशु विवेश ह।
इदमन्तमित्युक्त्वा ताविन्द्रस्तु निबर्हयत्।
निहत्य तौ गृत्समदमृषिं शक्रोऽभ्यभाषत।
यथेष्टं मां सखे पश्य प्रियत्वं ह्यागतोऽसि मे।
वरं गृहाण मत्तस्त्वम् अक्षयं चास्तु ते तपः।
प्रह्वस्तं प्रत्युवाचर्षिरस्माकं वदतांवरः। (४।६५।७१)
सखित्वाच्च पुनश्चैनमुवाच हरिवाहनः।
गृणन्मादयसे यस्मात् त्वमस्मानृषिसत्तम।
तस्माद् गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि (४।७७-८८)

अर्थ—तप के द्वारा इन्द्र के साथ संयोग करके इन्द्र के ही समान शरीर धारण करते हुए गृत्समद ऋषि क्षण भर में आकाश और पृथिवी पर प्रकट हुए। भयंकर पराक्रमी दो दैत्य असुर धुनि और चुमुरि ने उनको इन्द्र समझकर उन पर आयुधों से आक्रमण किया। इन दोनों असुरों के पाप भाव को समझकर ऋषि ने 'यो जातः' (ऋ० २।१२) सूक्त द्वारा इन्द्र के कर्मों का कीर्तन किया। इन्द्र के कर्मों के कथन को सुनकर उन दोनों असुरों में भय का संचार होगया। अब इन्द्र ने उपयुक्त अवसर जानकर उन दोनों को मार डाला।

उनको मारने के पश्चात् शक्र ने गृत्समद से कहा—'हे सखे ! मैं तुम्हारा प्रिय हूं और क्योंकि तुम मेरी शरण में आये हो—मुझसे वर मांगो तथा तुम्हारा तप अक्षय हो। ऋषि ने झुककर कहा (हे देवराज ! तुम हमारे रक्षक हो)।

मैत्रीवश इन्द्र ने पुनः कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ ! क्योंकि आप अपनी स्तुति द्वारा मुझको प्रसन्न या मस्त करते हो, अतः शुनहोत्र काशिराज के कारण तुम्हारा नाम 'शौनहोत्र गृत्समद' होगा ।

गाथिपुत्रः विश्वामित्रः—

प्रशास्य गां यस्तपसाभ्यगच्छद्
ब्रह्मर्षितामेकशतं च पुत्रान् ।
स गाथिपुत्रस्तु जगाद सूक्तं
सोमस्य मेत्याग्नेयं यत्परे च ।। (४।६५)

अर्थ—राज्य शासन करने के पश्चात् तपस्या द्वारा ब्रह्मर्षि पद और १०१ पुत्र प्राप्त करके गाथिपुत्र विश्वामित्र ने 'सोमस्य मा' (ऋ० ३।१) सूक्त तथा अन्य सूक्तों का प्रवचन किया ।

सुदासः (पैजवनः) ऐक्ष्वाकस्तथा विश्वामित्रः—

सुदासश्च महायज्ञे शक्तिना गाथिसूनवे ।
निगृहीतं बलाच्चेतः सोऽवसीदद्विचेतनः ।
तस्मै ब्राह्मीं तु सौरीं वा नाम्ना वाचं ससर्परीम् ।
सूर्यक्षयादिहाहृत्य ददुस्ते जमदग्नयः ।
कुशिकानां ततः सा वाग् अमतिं तामपाहनत् ।
उपेति चास्यां च कुशिकान् विश्वामित्रोऽनुबोधयत् ।
लब्ध्वा वाचं च हृष्टात्मा तानृषीन् प्रत्यपूजयत् । (४-११२–११५)

अर्थ—सुदास (पैजवन ऐक्ष्वाक) के एक महायज्ञ में शक्ति ने गाथिपुत्र (वंशज) विश्वामित्र (वैश्वामित्र) को बलपूर्वक चेतनारहित कर दिया। वह निःसंज्ञ (गैर होश) होकर दुःखी हुआ, किन्तु जमदग्नियों (जमदग्नि के वंशज ऋषियों) ने उसे सूर्य के आवास से लाकर ब्राह्मी सर्पिणी वाक् प्रदान की तब उस वाक् से कुशिकों (वैश्वामित्रों) की अभति (दुर्बुद्धि) को दूर कर दिया।

और 'उप' (ऋ० ३।५३।११) ऋचा द्वारा वैश्वामित्रों ने कुशिकों को पुनः चेतनायुक्त बनाया। वाक् को प्राप्त करके प्रसन्नचित्त वैश्वामित्र ने जमदग्नियों का पूजन किया।

वामदेवस्येन्द्रविजयः—

अन्वशाददितिः पुत्रम् इन्द्रमात्महितैषिणी ।
स जातमात्रो युद्धाय ऋषिमेवाजुहाव तु ।
योधयन्वामदेवस्तं कृत्वात्मनि बलं तथा ।
दिनानि दश रात्रीश्च विजिग्ये चैनमोजसा (४।१३१–१३२)

अर्थ—अपने हित के लिये ही अदिति ने अपने पुत्र इन्द्र को शान्त किया, किन्तु जन्म लेते ही इन्द्र ने ऋषि वामदेव (?) को युद्ध के लिए ललकारा। तब वामदेव ने अपने में बल का संचार करके दश दिन और दश रात्रियों तक युद्ध करके इन्द्र को परास्त किया।

ऐक्ष्वाकस्त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, वृशो जानः पुरोहितश्च—

ऐक्ष्वाकस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थितः।
संजग्राहाश्वरश्मींश्च वृशो जानः पुरोहितः।
स ब्राह्मणकुमारस्य रथो गच्छञ्छिरोऽच्छिनत्।
एनस्वीत्यब्रवीच्चैव स राजैनं पुरोहितम्।
सोऽथर्वाङ्गिरसान्मन्त्रान् दृष्ट्वा संजीव्य तं शिशुम्।
क्रोधात्संत्यज्य राजानम् अन्यदेशं समाश्रितः।
हरोऽप्यग्नेर्ननाशास्य तस्यापक्रमणादृषेः।
अग्नौ प्रास्तानि हव्यानि न ह्यपचन्त कानिचित्।
तत प्रव्यथितो राजा सोऽभिगम्य प्रसाद्य तम्॥
आनीत्वा स वृशं जानं पुनरेव पुरोदधे।
स प्रसन्नो वृशोऽन्वैच्छद्धरमग्नेर्नृपक्षये।
अविन्दत पिशाची तां जायां तस्य भूपतेः।
निषण्णः स तया सार्धम् आसन्द्यां कशिपावपि।
तामुपामन्त्रयांचक्रे ब्रुवंस्तामभ्यभाषत।
वि ज्योतिषेति चोक्तायां सहसाग्निरुदज्वलत्।
सहमानः समायान्तं प्रकाशं च प्रकाशयन्।
पिशाचीमदहत्तां स यत्र चोपविवेश सा। (५।१३-२२)

अर्थ—ऐक्ष्वाक त्रिवृष्ण के पुत्र राजा त्र्यरुण अपने रथ पर बैठे हुए जा रहे थे और जनपुत्र वृश पुरोहित ने अश्वों की डोरियां पकड़ी हुई थीं। मार्ग में चलते हुए रथ ने एक ब्राह्मणपुत्र (शिशु) को काट दिया तब राजा ने पुरोहित से कहा—'तुम ही हत्यारे हो।' तब वृश जान पुरोहित ने आथर्वणमन्त्रों द्वारा बालक को पुनरुज्जीवित कर दिया तथा क्रोध में राजा को छोड़कर अन्यदेश में चले गये। ऋषि के चले जाने पर राजा के अग्नि का हर (ताप) नष्ट होगया। उसमें डाली कोई हवि पकती नहीं थी। तब दुःखी होकर राजा वृश जान के पास गये और उन्हें प्रसन्न करके लौटा लाये तथा पुनः अपना पुरोहित बनाया। प्रसन्न होकर वृशजान ने राजा के घर में ताप की खोज की तो राजा की पत्नी को पिशाची के रूप में पाया। उसके साथ आसनयुक्त कुर्सी पर बैठकर वृश ने पिशाची

को 'कम् एतं त्वम्' (ऋ० ५।२।२) मन्त्र द्वारा सम्बोधित किया। अग्नि के ताप को एक कुमार के रूप में बताते हुए उन्होंने पिशाची को सम्बोधित किया और जब उन्होंने 'वि ज्योतिषा' (ऋ० ५।२।९) कहा तब पास आते हुए को दूर भगाते हुए और प्रकाश को दिखाते हुए अकस्मात् अग्नि प्रकट हुई और पिशाची को जहां वह बैठी थी, वहीं अग्नि ने भस्म कर दिया।

त्र्यरुणराज्ञो दानम्—

अयुतं च गवां त्रीणि शतान्यथ च विंशतिम्।
सौवर्णशकटं गोभ्यां त्र्यरुणोऽदान्नृपोऽत्रये। (५।३०)

अर्थ—राजा त्र्यरुण (त्रैवृष्ण, ऐक्ष्वाक) ने अत्रि (आत्रेय) ऋषि को दश सहस्र तीन सौ बीस गायें और दो बैलों सहित एक सुवर्ण रथ दान में दिये।

अश्वमेधभारतस्य त्रसदस्योश्च दानम्—

अश्वमेधः शतं चोक्ष्णां—त्रसदस्युर्धनं बहु। (५।३१)

अर्थ—राजा अश्वमेध (भारत) ने सौ बैल और त्रसदस्यु (अज्ञात वंश) राजा ने बहुत सा धन दान दिया।

रौशमऋणंचयस्य दानम्—

अत्रेः सुतमृषिं बभ्रुम् आर्त्विजाय ऋणंचयः।
सहस्रदक्षिणे सोमे वव्रे तं सोऽप्ययोजयत्।
ददौ च रौशयो राजा सहस्राणि शतानि च।
तस्मै चत्वारि चत्वारि महावीरं च काञ्चनम्॥ (५।३३-३४)

अर्थ—राजा ऋणंचय (रौशम) ने अत्रि के पुत्र बभ्रु ऋषि को अपने सोम-यज्ञ में ऋत्विज् बनाया, जिसमें उसे एक सहस्र गायें दक्षिणा में दी गईं। बभ्रु ने ही ऋणंचय का यज्ञ किया। इस रौशम ऋणंचय ने चार सहस्र और चार सौ गायें और सुवर्णपात्र महावीर (यज्ञियपात्र) भी दान में दिया।

अर्चनानाः (आत्रेयः) तत्पुत्रः श्यावाश्वो रथवीतिर्दार्भ्यश्च—

राजर्षिरभवद्दार्भ्यो रथवीतिरतिविश्रुतः।
स यक्ष्यमाणो राजात्रिम् अभिगम्य प्रसाद्य च।
आत्मानं कार्यमर्थं च ख्यापयन् प्राञ्जलिः स्थितः।
अवृणीतर्षिमात्रेयम् आर्त्विज्यायार्चनानसम्।
स सपुत्रोऽभ्यगच्छत्तं राजानं यज्ञसिद्धये।
श्यावाश्वश्चात्रिपुत्रस्य पुत्रः खल्वर्चनानसः।
साङ्गोपाङ्गान्सर्वान् वेदान् यः पित्राध्यापितो मुदा।
अर्चनानाः सपुत्रोऽथ गत्वा नृपमयाजयत्॥

स्नुषा मे राजपुत्री स्याद् इति तस्य मनोऽभवत् ।
श्यावाश्वस्य च तस्यां वै सक्तमासीत्तदा मनः ।
संयुजस्व मया राजन्निति याज्यं सोऽब्रवीत् ।।
श्यावाश्वाय सुतां दित्सुर्महिषीं स्वां नृपोऽब्रवीत् ।
किं ते मतमहं कन्यां श्यावाश्वाय ददामि हि ।
अत्रिपुत्रोऽदुर्बलो हि जामाता त्वावयोरिति ।
राजानमब्रवीत्सापि नृर्षिकुलजा ह्यहम् ।
नानृषिर्नौ तु जामाता नैष मन्त्रान् हि दृष्टवान् ।
ऋषये दीयतां कन्या वेदस्याम्बा भवेत्तदा ।
ऋषिर्मन्त्रदृशं वेदपितरं मन्यते ततः ।
प्रत्याचष्टे स तं राजा सह संमन्त्र्य भार्यया ।
अनृषिर्नैव जामाता कश्चिद्भवितुमर्हति ।
प्रत्याख्यात ऋषिस्तेन वृत्ते यज्ञे न्यवर्तत ।
श्यावाश्वस्य तु कन्याया मनो नैव न्यवर्तत ।
ततस्तौ तु निवर्तेताम् उभावेवाभिजग्मतुः ।
शशीयसीं तरन्तं च पुरुमीढं च पार्थिवम् ।
तरन्तपुरुमीढौ तु राजानौ वैददश्व्यृषी ।
ताभ्यां तौ चक्रतुः पूजाम् ऋषिभ्यां नृपतिः स्वयम् ।।
ऋषिपुत्रं महिष्याश्च दर्शयामास तं नृपः ।
तरन्तानुमता चैव प्रादाद् बहुविधं वसु ।
अजाविकं गवाश्वं च श्यावाश्वाय शशीयसी ।
अत्रिं याज्यार्चितौ गत्वा पितापुत्रौ स्वमाश्रमम् ।
अभ्यवादयतामत्रिं महर्षिं दीप्ततेजसम् ।
श्यावाश्वस्य मनस्यासीन्मन्त्रस्यादर्शनादहम् ।
न लब्धवानहं कन्यां हन्त सर्वाङ्गशोभनाम् ।
अप्यहं मन्त्रदर्शी स्यां भवेद्धर्षो महान्मम ।
इत्यरण्ये चिन्तयतः प्रादुरासीन्मरुद्गणः ।
ददर्श संस्थितान्पार्श्वे तुल्यरूपानिवात्मनः ।
समानवयश्चैव मरुतो रुक्मवक्षसः ।
तांस्तुल्यवयसो दृष्ट्वा देवान् पुरुषविग्रहान् ।
श्यावाश्वो विस्मितोऽपृच्छत् के ष्ठेति मरुतस्तदा ।
ततस्तु मरुतो देवान् रुद्रसूनुरबुध्यत ।

सुताः स्तुत्या तया प्रीता गच्छन्तः पृश्निमातरः ।
अवमुच्य स्ववक्षेभ्यो रुक्मं तस्मै तदा ददुः ।
मरुत्सु तु प्रयातेषु श्यावाश्वः सुमहायशाः ।
रथवीतेर्दुहितरं अगच्छन्मनसा तदा ।
स सद्य ऋषिरात्मानं प्रवक्ष्यन् रथवीतये ।।
एतं मे स्तोत्रमित्याभ्यां दौत्ये रात्रीं न्ययोजयत् ।
रथवीतिमपश्यन्तीं संप्रेक्ष्यार्षेण चक्षुषा ।
रम्ये हिमवतः पृष्ठे एष क्षेतीति चाब्रवीत् ।
ऋषेर्नियोगमाज्ञाय देव्या रात्र्या प्रचोदितः ।
आदाय कन्यां तां दार्भ्य उपेयायार्चनानसम् ।
पादौ तस्योपसंगृह्य स्थित्वा प्रह्वः कृताञ्जलिः ।
रथवीतिरहं दार्भ्य इति नाम शशंस ह ।
मया संगतिमिच्छन्तं त्वां प्रत्याचक्षि पुरा ।
तत्क्षमस्व नमस्तेऽस्तु मा च मे भगवन् क्रुधः ।
ऋषेः पुत्रः स्वयमृषिः पितासि भगवन्नृषेः ।
हन्त प्रतिगृहाणेमां स्नुषामित्येवमब्रवीत् ।
पाद्यार्घ्यमधुपर्कैश्च पूजयित्वा स्वयं नृपः ।
शुक्लमश्वशतं दत्त्वा अनुजज्ञे गृहान् प्रति ।
शशीयसीं तरन्तं च पुरुमीढं च पार्थिवम् ।
षड्भिः सनदिति स्तुत्वा जगामर्षिरपि क्षयम् ।। (५।७१-८१)

अर्थ—(इतिहास में) रथवीति नाम का एक प्रसिद्ध राजर्षि था। यज्ञ करने की इच्छा से वह अत्रि=(अर्चनानस् आत्रेय) ऋषि के पास गया। अपना तथा अपने कार्य का प्रयोजन बताकर जब वह हाथ जोड़कर खड़ा हुआ, तब उसने ऋत्विक्कर्म हेतु अर्चनाना आत्रेय को चुना। वह ऋषि अपने पुत्र के साथ यज्ञ-सिद्धि हेतु राजा के पास आये! उनके पुत्र का नाम श्यावाश्व था। उसको पिता ने हर्षपूर्वक वेद और वेदांगों का अध्ययन कराया था। अर्चनाना ऋषि ने अपने पुत्र के साथ जाकर राजा का यज्ञ सम्पन्न कराया।

जब यज्ञ चल रहा था, तब उसने राजा की यशस्विनी पुत्री को देखा। ऋषि के मन में विचार आया कि राजा की पुत्री मेरी पुत्रवधू बने। तब तक श्यावाश्व का मन भी उस पर आसक्त हो चुका था। ऋषि ने याजक (राजा) से कहा—'हे राजन्! आप मेरे साथ सम्बद्ध हो जाओ।' श्यावाश्व को अपनी पुत्री देने की इच्छा से राजा ने अपनी महिषी (महारानी) से पूछा—'तुम्हारा क्या मत

है ? क्या मैं कन्या को श्यावाश्व को दे दूं।' क्योंकि आत्रेय हमारे लिए एक दुर्बल जामाता नहीं होगा। तब रानी ने कहा—'मैं राजर्षियों के कुल में उत्पन्न हुई हूं। जो ऋषि नहीं है, वह हमारा जामाता नहीं होना चाहिये। इस श्यावाश्व ने मन्त्रों का दर्शन नहीं किया है। कन्या किसी ऋषि को ही दी जाय, इस प्रकार वह वेदमाता होगी क्योंकि मन्त्रद्रष्टा को वेदपिता कहा गया है।

अपनी पत्नी के साथ परामर्श करने के पश्चात् राजा ने आत्रेय से कहा — 'जो ऋषि नहीं है, वह हमारा जामाता नहीं हो सकता। राजा के द्वारा अस्वीकृति मिलने पर ऋषि यज्ञ समाप्त होने पर लौट आये। किन्तु श्यावाश्व का मन कन्या से नहीं लौटा। इस प्रकार दोनों लौटे। वे दोनों शशीयसी, तरन्त और राजा पुरुमीढ़ से मिले। तरन्त और पुरुमीढ़ ऋषि— दोनों राजा विददश्व के पुत्र थे। दोनों राजाओं ने ऋषि और ऋषिपुत्र का पूजन किया। राजा तरन्त ने ऋषिपुत्र का अपनी महारानी को दर्शन कराया और तरन्त की अनुमति से रानी शशयसी ने प्रचुर धन, भेड़-बकरियां, गायें और अश्व श्यावाश्व को दिये। इस प्रकार याजकों से सम्मानित होकर पिता-पुत्र अपने आश्रम आये।

श्यावाश्व के मन में था कि मैंने किसी मन्त्र का दर्शन नहीं किया, अतः मैं सर्वांगसुन्दरी कन्या को प्राप्त नहीं कर सका। यदि मैं मन्त्रदर्शी हो जाऊं तो मुझे महान् हर्ष होगा।

जब श्यावाश्व ने वन में इस प्रकार चिन्तन किया तब उसके सम्मुख मरुद्-गण प्रकट हुए। उसने अपने पास में ही अपने रूप के तुल्य सुवर्णवक्ष मरुतों को देखा। पुरुषरूपी तथा आयु में समान देखकर विस्मित श्यावाश्व ने पूछा—'के ष्ठ' 'कौन हो' और वह जान गया कि ये रुद्र के पुत्र मरुद्गण हैं। स्तुति की जाने पर और उन स्तुतियों से प्रसन्न होकर पृश्निपुत्र मरुद्गण जब जाने लगे तो उन्होंने अपने गले से स्वर्णनिष्क उतारकर ऋषिपुत्र को दे दिया। जब मरुद्गण वहां से चले गये तब महायशस्वी श्यावाश्व विचारों से वे रथवीति के पास पहुंच गये। उसने अपने को सद्य ऋषि सिद्ध करने के हेतु 'एतं मे स्तोमम्' सूक्त द्वारा रात्रि (भारद्वाजी) को दौत्यकर्म के लिए नियुक्त किया। रथवीति को न देखने वाली रात्रि को आर्षनेत्रों से देखकर 'एष क्षेति' मन्त्र द्वारा कि वह हिमालय के रम्यपृष्ठ पर रहते हैं। ऋषि की आज्ञा से रात्रि द्वारा प्रेरित दार्भ्य रथवीति कन्या को लेकर अर्चनाना के पास गये और उनसे क्षमा मांगते हुए बोले—'मैं दर्भ का पुत्र रथवीति हूं। मेरे साथ सम्बन्ध करने की आपकी इच्छा को मैंने अस्वीकार कर दिया था। आप मुझे क्षमा करें। मैं आपको नमस्कार करता हूं, आप क्रुद्ध न हों। आप ऋषिपुत्र, स्वयं ऋषि और ऋषिपिता हैं। कृपया, इस कन्या को

पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कीजिये। राजा ने ऐसा कहकर स्वयं ही पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्क द्वारा उनका पूजन किया। साथ ही उन्हें एक सौ सफेद घोड़े प्रदान करके घर जाने की अनुमति चाही। ऋषि ने 'सनत्' इत्यादि से आरम्भ करके शशीयसी, तरन्त और पुरुमीढ़ की स्तुति की और घर गये।

सप्तवध्रिः; अश्वमेधो भारतश्च—

सप्त कृत्वापराधान्वै विफले दारसंग्रहे।
ऋषिः कृतोऽश्वमेधेन भारतेनेति श्रुतिः।
तमष्टमेऽपराधे तु वृक्षद्रोण्यां स पार्थिवः।
ऋषीरे ह विनिक्षिप्य स्कन्नं रात्रौ न्यधारयत्।
सोऽश्विनाविति सूक्तेन तुष्टावर्षिः शुभस्पती।
तौ तं तस्मात्समुद्धृत्य चक्रतुः सफलं पुनः।

अर्थ—इतिहास है कि सात बार विफल हो जाने पर भरतवंशी राजा अश्वमेध ने (सप्तवध्रि) ऋषि को पुनः नियुक्त किया, क्योंकि वह पुत्रविहीन था। फिर आठवीं बार विफल हो जाने पर राजा ने ऋषि को वृक्षद्रोणी में रखकर एक गर्त में फेंककर वहीं पड़ा रहने दिया। वह रात्रि भर वहीं पड़े रहे। तब ऋषि ने सूक्त द्वारा शुभस्पती अश्विनौ की स्तुति की। उसे गर्त से ऊपर निकाल कर मरुतों ने पुनः उसे सफल कर दिया।

भृग्वंगिरसोरत्रेश्च जन्मकथा—

त्रिसांवत्सरिकं सत्रं प्रजाकामः प्रजापतिः।
आहरत्सहितः साध्यैर्विश्वैर्देवैः सहेति च।
तत्र वाग्दीक्षणीयायाम् आजगाम शरीरिणी।
तां दृष्ट्वा युगपत्तत्र कस्यस्य वरुणस्य च।
शुक्रं चस्कन्द तद्वायुरग्नौ प्रास्यद्यदृच्छया।
ततोऽर्चिभ्यो भृगुर्जज्ञे अङ्गारेष्वङ्गिरा ऋषिः।
प्रजापतिं सुतौ दृष्ट्वावागम्याभ्यभाषत।
आभ्यामृषिस्तृतीयोऽपि भवेदत्रैव मे सुतः।
प्रजापतिस्तथेत्युक्तः प्रत्यभाषत भारतीम्।
ऋषिरत्रिस्ततो जज्ञे सूर्यानलसमद्युतिः॥ (५।९७-१०१)

अर्थ—प्रजापति (वरुण) ने प्रजा की इच्छा से साध्यों और विश्वेदेवों के साथ तीन वर्ष का यज्ञसत्र किया। उस समय दीक्षा के अवसर पर शरीरिणी वाक् वहां आई। उसे देखकर प्रजापति और वरुण का शुक्र स्खलित होगया। उनकी इच्छा से वायु ने उस शुक्र को अग्नि में छोड़ दिया। तब ज्वालाओं से

भृगु (अथर्वा) और अंगारों से अंगिरा। दो पुत्रों को देखकर और स्वयं भी देखकर वाक् ने प्रजापति (वरुण) से कहा—'इन दो के अतिरिक्त एक 'तृतीय' भी मेरा पुत्र उत्पन्न हो। इस प्रकार प्रजापति ने भारती से कहा—ऐसा ही होगा। तब सूर्य और अग्नि के समान तेज वाले 'अत्रि' ऋषि उत्पन्न हुए।

बृहस्पतिभरद्वाजौ—

योऽङ्गारेभ्य ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः।
बृहस्पतेर्भारद्वाजो विदथीति य उच्यते ॥ (५।१०२)

अर्थ—जो ऋषि अंगारों से उत्पन्न हुए, उन अंगिरा के पुत्र बृहस्पति थे। बृहस्पति के पुत्र थे—'भरद्वाज' जो 'विदथि' भी कहे जाते हैं।

अभ्यावर्ती चायमानः प्रस्तोकः साञ्जयो भरद्वाजश्च—

अभ्यावर्ती चायमानः प्रस्तोकश्चैव साञ्जयः।
आजग्मतुर्भरद्वाजं जितौ वारशिखैर्युधि।
अभिगम्योचतुस्तौ तं प्रसाद्याख्याय नामनी।
युधि वारशिखैर्ब्रह्मन्नावां विद्धि विनिर्जितौ।
भवेत्पुरोहितावावां क्षत्रबन्धूञ्जयेमहि।
क्षत्रं तदपि विज्ञेयं ब्रह्म यत्पाति शाश्वतम् ॥
ऋषिस्तौ तु तथेत्युक्त्वा पायुं पुत्रमभाषत।
अधर्षणीयौ शत्रूणां कुरुष्वैतौ नृपाविति। (५।१२४-१२७)
भरद्वाजोऽभिस्तुष्टाव पीतस्तेन पुरन्दरः।
अभ्यावर्तिनमभ्येत्य हर्युपीयानदीतटे।
सहितश्चायमानेन जघानैताञ्छचीपतिः।
तौ तु वारशिखाञ्जित्वा ततोऽभ्यावर्तिसाञ्जयौ ॥
भरद्वाजाय गुरवे ददतुर्विविधं वसु।
भरद्वाजश्च गर्गश्च दृष्टाविन्द्रेण वै पथि।
द्वयान् प्रस्तोक इत्यादिभिर्दानं तद्वै शशंसतुः ॥ (५।१३७-१४०)

अर्थ—अभ्यावर्ती चायमान और प्रस्तोक साञ्जय—दो राजा युद्ध में वारशिखों से पराजित होकर भरद्वाज ऋषि के पास आये। ऋषि को प्रसन्न करके वे बोले—'हे ब्रह्मन्! हमको युद्ध में वारशिखों ने पराजित कर दिया है अतः यह जानो! आप हमारे पुरोहित बनें जिससे हम नीच क्षत्रियों (दस्यु=म्लेच्छों) को जीत सकें। उसे ही 'क्षत्र' मानना चाहिए जो सदा 'ब्रह्म' की रक्षा करता है।

उन दोनों राजाओं से 'तथास्तु' कहकर भरद्वाज ऋषि ने अपने पुत्र 'पायु' से कहा—'हे पुत्र! इन दोनों राजाओं को अपराजेय बना दो।' अपने पिता से

'हां' कहकर पायु ने उनको पृथक्-पृथक् 'जीमूत' सूक्त (ऋ० ६।७५) द्वारा अभिषिक्त किया।

भरद्वाज ने चायमान की सहायतार्थ इन्द्र की स्तुति की। इमसे प्रसन्न होकर शचीपति पुरन्दर (इन्द्र) हर्युपीया नदी के तट पर चायमान के पास आये और उसको साथ लेकर शत्रुओं का वध किया।

वारशिखों को जीतने के पश्चात् अभ्यावर्ती चायमान और प्रस्तोक साञ्जंय ने गुरु भरद्वाज को प्रचुर धन दिया। मार्ग में इन्द्र ने गर्ग और भरद्वाज को देखा और 'द्वयान्' (ऋ० ६।२७।८) और 'प्रस्तोक' (ऋ० ६।४७।२२) से प्रारम्भ ऋचाओं द्वारा उस दान की प्रशंसा की।

कश्यपमारीचः द्वादश आदित्याश्च—

प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः।
तस्य देव्योऽभवञ्जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश।
अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका मुनिः।
क्रोधा विश्वा वरिष्ठा च सुरभिर्विनता तथा।
कद्रूश्चैवेति दुहितृः कश्यपाय ददौ स च।
तासु देवासुराश्चैव गन्धर्वोरगराक्षसाः।
वयांसि च पिशाचाश्च जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः।
तत्रैका त्वदितिर्देवी द्वादशाजनयत्सुतान्।
भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च।
धाता चैव विधाता च विवस्वांश्च महाद्युतिः।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते॥ (५।१४३।१४८)

अर्थ—प्रजापति के पुत्र मरीचि हुए, मरीचि के पुत्र (या वंशज) कश्यप मुनि थे। दक्ष की तेरह पुत्रियां कश्यप की पत्नियां हुईं—अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा, वरिष्ठा, सुरभि, विनता और कद्रू! इनका विवाह दक्ष ने कश्यप से किया। इन कश्यप से ही देव, असुर, गन्धर्व, नाग, राक्षस, सुपर्ण (पक्षी) तथा अन्य मनुष्य जातियां उत्पन्न हुईं।

इनमें से एक अदिति देवी ने बारह पुत्रों को जन्म दिया (जो अदिति के पुत्र होने से आदित्य कहलाये)—भग, अर्यमा, अंश, मित्र, वरुण, धाता, विधाता, महातेजस्वी विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और बारहवें विष्णु।

मित्रावरुणाभ्यामगस्त्यवसिष्ठयोर्जन्म—

द्वन्द्वं तस्यास्तु तज्जज्ञे मित्रश्च वरुणश्च ह।
तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाऽप्सरसमुर्वशीम्॥

रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वसतीवरे।
तेनैव तु मुहूर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः।
बहुधा पतिते शुक्रे कलशेऽथ जले स्थिते।
स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिरुत्तमः।
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः।
उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महायशाः।
मानेन संमितो यस्मात् तस्मान्मान्य इहोच्यते।
यद्वा कुम्भादृषिर्जातः कुम्भेनापि मीयते।
कुम्भ इत्यभिधानं तु परिमाणस्य लक्ष्यते॥
ततोऽप्सु गृह्यमाणासु वसिष्ठः पुष्करे स्थितः।
सर्वत्र पुष्करं तत्र विश्वेदेवा अधारयन्।
उत्थाय सलिलात्तस्मात् अथ तेपे महत्तपः।
नामास्य गुणतो जज्ञे वसतेः श्रेष्ठ्यकर्मणः।
अदृश्यमृषिभिर्हीन्द्रं सोऽपश्यत्तपसा पुरा।
सोमभागानथो तस्मै प्रोवाच हरिवाहनः।
ऋषयो वा इन्द्रमिति ब्राह्मणात्तद्धि दृश्यते।
वसिष्ठश्च वासिष्ठाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मकर्मणि।
सर्वकर्मसु यज्ञेषु दक्षिणीयतमास्तथा॥ (५।१४९-१५८)

अर्थ—वरुण और मित्र युग्म रूप से अदिति से उत्पन्न हुए। इनमें से इन दोनों आदित्यों ने अप्सरा उर्वशी को एक यज्ञसत्र में देखा तब उनका शुक्र स्खलित होगया और जल से भरे कुम्भ में गिर पड़ा और रातभर वहां पड़ा रहा। उसी क्षण वहां दो वीर्यवान्, तपस्वी ऋषि अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न होगये।

क्योंकि यह वीर्य विविध रूपों से कुम्भ, जल और स्थल पर गिरा था, अतः ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ स्थल पर उत्पन्न हुए और अगस्त्य कुम्भ में तथा महाद्युतिमान् मत्स्य जल में उत्पन्न हुए।

अगस्त्य शम्यामात्र (खूंट के बराबर) उदित हुए। उनको मान से सीमित किए जाने के कारण उनका यहां 'मान्य' नाम पड़ा। इस ऋषि का कुम्भ से जन्म हुआ था और कुम्भ द्वारा नापा गया। कुम्भ नाम एक परिमाण का भी है, (अतः मान्य या कुम्भज नाम हुआ।)

जब जलों को ग्रहण किया जा रहा था तब वसिष्ठ एक पुष्कर (कमलपत्र) पर खड़े पाये गये। तब विश्वेदेवों ने चारों ओर से उस पुष्कर को पकड़ लिया।

जल से निकलने के कारण वसिष्ठ ने महान् तप किया। इनका नाम गुणों के आधार पर श्रेष्ठ कर्मों के अर्थवाली 'वस्' धातु से बना।

वसिष्ठ ने ही तप के द्वारा इन्द्र को देखा जो अन्य ऋषियों के लिए अदृश्य थे। हरिवाहन इन्द्र ने इनको सोमभागों को प्राप्त करने के लिए कहा—'ऋषयो वा इन्द्रम्' इत्यादि ब्राह्मणग्रन्थों के वचनों से यह ज्ञात होता है।

वसिष्ठ और वासिष्ठ ब्राह्मण सभी प्रकार के यज्ञकर्मों में दक्षिणा प्राप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

सुदासो पैजवनस्य (ऐक्ष्वाकस्य) दानम्—

न किः सुदास इत्यस्यां दानं पैजवनस्य तु।
वसिष्ठेन चतुर्भिस्तु द्वे नप्तुरिति कीर्तितम्॥ (५।१६२)

अर्थ—'नकिः सुदासः' (ऋ० ७।३२।१०) से तथा 'द्वे नप्तुः' (ऋ० ७।१८।२२-२५) से आरम्भ चार ऋचाओं में वसिष्ठ (वासिष्ठ—अज्ञातनामा) द्वारा पैजवन सुदास (ऐक्ष्वाक) के दान का उल्लेख है।

वरुणगृहे वसिष्ठः सारमेयश्च

वरुणस्य गृहान् रात्रौ वसिष्ठः स्वप्न आचरत्।
प्राविवेशाथ तं तत्र श्वा नदन्नभ्यधावत।
क्रन्दन्तं सारमेयं स धावन्तं दष्टुमुद्यतम्।
यदर्जुनेति च द्वाभ्यां सान्त्वयित्वा व्यसुष्वपत्।
स तं प्रस्वापयामास जनमन्यं च वारुणम्।
ततस्तु वरुणो राजा स्वैः पाशैः प्रत्यबध्यत।
स बद्धः पितरं सूक्तैश्चतुर्भिरित उत्तरैः॥
अभितुष्टाव धीरेति मुमोचैनं ततः पिता।
ध्रुवासु त्वेति चोक्तायां पाशा अस्मात्प्रमोचिरे॥ (६।११-१५)

अर्थ—रात्रि के समय वसिष्ठ वरुण के घर आये और सोये। जब वसिष्ठ ने प्रासाद के अन्दर प्रवेश करना चाहा, तब वरुण का कुत्ता उन पर भौंका। काटने के लिए दौड़ने वाले और भौंकनेवाले कुत्ते को शान्त करते हुए 'यद् अर्जुन' (ऋ० ७।५५।२-) से आरम्भ दो ऋचाओं द्वारा उसे सुला दिया तथा उन्होंने वरुण के अन्य जनों को भी सुला दिया। तब राजा वरुण ने वसिष्ठ को अपने पाशों में बांध लिया। पाशबद्ध होने पर वसिष्ठ ने 'धीर' से आरम्भ होनेवाले चार सूक्तों (ऋ० ७।८६-८९) से वरुण की स्तुति की। तब उनके पिता ने उन्हें मुक्त कर दिया।

'ध्रुवासु त्वा' (ऋ० ७।८८।७) मन्त्र के कहने पर उनके पाश खुल गये।

नाहुषः (ययातिः) सरस्वती च—

राजा वर्षसहस्राय दीक्षिष्यन्नाहुषः पुरा।
चचारैकरथेनेमां ब्रुवन् सर्वाः समुद्रगाः।
यक्ष्ये वहत भागान्मे द्वन्दशो वाथ वैकशः।
प्रत्यूचुस्तं नृपं नद्यः स्वल्पवीर्या कथं वयम्।
वहेम भागान् सर्वांस्ते सत्रे वार्षसाहस्रिके।
सरस्वतीं प्रपद्यस्व सा ते वक्ष्यति नाहुष।
तथेत्युक्त्वा जगामाशु आपगां स सरस्वतीम्।
सा चैनं प्रतिजग्राह दुदुहे च पयोघृतम्॥

अर्थ— पूर्वकाल में राजा नाहुष (ययाति) ने एक सहस्र वार्षिक यज्ञ में दीक्षित होने की इच्छा से पृथिवी की सभी नदियों से यह कहते हुए कि 'मैं यज्ञ करने वाला हूं, इसके लिए या तो पृथक्-पृथक् अथवा इकट्ठा अपना भाग वहन करो।' रथ में बैठकर घोषणा करते रहे। नदियों ने राजा को उत्तर दिया— 'हम अत्यल्पशक्तिवाली हैं अतः आपके भागों को कैसे वहन कर सकती हैं ? अतः हे नाहुष ! आप सरस्वती की शरण में जाइये। वह तुम्हारे कार्यभार को वहन कर सकेगी।' 'ऐसा ही होगा' यह कहकर वह जल्दी ही सरस्वती नदी के पास गये और नदी ने उनका स्वागत किया तथा दूध और घी का दोहन किया।

वसिष्ठः सौदासाश्च—

ऋषिर्ददर्श राक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः।
हते पुत्रशते तस्मिन् सौदासैर्दुःखितस्तदा।
हते पुत्रशते तस्मिन् वसिष्ठो दुःखितस्तदा।
रक्षाभूतेन शापात्तु सुदासेनेति वै श्रुतिः (६।२८, ३४)

अर्थ—जब सौदासों (पैजवन सुदास ऐक्ष्वाक के पुत्रों) द्वारा वसिष्ठ (वासिष्ठ अज्ञातनामा, शक्ति के पिता) ने पुत्रों के शोक से परिपूर्ण और सन्तप्त होकर राक्षसों के नाश के लिए राक्षोघ्नसूक्त का दर्शन किया।

उस समय वसिष्ठ (वासिष्ठ) ऋषि सुदास (सौदास कल्माषपाद) द्वारा वध किये जाने पर दुःखी थे, जो (सौदास) एक शाप के कारण राक्षस बन गये थे ऐसा इतिहास (श्रुति) में प्रसिद्ध है।

कण्वप्रगाथयोः प्रसंगः—

कण्वश्च प्रगाथश्च घोरपुत्रौ बभूवतुः।
गुरुणा तावनुज्ञातावूषतुः सहितौ वने।
वसतोस्तु तयोस्तत्र कण्वपत्न्याः शिरः स्वपत्।

कृत्वा कनीयान् कण्वस्य उत्संगे नान्वबुध्यत ।
शप्तुकामस्तु तं कण्वः क्रुद्धः पापाभिशङ्कया ।
बोधयामास पादेन दिधक्षन्निव तेजसा ।
विदित्वा तस्य तं भावं प्रगाथः प्राञ्जलिः स्थितः ।
मातृत्वे च पितृत्वे च वरयामास तावुभौ ।
स घोरो वाथ काण्वो वा वंशजैर्बहुभिस्सह ।
ददर्शान्यैश्च सहित ऋषिर्मण्डलमष्टमम् ।। (६।३५-३९)

अर्थ—घोर (ऋषि) के दो पुत्र थे—कण्व और प्रगाथ। गुरु से आज्ञा लेकर वे एक वन (आश्रम) में रहने लगे। वहां रहते हुए एक दिन प्रगाथ कण्वपत्नी की गोद में अपना शिर रखकर सो रहे थे और जागे नहीं, पाप की शंका से क्रुद्ध होकर शाप देने की इच्छा से कण्व ने पैर से जगाया मानो वह उसे भस्म कर देंगे। उनके भाव को जानकर प्रगाथ ने हाथ जोड़कर खड़े होकर उन दोनों का अपनी माता और पिता के रूप में वरण किया।

इस प्रकार घोर अथवा कण्व के पुत्र के रूप में प्रगाथ ने अपने वंशजों के साथ अष्टम मण्डल का दर्शन किया।

दानस्तुतयः—

शिक्षेदृग्भ्यां तु काश्यस्य बिभिन्दोः परिकीर्तितम् ।
पाकस्थाम्नस्तु भोजस्य चतुर्भिर्यमिति स्तुतम् ।। (६।४२)
ऐन्द्राणामिह सूक्तानाम् उत्तमस्योत्तमे तृचे ।
दानं राज्ञः कुरुङ्गस्य स्थूरं राध इति स्तुतम् ।। (६।४४)
इत्यर्धर्चो द्वृचश्चान्त्यः कशोर्दानस्तुतिः स्मृता ।। (६।४५)
तृचे तु शतमित्यस्मिन् दानं तैरिन्दिरं स्मृतम् ।। (६।४७)
आग्नेये स्तुती राजर्षेस्त्रसदस्योरदादिति ।
पञ्चाशतं वधूनां च गवां तिस्रश्च सप्ततीः ।
अश्वोष्ट्राणां तथैवासौ वासांसि विविधानि च ।
रत्नानि वृषभं श्यावं तासामग्रेसरं पतिम् ।
कृत्वा दारानृषिर्गच्छन्निन्द्रायैतच्छशंस च ।
वयं सूक्तेन शक्रं च प्रीतस्तेन पुरन्दरः ।।
ऋषे वरं वृणीष्वेति प्रह्वस्तमृषिरब्रवीत् ।
काकुत्स्थकन्याः पञ्चाशद् युगपद् रमये प्रभो ।
कामतो बहुरूपत्वं यौवनं चाक्षयां रतिम् ।
शंखनिधिं पद्मनिधिं मद्गृहेष्वनपायिनीम् ।।
प्रासादान् विश्वकर्मासौ सौवर्णांस्त्वत्प्रसादतः ।

कुर्वीत पुष्पवाटीं च पृथक्तासां सुरद्रुमः।
मा भूत् सपत्नीस्पर्धासां सर्वमस्त्विति चाब्रवीत् ॥ (५।५१-५७)

× × ×

आखुराजोऽभिमानाच्च प्रहर्षितमनाः स्वयम्।
संस्तुतो देववच्चित्र ऋषये तु गवां ददौ।
अयुतानां सहस्रं वै निजग्राह स्तुवन्नृषिः॥
ऋषिं चोवाच हृष्टात्मा नाहमर्हाम्यृषे स्तुतिम्।
तिर्यग्योनौ समुत्पन्नो देवताः स्तोतुमर्हसि ॥ (६।६०-६२)
वैश्वदेव्यो वरू राजा यच्चाददावृषये वसु। (६।६६)
वशामाश्व्याय यत्प्रादात् कानीतस्तु पृथुश्रवाः।
तदत्र संस्तुतं दानं आ स इत्येवमादिभिः॥ (६।७९-८०)
द्विचत्वारिंशकात्प्रीतास्त्रिशोकाय पुरन्दरः।
गिरिं निकृत्य वज्रेण गा ददावसुरैर्हृताः॥
ऋक्षाश्वमेधयोरत्र पञ्च दानस्तुतिः पराः।
आत्मानमात्मना स्तुत्वा स्तौति दानं श्रुतर्वणः।
आत्मदानाभिसंबन्धात् परुष्णीं च महानदीम् ॥ (६।८१-८२)

काश्यः बिभिन्दुः—'शिक्ष' से प्रारम्भ दो ऋचाओं (ऋ० ७।२।४१-४२) में काशिराज बिभिन्दु का कीर्तन है।

पाकस्थामा भोजः—'यम्' से आरम्भ चार ऋचाओं में (ऋ० ८।३।२१-२४) पाकस्थामा भोज की दानस्तुति है।

कुरुङ्गदान—अन्तिम ऐन्द्रसूक्त (ऋ० ८।४।१०) से आरम्भ होकर तीन ऋचाओं में राजा कुरुङ्ग की दानस्तुति है।

चैद्यकशुः—अर्धर्चा और अन्तिम दो ऋचाओं (८।५।३८-३९) में कशु (चैद्य) की दानस्तुति है।

तैरिन्दरः—'शतम्' से आरम्भ तीन ऋचाओं (ऋ० ८।६।४६-४८) में तिरिन्दर राजा की दानस्तुति है।

त्रसदस्यु द्वारा सोभरि काण्व को दान—'अदात्' से आरम्भ दो ऋचाओं (ऋ० ८।१९।३७-३९) में राजर्षि त्रसदस्यु की दानस्तुति कथित है।

त्रसदस्यु (ऐक्ष्वाक) ने कण्व सोभरि को पचास वधुयें, सत्तर गाय, सत्तर ऊंट और सत्तर अश्व तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्र, रत्न, भूरे बैल और अग्रेसर (अग्रणी) ऋषभपति दान में दिये।

विवाह करने के पश्चात् जाते हुए मार्ग में ऋषि सोभरि काण्व ने इसका

इन्द्र से वर्णन 'वयम्' (ऋ० ८।२१) से शक्र की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर शचीपति ने कहा—'हे ऋषे ! वर मांगो।' तब ऋषि ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो ! मैं काकुत्स्थ (ऐक्ष्वाक) वंशीय पचास कन्याओं के साथ रमण करूं और कामरूप बना सकूं तथा यौवन, अक्षय रति, शंखनिधि और पद्मनिधि सदा मेरे घर में रहें। आपकी कृपा से प्रसिद्ध विश्वकर्मा मेरे लिए सौवर्ण प्रासादों और उनमें प्रत्येक में पृथक्-पृथक् कल्पवृक्ष तथा पुष्पवाटिकाओं का निर्माण करें तथा सपत्नियों में कोई द्वेषभाव न हो।

आखुराज चित्र का दान—जब सोभरि काण्व ऋषि अपने पुत्र पौत्रों के साथ कुरुक्षेत्र में यज्ञ कर रहे थे तब चूहों ने उनके अन्न एवं हविष्यों का भक्षण कर लिया। ऋषि ने इन्द्र, चित्र (आखुराज) और सरस्वती की वन्दना की। तब आखुराज चित्र ने स्तुति से प्रसन्न होकर ऋषि को अनेक प्रकार की सहस्रों गायें प्रदान कीं। उनकी स्तुति करके ऋषि ने दान ग्रहण किया। हृष्टात्मा चित्र ने ऋषि से कहा—'मैं पशुयोनि में उत्पन्न होने के कारण ऋषि द्वारा स्तुषेय्य नहीं हूं। अतः आप देवों की स्तुति करें।

वरु राजा – वैश्वदेवस्तुति के पश्चात् 'ऋजम्' से आरम्भ तीन ऋचाओं में राजा वरु द्वारा ऋषि को दी गई सम्पत्ति का उल्लेख है।

कानीत पृथुश्रवा—कानीत पृथुश्रवा राजा ने वश अश्व्य ऋषि को जो दान दिया वह 'आ स' (ऋ० ८।४६।२१-२४) चार ऋचाओं में कथित है।

त्रिशोक—बयालीस ऋचाओं के सूक्त (ऋ० ८।४५) से प्रसन्न होकर पुरन्दर (इन्द्र) ने अपने वज्र से पर्वत को तोड़कर असुरों द्वारा चुराई गायें त्रिशोक को लाकर वापस दीं।

ऋक्ष (पौरव) और अश्वमेध भारत—ऋग्वेद सूक्त (८।६८) की पांच ऋचाओं में ऋक्ष और अश्वमेध (भरतवंशीय राजाओं) की दानस्तुतियां हैं।

श्रुतर्वा राजा की दानस्तुति—अपनी स्तुति करके श्रुतर्वा के दान की और उसने जो कुछ पाया उस सन्दर्भ में महानदी परुष्णी की स्तुति है।

सावर्णिर्मनुः—

यं सवर्णा मनुर्नाम लेभे पुत्रं विवस्वतः। (६।६८)

अर्थ—सवर्णा ने विवस्वान् से मनु (सावर्णि) नाम का पुत्र पाया।

व्यंसदानवस्य स्वसा—

अध इत्यत्र कन्या तं स्त्रीलिङ्गे नेन्द्रमब्रवीत्।
स हि तां कामयामास दानवीं पाकशासनः।
ज्येष्ठां स्वसारं व्यंसस्य तस्यैव युवकाम्यया॥ (६।७६-७७)

अर्थ—'अधः' (ऋ० ८।३३।१९) में एक कन्या ने स्त्रीलिंग से युक्त इन्द्र को सम्बोधित किया है। क्योंकि पाकशासन ने इन्द्र युवक की कामना से व्यंसदानव की ज्येष्ठ बहिन से प्रेम किया।

अपाला (आत्रेयी)—

अपालात्रिसुता त्वासीत् कन्या त्वग्दोषिणी पुरा।
तामिन्द्रश्चकमे दृष्ट्वा विजने पितुराश्रमे।
तपसा बुबुधे सा तु सर्वमिन्द्रचिकीर्षितम्।
उदकुम्भं समादाय अपामर्थं जगाम सा।
दृष्ट्वा सोममपामन्ते तुष्टावर्चा वने तु तम्।
कन्या वारिति चैतस्याम् एषोऽर्थः कथितस्ततः।
सा सुषाव मुखे सोमं सुत्वेन्द्रं चाजुहाव तम्।
असौ य एषीत्यनया पपाविन्द्रश्च तन्मुखात्।
अपूपांश्चैव सक्तूंश्च भक्षयित्वा स तद् गृहात्।
ऋग्भिस्तुष्टाव स चैनं जगादैनं तृचेन तु।
सुलोमामनवद्याङ्गीं कुरु मां शक्र सुत्वचम्।
रथछिद्रेण तमिन्द्रः शकटस्य युगस्य च।
प्रक्षिप्य निश्चकर्ष त्रिः सुत्वक् सा तु ततोऽभवत्॥ (६।९९-१०५)

अर्थ—अत्रि (आत्रेय-अज्ञातनामा) की पुत्री अपाला चर्मरोग से पीड़ित थी। अपने पिता के निर्जन आश्रम में उसे एकाकी देखकर इन्द्र उस पर आसक्त होगया। अपाला ने अपने तपोज्ञान से इन्द्र की इच्छा-चेष्टा को जान लिया। जल-कुम्भ लेकर वह पानी लेने गई। जल के अन्त में सोम को देखकर उसने वन में एक ऋचा से उसकी स्तुति की। उसने सोम को मुख में चबाकर सोम निकाला। ऋचा से इन्द्र को बुलाया। इन्द्र ने उसके घर से अपूप और सक्तू खाकर उसके मुख के सोम का पान किया। अपाला ने उसकी स्तुति की। तीन ऋचाओं (ऋ० ८।९१।४-६) द्वारा उससे कहा हे शक्र! मुझे सुलोम और सुत्वच कर श्रेष्ठ अंग वाली बनाओ। उसकी स्तुति से इन्द्र प्रसन्न हुए।

रथछिद्र, शकट और युग में डालकर इन्द्र ने उसे तीन बार खींचा और तब वह सुत्वच (सुन्दरी) होगई।

सोमपलायनस्य प्रसंगः—

अपक्रम्य तु देवेभ्यः सोमो वृत्रभयार्दितः।
नदीमंशुमतीं नाम्ना अभ्यतिष्ठत्कुरून् प्रति।

सोऽब्रवीन्नेति तं शक्रः स्वर्ग एव बलाद् बली।
इयाय देवानादाय तं पपुर्विधिवत्पुरा ॥ (६।११०, ११४)

अर्थ—वृत्र के भय से सोम देवों के पास से नदी अंशुमती के तट पर कुरु देश के पास भाग गया। इन्द्र ने उससे कहा—'नहीं' वह उसे लेकर स्वर्ग चले गये जहां देवों ने उसे विधिपूर्वक पीया।

इन्द्राय विष्णुसाहाय्यम्—

तं नाशकद्धन्तुमिन्द्रो विष्णुमभ्येत्य सोऽब्रवीत्।
वृत्रं हनिष्ये तिष्ठस्व विक्रम्याद्य ममान्तिके।
उद्यतस्य वज्रस्य द्यौर्ददातु ममान्तरम्।
तथेति विष्णुस्तच्चक्रे द्यौश्चास्य वितरं ददौ ॥ (६।११२-१२३)

अर्थ—जब इन्द्र वृत्र को नहीं मार सका तो वह विष्णु के पास आकर बोला—'हे विष्णो ! मैं वृत्र को मारूंगा ! आप पराक्रम करके मेरे पार्श्व में खड़े हों। मेरे उद्यत वज्र को आकाश स्थान देगा। 'तथास्तु' कहकर विष्णु ने वैसा ही किया और द्यौ ने स्थान भी दिया।

शिशुराङ्गिरस ऋषिः (अपान्तरतमा नवमव्यासः, सारस्वतः दाधीचो वा)

अनावृष्ट्यां तु वर्तन्त्यां पप्रच्छर्षीञ्छचीपतिः।
काले दुर्गे महत्यस्मिन् कर्मणा केन जीवथ।
शकटं शाकिनी गावः कृषिरस्यन्दनं वनम्।
समुद्रः पर्वतो राजा एवं जीवामहे वयम्।
स्तुवन्नेव शशंसास्य ऋषिराङ्गिरसः शिशुः।
नानानीयेन सूक्तेन ऋषीणामेव संनिधौ।
तानिन्द्रस्त्वाह सर्वांस्तु तपध्वं सुमहत्तपः।
न ह्यृते तपसः शक्यम् इदं कृच्छ्रं व्यपोहितुम्।
अथ ते वै सर्वे तपस्तेपुः स्वर्गजिगीषवः ॥ (६।१३७-१४१)

अर्थ—घोर अनावृष्टि के होने पर इन्द्र ने ऋषियों से पूछा—'इस महान् विपत्ति में तुम किस प्रकार जीवित हो ?' (उनमें से एक ने कहा)—'शकट, खेत, पशु, कृषि, न बहनेवाला जल, वन, समुद्र, पर्वत, राजा—इन साधनों से हम जीवित हैं।'

इन्द्र की स्तुति करते हुए (दध्यङ्) आंगिरस के पुत्र शिशु ऋषि ने अन्य ऋषियों की उपस्थिति में 'नाननम्' (ऋ० ९।११२) सूक्त द्वारा उनको बताया। तब इन्द्र ने सबसे कहा—आप सब लोग महान् तप करें, क्योंकि तप के बिना इस संकट से मुक्ति नहीं हो सकती।' अतः स्वर्ग की आकांक्षा से उन सबने तप किया।

विश्वरूपस्त्रिशिराः पुरोहितः—

अभवत्स हि देवानां पुरोधाः प्रियकाम्यया ।
असुराणां स्वसुः पुत्रस्त्रिशिरा विश्वरूपधृक् ॥
तमृषिं प्रहितं त्विन्द्रो देवेषु बुबुधेऽसुरैः ॥ (६।१४९-५०)
सोऽस्य वज्रेण तान्याशु शिरांसि त्रीण्यच्छिनत् ।

अर्थ—असुरों का प्रियकार्य साधने के लिये असुरों की बहिन का पुत्र त्रिशिरा विश्वरूप देवों का पुरोहित बन गया। इन्द्र को जब असुरों की चालाकी का पता चला तो इन्द्र ने वज्र से उसके तीन शिर काट डाले।

यमयमी संवादः—

मैथुनार्थमभीप्सन्तीं प्रत्याचष्टे यमीं यमः ।
तदो चिदिति संवादो विवस्वत्सुतयोस्तयोः (६।१५४)

अर्थ—मैथुन का निवेदन करनेवाली यमी को यम ने मना कर दिया। 'ओ चित्' (ऋ० १०।१०) सूक्त में विवस्वत् के इन दोनों पुत्रों (पुत्र पुत्रियों) के मध्य संवाद का उल्लेख है।

सरण्यूकथा—

अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरण्यूस्त्रिशिराः सह ।
स वै सरण्यूं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते ।
ततः सरण्वां जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वतः ।
तौ चाप्युभौ यमावेव ज्यायांस्ताभ्यां वै यमः । (६।१६२-१६३)
सृष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्यूः सदृशीं स्त्रियम् ।
निक्षिप्य मिथुनं तस्याम् अश्वा भूत्वोपचक्रमे ।
अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु तस्यामजनयन्मनुम् ।
राजर्षिरभवत्सोऽपि विवस्वानिव तेजसा ।
स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्यूमश्वरूपिणीम् ।
त्वाष्ट्रीं प्रति जगामाशु वाजी भूत्वा सलक्षणः ।
सरण्यूश्च विवस्वन्तं विदित्वा हयरूपिणीम् ।
मैथुनायोपचक्राम तां च तत्रारुरोह सः ।
ततस्तयोस्तु वेगेन शुक्रं तदपतद्भुवि ।
उपाजिघ्रच्च सा त्वश्वा तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ।
आघ्रातमात्राच्छुक्रात्तु कुमारौ संबभूवतुः ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ स्तुतावाश्विनाविति ॥ (७।१-६)

अर्थ—त्वष्टा के सरण्यू और त्रिशिरा—दो युगल सन्तान उत्पन्न हुई।

त्वष्टा ने सरण्यू का विवाह विवस्वान् से किया। विवस्वान् द्वारा सरण्यू में यम और यमी उत्पन्न हुए। वे दोनों जुड़वी सन्तान थे तथा उनमें यम बड़ा था।

सरण्यू ने छिपकर अपने सदृश (सवर्णा) स्त्री अपनी जगह रखकर और उसके पास अपनी जुड़वी सन्तान को छोड़कर घोड़ी बनकर (या घोड़ी के ऊपर चढ़कर) अपने पिता के घर चल दी। अनजान विवस्वान् ने सवर्णा में सन्तान उत्पन्न की जिसका नाम मनु हुआ, वह सावर्ण मनु एक राजर्षि हुए जो तेज में विवस्वान् सदृश ही थे।

जब विवस्वान् को पता चला कि सरण्यू अश्वीरूप बनाकर त्वष्टा (पिता) के पास चली गई है तो वह भी अश्वरूप बनाकर वहां चल दिये। सरण्यू ने अश्वरूपी विवस्वान् को जान लिया। विवस्वान् (अश्वरूप में) अश्वी सरण्यू पर मैथुन के लिए चढ़े, तो उनके वेग में विवस्वान् का शुक्र पृथिवी पर गिर पड़ा। गर्भ की इच्छा से उसने वह शुक्र सूंघा, जिसमें दो कुमार उत्पन्न हुए। नासत्य और दस्र—जिनकी (वेद में) 'अश्विनौ' नाम से (बहुधा) स्तुति की गई है।

इन्द्रवसुक्रयोः संवादः—

युग्माः शक्रस्य विज्ञेया वसुक्रस्येतरा ऋचः।
स्नुषेन्द्रस्यागतान् देवान् दृष्ट्वा शक्रमनागतम्।
यज्ञं परोक्षवत्प्राह श्वसुरो नागतो मम।
यद्यागच्छेद् भक्षयेत्स धाना सोमं पिबेदपि ॥ (७।३०-३१)

अर्थ—'शक्र' (इन्द्र) की दो ऋचायें हैं और (उसके पुत्र) 'वसुक्र' की अन्य ऋचाये हैं। इन्द्र की पुत्रवधू ने देवों को आया हुआ देख और इन्द्र को अनागत देख परोक्ष रूप से यज्ञ से कहा कि मेरे श्वसुर नहीं आये। यदि वे आते तो धान खाते और सोमपान करते।

त्रासदस्यवः कुरुश्रवणः—

कुरुश्रवणमर्चत परे द्वे त्रासदस्यवम्।
मृते मित्रातिथौ राज्ञि तन्नपातमृषिः परैः।
उपश्रवसं यस्य चतुर्भिः स व्यशोकयत्। (७।३५)

अर्थ—दो ऋचायें (ऋ० १०।३३।४-५) कुरुश्रवण त्रासदस्यव की अर्चना करती हैं। राजा मित्रातिथि की मृत्यु पर ऋषि ने 'यस्य' से आरम्भ चार ऋचाओं (ऋ० १०।३३।६-९) द्वारा मित्रातिथि के पौत्र उपश्रवस् का शोक दूर किया।

घोषा काक्षीवती—

आसीत्काक्षीवती घोषा पापरोगेण दुर्भगा ।
उवास षष्टिं वर्षाणि पितुरेव गृहे पुरा ।
आतस्थे महतीं चिन्तां न पुत्रो न पतिर्मम ।
जरां प्राप्ता मुधा तस्मात् प्रपद्येऽहं शुभस्पती ।
यथैतौ मामकस्तात आराध्यावाप यौवनम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सर्वभूतहने विषम् ।
रूपवत्तां च सौभाग्यम् अहं तस्य सुता यदि ।
ममापि मन्त्राः प्रादुः स्युर्यैः स्तोष्येते मयाश्विनौ ।
चिन्तयन्तीति सूक्ते द्वे यो वां परि ददर्श सा ।
स्तुतौ ताविश्वनौ देवौ प्रीतौ तस्या भगान्तरम् ।
प्रविश्य विजरामरोगां सुभगां च चक्रतुश्च तौ ।
भर्तारं ददतुस्तस्यै सुहस्त्यं च सुतं मुनिम् ।
ददतुस्तत्सुपर्णाभ्यां यन्नासत्येति कीर्त्यते ।
काक्षीवत्यै च घोषायै न तस्यामाजुरोऽनया ॥ (७।४२-४८)

अर्थ—कक्षीवान् ऋषि की पुत्री घोषा एक पापरोग से पीड़ित थी। वह अपने पिता के घर ही साठ वर्षपर्यन्त रही। उसे बड़ी भारी चिन्ता हुई कि "बिना पुत्र या पति के मैं वृथा ही वृद्धावस्था को प्राप्त होगई। अतः मैं शुभस्पती (अश्विनौ) की शरण में जाऊंगी।" यथा मेरे पिता (कक्षीवान्) ने उनकी आराधना करके यौवन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सर्वभूतहन्ता विष प्राप्त किया है, अतः मैं उनकी 'पुत्री' भी रूप और सौभाग्य प्राप्त करूंगी। मैं भी अश्विनौ की स्तुति क नेवाले मन्त्र बनाऊंगी।

जब वह इस प्रकार चिन्ता कर रही थी, तो उसे 'यो वां परि' से आरम्भ दो सूक्तों (ऋ० १०।३९-४०) का दर्शन हुआ। उन सूक्तों से स्तुत अश्विनौ ने प्रसन्न होकर उसके भग में प्रवेश (स्पर्श) करके उसे जराविहीन, रोगहीन और शुभांगी बना दिया। उन अश्विनौ ने उसे एक पति (ऋषि) और पुत्र रूप में सुहस्त्य ऋषि प्रदान किया।

नासत्यों ने अपने पंखयुक्त अश्वों के द्वारा काक्षीवती को जो कुछ दिया, उसका 'न तस्य' (ऋ० १०।४०।११) और 'अमाजुरः' (ऋ० १०।३९।३) ऋचाओं में उल्लेख है।

वैकुण्ठ इन्द्रः सप्तगुश्च ऋषिः—

प्राजापत्यासुरी त्वासी विद्कुण्ठा नाम नामतः ।

सेच्छन्तीन्द्रसमं पुत्रं तेपेऽथ सुमहत्तपः ॥
सा प्रजापतितः कामांल्लेभेऽथ विविधान् वरान् ।
तस्यां चेन्द्रः स्वयं जज्ञे जिघांसुर्दैत्यदानवान् ॥
एकदा दानवैः सार्धं समरे समसज्यत ।
जघान तेषां नवतीर्नव सप्त च सप्तकान् ।
भित्त्वा स्वबाहुवीर्येण हैमरौप्यायसीः पुरीः ।
हत्वा सर्वान् यथास्थानं पृथिव्यादिव्यवस्थितान् ।
पृथिव्यां कालकेयांश्च पौलोमांश्च धन्विनः ।
तांश्च व्युत्पादयामास प्रह्लादतनयान्दिवि ।
राज्यं प्राप्य स दैत्येषु स्वेन वीर्येण दर्पितः ।
देवान् बाधितुमारेभे मोहितोऽसुरमायया ।
बाध्यमानास्तु तेनापि असुरेणामितौजसा ।
उपाधावन्नृषिश्रेष्ठं तत्प्रबोधाय सप्तगुम् ।
ऋषिस्तु सप्तगुर्नाम तस्यासीत्सुप्रियः सखा ।
स चैनमभितुष्टाव जगृम्भेति करे स्पृशन् ।
ततः स बुद्ध्वा चात्मानं सप्तगुस्तुतिहर्षितः ॥
आत्मानमेव तुष्टाव अहं भुवमिति त्रिभिः ।
कीर्तयन् स्वानि कर्माणि यानि स्म कृतवान् पुरा ।
यथाकरोच्च वैदेहं व्यंसं सोमपतिं नृपम् ।
वसिष्ठशापादभवद् वैदेहो नृपतिः पुरा ।
इन्द्रप्रसादादीजे च सत्रैः सारस्वतादिभिः ।
प्रभूतां शक्तिमत्तां च शत्रूणामपाक्रियाम् ॥
नृषु सर्वेषु चैश्वर्यं प्रभुत्वं भुवनेषु च ॥ (७।४९–६०)

अर्थ—प्रजापति (नाम अज्ञात) की विकुण्ठा नाम की एक असुरी पुत्री थी। इन्द्र के तुल्य पुत्र की इच्छा से उसने महान् तप किया। उसने (तप के पश्चात्) प्रजापति से सभी इच्छाओं को प्राप्त किया, तब दैत्यों और दानवों की वध की इच्छा से स्वयं इन्द्र ने उससे जन्म लिया। वैकुण्ठ इन्द्र ने एक बार युद्ध में निन्यानवें और उनन्चास पुरों का नाश किया। अपने बाहुबल से इन सौवर्ण, राजत (चांदी) और आयसी (लौह) नगरों को नष्ट करके पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में क्रमशः कालकेय, पुलोमा और प्रह्लाद के वंशजों का विनाश किया।

दैत्यों का साम्राज्य प्राप्त करके अपनी वीर्यता से दर्पित इन्द्र वैकुण्ठ ने

आसुरीमाया से मोहित होकर देवों को कष्ट पहुंचाना शुरु कर दिया। जब अमित-पराक्रमी असुरेन्द्र से देवगण त्रस्त हो रहे थे, तब उस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए वे लोग ऋषिश्रेष्ठ सप्तगु के पास गये कि उसे समझायें। सप्तगु ऋषि वैकुण्ठ इन्द्र के सुप्रिय सखा थे, अतः उसका हाथ स्पर्श करते हुए ऋषि ने 'जगृभ्म' (ऋ० १०।४७) सूक्त से उसकी स्तुति की। सप्तगु की स्तुति से उसे आत्मबोध (यथार्थ ज्ञान) हुआ और उसने 'अहं भुवम्' (ऋ० १०।४८-५०) से आरम्भ तीन सूक्तों से अपनी स्तुति की और अपने ही कर्मों का कीर्तन किया जो उसने पूर्वकाल में किये थे। जिस प्रकार इन्द्र ने विदेहराज व्यंस (जनक मैथिल) को सोमपति बनाया, जो वसिष्ठ के शाप से विदेह (निःसंज्ञ शरीर) होगये थे। तब इन्द्र की कृपा से पुनः जीवित होकर उन्होंने सारस्वतसत्रों का यजन किया और अपनी महती शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त की तथा सम्पूर्ण लोकों में अपने ऐश्वर्य तथा भुवनों पर आधिपत्य का वर्णन किया।

पञ्चजनाः—

मनुष्याः पितरो देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः।
गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा यक्षराक्षसाः।
यास्कौपमन्यवावेतान् आहतुः पञ्च वै जनान्ः
निषादपञ्चमान् वर्णान् मन्यते शाकटायनः।
गन्धर्वाप्सरसो देवा मनुष्याः पितरस्तथा।
सर्पाश्च ब्राह्मणे चैव श्रूयन्ते ह्यैतरेयके॥ (७।६८-६९, ७१)

अर्थ—पंचजन हैं-- मनुष्य, पितर, देव, गन्धर्व-नाग और राक्षस, (अन्यमत से)—गन्धर्व, पितर, देव, असुर और यक्षराक्षस पंचजन हैं। निषादसहित पांच वर्णों को शाकटायन आचार्य पंचजन मानते हैं।

ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार—गन्धर्वाप्सरा, देवगण, मनुष्य, पितर और नाग ही पंचजन हैं।

सुबन्धुकथा—

राजासमातिरैक्ष्वाकू रथप्रोष्ठः पुरोहितान्।
व्युदस्य बन्धुप्रभृतीन् द्वैपदा येऽभिमण्डले।
द्वौ किराताकुली नाम ततो मायाविनौ द्विजौ।
असमातिः पुरोऽधत्त वरिष्ठौ तौ हि मन्यते।
तौ कपोतौ द्विजौ भूत्वा गत्वा गौपायनानभि।
मायाबलाच्च योगाच्च सुबन्धुमभिपेततुः।
स दुःखादभिघाताच्च मुमोह च पपात च।

तौ ततोऽस्यासुमावृत्य राजानमभिजग्मतुः ।
ततः सुबन्धौ पतिते गतासौ भ्रातरस्त्रयः ।
जेपुः स्वस्त्ययनं सर्वे मेति गौपायनाः सह ।
अगस्त्यस्येति माता च तेषां तुष्टाव तं नृपम् ।
स्तुतः स राजा सव्रीडस्तस्थौ गौपायनानभि ।
शरीरमभिनिर्दिश्य सुबन्धोः पतितं भुवि ।
सूक्तशेषं जगुश्चास्य चेतसो धारणाय ते ॥
लब्धासु चायमित्यस्यां पृथक् पाणिभिरस्पृशन् ॥

(७।८५-९०; १०१-१०२)

अर्थ—ऐक्ष्वाक राजा रथप्रोष्ठ असमाति ने बन्धुप्रभृति तथा अन्य पुरोहितों को निकाल दिया, जो अग्नियों के मण्डल (ऋ० ५।२४) में द्विपदों के ऋषि हैं। असमाति ने किरात और आकुलि नाम के दो मायावी असुर ब्राह्मणों को अपना पुरोहित बना लिया क्योंकि राजा ने उन्हीं को 'सर्वश्रेष्ठ' समझा। दोनों वे मायावी असुर कपोत बनकर गौपायनों (सुबन्धु प्रभृति) के विरुद्ध कार्य करनेवाले माया और अभिचारयोग से सुबन्धु के ऊपर गिर पड़े। उनके आघात से सुबन्धु मूर्च्छित होकर गिर पड़े। असुरों ने उसके प्राण खींचकर राजा के पास आगये। जब मृतक तुल्य सुबन्धु भूमि पर गिर पड़े, तब शेष तीन गौपायनभ्राताओं ने एक साथ स्वस्त्ययन 'मा' (ऋ० १०।५७) का जाप किया और उन बन्धुप्रभृति के माता ने 'अगस्त्यस्य' (ऋ० १०।६०।६) से राजा की स्तुति की। स्तुति के पश्चात् राजा रथप्रोष्ठ लज्जापूर्वक गौपायनों के पास गये।

सुबन्धु के भूमि पर पड़े शरीर को निर्दिष्ट करते हुए उन लोगों ने उनकी चेतनार्थ सूक्त के शेषांश का जप किया। चेतना प्राप्त कर लेने पर अपने हाथों से उसका स्पर्श किया।

पुरूरवा उर्वशी च तयोरुपाख्यानम्—

पूरूरवसि राजर्षावप्सरास्तूर्वशी पुरा।
न्यवसत्संविदं कृत्वा तस्मिन्धर्मं चचार च।
तया तस्य च संवासमसूयत् पाकशासनः।
पैतामहं चानुरागमिन्द्रवच्चापि तस्य तु।
स तयोस्तु वियोगार्थं पार्श्वस्थं वज्रमब्रवीत्।
प्रीतिं भिन्द्धि तयोर्वज्र मम चेदिच्छसि प्रियम्।
तथेत्युक्त्वा तयोः प्रीतिं वज्रोभिनत् स्वमायया।
ततस्तया विहीनस्तु चचारोन्मत्तवन्नृपः।

चरन् सरसि सोऽपश्यद् अभिरूपामिवोर्वशीम् ।
सखीभिरभिरूपाभिः पञ्चभिः पार्श्वतो वृत्ताम् ॥
तामाह पुनरेहीति दुःखात्सा त्वब्रवीन्नृपम् ।
अप्राप्याहं त्वयाद्येह स्वर्गे प्राप्स्यसि मां पुनः ॥ (७।१४७-१५२)

अर्थ—पूर्वकाल में उर्वशी अप्सरा राजर्षि पुरूरवा के साथ संविद करके (सशर्त) रह रही थी। वह उसके साथ धर्मपूर्वक आचरण करती थी। उनके सहवास पर ईर्ष्या करते हुए पैतामह तथा इन्द्रतुल्य पुरूरवा में अनुराग देखकर, उनको पृथक् करने के लिए इन्द्र ने पार्श्वस्थ वज्र से कहा—'हे वज्र तुम यदि मेरा प्रिय चाहते हो तो इन दोनों के प्रेम सम्बन्ध को तोड़ दो।' 'तथास्तु' कहकर वज्र ने अपनी माया से उनके प्रेम को तोड़ दिया। तब उर्वशीहीन राजा इतस्तत भ्रमण करने लगे। जब वह इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे, तो एक दिन उन्हें एक सरोवर तट पर वह पांच अप्सराओं के साथ दिखलाई पड़ी।

पुरूरवा ने उर्वशी से कहा—'लौट जाओ।' किन्तु, उसने राजा को खेदपूर्वक कहा—'अब आप मुझे यहां प्राप्त नहीं कर सकोगे। स्वर्ग (गन्धर्वलोक) में ही आकर मुझे प्राप्त कर सकोगे।'

देवापि कथा—

आर्ष्टिषेणस्तु देवापिः कौरव्यश्चैव शांतनुः।
भ्रातरौ कुरुषु त्वेतौ राजपुत्रौ बभूवतुः ॥
ज्येष्ठस्तयोर्देवापिः कनीयांश्चैव शंतनुः ।
त्वग्दोषी राजपुत्रस्तु ऋष्टिषेणसुतोऽभवत् ।
राज्येन छन्दयामासुः प्रजाः स्वर्गं गते गुरौ ।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रजास्ताः प्रत्यभाषत ॥ (७।१५५-१५७)
न राज्यमहमर्हामि नृपतिर्वोऽस्तु शंतनुः ।
तथेत्युक्त्वाभ्यसिञ्चंस्ताः प्रजा राज्याय शंतनुम् ॥
ततोऽभिषिक्ते कौरव्ये वनं देवापिराविशत् ।
न ववर्षाथ पर्जन्यो राज्ये द्वादश वै समाः ।
ततोऽभ्यगच्छद्देवापिं प्रजाभिः सह शन्तनुः ।
प्रसादयामास चैनं तस्मिन् धर्मव्यतिक्रमे ।
शिशिक्ष चैनं राज्येन प्रजाभिः सहितस्तया ।
तमुवाच देवापिः प्रह्वं तु प्राञ्जलिं स्थितम् ॥
न राज्यमहमर्हामि त्वग्दोषापहतेन्द्रियः ।
याजयिष्यामि तें राजन् वृष्टिकामेज्यया स्वयम् ॥

ततस्तं तु पुरोधसं आर्त्विज्याय स शंतनुः ।
स चास्य चक्रे कर्माणि वार्षिकाणि यथाविधि ॥ (८।१-६)

अर्थ—ऋष्टिषेण के पुत्र (शिष्य) देवापि और कौरव शन्तनु कौरवों में राजा और भ्राता थे। देवापि ज्येष्ठ और शन्तनु कनिष्ठ भ्राता थे। किन्तु देवापि त्वचादोष से पीड़ित थे। अतः जब उनके पिता (प्रतीप) स्वर्ग चले गये, तब प्रजा ने देवापि को राज्य देना चाहा। किन्तु क्षणभर विचार करके उन्होंने प्रजा से कहा—'मैं राज्य करने के योग्य नहीं हूं, (क्योंकि त्वग्दोषपीड़ित हूं) अतः शन्तनु ही तुम्हारे राजा होंगे।' तब इसे ठीक समझकर प्रजा ने शन्तनु का राज्याभिषेक किया।

शन्तनु के राज्याभिषिक्त होने पर देवापि वन में चले गये। तदुपरान्त द्वादश वर्षपर्यन्त राज्य में वर्षा नहीं हुई। तदनन्तर शन्तनु प्रजासहित देवापि के पास आये और धर्मव्यतिक्रम के लिए उनको प्रसन्न करना चाहा। शन्तनु ने (वाणी से) देवापि को राज्य दे दिया। शन्तनु विनम्र होकर कृताञ्जलि खड़े थे, तब देवापि ने कहा—'मैं राज्य करने योग्य नहीं हूं, क्योंकि चर्मरोग से मेरी इन्द्रियां शिथिल हैं। परन्तु, हे राजन्! मैं वर्षा के लिए तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा (अर्थात् पुरोहित बनूंगा)।

तब ऋत्विक्कर्म के लिए शन्तनु ने देवापि को पुरोहित बनाया तथा देवापि ने शास्त्रविधि से वर्षायज्ञ कराया।

भार्म्यश्वो मुद्गलः—

आजावनेन भार्म्यश्व इन्द्रसोमौ तु मुद्गलः ।
अजयद् वृषभं युक्त्वा ऐन्द्रं च द्रुघणं रणे ॥ (८।१२)

अर्थ—भार्म्यश्व मुद्गल (पंचालराज) ने अपने रथ में ऐन्द्र द्रुघण और वृषभ को लगाकर एक वाजी में इन्द्रसोम को इसी सूक्त द्वारा जीता।

ऐन्द्र अप्रतिरथः (भार्म्यश्वस्य श्यालपुत्रः)—

युध्यन् संख्ये जयं प्रेप्सुरैन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ। (८।१३)

अर्थ—(नल नैषध के पुत्र इन्द्रसेन के पुत्र और भार्म्यश्व मुद्गल के साले के पुत्र)—'अतिरथ ऐन्द्र' ने युद्ध में संघर्ष करते हुए विजय की कामना से इसी सूक्त का गान किया।

कौत्सः सुमित्रो दुर्मित्रो वा—

कौत्स कदा वसो सूक्तं दुर्मित्रो नाम नामतः ।
सुमित्रश्चैव नाम स्याद् गुणार्थमितरत्पदम् ॥ (८।१७)

अर्थ—कुत्स के पुत्र दुर्मित्र नाम के ऋषि ने 'कदा वसो' (ऋ० १०।१०५)

सूक्त देखा। इसका असली नाम 'सुमित्र' ही था, जबकि यह शब्द (दुर्मित्र) एक गुण को बताता है।

भूतांशः काश्यपः—

भूतांशस्तु प्रजाकामः कर्माणि कृतवान् पुरा।
न हि लेभे प्रजाः काश्चित् काश्यपो मुनिसत्तमः॥
उवाच भार्या भूतांशं यावतः सुतानिच्छसि।
तावतो जनयिष्यामि देवता द्वन्द्वशः स्तुहि॥ (८।१८-१९)

अर्थ—भूतांश काश्यप ऋषि ने सन्तान की इच्छा से अनेक कर्म (यज्ञ) किये परन्तु, उनको सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई, तब उनकी पत्नी ने कहा—'आपकी जितनी इच्छा हो, मैं उतने ही पुत्र उत्पन्न करूंगी। केवल आप द्वन्द्वदेवों की स्तुति करें।

पणयोऽसुराः देवशुनी सरमा च—(उपाख्यानम्)—

असुराः पणयो नाम रसापारनिवासिनः।
गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहंश्च प्रयत्नतः।
बृहस्पतिस्तथा पश्यद् द्रष्ट्वेन्द्राय शशंस ह॥
प्राहिणोत्तत्र दूत्येऽथ सरमां पाकशासनः।
किमित्यत्रायुजाभिस्तां पप्रच्छुः पणयोऽसुराः॥
कुतः कस्यासि कल्याणि किं वा कार्यमिहास्ति ते।
अथाब्रवीत्तान्सरमा दूत्यैन्द्री विचराम्यहम्।
युष्मान्व्रजं चान्विष्यन्ती गाश्चैवेद्रस्य पृच्छतः।
विदित्वेन्द्रस्य दूतीं ताम् असुराः पापचेतसः।
ऊचुर्मा सरमे गास्त्वम् इहास्माकं स्वसा भव॥
विभजामो गवां भागं समाहिता ततः पुनः।
साब्रवीन्नाहमिच्छामि स्वसृत्वं वा धनानि वा।
पिबेयं तु पयस्तासां गवां यास्ता निगूहथ।
असुरास्तां तथेत्युक्त्वा तदाजह्रुः पयस्ततः॥
सा स्वभावाच्च लौल्याच्च पीत्वा तत्पय आसुरम्।
परं संवननं हृद्यं बलपुष्टिकरं ततः।
शतयोजनविस्ताराम् अतरत्तां रसां पुनः।
यस्याः पारे परे तेषां पुरमासीत्सुदुर्जयम्॥
पप्रच्छेन्द्रश्च सरमां कश्चिद् गा दृष्टवत्यसि।
सा नेति प्रत्युवाचेन्द्रं प्रभावादासुरस्य तु।

तां जघान पदा क्रुद्ध उद्गिरन्तीं पयस्ततः ।
जगाम सा भयोद्विग्ना पुनरेव पणीन् प्रति ।
पदानुसारिपद्धत्या रथेन हरिवाहनः ॥
गत्वा जघान च पणीन् गाश्च पुनराहरत् ॥ (८।२४-३६)

अर्थ—रसा (नदी) के पार असुरपणि रहते थे । उन्होंने इन्द्र की गायें चुरा लीं और प्रयत्नपूर्वक छिपा दिया । बृहस्पति ने अपने ज्ञानबल से यह सब देख लिया और इन्द्र को बता दिया । इन्द्र ने दौत्यकर्म के लिए सरमा (देवशुनी) को वहां भेजा । पणि असुरों ने उससे पूछा—'तुम किसकी (दूती) हो और तुम्हारा कार्य क्या है तथा कहां से आई हो ?' सरमा ने कहा—'मैं इन्द्र की दूती हूं और आपके व्रज (गोघोष) में इन्द्र की गायें ढूंढ़ रही हूं ।' इन्द्र की दूती जानकर अपराधी असुरों ने उससे कहा—'हे सरमे ! तुम इन्द्र को गायों के सम्बन्ध में मत बताना । यहां तुम हमारी बहिन बन जाओ । हम गायों का भाग बांट लेंगे । वहां मत जाओ ।' वह बोली—'मैं आपका भगिनीत्व और धन नहीं चाहती । परन्तु आपने जो गायें छिपा रखी हैं, मैं उनका दूध पीना चाहती हूं ।' असुरों ने कहा—'ठीक है' और उसके लिए दूध लाकर दिया । वह स्वभाव (श्ववृत्ति) और लालच से अतिमधुर हृद्य और आसुरी बल बढ़ानेवाले दूध को पीकर पुनः सौ योजन लम्बी रसा को पार करके इन्द्र के पास आई जिसके पास उनका दुर्जय और दुर्गम नगर था ।

इन्द्र ने सरमा से पूछा—'क्या तुमने गायें देखीं ?' उसने आसुर पय के प्रभाव से इन्द्र से कहा—'नहीं देखीं ।' तब इन्द्र ने पैर से उसके लात मारी । जिससे वह दूध उगलने लगी । भय से व्याकुल वह पणियों के पास पुनः गई, तब इन्द्र ने रथ के द्वारा उसके पैरों के मार्ग का अनुसरण करते हुए वहां जाकर पणियों को मारा और पुनः गायें वापस लाये ।

———

[२५]

ऋक्सर्वानुक्रमण्यामैतिह्यसन्दर्भाः

प्रथमे मण्डले—

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः···(१)·· आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातो वा···(२) अङ्गिरा इन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन्नभ्यध्यायत्सव्य इतीन्द्र एवास्य पुत्रोऽजायत···(४) जातवेदस एका जातवेदस्यमेतदादीन्येकभूयांसि सूक्तसहस्रमेतत्कश्यपार्षम्। स यो वृषैकोना वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधसः। (७) प्राता रत्नं सप्त रचनयस्य दानस्तुतिः···अमन्दामिति कक्षीवान् दानतुष्टः पञ्चभिर्भावयव्यं तुष्टावान्त्ये अनुष्टुभौ भावयव्यरोमशयोर्दम्पत्योः संवादः··· (९) ·· मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेताम्॥ अगस्त्येनैन्द्रे हविषि मरुतामुद्यत इन्द्रागस्त्ययोः संवादः···।·· जायापत्योर्लोपामुद्राया अगस्त्यस्य च द्वृचाभ्यां रत्यर्थं संवादं श्रुत्वान्तेवासी ब्रह्मचारी अन्त्ये अपश्यत्। (१२)

द्वितीये मण्डले—

य आङ्गिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत्स गृत्समदो मण्डलमपश्यत्। (१३)

तृतीये मण्डले—

कुशिकस्त्वैषीरथिरिन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन् ब्रह्मचर्यं चचार। तस्य एव गाथी पुत्रो जज्ञे। गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत्···। (१६)

शासत्कुशिको विश्वामित्र एव वा श्रुतेः।···संवादौ नदीभिर्विश्वामित्रस्योत्तितिषोस्तत्र नदीवाक्यम्···। (१८) अन्त्या अभिशस्तास्ता वसिष्ठद्वेषिण्यो न वसिष्ठा शृण्वन्ति (१९)॥

चतुर्थे मण्डले—

वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत्। (२०) सोमकं साहदेव्यमभ्यवदत् । (२१) त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः पुरुमीढाजमीढौ सौहोत्रौ (२३)।

पंचमे मण्डले—

नमोऽत्रिभ्यो भौमोऽत्रिः पंचमेमण्डलेऽनुक्तगोत्रमात्रेयं विद्यात् …(२४) गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चैकर्चा द्वैपदम् । त्रैवृष्ण पौरुकुत्स्यौ द्वौ त्र्यरुणस्त्रसदस्यू राजानौ भारतश्चाश्वमेधाः । श्यावाश्वोऽत्र वैददश्वी तरन्तपुरुमीढौ दाल्भ्य रथवीतिं मरुतश्च दानतुष्टः प्रशशंस, बुद्ध्वा च तरन्तमहिषीं शशीयसीम् ।(२७)

षष्ठे मण्डले—

अन्त्या चायमानस्याभ्यावर्तिनो दानस्तुतिः। (३०) शंयुर्बार्हस्पत्यः (३१) सुहोत्रादयोऽनुक्तगोत्रा भारद्वाजाः पौत्रा बृहस्पतेर्दौःषन्तेर्वा भरतस्य। (३२)

सप्तमे मण्डले—

सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत्। (३३) सुदासः पैजवनस्यान्त्याश्चतस्रो दानस्तुतिः ।…सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरन्त्यं प्रगाथमालेभे सोऽर्धर्चं उक्तेऽदरयत। तं पुत्रोक्तं वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकं वासिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम्।(३५) …कुमार आग्नेयोऽपश्यद् वसिष्ठ एव वा वृष्टिकामः। (३९)

अष्टमे मण्डले—

द्वयृचं प्रगाथोऽपश्यत्स घौरः सन्भ्रातुः कण्वस्य पुत्रतामगात् । प्लायोगिश्चासङ्गो यः स्त्रीभूत्वा पुमानभूत्स मेध्यातिथये दानं दत्त्वा स्तुहि स्तुहीति चतृसृभिरात्मानं तुष्टाव पत्नी चास्याङ्गिरसी शश्वती पुंस्त्वमुपलभ्यैनं प्रीतान्त्यया तुष्टाव ।…मेधातिथिर्विभिन्दोर्दानं तुष्टाव अन्या कौरयाणस्य पाकस्थाम्नो दानस्तुतिः… कुरुंगस्य दानस्तुतिः (३९)चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः…तिरिन्दरस्य पार्शव्यस्य दानस्तुतिः। पर्वत औष्णिहं तु। इन्द्रः सुतेषु नारदः। गौषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। (४१)

मत्स्यसामंदो मैत्रावारुणिर्मान्यो वा बहवो वा मत्स्या जालनद्धा आदित्यानस्तुवन्। (४४)

नवमे मण्डले—

काश्यपोऽसितो देवलो वा। (४७) दृढ़च्युत आगस्त्यः। इध्मवाहो दार्ढच्युतः। (४८)···वसिष्ठोऽपश्यदुत्तरान्नव पृथग्वसिष्ठा इन्द्रप्रमतिवृषगणो मन्युरुपमन्युर्व्याघ्रपाच्छक्तिः कर्णश्रुन्मृडीको वसुक्र इति···पराशरोऽन्त्याः···(५२) अध्रोगुः श्वावाश्विर्ययातिर्नाहुषानहुषो मानवो मनुः सांवरण इति।···पर्वतनारदौ काश्यप्यौ। (५३)

दशमे मण्डले—

यमी मिथुनार्थं यमं प्रोवाच स तां···प्रत्याचष्टे! इन्द्रवसुक्रयोः संवादः इन्द्रस्य स्नुषा परोक्षमवदत्···। (५५) कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः। पराभिर्मृते मित्रातिथौ राज्ञि तत्स्नेहादृषिरुपमश्रवसं पुत्रमस्य व्याशोकयत्। (५६) सप्त गुर्वैकुण्ठमिन्द्रं तुष्टाव। विकुण्ठानामासुरीन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन्ती महत्तपस्तेपे। तस्या स्वयमेवेन्द्र पुत्रो जज्ञे···अथ हैक्ष्वाको राजासमातिर्गौपायनान्बन्ध्वादीन् पुरोहितान् त्यक्त्वान्यौ मायाविनौ श्रेष्ठतमौ मत्वा पुरोदधे। तमितरे क्रुद्धा अभिचेरुः। अथ तौ मायाविनौ सुबन्धोः प्राणानाचिक्षिपतुरथ हास्य भ्रातरस्त्रयः।···अगस्त्यस्य स्वसा मातैषां राजानमस्तौत् पराभिः सुबन्धोर्जीवमाह्वयंस्तमन्त्या लब्धसंज्ञमस्पृशन्। (५७) लौक्यो बृहस्पतिर्दाक्षायण्यदितिर्वा। (५९) उर्वशीमैलः पुरूरवा पूर्वोषितां कामात् पुनरासाद्यावरोद्धुमैच्छत्सा तमिच्छन्ती प्रत्याचष्टे···आर्ष्टिषेणो देवापिर्वृष्टिकामो देवान् तुष्टाव।···मुद्गलो भार्म्यश्व द्रुघणेन ऋषभेण चाजिं जिगाय। कौत्सो दुर्मित्रो नाम्ना सुमित्रो गुणतः सुमित्रो वा···। किमिच्छन्ती पणिभिरसुरैर्निरूढा गा अन्वेष्टुं सरमां प्रहितामयुग्भिः पणयो मित्रीयन्तः प्रोचुः सा तान्युग्मान्त्याभिरनिच्छन्ती प्रत्याचष्टे।···(६२) केशी मुनयो वातरशना जूतिर्वातजूतिविप्रजूतिर्वृषाणकः करिक्रत एतश ऋष्यश्रृंगः···। (६३) शिबिरौशीनरकाशिराजः प्रतर्दनो रौशदश्वो वसुमनाः···। (६४)

कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सन्दर्भ

प्रथम मण्डल में—मधुच्छन्दा, विश्वामित्र का पुत्र। (१) अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप अथवा देवरात विश्वामित्र का दत्तक पुत्र। (२) अंगिरा ने इन्द्रतुल्य पुत्र

की कामना की, सव्य ही उसके (इन्द्ररूप) में उत्पन्न हुए। (४) जातवेदस से आरम्भ होनेवाले, एक ऋचा क्रमशः बढ़नेवाले एक सहस्र सूक्त महर्षि कश्यप द्वारा दृष्ट हैं। 'स यो वृषकोना' इत्यादि ऋचाओं के द्रष्टा वृषगिरि, ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा राजर्षि हैं। 'प्राता रत्नं सप्त' इत्यादि ऋचायें 'स्वनय भावयव्य' की दानस्तुति हैं। 'अमन्दान्' इत्यादि ऋचाओं से कक्षीवान् ने भावयव्य स्वनय की स्तुति की, उसके दान से सन्तुष्ट होकर, अन्य दो अनुष्टुप् मन्त्रों में भावयव्य और रोमशा का संवाद है। (६) मित्र और वरुण दोनों यज्ञ में दीक्षित थे, अप्सरा उर्वशी को देखकर उनका वीर्य यज्ञीय जलकुम्भ में गिर पड़ा, तब उससे अगस्त्य और वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई।···अगस्त्य ने इन्द्र के लिए हविः तैयार की, परन्तु वे उसे मरुतों को देने लगे···यहां इन्द्र, अगस्त्य संवाद है। अगस्त्य और लोपामुद्रा—पति पत्नी के रहस्य संवाद (एकान्त बातचीत) को सुनकर उनके शिष्य ब्रह्मचारी ने दो अन्त्य ऋचाओं का दर्शन किया। (१२)

द्वितीय मण्डल में—जो आंगिरस शौनहोत्र (शुनहोत्र का पुत्र) होकर भार्गव शौनक (शुनक का पुत्र) हुआ, वह गृत्समद ऋषि, उसने द्वितीय मण्डल के मन्त्रों का दर्शन किया।

तृतीय मण्डल में—इषीरथ के पुत्र कुशिक ने इन्द्रतुल्य पुत्र की कामना से ब्रह्मचर्य का पालन किया, उनके गाथिपुत्र उत्पन्न हुआ। गाथी के पुत्र विश्वामित्र हुए, जिन्होंने तृतीय मण्डल (मन्त्रों का) दर्शन किया।

'शासत्कुशिक' इत्यादि मन्त्र विश्वामित्र के ही हैं। नदी पार करने की इच्छा से विश्वामित्र और नदियों का संवाद ! वहां नदीवाक्य हैं। अन्तिम ऋचायें अभिशस्त (अभिशाप) हैं, वे वसिष्ठद्वेषिणी हैं, उनको वासिष्ठ ब्राह्मण नहीं सुनते हैं।

चतुर्थ मण्डल में—चतुर्थ मण्डल को वामदेव गौतम ने देखा।···सोमक साहदेव्य बोला···। त्रसदस्यु पुरुकुत्स का पुत्र।···पुरुमीढ़ और अजमीढ सुहोत्र के पुत्र थे।

पंचम मण्डल में—अत्रियों को नमस्कार ! भौम अत्रि (आत्रेय) पंचम मण्डल में तथा अनुक्त (अज्ञात गोत्र) आत्रेय ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं।···गोपायन या लोपायन के पुत्र—बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु एक ऋचा द्वैपद के द्रष्टा हैं।···दो ऋचायें त्रिवृष्ण और पुरुकुत्स की हैं। त्र्यरुण और त्रसदस्यु राजा थे। अश्वमेध, भरतवंशीय (राजा)···। श्यावाश्व ने यहां तरन्त और पुरुमीढ़ (विददश्व के पुत्र, दाल्भ्य रथवीति और मरुतों की स्तुति की, दान से सन्तुष्ट उसने स्तुति की। तरन्तमहिषी शशीयसी।

षष्ठ मण्डल में - अन्त्य ऋचा में अभ्यावर्ती चायमान की दानस्तुति है।··· शंयु बृहस्पति का पुत्र। सुहोत्रादि ··बिना गाये कहे हैं अथवा भरद्वाज के पौत्र अथवा बृहस्पति या दौःषन्ति भरत के पौत्र।

सप्तम मण्डल में—सप्तम मण्डल का दर्शन वसिष्ठ (वासिष्ठ—असली नाम अज्ञात) ने किया। सुदास पैजवन (ऐक्ष्वाक) की दानस्तुति ··। (इसी सुदास पैजवन के वंशज) सौदासों (कल्माषपादादि) ने शक्ति (वासिष्ठ) को आग में डाल दिया · अन्तिम प्रगाथ (ऋचा) का दर्शन किया। आधी ऋचा के दर्शन पर ही उसको जला दिया गया। पुत्रोक्त ऋचा को वसिष्ठ ने पूरा किया, ऐसा शाटचायन ब्राह्मण का कथन है। परन्तु ताण्ड्यब्राह्मण के मत में पुत्र मर जाने पर वसिष्ठ की ही ऋचा है।

कुमार आग्नेय (कार्तिकेय) या वासिष्ठ ने वृष्टि की इच्छा से ऋचा को देखा।

अष्टम मण्डल में—घोर ऋषि के पुत्र प्रगाथ ने द्व्यृचसूक्त का दर्शन किया, वह घोर का पुत्र हुए भी अपने भाई कण्व का पुत्र कहलाया। असंग, प्लायोग का पुत्र, जो स्त्री होकर पुनः पुरुष होगया। मेधातिथि को दान देकर उसने कहा—'मेरी स्तुति करो, स्तुति करो।' और चार ऋचाओं से अपनी ही स्तुति की। इसकी पत्नी 'शश्वती अंगिरसी ने पति के पुरुष बन जाने पर प्रसन्न होकर अन्य ऋचा से स्तुति की। मेधातिथि ने बिभिन्दु के दान की स्तुति की। ··अन्य ऋचा में पाकस्थामा कौरयाण की दानस्तुति है।·· कुरुंग की दानस्तुति । चैद्यकशु की दानस्तुति । पार्श्वव्य तिरिन्दर की दानस्तुति । पर्वत (ऋषि) ने उष्णिह का दर्शन किया। सोमसंवनन के पश्चात् नारद। काण्वायन ऋषि थे—गोषूक्ति और अश्वसूक्ति ऋषि।

मत्स्यसांमद या अगस्त्य मान्य या मैत्रावरुणि या बहुत से जालबद्ध मत्स्यों ने आदित्यों की स्तुति की।

नवम मण्डल में—असित काश्यप देवल के पुत्र (थे) दृढ़च्युत अगस्त्य का पुत्र और इध्मवाह दृढ़च्युत का पुत्र (अगस्त्य का पौत्र) था। · वसिष्ठ ने दर्शन किया अथवा नौ वासिष्ठ ऋषियों ने यथा—इन्द्रप्रमिति, वृषगण, मन्यु, उपमन्यु, व्याघ्रपाद, शक्ति, कर्णश्रुत, मृडीक और वसुक्र अन्य ऋचा पराशर ने देखी···।

अध्रीगु श्यावाश्व का पुत्र···। ययाति नाहुष (नहुष का पुत्र), नहुष मानव (मनु का पुत्र—वैवस्वत मनु नहीं), मनु, संवरण का पुत्र, पर्वत और नारद कश्यप के पुत्र (या वंशज)

दशम मण्डल में—यमी ने मैथुनार्थ यम से निवेदन किया। यम ने निषेध किया।···इन्द्र वसुक (इन्द्र पुत्र) का संवाद। इन्द्र की पुत्रवधू ने परोक्ष में कहा। कुरु श्रवण त्रासदस्यव की दानस्तुति। राजा मित्रातिथि के मर जाने पर, उसके स्नेहवश ऋषि ने उसके पुत्र उपम श्रवस का शोक दूर किया।

सप्तगु ऋषि ने वैकुण्ठ इन्द्र की स्तुति की। विकुण्ठा नाम की असुरी थी, उसने इन्द्रतुल्य पुत्र चाहा। बड़ा तप किया। तब स्वयं इन्द्र ही उसके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए।···ऐक्ष्वाक राजा असमाति ने बन्धु आदि पुरोहितों को छोड़कर मायावी किराताकुली असुरब्राह्मणों को श्रेष्ठतम मानकर पुरोहित बनाया। क्रुद्ध होकर बन्धु आदि ने अभिचार किया। मायावी असुरों ने सुबन्धु के प्राण खींच लिये, सुबन्धु के तीन और भाई थे। अगस्त्य की बहिन इनकी माता थी। माता ने राजा की स्तुति की। ऋचाओं द्वारा बन्धुओं ने सुबन्धु की आत्मा को बुलाया। होश आने पर भाइयों ने उसका स्पर्श किया।

(एक) बृहस्पति 'लोक' संज्ञक ऋषि का पुत्र था···अदिति दक्ष की पुत्री थी।

पुरूरवा ऐल ने अपने पास रही उर्वशी को पुनः भेंट होने पर रोकना चाहा, उर्वशी ने मना किया।

देवापि (प्रतीप का पुत्र ऋष्टिषेण का शिष्य) आर्ष्टिषेण ने वृष्टि की इच्छा से देवों की स्तुति की। मुद्गल, भृम्यश्व का पुत्र, ने द्रुघण (मुद्गर) और ऋषभ से बाजी जीती।··सुमित्र कुत्स का पुत्र, अपने किसी दुर्गुण के कारण 'दुर्मित्र' कहलाया।

'किमिच्छन्ती' इत्यादि ऋचाओं में पणि असुरों द्वारा देवों की छिपी गायों को ढूंढ़ने भेजी गई। सरमा देवशुनी को मित्र बनाने की इच्छा से संवाद किया। सरमा ने मना किया।

केशी मुनिगण वातरशना (वायुभक्षण करनेवाले)—वातजूति, विप्रजूति, वृषाणक, करिक्रत, एतश और ऋष्यश्रृंग··शिबि औशीनर, काशिराज प्रतर्दन और वसुमना रौशदश्व (ऐक्ष्वाक रुशदश्व का पुत्र)—(समकालिक राजा थे)।

द्वितीयभागस्य पूर्वखण्डम्

इतिहासपुराणेषु वंशपाठः

(हिन्दी अनुवाद सहित)

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

प्रथमोऽध्यायः (प्रथम अध्याय)—आदिवंशः (ऋषियों और राजाओं का आदिवंश)

(चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनम्)—चौदह मनुओं का वर्णन

चतुर्दश मनवः—

स्वायंभुवो मनुस्तातः मनुः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ।।
वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते ।
सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ।
तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनवः स्मृताः ।।

(हरिवंशपुराण १।७।४-६)

अर्थ—स्वायम्भुवमनु, स्वारोचिषमनु, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वतमनु साम्प्रत (वर्तमान) मनु कहे जाते हैं, सावर्णिमनु, भौत्यमनु, रौच्यमनु और चार मेरुसावर्णमनु (प्रथम मेरुसावर्णि—रोहितमनु, द्वितीय दक्षसावर्णिमनु, तृतीय रुद्रसावर्णि और चतुर्थ ब्रह्मसावर्णि (कश्यपमारीच)—ये कुल चौदह (१४) मनु हो चुके हैं ।

स्वायम्भुवः मनुः—

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते । (हरि० १।२।४)

अर्थ—स्वायम्भुव मनु को ही (प्रथम) पुरुष कहा जाता है और उसके इकहत्तर (७१)—(परिवर्त) युग व्यतीत हो चुके हैं । (महाभारतकाल तक—व्यास और वैशम्पायन के समय तक)

(१) स्वायम्भुवमन्वन्तरवर्णनम् (हरिवंशपुराण १।अध्याय ७)

सप्तर्षयः—

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ।

अर्थ—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ—ये सात ऋषि—ब्रह्मा (स्वयम्भू) के पुत्र थे ।

देवाः—

देवाश्च शान्तरजसस्तथा प्रकृतयः परे ।
यामा नाम तथा देवा आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

अर्थ—स्वायम्भुवमन्वन्तर में शान्तरज, प्रकृति और 'यामा' नाम के देवगण (पूजित) होते थे ।

मनुपुत्राः—

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ।
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ।
एतत् ते प्रथमं राजन् मन्वन्तरमुदाहृतम् ।

अर्थ—आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिषमान् द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र—ये दश महाबली, स्वायम्भुवमनु के पुत्र थे ।

यह प्रथम मन्वन्तर का वर्णन हुआ ।

(२) स्वारोचिषमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च ।
प्राणा बृहस्पतिश्चैव दत्तो निश्च्यवनस्तथा ।
एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रताः ।

अर्थ—वशिष्ठपुत्र (या वंशज) और्व, स्तम्ब, काश्यप (कश्यप वंशज), प्राण (भार्गव), बृहस्पति (पूर्व या प्राग्देवकालीन आंगिरस), दत्त (पौलहवंशज) और निश्च्यवन (पौलस्त्य)—ये सप्तर्षि वायुपुराण में कहे गये हैं ।

देवाः—

देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ।

अर्थ—स्वारोचिषमन्वन्तर में 'तुषित' नाम के देवगण कहे गये हैं ।

मनुपुत्राः—

हविर्ध्रः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मयः ।
प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ।
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः ।

अर्थ—हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नभस्य, नभ और ऊर्ज—ये दश स्वारोचिष मनु के पुत्र थे ।

(३) उत्तममन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः –

वशिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः ।
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्ज्जा नाम सुतेजसः ।

अर्थ 'हिरण्यगर्भ' संज्ञक वसिष्ठ (वासिष्ठ) के सात 'ऊर्ज' नाम के पुत्र सप्तर्षि थे । (ऊर्ज वासिष्ठ उनमें ज्येष्ठ था, अतः वे सप्तर्षि ऊर्ज वासिष्ठ कहलाते थे ।

देवाः–

भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् ।

अर्थ—इस मन्वन्तर में 'भानु' नाम के देवगण थे ।

मनुपुत्राः—

औत्तमेयान् महाराज दश पुत्रान् मनोरमान् ।
इष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च ।
शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च ॥

अर्थ—उत्तम मनु के दश सुन्दर पुत्र थे—इष, ऊर्ज, तनूज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य और नभ ।

(४) तामसमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जन्युर्धाता च भारत ।
कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥

अर्थ—काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपीवान् और अकपीवान्—ये तामसमन्वन्तर के सप्तर्षि थे ।

देवाः—

सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः ॥

अर्थ—तामसमन्वन्तर में 'सत्य' नाम के देवगण थे ।

मनुपुत्राः—

द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलस्तपोधनः ।
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परंतपः ।
तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबलाः ।।

अर्थ—द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, अकल्माष, तन्वी, धन्वी और परंतप—नाम के तामस मनु के महाबली दश पुत्र थे ।

(५) रैवतमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

वेदबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ।
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः ।
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ।।

अर्थ—वेदबाहु, यदुध्र, मुनि वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु (सोमज) और सत्यनेत्र आत्रेय—ये रैवतमन्वन्तर के सप्तर्षि थे ।

देवाः-

देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे ।
पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ।।

अर्थ—अभूतरजा, प्रकृति, पारिप्लव और रैभ्य—नाम के चार देवगण थे ।

मनुपुत्राः—

धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ।
अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवाक् कविः ।

अर्थ-धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कवि—ये रैवतमनु के दश पुत्र थे ।

(६) चाक्षुषमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः ।।

अर्थ—भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु—ये चाक्षुषमन्वन्तर के सप्तर्षि थे ।

देवाः—

आद्याः प्रभूता ऋभवः पृथग्भावा दिवौकसः ।
लेखाश्च नाम राजेन्द्र पंच देवगणाः स्मृताः ।
ऋषेरङ्गिरस पुत्रा महात्मानो महौजसः ।

अर्थ—आद्य, प्रभूत, ऋभु, पृथग्भाव और लेखा नाम के देवों के पांच गण थे—जो ऋषि अंगिरा के महातेजस्वी तथा महाबली पुत्र थे।

मनुपुत्राः—

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव।
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः।

अर्थ—ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुद्युम्न और दशम अभिमन्यु—ये दश मनुपुत्र नड्वला (पत्नी) में उत्पन्न हुए।

(७) वैवस्वतमन्वन्तरम्वर्णनम्

सप्तर्षयः—

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च।
सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि॥

अर्थ—अत्रि (आत्रेय श्यावाश्व), वसिष्ठ (शतयातु वासिष्ठ), कश्यप (नैध्रुवि काश्यप), गौतम (वामदेव), भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि इस मन्वन्तर में प्रमुख सप्तर्षि थे। जो इस समय स्वर्ग (द्युलोक में नक्षत्र नाम से प्रसिद्ध) में हैं।

देवाः–

साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसवस्तथा।
आदित्याश्चाश्विनौ चैव देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ॥

अर्थ—साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत्गण, वसुगण, आदित्य और अश्विनीकुमारद्वयी—जो विवस्वान् के पुत्र थे—ये इस मन्वन्तर में देवगण थे।

मनुपुत्राः—

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च।
नरिष्यंश्च तथा प्रांशु नाभागारिष्टसप्तमाः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ॥

अर्थ—वैवस्वतमनु के नौ पुत्र थे–इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्, प्रांशु, नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र—ये नौ मनु पुत्र थे।

सावर्णमनवः—

सावर्णमनवस्तात पंच तांश्च निबोध मे।
एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः।

परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः।
दक्षस्यैते दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप।

अर्थ—पांच सावर्णमनु हुए—उनमें एक वैवस्वत सावर्णिमनु (वैवस्वतमनु के अनुज) थे और चार सावर्णमनु—प्रजापति 'परमेष्ठी' (कश्यप मारीच) के पुत्र थे—जिनका नाम 'मेरुसावर्णि' था, ये दक्ष की पुत्री प्रिया के पुत्र थे।

रौच्यमनुः—

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः।

अर्थ—'प्रजापति रुचि' (पुलह पुत्र) के पुत्र 'रौच्यमनु' (या दक्षप्रथम या कर्दम प्रजापति) थे।

भौत्यमनुः—

भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः।

अर्थ—भूति से उत्पन्न 'रुचि' का अन्य पुत्र (या वंशज) 'भौत्यमनु' था।

(८) सावर्णिमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

रामो व्यासस्तथाऽऽत्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः।
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान् गौतमः कृपः।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च॥

अर्थ—राम (जामदग्न्य), व्यास (पाराशर्य), दीप्तिमान् आत्रेय, भारद्वाज (द्रोणाचार्य) पुत्र अश्वत्थामा, गौतमपुत्र शरद्वान् या शारद्वान् कृपाचार्य, गालव कौशिक और रुरु काश्यप—ये सात सावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षि थे।

मनुपुत्राः—

वरीयांश्चावरीयांश्च सम्मतो धृतिमान् वसुः।
चरिष्णुरध्यधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च।

अर्थ—वरीयान्, अवरीयान्, सम्मत, धृतिमान्, वसु, चरिष्णु, अधृष्णु, वाज और सुमति—ये नौ मनु पुत्र थे।

(९) रोहित (प्रथममेरुसावर्ण) मन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसु काश्यप एव च।
ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव द्युमिमानङ्गिरास्तथा।
सावनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः।
पौलहः सप्त इत्येते मुनयो रोहिताऽन्तरे।

अर्थ—मेधातिथि पौलस्त्य, वसु काश्यप, ज्योतिष्मान् भार्गव, द्युतिमान् आंगिरस, सावन वासिष्ठ, आत्रेय हव्यवाहन और 'सप्त' संज्ञक पौलह ऋषि—ये रोहित या मेरुसावर्ण मन्वन्तर के सप्तर्षि थे।

मनुपुत्राः—

दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः।
मनोः पुत्रो धृष्टकेतुः पञ्चहोत्रो निराकृतिः।
पृथुश्रवा भूरिधामा ऋचीकोऽष्टहतो गयः।

अर्थ—दक्षपुत्र रोहित प्रजापति के पुत्र रोहित या मेरुसावर्णि मनु के पुत्र थे—धृष्टकेतु, पंचहोत्र, निराकृति, पृथुश्रवा, भूरिधामा, ऋचीक, अष्टहत और गय— ये नौ मेरुसावर्णि के महाबली पुत्र थे।

(१०) दक्षसावर्णिमन्वन्तरम् (द्वितीयमेरुसावर्णिः)

सप्तर्षयः—

दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः।
हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः।
आपोमूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः।
पौलस्त्यः प्रमितिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः।
अङ्गिरा नभसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः॥

अर्थ—दशमयुग (मन्वन्तर) में या द्वितीय मेरुसावर्ण मनु के समय में हविष्मान् पौलह, सुकृति भार्गव, आपोमूर्ति आत्रेय, अष्टम वासिष्ठ, प्रमिति पौलस्त्य, नभोग काश्यप और नभस् आंगिरस—ये सात परमर्षि थे।

मनुपुत्राः—

मनोः सुतोत्तमौजाश्च निकुषंजश्च वीर्यवान्।
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः।
भूरिद्यूम्नः सुवर्चाश्च दश त्वेते मनोः सुताः।

अर्थ—दक्षसावर्णि मनु के दश पुत्र थे—उत्तमौजा, निकुषंज, शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा।

(११) रुद्रसावर्णि (तृतीयमेरुसावर्णि) मन्वन्तरम्

सप्तर्षयः—

हविष्मान् काश्यपश्चापि हविष्मान् यश्च भार्गवः।
तरुणश्च तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा॥
अङ्गिराश्चोदधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा।
पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः॥

अर्थ—हविष्मान् काश्यप, हविष्मान् भार्गव, तरुण आत्रेय, अनघ वासिष्ठ, उदधिष्ण्य, आंगिरस, निश्चर पौलस्त्य और अग्नितेजा पौलह—ये सात ऋषि थे।

मनुपुत्राः—

संवर्तकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः।
क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदर्शः पण्डको मनुः।
सावर्णस्य पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः॥

अर्थ—संवर्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, क्षेमधन्वा, दृढायु, आदर्श, पण्डक, मनु—ये तृतीय सावर्णमनु के पुत्र थे।

(१२) ब्रह्मसावर्णिमन्वन्तरम् (चतुर्थमेरुसावर्णिः)

सप्तर्षयः—

द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा।
अङ्गिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा॥
तपोऽशनस्तथा पौलस्त्यः पौलहश्च तपो रविः।
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः॥

अर्थ—द्युति वासिष्ठ, सुतपा आत्रेय, तप आंगिरस, मूर्ति काश्यप, तपोशन पौलस्त्य, तपोरवि पौलह और तपोधृति भार्गव—ये सात ऋषि थे।

(हरिवंश १। अ० ७)

मनुपुत्राः—

देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः।
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत्।
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः॥

अर्थ—देववायु, अदूर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन, मित्रकृत, मित्रबाहु और सुवर्चा—ये मनुपुत्र थे।

(१३) रौच्यमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यो हव्यपस्तु यः।
पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः।
निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा।
सुतपाश्चैव वासिष्ठ सप्तैते तु महर्षयः।

अर्थ—धृतिमान् आंगिरस, हव्यप पौलस्त्य, तत्त्वदर्शी पौलह, निरुत्सुक भार्गव, निष्प्रकम्प आत्रेय, निर्मोह काश्यप और सुतपा वासिष्ठ—ये सप्तर्षि थे।

मनुपुत्राः—

चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृतः।
सुनेत्रः क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढः।
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे॥

अर्थ—चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभृत धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय, दृढ़—ये त्रयोदश मनु रौच्य के पुत्र थे।

(१४) भौत्यमन्वन्तरवर्णनम्

सप्तर्षयः—

भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा।
युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च।
अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते॥

अर्थ—अतिबाहु भार्गव, शुचि आंगिरस, युक्त आत्रेय, शुक्र वासिष्ठ और अजित पौलह—ये रौच्य मन्वन्तर के सप्तर्षि थे।

मनुपुत्राः—

तरङ्गभीरुवप्रश्च तरस्वानुग्र एव च।
अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णुसंक्रन्दनस्तथा।
तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः॥

(हरिवंश पुराण अ० १।७ अ०)

अर्थ—तरंगभीरु वप्र, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी प्रवीण, जिष्णु संक्रदन, तेजस्वी सबल ये भौत्यमनु के पुत्र थे।

प्रजापतयः—

पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन्।
कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम्।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान्॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेताः पुलहस्तथा॥
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव।
कश्यपश्च महातेजास्तेषामासीच्च पश्चिमः॥

(वाल्मीकि रामायणे ३।१४)

× × ×

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।

(भगवद्गीता १०।६)

अर्थ—प्राचीनकाल में प्रमुख प्रजापति हुए उनमें कर्दम (रुचिपुत्र रौच्यमनु या पौलह या दक्ष प्रथम) प्रथम प्रजापति थे, इसके पश्चात् विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान् अरिष्टनेभि और सर्वान्तिम महातेजस्वी कश्यप थे।

सात आदिम महर्षि—मरीचि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और अंगिरा। चार अन्य महर्षि—भृगु, वसिष्ठ, कश्यप और अंगिरा तथा चौदह मनु—स्वायम्भुव मनु, स्वारोचिष मनु, उत्तम मनु, तामस, रैवत, चाक्षुष, रौच्य, भौत्य, वैवस्वत मनु, सावर्ण वैवस्वत मनु, ब्रह्मसावर्णि, दक्षसावर्णि, रुद्रसावर्णि और मेरुसावर्णि मनु।

सनत्कुमारः—

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः॥
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः॥

(हरिवंश पुराण १।३।४२-४३)

अर्थ-अग्निपुत्र कुमार जो शरस्तम्बों में उत्पन्न हुए, उनके भ्राता थे—शाख, विशाख और नैगमेय। कृत्तिकाओं के पुत्र कार्तिकेय ही स्कन्द, सनत्कुमार और कुमार नाम से प्रख्यात जो रुद्र के चतुर्थांश तेज से उत्पन्न हुए।

स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

स्वयम्भूः–

हिरण्यवर्णमभवत् तदण्डमुदकेशयम्।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम्॥ (हरि० (१।१।३७)

अर्थ—वह अण्डा हिरण्यवर्ण (हिरण्यगर्भ) होगया, जो जल के अन्दर पड़ा हुआ था। उससे स्वयं ब्रह्मा या स्वयम्भू (=स्वायम्भुव मनु) उत्पन्न हुए, ऐसा इतिहास है।

सप्त प्रजापतयः—

मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत् सप्त मानसान्।
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥ (हरि० १।१।४१)

अर्थ—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ—इन सप्त मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। ये ही सात ब्रह्मा कहे जाते हैं, जिनका पुराणों में निश्चित वर्णन है।

स्वायम्भुवमनुः—

स सृष्टासु प्रजास्वेवमापवो वै प्रजापतिः।
स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।। (हरि० १।२।४)
वैराजात् पुरुषाद् वीरं शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ।।
काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः।
प्रियव्रतं समासाद्य पतिं सा सुषुवे सुतान्। (हरि० १।२।५-६)

अर्थ—स्वायम्भुव मनु की सन्तान विभिन्न (जीव) सृष्टियों के साथ 'आपव प्रजापति' उत्पन्न हुए, वे ही स्वायम्भुव मनु थे, वही प्रथम पुरुष या आदिम मनुष्य थे।

वैराजपुरुष से शतरूपा ने 'वीर' नाम के पुत्र को उत्पन्न किया।

'वीर' से 'काम्या' ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्रों को उत्पन्न किया।

प्रियव्रत और काम्या की सन्तति—काम्या कर्दम की पुत्री थी। उसने प्रियव्रत से चार पुत्रों को उत्पन्न किया—सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु।

उत्तानपादवंशवर्णनम्—

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताजनयत् सुतान्।
धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नामविश्रुता।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ।। (हरि० १।२।७)

अर्थ—प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को पुत्ररूप में ग्रहण किया।

उत्तानपाद ने पत्नी सूनृता से चार पुत्रों को उत्पन्न किया। 'सूनृता' धर्म-प्रजापति की पुत्री थी। अश्वमेध में वह ध्रुव की माता उत्पन्न हुई।

(हरिवंश १।२ अ०)

ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम्।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ।।
तस्माच्छ्लिष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पंच पुत्रानकल्माषान्।
रिपुं रिपुंजयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम् ।।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ।।

अजीजनत् पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ।
कन्यायामभवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः ॥
उरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः ॥
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः ॥
उरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।
अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत ।

× × ×

वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिः पृथुः ॥

× × ×

पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालितौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ॥
हविर्धानाद् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।

× × ×

सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥

× × ×

मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ॥

ध्रुव की सन्तान—प्रजापति उत्तानपाद ने सूनृता से ध्रुव, कीर्तिमान्, शिव और अयस्पति को उत्पन्न किया ।

ध्रुव से उसकी पत्नी शम्भु ने श्लिष्टि और भव्य को उत्पन्न किया ।

श्लिष्टि ने पत्नी सुच्छाया से पांच श्रेष्ठ पुत्रों को उत्पन्न किया—रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल और वृकतेजा को उत्पन्न किया । रिपु से बृहती ने चक्षु या चाक्षुष को उत्पन्न किया । प्रजापति अरण्य की पुत्री पुष्करिणी (वीरिणी) में चक्षु या चाक्षुष मनु को उत्पन्न किया ।

चाक्षुषमनु की सन्तति—चाक्षुष मनु ने नड्वाला से, जो वैराज प्रजापति की श्रेष्ठ कन्या थी, दश पुत्र उत्पन्न किये—उरु, पुरु शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न और दशम अभिमन्यु।

अग्नि की पुत्री आग्नेयी से उरु ने महातेजस्वी—अंग, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय—इन छः पुत्रों को उत्पन्न किया।

वेन—अंग से सुनीथा का पुत्र एकमात्र वेन उत्पन्न हुआ।

पृथु—वेन के हाथ को मथने पर पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु के पुत्र थे धर्मज्ञ अन्तर्धि और पालित। अन्तर्धि से शिखण्डिनी ने हविर्धान को उत्पन्न किया। हविर्धान से आग्नेयी धिषण ने छः पुत्रों को उत्पन्न किया—प्राचीनबर्हि शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन।

प्राचीनबर्हि—प्रजापति प्राचीनबर्हि महान् प्रजापति थे।

दश प्राचेतस—सामुद्री सवर्णा ने प्राचीनबर्हि से धनुर्वेद के पारग दश प्रचेताओं को उत्पन्न किया।

दक्ष—दश प्रचेताओं से मारिषा में एकमात्र प्रजापति दक्ष को उत्पन्न किया जो महान् प्रजापति था।

(हरि० ११२ अ०)

दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ॥

अर्थ—प्राचेतस दक्ष सोम के अंश से उत्पन्न हुए थे।

दक्ष प्रजापति वंशः

हर्यश्वाः—

अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पंच वीर्यवान्।
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः।

अर्थ—दक्ष प्राचेतस प्रजापति ने वीरण की पुत्री असिक्नी से पांच सहस्र 'हर्यश्व' संज्ञक पुत्र उत्पन्न किये।

नारदजन्म—

यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य वै दुहतरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥
पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिना।
असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ॥

अर्थ—परमेष्ठी कश्यप प्रजापति ने अपने श्रेष्ठ पुत्र नारद को दक्ष के शाप के भय से दक्ष की पुत्री से उत्पन्न किया था। सबसे पहिले परमेष्ठी कश्यप ने

नारद को ही उत्पन्न किया था। (हर्यश्वों से पूर्व) असिक्नी से देवर्षि सत्तम नारद का जन्म हुआ था।

शबलाश्वाः—

हर्यश्वेषुऽथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः।
वैरण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः॥

अर्थ—हर्यश्वों के नष्ट होने पर दक्ष प्राचेतस ने वीरण की पुत्री असिक्नी से एक सहस्र 'शबलाश्व' संज्ञक पुत्रों को उत्पन्न किया।

षष्टिः कन्याः—

षष्टिं भूयोऽसृजत् कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम्।

× × ×

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु॥

अर्थ—दक्ष ने वीरिणी (असिक्नी) से साठ कन्यायें उत्पन्न कीं, यह इतिहास में प्रसिद्ध है।

दक्ष ने दश कन्यायें धर्म (प्रजापति) को दीं, तेरह कन्यायें कश्यप को और सत्ताईस कन्यायें सोम को, चार कन्यायें अरिष्टनेमि को, दो कन्यायें भृगुपुत्र को, दो अंगिरा को और दो कन्यायें कृशाश्व ऋषि को दीं उनके नाम इस प्रकार थे।

धर्मपत्न्यः—

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारत॥

अर्थ—अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा-धर्म की पत्नियां थीं।

धर्मसन्ततिः—

विश्वेदेवाश्च विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा॥

अर्थ—विश्वा से विश्वेदेव, साध्या से साध्यगण, मरुत्वती से मरुत्वान् और वसु (स्त्री) से वसुगण उत्पन्न हुए।

अष्टवसवः—

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः॥

अर्थ—(वसु के आठ पुत्र थे)—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास।

चौबीस दाक्षायणी कन्यायें - स्वायम्भुवपुत्री प्रसूति में दक्ष (प्रथम या कर्दम या रौच्यमनु) ने २४ कन्यायें उत्पन्न कीं।

स्वायम्भुवस्य मनोः द्वे कन्ये—

कन्ये द्वे च महाभागे याम्या जाताः प्रजास्त्विमाः।
देवीनाम्ना तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे॥

अर्थ—स्वायम्भुवमनु की दो पुत्रियां हुईं—आकूति और प्रसूति, इनसे प्रजायें उत्पन्न हुईं।

प्रथम दक्षः—

स्वायम्भुवप्रसूतिं तु दक्षाय व्यसृजत् प्रभुः।
रुचेः प्रजापतेश्च आकूतिं प्रत्यपादयत्॥
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्।

× × ×

स्वायम्भुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः।
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभुः।

अर्थ—स्वायम्भुवमनु ने प्रसूति का विवाह दक्ष (प्रथम=कर्दम या रौच्यमनु) से किया और आकूति को रुचि प्रजापति को दिया। आकूति से रुचि ने एक मिथुन सन्तान उत्पन्न की।

धर्मस्य पत्न्यः—

श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणी प्रभुः॥

अर्थ—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति—इन तेरह दक्षकन्याओं को धर्म प्रजापति ने पत्नीरूप में ग्रहण किया।

अन्या एकादश दक्षकन्याः—

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः।
ख्यातिः सती संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥
तास्ततः प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये च महर्षयः।
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।

पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ॥
सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिं च भृगवे तथा ।
मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमाङ्गिरसे ददौ ॥
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ।
क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयाम् तथात्रये ।
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यऽनये ददौ ।

(वायुपुराण अ० १७)

अर्थ—अवशिष्ट एकादश दक्षपुत्रियां थीं—ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा । इनका विवाह विभिन्न महर्षियों से हुआ । रुद्र, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर और अग्नि—इनके पति थे ।

दक्ष ने सती का विवाह रुद्र से, ख्याति का भृगु से, सम्भूति का मरीचि से, स्मृति का अंगिरा से, प्रीति का पुलस्त्य से, क्षमा का पुलह से, सन्नति का क्रतु से, अनसूया का अत्रि से, ऊर्जा का वसिष्ठ से और स्वाहा का अग्नि से विवाह किया ।

प्रियव्रतवंशवर्णनम् (वायुपुराण अ० ३३)

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रजासर्गस्तपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥
प्रियव्रतात् प्रजावतो वीरान् काम्या व्यजायत ।
कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ॥
कन्ये द्वे शतपुत्रांश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते उभे ।
तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश ॥
अग्नीध्रश्च वपुष्मान् च मेधा मेधातिथिर्विभुः ।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः सर्व एव च ।
प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ।
द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांस्तांश्च निबोधत ॥
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम् ।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥
शाल्मलौ तु वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्तं च कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ।
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौंचद्वीपे समादिशत् ।

शाकद्वीपेश्वरञ्चापि हव्यञ्चक्रे प्रियव्रतः ।
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् प्रभुः ।
पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।

× × ×

हव्यो व्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपेश्वारान् प्रभुः ।
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मरीचकम् ।
वसुमोदं सुमोदकं सप्तमञ्च महाद्रुमम् ॥

X X X

क्रौंचद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः ॥

अर्थ—स्वायम्भुव मन्वन्तर (समय में) या आद्य त्रेतायुग (प्रथम परिवर्त युग २६००० विक्रम पूर्व) में प्रियव्रत के पुत्रों अथवा स्वायम्भुव मनु के पौत्रों ने तपोयोग से प्रजा की सृष्टि की और उसको पृथिवी के विभिन्न भागों में बसाया।

प्रियव्रत से काम्या ने प्रजावान् वीर पुत्रों को उत्पन्न किया। काम्या प्रजापति कर्दम (रौच्यमनु) की पुत्री थी। उसने दो कन्यायें और सौ पुत्र (अनेक) उत्पन्न किये। दो कन्याओं का नाम सम्राट् और कुक्षि था। इनके दश भाई अति शूरवीर और प्रजापति के समान ही थे।

दश पुत्र—अग्नीध्र, वपुष्मान्, मेधा, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और सर्व—ये प्रियव्रत के प्रधान पुत्र थे।

सप्तद्वीपेश्वर सात पुत्र–प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को सात द्वीपों (महाद्वीपों) का अधिपति बनाया।

अग्नीध्र को जम्बूद्वीप का अधिपति, प्लक्ष द्वीप का अधिपति मेधातिथि, शाल्मलिद्वीप का सम्राट् वपुष्मान् को, ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप का राजा, क्रौञ्चद्वीप का राजा द्युतिमान् को, शाकद्वीप का अधिपति हव्य को और पुष्करद्वीप का अधिपति सवन को बनाया। सवन के दो पुत्र महावीत और धातकि इन्हीं नाम के दो महाखण्डों के अधिपति हुए।

हव्य द्वारा शाकद्वीप का विभाजन—हव्य के सात पुत्र शाकद्वीप के सात भागों के अधिपति हुए—जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचिक, वसुमोद, सुमोदक और महाद्रुम—(जो इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध भूदेशों के अधिपति हुए।

द्युतिमान् द्वारा क्रौञ्चद्वीप का विभाजन—क्रौञ्चद्वीपेश्वर द्युतिमान् के पुत्र थे—कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक।

मुनिश्च दुन्दिभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ॥

X X X

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैते सुमहौजसः ।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः ।
षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥

X X X

शाल्मलस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः ।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः, सप्तमस्तथा ॥

X X X

सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः ।
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्त वर्षाणि तानि वै ।
तस्माच्छान्तभयश्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः ।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥

X X X

आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं काम्यापुत्रं महाबलम् ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः ।
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः ।
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
रम्यः स्यात् पंचमः पुत्रो हरिन्मान् षष्ठ उच्यते ।
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वो ह्यष्टमः स्मृतः ।
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत ।

X X X

नाभेस्तु सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तान्निबोधत ।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशतात्मजः ।

अर्थ—मुनि और दुन्दुभि द्युतिमान् के पुत्र थे ।

कुशद्वीपेश्वर ज्योतिष्मान् द्वारा विभाजन—कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् के ये सात पुत्र अधिपति थे—उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, प्रभाकर और सातवां कपिल ।

शाल्मलिद्वीपेश्वर वपुष्मान् द्वारा विभाजन—शाल्मलि द्वीप के विभिन्न भागों के सात अधिपति वपुष्मान् के ये सात पुत्र थे—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ।

प्लक्षद्वीपेश्वर मेधातिथि द्वारा विभाजन—मेधातिथि के सात पुत्र प्लक्षद्वीप के सात वर्षों (भागों) के अधिपति हुए—ज्येष्ठ, शान्तमय, शिशिर, सुखोदय, ध्रुव, क्षेमक और शिव।

जम्बूद्वीपेश्वर आग्नीध्र द्वारा विभाजन—प्रियव्रत ने अपने ज्येष्ठपुत्र, काम्या के पुत्र आग्नीध्र, जो महाबली था, को जम्बूद्वीप के साम्राज्य पर अभिषिक्त किया।

आग्नीध्र के पुत्र प्रजापतियों के समान तेजस्वी थे—ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'नाभि' था। उसका अनुज था 'किंपुरुष', तृतीय था—हरिवर्ष, चतुर्थ था इलावृत, पंचम हुआ रम्य, षष्ठ था हरिन्मान् और सातवां था कुरु, आठवां हुआ भद्राश्व तथा नवम था केतुमाल, ये ही नौ देशों के नाम हुए।

नाभि और ऋषभ—ज्येष्ठ आग्नीध्रपुत्र नाभि 'हिम' (या भारत) नाम के वर्ष (देश) के अधिपति थे। उनकी सन्तति सुनो।

तेजस्वी नाभि ने मरुदेवी से ऋषभदेव को उत्पन्न किया जो सभी क्षत्रिय राजाओं में सर्वश्रेष्ठ और उनके पूर्वज थे।

ऋषभपुत्र और भारतवर्ष संज्ञा—ऋषभ से भरत उत्पन्न हुए, जिनके (भरत के) सौ पुत्र थे।

सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मात्तद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्योयोजयत्।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश ह॥
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित्।
तेजस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः।
परमेष्ठी सुतश्चाथ निधने तस्य शोभनः।
प्रतिहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात्।
प्रतिहर्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत् प्रतापिश्चापि तत्सुतः।
प्रतापेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः।

पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ।।
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ।
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ।।
अरिजस्य रजः पुत्रः शतजिद्रजसो मतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्राजानः सर्वं एव ते ।।
विश्वज्योतिःप्रधाना यैस्तैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ।।

(वायुपुराण १।३३ अध्याय)

अर्थ—ऋषभ ने (यथासमय) भरत को राज्य पर अभिषिक्त करके प्रव्रज्या (संन्यास-श्रमणधर्म) ग्रहण की ।

जिसका पूर्व नाम 'हिमवर्ष' था, वह ऋषभदेव ने भरत को समर्पित कर दिया और तब से इस देश का नाम भरत के नाम से 'भारतवर्ष' प्रसिद्ध हुआ ।

भरतोत्तर वंश—भरत का पुत्र विद्वान् और धार्मिक सुमति था । (यथासमय) भरत ने उसको अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया । पुत्र को राज्य देने के पश्चात् राजा भरत ने तपःहेतु वन में आश्रय लिया ।

सुमति का पुत्र तेजस हुआ जो प्रजापति और शत्रुविजेता था । तेजस का पुत्र विद्वान् 'इन्द्रद्युम्न' इतिहास में प्रसिद्ध है । उसका पुत्र हुआ 'परमेष्ठी', उसका पुत्र हुआ 'शोभन', तदनन्तर उसके कुल में 'प्रतिहार' नाम का राजा हुआ । उस विद्वान् का पुत्र हुआ प्रतिहर्त्ता । उसका पुत्र हुआ उन्नेता, उसका पुत्र हुआ भुव, उसका पुत्र हुआ उद्‌गीथ, उसका पुत्र हुआ प्रतापि, प्रताषि का विभु, उसका पुत्र पृथु, उसका पुत्र नक्त, उसका पुत्र गय था । गय का पुत्र हुआ नर, उसका पुत्र हुआ विराट् । उसका पुत्र हुआ महावीर्य, उसका पुत्र हुआ धीमान्, उसका पुत्र हुआ 'महान्' । महान् का पुत्र हुआ भौवन, उसका पुत्र था त्वष्टा, उसका पुत्र हुआ अरिज, उसका पुत्र हुआ रज और उसका पुत्र था शतजित् ।

रज के सौ पुत्र थे, जो सभी राजा हुए, उनमें 'विश्वज्योति' प्रधान थे । इन सभी ने विपुल प्रजा की वृद्धि की ।

द्वितीयोऽध्यायः

(ऋषिवंशः) स्वायम्भुवेऽन्तरे

भृगुवंशः—

भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदुःखयोः ।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तरविचारणौ ।
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभावनी ।
सा तु नारायणं देवं पतिमासाद्य शोभनम् ।
द्वे कन्ये स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च ।
आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ।
षण्डश्च मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ ।
मनस्विन्यां मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह ।
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्द्धन्यायामजायत ।
पीवर्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकराः स्मृताः ।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ॥
षण्डस्य च पुण्डरीकायां द्युतिमानात्मजोऽभवत् ।
उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ॥ (वायु पुराण २७)

अर्थ—(स्वायम्भुव या प्रथम) भृगु ने पत्नी ख्याति से सुख-दुःख के नियन्ता देव धाता और विधाता नाम के दो पुत्रों को उत्पन्न किया, उनकी ज्येष्ठ पुत्री श्री (लक्ष्मी) थी,[1] उसने शोभायमान नारायण (वामनविष्णु) को पतिरूप में प्राप्त किया ।

आयति और नियति नाम की दो कन्यायें क्रमशः विधाता और धाता की पत्नियां हुई, उनके पुत्र दृढ़वती और सनातन वेद के निधान षण्ड[2] और मृकण्डु हुए ।

---

(१) यहां पुराण पाठ भ्रष्ट हुआ है । लक्ष्मी, भृगु वारुणि (भृगु द्वितीय) की पुत्री थी, पुराण अध्येता, इस तथ्य को सम्यक् रूप से समझ सकते हैं ।

(२) षण्ड—यह नाम भी शुद्ध या ठीक नहीं, षण्ड, उत्तरकालीन भार्गव शुक्र का पुत्र था ।

मृकण्डु के पुत्र (और वंशज) मार्कण्डेय कहलाये। उनके पुत्र वेदशिरा मार्कण्डेय हुए, जिनकी माता का नाम मूर्द्धनी था।

वेदशिरा मार्कण्डेय के वंशकर पुत्र 'पीवरी' पत्नी द्वारा उत्पन्न हुए जो सभी **'मार्कण्डेय'** कहलाते थे।

षण्ड द्वारा पुण्डरीका से 'द्युतिमान्' पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र द्युतिमन्त और सृजवान् हुए।

च्यवनवंशः (ववस्वतेऽन्तरे)—

भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्।
भृगोः सुदयितः पुत्रश्च्यवनो नाम भार्गवः॥
च्यवनस्य दायादो प्रमतिर्नाम भार्गवः।
प्रमतेरप्यभूत् पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत।
रुरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः॥

(महा० आदिपर्वणि ५।८-१०)

अर्थ—महर्षि भृगु (द्वितीय जन्म में) स्वयम्भू ब्रह्मा (वरुण आदित्य) द्वारा वरुण (अपने) यज्ञ में अग्नि से उत्पन्न हुए, ऐसा इतिहास प्रसिद्ध है।

भृगु का प्रिय पुत्र च्यवन भार्गव था। च्यवन का पुत्र हुआ प्रमतिभार्गव। प्रमति द्वारा घृताची (अज्ञात अप्सरा) से रुरु (भार्गव) उत्पन्न हुआ और रुरु का पुत्र हुआ 'शुनक' वेदों का महान् विद्वान्। (शुनक के वंशज 'शौनक' कहलाये)।

गोत्रप्रवराः भार्गवाः—

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः।
वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः।
शौनकायनः जीवन्तिरावेदः कार्पणिस्तथा।
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्च सः॥
विष्णुः पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः।
भृतभार्गयमार्कण्डः जविनो वीतिनस्तथा॥
मण्डमाण्डव्यमण्डूकफेनपास्तमितस्तथा।
स्थलपिण्डः शिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैव च।
जालधिः सौधकिः क्षुभ्यः कुत्सन्यो मौद्गलायनः।
कर्मायनो देवपतिः पाण्डुरोचि सगालवः।
साङ्कृत्यश्चातकिः सार्पिर्यज्ञपिण्डायनस्तथा।

गार्ग्यायनो गायनश्च ऋषिर्गोर्हायनस्तथा ।
गोष्ठायनो वात्स्यायनो वैशम्पायन एव च ।
वैकर्णिनिः शाङ्करवो याज्ञतेयिभ्राष्ट्रायनिः ।।
लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्यपरिमण्डलौ ।।
आलुकिः सौचकिः कौत्सस्तथान्यः पैङ्गलायनिः ।
सात्यायनिर्मार्गायनिः कौटिलिः कौचहस्तिकः ।।
नैकजिह्वो जिह्मकश्च व्यद्याद्यो लौहवैरिणः ।
शारद्वतिकनेतिष्यौ लोगाक्षिश्चलकुण्डलः ।
वागायनिश्चानुमतिः पूर्णभागतिकोऽसकृत् ।। मत्स्यपुराणे १९४)

अर्थ–(प्रमुख गोत्रप्रवर्तक भार्गव ऋषि या ब्राह्मण इस प्रकार थे)—भृगु, च्यवन, आप्नुवान्, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, रावेद, कार्पणि, वैहीनरि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सावर्णिक, विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्तभागी, भृतमार्गेय, मार्कण्ड, जवी, वीति, मण्ड, माण्डव्य, मण्डूक, फेनप, तमित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कराक्षि, जालधि, सौधकि, क्षुभ्य, कुत्सन्य, मौद्गलायन, कर्मायन, देवपति, पाण्डुरोचि, गालव, सांकृत्य, चातकि, सर्पियाज्ञ, पिण्डायन, गार्ग्यायन, गायन, गोर्हायन, गोष्ठायन, वात्स्यायन, वैशम्पायन, वैकर्णिनि, शाङ्करव, याज्ञतेयि, भ्राष्ट्रायनि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैङ्गलायनि, सात्यायनि, मार्गायनि, कौटिलि, कौचहस्तिक, नैकजिह्व, जिह्मक, व्यद्याद्य लौहवैरिण, शारद्वतिक, नेतिष्य, लौगाक्षि, चलकुण्डल, वागायनि, अनुमति और पूर्णभागातिक ।

मरीचिवंशः—

पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम् ।।
प्रजापतेः पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत ।
तुष्टिः पृष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ।
पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौ पुत्रावुदपादयत् ।
विरजञ्चैव धर्मिष्ठं पर्वसं चैत्र तावुभौ ।
विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः ।
सुधामसुतो वैराजः प्राच्यान्दिशि समाश्रितः ।
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान् ।।
पर्वसः पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ ।
यज्ञवामं च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च ।। (मत्स्यपुराण अ० १९४)

अर्थ—प्रजापति मरीचि की पत्नी सम्भूति ने पुत्र पूर्णमास को उत्पन्न किया। उनकी कन्याओं के नाम थे—तुष्टि, पृष्टि, त्विषा, अपचिति।

पूर्णमास ने पत्नी 'सरस्वती' से दो पुत्रों को उत्पन्न किया—विरजा और पर्वस। सुधामा का पुत्र वैराज पूर्व दिशा का लोकपाल था, वह अत्यन्त धार्मिक था तथा उसकी माता का नाम 'गौरी' था।

पर्वस ने पर्वसा से दो पुत्रों को उत्पन्न किया—यज्ञवाम और श्रीमान् 'काश्यप' (या कश्यप)।

(मत्स्यपुराण अ० १६५)

स्वायम्भुवेऽन्तरे—

स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः॥
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा।
तथैव भरताग्निश्च कीर्तिमन्तं च तावुभौ।
अग्नेः पुत्रन्तु पर्जन्यं संहूतिः सुषुवे प्रयुम्।
हिरण्यरोमाणं पर्जन्यो मारीच्यामुदपादयत्।
आभूतसंप्लवस्थायी लोकपालः स वै स्मृतः॥
जज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ।
वरिष्ठं धृतिमन्तं चाप्युभावङ्गिरसां वरौ॥

अर्थ—अंगिरा (स्वायम्भुव) की पत्नी स्मृति ने दो पुत्रों और चार कन्याओं को जन्म दिया—(चार पुत्रियां थीं)—सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति। (दो पुत्र थे)—भरताग्नि और कीर्तिमान्। भरताग्नि का पुत्र था पर्जन्य (प्रजापति), जिसको पत्नी संहूति ने उत्पन्न किया।

पर्जन्य ने मरीचिकन्या (मारीची) से 'हिरण्यरोमा' प्रजापति को उत्पन्न किया, जो जलप्रलय के समय तक दिग्पाल रहा। कीर्तिमान् ने धेनुका से 'वरिष्ठ' और धृतिमान् नाम के आंगिरसों को उत्पन्न किया।

अङ्गिरावंशः—

मरीचितनया राजन्! सुरूपा नाम विश्रुता।
भार्या चाङ्गिरसो देव्यास्तस्याः पुत्रा दशस्मृताः॥
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदः प्राणस्तथैव च।
हविष्मांश्च गविष्ठश्च ऋतः सत्यश्च ते दश॥
एते चाङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिनः॥
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान्॥

बृहस्पतिङ्गौतमञ्च संवर्तमृषिमुत्तमम् ।
उतथ्यं वामदेवं च ग्रयास्यमृषिन्तथा ॥

आंगिरसवंश (द्वतीय) वैवस्वत युग में—

अर्थ—मरीचि की पुत्री सुरूपा ने, जो अंगिरा (वारुण) की भार्या थी, दश पुत्र उत्पन्न किये—आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋत और सत्य। ये सोमपायी आंगिरस देव थे। सुरूपा ने ही इन आंगिरस ऋषियों को जन्म दिया—बृहस्पति, गौतम, संवर्त, उतथ्य, वामदेव और अयास्य आंगिरस।

वैवस्वतेऽन्तरे (गोत्रप्रवर्तकाः)

अङ्गिरा प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः ।
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ॥

अर्थ - प्रथम गोत्रप्रवर्तक अंगिरा (वारुण) हुए, द्वितीय गोत्रप्रवर्तक थे—बृहस्पति तथा तृतीय थे—भरद्वाज।

आङ्गिरसा वैवस्वतमन्वन्तरे—

शृणुताङ्गिरसो वंशमग्नेः पुत्रस्य धीमतः ।
यस्यान्वये सम्भूताः भारद्वाजा सगौतमाः ।
देवाश्चांगिरसो मुख्यास्त्विषमन्तो महौजसः ॥
सुरूपा चैव मारीची कार्दमी च तथा स्वराट् ।
मथ्या च मानवीकन्या तिस्रो भार्यास्त्वथर्वणः ।
इत्येताङ्गिरसः पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि सन्ततिम् ।

अर्थ—अग्नि या अंगिरा नाम के (वरुण) पुत्र का वंश सुनिये जिसके वंश में तेजस्वी और महाबली भारद्वाज और गौतम ब्राह्मण उत्पन्न हुए।

अथर्वा (या अंगिरा) की तीन पत्नियां थीं—मारीची (मरीचिपुत्री) सुरूपा, कार्दमी (कर्दमपुत्री)—स्वराट् और (मनुपुत्री) मानवी मथ्या। अब इन तीनों पत्नियों की सन्तानों के नाम सुनिये।

बृहस्पतिः सुरूपाया गौतमं सुषुवे स्वराट् ।
अवन्ध्यं वामदेवं च उतथ्यमुशिजन्तथा ॥
धिष्णुः पुत्रस्तु पथ्यायाः संवर्तश्चैव मानसः ॥
विचित्तिश्च तथायास्यः शरद्वांश्चाप्युतथ्यजः ॥
ग्रौशिजो दीर्घतमा बृहदुक्थो वामदेवजः ।
धिष्णोः पुत्राः सुधन्वान ऋषभश्च सुधन्वनः ॥
रथकाराः स्मृताः देवा ऋषयो ये परिश्रुताः ।
बृहस्पतेर्भरद्वाजो विश्रुतः सुमहायशाः ॥

अङ्गिरसस्तु संवर्त्तो देवानङ्गिरसः शृणु ।
बृहस्पतेर्यवीयांसो देवा ह्यङ्गिरसः स्मृताः ॥
औरसाङ्गिरसः पुत्राः सुरूपायां विजज्ञिरे ।
औदायुरायुर्दनुर्दक्षो दर्भः प्राणस्तथैव च ।
हविष्मांश्च हविष्णुश्च क्रतुः सत्यश्च ते दश ।
अयास्यस्तु उतथ्यश्च वामदेवस्तथोशिजः ।
भारद्वाजा सांकृतिका गार्ग्यकाण्वरथीतराः ।
मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा ।
तथा भाक्षा भरद्वाजा आर्षभाः किम्मयास्तथा ।
एते ह्यङ्गिरस पक्षा विज्ञेया दश पंच च ॥

अर्थ—सुरूपा ने बृहस्पति को और स्वराट् ने गौतम को उत्पन्न किया। पथ्या (मथ्या) ने अवन्ध्य, वामदेव, उतथ्य, उशिज् और धिष्णु को उत्पन्न किया। संवर्त, अंगिरा का मानसपुत्र था। ऐसे ही विचित्ति (विप्रचित्ति ?) और अयास्य मानसपुत्र थे।

शरद्वान् उतथ्य का पुत्र था। दीर्घतमा उशिक् का पुत्र था। वामदेव का पुत्र बृहदुक्थ था।

धिष्णु का पुत्र सुधन्वा था और सुधन्वा का पुत्र ऋषभ (तीन ऋभुगण) था। ये ऋभुगण ही रथकार, देव और ऋषि माने गये हैं।

प्रसिद्ध महायशस्वी भरद्वाज ऋषि बृहस्पति के पुत्र थे। संवर्त भी अंगिरा के पुत्र (या वंशज) थे। बृहस्पति से छोटे आंगिरस, आंगिरस देवगण थे—वे अंगिरा और सुरूपा के औरसपुत्र थे—औदायु, आयु, दनु, दक्ष, दर्भ, प्राण, हविष्मान्, हविष्णु, क्रतु और सत्य—ये दश देव थे

आंगिरसों के पन्द्रह पक्ष या गोत्रवर्तक थे—अयास्य, उतथ्य, वामदेव, भरद्वाज, सांकृतिक, गार्ग्य, काण्व, रथीतर, मुद्गल, विष्णुवृद्ध, हरित, वायु, भाक्ष, भारद्वाज (भारद्वाजयना) आर्षभ (आर्भव-ऋभुवंशज) और किम्मय।

अत्रिवंशः (स्वायम्भुवमन्वन्तरे)—

अनसूयापि जज्ञे तान् पंचात्रेयानकल्मषान् ।
कन्याञ्चैव श्रुतिं नाम माता शङ्खपदस्य या ।
कर्दमस्य या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः ।
सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिः शनैश्चरः ।
सोमश्च पंचमस्तेषामासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

अर्थ—स्वायम्भुव मन्वन्तर (युग) में अनसूया ने अत्रि ऋषि से पांच निष्पाप आत्रेयों और एक कन्या श्रुति को उत्पन्न किया, जो पौलह (पुलहपुत्र) कर्दम प्रजापति की पत्नी और शंखपद प्रजापति की माता थी।

पांच आत्रेय थे—सत्यनेत्र, हव्य, आयोमूर्ति, शनैश्चर और सोम।

अत्रिवंशः (वैवस्वतमन्वन्तरे)—

अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः।
तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्यो दशैवासन् पतिव्रताः॥
भद्राश्वस्य घृताच्या वै दशाप्सरसि सूनवः।
भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा॥
वेला खला च सप्तैता या च गोचपला स्मृता॥
तथा मानरसा चैव रत्नकूटा च ता दश॥
आत्रेयवंशकृत्तासां भर्त्ता नाम्ना प्रभाकरः।
भद्राया जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम्।

× × ×

दश तास्वेव महता तपसा भावितप्रभाः।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः॥
तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ।
दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासस्तस्य चानुजः॥
यवीयसी सुता तस्यापाला ब्रह्मवादिनी।
अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम्।
दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते।
तस्य गोत्रान्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि।
श्यामाश्च मुद्गलाश्चैव बलारकगविष्ठिराः॥

(वायु उत्तरार्द्ध अ० ९)

अर्थ—(वरुण के तृतीयपुत्र और सप्तर्षियों में तृतीय) प्रजापति अत्रि के वंश का वर्णन करता हूं।

भद्राश्व (वर्ष या राजा) की पुत्रियां दश अप्सरायें थीं—भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलदा, मलदा, वेला, खला, गोचपला, मानरसा और रत्नकूटा। इनका पति आत्रेयवंशीय प्रभाकर आत्रेय था प्रभाकर ऋषि (आत्रेय) ने भद्रा से 'सोम' नाम के यशस्वीपुत्र को उत्पन्न किया।

इन्हीं दश पत्नियों से प्रभाकर ने दश और पुत्र उत्पन्न किये। वे 'स्वस्त्यात्रेय' नाम के विख्यात दश ऋषि वेदपारंगत थे। उनमें दो महातेजस्वी

अति प्रसिद्ध ब्रह्मिष्ठ (वेदज्ञ) ऋषि थे—'दत्तात्रेय' और 'दुर्वासा', इनमें दत्तात्रेय ज्येष्ठ और दुर्वासा अनुज थे। (प्रभाकर आत्रेय की) छोटी पुत्री इनकी बहिन थी—'अपाला', जो ब्रह्मवादिनी थी।

पुराणज्ञ विद्वान् दत्तात्रेय को विष्णु का अवतार मानते हैं। अत्रि के वंश में चार गोत्रप्रवर्तक ऋषि हुए—श्याम, मुद्गल, बलारक और गविष्ठिर।

पुलस्त्यवंशः (स्वायम्भुवेऽन्तरे)—

प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तालिस्तत्सुतोऽभवत्।
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः वैवस्वतेऽन्तरे॥
मध्यमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रयः।
स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता।
पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी त्वग्नेः स्मृता शुभा।
पौलस्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः।
दत्तालेः सुषुवे पत्नी सुजङ्घादीन् बहून् सुतान्।
पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायम्भुवेऽन्तरे।

(वायुपुराण अ० २८)

अर्थ—पुलस्त्य भार्या प्रीति का पुत्र 'दत्तालि' नाम का ऋषि हुआ। यही पूर्व जन्म का 'अगस्त्य ऋषि' था, जो वैवस्वतयुग में (अगस्त्य नाम से) हुआ।

(दत्तालि का भ्राता) देवबाहु मध्यम पुत्र और विनीत तृतीय पुत्र था। 'सद्वती' उनकी छोटी बहिन थी। जो प्रसिद्ध प्रजापति पर्जन्य की माता और अग्नि (या अंगिरा) की पत्नी थी।

विद्वान् प्रीतिपुत्र पौलस्त्य दत्तालि ऋषि की पत्नी ने सुजंघ आदि बहुत से पुत्रों को उत्पन्न किया, जो स्वायम्भुवमन्वन्तर में 'पौलस्त्य (ऋषि)' नाम से विख्यात हुए।

पुलहवंशः (स्वायम्भुवेऽन्तरे)—

क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः।
ते चाग्निवर्चसः सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिताः॥
कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः।
ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभा कन्या च पीवरी।
कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्यजनयत् सुतान्।
पुत्रं शङ्खपदं चैव कन्यां काम्यां तथैव च॥
स वै शङ्खपदः श्रीमान् लोकपालः प्रजापतिः॥
दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्यां दत्वा प्रियव्रते।

काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायम्भुवसमान् सुतान्।
दश कन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं संप्रवर्तितम् ॥
पुत्रो धनकपीवांश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुतः।
यशोधारी विजज्ञे वै कामदेवः सुमध्यमः॥

(वायुपुराणे अ० २८)

अर्थ—पुलह प्रजापति की पत्नी क्षमा ने अग्नि के समान तेजस्वी और यशस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया—कर्दम, अम्बरीष और सहिष्णु—ये तीन तथा धन ऋषि, कपीवान् और पीवरी कन्या हुई। कर्दम की पत्नी 'आत्रेयी श्रुति' ने पुत्र शंखपद और कन्या काम्या को उत्पन्न किया। वह शंखपद प्रसिद्ध लोकपाल और प्रजापति था। वह दक्षिणी भूमण्डल का शासक (लोकपाल) था।

कर्दम ने अपनी कन्या 'काम्या' प्रियव्रत (स्वायम्भुव) को ब्याही, जिससे प्रियव्रत ने स्वायम्भुवमनु के समान प्रतापी दश पुत्रों को उत्पन्न किया तथा दो कन्यायें भी उत्पन्न कीं।

पुत्र धनकपीवान् ही सहिष्णु नाम से विख्यात हुआ जो बड़ा यशधारक एवं सुमध्यम कामदेव के समान रूपवान् था।

क्रतुवंशः (स्वायम्भुवमन्वन्तरे)—

क्रतोः क्रतुसमः पुत्रो विजज्ञे सन्ततिः शुभा।
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः।
षष्ट्येतानि सहस्राणि बालखिल्या इति श्रुताः।
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते।
पर्वसस्य स्नुषे ते वै पूर्णमाससुतस्य वै। (वायु० अ० २९)

अर्थ—क्रतु के क्रतु समान पुत्र उत्तम सन्तति उत्पन्न हुई—वे 'साठ सहस्र बालखिल्य' (बौने) नाम के ऋषि थे। उनकी दो छोटी बहिनें थीं—पुण्यात्मा और सुमति। वे दोनों पूर्णमास (मारीच) के पुत्र 'पर्वस' की पुत्रवधुएं थीं।

वसिष्ठपक्षाः—

वसिष्ठस्य कपिञ्चल्यां घृताच्यां समपद्यत।
कुशीतियः समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते॥
पृथोः सुतायाः सम्भूतः पुत्रस्तस्या भवद्वसुः।
उपमन्युः सुतस्तस्य यस्येमे उपमन्यवः॥
मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुताः।
एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुताः॥
इत्येते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता एकादशैव तु॥ (वायुपुराणे)

वसिष्ठों के पक्ष (पृथक् गोत्रादि)—

अर्थ—(किसी वसिष्ठ या) वसिष्ठ के कपिञ्चला अप्सरा से 'कुशीतिय' या 'इन्द्रप्रतिमं' पुत्र हुआ। 'पृथु' की पुत्री से उसका पुत्र 'भवद्वसु' उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र 'उपमन्यु' हुआ। जिसके वंशज उपमन्यव (या औपमन्यव) कहलाये। मैत्रावरुणि वसिष्ठ के जो वंशज 'कुण्डिन' नाम के 'एकार्षेय' वासिष्ठ नाम से विख्यात हुए। इस प्रकार वसिष्ठों के ग्यारह पक्ष हैं।

पाराशराः (पक्षाः)—

श्वेताः कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूम्राः समूलिकाः।
उष्मपा दारकाश्चैव नीलाश्चैव पराशराः॥
पराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम्॥

अर्थ—श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम, मूलिक, उष्मप, दारक और नील—ये पाराशरों के आठ पक्ष हैं।

वसिष्ठवंशः—

ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे।
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा।
जननी सा द्युतिमतः पाण्डोस्तु महिषी प्रिया।
अस्याः त्विमे यवीयांसो वासिष्ठाः सप्तविश्रुताः।
रजः पुत्रोऽर्द्धबाहुश्च सवनश्चाधनश्च यः।
सुतपाः शुक्ल इत्येने सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः।
रजसो वाप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी।
प्रतीच्यां दिशि राजन्यं केतुमन्तं प्रजापतिम्॥

(वायुपुराण अ० २९)

अर्थ—वसिष्ठ की पत्नी ऊर्जा के सात पुत्र उत्पन्न हुए, उनकी बड़ी बहिन सुमध्यमा (सुन्दरी) 'पुण्डरीका' थी। वह द्युतिमान् की माता और पाण्डु की प्रियरानी थी।

(ऊर्जा के) सात पुत्र थे जो पुण्डरीका से छोटे और सभी वासिष्ठ (या वसिष्ठ या ऊर्जा संज्ञक) सप्तर्षि थे—रजस्, पुत्र, अर्धबाहु, सवन, अधन, सुतपा और शुक्ल।

रजस् (वासिष्ठ) से यशस्विनी मार्कण्डेयी (मार्कण्डेय पुत्री) ने 'केतुमान्) नाम का पुत्र उत्पन्न किया, जो पश्चिमी भूभाग का दिग्पाल 'प्रजापति' हुआ।

वैवस्वतमन्वन्तरे (वशिष्ठवंशः)

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्प्रभुः।
………शक्ते रदृश्यन्ती पराशरम्।

काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।
द्वैपायनादरण्यां वै शुको जज्ञे गुणान्वितः ॥

अर्थ वसिष्ठ (अज्ञातनामा उत्तरकालीन वासिष्ठ) ने अरुन्धती (भ्रान्तनाम) से शक्ति को उत्पन्न किया। शक्ति से 'अदृश्यन्ती' ने पराशर को उत्पन्न किया। 'काली' (=मत्स्यगन्धा—सत्यवती) ने पराशर (पाराशर=पाराशर्य=द्विप) से 'कृष्ण द्वैपायन' पाराशर्य को उत्पन्न किया। द्वैपायन से 'अरणी' ने गुणवान् पुत्र 'शुक' को उत्पन्न किया।

च्यवनवंशः, भार्गववंशः (वैवस्वतमन्वन्तरे)—

जनयामास द्वौ पुत्रौ सुकन्यायां च भार्गवः ।
आप्नुवसं दधीचं च तावुभौ साधुसम्मतौ ॥
सारस्वतः सरस्वत्यां दधीचाच्चोपपद्यते ।
रुची पत्नी महाभागा आप्नुवानस्य नाहुषी ॥
तस्य ऊर्वोर्ऋषिर्जज्ञे ऊरू भित्त्वा महायशाः ।
और्वश्चासीदृचीकस्तु दीप्ताग्निसमप्रभः ॥
जमदग्निर्ऋचीकस्य सत्यवत्यां व्यजायत ।
भृगोश्च रुचिपर्याये रौद्रवैष्णवयोस्तथा ॥
जमनाद्वैष्णावस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ।
रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमः ॥
ब्रह्मक्षत्रमयं रामं सुषुवेऽमिततेजसम् ॥
और्वस्यासीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् ।
वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्डः पथ्यः सशौनकः ।
गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवाः ॥ (वायुपुराणे)

अर्थ—च्यवन भार्गव ने सुकन्या से आप्नुवान् और 'दधीचि'--नाम के दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किये। दधीचि ने सरस्वती से सारस्वत (अपान्तरतमा=(शिशु आंगिरस) को उत्पन्न किया। आप्नुवान् की नाहुषी (नहुषपुत्री) 'रुचि' नाम की पत्नी थी। उसका पुत्र 'ऊर्व' हुआ, जो 'उरु' (जंघा) को फोड़कर उत्पन्न हुए। ऊर्व के पुत्र ऋचीक थे, जो दीप्ताग्नि के तुल्य तेजस्वी थे।

ऋचीक के सत्यवती से 'जमदग्नि' उत्पन्न हुए। वैष्णव अग्नि के संयमन के कारण उनका नाम 'जमदग्नि' नाम पड़ा। जमदग्नि से रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रमी और अमिततेजस्वी ब्रह्मक्षत्रमय राम (परशुराम) को उत्पन्न किया। ऋचीक और्व के जमदग्नि इत्यादि सौ पुत्र थे।

भार्गवों के सात पक्ष—भार्गवों के सात पक्ष ये हैं—वत्स, विश्व, अश्विषेण, पाण्ड, पथ्य, शौनक (और भार्गव)।

(वायुपुराण अ० ९)

कश्यपवंशः—

पुनरेव महाभागः प्रजानां पतिरीश्वरः ।
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परमं तपः ॥
पुत्रौ गोत्रकरौ मह्यं भवेतामित्यचिन्तयत् ॥
तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्रह्मणोऽशौ सुतौ पश्चात् प्रादुर्भूतौ महौजसौ ।
वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
वत्साराग्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः ॥
रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत ।
च्यवनस्य सुकन्यायां सुमेधः समपद्यत ॥
निध्रुवस्य तु सा पत्नी भार्या वै कुण्डपायिनाम् ॥
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत ।
शाण्डिल्यानां वच श्रुत्वा देवलः सुमहायशाः ।
निध्रुवाः शाण्डिल्या रैभ्यास्त्रयः पश्चातु काश्यपाः ॥
.. .. देवलस्य प्रजास्त्विमाः ।
मानसस्य चरिष्यतस्तस्य पुत्रो दमः किल ।
मानसस्तस्य दायादस्तृणविन्दुरिति श्रुतः ।
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह ।
तस्य कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रतिमाभवत् ॥
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥
ऋषिरिडविडायान्तु विश्रवा समपद्यत ।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः ॥
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तिर्देवाचार्षस्य कीर्तिताः ।

अर्थ—महाभाग्यशाली प्रजापति कश्यप ने गोत्रप्रवर्तन के लिए पुनः महान् तप किया— उन्होंने संकल्प किया कि 'मेरे दो गोत्रप्रवर्तक पुत्र उत्पन्न हों' ऐसे सोचकर महर्षि कश्यप ने ध्यान किया। तब उनके उत्तरकाल में ब्रह्मांश से दो महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए—वत्सार और असित, जो दोनों ही वेद पारंगत थे।

वत्सार से निध्रुव उत्पन्न हुआ तथा दूसरा पुत्र रैभ्य (रेभ) था। 'रेभ' के वंशज 'रैभ्य' कहलाये। अब 'निध्रुव' के विषय में जानिये। च्यवन ने सुकन्या से सुमेधा (कन्या) को उत्पन्न किया, जो निध्रुव की पत्नी हुई और जो 'कुण्डपायी' ब्राह्मणों का भरण-पोषण करती थी।

असित ने एकपर्ण द्वारा ब्रह्मिष्ठ देवल ऋषि को उत्पन्न किया। देवल ने शाण्डिल्यों का वचन सुना।

निध्रुव, शाण्डिल्य और रैभ्य—ये तीन तथा पश्चात् (अन्तिम गोत्र) चतुर्थ 'काश्यप' पक्ष है।

नारदपर्वतौ—अरुन्धतीचः—

काश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा।

अर्थ—कश्यप से ही नारद, पर्वत और अरुन्धती (वसिष्ठ पत्नी) उत्पन्न हुई।

कौशिकब्राह्मणवंशः—

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकवंशवर्द्धनः।
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेफोऽभवन्मुनिः।
हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुतः स वै।
दैवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत्॥ (वायुपुराणे)

अर्थ—धर्मात्मा 'विश्वामित्र' (पहिले) 'विश्वरथ' के नाम से प्रसिद्ध थे। वह भृगु (भार्गव) ऋषि की कृपा से कौशिक वंश को बढ़ाने वाले हुए।

विश्वामित्र का (ज्येष्ठ कृत्रिम) पुत्रः शुनःशेफ मुनि था, जो हरिश्चन्द्र के यज्ञ में वलि का पशु बनाया गया। देवों द्वारा वह विश्वामित्र को 'दत्त' (या रक्षित) था अतः उसका नाम 'देवरात' प्रख्यात हुआ।

महाभारते—

मधुच्छन्दश्च भगवान् देवरातश्च वीर्यवान्।
अक्षीणश्च शकुन्तश्च बभ्रुः कालपथस्तथा॥
याज्ञवल्क्यश्च विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः।
उलूको यमदूतश्च तथर्षिः सैन्धवायनः॥
वल्गुजङ्घश्च भगवान् गालवश्च महानृषिः।
ऋषिर्वज्रस्तथा ख्यातः सालंकायन एव च॥
लीलाढ्यो नारदश्चैव तथा कूर्चामुखः स्मृतः।
वादुलिर्मुसलश्चैव वक्षोग्रीवस्तथैव च।
अंघ्रिको नैकदृक् चैव शिलायूपः शितः शुचिः।
चक्रको मारुतन्तव्यो वातघ्नोऽथाश्वलायनः।
श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा।
कारीषिरथ संश्रुत्यपरपौरवतन्तवः।

महानृषिश्च कपिलस्तथर्षिस्ताडकायनः ।
तथैव चोपगहनस्तथर्षिश्चासुरायणः ॥
मार्दमर्षिर्हिरण्याक्षो जङ्गारिर्बाभ्रवायणिः ।
भूतिर्विभूतिः सूतश्च सुरकृत् तु तथैव च ।
अरालिर्नाचिकश्चैव चाम्पेयोज्जपनस्तथा ॥
नवतन्तुर्बकनखः सेयनो यतिरेव च ॥
अम्भोरुहश्चारुमत्स्यः शिरीषी चाथ गार्दभिः ।
ऊर्जयोनिरुदापेक्षी नारदी च महानृषिः ॥
विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥

(महाभारते, अनुशासनपर्वणि अ० ४)

अर्थ—महाभारत में विश्वामित्र के एक सौ एक (अनेक) पुत्रों के नाम— मधुच्छन्दा, देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्रु, कालपथ, याज्ञवल्क्य, स्थूण, उलूक, यमदूत, सैन्धवायन, वल्गुजङ्घ, गालव, वज्र, सालंकायन, लीलाढ्य, नारद, कूर्चामुख, वादुलि, मुसल, वक्षोग्रीव, अंघ्रिक, नैकदृक्, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जाबालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर, पौरव, तन्तु, कपिल, ताडकायन, उपगहन, आसुरायण, मार्दम, हिरण्याक्ष, जङ्गारि, बाभ्रवायणिः, भूति, विभूति, सूत, सुरकृत्, अरालि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जपन, नवतन्तु, बकनख, सेयन, यति, अम्भोरुह, चारुमत्स्य, शिरीषी, गार्दभि, ऊर्जयोनि, उदापेक्षी, नारदी—ये सभी विश्वामित्र के पुत्र (या वंशज) ब्रह्मवादी मुनि थे ।

गोत्राणि पक्षाश्च—

कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै ।
तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ।
उदुम्बरा उदुम्बनास्तारका ·····।
लोहित्यो रेणवश्चैव तथा कारीषवः स्मृताः ।
बभ्रवः पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥
शालावत्याः हिरण्याक्षाः स्यङ्कृता गालवाः स्मृताः ।
देवला यामदूताश्च शालङ्कायनवाष्कलाः ।

× × ×

दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥ (वायुपुराणे)

अर्थ—कच्छप और पूरण इत्यादि विश्वामित्र के पुत्र थे । उन कौशिकों के अनेक गोत्र थे— उदुम्बरा, उदुम्बना, तारका, लोहित्या, रेणु, करीषा, बभ्रु,

पाणिनि, व्यानजप्य, शालवत्या, हिरण्याक्षा सांकृत्या, गालव, देवन, यामदूत, शालकायन और बाष्कल।

विश्वामित्र से दृषद्वती—(माधवी)--पुत्र अष्टक था, (जो राजा बना)।

गृत्समदवंशः—

वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवदित्वमेव च।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः।
शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत्।
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः॥

× × ×

पुत्रो गृत्समदस्यापि सुचेता अभवद् किल।
वर्चाः सुचेतसः पुत्रो विहव्यस्तस्य चात्मजः।
विहव्यस्य तु पुत्रस्तु वितत्यस्तस्य चात्मजः।
वितत्यस्य सुतः सत्यः संतः सत्यस्य चात्मजः॥
श्रवास्तस्य सुतश्चर्षिः श्रवसश्चाभवत् तमः।
तमसश्च प्रकाशोऽभूत् तनयो द्विजसत्तमः॥
प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतां वरः।
तस्यात्मजश्च प्रमतिर्वेदवेदाङ्गपारगः॥
घृताच्यां तस्य पुत्रस्तु रुरुर्नामोदपद्यत।
प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत॥
शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः।

(महाभारत अनुशा० ३०)

अर्थ—(भार्गव-शौनक) राजर्षि वीतहव्य का पुत्र गृत्समद था, जो इन्द्र के समान ही रूपवाला था। उसको शक्र (इन्द्र) समझकर दैत्यों ने पकड़ लिया था। उसकी ऋग्वेद (द्वितीय मण्डल) में श्रुतियां (मन्त्र) हैं।……

गृत्समद का पुत्र सुचेता हुआ, सुचेता का पुत्र वर्चा, उसका पुत्र विहव्य, उसका पुत्र वितव्य, उसका पुत्र सत्य, उसका पुत्र सन्त, उसका पुत्र श्रवा ऋषि, श्रवा का पुत्र तम, उसका पुत्र प्रकाश, उसका पुत्र वागिन्द्र, उसका पुत्र प्रमति, जो वेदवेदांगों में पारंगत था तथा उसने घृताची (अप्सरा) से रुरु को उत्पन्न किया। जिसका पुत्र हुआ शुनक और उसका पुत्र शौनक (वंश) हुआ।

————

तृतीयोऽध्याय

पांचजन्यवंशाः

देववंशाः—

यक्षगन्धर्वकिन्नरनागगुह्यकअसुरदैत्यराक्षसवंशाः
अर्थ—(असुर यक्षराक्षस किन्नर नाग सुपर्णादि के वंश)
(हरिवंशपुराण अ० ३)

दैत्यवंशः—

दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥
सिंहिका चावभवत् कन्या विप्रचित्ते परिग्रहः ।
सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः ।
गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥

× × ×

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ।
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूत् ह्लादपुत्रो ह्रदस्तथा ।
संह्लादपुत्रौ सुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौ स्मृतौ ।
अनुह्लादसुतौ ह्यायुः शिबिकालस्तथैव च ।
विरोचनश्च प्रह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥
बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठ नराधिप ।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः ।
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः ॥
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठ पशुपतेः प्रियः ।

× × ×

हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः महाबलाः ।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा ॥
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥

अर्थ—(पूर्वदेव=असुर) कश्यप द्वारा दिति से दो पुत्र उत्पन्न हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष—यह इतिहास में अति प्रसिद्ध हैं।

सिंहिका कन्या हुई जो विप्रचित्ति को ब्याही। उसके पुत्र (और वंशज) 'सैंहिकेय' कहलाये, जो प्रसिद्ध तथा बलशाली थे। गणों के उन सैंहिकेयों की संख्या दश हजार थी।

हिरण्यकशिपु के पुत्र और वंशज—हिरण्यकशिपु के परमतेजस्वी चार पुत्र हुए—प्रह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और संह्लाद।

ह्लाद का पुत्र था ह्रद, संह्लाद के पुत्र थे—सुन्द और निसुन्द, अनुह्लाद के पुत्र थे—आयु और शिबिकाल।

'प्रह्लाद' का पुत्र था विरोचन, विरोचन का पुत्र हुआ बलि। बलि से सौ पुत्र हुए—जिनमें 'बाण' ज्येष्ठ था।

(बलि के अन्य पुत्र थे)—धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि इत्यादि।

इन सबमें 'बाणासुर' ज्येष्ठ और अति बलवान् था, जो पशुपति शिव को अति प्रिय था।

हिरण्याक्ष के पांच पुत्र—हिरण्याक्ष के पांच महाबलि और महाविद्वान् पुत्र थे—झर्झर, शकुनि, भूतसंतापन, महानाभ और महाविक्रमी 'कालनाभ' (=कालनेमि)।

देववंशः (आदित्याः)—

मारीचात् कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया।
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत।
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः॥

(देव वंश या आदित्य वंश) द्वादश आदित्य—

अर्थ—मरीचिपुत्र (या वंशज) कश्यप से दक्षपुत्री अदिति द्वारा बारह पुत्र उत्पन्न हुए, जो 'अदिति' के पुत्र होने से 'आदित्य' कहलाये। वे थे—विष्णु, शक्र (इन्द्र), अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण अंश और अति तेजस्वी भग।

वरुणस्य (ब्रह्मणः) सन्ततिः—(सप्तर्षयः)—

स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता सप्तार्थं ते भवेन तु।
जज्ञिरे वै पुनस्ते ह जनलोकाद्दिवं गताः॥

देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ।
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति नः श्रुतम् ।
भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मणः सुताः ।

× × ×

वारुणाः भृगवस्तस्मात्तदपत्यं च स प्रभुः ।

X X X

तस्मादङ्गिराश्चापि आग्नेया इति नः श्रुतम् ।

X X X

मरीचिः प्रथमस्तत्र मरीचिभ्यः समुत्थितः ।
क्रतौ तस्मिन् सुतो जज्ञे यस्तस्मात्स वै क्रतुः ।
अहं तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रिः स कीर्त्यते ।
केशैश्च निशितैर्भूतः पुलस्त्यस्तेन स स्मृतः ।
केशैर्लम्बैः समुद्भूतः तस्माद् तु पुलहः स्मृतः ।
वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसुमान् वसुधाश्रयः ।
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ।।

अर्थ—स्वायम्भुव मन्वन्तर (या प्राग्देव युग) में रुद्र (शिव) ने जिन सप्तर्षियों को शाप दिया था, वे जनलोक से दिव्यलोक (स्वर्ग) में जाकर पुनः इस पृथिवीलोक में उत्पन्न हुए ।

ज्येष्ठ आदित्य या आदिदेव (या ब्रह्मा) के महान् यज्ञ में वारुणी शरीर (वरुण से उत्पन्न) से सप्तर्षियों ने द्वितीय बार जन्म लिया, ऐसा प्रसिद्ध इतिहास है । भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलस्त्य (अगस्त्यरूप में) पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ—ये ब्रह्मा (वरुण) के आठ[1] पुत्र थे ।

भार्गव ऋषिगण या ब्राह्मण प्रमुख रूप से वरुण के वंशज हैं और वरुण ही उनका आदिपूर्वज है ।

(वरुण यज्ञ में) अंगारों से अंगिरा उत्पन्न हुए । (अंगिरा को ही अग्नि भी कहते हैं) अतः उनके वंशज आग्नेय' नाम से प्रसिद्ध हैं । (आदिम सप्तर्षियों में) – मरीचि प्रथम थे, जो मरीचि (अग्निकिरणों) से उत्पन्न हुए । क्रतु (यज्ञ)

---

(१) वास्तव में—भृगु, अंगिरा, अगस्त्य, अत्रि और वसिष्ठ–ये पांच ही ऋषि द्वितीय जन्म में वरुण के पुत्र थे । अगस्त्य को छोड़ दिया जाये तो चार ऋषि, जिनका गीता (१०।६) में 'चत्वार' नाम से उल्लेख है, जिनकी प्रजा वर्तमान मानव जाति है ।

में जो पुत्र उत्पन्न हुआ, अतः उसका नाम 'क्रतु' हुआ। 'मैं तृतीय हूं' इससे तृतीय ऋषि 'अत्रि' नाम के हुए। केशों (बालों) द्वारा बंधा हुआ, उत्पन्न हुआ, अतः चतुर्थ ऋषि 'पुलस्त्य' कहलाया। लम्बे केशों के साथ उत्पन्न होने के कारण पंचम ऋषि 'पुलह' कहलाये। वसुओं के मध्य उत्पन्न होने तथा वसुमान् (धनवान्) तथा पृथिवी पर आश्रय लेने के कारण छठे ऋषि 'वसिष्ठ' कहलाये।

भृगुवंशः (वैवस्वतेऽन्तरे)—

भार्ये भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे।
हिरण्यकशिपोः कन्या दिव्या नाम परिश्रुता।
पुलोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वरवर्णिनी॥
भृगोस्त्वजनयद्दिव्या काव्यं वेदविदां वरम्।
देवासुराणामाचार्यं शुक्रङ्कविसुतं गुहम्॥
स शुक्रश्चोशना ख्यातः स्मृतः काव्योऽपि नामतः।

× × ×

शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजज्ञे चतुरः सुतान्।
त्वष्टा वरुत्री द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तावुभौ।
रंजनः पृथुरश्मिश्च विद्वान् यश्च बृहद्गिराः।
वरुत्रिणः सुता ह्येते ब्रह्मिष्ठा सुरयाजकाः॥

× × ×

यजन्यां देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत्।
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टुः पुत्रोऽभवन्महान्।
विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यश्च स्मृतः।
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजाः॥
देव्या तान्सुषुवे सर्वान्काव्यांश्चौत्मजान्प्रभुः।
भुवनो भावनश्चैव अन्यश्चान्यायतस्तथा।
क्रतुश्रवाश्च मूर्द्धा च व्यजनो व्यश्रुषश्च यः।
प्रसवश्चाप्ययजश्चैव द्वादशोऽधिपतिः स्मृतः॥
पौलोम्यजनयत्पुत्रं ब्रह्मिष्ठं वशिनं प्रभुम्।
च्यवनं ....————॥
जनयामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायां च भार्गवः।
आप्नुवानसं दधीचञ्च तावुभौ साधुसम्मतौ।
सारस्वतः सरस्वत्यां दधीचाच्चोत्पद्यते॥

(वायुपुराण अध्याय ४७)

अर्थ—भृगुसन्तति (शुक्राचार्य)—भृगु की दो अनुपम भार्यायें थीं। जिनका श्रेष्ठ कुल था। हिरण्यकशिपु की कन्या थी—'दिव्या'। दानव पुलोमा की पुत्री थी पौलोमी (या पुलोमा) जो उसकी श्रेष्ठ पुत्री थी। भृगु से 'दिव्या' ने उशना काव्य (शुक्राचार्य) को उत्पन्न किया जो वेदों के महान् ज्ञाता और ऋषि थे। वे देवासुरों (पूर्वदेव दैत्यों) के गुरु (पुरोहित) थे, जो शुक्र, कविसुत (काव्य) कहे जाते हैं (और उन्हीं के नाम से) शुक्रग्रह प्रसिद्ध है। उन्हीं के उशना, काव्य और शुक्र नाम प्रसिद्ध हैं।

शुक्र की सन्तति—शुक्राचार्य की भार्या आंगी ने चार पुत्रों को उत्पन्न किया—त्वष्टा, वरुत्री, शण्ड और मर्क ! (ये दोनों जोड़े प्रसिद्ध हैं—त्वष्टावरुत्री और शण्डामर्कौं।)

वरुत्री पुत्रत्रयी—वरुत्री के तीन पुत्र हुए—रंजन, पृथुरश्मि और बृहद्गिरा ये तीनों महान् वेदवेत्ता (ऋषि), विद्वान् और असुरों के याजक (पुरोहित) थे।

शुक्रदुहिता देवयानी—यजनी (जयन्ती-शक्र-इन्द्रपुत्री) से शुक्र ने 'देवयानी' को उत्पन्न किया।

त्वष्टा सन्तति—शुक्रपुत्र त्वष्टा का ज्येष्ठपुत्र 'विश्वरूप' था, जिसका अन्य नाम 'त्रिशिरा' भी था। विश्वरूप त्रिशिरा का छोटा भाई 'विश्वकर्मा' (मयासुर) था।

भृगु के द्वादश पुत्र—भृगु के अन्य द्वादश पुत्र उत्पन्न हुए जो भृगु या भार्गवदेव कहलाये। इनको तथा द्वादश पुत्रों को भृगु ने 'दिव्या' से उत्पन्न किया। भुवन, भावन, अन्य, अन्यायत, क्रतुश्रवा, मूर्द्धा, व्यजन, व्यश्रुष, प्रसव, अज और अधिपति।

भृगुपत्नी पौलोमी की सन्तति—भृगु की दूसरी पत्नी पौलोमी ने ब्रह्मिष्ठ और संयमी ऋषि च्यवन को उत्पन्न किया। ...

'च्यवन' ने सुकन्या में 'आप्नवान्' और दधीचि को उत्पन्न किया। दधीचि ने सरस्वती में 'सारस्वत' (अपान्तरतमा शिशु आंगिरस ऋषि) को उत्पन्न किया।

दानववंशः—

अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः।
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान् ॥
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शंकुशिरा विभुः।
शंकुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥
मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शंकुशिरा वृकः।

विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ ।
इन्द्रजित् सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ ॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः ।
सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च उर्णनाभो महागिरिः ॥
असिलोमा च केशी च शठश्च बलको मदः ।
तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महासुरः ॥
प्रमदो मयः कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।
वैसृपः सविरूपाक्षसुपथौऽथ हराहरौ ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायश्च शम्बरः ।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥
एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ।

X X X

स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम् ।
उपदानवी ह्यशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥
पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।

X X X

पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ।
अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः ॥

कश्यपपत्नी दनु के सौ पुत्र—दनु के सौ पुत्र (या अनेक वंशज) भयानक रूप से पराक्रमी थे । उनमें से अनेक तपस्वी (ऋषि) भी हुए। उन महाबलशालियों में कुछ प्रधान थे—द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिरा, शंकुकर्ण, विराध, गवेष्ठि, दुन्दुभि, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मरीचि, मघवान्, इरा, शंकुशिरा, वृक, विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सत्यजित्, वज्रनाभ, महानाभ, कालनाभ, एकचक्र, महाबाहु; तारक, वैश्वानर, पुलोमा (वैश्वानर और पुलोमा महासुर और महापराक्रमी थे) ।

स्वर्भानु, वृषपर्वा, तुहुण्ड, सूक्ष्म, अतिथि, उर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा, केशी, शठ, बलक, मद, गगनमूर्धाः, कुम्भनाभ, प्रमद, मय, कुपथ, हयग्रीव, वैसृप, सरूपाक्ष, सुपथ, हर, अहर, हिरण्यकशिपु और सौभाग्यवाला शम्बर, शरभ,

शलभ और 'विप्रचित्ति'—ये सभी दनुपुत्र कश्यप द्वारा उत्पन्न हुए। इनमें विप्रचित्ति ज्येष्ठ एवं प्रधान था।

(विप्रचित्ति के पुत्र सैंहिकेय) स्वर्भानु (राहु) की कन्या प्रभा थी। पुलोमा दानव की तीन पुत्रियां थीं—उपदानवी, हयशिरा (और एक अन्य)। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी।

पौलोमा और कालकेय दानवगण—वैश्वानर दानव की दो अति प्रसिद्ध पुत्रियां थीं—पुलोमा और कालिका। इनके पुत्र (और वंशज भी) 'पौलोम' और 'कालकेय' 'दानवगण' कहलाये, जो 'हिरण्यपुर' नाम के प्रसिद्ध दानवनगर में रहते थे। वे (प्रायः) देवों के लिए भी अबध्य थे—(अपराजेय थे)।

सैंहिकेयाः—

व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः।
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृतस्तथा।
अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव॥
शुक्रः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्चैव वीर्यवान्॥
राहुर्ज्येठस्तु तेषां वै सूर्यचन्द्रविमर्दनः।
मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्लादपुत्रौ बभूवतुः॥

(हरिवंश अध्याय ३)

दानवगण—(विप्रचित्तिपत्नी सिंहिका के पुत्र)—व्यंस, शल्य, नभ, वातापि, 'नमुचि', 'इल्वल', खसृम, अञ्जिक, नरक, कालनाभ, शुक्र, पातेरण, वज्रनाभ और राहु (स्वर्भानु)—जो इनमें सबसे बड़ा था और जिसने सोम सूर्य का मर्दन किया।

ह्लादपुत्र—मूक और तुहुण्ड-असुर ह्लाद के पुत्र थे।

दानववंशः—

चतुस्त्रिशत् दनोः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत।
तेषां प्रथमजो राजा विप्रचित्तिर्महाबलः।
शम्बरो नमुचिश्चैव पुलोमा चेति विश्रुतः।
असिलोमा च केशी च दुर्जयश्चैव दानवः।
अयःशिरा अश्वशिरा अश्वशंकुश्च वीर्यवान्।
तथा गगनमूर्धा च वेगवान् केतुमांश्च यः।
स्वर्भानुरश्वोऽश्वपतिर्वृषपर्वाजकस्तथा।
अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुहुण्डश्च महाबलः।
इषुपादेकचक्रश्च विरूपाक्षो हराहरौ।

निचन्द्रश्च निकुम्भश्च कुपटः कपटस्तथा ।
शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥ (१।६५।२१-२५)

X X X

दनुपुत्रा महाराज दश दानववंशजाः ।
एकाक्षो मृतपा वीरः प्रलम्बनरकावपि ।
वातापी शत्रुतपनः शठश्चैव महासुरः ।
गविष्ठश्च वनायुश्च दीर्घजिह्वश्च दानवः ॥ (१।६५।२८-३०)
दनायुषः पुनः पुत्राश्चत्वारोऽसुरपुङ्गवाः ।
विक्षरौ बलवीरौ च वृत्रश्चैव महासुरः ॥ (महाभारते १।६५।२६)

अर्थ—(महाभारत में) दनु के जगत् विख्यात चौबीस पुत्र थे—इनमें प्रथम विप्रचित्ति महाबली दानवों का राजा था। अन्य थे—शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, इषुपाद, एकचक्र, विरूपाक्ष, हर, अहर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ तथा सूर्य और चन्द्रमा।

दश प्रसिद्ध दानव वंश—इन दश दानवों के वंश प्रसिद्ध हुए—एकाक्ष, मृतपा, वीर, प्रलम्ब, नरक, वातापि, शत्रुतपन, शठ, गविष्ठ, वनायु और 'दीर्घजिह्व'।

चार दनायु पुत्र—(कश्यप की तृतीय पत्नी) दनायु के चार महान् असुर पुत्र थे विक्षर, 'बल', वीर और 'वृत्रासुर'।

सुपर्णवंशः—

विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणौ गरुडस्तथा ।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ।
(हरिवंशे ३।१०६)

वैनतयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् ।
सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥
सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले ।

× × ×

कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतविवर्धनैः ।
नामानि चैषां वक्ष्यामि तथा प्राधान्यतः श्रृणु ॥
सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः ।
अनिलश्चानलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥

पंकजिद् वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः ।
वातवेगो दिशाचक्षुर्निमिषोऽनिमिषस्तथा ।
त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकि द्वीपकस्तथा ।
दैत्यद्वीपः सरिद्वीपः सारसः पद्मकेतनः ॥
सुमुखश्चित्रकेतुश्च चित्रबर्हस्तथानघः ।
मेषहृत् कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सहभोजनः ।
गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः ।
विष्णुधर्मा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ।
सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च ॥
मालयो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥
एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः ॥

(महाभारते, उद्योग० १६ अध्याय)

तस्माज्जातोऽहमरुणात् सम्पातिश्च ममाग्रजः ।
जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिन्दम ॥ (रामायणे ३।१४।३३)

अर्थ—वैनतेय सुपर्ण = अरुण और गरुड—(कश्यपपत्नी) विनता के दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड । इनमें सुपर्ण (गरुड) अति भयंकर और महाबली श्रेष्ठ पक्षी (पंखयुक्त) मानव था, जिसने अपने कर्मों से बड़ी ख्याति पाई ।

छः विनतापुत्र सुपर्ण—विनता के छः पुत्रों से विनता कुल विस्तृत हुआ—ये थे—सुमुख, सुनामा, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुच और महान् पक्षिराज सुबल ।

गरुड वंशज – प्रधान प्रधान सुपर्ण मानव – प्राणियों (मनुष्यों) की संख्या बढ़ानेवाले काश्यप गरुड के वंश में जो प्रधान प्रधान सुपर्ण हुए, उनके नाम सुनिये—सुवर्णचूड, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डवी, पंकजित्, वज्रविष्कम्भ, वामन, वैनतेय, वातवेग, दिशाचक्षु, निमिष, अनिमिष, त्रिराव, सप्तराव, वाल्मीकि, द्वीपक, दैत्यद्वीप, सरिद्वीप, सारस, पद्मकेतन, सुमुख, चित्रकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेषहृत्, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सहभोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्म, कुमार, परिबर्ह, हरि, सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मालय, मातरिश्वा, निशाकर और दिवाकर—ये गरुड़ के कुछ वंशज संक्षेप में कहे गये हैं ।

जटायु और सम्पाति—मेरा जन्म अरुण के वंश में हुआ है; सम्पाति मेरा बड़ा भाई है और मेरा नाम जटायु है, मैं श्येनीपुत्र हूं ।

नागवंशः—

सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ।

अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम् ॥

× × ×

तेषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ।
ऐरावतो महापद्म कम्बलाश्वतरावुभौ ॥
एलापत्रस्तथा शङ्खः कर्कोटकधनंजयौ ॥
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ॥
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ।
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ॥
नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥

(हरिवंशे ३।११२-११५)

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ ।
कालियो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥
बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः ।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥
आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ ।
कैलाशकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥
सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ ।
प्राप्तः कोटरश्चैव शिखी बिष्ठूरिकस्तथा ॥
तित्तिरिहस्तभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः ।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ।
करवीरः पीठरकः संवृतो वृत्त एव च ।
पिण्डारो बिल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः ।
दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथापराजितः ॥
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ॥
विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः ।
बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः ।
एते चान्ये च बहवः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ॥

(महाभारते उद्योग १०३ अध्याय)

(तथा नागनामानि महाभारते १।२५)

अर्थ—(कद्रू पुत्रनागगण) सुरसा (कद्रू ?) के सहस्र पुत्र बड़े तेजस्वी, अनेक शिर वाले और आकाशगामी थे।......

उनमें प्रधान थे—वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बर, अश्वतर,

एलापत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शंख, शंखपाल, कपिल, वामन, नहुष, शंखरोमा और मणिनाग इत्यादि।

प्रमुख काद्रवेय नागगण—वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, कालिय, नहुष, कम्बल, अश्वतर, बाह्यकुण्ड, मणिनाग, अपूरण, खग, वामन, ऐलपत्र, कुकुर, कुकुण, आर्यक, नन्दक, कलश, पोतक, कैलाशक, पिञ्जरक, ऐरावत, सुमनोमुख, दधिमुख, शंख, नन्द, उपनन्दक, आप्त, कोटर, शिखी, बिठूरिक, तित्तिर, हस्तभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, पद्मनाभ के दो नाग, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गर, पर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिकाद, शिरीषक, दिलीप, शंखशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, कृशक, विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, बधिर, अन्ध, विशुण्डि, विरस इत्यादि बहुत से काश्यपेय-काद्रवेय नाग थे।

एकादशरुद्राः—

सुरभी कश्यपाद् रुद्रानेकादश विनिर्ममे।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च भारत॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशाम्पते।

(हरिवंशपुराण ३)

अर्थ—महादेव की कृपा से सती सुरभी कश्यपपत्नी ने एकादश रुद्रों को जन्म दिया। उनके नाम थे—अजैकपात्, अहिर्बुन्ध्य, त्वष्टा, रुद्र, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली।

राक्षसवंशः (प्राक्पौलस्त्यवंशः)—

(रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग ७)

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ।
मधुकैटभसंकाशौ बभूवतुररिंदमौ॥
प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनं गतस्तदा।
हेतिर्दारक्रियार्थं परं यत्नमथाकरोत्।
स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम महाभयाम्।
उदावहदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः।
तस्यां च जनयामास हेती राक्षसपुङ्गवः।

पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केशमिति श्रुतम् ॥
विद्युत्केशो हेतिपुत्र स दीप्तार्कसमप्रभः ।
संध्यादुहितरं सोऽथ संध्यातुल्या प्रभावतः ॥

× × ×

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटंकटा ।
विद्युत्केशाद् गर्भमाप धनराजिरिवार्णवात् ॥

× × ×

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः……………।

× × ×

ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव ।
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ॥

× × ×

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव ।
नर्मदा नाम गन्धर्वी बभूव रघुनन्दन ।
तस्या कन्यात्रयं ह्यासीद्ह्रीश्रीकीर्तिसमद्युति ।
ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानाराक्षसी ।
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टा पूर्णचन्द्रनिभाः ।

× × ×

ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम नामतः ।
स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत् ।
वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ।

अर्थ—हेति और प्रहेति नाम के दो भाई राक्षसों के अधिपति थे—जो मधु और कैटभ असुरों के समान थे । उनमें प्रहेति धर्मातमा था, अतः तपस्या हेतु वन में चला गया । हेति ने विवाह के लिए प्रयत्न किया, उसने काल (गन्धर्व) की भगिनी भया, जो भयंकर रूपवाली थी, से विवाह किया । राक्षसराज हेति ने उससे 'विद्युत्केश' नाम का पुत्र उत्पन्न किया । विद्युत्केश प्रदीप्तसूर्य के समान तेजस्वी था । उसने संध्यातुल्य प्रभाववाली संध्या की पुत्री सालकटंकटा' से विवाह किया । उसने विद्युत्केश से गर्भ धारण किया और 'सुकेश' नाम का पुत्र उत्पन्न किया ।……

सुकेश वरदानों से गर्वित था ।……

सुकेशपुत्रत्रयी—यथासमय सुकेश के तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए—माल्यवान्, सुमाली और माली । इसी समय किसी गन्धर्व की नर्मदा नाम की

गन्धर्वी पत्नी थी। उसकी तीन कन्यायें थीं, जो क्रमशः ह्री, श्री और कीर्ति (देवपत्नियों) के समान शोभावाली थीं। वे अराक्षसी (गन्धर्वी) तीनों राक्षसराजों को ब्याही गईं—इनमें माल्यवान् की पत्नी 'सुन्दरी' नामवाली थी।

माल्यवान् की सन्तान—माल्यवान् ने 'सुन्दरी' नाम की पत्नी से जिन सन्तानों को उत्पन्न किया, वे थे—वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख।

सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च।
अनला चाभवत् कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी ॥
सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः।
केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥
प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालिकामुखः।
धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः।
संह्रादि प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः।
राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिताः ॥
कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः।

X X X

अनिलश्चानलश्चैव हरः सम्पातिरेव च।
एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ॥

वाल्मीकि रामायणे ७।४-५ सर्ग)

अर्थ—सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त, उन्मत्त और एक कन्या अनला माल्यवान् ने सुन्दरी से उत्पन्न की।

सुमाली सन्तति—सुमाली ने 'केतुमती' पत्नी से जो सन्तान उत्पन्न की, उसके नाम हैं—प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस और भासकर्ण राक्षस।

कन्यायें थीं—राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी—ये सुमाली की पुत्रियां थीं।

माली के चार पुत्र—अनिल, अनल, हर और सम्पाति—ये चारों राक्षस, विभीषण के मन्त्री थे।

पौलस्त्यवंशः—

स्वयम्भूः सर्वलोकानां प्रभुः स्रष्टा महातपाः।
पुलस्त्यो नाम तस्यासीन्मानसो दयितः सुतः ॥

X X X

स जज्ञे विश्रवा नाम तस्यात्मार्धेन वै द्विजः।

तस्य वैश्रवणो नाम गवि पुत्रोऽभवत् प्रभुः।
यक्षाणामाधिपत्यं च राजराजत्वमेव च ॥
स राजराजो लङ्कायां न्यवसन्नरवाहनः।
राक्षसीः प्रददौ तिस्रः पितुर्वै परिचारिकाः ॥
पुष्पोत्कटा च राका च मालिनी च विशाम्पते ॥
पुष्पोत्कटायां जज्ञाते द्वौ पुत्रौ राक्षसेश्वरौ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेनाप्रतिमौ भुवि ॥
मालिनी जनयामास पुत्रमेकं विभीषणम्।
राकायां मिथुनं जज्ञे खरः शूर्पणखा तथा।

(महाभारत अध्याय ३।२७४, २०५)

अर्थ—समस्त मानव जातियों के आदिजनक प्रभु, महातपा स्वयम्भू (या स्वायम्भुव मनु) थे। उनके प्रिय मानस पुत्र पुलस्त्य थे।

(पुलस्त्य के वंश में किसी) पौलस्त्य ऋषि के पुत्र विश्रवा हुए। उनका पुत्र किसी 'गौ' नाम वाली पत्नी से हुआ, उसका नाम 'वैश्रवण कुबेर' था। वह यक्षों का राजाओं का भी राजा यक्षाधिपति था। वह 'राजराज' या 'यक्षराज' 'नरवाहन' लंका में शासन करता था। कुबेर ने अपने पिता की सेवा में तीन परिचारिकायें दीं—पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी,।

पुष्पोत्कटा के दो पुत्र उत्पन्न हुए—दशग्रीव (रावण) और कुम्भकर्ण—जो प्रसिद्ध राक्षसराज और बल में अप्रतिम थे। मालिनी के एकमात्र पुत्र विभीषण उत्पन्न हुआ और राका के खर (राक्षस) और शूर्पणखा उत्पन्न हुई।

यक्षवंशः (वैश्रवणः)—

ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी।
दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रुतेन च।
राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ॥

X X X

पिता दृष्ट्वाब्रवीत् तत्र कुबेरोऽयमिति स्वयम्।
कुत्सायां क्विति शब्दोऽयं शरीरं बेरमुच्यते ॥
कुबेरः कुशरीरत्वान्नाम्ना तेन च सोऽङ्कितः।
यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव।
तस्माद्वैश्रवणो नाम नाम्ना लोके भविष्यति ॥
ऋद्धायां कुबेरोऽयजद्विश्रुतं नलकूबरम् ॥

अर्थ—वैश्रवणकुबेर (नरवाहन) यक्षराज—विश्रवा के ज्येष्ठ पुत्र वैश्रवण

कुबेर को उनकी पत्नी देववर्णिनी ने उत्पन्न किया। वह वैश्रवण कुबेर दिव्य आर्ष श्रौतविधि से संस्कृत हुआ। वह रूप में राक्षस और बल में आसुरी बल से सम्पन्न था।

उसे उत्पन्न होते ही पिता (विश्रवा) ने कहा—यह 'कुबेर' है–'कु' शब्द निन्दार्थक है तथा 'बेर' कहते हैं 'शरीर' को। अतः कुत्सित शरीर के कारण वह 'कुबेर' कहलाया। विश्रवा का पुत्र विश्रवा के सदृश ही था। अतः उसका नाम लोक में 'वैश्रवण कुबेर' विख्यात हुआ।

कुबेर ने 'ऋद्धि' नाम की पत्नी से अपने पुत्र नलकूबर (नल कौबेरक) को उत्पन्न किया।

राक्षसवंशः—

महोदरः प्रहस्तश्च महापाशः खरस्तथा।
पुष्पोत्कटायाः पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा।
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः॥
कन्या ह्यसलिका चैव वाकायाः प्रसवाः स्मृताः।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश।

अर्थ—(दश प्रसिद्ध राक्षस) महोदर, प्रहस्त, महापाश, खर—ये पुष्पोत्कटा के पुत्र थे तथा उसकी एक कन्या थी—कुम्भीनसी। वाका (या राका) के पुत्र थे—त्रिशिरा, दूषण और विद्युज्जिह्व राक्षस तथा कन्या थी–असलिका। पौलस्त्य वंश के ये दश क्रूरकर्मा राक्षस थे।

सप्त विद्या राक्षसाः—

पौलस्त्या नैर्ऋताश्चैव आगस्त्याः कौशिकास्तथा।
यातुधाना ब्रह्मधाना वार्ताश्चैव निशाचराः॥
इत्यैता सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः॥

X X X

अन्नादाः पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृताः। (वायुपुराणे)

अर्थ—राक्षसों की सात जातियां थीं—पौलस्त्य, नैर्ऋत, आगस्त्य, कौशिक, यातुधान, ब्रह्मधान, वार्त और निशाचर।

राक्षसों को ही 'अन्नाद' पिशिताद (पिशाच) और पुरुषाद कहा जाता है।

गन्धर्ववंशः—

भीष्मसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च सप्तमः।
सत्यवागर्कपर्णश्च प्रयुतश्चापि विश्रुतः।

भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद् वशी ।
तथा शालिशिरा राजन् पर्जन्यश्च चतुर्दशः ।
कलिः पंचदशस्तेषां नारदश्चैव षोडशः ।
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ॥

(महाभारत १।६५।४२-४४)

अर्थ—कश्यपपत्नी मुनि के सोलह देव गन्धर्व पुत्र थे—भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, सत्यवाक्, अर्कपर्ण, प्रयुत, भीम, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य, कलि और सोलहवें नारद ।

(हरिवंश १।अ० ४)

आद्या अधिपतयः—

अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः ।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ।
द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा ।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम् ।
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावाङ्गिरसं पतिम् ॥
भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ।
प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम् ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥
वैवस्वतं च पितृणाम् यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।

× × ×

नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥
विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत् ।

× × ×

गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् ।
नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥
वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत् ।
उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥

× × ×

दिशापालाः—

पूर्वस्यां दिशि पुत्रं वैराजस्य प्रजापतेः ।

दिशपालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत् ।
दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।
पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।
तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः ।
उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥

(हरिवंशे १।४)

अर्थ—आदिम जातियों के प्रथम अधिपति या प्रमुख अधिपति—प्रजापति ने पृथिवी के राज्य पर सर्वप्रथम पृथुवैन्य को अभिषिक्त किया। अन्य राज्यों के अधिपतियों का निर्देश क्रमशः इस प्रकार किया गया— ब्राह्मणों और वनस्पतियों, ग्रह और नक्षत्रों का अधिपति (पृथिवी पर) सोम (और आकाश में चन्द्रमा) बनाया गया। सोम यज्ञ और तप का भी अधिपति था। समुद्र (या समुद्रीय द्वीपों) का अधिपति वरुण हुआ। राजाओं (या यक्षों) का अधिपति वैश्रवण कुबेर को बनाया। सभी आंगिरसों के अधिपति बृहस्पति आंगिरस थे। भार्गवों के अधिपति उशना काव्य (शुक्राचार्य) हुए। आदित्यों (देवों) के अधिपति विष्णु बनाये गये और वसुओं का अधिपति 'अग्नि' हुआ। प्रजापति के अध्यक्ष दक्ष प्राचेतस बनाये गये। मरुतों के राजा हुए इन्द्र। दैत्यों और दानवों के इन्द्र (अधिपति) दैत्येन्द्र प्रह्लाद हुए। पितरों के राज्य पर वैवस्वतयम का अभिषेक हुआ।

साध्य देवगण के अधिपति नारायण हुए, रुद्रों के अधिपति महादेव हुए और दानवों के अधिपति (राजा) विप्रचित्ति थे।

गन्धर्वों का प्रमुख राजा चित्ररथ था। नागों का प्रथम राजा वासुकि और सर्पों का तक्षक था। हाथियों का राजा ऐरावत, अश्वों का उच्चैःश्रवा तथा सुपर्णों का प्रथम राजा गरुड़ था।

आदिम दिग्पालगण—(पृथु से पूर्व) पूर्व दिशा के दिग्पाल वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा हुए। दक्षिणी भूभाग के दिग्पाल कर्दम प्रजापति के पुत्र शंखपाद थे। पश्चिम दिशा में रज के पुत्र अच्युत केतुमान् का अभिषेक हुआ तथा उत्तर दिशा में, दुर्धर्ष राजा हिरण्यरोमा जो प्रजापति पर्जन्य के पुत्र थे, का राज्याभिषेक हुआ।

आदित्याः—

अदित्यां द्वादशादित्या संभूता भुवनेश्वराः ।

धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च ।
भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा ।
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
जघन्यजस्तु सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः ।।

(महा० १।६५।१४-१६)

अर्थ—अदिति से बारह पुत्र आदित्य उत्पन्न हुए जो भुवनों के ईश्वर (अधिपति) थे । उनके नाम थे—धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और बारहवें विष्णु—इनमें सबसे कम आयु के थे, परन्तु गुणों में सर्वाधिक थे ।

दैत्यवंशः—

एक एव दिते पुत्रोः हिरण्यकशिपुः स्मृतः ।
नाम्ना ख्यातास्तु तस्येमे पञ्चपुत्रा महात्मनः ।
प्रह्लादः पूर्वजस्तेषां संह्लादस्तदनन्तरम् ।
अनुह्लादस्तृतीयोऽभूत् तस्माच्च शिबिवाष्कलौ ।।
प्रह्लादस्य त्रयः पुत्राः ख्याताः सर्वत्र भारत ।।
विरोचनश्च कुम्भश्च निकुम्भश्चेति भारत ।
विरोचनस्य पुत्रोऽभूद् बलिरेक प्रतापवान् ।
बलेश्च प्रथितः पुत्रो बाणो नाम महासुरः । (१।६५।१७-२०)

अर्थ—दिति का एक ही (विशिष्ट) पुत्र हिरण्यकशिपु था, उसके पांच विख्यात पुत्र थे—सबसे बड़ा प्रह्लाद, उससे छोटा संह्लाद, तृतीय अनुह्लाद, चतुर्थ शिबि और पंचम वाष्कल। प्रह्लाद के तीन प्रख्यात पुत्र थे—विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ । विरोचन का एक मात्र प्रतापी पुत्र बलि हुआ। बलि का एकमात्र प्रसिद्ध पुत्र महान् असुर बाणासुर था ।

दनायुवंशः—

दनायुषः पुनः पुत्राश्चत्वारोऽसुरपुङ्गवाः ।
विक्षरो बलवीरौ च वृत्रश्चैव महासुरः । (१।६५।३३)

अर्थ—दनायु के चार असुरेन्द्र पुत्र थे—विक्षर, बल, वीर और महासुर वृत्र (अहिदानव) ।

कालकेयाः—

कालायाः प्रथिताः पुत्राः कालकल्पाः प्रतारिणः ।
प्रविख्याता महावीर्या दानवेषु परंतपाः ।।
विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहन्ता तथैव च ।।
क्रोधशत्रुस्तथैवान्ये कालकेया इति श्रुताः ।। (१।६५।३४-३५)

अर्थ—कालिका के पुत्र दानव कालकेय—काला के प्रख्यात पुत्र कालकेय थे। वे कालतुल्य संहारक योद्धा थे। वे दानवों में शत्रुघाती एवं महाबली थे। विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता, क्रोधशत्रु तथा अन्य कालकेय इतिहास में प्रसिद्ध हुए।

शुक्रवंशः—

असुराणामुपाध्यायः शुक्रस्त्वथिसुतोऽभवत्।
ख्याताश्चोशनसः पुत्राश्चत्वारोऽसुरयाजकाः।
त्वष्टाधरस्तथात्रिश्च द्वावन्यौ रौद्रकर्मिणौ ॥ (१।६५।३६-३७)

अर्थ—शुक्र के चार पुत्र—असुरों के उपाध्याय (पुरोहित) भृगु के पुत्र थे। उनके चार विख्यात पुत्र हुए, जो महान् असुर पुरोहित थे—त्वष्टा, धर (वरुत्री) और दो अन्य (शण्ड और मर्क) रौद्रकर्म (भयंकर कर्म) में निपुण थे।

सुपर्णाः—

तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च तथैव गरुडारुणौ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव वैनतेयाः प्रकीर्तिताः ॥ (१।६५।४०)

अर्थ—तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, अरुण, आरुणि और वारुणि—ये वैनतेय (विनता के पुत्र या वंशज) थे।

नागवंशः—

शेषोऽनन्तो वासुकिश्च तक्षकश्च भुजङ्गमः।
कूर्मश्च कुलिकश्चैव काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥ (१।६५।४१)

अर्थ—शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक—ये कद्रू के वंशज नाग थे।

देवगन्धर्वाः—

भीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च सप्तमः।
सत्यवागर्कपर्णश्च प्रयुतश्चापि विश्रुतः।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद् वशी ॥
तथा शालिशिरा राजन् पर्जन्यश्च चतुर्दशः।
कलिः पञ्चदशस्तेषां नारदश्चैव षोडशः।
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ॥ (१।६५।४२-४४)

अर्थ—भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण, गोपति, धृतराष्ट्र और सप्तम सूर्यवर्चा, सत्यवाक्, अर्कपर्ण और विख्यात प्रयुत, भीम, चित्ररथ, जो विख्यात और सर्वज्ञ संयमी पुरुष था, शालिशिरा, पर्जन्य चौदहवां, पन्द्रहवां कलि और सोलहवां गन्धर्व नारद था। ये देव गन्धर्व कश्यपपत्नी मुनि के पुत्र थे। अतः 'मौनेय' कहे जाते थे।

एकादशरुद्राः—

एकादश सुताः स्थाणोः ख्याताः परमतेजसः ।
मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतपः ।
दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः ।
स्थाणुर्भवश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ (१।६६-१-३)

अर्थ—स्थाणु महातेजस्वी महादेव शिव के ग्यारह विख्यात पुत्र थे—मृगव्याध, सर्प, महायशस्वी निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, परंतप पिनाकी, दहन, ईश्वर, महातेजस्वी कपाली, स्थाणु, भव—ये एकादश रुद्र थे ।

आङ्गिरसाः (अङ्गिरःपुत्राः)—

त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्राः लोके सर्वत्र भारत ।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्तश्च धृतव्रताः ॥ (१।६६।५)

अर्थ—लोक में अंगिरा के तीन विख्यात पुत्र थे—बृहस्पति, उतथ्य और धैर्यवान् संवर्त ।

रावणजन्मः—

कस्यचित् त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ।
रसातलम्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥१॥
अथाब्रवीत् सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥२॥
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥२८॥
दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥
ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ॥२९॥
दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥३३॥
तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।
प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥३४॥
ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना ॥
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥३५॥ (रामा० ७।९)

अर्थ—किसी समय सुमाली नाम का राक्षसराज रसातल (सोमाली लैंड—अफ्रीका) से आकर मर्त्यलोक (भारतवर्ष) में सर्वत्र भ्रमण करता रहा। अतः वह अपनी पुत्री कैकसी से बोला—कैकसी ने विश्रवा द्वारा भयंकर रावण राक्षस को उत्पन्न किया, जिसका नाम दशग्रीव रावण था, उसके दांत बड़े बड़े और शरीर काले कोयले के समान था । ताम्र के समान लाल ओष्ठ, बीस भुजायें, विशाल मुख, बाल प्रदीप्त । उसके दशग्रीवा (गर्दनें) थीं अतः उसका नाम दशग्रीव होगा। उसके पश्चात् महाबली कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ । उसके शरीर से बढ़कर दूसरा नहीं हुआ । उसकी बहिन भयंकर मुखवाली शूर्पणखा थी । कैकसी का सबसे छोटा पुत्र धर्मात्मा विभीषण था ।

———

चतुर्थोऽध्याय

सूर्यवंशः

सूर्य। (विवस्वान्)–आदित्यसन्ततिः—

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम ।
तस्य भार्याभवत् संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ॥
सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भारत ॥

× × ×

त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः ।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ।
मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।
यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः ।

× × ×

द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥
पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः ।
सवर्णत्वान्मनोभूयः सावर्ण इति चोक्तवान् ॥
मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते ॥
द्वितीयो सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः ॥

X X X

देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ।
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ।
संज्ञायां जनयामास वडवायां स भारत ॥

(हरिवंश० १।९)

अर्थ—कश्यप द्वारा दाक्षायणी अदिति से विवस्वान् (सूर्य) आदित्य का जन्म हुआ । विवस्वान् की भार्या (पत्नी) त्वष्टा (औशनस) की पुत्री 'संज्ञा' या

'सुरेणु' (सरण्यू) थी जो तीनों लोकों (देवों, असुरों और नागों) में विख्यात थी ।

अपत्यत्रयी—'संज्ञा' (सरण्यू) से विवस्वान् आदित्य ने तीन सन्तानें उत्पन्न कीं—उनमें दो पुत्र 'प्रजापति' थे और एक कन्या थी ।

मनु वैवस्वत श्राद्धदेव बड़े पुत्र—प्रजापति थे और यम वैवस्वत (द्वितीय प्रजापति) तथा यमुना (यमी) मिथुन सन्तान थी ।

सावर्णमनुः (अन्तिम मनु)=श्रुतश्रवा=शनैश्चर— द्वितीय संज्ञा (सवर्णा) में, उसको संज्ञा समझकर विवस्वान् आदित्य ने अपने समान पुत्र उत्पन्न किया और सोचा यह भी पूर्वजमनु (श्राद्धदेवमनु) के समान हो, अतः मनु के सवर्ण (समान) होने से उसका 'सावर्णमनु' हुआ। वह द्वितीय पुत्र भी मनु (सावर्णमनु) या शनैश्चर (या अनुश्रवा) नाम से प्रख्यात हुआ ।

अश्विनीकुमारद्वयी—'अश्वा' (वडवा) रूपिणी 'सरण्यू' से अष्टम आदित्य (अदितिपुत्र) विवस्वान् प्रजापति ने देवद्वयी अश्विनीकुमारों को उत्पन्न किया, जो यथासमय देवों के वैद्य बने, जिनका नाम इतिहास में 'नासत्य' और दस्र प्रसिद्ध है ।

वैवस्वतमनुसन्ततिः—

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः ।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ॥
नरिष्यंश्च तथा प्रांशुर्नाभागनेदिष्टसप्तमाः ।
करुषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ ॥

X X X

दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ।

X X X

सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने ।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः ॥

अर्थ—वैवस्वतमनु के उन्हीं के समान नौ पुत्र हुए—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्, प्रांशु, नाभानेदिष्ट, करूष और पृषध्र ।

इला—दिव्यरूप (शरीर) वाली एक पुत्री 'इला' उत्पन्न हुई ।......

सुद्युम्न—(जो पुरुष रूप में) 'सुद्युम्न' नाम से प्रसिद्ध हुई जो तीनों लोकों में विख्यात थी, जो अति लोकप्रिय, धर्मशील और मनुवंश (सोमवंश) बढ़ाने वाला था ।

सुद्युम्नपुत्राः—

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।

उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥
उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमाः ।
दिक् पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गया पुरी ॥

× × ×

उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।
धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥

अर्थ—सुद्युम्न की सन्तति=(पुत्रत्रयी)—सुद्युम्न के तीन पुत्र राज्याधिकारी हुए—उत्कल, गय और विनताश्व। उत्कल के वंशज उत्कल क्षत्रिय कहलाये, विनताश्व के वंशज पश्चिमी देशों में शासक हुए और पूर्व में गय की गयापुरी विख्यात हुई।

उत्कल सन्तति—उत्कल के तीन जगद्विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए—धृष्टक, अम्बरीष और दण्ड (दण्डक)।

नरिष्यन्तपुत्राः—

नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत ।

अर्थ—नरिष्यन्त के वंशज 'शक' क्षत्रिय कहलाये।

नाभागपुत्रः—

अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवार्षभसत्तमः ॥

अर्थ—नाभाग का पुत्र राजश्रेष्ठ अम्बरीष हुआ।

धृष्टवंश—

धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ॥ (हरिवंश १।१०)

अर्थ—धृष्ट के वंशज धार्ष्टक क्षत्रिय हुए जो युद्ध में अत्यन्त धृष्ट (वीर) थे।

पृषध्रः—

पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गावमभक्षयत् ।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः ॥

पृषध्र ने गुरु की गाय मारकर खा ली अतः वह महर्षि च्यवन के शाप से शूद्र होगया।

करुषः—

करुषस्य तु कारुषाः क्षत्रियाः युद्धदुर्मदाः ॥

(वायुपुराणे १।२३।२)

अर्थ—करुष के वंशज युद्ध में अदम्य 'कारुष क्षत्रिय' हुए।

(वायुपुराण अ० २३)

नाभागारिष्टवंशः—

नाभागारिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीत् भलन्दनः ।
भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत् प्रांशुर्नाम महाबलः ॥
प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजानिरिति विश्रुतः ।
प्रजानेरभवत् पुत्रः खनित्रो नाम वीर्यवान् ।
तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमान् क्षुपो नाम महायशाः ॥
क्षुपस्य विंशः पुत्रः तस्य प्रतिमा न बभूव ह ।
विंशपुत्रस्तु कल्याणो विंविशो नाम धार्मिकः ।
विंविशपुत्रो धर्मात्मा खनिनेत्रः प्रतापवान् ॥
करन्धमस्तस्य पुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ॥
करन्धमसुतश्चापि आविक्षिन्नाम वीर्यवान् ।
आविक्षितो व्यत्यक्रामत् पितरं गुणवत्तया ।
मरुत्तो नाम धर्मात्मा चक्रवर्त्तिसमो नृपः ॥

× × ×

मरुत्तश्चक्रवर्ती स नरिष्यन्तमवाप्तवान् ।
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ॥
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो राजासीद्राष्ट्रवर्धनः ॥
सुधृती तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतिनः सुतः ॥
केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धुमान् केवलात्मजः ।
अथ बन्धुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृपः ।
बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिन्दुर्बुधात्मजः ।
त्रेतायुगमुखे राजा त्रयोविंशे बभूव ह ॥
कन्या तु तस्य इडविडा माता विश्रवसो हि सा ॥
पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधार्मिकः ॥

अर्थ—नाभाग (नभाक) या नाभागारिष्ट का पुत्र विद्वान् (ऋषि) भलन्दन हुआ, भलन्दन का पुत्र प्रांशु हुआ, जो महाबली था। प्रांशु का पुत्र एकमात्र प्रजानि हुआ, जो विश्वविख्यात था। प्रजानि का पुत्र हुआ बलवान् 'खनित्र', उसका पुत्र था – क्षुप महायशस्वी। क्षुप का पुत्र था विंश, जिसका प्रतिद्वन्द्वी या सदृश कोई नहीं था। विंश का पुत्र कल्याणकारक विंविश धार्मिक राजा था। विंविश का पुत्र खनिनेत्र प्रतापी और धर्मात्मा था। करन्धम उसका पुत्र था, जो त्रेतायुगमुख में हुआ। करन्धम का पुत्र आविक्षित् प्रतापी था।

आविक्षित् के पुत्र मरुत्त ने अपने पिता के गुण और प्रताप का अतिक्रमण किया जो महान् चक्रवर्ती तथा धर्मात्मा सम्राट् हुआ।

चक्रवर्ती मरुत्त का पुत्र नरिष्यन्त (द्वितीय) हुआ। नरिष्यन्त का पुत्र राजा महान् दण्डधर था। दम का पुत्र विक्रमी राजा राष्ट्रवर्धन था। उसका पुत्र हुआ—सुधृती, सुधृती का पुत्र हुआ नर, उसका पुत्र हुआ एकमात्र बन्धुमान्, उसका पुत्र हुआ धर्मात्मा वेगवान् उसका पुत्र हुआ राजा बुध। बुध का पुत्र हुआ तृणबिन्दु, जो तेइसवें त्रेतायुगमुख (परिवर्तयुग) में राजा था। उसकी पुत्री 'इडविडा' थी, जो 'विश्रवा' की माता थी। (उसका अन्य) पुत्र 'विशाल' नाम का परम धार्मिक राजा था।

विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः।
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम्॥
सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः।
धूम्राश्वतनयो विद्वान् सृंजयः समपद्यत॥
सृंजयस्य सुतः श्रीमान् सहदेवः प्रतापवान्।
कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः।
कृशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान्।
सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोऽभूत् जनमेजयः।
जनमेजयस्यात्मजश्चैव प्रमितिर्नाम विश्रुतः॥

(वायुपुराणे अ० २४)

अर्थ—विशाल का पुत्र महाबली राजा हेमचन्द्र हुआ। हेमचन्द्र के अनन्तर, उसका उत्तराधिकारी (पुत्र) सुचन्द्र विख्यात हुआ। धूम्राश्व का पुत्र विद्वान् (ऋषि) सृंजय हुआ। सृंजय का पुत्र सहदेव हुआ। सहदेव का पुत्र परम धार्मिक कृशाश्व हुआ। कृशाश्व का पुत्र महातेजस्वी और प्रतापी सोमदत्त हुआ। राजर्षि सोमदत्त का पुत्र जनमेजय हुआ। जनमेजय का पुत्र विख्यात प्रमिति नाम का राजा हुआ।

शर्यातिवंशः—

शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः।
पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु॥
आनर्तस्य तु दायादो रेवोनामा तु वीर्यवान्।
आनर्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः।
येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः। (वायुपुराणे अ० २४)

अर्थ—शर्याति की मिथुन सन्तान—एक पुत्र 'आनर्त' और एक कन्या

'सुकन्या' उत्पन्न हुई। यह सुकन्या च्यवन की पत्नी बनी। आनर्त का पुत्र बलवान् 'रेव' नाम का राजा हुआ जिसका राज्य आनर्त (गुजरात) था और पुरी (राजधानी) कुशस्थली थी।

रेव का पुत्र हुआ 'रैवत', जिसका दूसरा नाम 'ककुद्मी' था। ये सभी राजा 'शार्यात' या 'शर्यातवंशीय' थे।

नाभागवंश—

नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान्।
अम्बरीषस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चात्मजः।
पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतरः।
एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥ (वायुपुराणे अ० २४)

अर्थ—नभग का पुत्र नाभाग कहलाया। उसका पुत्र नाभागि अम्बरीष था। उसका पुत्र हुआ विरूप (आंगिरस) उसका पुत्र हुआ वृषदश्व, उसका पुत्र था रथीतर। ये क्षत्रिय वंश से उत्पन्न होकर पुनः आंगिरस (ब्राह्मण) बन गये। रथीतर के प्रवर (गोत्रप्रवर्तक) क्षत्रोपेत ब्राह्मण थे।

वायुपुराण १।२६ अ०

इक्ष्वाकुवंशः—

क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत् सुतः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्॥
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोदधात्।
प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्यापतिः प्रभुः॥
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पंचाशदुत्तमाः।
उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते।
चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि॥
शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशाम्पते॥

× × ×

शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्।

× × ×

अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः॥
निष्टशश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्तु अजायत॥
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मजः।
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः।

कुबलाश्वसुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः ।
यः स धुन्धुवधाद् राजा धुन्धुमारत्वमागतः ।।

× × ×

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टाः दृढ़ाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ कनीयसौ ।
धौन्धुमारिर्दृढ़ाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ।।
संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः ।
अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृपः ।।
तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ।।
लेभे प्रसेनजिद् भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ।।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत् ।
तस्याः पुत्रो महानासीद् युवनाश्वो महीपतिः ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ।।

अर्थ—मनु का (ज्येष्ठ) पुत्र 'इक्ष्वाकु' हुआ । इक्ष्वाकु के बहुत दक्षिणा देने वाले सौ पुत्र हुए। उनमें 'विकुक्षि' ज्येष्ठ था, जो परमधर्मज्ञ अयोध्या का शासक हुआ । इक्ष्वाकु के शकुनिप्रधान पचास ज्येष्ठपुत्र उत्तरी देशों के शासक हुए तथा शशाद प्रमुख अड़तालीस पुत्र दक्षिणी देशों के शासक हुए ।

शशाद का उत्तराधिकारी प्रतापी ककुत्स्थ हुआ । ककुत्स्थ का पुत्र अनेना था । अनेना का पुत्र पृथु हुआ । उसका पुत्र आर्द्र हुआ । आर्द्र का पुत्र युवनाश्व (प्रथम) था । उसका पुत्र श्रावस्त हुआ । श्रावस्त का उत्तराधिकारी महायशस्वी सम्राट् बृहदश्व हुआ । उसका पुत्र कुवलाश्व था जो परमधार्मिक था तथा धुन्धु असुर को मारने के कारण धुन्धुमार भी कहलाया ।

(युद्ध में) उसके केवल तीन पुत्र शेष रहे—ज्येष्ठ पुत्र दृढाश्व और कनिष्ठ चन्द्राश्व तथा कपिलाश्व । धुन्धुमार कुवलाश्व का पुत्र हर्यश्व हुआ । हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था, जो सदा ही क्षत्रिय धर्म में निरत रहता था । निकुम्भ का पुत्र रणविशारद संहताश्व था । संहताश्व के पुत्र थे—अकृशाश्व और कृशाश्व । हैमवती (हिमवतराजा की) कन्या दृषद्वती उनकी माता थी । कृशाश्व का पुत्र प्रसनेजित् हुआ । प्रसनेजित् की महिषी का नाम गौरी था । पति के द्वारा अभिशप्त वह 'बाहुदा' नदी होगई । गौरी का पुत्र महान् राजा युवनाश्व था । युवनाश्व का पुत्र राजा मान्धाता त्रिलोकविजयी था ।

तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृपः ।
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम् ॥
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत् त्रसदस्युर्महीपतिः ॥
नर्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ।
सम्भूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥
सुधन्वनः सुतश्चासीत् त्रिधन्वा रिपुमर्दनः ।
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद् विद्वांस्त्रयारुणः सुतः ॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभूत्महाबलः ।

× × ×

तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा ।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः ।
आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः ॥

× × ×

हरितो रोहितस्याथ चंचुर्हारीत उच्यते ।
विजयश्च सुदेवश्च चंचुपुत्रौ बभूवतुः ।
रुरुकस्तनयस्तस्य राजधर्मार्थकोविदः ।
रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान् ।
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च ।

× × ×

द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्विषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ॥
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥
केशिन्यसूत सगरादसमंजसमात्मजम् ॥
राजा पंचजनो नाम बभूव सुमहाबलः ।
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णमिति श्रुतिः ॥
तत्र षष्टि सहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ।

अर्थ—उसकी भार्या बिन्दुमती चैत्ररथी (चित्ररथपुत्री) शशबिन्दु की पुत्री

थी। महान् सती साध्वी तथा रूप में भूमण्डल पर अनुपम थी। सम्राट् मान्धाता ने उससे दो पुत्र उत्पन्न किये—पुरुकुत्स धर्मज्ञ और मुकुकुन्द धार्मिक।

पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु था जो नर्मदा से उत्पन्न हुआ। त्रसदस्यु का पुत्र हुआ सम्भूत। सम्भूत का उत्तराधिकारी हुआ सुधन्वा नाम का राजा। सुधन्वा का पुत्र त्रिधन्वा शत्रुनाशक हुआ। राजा त्रिधन्वा का पुत्र विद्वान् (ऋषि) त्र्यरुण था। उसका पुत्र महाबली सत्यव्रत (त्रिशंकु) हुआ। सत्यव्रत त्रिशंकु की रानी कैकयवंशजा सत्यरथा थी। उसने निष्पाप कुमार हरिश्चन्द्र को उत्पन्न किया। वह राजा हरिश्चन्द्र त्रैशङ्कव (त्रिशंकुपुत्र) कहा जाता है, जो राजसूय करने वाला सम्राट् हुआ। हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित और उसका पुत्र हरित था। हरित का पुत्र चंचु था। चंचु के पुत्र थे—विजय और सुदेव। विजय का पुत्र रुरुक हुआ। रुरुक का पुत्र हुआ वृक। उसका पुत्र हुआ बाहु। बाहु का पुत्र हुआ सगर।

सगर की दो पत्नियां थीं, जिन्होंने तप (व्रतादि) से पाप को नष्ट कर दिया था। विदर्भराज की पुत्री केशिनी (कैशिकी) ज्येष्ठ रानी थी। अरिष्टनेमि की पुत्री अति सुन्दरी और परमधार्मिक छोटी पत्नी (सुमति) थी।

केशिनी से सगर द्वारा असमञ्जा पुत्र उत्पन्न किया जो कि 'पंचजन' नाम से भी महाबली राजा हुआ।

ऐसा इतिहास (श्रुति) है कि दूसरी पत्नी सुमति ने एक तुम्बी को उत्पन्न किया, जिसमें गर्भबीज थे। उसमें तिल के बराबर साठ हजार बीजगर्भ थे।

षष्टिः पुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् नृप।
एकपंचजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह।
सुतः पंचजनस्यासीदंशुमान् नाम वीर्यवान्।
दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः॥
भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीद् पुत्रः परमधार्मिकः॥
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत्।
अयुताजित् तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्॥
अयुताजितसुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः।
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली।
ऋतुपर्णसुतस्यासीदार्तुपर्णिर्महीपतिः।
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत्।

सुदासस्य सुतस्त्वासीत् सौदासो नाम पार्थिवः ।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ।।
कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः ।।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूत् विश्रुतः सर्वकर्मणः ।
अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः ।
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ ।।
अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत् ।
दिलीपस्तनयस्तस्य रामप्रतितामहः ।।
दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुनाम्नाभवत् सुतः ।
अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद् दशरथोऽभवत् ।
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः ।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।
निषधस्तु नलपुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु ।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ।।
क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद् देवानीक प्रतापवान् ।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकसुतः प्रभुः ।।

अर्थ—उस तूम्बी गर्भ से साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें एक पुत्र 'पंचजन' नाम का राजा हुआ। पंचजन का पुत्र 'अंशुमान्' नाम का प्रतापी राजा हुआ। उसका पुत्र दिलीप हुआ, जो खट्वांग नाम से भी विख्यात है।

दिलीप का उत्तराधिकारी महाराज भगीरथ हुआ। भगीरथ का पुत्र राजा श्रुत हुआ। श्रुत का पुत्र परमधार्मिक राजा नाभाग हुआ। उसका पुत्र अम्बरीष हुआ। उसका पुत्र सिन्धुद्वीप था। सिन्धुद्वीप का पुत्र महाबली अयुताजित् हुआ। उसका पुत्र यशस्वी ऋतुपर्ण हुआ जो दिव्याक्षहृदय (अक्षविशेषज्ञ) और राजा नल का सखा था। राजा ऋतुपर्ण का पुत्र महान् सुदास (पैजवन) इन्द्र का परमसखा था। सुदास पैजवन का पुत्र सौदास कल्माषपाद था, जिसका (पूर्व) नाम मित्रसह था। कल्माषपाद का पुत्र हुआ विख्यात सर्वकर्मा। सर्वकर्मा का पुत्र हुआ अनरथ। उसका पुत्र हुआ निघ्न। निघ्न के दो श्रेष्ठ राजा पुत्र थे—अनमित्र और रघु।

अनमित्र का पुत्र धर्मात्मा और विद्वान् राजा दुलिदुह था। उसका पुत्र हुआ दिलीप (द्वितीय) जो राम दशरथि का पितामह था। दिलीप का पुत्र हुआ 'दीर्घबाहु' जिसका दूसरा नाम रघु (द्वितीय) भी था। रघु का पुत्र था अज। उसका पुत्र हुआ दशरथ। दशरथ से राम उत्पन्न हुए जो धर्मात्मा और महान् यशस्वी थे।

राम के पुत्र हुए कुश, उसका पुत्र हुआ अतिथि, उसका पुत्र था निषध, उसका पुत्र हुआ नल और नल का पुत्र था नभ। उसका पुत्र हुआ पुण्डरीक और उसका पुत्र हुआ क्षेमधन्वा।

क्षेमधन्वा का पुत्र था देवानीक। उसका पुत्र हुआ अहीनगु।

अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः।
सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृपः॥
उक्थो नाम स धर्मात्मा नलपुत्रो बभूव ह।
वज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः॥
शङ्खस्तस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः।
पुष्पस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः॥
सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः।
तस्यासीद् विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः॥

(हरिवंश १।अध्याय ११-१५)

अर्थ--अहीनगु का उत्तराधिकारी हुआ सुधन्वा। सुधन्वा का पुत्र हुआ अनल। अनलपुत्र हुआ उक्थ। उसका पुत्र हुआ वज्रनाभ। उसका पुत्र हुआ शंख। शंख का पुत्र था व्युषिताश्व--जो इतिहास में प्रसिद्ध है। उसका पुत्र था पुष्प, जो विद्वान् (ऋषि) भी था। उसका पुत्र हुआ 'अर्थसिद्धि', उसका पुत्र हुआ सुदर्शन। सुदर्शन का पुत्र हुआ 'अग्निवर्ण', अग्निवर्ण का पुत्र था 'शीघ्र', उसका पुत्र हुआ मरु। इस विश्रुत मरु का पुत्र था राजा बृहद्बल।

(वायुपुराण अ० २७)

जनकवंशः—

नेमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्वनमस्कृतः।
आसीत् पुत्रो महाप्राज्ञ इक्ष्वाकोर्भूरितेजसः॥
स शापेन वसिष्ठस्य विदेहः समपद्यत।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः॥
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः।
नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जननाज्जनकोऽभवत्॥
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाऽभवत्।
राजासौ जनको नाम जनकाच्चाप्युदावसुः॥
उदावसोः सुधर्मात्मा जनितो नन्दिवर्द्धनः।
नन्दिवर्द्धनः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः॥

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुक्थ इति श्रुतिः ।।
बृहदुक्थस्य तनयो महावीर्यः प्रतापवान् ।
महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चात्मजः ।।
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परन्तपः ।
धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः ।।
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतित्वकः ।
प्रतित्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः ।।
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ़ इति श्रुतः ।
देवमीढ़स्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृतिः ।।
महाधृतिसुतो राजा कीर्तिराजः प्रतापवान् ।
कीर्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुतः ।।
महारोमणस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाभवन्नृपः ।
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुतिः ।।
उद्भिन्ना कृषता येन सीता राज्ञा यशस्विनी ।
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रतातिपतिव्रता ।।

× × ×

अर्थ—सभी प्राणियों में पूजनीय अत्यन्त तेजस्वी सुधर्मात्मा महाप्राज्ञ नेभि इक्ष्वाकु का पुत्र था। वह वशिष्ठ के शाप से विदेह (शरीररहित) होगये। तीन पर्वों द्वारा अरणी के मथे जाने पर उसका पुत्र महायशस्वी मिथि (जनक) उत्पन्न हुआ, जनन करने से ही उसका नाम 'जनक' हुआ। वह महावीर मिथि था, जिसने मिथिला बसाई।

राजा जनक का पुत्र उदावसु था। उदावसु का पुत्र अत्यन्त धर्मात्मा नन्दिवर्धन हुआ। नन्दिवर्धन के ही नाम 'शूर' और सुकेतु थे। धर्मात्मा सुकेतु का धर्मात्मा पुत्र देवरात हुआ। देवरात का पुत्र श्रुति (इतिहास) में बृहदुक्थ प्रसिद्ध हुआ। बृहदुक्थ का पुत्र महावीर्य था। महावीर्य का पुत्र धृतिमान् था। उसका पुत्र सुधृति था। सुधृति का पुत्र धर्मात्मा धृष्टकेतु था। धृष्टकेतु का पुत्र था हर्यश्व। हर्यश्व का पुत्र था मरु और उसका पुत्र था प्रतित्वक। उसका पुत्र हुआ धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ। कीर्तिरथ का पुत्र हुआ प्रसिद्ध देवमीढ़। उसका पुत्र हुआ विबुध। विबुध का पुत्र हुआ धृति। धृति का पुत्र था कीर्तिराज प्रतापी राजा।

कीर्तिराज का पुत्र हुआ विद्वान् (ऋषि) प्रसिद्ध राजा महारोमा। महारोमा का पुत्र हुआ राजा स्वर्णरोमा। उसका पुत्र हुआ ह्रस्वरोमा। ह्रस्वरोमा का पुत्र था विद्वान् राजा सीरध्वज जनक—इतिहास में विश्रुत। उसने हल से खेत जोतते हुए पुत्री सीता की प्राप्ति की जो दाशरथि राम की महारानी और अत्यन्त पति-व्रता सती साध्वी थी।

सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मैथिलः।
भ्राता कुशध्वजस्तस्य संकाश्याधिपतिर्नृपः॥
तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान्।
मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः॥
ऊर्जवहात् सुतः वाजः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्चास्तत्सुतः स्मृतः॥
श्रुतो यस्तस्य दायादः सुश्रुतस्तस्य चात्मजः।
सुश्रुतस्य जयः पुत्रो जयस्य विजयः सुतः॥
विजयस्य ऋतः पुत्र ऋतस्य सुनयः स्मृतः।
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृतिः॥
धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुतः कृतिः॥

(वायुपुराणे अ० २७)

अर्थ—सीरध्वज से भानुमान् नाम का मैथिल राजा उत्पन्न हुआ। उसका (सीरध्वज का) भ्राता कुशध्वज संकाश्य नगरी का राजा था।

भानुमान् का पुत्र प्रद्युम्न था। उसका पुत्र राजा मुनि था। उसका पुत्र ऊर्जवह हुआ। ऊर्जवह का पुत्र हुआ शकुनि। उसका पुत्र था स्वागत। उसका पुत्र था सुवर्चा। उसका उत्तराधिकारी हुआ श्रुत। उसका पुत्र हुआ सुश्रुत। सुश्रुत का पुत्र हुआ जय और जय का पुत्र हुआ विजय। विजय का पुत्र था ऋत और उसका पुत्र हुआ सुनय। सुनय का पुत्र था वीतहव्य और उसका पुत्र हुआ धृति। धृति का पुत्र हुआ बहुलाश्व तथा उसका पुत्र हुआ कृति।

———

पंचमोऽध्याय

चन्द्रवंशः

(हरिवंशे १।२५ अ०)

सोमः (चन्द्रः)—

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः ।

× × ×

सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट् ।
सप्तविंशतिरिन्द्रास्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः ॥
ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणि या विदुः ॥
तं सिनी च कुहूश्चैव वपुः पुष्टिः प्रभावसुः ।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नवदेव्यः सिषेविरे ॥

बुधः—

सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम् ।
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ।

पुरूरवाः—

तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः ।
उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट् सुमहौजसः ॥

ऐलपुत्राः—

गन्धर्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ।
विश्वायुश्च शतायुश्च श्रुतायुश्चोर्वशीसुताः ॥

अमावसुवंशः—

अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाथ विश्वजित् ।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्कांचनप्रभः ।
विद्वांस्तु कांचनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥
सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिकागर्भसम्भवः ।

× × ×

यौवनाश्वस्य पौत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ।

जह्नुश्च दयितं पुत्रं सुहोत्रं नाम धार्मिकम् ॥
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥
अजकस्य तु दायादो बलकाश्वो महायशाः ।
बभूवुश्च गयः शीलः कुशस्तस्यात्मजाः स्मृताः ।
कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चसः ॥

दाक्षिणत्य ऐक्ष्वाकदशाश्ववंशः—(१३।२) महाभारत

मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत् सुतः ।
तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ।५।
दशमस्तस्य पुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत ।
माहिष्मत्यामभूद् राजा धर्मात्मा सत्यविक्रमः ।६।
दशाश्वस्य सुतस्त्वासीद् राजा परमधार्मिकः ।७।
मदिराश्व इति ख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।८।
मदिराश्वस्य पुत्रस्तु द्युतिमान् नाम पार्थिवः ।९।
पुत्रो द्युतिमतस्त्वासीद् राजा परमधार्मिकः ।
सर्वलोकेषु विख्यातः सुवीरो नाम नामतः ।१०।
सुवीरस्य तु पुत्रोऽभूत् ....।११।
स दुर्जय इति ख्यातः... ....।
दुर्जयस्येन्द्रवपुषः पुत्रोऽक्षिसदृशद्युतिः ।१२।
दुर्योधनो नाम महान् राजा राजर्षिसत्तमः ।१३।
तं नर्मदा देवनदी पुण्या शीतजला शिवा ।
चकमे पुरुषव्याघ्रं स्वेन भावेन भारत ।१८।
तस्यां जज्ञे तदा नद्या कन्या राजीवलोचना ।
नाम्ना सुदर्शना राजन् रूपेण च सुदर्शना ।१९।
तस्याः समभवत् पुत्रो नाम्नाऽऽग्नेयः सुदर्शनः ।३६।

अर्थ—प्रजापति मनु का पुत्र राजा इक्ष्वाकु था। उसके एक **सौ** पुत्र थे जो सभी सूर्य के समान तेजस्वी थे। उनमें दशवें पुत्र का नाम 'दशाश्व' था। वह सत्यविक्रमी राजा दशाश्व माहिष्मती का धर्मात्मा राजा था। दशाश्व का पुत्र परमधार्मिक राजा हुआ—'मदिराश्व' जो पृथिवी पर एक विख्यात राजा था। मदिराश्व का पुत्र 'द्युतिमान्' नाम का राजा था। राजा द्युतिमान् का परमधार्मिक और सर्वलोकों में विख्यात पुत्र 'सुवीर' नाम का राजा था। उसका पुत्र था राजा दुर्जय। उसका पुत्र इन्द्रतुल्य राजा दुर्योधन श्रेष्ठ राजा और राजर्षि था। देवनदी पुण्यशील, शीतजला और कल्याणी नर्मदा (नाम्नी राजकन्या) ने पुरुषव्याघ्र

दुर्योधन की कामना की (उससे विवाह किया।) उससे उनकी एक कमलनेत्री कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम था सुदर्शना। जो रूप में भी यथार्थनामा सुदर्शना थी। उसका पुत्र अग्नि (अंगिरावंशीय) ऋषि से हुआ 'आग्नेय'। जिसको सुदर्शन भी कहते थे।

महाभिषः—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो राजाऽऽसीत् पृथिवीपतिः।
महाभिष इति ख्यातः सत्यवाक् सत्यविक्रमः॥

महाभारत (१।९६।१)

अर्थ—इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न राजा, पृथिवी का शासक था उसका नाम महाभिष था। वह सत्यवाक् और सत्यविक्रम था।

बक दाल्भ्यो (मैत्रेयः)—

श्रूयते हि महाभाग बको दाल्भ्यो महातपाः।
प्रियः सखा च शक्रस्य चिरजीवी च सत्तम॥ (३।१९३।४)

अर्थ—महातपस्वी बकदाल्भ्य नाम का ऋषि, चिरंजीवी, इन्द्र का प्रिय सखा था।

शिबिसुहोत्रयोः समकालिकत्वम्—

कुरूणामन्यतमः सुहोत्रो नाम राजा महर्षीनभिगम्य निवृत्य रथ-स्थमेव राजानमौशीनरं शिबिं ददर्श। (३।१।१९४।२)
वृषदर्भसेदुकनामानौ राजानौ ।(३।१९६।२)

अर्थ—कुरुओं (भरतों) का श्रेष्ठतम सुहोत्र रथ में बैठकर महर्षियों के पास जाकर पुनः लौटकर राजा शिबि औशीनर से मिला।

वृषदर्भ और सेदुक नाम के दो राजा (समकालिक)

अष्टकस्य समानकालिका राजानः—

अष्टकस्य वैश्वामित्रेरश्वमेधे सर्वे राजानः प्रागच्छन्।१।
भ्रातरश्चास्य प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशीनर इति।
··· ···ते च नारदमगच्छन्तः······।२।

अर्थ—अष्टक वैश्वामित्रि के अश्वमेध यज्ञ में सभी राजा आये। उनके भ्राता प्रतर्दन (काशिराज), वसुमना (ऐक्ष्वाक) और शिबि औशीनर थे। वे सभी नारद के पास गये।

इक्ष्वाकुवंशः—

इक्ष्वाकौ संस्थिते राजन् शशादः पृथिवीमिमाम्।
प्राप्तः परमधर्मात्मा सोऽयोध्यायां नृपोऽभवत्।१।

शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।
अनेनाश्चापि काकुत्स्थः पृथुश्चानेनसः सुतः ।२।
विश्वगश्वः पृथोः पुत्रस्तस्माददिश्च जज्ञिवान् ।३।
तस्य श्रावस्तको ज्ञेयः श्रावस्ती येन निर्मिता ।
श्रावस्तकस्य दायादो बृहदश्वो महाबलः ।४।
बृहदश्वस्य दायादः कुवलाश्व इति स्मृतः ।
कुवलाश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्यकेविंशतिः ।५। (३।२०२)

अर्थ—इक्ष्वाकु के परमधाम के पश्चात् उसका पुत्र परम धर्मातमा शशाद अयोध्या का राजा हुआ । शशाद का उत्तराधिकारी ककुत्स्थ नाम का राजा हुआ । ककुत्स्थ का पुत्र अनेना था । अनेना का पुत्र पृथु था । पृथु का पुत्र विश्वगश्व था । उसका पुत्र अद्रि हुआ । अद्रि का पुत्र श्रावस्तक था जिसने श्रावस्ती नगरी बसाई । श्रावस्तक का पुत्र महाबली बृहदश्व हुआ और उसका उत्तराधिकारी कुवलाश्व हुआ, उसके इक्कीस हजार पुत्र थे ।

धुन्धुर्दैत्यः—

मधुकैटभयोः पुत्रो धुन्धुर्नाम सुदारुणः ।। (३।२०२।१८)

अर्थ—मधुकैटभ का पुत्र धुन्धु नाम का भयंकर असुर था ।

पौलोमाः कालकञ्जाश्च (दानवाः)—(महा० ३।१७३)

पुलोमा नाम दैतेयी कालका च महासुरी ।
दिव्यं वर्षसहस्रं ते चेरतुः परमं तपः ।१७।
परं सुरमणीयं च खचरं सुमहाप्रभम् ।६।
पौलोमाध्युषितं वीर कालकञ्जैश्च दानवैः ।१२।
हिरण्यपुरमित्येव ख्यायते नगरं महत् ।१३।

अर्थ—पुलोमा नाम की दैत्यी और कालका नाम की महासुरी थी । उन दोनों ने दिव्य (सौर) सहस्रवर्ष परम तप किया । उनका परमरमणीय आकाश में देदीप्यमान पुर (नगर) था । उसमें (उन दोनों दानवियों के वंशज) पौलोम और कालकञ्ज दानव (असुर) रहते थे । उनका नगर 'हिरण्यपुर' नाम का विख्यात महानगर था ।

ऐक्ष्वाकः परीक्षित्—

अयोध्यायामिक्ष्वाकुकुलोद्वहः पार्थिवः परिक्षिन्नाम मृगयामगमत् ।३।
राजन्नहमायुर्नाम मण्डूकराजो मम सा दुहिता सुशोभना नाम ।३४।
अथ कस्यचित् कालस्य तस्यां कुमारास्त्रयस्तस्य राज्ञः संबभूवुः

शलो दलो बलश्चेति । ततस्तेषां ज्येष्ठं शलं समये पिता राज्ये-
ऽभिषिच्य तपसि धृतात्मा वनं जगाम ।३८।
स गत्वा वामदेवाश्रमं तमृषिमब्रवीत् ।४२।
ततो विदित्वा नृपतिं निपातितमिक्ष्वाकवो वैदलमभ्यषिञ्चन् ।५६।
जानामि पुत्रं दशवर्षं तवाहं महिष्यां श्येनचितं नरेन्द्र ।···।६३।

अर्थ—अयोध्या में इक्ष्वाकुकुल का राजा परिक्षित् शिकार के लिए गया । (उसके पास मण्डूकराज आया और बोला)—राजन् ! मैं आयु नाम का मण्डूक-राज हूं, मेरी पुत्री सुशोभना है । ·· उससे राजा के तीन पुत्र हुए—शल, दल और बल । यथासमय राजा परिक्षित् ने ज्येष्ठपुत्र को राज्यसिंहासन पर बैठाकर धैर्य-शाली होकर वन में तप के लिए चला गया ।···वहां जाकर वामदेव ऋषि के आश्रम में जाकर बोला । ··

(युद्ध में) ऐक्ष्वाकों के पतन को सुनकर (परिक्षित् को मारा जाना) उन्होंने दल का राज्याभिषेक किया । (वामदेव ने कहा)—हे राजन् ! मैं आपकी महिषी के पुत्र 'श्येनचित्' को जानता हूं ।

व्युषिताश्वः-(पौरवः)—

व्युषिताश्व इति ख्यातो बभूव किल पार्थिवः ।
पुरा परमधर्मिष्ठः पूरोर्वंशविवर्धनः (१।१२०।७)
आसीत् काक्षीवती चास्य भार्या परमसम्मता ।
भद्रा नाम मनुष्येन्द्र रूपेणासदृशी भुवि ।१७।
सा तेन सुषुवे देवी शवेन भरतर्षभ ।
त्रीन् शाल्वांश्चतुरो मद्रान् सुतान् भरतसत्तम ।।

(महा० ३।१२०।३६)

अर्थ—पुरुवंश में एक प्रसिद्ध, परमधर्मिष्ठ राजा व्युषिताश्व हुए । उसकी परम सम्मानित भार्या कक्षीवान् की पुत्री (या वंशजा) भद्रा नाम वाली थी, जो रूप में, पृथिवी पर अप्रतिम थी । उसने अपने पति के शव द्वारा तीन शाल्व जातीय और चार मद्र जातीय पुत्रों को उत्पन्न किया ।

(वाल्मीकीयरामायण)

कुशवंशः—

ब्रह्मयोनिर्महानासीत् कुशो नाम महातपाः ।१।
स महात्मा कुलीनायां युक्तायां सुमहाबलान् ।
वैदर्भ्यां जनयामास चतुरः सदृशान् सुतान् ।२।
कुशाम्बं कुशनाभं च अमूर्तरजसं वसुम् ।३।

कुशाम्बस्तु महातेजा कौशाम्बीमकरोत् पुरीम् ।६।
कुशनाभस्तु धर्मात्मा पुरं चक्रे महोदयम् ।
अमूर्तरजसो नाम धर्मारण्यं महामतिः ।
चक्रे पुरवरं राजा वसुनामो गिरिव्रजम् ।७।

× × ×

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमुत्तमम् ।
जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ।११। (१।२२)
एतस्मिन्नेव काले तु चूली नाम महाद्युतिः ।
ऊर्ध्वरेता शुभाचारो ब्राह्मं तप उपागमत् ।११।
तपस्यन्तमृषिं तत्र गन्धर्वी पर्युपासते ।
सोमदा नाम भद्रं ते ऊर्मिलातनया तदा ।१२।
ब्रह्मदत्त इति ख्यातं मानसं चूलिनः सुतम् ।१८।
स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत् तदा ।
काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम् ।१९।
ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्या शतं तदा ।२०।

अर्थ—कुशनाम के महातपस्वी महात्मा राजा ब्रह्मयोनि (ब्रह्मा से उत्पन्न) थे। उस महात्मा कुश ने कुलीन एवं युक्त वैदर्भी से अपने सदृश चार पुत्र उत्पन्न किये—कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूरजस और वसु। कुशाम्ब ने कौशाम्बी नगरी बसाई। कुशनाभ ने महोदय नगर बसाया। अमूर्तरजस से धर्मारण्य प्रथित हुआ वसु ने श्रेष्ठ नगर गिरिव्रज (राजगृह) की स्थापना की।

राजर्षि कुशनाभ ने सौ कन्यायें उत्पन्न कीं, घृताची अप्सरा से। इसी समय महातेजस्वी, ब्रह्मचारी, शुभाचारी चूली ने ब्राह्म तप किया। तपस्या करते हुए चूली ऋषि की परिचर्या (सेवा) ऊर्मिला की पुत्री सोमदा गन्धर्वी करती थी। उससे चूली का मानसपुत्र ब्रह्मदत्त उत्पन्न हुआ। राजा ब्रह्मदत्त, देवराज इन्द्र के समान परमलक्ष्मी से सम्पन्न काम्पिल्य नगरी में राज्य करते थे। हे राम! राजा कुशनाभ ने अपनी सौ कन्यायें ब्रह्मदत्त को देनी चाहीं (अतः दे दीं)।

विशालवंश (वैशालेयवंश)—

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः।
तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता॥
विशालेन सुतो राम हेमचन्द्रो महाबलः॥
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः।

सुचन्द्रतनयो राम धूम्राश्व इति विश्रुतः।
धूम्राश्वतनयश्चापि सृञ्जयः समपद्यत।
सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान् सहदेवः प्रतापवान्।
कुशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः।

अर्थ—परमधार्मिक पुरुषसिंह इक्ष्वाकु का अप्सरा अलम्बुषा से विशाल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी स्थान पर हे राम! विशाल ने 'विशाला' नाम की पुरी बसाई। विशाल का पुत्र महाबली हेमचन्द्र हुआ। हेमचन्द्र का पुत्र सुचन्द्र हुआ। सुचन्द्र का पुत्र विख्यात राजा धूम्राश्व हुआ और उसका पुत्र सृञ्जय हुआ। सृञ्जय का पुत्र श्रीमान् प्रतापी सहदेव था। सहदेव का परमधार्मिक पुत्र कुशाश्व था।

कुशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान्।
सोमदत्तस्य पुत्रस्तु काकुत्स्थ इति विश्रुतः।
तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्।
आवसत् परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः।
इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः॥

(बाल० ४७।११-१८)

अर्थ—कुशाश्व का महातेजस्वी और प्रतापी पुत्र सोमदत्त हुआ। सोमदत्त का विश्रुत पुत्र हे राम सुमति है, जो इस समय इस विशालपुरी में राज्य कर रहा है। वह बड़ा प्रख्यात एवं दुर्जय है। इक्ष्वाकु की कृपा से सभी वैशालिक राजागण दीर्घजीवी, महाबली, वीर्यवान् और अत्यन्त धार्मिक हुए।

इक्ष्वाकुवंशः—

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्यो अव्ययः।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः॥
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्मृतः॥
मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्॥
इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान् कुक्षिरित्येव विश्रुतः।
कुक्षेरथात्मजः श्रीमान् विकुक्षिरुदपद्यत॥
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान्।
बाणस्य महातेजा अनरण्यः प्रतापवान्।
अनरण्यात् पृथुर्जज्ञे त्रिशंकुश्च पृथोरपि।

त्रिशंकोरभवत् पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः ।
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः ।
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः ।।
मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान् सुसंधिरुदपद्यत ।
सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित् ।
यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः ।
भरतात् तु महातेजा असितो नामाजायत ।
यस्येते प्रतिराजन उदपद्यन्त शत्रवः ।
हैहयास्तालजंघाश्च शूराश्च शशबिन्दवः ।।
तांश्च स प्रतियुध्यन् वै युद्धे राजा प्रवासितः ।
हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा ।।
असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान् ।।
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः ।।

अर्थ—अव्यक्त से उत्पन्न, सनातन, नित्य, अव्यय ब्रह्मा थे। ब्रह्मा से मरीचि उत्पन्न हुए और उनके पुत्र कश्यप हुए। कश्यप से विवस्वान् उत्पन्न हुए और उनके पुत्र मनुवैवस्वत थे। पूर्वकाल में मनुवैवस्वत प्रजापति थे। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए। इक्ष्वाकु अयोध्या के प्रथम राजा थे। इक्ष्वाकु का पुत्र विख्यात कुक्षि था। कुक्षि का पुत्र श्रीमान् विकुक्षि हुआ। विकुक्षि का पुत्र प्रतापी और तेजस्वी पुत्र बाण हुआ। बाण का पुत्र महातेजस्वी प्रतापी अनरण्य हुआ। अनरण्य से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ। त्रिशंकु का पुत्र महातेजस्वी और महारथी धुन्धुमार था। धुन्धुमार से तेजस्वी यशस्वी पुत्र युवनाश्व उत्पन्न हुआ। युवनाश्व का पुत्र पृथिवीपति (सम्राट्) मान्धाता हुआ। मान्धाता का पुत्र श्रीमान् सुसंधि उत्पन्न हुआ। सुसंधि के दो पुत्र हुए—ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित्। यशस्वी ध्रुवसन्धि का पुत्र भरत हुआ। भरत का पुत्र महातेजस्वी असित राजा हुआ। उसके प्रतिद्वन्द्वी शत्रु थे हैहय, तालजंघ, शूर और शशबिन्दु गण। उनसे युद्ध करते हुए राजा प्रवास में चला गया। अपनी दो पत्नियों के साथ वह हिमालय में रहने लगा। दुर्बल राजा असित मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी दोनों पत्नियां गर्भवती थी, ऐसा इतिहास से ज्ञान होता है।

एकः गर्भविनाशार्थं सपत्न्यै सगरं ददौ ।

× × ×

सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ।
सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ।।

सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् ।
दिलीपोंऽशुमतो पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ।
भगीरथात् ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा ।
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रबुद्धः पुरुषादकः ।
कल्माषपादोऽप्यभवत् तस्या जातस्तु शंखणः ।
सुदर्शनः शंखणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः ।
मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात् ॥
अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः ।
नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ॥
नाभागस्य बभूवाज अजाद् दशरथोऽभवत् ।
अस्माद् दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥

(१।७०।१९-३१, ३७-४३)
स्वल्पपाठान्तर तथा २।११०।५-३५

अर्थ—एक पत्नी ने गर्भ के विनाश के लिए अपनी सपत्नी को जहर दे दिया। जब सपत्नी ने गर्भ मारने के लिए विष दिया, तब उस गरल के साथ ही सगर उत्पन्न हुआ। सगर का पुत्र असमञ्जा हुआ और असमञ्जा का पुत्र अंशुमान् हुआ। अंशुमान् का पुत्र दिलीप और दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ। भगीरथ का पुत्र ककुत्स्थ और ककुत्स्थ का पुत्र रघु हुआ। रघु का पुत्र तेजस्वी और प्रवृद्ध राक्षस कल्माषपाद हुआ और उसका पुत्र शंखण था। शंखण का पुत्र सुदर्शन और उसका पुत्र अग्निवर्ण हुआ। अग्निवर्ण का पुत्र शीघ्रग और उसका पुत्र मरु था। मरु का पुत्र प्रशुश्रुक और उससे अम्बरीष हुआ। अम्बरीष का पुत्र नहुष, नहुष का ययाति, ययाति का पुत्र नाभाग, नाभाग का पुत्र अज हुआ। अज का पुत्र दशरथ और दशरथ के पुत्र राम व भ्राता हुए।

जनकवंशः—

राजाभूत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा ।
निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां वरः ॥
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः ।
प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः ।
उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः ।
नन्दिवर्धसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः ।
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।

देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥
बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरो प्रतापवान् ।
महावीरस्य धृतिमान् सुधृतिः सत्यविक्रमः ॥
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ।
धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः ॥

अर्थ – सब मनुष्यों में श्रेष्ठ, अपने कर्मों से तीनों लोकों में विख्यात परम-धर्मात्मा राजा निमि हुआ। उसका पुत्र था मिथि, मिथि का पुत्र था जनक। वह प्रथम जनक था। प्रथम जनक से उदावसु। उदावसु का धर्मात्मा पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन था। नन्दिवर्धन का पुत्र शूरवीर सुकेतु नाम का हुआ। सुकेतु का महाबली धर्मात्मा पुत्र देवरात था। राजर्षि देवरात का पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथ का शूरवीर पुत्र प्रतापी महावीर हुआ। महावीर का पुत्र धृतिमान् और सुधृति का पराक्रमी धर्मात्मा पुत्र धृष्टकेतु। धृष्टकेतु का पुत्र राजर्षि हर्यश्व विख्यात था।

हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः ।
प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः ।
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः ।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः ।
महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः ।
कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत ॥
महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत ।
तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः ।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता यत्र वीरः कुशध्वजः ।

वाल्मीकीयरामायण (१।७१।३-१३)

अर्थ—हर्यश्व का पुत्र मरु और मरु का पुत्र था प्रतीन्धक। प्रतीन्धक का धर्मात्मा पुत्र कीर्तिरथ हुआ। कीर्तिरथ का पुत्र था देवमीढ़। देवमीढ़ का पुत्र विबुध। विबुध का पुत्र महीध्रक। महीध्रक का पुत्र राजा कीर्तिरात महाबली था। राजर्षि कीर्तिरात का पुत्र था महारोमा। महारोमा का पुत्र धर्मात्मा स्वर्णरोमा हुआ। राजर्षि स्वर्णरोमा का पुत्र उत्पन्न हुआ ह्रस्वरोमा। धर्मज्ञ महाबली राजा ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हुए—ज्येष्ठ मैं (सीरध्वज) और मेरा अनुज वीर कुशध्वज।

(सोमवंश)

सोम(=चन्द्र)—

सोम के पिता भगवान् अत्रि ऋषि थे। राजाओं का राजा सोम महातेजस्वी था, वह राजा का राजा माहाराज्य विधि से अभिषिक्त हुआ। दक्ष की रोहिणी आदि सत्ताईस पुत्रियां सोम की पत्नियां थीं जिनके नाम पर सत्ताईस नक्षत्रों के नाम भी पड़े।

सोम की परिचर्या (सेवा) सिनी, कुहू, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी—ये नौ देवियां करती थीं।

बुध सौमायन—

सोम का महाबली दस्युहन्ता कुमार विद्वान् बुध था। उसका यह नामकरण किया गया।

पुरूरवा ऐल—

बुध का पुत्र इला से पुरूरवा हुआ, जिससे उसको 'ऐल' कहते हैं।

पुरूरवा ऐल के छः पुत्र—

पुरूरवा ने उर्वशी से गन्धर्वलोक में विख्यात छः पुत्र उत्पन्न किये—आयु, धीमान्, अमावसु, विश्वायु, शतायु और श्रुतायु।

अमावसु वंश—

अमावसु का पुत्र राजा भीम विश्वविजेता था। भीम का उत्तराधिकारी राजा कांचनप्रभ था। कांचनप्रभ का पुत्र विद्वान् राजा महाबली सुहोत्र था। सुहोत्र का पुत्र था जह्नु जो कोशिका (पत्नी) के गर्भ से उत्पन्न हुआ।

× × ×

यौवनाश्व (मान्धाता) की पौत्री (पुरुकुत्स की पुत्री) कावेरी से जह्नु ने विवाह किया। जह्नु का प्रिय पुत्र भी सुहोत्र (द्वितीय) धार्मिक राजा था।

सुहोत्र (द्वितीय) का पुत्र हुआ अजक। उसका पुत्र हुआ यशस्वी बलकाश्व। उसके पुत्र हुए—गय, शील और कुश। कुश के वेद के विद्वान् चार पुत्र हुए।

कुशाश्व कुशनाभश्च अमूररयसो वसुः।
कुशस्तम्बस्तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तमः।
गाधिर्नामभवत् पुत्रः कौशिकः पाकशासनः॥
पौरुकुत्साभवत्भार्या गाधिस्तस्यामजायत।
पूर्वं कन्यां महाभागां नाम्ना सत्यवतीं शुभाम्।
तां गाधिपुत्रः काव्याय ऋचीकाय ददौ प्रभुः।

× × ×

जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ।
इक्ष्वाकुवंशे त्वभवत्सुवेणुर्नाम पार्थिवः ।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।
रेणुकायां तु कामल्यां तपोधृतिसमन्वितः ।
आर्चीको जनयामास जमदग्निं सुदारुणम् ॥
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेफोऽभवन्मुनिः ।
हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुतः स वै ।
देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥ (वायुपुराणे)

अर्थ—कुशाश्व, कुशनाभ, अमूर्तरया और वसु ।

राजा कुशस्तम्ब ने पुत्र हेतु तप किया। स्वयं कौशिक इन्द्र ही गाधि नाम से उनके पुत्र बन गये। कुशस्तम्ब (कुशिक) की भार्या पौरुकुत्सी (पुरुकुत्स की पुत्री) थी, जिससे गाधि उत्पन्न हुए। इससे पूर्व उनके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो सत्यवती नाम से प्रख्यात थी। गाधिपुत्र (विश्वामित्र) ने उसे ऋचीक काव्य के के लिए समर्पित कर दिया।

वैष्णव तेज के जमन से जमदग्नि (ऋचीकपुत्र) उत्पन्न हुए। गाधि के उत्तराधिकारी विश्वामित्र हुए। इक्ष्वाकुवंश में सुवेणु नाम के एक राजा हुए। उनकी कन्या महाभागा कामली नाम की रेणुका थी। रेणुका कामली से आर्चीक जमदग्नि ने भयंकर क्षत्रियहन्ता तपस्वी परशुराम को उत्पन्न किया जो अग्नि के समान तेजस्वी थे।

धर्मात्मा विश्वामित्र का ही नाम विश्वरथ था। विश्वामित्र का पुत्र मुनि शुनःशेफ हुआ। हरिश्चन्द्र के यज्ञ में वह शुनःशेफ बलि का पशु बनाया। वह देवों द्वारा दत्त था, अतः वह 'देवरात' था।

विश्वामित्रपुत्राः—

विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे श्रृणु ॥
देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः ।
शालावत्या हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ।
सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः ॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः ।

कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य वै सुताः ॥

(हरिवंशे १।२७)

अर्थ—विश्वामित्र के पुत्र देवरात इत्यादि थे जो तीनों लोकों में विख्यात हुए। उनके नाम थे—देवश्रवा, कति (कत) जिनसे कात्यायन विख्यात हुए। अन्य पुत्र थे—शालावत्य, हिरण्याक्ष, रेणु, रेणुमान्, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्दा, जय, देवल, अष्टक, कच्छप और हारित।

(हरिवंश १।२९)

आयुवंशः—

एते पुत्रा महात्मनः पंचैवासन् महाबलाः।
स्वर्भानुतनयायां विप्राः प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम्।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।

अर्थ—स्वर्भानु (राहु) की पुत्री प्रभा के आयु द्वारा पांच महाबली पुत्र उत्पन्न हुए—नहुष, (ज्येष्ठ पुत्र), वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेना जो तीनों लोकों (अर्थात् सम्पूर्ण भूमण्डल की जातियों) में विख्यात थे।

अनेनाःवंशः—

अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः।
प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृंजयो नाम विश्रुतः ॥
सृंजयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः।
विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वः सुतः।
हर्यश्वसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्।
सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य संकृतिः।
संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः।

अर्थ—अनेना का पुत्र प्रतिक्षत्र महायशस्वी था। प्रतिक्षत्र का पुत्र विख्यात सृंजय था। सृंजय का पुत्र जय था और उसका पुत्र था विजय। विजय का पुत्र था कृति और उसका पुत्र था हर्यश्व। उसका पुत्र हुआ प्रतापी सहदेव। सहदेव का पुत्र धर्मात्मा नदीन हुआ। नदीन का पुत्र जयत्सेन और उसका पुत्र हुआ संकृति। संकृति का पुत्र हुआ महायशस्वी क्षत्रधर्मा।

काशिवंशः—

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र शुनहोत्रो महायशाः।
शुनहोत्रस्य दायदास्त्रयः परमधार्मिकाः।

काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ।।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।
शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तस्य काशकः ।
काशस्य काशयो राजन् पुत्रो दीर्घस्तपास्तथा ।।
धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ।।

× × ×

धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ।।
सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ।

× × ×

दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
प्रदर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ बभूवतुः ।।

अर्थ-क्षत्रधर्म का पुत्र हुआ शुनहोत्र और शुनहोत्र के परमधार्मिक तीन पुत्र थे—काश, शल और प्रतापी गृत्समद। गृत्समद का पुत्र हुआ शुनक और शुनक के वंशज शौनक कहलाये। शौनकों में—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों ही वर्ण थे।

शल का पुत्र आर्ष्टिषेण था और उसका पुत्र काशक। (शुनहोत्र के तृतीय पुत्र) काश से काशि क्षत्रिय उत्पन्न हुए। काशि दीर्घतपा काश का पुत्र था, उसका पुत्र धन्व हुआ, जिसका विद्वान् (वैद्य) धन्वन्तरि हुआ।

धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् था। केतुमान् का पुत्र वीर भीमरथ था। भीमरथ का पुत्र राजा दिवोदास हुआ। यह दिवोदास काशी का प्रसिद्ध राजा था।

दिवोदास द्रषद्वती (माधवी) से वीर प्रतर्दन उत्पन्न हुआ। प्रतर्दन के दो पुत्र हुए वत्स और भर्ग।

वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्य चात्मजः ।

× × ×

संनतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ।
सुनीथस्य दायादो क्षेम्यो नाम महायशाः ।।
क्षेम्यस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ।।

धर्मकेतुस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ।
आनर्तस्तु विभोः पुत्रं सुकुमारस्तु तत्सुतः ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ॥
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।
वेणुहोत्र सुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥
एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
इत्येते काशयः प्रोक्ता नहुषस्य निबोध मे ॥ (हरिवंशे १।२९)

अर्थ—वत्स का पुत्र था अलर्क और उसका उत्तराधिकारी हुआ संनति । संनति का पुत्र था सुनीथ । उसका दायाद था क्षेम्य यशस्वी । क्षेम्य का पुत्र हुआ केतुमान् और उसका पुत्र था सुकेतु, उसका पुत्र हुआ धर्मकेतु, उसका पुत्र था महारथी सत्यकेतु और उसका उत्तराधिकारी हुआ विभुनाम का राजा । विभुपुत्र था आनर्त और उसका पुत्र था सुकुमार । उसका पुत्र हुआ धृष्टकेतु तथा उसका पुत्र हुआ राजा वेणुहोत्र । उसका पुत्र हुआ भर्ग तथा उसका दायाद था वत्सभूमि और भर्ग से भर्गभूमि ।

ये अंगिरस के पुत्र भार्गव (भृग्वङ्गिरस) थे, जो काशिजन कहे गये हैं ।

नहुषपुत्राः—

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।
नहुषस्य दायादा षडिन्द्रोपमतेजसः ।
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पांचिको भवः ।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ।
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम् ।
ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः ।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥

अर्थ—तेजस्वी नहुष द्वारा पितृकन्या विरजा से छः इन्द्रतुल्य बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए—यति, ययाति, संयाति, आयाति, सुयाति, पांचिक और भव । इनमें ययाति नहुष का उत्तराधिकारी हुआ । यति ज्येष्ठ था (परन्तु वह संन्यासी होगया, अतः) ययाति राजा बना । यति का विवाह ऐक्ष्वाक राजा ककुत्स्थ कन्या 'गौ' नाम्नी से हुआ, परन्तु वह संन्यासी होकर ब्राह्मण मुनि बन गया ।

ययातिः—

तेषां ययातिः पंचानां विजित्य वसुधामिमाम् ।

देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः ॥

अर्थ—उनमें शेष पांचों में ज्येष्ठ ययाति ने पृथिवी को जीतकर उशना शुक्राचार्य भार्गव की पुत्री देवयानी को पत्नी रूप में प्राप्त किया तथा वृषपर्वा की पुत्री आसुरी शर्मिष्ठा को भी प्राप्त किया ।

ययातिपुत्राः—

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ (हरि १।३० अ०)

अर्थ—देवयानी के दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु तथा वार्षपर्वणी शर्मिष्ठा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु ।

(हरिवंश १।३१ अ० ३२ अ०)

पूरुवंशः—

पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजाऽऽसीज्जनमेजयः ।
प्राचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद् दिशः ॥
प्राचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः ।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा तु महीपतिः ।
सुधन्वनो बहुगवः शम्पातिस्तस्य चात्मजः ॥
शम्पातेस्तु रहस्पाती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः ।
रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥
ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च ।
कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ।
दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः ।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रिकाश्च दश स्त्रियः ॥
रुद्रा शूद्रा च मद्रा च मलदा मलहा तथा ।
खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च ।
तथा गोचपला तु स्त्री रत्नकूटा च ता दश ।
ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः ।
रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम् ॥

अर्थ—पुरु का महाबलीपुत्र जनमेजय था और उसका पुत्र हुआ प्राचीन्वान्, जिसने प्राची दिशा को जीता । प्राचीन्वान् का पुत्र था प्रवीर और उसका पुत्र हुआ मनस्यु । मनस्यु का पुत्र हुआ अभयद, उसका पुत्र था सुधन्वा, उसका पुत्र

हुआ बहुगव । बहुगव का उत्तराधिकारी हुआ शम्पाति । उसका पुत्र हुआ रौद्राश्व ।

रौद्राश्व से घृताची अप्सरा द्वारा दश पुत्र उत्पन्न हुए—ऋचेयु, कक्णेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, दशार्णेयु, जलेयु, स्थलेयु, धनेयु, वनेयु तथा रौद्राश्व की दश पुत्री भी हुईं—रुद्रा, शूद्रा, मद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला और स्त्रीरत्नकूटा ।

अत्रिवंश में उत्पन्न प्रभाकर आत्रेय इन दश रौद्राश्व पुत्रियों का पति था । रुद्रा ने यशस्वी सोम को उत्पन्न किया ।

ऋचेयुवंशः—

ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ।
यस्यां देव्यां मतिनारं त्वजीजनत् ॥
मतिनारः सरस्वत्यां पुत्रानजनयच्छुभान् ।
तंसुं तथा प्रतिरथं ध्रुवं चातिधार्मिकम् ।
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा ।
पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृपः ।
मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्वायना द्विजाः ।
ईलिनी भूय यस्यासीत् कन्या वै जनमेजय ॥

अर्थ—रौद्राश्व के ज्येष्ठ पुत्र ऋचेयु की पत्नी किसी तक्षक की पुत्री ज्वलना नाम वाली थी । इसका पुत्र मतिनार हुआ । मतिनार ने सरस्वती पत्नी से तंसु, प्रतिरथ, ध्रुव संज्ञक पुत्र और विख्यात कन्या गौरी को उत्पन्न किया जो मान्धाता की माता थी ।

कण्व और काण्वायन – प्रतिरथ का पुत्र कण्व नाम का राजा (ब्रह्मक्षत्रोपेत) हुआ । कण्व का पुत्र मेधातिथि हुआ, जिसके वंशज काण्वायन ब्राह्मण हुए ।

प्रतिरथ की एक कन्या थी, जिसका नाम था ईलिनी ।

(हरिवंश १।३२ अ०)

ब्रह्मवादिन्यधि स्त्रीं च तंसुस्तामभ्यगच्छत ।
तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः ॥
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ॥
उपदानवी सुतांल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान् ॥
दुष्यन्तमथ सुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥

भरतवंशः—

दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान् ॥
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः ॥

× × ×

पूर्वं तु वितथं तस्य कृतं वै पुत्रजन्म हि ।
ततः स वितथो नाम भरद्वाजस्तथाऽभवत् ।।
ततोऽथ वितथे जाते भरतः स दिवं ययौ ।
वितथस्य दायादो भुवमन्युर्बभूव ह ।।
महाभूतोपकाश्चाऽऽसंश्चत्वारो भुवमन्युजाः ।।
बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गार्ग्यश्च वीर्यवान् ।।
नरस्य सांकृतिपुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ ।।
गुरुवीतिस्त्रिदेवश्च सांकृत्यायनवरौ स्मृतौ ।।
दायदाश्चापि गार्ग्यस्य शिनिबद्धाद् बभूव ह ।
स्मृताश्चै ततो गार्ग्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः ।।
महावीर्यसुतश्चापि भीमस्तस्मादुरुक्षयः ।
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे वै सुतत्रयम् ।
त्रय्यारुणिं पुष्करिणं तृतीयं सुषुवे कपिम् ।
कपेः क्षत्रवरा ह्येते तयोः प्रोक्ता महर्षयः ।
गार्ग्याः साङ्कृतयो वीर्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
संश्रिताऽङ्गिरसं पक्षं बृहत्क्षत्रस्य वक्ष्यति ।।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः ।
सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ।।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं नाम्ना वै हस्तिनापुरम् ।।
हस्तिनश्चापि दायदास्त्रय परमधार्मिकाः ।
अजमीढ़ो द्विजमीढ़ः पुरुमीढ़स्तथैव च ।।

अर्थ—वह ईलिनी ब्रह्मवादिनी (मन्त्रद्रष्टा ऋषिका) थी । तंसु ने ईलिनी को पत्नी रूप में पाया (या ईलिनी ही पुरुष रूप में तंसु बन गई)

तंसु के सुरोध नाम के पुत्र हुए जो राजर्षि धर्मनेत्र भी कहे जाते थे । वे महायशस्वी, ब्रह्मवादी (मन्त्रद्रष्टा) और पराक्रमी थे, उनकी पत्नी का नाम उपदानवी था । ईलिनीकुमार सुरोध ने उपदानवी से चार पुत्र उत्पन्न किये—दुष्यन्त, सुष्यन्त, प्रवीर और अनघ । दुष्यन्त का उत्तराधिकारी महाबली भरत दौष्यन्ति हुआ । वह शकुन्तला का पुत्र था, इसी 'भरत' के नाम से पौरव क्षत्रियण भारत कहलाये ।

भरतवंश—इससे पूर्व भरत द्वारा पुत्रजन्म के सभी प्रयत्न व्यर्थ होगये, तदनन्तर भरद्वाज ऋषि के प्रयत्न से, उनका एक पुत्र उत्पन्न हुआ, अतः उसका

नाम वितथ (भारद्वाज) रखा गया। वितथ के उत्पन्न होते ही भरत स्वर्ग सिधार गये।

वितथ का उत्तराधिकारी भुवमन्यु (या भूमन्यु) हुआ। चार महाभूतों (पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि) के समान भूमन्यु के चार बलवान् पुत्र हुए—बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और गार्ग्य (या गर्ग)

नर का पुत्र हुआ संकृति और संकृति के दो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए – गुरुवीति और त्रिदेव। वे श्रेष्ठ सांकृत्यायन ऋषि कहे जाते हैं। गार्ग्य के पुत्र शिनि आदि हुए। गार्ग्यगण क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहे जाते हैं।

महावीर्य का पुत्र था भीम तथा उसका पुत्र हुआ उरुक्षय। उरुक्षय की पत्नी विशाला ने तीन पुत्र उत्पन्न किये—त्रय्यारुणि, पुष्करी और कपि। कपि क्षत्रियप्रवर थे और उनके वंशज ऋषि होगये। गार्ग्य, सांकृता और महावीर्य के क्षत्रोपेत ब्राह्मण होगये, जो आंगिरस पक्ष के थे।

हस्ती और हस्तिनापुर—भूमन्यु के ज्येष्ठपुत्र बृहत्क्षत्र का पुत्र धार्मिक राजा सुहोत्र था। सुहोत्र का पुत्र प्रसिद्ध राजा 'हस्ती' था जिसने 'हस्तिनापुर' नगर को बसाया।

हस्ती के तीन पुत्र हुए—अजमीढ़, द्विजमीढ़ और पुरुमीढ़।

(हरिवंश १।३२)

अजमीढ़वंशः—

अजमीढ़स्य पत्न्यस्तु शुभाः कुरुकुलोद्वहाः।
नलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना।
अजमीढ़स्य केशिन्यां कण्वः समभवत्किल।
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना: द्विजाः।
अजमीढ़स्य धूमिन्यां जज्ञे बृहद्वसुर्नृपः।
बृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः।
बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य बृहद्रथः॥
विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्यात्मजः।
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥
रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो दृढ़धनुस्तथा।
वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सराः॥
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुषेणो महायशाः।

अर्थ—कुरुकुल को उत्पन्न करने या वहन वाली तीन पत्नियां थीं राजा अजमीढ़ की—नलिनी, केशिनी और श्रेष्ठ स्त्री धूमिनी। अजमीढ़ की पत्नी

केशिनी से कण्व (द्वितीय) उत्पन्न हुए। कण्व के पुत्र मेधातिथि थे, जिससे काण्वायन (द्वितीय) उत्पन्न हुए।

अजमीढ़ की द्वितीय पत्नी 'धूमिनी' से राजा बृहद्वसु उत्पन्न हुए। उसका महाबली पुत्र बृहद्विष्णु था। उसका पुत्र हुआ बृहत्कर्मा और उसका पुत्र हुआ बृहद्रथ। बृहद्रथ का पुत्र हुआ विश्वजित् और उसका पुत्र हुआ सेनजित्।

सेनजित् के चार संसारप्रसिद्ध पुत्र हुए—रुचिराश्व, काव्य, राम और दृढ़धनु।

नीपवंशः—

पृथुषेणस्य पारस्तु पारान्नीपोऽथ जज्ञिवान् ॥
यस्य चैकशतं चाऽऽसीत्पुत्राणामिति नः श्रुतम्।
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ॥
तेषां वंशकरः श्रीमान्राजाऽऽसीत् कीर्तिवर्धनः।
काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत् ॥
समरस्य परः पारः सदश्व इति त्रयः।
पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृषुर्बभौ ॥
वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनेह कर्मणा।
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ॥
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम पार्थिवः।
बभूव शुकजामाता ऋत्वीभर्ता महायशाः ॥
अरणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपाः।
योगसूनुः सुतस्तस्य विष्वक्सेनोऽभवन्नृपः ॥
विभ्राजपुत्रा राजानः सुकृतेनेह कर्मणा ॥
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ॥
भल्लाटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हतः।
भल्लाटस्य दायादो राजाऽऽसीज्जनमेजयः ॥

अर्थ—रुचिराश्व का पुत्र हुआ यशस्वी पृथुषेण। उसका पुत्र हुआ पार और पार का पुत्र था 'नीप', इस नीप के एक सौ एक पुत्र थे, ऐसा इतिहासों में प्रसिद्ध है और वे सभी वंशज (और उनके वंशज) 'नीप क्षत्रिय' कहलाते थे। नीप के एक सौ एक पुत्रों में वंशप्रवर्तक या प्रधान राजा 'समर' था, जो सदा ही युद्ध के लिए सचेष्ट रहता था। उसकी राजधानी 'काम्पिल्य' नगर में थी।

'समर' के तीन पुत्र हुए—पर, पार (द्वितीय) और सदश्व। समर के पुत्र सर्वगुणसम्पन्न थे। पार का पुत्र था 'वृष' उसका पुत्र था सर्वगुणसम्पन्न सुकृति।

उसका पुत्र हुआ विभ्राज। विभ्राज का उत्तराधिकारी हुआ राजा अणुह। उसकी पुत्रियां किसी (अज्ञात) शुक की पत्नियां थीं।

अणुह का प्रसिद्ध पुत्र राजा ब्रह्मदत्त था। जो महायोगी और महातपस्वी था। योग के द्वारा ब्रह्मदत्त का पुत्र 'विष्वक्सेन' (महायोगी) उत्पन्न हुआ।

विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका पुत्र राजा भल्लाट (=दुर्मुख पांचाल) हुआ जो युद्ध में (राधेय कर्ण के द्वारा) मारा गया। भल्लाट का पुत्र हुआ राजा जनमेजय दौर्मुखि।

(वायुपुराण अ० ३७)

द्विजमीढ़वंशः—

द्विजमीढ़स्य तु दायादो विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः।
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः॥
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढ़नेमिः प्रतापवान्।
दृढ़नेमिसुतश्चापि सुवर्मा नाम पार्थिवः॥
आसीत्सुवर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रतापवान्।
सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराट्बभौ॥
तस्याऽन्वये च महति महत्पौरवनन्दनः।
महत्पौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः॥
अथ रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः॥
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः॥
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमान् प्रभुः।
तस्याऽऽसीत् संनतिर्नाम कृतस्तस्य सुतोऽभवत्।
शिष्यो हिरण्यनाभेस्तु कौथुमस्तस्य महात्मनः।
चतुर्विंशतिधा तेन प्रोक्तास्ताः सामसंहिताः॥
कातिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः।
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः।
नीलो नाम महाबाहुः पांचालाधिपतिर्हतः॥
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः।
क्षेमात्सुवीरः संजज्ञे सुवीरस्य नृपंजयः॥
नृपंजयाद्वीरध इत्येते पौरवाः स्मृताः॥

अर्थ—द्विजमीढ़ का पुत्र विद्वान् (ऋषि) राजा यवीनर था। उसका पुत्र धृतिमान् हुआ। धृतिमान् का पुत्र सत्यधृति था। उसका पुत्र था प्रतापी दृढ़नेमि। उसका पुत्र हुआ सुवर्मा। सुवर्मा का पुत्र हुआ 'सार्वभौम'। यह सार्वभौम पृथिवी का

एकछत्र शासक था। उसके वंश में 'महत्पौरव' नाम का राजा हुआ। उसका पुत्र रुक्मरथ था। रुक्मरथ का पुत्र सुपार्श्व नाम का राजा हुआ। सुपार्श्व का पुत्र धार्मिक राजा सुमति था। उसका पुत्र भी धार्मिक 'संनतिमान्' राजा था। उसका पुत्र हुआ संनति। संनति का पुत्र हुआ राजा कृत। जो हिरण्यनाभ शिष्य कौथुम का शिष्य था, जिसके शिष्यों ने २४ सामसंहितायें प्रवचन कीं।

कृत का पुत्र उग्रायुध कार्ति हुआ। वह पौरववंशी उग्रायुध महान् वीर था, जिसने आक्रमण करके पृषत (पांचाल) के पितामह राजा नील को मार डाला था।

उग्रायुध का उत्तराधिकारी यशस्वी राजा क्षेम हुआ। क्षेम का पुत्र था सुवीर और उसका पुत्र हुआ नृपंजय। नृपंजय का पुत्र हुआ 'वीरथ'। ये सभी पौरववंशीय राजा थे।

पांचालवंशः—

अजमीढ़स्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः।
नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरभ्यजायत॥
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु ऋक्षस्तु पुरुजानुजः।
ततस्तु ऋक्षदायदो भेदाच्च तनयास्त्विमे॥
मुद्गलः सृंजयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा।
यवीयांश्चापि विक्रान्तः काम्पिल्यश्चैव पंचमः॥
अलं संरक्षणे तेषां पंचाला इति विश्रुताः।
मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥

अर्थ—अजमीढ़ की पत्नी नीलिनी से राजा नील उत्पन्न हुआ। नील की उग्र तपस्या के पश्चात् उसका पुत्र 'सुशान्ति' उत्पन्न हुआ। सुशान्ति का पुत्र पुरुजानु था और उसका पुत्र हुआ 'ऋक्ष'। उसका उत्तराधिकारी हुआ 'भेद'। उसके पांच पुत्र हुए—मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, यवीयान् और पराक्रमी पांचवां पुत्र काम्पिल्य।

ये पांचों पुत्र पांच राज्यों के रक्षण में समर्थ थे अतः बनका नाम 'पंचाल' हुआ। मुद्गल के वंशज मौद्गल्य क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए।

एते ह्यङ्गिरसः पक्षे संश्रिताः कण्वमुद्गलाः।
मुद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः॥
इन्द्रसेना यतो गर्भं बध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत।
बध्र्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनका इति नः श्रुतिः॥

दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ।
शारद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ॥
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्याऽपि सुमहायशाः ।
पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ॥
अथ सत्यधृतेः शुक्रं दृष्ट्वाऽप्सरसमग्रतः ।
प्रचस्कन्दे शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ॥
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः ।
कृपः स्मृतः स वै तस्माद् गौतमी च कृपी तथा ॥
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः ।
मैत्रेयस्तु ततो जज्ञे स्मृता एतेऽपि संश्रिताः ॥
एतेऽपि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः ।
राजाऽपि पिजवनो विद्वांस्ततोऽप्रतिरथोऽभवत् ।
अथ वै पिजवनाद्धीमान् सुदासः समपद्यत ।
सौदासः सहदेवश्च सोमकस्तस्य चात्मजः ॥
अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे च सोमकः ।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्शतं विभो ।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वे महात्मनः ।
तेषां यवीयान्पृषतो द्रुपदस्य पिताऽभवत् ।
धृष्टद्युम्नः सुतस्तस्य धृष्टकेतुश्च तत्सुतः ॥

(वायुपुराणे अ० ३७)

अर्थ कण्व (काण्व और मुद्गल (मौद्गल्य) आंगिरस पक्ष के ब्राह्मण थे ।

मुद्गल का ज्येष्ठ पुत्र वध्र्यश्व यशस्वी ब्रह्मिष्ठ (ऋषि) था, जिसको (नैषध नल की पुत्री और मुद्गल की पत्नी) 'इन्द्रसेना' ने उत्पन्न किया था ।

वध्र्यश्व से मेनका (अप्सरा) ने मिथुन (जुड़वा) सन्तान उत्पन्न की, यह इतिहास की प्रसिद्ध घटना थी- राजर्षि दिवोदास और यशस्वी अहल्या (मैत्रेयी)। अहल्या ने शारद्वत (गौतम) के पुत्र ऋषिश्रेष्ठ यशस्वी शतानन्द को उत्पन्न किया । उस (शतानन्द) का पुत्र सत्यधृति था जो धनुर्विद्या में पारंगत हुआ। अप्सरा को आगे देखकर उसका वीर्य शरस्तम्ब में गिर गया, उससे एक मिथुन सन्तति उत्पन्न हुई ! वन में मृगया के लिए गए हुए राजा शन्तनु ने कृपा करके उस मिथुन सन्तति को ग्रहण करके उसका पालन किया, पुत्र का नाम 'कृप' और गौतमी (शारद्वती) का नाम 'कृपा' हुआ ।

दिवोदास का उत्तराधिकारी 'मित्रयु' था, जो ब्रह्मिष्ठ (वेदज्ञ तथा ऋषि) राजा था। उसके अपत्य 'मैत्रेय'[1] कहलाये और उसके वंशज 'मैत्रेय ब्राह्मण' हुए, जिनका गोत्र भार्गव था अतः वे क्षत्रोपेत ब्राह्मण थे।

पांचाल पिजवन, मित्रयु का पुत्र था, जो ऋषि भी था, उसका पुत्र अप्रतिरथ हुआ। उसका पुत्र सुदास पैंजवन[2] हुआ, वह भी विद्वान् ऋषि था। सुदास का पुत्र सहदेव और उसका पुत्र सोमक था। (इसके पश्चात् पांचालों का प्रभुत्व दीर्घकाल तक पृषत तक लुप्त सा रहा।)

मानो सोमक के रूप में वंशप्रवर्तक अजमीढ़ ही उत्पन्न होगया। सोमक का पुत्र 'जन्तु' हुआ, उसके मरने पर उसके (सोमक के) सौ पुत्र हुए जो सोमक रूपी अजमीढ़ के पुत्र थे। उनमें सोमक वंशज (उत्तरकालीन) पृषत राजा था, जो द्रुपद का पिता था। द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न और उसका पुत्र हुआ धृष्टकेतु।

(वायुपुराण अ० ३७)

कुरुवंशः—

तस्यां वै धूम्रवर्णायामजमीढ़श्च वीर्यवान्।
ऋक्षं सा जनयामास धूम्रवर्णं सिताग्रजम्॥
ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणादभूत्॥
यः प्रयागं पदाऽऽक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह।
कृष्ट्वैनं सुमहातेजा वर्षाणि सुबहून्यथ॥
तस्यान्वयजाः ख्याताः कुरवो नृपसत्तमाः।
कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च॥
परिक्षितो महाराज पुत्रकश्चारिमर्दनः।
सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमान् स्मृतः॥
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः।
च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्ट्वा यज्ञैर्महातपाः॥
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसखं नृपः।
विद्योपरिचरं वीरं वसुं नामाऽन्तरिक्षगम्॥

× × ×

परीक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजयः।
जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो नाम भूमिपः॥

---

(१) वस्तुतः 'अहल्या मैत्रेयी' मित्रयु की पुत्री और दिवोदास की पौत्री थी।
(२) सगरपुत्र पिजवन (पंचजन-पाठान्तर) का वंशज ऐक्ष्वाक सुदास पैजवन, उस दाशराज्ञ युद्ध का विजेता था, जिसका वर्णन ऋग्वेद में है।

सुरथस्य तु दायादो भीमसेनोऽपि नामतः ।।
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् ।
सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः ।।
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुतिः ।
सार्वभौमाज्जयत्सेन आराधिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।
आराधितो महासत्व अभ्युतायुस्ततः स्मृतः ।
अक्रोधनोऽयुतायोस्तु तस्माद्देवातिथिः स्मृतः ।
देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह ।।
भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्दिलीपस्तस्य चात्मजः ।।
दिलीपसूनुः प्रतीपस्तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः ।
देवापिः शन्तनुश्चैव बह्लिकश्चैव ते त्रयः ।
बह्लिकस्तु विज्ञेयः सप्तबह्लीकेश्वरो नृपः ।
बह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ।।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ।

अर्थ--महाबली अजमीढ़ ने अपनी तृतीय पत्नी धूम्रवर्णा से ऋक्ष नाम का ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न किया जो धूम्रवर्ण (कालारीछ के समान) था, जिसका पुत्र (अतः उसका नाम) ऋक्ष हुआ। ऋक्ष से संवरण उत्पन्न हुआ और संवरण का पुत्र 'कुरु' था। उसने प्रयाग तक पैदल ही आक्रमण किया और कुरुक्षेत्र बनाया। महातेजस्वी कुरु ने कुरुक्षेत्र का कर्षण किया। उसके वंशज राजागण 'कुरु' या 'कौरव' कहलाये। कुरु के प्रिय पुत्र थे सुधन्वा, जह्नु और परीक्षित्, जो शत्रुहन्ता था।

सुधन्वा का उत्तराधिकारी बुद्धिमान् राजा सुहोत्र हुआ। उसका पुत्र धर्मार्थकोविद च्यवन था। उसका पुत्र 'कृत', जिस महातपस्वी ने अनेक यज्ञ किये तब उसका पुत्र विश्वविख्यात इन्द्रसखा राजा विद्योपरिचरवसु था, जो आकाशचारी हुआ।

परीक्षित का उत्तराधिकारी जनमेजय हुआ। उसका पुत्र राजा सुरथ था। सुरथ का पुत्र राजा भीमसेन था।

जह्नु ने 'सुरथ' नाम के पुत्र को उत्पन्न किया, जो राजा बना। सुरथ का उत्तराधिकारी वीर राजा विदूरथ हुआ। विदूरथ का पुत्र इतिहास में 'सार्वभौम' नाम से विख्यात हुआ। सार्वभौम का पुत्र था आराधित, जो महाबली था। उसका पुत्र अभ्युतायु था। उसका पुत्र अक्रोधन था और उसका पुत्र हुआ देवातिथि। देवातिथि का उत्तराधिकारी 'ऋक्ष' था। ऋक्ष से भीमसेन नाम का राजपुत्र और उसका पुत्र था दिलीप। दिलीप का पुत्र था प्रतीप। उसके तीन

पुत्र हुए—देवापि, शन्तनु और वह्लिक। बह्लिक 'सप्तबह्लिक' देश का राजा हुआ। वह्लिक का पुत्र सोमदत्त हुआ। यशस्वी सोमदत्त के पुत्र थे—भूरि, भूरिश्रवा और शल।

देवापिस्तु प्रवव्राज वनं धर्मपरीप्सया।
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः॥
च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तु इष्टकश्च महात्मनः।
शन्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान्वै महाभिषः।

× × ×

स तूपयेमे धर्मात्मा शन्तनुर्जाह्नवीं नृपः।
तस्यां देवव्रतं भीष्मं पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः॥
स च भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः।
काली विचित्रवीर्यन्तु दासेय्यजनयत्सुतम्।
शन्तनोर्दयितं पुत्रं प्रजाहितकरं प्रभुम्॥
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके॥
धृतराष्ट्रं पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्।
धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां सुषुवे शतम्।

(वायुपुराणे अ० ३७)

अर्थ—धर्मप्राप्ति हेतु देवापि तो संन्यासी बनकर बन में चला गया। मुनि देवापि देवों (यज्ञ) का उपाध्याय (पुरोहित) हुआ। इसका पुत्र च्यवन हुआ और उसका पुत्र इष्टक (ऋष्टिषेण=आर्ष्टिषेण इषितसेन शुद्ध पाठान्तर) हुआ।

शन्तनु राजा हुआ, जो पूर्वजन्म राजा महाभिष था। शन्तनु ने जाह्नवी (गंगा) से विवाह किया। उनका पुत्र देवव्रत भीष्म हुआ। वही प्रख्यात भीष्म पाण्डवों के पितामह थे। दासेयी काली (सत्यवती) ने शन्तनु से विचित्रवीर्य को उत्पन्न किया। विचित्रवीर्य शन्तनु का प्रियपुत्र एवं प्रजा का हित करनेवाला था। विचित्रवीर्य के क्षेत्र (पत्नी) में कृष्णद्वैपायन पाराशर्य व्यास ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया।

धृतराष्ट्र से गान्धारी ने सौ पुत्रों (कौरवों) को उत्पन्न किया।

धार्तराष्ट्राः (शतं)—(महा० आदिपर्व १।६७ अ०)

दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन् दुःशासनस्तथा।
दुःसहो दुःशलश्चैव दुर्मुखश्च तथापरः॥
विविंशतिर्विकर्णश्च जलसन्धः सुलोचनः।
विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः।

दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च ।
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्राङ्गदश्च ह ॥
दुर्मदो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ।
ऊर्णनाभः पद्मनाभस्तथा नन्दोपनन्दकौ ॥
सेनापतिः सुषेणश्च कुण्डोदरमहोदरौ ॥
चित्रबाहुश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विरोचनः ॥
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्रचापसुकुण्डलौ ।
भीमवेगो भीमबलो बलाकी भीमविक्रमौ ।
उग्रायुधो भीमशरः कनकायुर्दृढायुधः ।
दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः ।
जरासन्धो दृढसन्धः सत्यसन्धः सहस्रवाक् ॥
उग्रश्रवाः उग्रसेनः क्षेममूर्तिस्तथैव च ॥
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षो दुराधनः ।
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तानुयायिनौ ॥
कवची निषङ्गी दण्डी दण्डधारो धनुर्ग्रहः ।
उग्रो भीमरथो वीरौ वीरबाहुरलोलुपः ॥
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथश्च यः ।
अनाधृष्टः कुण्डभेदी विरावी दीर्घलोचनः ।
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरुः कनकाङ्गदः ॥
कुण्डजश्चित्रकश्चैव दुःशला च शताधिका ।
वैश्यापुत्रो युयुत्सुश्च धार्तराष्ट्रः शताधिकः ॥
एतदेकशतं राजन् कन्या चैका प्रकीर्तिता ॥

(महाभारते १।६७)

अर्थ—धृतराष्ट्र के सौ पुत्र (कौरव)—दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, दुर्मुख, विविंशति, विकर्ण, जलसन्ध, सुलोचन, बिन्द, अनुबिन्द, दुर्घर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, अंगद, दुर्मद, दुष्प्रधर्ष, विवत्सु, विकट, सम, ऊर्णनाभ, पद्मनाभ, नन्द, उपनन्दक, सेनापति, सुषेण, कुण्डोदर, महोदर, चित्रबाहु, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विरोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रचाप, सुकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, भीम, विक्रम, उग्रायुध, भीमशर, कनकायु, दृढ़ायुध, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, जरासन्ध, दृढ़सन्ध, सत्यसन्ध, सहस्रवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, क्षेमपूर्ति

अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष, दुराधन, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चस, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अनुयायी, कवची, निषङ्गी, दण्डी, दण्डधर, धनुर्ग्रह, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरु, कनकांगद, कुण्डज, चित्रक, दुःशला (कन्या) तथा वैश्यापुत्र युयुत्सु—एक सौ एक धार्तराष्ट्र तथा एक कन्या।

पाण्डवसन्ततिः—

माद्री राज्ञी पृथा चैव पाण्डोभार्ये बभूवतुः।
देवदत्ताः सुतास्ताभ्यां पाण्डोरर्थे विजज्ञिरे।
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः॥
इन्द्राद्धनंजयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः।
अश्विभ्यां सहदेवश्च नकुलश्चापि माद्रिजौ॥
पंचैव पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः।
द्रौपद्यजनयज्ज्येष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात्॥

(वायुपुराणे अ० ३७)

प्रतिविन्ध्यः सुतसोमः श्रुतकीर्तिस्तथापरः।
नाकुलिस्तु शतानीकः श्रुतसेनश्च वीर्यवान्॥

(महाभारते १।६७।१२८)

हिडिम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम्।
काश्या पुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्ववृकं सुतम्॥
सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत।
करेणुमत्यां तु वैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत।
उत्तरायान्तु वैराट्यां परिक्षिदभिमन्युजः॥
पारीक्षितस्तु दायदो राजाऽऽसीज्जनमेजयः॥

अर्थ—पाण्डु की दो पत्नियां थीं—माद्री और पृथा (कुन्ती), उनसे देवों द्वारा दिये पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मराज से युधिष्ठिर, वायु से भीमसेन, इन्द्र से अर्जुन, जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी था और अश्विनीकुमारों से सहदेव और नकुल माद्रीपुत्र उत्पन्न हुए।

पांच पाण्डवों से पांच द्रोपदीपुत्र उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर द्वारा प्रतिविन्ध्य उत्पन्न हुआ।

प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक, नाकुलि और बलवान् श्रुतसेन।

हिडिम्बा ने भीमसेन से घटोत्कच को उत्पन्न किया। भीमसेन से ही

काशिराजपुत्री ने 'सर्ववृक' नाम का पुत्र उत्पन्न किया। मद्र राजकुमारी विजया ने सहदेव से सुहोत्र को, नकुल ने वैद्या करेणुमती से निरमित्र को और सुभद्रा ने अर्जुन से महारथी अभिमन्यु को उत्पन्न किया।

विराटराजपुत्री उत्तरा से अभिमन्यु ने परिक्षित् को उत्पन्न किया और परिक्षित् का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था।

बृहद्रथवंश:—

विद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त सूनवः।
महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः॥
प्रत्यग्रथः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम्।
मावेल्लश्चललित्थश्च मत्स्यकालश्च सप्तमः॥
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः।
कुशाग्रस्यात्मजश्चैव ऋषभो नाम वीर्यवान्॥
ऋषभस्यापि दायादः पुष्पवान्नाम विश्रुतः।
विक्रान्तस्तस्य दायादो राजा सत्यहितः स्मृतः।
तस्य पुत्रः सुधन्वा च तस्मादूर्जः प्रतापवान्।
ऊर्जस्य नभसः पुत्रस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्।
शकले द्वे स वै जातो जरया सन्धितस्तु सः।
जरासन्धो महाबाहुर्जरया संधितस्तु सः॥

(वायुपुराणे अ० ३७)

अर्थ—गिरिका अप्सरा ने विद्योपरिचर राजा से सात पुत्रों को उत्पन्न किया—महारथी बृहद्रथ जो मगध का राजा हुआ, प्रत्यग्रथ, कुश, मणिवाहन, मावेल्ल, ललित्थ और मत्स्यकाल सातवां।

बृहद्रथ का उत्तराधिकारी पुत्र कुशाग्र हुआ, कुशाग्र का बलवान् पुत्र ऋषभ था, ऋषभ का उत्तराधिकारी पुष्पवान् नाम का विख्यात राजा था। उसका पुत्र विक्रान्त तथा उसका पुत्र सत्यहित हुआ। उसका पुत्र सुधन्वा और उसका प्रतापी पुत्र था ऊर्ज। इसका पुत्र हुआ नभस (बृहद्रथ द्वितीय मगध) नभस का महाबली पुत्र महाबाहु जरासन्ध, जो जरा राक्षसी द्वारा दो शकल (शरीर खण्डों) द्वारा जोड़े जाने पर जरासन्ध कहलाया।

महाभारते—आदिपर्वणि

ययातिवंशः—

दश प्राचेतसः पुत्राः सन्तः पुण्यजनाः स्मृताः।
मुखजेनाग्निना यैस्ते पूर्वं दग्धा महीरुहाः॥

तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षाज्जाता इमाः प्रजाः ॥
सम्भूताः पुरुषव्याघ्र स हि लोकपितामहः ।
वीरिण्या सह संगम्य दक्षः प्राचेतसो मुनिः ॥
आत्मतुल्यानजनयत् सहस्रं संशितव्रतान् ॥
सहस्रसंख्यान् संभूतान् दक्षपुत्रांश्च नारदः ।
मोक्षमध्यापयामास सांख्यज्ञानमुत्तमम् ॥
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसंदधे ।
प्रजापतिः प्रजा दक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥
ददौ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
कालस्य नमने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥
त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा ।
मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान् समजीजनत् ।
इन्द्रादीन् वीर्यसम्पन्नान् विवस्वन्तमथापि च ।
विवस्वतः सुतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रभुः ॥
मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः ॥ (७५।४-१२)
धर्मात्मा स मनुर्धीमान् यत्र वंशः प्रतिष्ठितः ।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ।
ततोऽभवन्महाराज ब्रह्म क्षत्रेण संगतम् ॥
ब्राह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमधारयन् ।
वेनं धृष्णुं नरिष्यन्तं नाभागेक्ष्वाकुमेव च ।
कारुषमथ शर्यातिं तथा चैवाष्टमीमिलाम् ।
पृषध्रं नवमं प्राहुः क्षत्रधर्मपरायणम् ।
नाभागारिष्टदशमान् मनोः पुत्रान् प्रचक्षते ।
पञ्चाशत् तु मनोः पुत्रास्तथैवान्येऽभवन् क्षितौ ।
अन्योन्यभेदात् ते सर्वे विनेशुरिति नः श्रुतम् ॥
पुरूरवास्ततो विद्वानिलायां समपद्यत ।
सा वै तस्याभवन्माता पिता चैवेति नः श्रुतम् । (७५।१३-१९)

अर्थ—दश प्रचेता पुत्र पुण्य जन (पवित्र पुरुष) थे, उन्होंने अपने मुख से अग्नि निकालकर पेड़ों को जला दिया था। उन दश प्रचेताओं से एक प्राचेतस दक्ष उत्पन्न हुआ और दक्ष से विपुल प्रजा उत्पन्न हुई। हे पुरुषव्याघ्र वही दक्ष प्राचेतस लोकपितामह (ब्रह्मा) थे। दक्ष प्राचेतस मुनि ने वीरिणी से अपने समान

कठोरव्रतशील सहस्रपुत्रों को उत्पन्न किया। सहस्र उत्पन्न दक्ष पुत्रों को नारद ने मोक्ष शास्त्र पढ़ाया। वही सांख्यशास्त्र था। तब दक्ष प्रजापति ने पचास पुत्रिका कन्याओं का अभिसंधान किया। प्रजासृष्टि हेतु दक्ष ने दश कन्यायें धर्म (प्रजापति) और तेरह कन्यायें कश्यप को तथा कालगति की ज्ञापक सत्ताईस कन्यायें सोम को दी।

मारीच कश्यप की दाक्षायणी तेरह पत्नियां थीं। मारीच कश्यप ने अदिति से आदित्यों को जन्म दिया। इन्द्रादि तथा विवस्वान् आदि को उन्होंने उत्पन्न किया। विवस्वान् के यम और मनु वैवस्वत उत्पन्न हुए। उनमें मनु बुद्धिमान् और प्रभु पुत्र थे।

मनु धर्मात्मा थे और उन्हीं से मानव वंश की प्रतिष्ठा हुई। ब्रह्म क्षत्रादि मानव मनु से ही उत्पन्न हुए। ब्रह्म क्षत्र के साथ ही उत्पन्न हुआ। मानव (मनु वंशीय) ब्राह्मणों ने सांग बेद को धारण किया। मनु के पुत्र—वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, करुष, शर्याति और अष्टमी इला तथा नवम पृषध्र था जो क्षत्रिय था। नाभागारिष्ट दशम पुत्र था। मनु के पचास पुत्र थे, जो वे परस्पर भेदभाव के कारण विनष्ट होगये। इला से पुरूरवा उत्पन्न हुआ वही उसकी माता और पिता भी थी, ऐसा इतिहास में प्रसिद्ध है।

षट् सुता जज्ञिरे चैलादायुर्धीमानमावसुः।
दृढ़ायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः॥
नहुषं वृद्धशर्माणं रजिं गयमनेनसम्।
स्वर्भानवीसुतानेतानायोः पुत्रान् प्रचक्षते। (१।७५।२४-२६)
यतिं ययातिं संयातिमायातिमयतिं ध्रुवम्।
नहुषो जनयामास षट् सुतान् प्रियवादिनः॥
यतिस्तु योगमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः।
ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत् सत्यपराक्रमः। (१।७५।३०-३२)
देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेव च।
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठायां च जज्ञिरे।३४।
ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। (७६।१)

अर्थ—ऐल पुरूरवा से छः पुत्र—धीमान्, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु—उर्वशी के पुत्र हुए। आयु के पुत्र थे – नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, गय और अनेना— ये स्वर्भानु (राहु) की पुत्री के पुत्र थे। नहुष के छः पुत्र हुए - यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव। इनमें यति योग धारण करके ब्राह्मण मुनि होगया और सत्यपराक्रमी ययाति नाहुष सम्राट् हुआ। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को उत्पन्न किया। शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पूरु उत्पन्न हुए।

(युधिष्ठिर कहते हैं) ययाति हमारे पूर्वज थे, जो प्रजापति प्रचेता से दशवें थे।

पूरुवंशः—

प्रवीरेश्वररौद्राश्वास्त्रयः पुत्रा महारथाः।
पूरोः पौष्ट्यामजायन्त प्रवीरो वंशकृत् ततः ।५।
मनस्युरभवन् तस्माच्छूरसेनीसुतः प्रभुः।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता राजीवलोचनः ।६।
शक्तः संहननो वाग्मी सौवीरीतनयास्त्रयः।
मनस्योरभवन् पुत्राः शूराः सर्वे महारथाः ।७।
अन्वग्भानुप्रभृतयो मिश्रकेश्यां मनस्विनः।
रौद्राश्वस्य महेष्वासा दशाप्सरसि सूनवः ।८।
ऋचेयुरथ कक्षेयुः कृकणेयुश्च वीर्यवान्।
स्थण्डिलेयुर्वनेयुश्च जलेयुश्च महायशाः ।१०।
तेजेयुर्बलवान् धीमान् सत्येयुश्चेन्द्रविक्रमः।
धर्मेयुः संनतेयुश्च दशमो देवविक्रमः ।११।
अनाधृष्टिरभूत् तेषां विद्वान् भुवि तथैकराट्।
ऋचेयुरथ विक्रान्तो देवानामिव वासवः ।१२।
अनाधृष्टिसुतस्त्वासीद् राजसूयाश्वमेधकृत्।
मतिनार इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ।१३।
मतिनारसुता राजंश्चत्वारोऽमितविक्रमाः।

अर्थ—पुरु से पौष्टी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो महारथी थे—प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व, इनमें प्रवीर वंशप्रवर्तक था। उसका पुत्र मनस्यु हुआ, जो शूरसेनी का पुत्र था, वह मनस्यु चतुःसमुद्रान्त पृथिवी का रक्षक था। मनस्यु के सौवीर कन्या से तीन शूरवीर और महारथीपुत्र उत्पन्न हुए—शक्र, संहनन और वाग्मी। रौद्राश्व के महारथी दशपुत्र मिश्रकेशी अप्सरा से उत्पन्न हुए—ऋचेयु, कक्षेयु, कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, वनेयु, जलेयु, तेजेयु और बुद्धिमान् इन्द्रतुल्य पराक्रमी सत्येयु, धर्मेयु और सन्ततेयु—ये दशों ही देवों के तुल्य पराक्रमी थे। जिस प्रकार देवों में इन्द्र बड़ा बलवान् था, उसी प्रकार विद्वान् (ऋषि) अनाधृष्टि पृथिवी का एकछत्र सम्राट् था। अनाधृष्टि का पुत्र था मतिनार जो राजसूय और अश्वमेध कर्त्ता परमधार्मिक शासक था।

मतिनार के चार अतिपराक्रमी पुत्र थे—

तंसुर्महानतिरथो द्रुह्युश्चाप्रतिमद्युतिः ।१४।

तेषां तंसुर्महावीर्यः पौरवं वंशमुद्वहन् ।
आजहार यशो दीप्तं जिगाय च वसुन्धराम् ।१५।
ईलिनं तु सुतं तंसुर्जनयामास वीर्यवान् ।
सोऽपि कृत्स्नामिमां भूमिं विजिग्ये जयतां वरः ।१६।
रथन्तर्यां सुतान् पञ्च पञ्चभूतोपमांस्ततः ।
ईलिनो जनयामास दुष्यन्तप्रभृतीन् नृपान् ।१७।
दुष्यन्तं शूरभीमौ च प्रवसुं वसुमेव च ।
तेषां श्रेष्ठोऽभवद् राजा दुष्यन्तो जनमेजय ।१८।
दुष्यन्ताद् भरतो जज्ञे विद्वाञ्छाकुन्तलो नृपः ।
तस्माद् भरतवंशस्य विप्रतस्थे महद् यशः ।१९।
भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् ।
नाभ्यनन्दत तान् राजा नानुरूपा ममेत्युत ।२०।
ततस्तान् मातरः क्रुद्धाः पुत्रान् निन्युर्यमक्षयम् ।
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्म तत् ।२१।
ततो महद्भिः क्रतुभिरीजानो भरतस्तदा ।
लेभे पुत्रं भरद्वाजाद् भूमन्युं नाम भारत ।२२।
ततो दिविरथो नाम भुमन्योरभवत् सुतः ।
सुहोत्रश्च सुहोता च सुहविः सयजुस्तथा ।२४।
पुष्करिण्यामृचीकस्य भूमन्योरभवन् सुताः ।
तेषां ज्येष्ठः सुहोत्रस्तु राज्यमाप महीक्षिताम् ।२५।
ऐक्ष्वाकी जनयामास सुहोत्रात् पृथिवीपते ।।
अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत ।३०।
अजमीढो वरस्तेषां तस्मिन् वंशः प्रतिष्ठितः ।
षट् पुत्रान् सोऽप्यजनयत् तिसृषु स्त्रीषु भारत ।३१।
ऋक्षं धूमिन्यथो नीली दुष्यन्तपरमेष्ठिनौ ।।
केशिन्यजनयज्जह्नुं सुतौ व्रजनरूपिणौ ।३२।
तथेमे सर्वपाञ्चाला दुष्यन्तपरमेष्ठिनाः ।।
अन्वयाः कुशिका राजन् जह्नोरमिततेजसः ।३३।
व्रजनरूपिणयोर्ज्येष्ठमृक्षमाहुर्जनाधिपम् ।
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे राजन् वंशकरः सुतः ।३४।

अर्थ—तंसु महान् अतिरथी और द्रुह्यु अमितद्युति था । इनमें से तंसु बलशाली ने पौरव वंश का भार वहन किया अर्थात् उत्तराधिकारी बना । उसने

पृथिवी को जीतकर देदीप्यमान यश प्राप्त किया। तंसु ने अपने पुत्र ईलिन को उत्पन्न किया। उसने भी सम्पूर्ण पृथिवी को जीता। वह विजेताओं में श्रेष्ठतम था। उसने अपनी पत्नी रथन्तरी से पांच महाभूतों के तुल्य पांच दुष्यन्त आदि पुत्रों को उत्पन्न किया—दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु। उनमें ज्येष्ठ पुत्र राजा दुष्यन्त उत्तराधिकारी हुआ। दुष्यन्त से विद्वान् शाकुन्तल भरत उत्पन्न हुआ। उस (भरत) से भरतवंश का महान् यश प्रथित हुआ। भरत की तीन स्त्रियों से नौ पुत्र उत्पन्न हुए, परन्तु राजा भरत ने उनका अभिनन्दन नहीं किया क्योंकि उसने कहा—'ये मेरे अनुरूप नहीं हैं।' अतः उनकी माताओं ने उनको मार दिया। अतः भरत के पुत्रों का जन्म वितथ (बेकार) गया। तब भरत ने महान् यज्ञों का आयोजन किया और उसने भरद्वाज ऋषि द्वारा भुमन्यु नाम का पुत्र प्राप्त किया। तदनन्तर भुमन्यु से दिविरथ पुत्र उत्पन्न हुआ। तथा अन्य पुत्र थे—सुहोत्र, सुहोता, सुहवि और सयजु। पुष्करिणी पत्नी से ऋचीक ऋषि द्वारा (नियोग से) ये पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से ज्येष्ठपुत्र सुहोत्र था, जिसने पृथिवी का राज्य प्राप्त किया।

सुहोत्र ने ऐक्ष्वाकी (इक्ष्वाकुवंशीय) पत्नी से तीन पुत्र उत्पन्न किये—अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़। इनमें अजमीढ़ ज्येष्ठ था, जिसमें वंश प्रतिष्ठित था। अजमीढ़ की पत्नी धूमिनी ने ऋक्ष को, नीली ने दुष्यन्त और परमेष्ठी को, केशिनी ने जह्नु, व्रजन और रूपी को उत्पन्न किया। सभी पंचाल दुष्यन्त और परमेष्ठी के वंशज थे। कुशिकगण अमित तेजस्वी जह्नु के वंशज थे। ऋक्ष—व्रजन और रूपी से ज्येष्ठ राजा था। ऋक्ष से संवरण उत्पन्न हुआ, जो वंश प्रवर्तक था।

ततः संवरणात् सौरी तपती सुषुवे कुरुम्।४८।
राजत्वे तं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे।
तस्य नाम्नाभिविख्यातं पृथिव्यां कुरुजाङ्गलम्।४९।
कुरुक्षेत्रं स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः।
अश्ववन्तमभिष्यन्तं तथा चैत्ररथं मुनिम्।५०।
जनमेजयं च विख्यातं पुत्रांश्चास्यानुशुश्रुम।
पंचैतान् वाहिनी पुत्रान् व्यजायत मनस्विनी।५१।
अविक्षितः परिक्षित् तु शबलाश्वस्तु वीर्यवान्:
आदिराजो विराजश्च शाल्मलिश्च महाबलः।५२।
उच्चैःश्रवा भंगकारो जितारिश्चाष्टमः स्मृतः।
एतेषामन्ववाये तु ख्यातास्ते कर्मजैर्गुणैः।

जनमेजयादयः सप्त तथैवान्ये महारथाः ।५३।
परिक्षितोऽभवन् पुत्राः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ।
कक्षसेनोग्रसेनौ तु चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।५४।
इन्द्रसेनः सुषेणश्च भीमसेनश्च नामतः ।
जनमेजयस्य तनया भुवि ख्याता महाबलाः ।५५।
धृतराष्ट्रः प्रथमजः पाण्डुर्वाह्लीक एव च ।
निषधश्च महातेजास्तथा जाम्बूनदो बली ।५६।
कुण्डोदरः पदातिश्च वसातिश्चाष्टमः स्मृतः ।
धृतराष्ट्रोऽथ राजाऽऽसीत् तस्य पुत्रोऽथ कुण्डिकः ।
हस्ती वितर्कः क्राथश्च कुण्डिनश्चापि पंचमः ५८।
हविश्रवास्तेथेन्द्राभो भूमन्युश्चापराजितः ।
धृतराष्ट्रसुतानां तु त्रीनेतान् प्रथितान् भुवि ।५९।
प्रतीपं धर्मनेत्रं च सुनेत्रं चापि भारत ।
प्रतीपः प्रथितस्तेषां बभूवाप्रतिमो भुवि ।६०।
प्रतीपस्य त्रयः पुत्रा जज्ञिरे भरतवर्षभ ।
देवापिः शान्तनुश्चैव वाह्लीकश्च महारथः ।६१।
देवापि प्रवव्राज तेषां धर्महितेप्सया ।
शान्तनुश्च महीं लेभे वाह्लीकश्च महारथः ॥ (१।९४)

अर्थ—तदनन्तर संवरण से सौरी तपती ने कुरु को उत्पन्न किया। सभी प्रजा ने उसको धर्मज्ञ समझकर राजा बनाया। उसी के नाम से पृथिवी पर कुरुजांगल प्रख्यात हुआ। कुरु ने अपने तप द्वारा कुरुक्षेत्र को पवित्र कर दिया। उसके पुत्र थे –अश्ववान्, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि और जनमेजय, जो विख्यात था। इन पांच पुत्रों को मनस्विनी वाहिनी ने उत्पन्न किया। इसी के कुल में अविक्षित्, परिक्षित् शबलाश्व, आदिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भंगकार, जितारि आठवां, ये सभी अपने गुणों से विख्यात हुए। जनमेजयादि सभी महारथी थे। ये सभी धर्म और अर्थ को जाननेवाले परिक्षित् के पुत्र थे। परिक्षित् के विख्यात महाबली पुत्र थे—कक्षसेन, उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण और भीमसेन। जनमेजय के पुत्र थे—धृतराष्ट्र (ज्येष्ठ) पाण्डु, वाह्लीक, निषध, बलवान् जाम्बूनद, कुण्डोदर, पदाति और वसाति।

धृतराष्ट्र राजा था और उसका पुत्र था कुण्डिक। अन्य पुत्र थे—हस्ती, वितर्क, क्राथ, कुण्डी पंचमपुत्र। धृतराष्ट्र के पृथिवी पर तीन विख्यात पुत्र थे—हविश्रवा, इन्द्राभ और भूमन्यु। प्रतीप, धर्मनेत्र और सुनेत्र—ये तीन विख्यात

धृतराष्ट्र के पुत्र थे। उनमें प्रतीप, अप्रतिम रूप से विख्यात था। प्रतीप के तीन पुत्र हुए--देवापि, शन्तनु और वाह्लीक। देवापि प्रव्रजित होगया, धर्म पालन के लिए शन्तनु और बाह्लिक राजा हुए।

महाभारते आदिपर्वणि

पुरुवंशः (पाठान्तरम्)—(अ० १।९५)

पुरोस्तु भार्या कौसल्या नाम। तस्यामस्य जज्ञे जनमेजयो नाम, यस्त्रीनश्वमेधानाजहार, विश्वजिता चेष्ट्वा वनं विवेश।११।
जनमेजयः खल्वनन्तां नामोपयेमे माधवीम्। तस्याममस्य जज्ञे प्राचिन्वान्; यः प्राचीं दिशं जिगाय यावत् सूर्योदयात्, ततस्तस्य प्राचिन्वत्त्वम्।१२। प्राचिन्वान् खल्वश्मकीमुपयेमे यादवीम्। तस्यामस्य जज्ञे संयातिः।१३। संयाति, खलु दृषद्वतो दुहितरं वराङ्गीं नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे अहंयातिः। अहंयातिः खलु कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भानुमतीं नाम। तस्यामस्य जज्ञे सार्वभौमः।१५।

सार्वभौमः खलु जित्वा जहार कैकेयीं सुनन्दां नाम। तामप्युपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे जयत्सेनो नाम।१६।

जयत्सेनो खलु वैदर्भीमुपयेमे सुश्रवां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अवाचीनः।१७।

अवाचीनोऽपि वैदर्भीमपरामेवोपयेमे मर्यादां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अरिहः।१८।

अरिहः खल्वाङ्गीमुपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे महाभौमः।१९।

महाभौमः खलु प्रासेनजितीमुपयेमे सुयज्ञां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अयुतायी; यः पुरुषमेधानामयुतमानयत्। तेन अस्यायुतायित्वम्।२०।

अयुतायी खलु पृथुश्रवसो दुहितरमुपयेमे कामां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अक्रोधनः।२१।

स खलु कालिङ्गीं करम्भां नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे देवातिथिः।२२।

देवातिथिः खलु वैदेहीमुपयेमे मर्यादां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अरिहो नाम।२३।

अरिहः खल्वाङ्गेयीमुपयेमे सुदेवां नाम। तस्यां पुत्रमजीजनदृक्षम्।२४।

ऋक्षः खलु तक्षकदुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम। तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयामास ।२५।

मतिनारः खलु सरस्वत्यां गुणसमन्वितं द्वादशवार्षिकं सत्रमाहरत्। समाप्ते च सत्रे सरस्वत्यभिगम्य तं भर्तारं वरयामास। तस्यां पुत्रमजीजनत् तंसुं नाम ।२६।

अत्रानुवंशश्लोको भवति—

तंसुं सरस्वती पुत्रं मतिनारादजीजनत्।
ईलिनं जनयामास कालिङ्ग्यां तंसुरात्मजम् ।२७।

ईलिनस्तु रथन्तर्यां दुष्यन्ताद्यान् पञ्च पुत्रानजीजनत् ।२८।

दुष्यन्तः खलु विश्वामित्रदुहितरं शकुन्तलां नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे भरतः ।२९।

भस्मा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ।३०।
रेतोधाः पुत्रः उन्नयति नरदेव यमक्षयात्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।३१।

ततोऽस्य भरतत्वम्। भरतः खलु काशेयीमुपयेमे सार्वसेनीं सुनन्दां नाम। तस्यामस्य जज्ञे भूमन्युः ।३२।

भूमन्युः खलु दाशार्हीमुपयेमे विजयां नाम। तस्यामस्य जज्ञे सुहोत्रः ।३३।

सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकुकन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम। तस्यामस्य जज्ञे हस्ती य इदं हास्तिनपुरं स्थापयामास। एतदस्य हास्तिनपुरत्वम् ।३४।

हस्ती खलु त्रैगर्तीमुपयेमे यशोधरां नाम। तस्यामस्य जज्ञे विकुण्ठनो नाम ।३५।

विकुण्ठनः खलु दाशार्हीमुपयेमे सुदेवां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अजमीढो नाम ।३६।

अजमीढस्य चतुर्विंशं पुत्रशतं बभूव कैकेय्यां गान्धार्यां विशालाया-मृक्षायां चेति। पृथक् पृथक् वंशधरा नृपतयः। तत्र वंशकरः संवरणः ।३७।

संवरणः खलु वैवस्वतीं तपतीं नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे कुरुः ।३८।

कुरुः खलु दाशार्हीमुपयेमे शुभाङ्गीं नाम। तस्यामस्य जज्ञे विदुरः ।३६।

विदुरस्तु माधवीमुपयेमे अमृतां नाम। तस्यामस्य जज्ञे परिक्षित् ।४१।

अर्थ–पुरु की भार्या कौसल्या थी। उससे पुरु ने अपने पुत्र जनमेजय को उत्पन्न किया जिसने तीन अश्वमेध यज्ञ किये तथा वह विश्वजित् यज्ञ करके वन में चला गया। जनमेजय ने माधवी (मधु की पुत्री) अनन्ता से विवाह किया। उससे प्राचीनवान् उत्पन्न हुआ। उसने प्राची दिशा के भूक्षेत्र को जीता, जहां से सूर्योदय होता है, यही उसके प्राचीनवान् नाम होने का कारण (रहस्य) था। प्राचीनवान् ने यादवी अश्मकी से विवाह किया। उससे संयाति उत्पन्न हुआ। संयाति ने दृषद्वान् (पर्वतक्षेत्र के राजा) की पुत्री वरांगी से विवाह किया। उससे उनका पुत्र अहंयाति उत्पन्न हुआ। अहंयाति ने कृतवीर्य की पुत्री भानुमती से विवाह किया। उनका पुत्र 'सार्वभौम' था।

सार्वभौम ने सुनन्दा कैकेयी को जीतकर अपहरण किया और उससे विवाह किया। उनसे जयत्सेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जयत्सेन ने सुश्रवा वैदर्भी से विवाह किया। उसका पुत्र अवाचीन हुआ। अवाचीन ने अन्य वैदर्भी मर्यादा से विवाह किया, उनका पुत्र अरिह हुआ। अरिह ने अंग राजकुमारी से विवाह किया। उससे महाभौम उत्पन्न हुआ, महाभौम ने प्रसेनजित् की पुत्री सुयज्ञा से विवाह किया। उनका पुत्र अयुतायी हुआ। उसने दशसहस्र पुरुषमेध किये। इसलिए उसका नाम 'अयुतायी' हुआ। अयुतायी ने पृथुश्रवा की पुत्री कामा से विवाह किया। उनसे 'अक्रोधन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अक्रोधन ने कलिंग राजकुमारी करम्भा से विवाह किया। उससे देवातिथि पैदा हुआ। देवातिथि ने मर्यादा नाम की वैदेही से विवाह किया। उससे अरिह उत्पन्न हुआ। अरिह ने सुदेवा नाम्नी अंगराजकुमारी से विवाह किया। उनका पुत्र ऋक्ष हुआ। ऋक्ष ने तक्षकपुत्री ज्वला से विवाह किया। उसने मतिनार नाम के पुत्र को उत्पन्न किया। मतिनार ने सरस्वती तट पर गुणयुक्त द्वादशवार्षिक सत्र की समाप्ति पर सरस्वती उसके पास आई और पति के रूप में मतिनार का वरण किया। तब उसने तंसु नाम के पुत्र को उत्पन्न किया। इस सम्बन्ध में श्लोक (का अर्थ) है— 'मतिनार से सरस्वती ने पुत्र तंसु को उत्पन्न किया और तंसु ने कालिंगी (कलिंगराज पुत्री) से ईलिन (पुत्र) को उत्पन्न किया। ईलिन ने रथन्तर से दुष्यन्तादि पांच पुत्रों को उत्पन्न किया। दुष्यन्त ने विश्वामित्र पुत्री शकुन्तला से गान्धर्व विवाह किया। उनसे भरत उत्पन्न हुआ।' (इस सम्बन्ध में श्लोक प्रसिद्ध है) – 'माता भस्मा के समान है, पुत्र पिता का ही होता है उसी (पिता) का वह

होता है। हे दुष्यन्त ! पुत्र का पालन करो और शकुन्तला का अपमान मत करो। अपने वीर्य से उत्पन्न पुत्र हे नरदेव ! नरक से पिता को बचाता है। तुम ही इस गर्भ के धाता हो, शकुन्तला ने सत्य कहा है।" अतः यह 'भरत' (भरण-पोषण) का भरतत्व हुआ। भरत ने काशिराज की पुत्री सुनन्दा से विवाह किया जो सर्वसेन काशिराज की पुत्री थी। उससे भूमन्यु उत्पन्न हुआ। भूमन्यु ने दाशार्ही (दशार्ह राज की पुत्री) विजया से विवाह किया। उससे सुहोत्र उत्पन्न हुआ। सुहोत्र ने किसी ऐक्ष्वाक राजा की कन्या सुवर्णा से विवाह किया, उससे 'हस्ती' उत्पन्न हुआ। उसने हस्तिनापुर बसाया। यह उसका हस्तिनापुरत्व हुआ। उसकी पत्नी यशोधरा त्रैगर्ती थी। उसका पुत्र था विकुण्ठन। विकुण्ठन ने दाशार्ही सुदेवा से विवाह किया। उससे अजमीढ़ उत्पन्न हुआ। अजमीढ़ के १२४ पुत्र थे—कैकेयी, गान्धारी, विशाला, ऋक्षा इत्यादि से। वे पृथक्-पृथक् वंशों के प्रवर्तक थे। प्रमुख वंशकर संवरण था। संवरण ने वैवस्वती (सौरी—मित्र राजा की कन्या) तपती से विवाह किया। उसका पुत्र हुआ कुरु। कुरु का विवाह दाशार्ही शुभांगी से हुआ। उसका पुत्र विदूर (विदूरथ) था। विदूर ने माधवी अमृता से विवाह किया। उसका पुत्र परिक्षित् था।

परिक्षित् खलु बाहुदामुपयेमे सुयशां नाम। तस्यामस्य जज्ञे भीमसेनः।४२।

भीमसेनः खलु कैकेयीमुपयेमे कुमारीं नाम। तस्यामस्य जज्ञे प्रतिश्रवा नाम।४३।

प्रतिश्रवसः प्रतीपः खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम। तस्यां पुत्रानुत्पादयामास देवापिं शान्तनुं बाह्लीकं चेति।४४।

देवापिः खलु बाल एवारण्यं विवेश। शान्तनुस्तु महीपालो बभूव।४५। अत्रानुवंशश्लोको भवति—

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं स सुखमश्नुते।
पुनर्युवा च भवति तस्मात् तं शान्तनुं विदुः॥
इति तदस्य शान्तनुत्वम्।४५।

शान्तनुः खलु गङ्गां भागीरथीमुपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे देवव्रतो नाम; यमाहुर्भीष्ममिति।४७।

भीष्मः खलु पितुः प्रियचिकीर्षया सत्यवतीं मातरमुदवाहयत्, यामाहुर्गन्धकालीति।४८।

तस्यां पूर्वं कानीनो गर्भः पराशराद् द्वैपायनोऽभवत्।

तस्यामेव शान्तनोरन्यौ द्वौ पुत्रौ बभुवतुः ।४६।

विचित्रवीर्यश्चित्राङ्गदश्च । तयोरप्राप्तयौवन एव चित्राङ्गदो गन्धर्वेण हतः । विचित्रवीर्यस्तु राजाऽऽसीत् ।५०।

विचित्रवीर्यः खलु कौसल्यात्मजे अम्बिकाम्बालिके काशिराजदुहितरावुपयेमे ।५१।

विचित्रवीर्यस्त्वनपत्य एव विदेहत्वं प्राप्तः । ततः सत्यवत्यचिन्तयन्मा दौष्यन्तो वंश उच्छेदं व्रजेदिति ।५२।

सा द्वैपायनमृषिं मनसा चिन्तयामास । स तस्याः पुरतः स्थितः किं करवाणीति ।५३।

सा तमुवाच—भ्राता तवानपत्य एव स्वर्यातो विचित्रवीर्यः । साध्वपत्यं तस्योत्पादयेति ।५४।

स तथेत्युक्त्वा त्रीन् पुत्रानुत्पादयामास; धृतराष्ट्रं, पाण्डुं विदुरं चेति ।५५।

तत्र धृतराष्ट्रस्य राज्ञः पुत्रशतं बभूव गान्धार्यां वरदानाद् द्वैपायनस्य ।५५।

अर्थ—परिक्षित् ने सुयशा बाहुदा से विवाह किया। उनका पुत्र भीमसेन था। भीमसेन ने 'कुमारी' नाम की कैकेयी से विवाह किया। उसका पुत्र था प्रतिश्रवा। प्रतिश्रवा का पुत्र था प्रतीप। उसका विवाह सुनन्दा शैब्या से हुआ। उसके पुत्र हुए—देवापि, शान्तनु और बाह्लीक। देवापि बाल्यकाल में ही अरण्य में प्रवेश कर गये। शान्तनु राजा हुए। अनुवंश श्लोक (अर्थ) है—"जिस जिस जीर्ण (वृद्ध) पुरुष को शान्तनु अपने हाथ से स्पर्श करते थे, वही पुरुष युवा हो जाता था, इसलिए वे शान्तनु कहलाये। यह उनके नाम की व्युत्पत्ति हुई। शान्तनु ने गंगा भागीरथी से विवाह किया। उसका पुत्र देवव्रत हुआ, जिसको 'भीष्म' कहते हैं। भीष्म ने अपने पिता का प्रिय करने के लिए पिता का विवाह सत्यवती से कराया, जिसको गन्धकाली (या मत्स्यगन्धा) कहते हैं। सत्यवती के कानीनपुत्र पराशर से कृष्णद्वैपायन व्यास थे। उससे शान्तनु के दो पुत्र हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्य यौवनकाल से ही गन्धर्वराज द्वारा युद्ध में मारे गये। विचित्रवीर्य राजा हुए। विचित्रवीर्य ने कौसल्या की पुत्री और काशिराज की कन्यायें अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया। विचित्रवीर्य बिना पुत्र के ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। तब सत्यवती ने सोचा कि कहीं यह भरतवंश उच्छिन्न न हो जाए। उसने (अपने पुत्र) द्वैपायन ऋषि का मन से

चिन्तन किया। वह माता के सामने उपस्थित होगये और बोले—"मैं आपकी क्या सेवा करूं?" वह बोली—"तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य बिना पुत्र के ही स्वर्ग सिधार गया। तुम उसकी पत्नी से श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करो।" कृष्णद्वैपायन ने कहा—"ठीक है", ऐसा कहकर तीन पुत्रों को उत्पन्न किया—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर।

गान्धारी से धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए, कृष्णद्वैपायन के वरदान से।

तेषां धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां चत्वारः प्रधाना बभूवुः। दुर्योधनो दुःशासनो विकर्णश्चित्रसेनेति।५७।

पाण्डोस्तु द्वे भार्ये बभूवतुः कुन्ती पृथा नाम माद्री च इत्युभे स्त्रीरत्ने।५८।

...सा तथोक्ता पुत्रानुत्पादयामास। धर्माद् युधिष्ठिरं मारुताद् भीमसेनं शक्रादर्जुनमिति।६१।

...माद्र्यामश्विभ्यां नकुलसहदेवावुत्पादितौ।६३।

...तत्र द्रौपदीं भार्यामविन्दन्। स्वविषयं चाभिजग्मुः।७४।

कुशलिनः पुत्रांश्चोत्पादयामासुः। प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरः, सुतसोम वृकोदरः, श्रुतकीर्तिमर्जुनः, शतानीकं नकुलः, श्रुतकर्माणं सहदेव इति।७५।

युधिष्ठिरस्तु गोवासनस्य शैब्यस्य देविका नाम कन्यां स्वयंवरे लेभे। तस्यां पुत्रं जनयामास यौधेयं नाम।७६।

भीमसेनोऽपि काश्यां बलन्धरां नामोपयेमे वीर्यशुल्काम्। तस्यां पुत्रं सर्वगं नामोत्पादयामास।७७।

अर्जुनः खलु द्वारवतीं गत्वा भगिनीं वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीं भार्यामुदवहत्। स्वविषयं चाभ्याजगाम कुशली। तस्यां पुत्रमभिमन्युमतीवगुणसम्पन्नं दयितं वासुदेवस्याजनयत्।७८।

नकुलस्तु चैद्यां करेणुमतीं नाम भार्यामुदावहत्। तस्यां पुत्रं निरमित्रं नामाजनयत्।७९।

सहदेवोऽपि माद्रीमेव स्वयंवरे विजयां नामोपयेमे मद्रराजस्य द्युतिमतो दुहितरम्। तस्यां पुत्रमजनयत् सुहोत्रं नाम।८०।

भीमसेनस्तु पूर्वमेव हिडिम्बायां राक्षसं घटोत्कचं पुत्रमुत्पादयामास।८१।

एत्यत एकादश पाण्डवानां पुत्राः। तेषां वंशकरोऽभिमन्युः।८२।

स विराटस्य दुहितरमुपयेमे उत्तरां नाम।८३।

परिक्षीणे कुले जातो भवत्वयं परिक्षिन्नामेति ।८४।
परिक्षित् खलु माद्रवतीं नामोपयेमे त्वन्मातरम्। तस्यां भवान् जनमेजयः ।८५।

अर्थ—धृतराष्ट्र के पुत्रों में चार प्रधान थे—दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन।

पाण्डु की दो पत्नियां थीं– पृथा कुन्ती और माद्री—दोनों ही स्त्रीरत्न थीं। कुन्ती ने (देवों से) पुत्रों को उत्पन्न किया—धर्मराज से युधिष्ठिर, वायुदेव से भीमसेन और इन्द्र से अर्जुन। माद्री ने अश्विनीकुमारों से नकुल और सहदेव को प्राप्त किया। पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी थी। वे अपने राज्य में आये और कुशलतापूर्वक पुत्र उत्पन्न किये। युधिष्ठिर ने प्रतिविन्ध्य, भीमसेन ने सुतसोम, अर्जुन ने श्रुतकीर्ति, नकुल ने शतानीक और सहदेव ने श्रुतकर्मा द्रौपदी से उत्पन्न किये।

युधिष्ठिर ने गोवासन शैब्य की राजकन्या देविका को स्वयंवर में प्राप्त किया। उससे यौधेय नाम का पुत्र उत्पन्न किया। भीमसेन ने वीर्य (बल) के बदले काशेयी बलन्धरा को प्राप्त किया। उससे 'सर्वंग' नाम का पुत्र उत्पन्न किया। अर्जुन ने द्वारिका में जाकर प्रियभाषिणी सुभद्रा, जो वासुदेव कृष्ण की बहिन थी, से विवाह किया किया और कुशलतापूर्वक अपने राज्य में आगया। उससे अतिगुणसम्पन्न (बली) और वासुदेव के प्रिय अभिमन्यु पुत्र को उत्पन्न किया। नकुल ने चैद्यराजपुत्री करेणुमती से विवाह किया और उससे निरमित्र नाम का पुत्र उत्पन्न किया। सहदेव ने मद्रराजपुत्री विजया से स्वयंवर में विवाह किया। वह मद्रराज द्युतिमान् था। उससे सुहोत्र नाम का पुत्र उत्पन्न किया।

भीमसेन ने इनसे पूर्व हिडिम्बा राक्षसी से घटोत्कच नाम का पुत्र उत्पन्न किया। अतः पाण्डवों के ग्यारह (प्रधान) पुत्र थे। उनका वंशकर अभिमन्यु हुआ।

अभिमन्यु का विवाह विराट् की पुत्री उत्तरा से हुआ। परिक्षीण कुल में उसका पुत्र 'परिक्षित्' था। परिक्षित् ने आप (जनमेजय) की माता माद्रवती से विवाह किया, जिसके पुत्र आप जनमेजय हैं।

सौ धार्तराष्ट्रों में प्रमुख पुत्र—दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसंधा, सम, विन्द, अनुविन्द, दुर्घर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्त्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्षा और चारुचित्र।

महाभारत (गीताप्रेस वि० स० २०२६)

जनमेजयभ्रातरः—

जनमेजयः पारिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते। तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेन इति। (१।३।१)
एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदृषिर्धौम्यो नामायोदस्तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुरुपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति। (२।३।२१)
...एषा तस्यापि परीक्षा वेदस्य। (१।३।८०)
तस्यापि वसतस्त्रयः शिष्या बभूवुः। (१।३।८१)
...स कदाचिद् याज्ञकार्येणाभिप्रार्थित उत्तङ्कनामानं शिष्यं नियोजयामास। (१।३।८१)

अर्थ—परिक्षित् पुत्र जनमेजय भ्राताओं के साथ कुरुक्षेत्र में दीर्घसत्र कर रहा था। उसके तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन।

इसी समय आयोद धौम्य नाम के ऋषि थे। उनके तीन शिष्य थे—उपमन्यु, आरुणि और वेद।...यह वेद की परीक्षा हुई। उसके आश्रम में भी उसके तीन शिष्य थे। वह किसी यज्ञ कार्य हेतु प्रस्थान कर गये और अपनी अनुपस्थिति में अपने शिष्य उत्तक को नियुक्त किया।

उपरिचरवसुवंशः—

राजोपरिचरो नाम धर्मनित्यो महीपतिः।१।
स चेदिविषयं रम्यं वसुः पौरवनन्दनः।२। (१।६३)
पुत्राश्चास्य महावीर्याः पञ्चासन्नमितौजसः।
नानाराज्येषु च सुतान् स सम्राडभ्यषेचयत्।
महारथो मागधानां विश्रुतो यो बृहद्रथः॥
प्रत्यग्रहः कुशाम्बुश्च यमाहुर्मणिवाहनम्॥
मावेल्लश्च यदुश्चैव राजन्यश्चापराजितः।
एते तस्य सुता राजन् राजर्षेर्भूरितेजसः।
न्यवासयन् नामभिः स्वैस्ते देशांश्च पुराणि च॥

अर्थ—राजा उपरिचर वसु धर्मात्मा थे। उनका राज्य सुन्दर चेदिदेश में था।

उनके महाबली और तेजस्वी पांच पुत्र थे, जिनको सम्राट् वसु ने विभिन्न राज्यों का राजा अभिषिक्त किया। मगध का राजा विख्यात बृहद्रथ को बनाया। अन्य राजा थे प्रत्यग्रह (प्रत्यग्रथ) कुशाम्बु, मणिवाहन, मावेल्ल और अपराजेय

यदु। राजर्षि उपरिचर वसु के ये तेजस्वी पुत्र थे, जिन्होंने अपने नाम से दश (जनपद) और नगर बसाये।

वासवाः पञ्च राजानः पृथग्वंशाश्च शाश्वताः।
वसन्तमिन्द्रप्रासादे आकाशे स्फटिके च तम्॥
उपतस्थुर्महात्मानं गन्धर्वाप्सरसो नृपम्।
राजोपरिचरेत्येवं नाम तस्याथ विश्रुतम्॥
पुरोपवाहिनीं तस्या नदीं शुक्तिमतीं गिरिः।
गिरिं कोलाहलं तं तु पदा वसुरताडयत्॥
तस्यां नद्यामजनयन्मिथुनं पर्वतः स्वयम्॥
चकार पत्नीं कन्यां तु तथा तां गिरिकां नृपः।
(१।६३।३०-३४, ३५, ३७, ३९)

तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद् वराप्सराः।
उज्जह्रुरुदरात् तस्या स्त्री पुमांसं च मानुषम्।
स मत्स्यो नाम राजासीद् धार्मिकः सत्यसंगरः।
सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यसगन्धिनी।
सा तु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात्।
आसीत् सा मत्स्यगन्धैव कंचित् कालं शुचिस्मिता॥
(१।६३।५८, ६१, ६३, ६७, ६८, ६९)

अर्थ—इन्द्र के तुल्य या वसु के पुत्र वासव पांचों राजा पृथक्-पृथक् चिरकालिक वंशों के प्रवर्तक थे। स्फाटिक इन्द्रप्रासाद में वे आकाश में निवास करते थे। गन्धर्व और अप्सरायें उनकी सेवा में उपस्थित रहती थीं। इसलिए उनका नाम विख्यात होगया—'राजा उपरिचर वसु'। एक बार राजा उपरिचर वसु ने कोलाहल पर्वत को पाद प्रहार किया, जिससे शुक्तिमती नदी निकलती थी। उसके पाद प्रहार से नदी में पर्वत ने दो सन्तानें उत्पन्न कीं—कन्या गिरिका को राजा वसु ने अपनी पत्नी बनाया।

× × ×

किसी ब्रह्मर्षि के शाप से प्रख्यात श्रेष्ठ अप्सरा मर्त्यलोक में आगई। उसके उदर से एक स्त्री और एक पुरुष उत्पन्न हुआ। वह पुरुष मत्स्य नाम का मत्स्य देश का धार्मिक एवं सत्यवादी राजा हुआ तथा कन्या पुत्री मत्स्या मत्स्यगन्धा थी। वह सुन्दरी सत्यवती मत्स्यघात के कारण मत्स्यगन्धा नाम से भी प्रसिद्ध हुई।

मरुत्तवंशः—

आसीत् कृतयुगे तात मनुर्दण्डधरः प्रभुः।
प्रसन्धेरभवत् पुत्रः क्षुप इत्यभिविश्रुतः।२।
क्षुपस्य पुत्र इक्ष्वाकुर्महीपालोऽभवत् प्रभुः।३।
तस्य पुत्रशतं राजन्नासीत् परमधार्मिकम्।
तांस्तु सर्वान् महीपालानिक्ष्वाकुरकरोत् प्रभुः।४।
तेषां ज्येष्ठस्तु विंशोऽभूत् प्रतिमानो धनुष्मताम्।
विंशस्य पुत्र कल्याणो विविंशो नाम भारत।५।
विविंशस्य सुता राजन् बभूवुर्दश पंच च।६।
तेषां ज्येष्ठः खनीनेत्रः स तान् सर्वानपीडयत्।७।
तमपास्य च तद्राज्ये तस्य पुत्रं सुवर्चसम्।
अभ्यषिञ्चन्त राजेन्द्र मुदिता ह्यभवंस्तदा।६।
ततः प्रदध्मौ स करं प्रादुरासीत् ततो बलम्।१५।
एतस्मात् कारणाद् राजन् विश्रुतः स करन्धमः।१६।
तस्य कारन्धमः पुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत्।
अविक्षिन्नाम धर्मात्मा शौर्येणेन्द्रसमोऽभवत्।१६।
तस्य पुत्रोऽतिचक्राम पितरं गुणवत्तया।
मरुत्तो नाम धर्मज्ञश्चक्रवर्ती महायशाः।२३।

(महाभारते अश्वमेधपर्व अ० ४)

अर्थ—कृतयुग में राजा मनु वैवस्वत हुए। (उनका वंशज प्रसन्धि था)। प्रसन्धि का पुत्र 'क्षुप' नाम से विख्यात था। क्षुप का पुत्र राजा इक्ष्वाकु (द्वितीय) हुआ। उसके परमधार्मिक सौ पुत्र थे। उन सभी को इक्ष्वाकु ने विभिन्न प्रदेशों का राजा बनाया। उनमें ज्येष्ठ पुत्र 'विंश' नाम का राजा था जो वीरों में अप्रतिम था। विंश का पुत्र विविंश हुआ। विविंश के पन्द्रह पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ 'खनीनेत्र' था, उसने अन्य भाइयों को पीड़ा दी, तब उसको हटाकर पिता विविंश ने खनीनेत्र के पुत्र सुवर्चा को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया, तब सभी प्रजाजन प्रसन्न हुए। उस सुवर्चा ने विशेष करों की घोषणा की जिससे उसके बल की वृद्धि हुई। इसलिए उसका दूसरा नाम 'करन्धम' विशेष प्रसिद्ध हुआ। उसका पुत्र 'कारन्धम' त्रेतायुगमुख में हुआ। जिसका नाम 'अविक्षित्' था, जो शौर्य में इन्द्र के समान था। गुणों में उसका पुत्र मरुत्त उसका अतिक्रमण कर गया, जो धर्मज्ञ, चक्रवर्ती और महायशस्वी था।

अथौघवान् नाम नृपो नृगस्यासीत् पितामहः।

तस्मौघवती कन्या पुत्रश्चौघरथोऽभवत् ।३८।
तामोघवान् ददौ तस्मै स्वयमोघवतीं सुताम् ।
सुदर्शनाय विदुषे भार्यार्थे देवरूपिणीम् ।३९।

अर्थ—उसी समय राजा नृग का पितामह 'ओघवान्' नाम का राजा था। उसकी पुत्री थी— 'औघवती' और पुत्र था औघरथ। राजा ओघवान् ने अपनी पुत्री औघवती अग्निपुत्र (आग्नेय) सुदर्शन को दे दी, जो देवरूपिणी उसकी पत्नी बनी।

कुशिकवंशः (आजमीढ़ः)—

भरतस्यान्वये चैवाजमीढ़ो नाम पार्थिवः ।२।
तस्य पुत्रो महानासीज्जह्नुर्नाम नरेश्वरः ।
दुहितत्वमनुप्राप्ता गङ्गा यस्य महात्मनः ।३।
तस्यात्मजस्तु सगुणः सिन्धुद्वीपो महायशाः ।
सिन्धुद्वीपाच्च राजर्षिर्बलाकाक्षो महाबलः ।४।
वल्लभस्तस्य तनयः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
कुशिकस्तनयस्तस्य सहस्राक्षसमद्युतिः ।५।
कुशिकस्यात्मजः श्रीमान् गाधिर्नाम जनेश्वरः ।

(महा० अ० १३।अ० ४)

अर्थ—भरतवंश में राजा अजमीढ़ हुए। उनके एक पुत्र जह्नु नाम के राजा थे जिनकी कन्या गंगा नामवाली थी। उसका पुत्र उसके समान गुणों वाला यशस्वी सिन्धुद्वीप था। सिन्धुद्वीप का पुत्र महाबली राजर्षि बलाकाश्व हुआ। उसका पुत्र वल्लभ साक्षात् धर्मराज के समान था। उसका पुत्र इन्द्र के समान तेजस्वी 'कुशिक' था। कुशिक का पुत्र गाधि नाम का श्रेष्ठ राजा था।

वैतहव्याः (वंशः)—

मनोर्महात्मनस्तात प्रजा धर्मेण शासतः ।
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः ।६।
तस्यान्ववाये द्वौ राजन् राजानौ संबभूवतुः ।
हैहयस्तालजंघश्च वत्स्यश्च जयतां वरः ।७।
हैहयस्य च राजेन्द्र दशसु स्त्रीषु भारत ।
शतं बभूव पुत्राणां शूराणामनिवर्तिनाम् ।८। (१३।२०)

अर्थ—प्रजापति महापुरुष मनु के द्वारा धर्मपूर्वक शासन करते हुए उनका विख्यात पुत्र धर्मात्मा शर्याति हुआ। उसके वंश में दो राजा हुए—हैहय (अर्जुन) और तालजंघ। हैहय (अर्जुन) की दश स्त्रियों में सौ पुत्र हुए जो अति शूरवीर और युद्ध में डटे रहनेवाले थे।

काशिवंशः—

काशिष्वपि नृपो राजन् दिवोदास पितामहः ।
हर्यश्व इति विख्यातो बभूव जयतां वरः ।१०।
हर्यश्वस्य दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत ।
सुदेवो देवसंकाशः साक्षाद् धर्म इवापरः ।१३।
सौदेवस्त्वथ काशीशो दिवोदासोऽभ्यषिच्यत ।१५।
वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात् ।१६।
गङ्गाया उत्तरे कूले वप्रान्ते राजसत्तमः ।
गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम् ।१८।

अर्थ—काशि वंश में दिवोदास का पितामह राजा 'हर्यश्व' नाम का विख्यात राजा हुआ। हर्यश्व का उत्तराधिकारी देवतुल्य एवं अपर धर्मराज के समान तेजस्वी काशिराज सुदेव था। सुदेव का पुत्र काशिराज दिवोदास काशी का राजा बना। इन्द्र की आज्ञा से उसने गंगा के उत्तर तटभूमि पर तथा गोमती के दक्षिण तट पर वाराणसी को अपनी राजधानी बनाया।

दिवोदासः पुरीं त्यक्त्वा पलायनपरोऽभवत् ।२२।
गत्वाऽऽश्रमपदं रम्यं भरद्वाजस्य धीमतः ।
जगाम शरणं राजा कृताञ्जलिररिंदम ।२३।
अथास्य तनयो जज्ञे प्रतर्दन इति श्रुतः ।३०।
भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ।५७।
वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च ।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ।५८।
शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत् ॥
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः ।५९।
पुत्रो गृत्समदस्यापि सुचेता अभवद् द्विजः ।
वर्चाः सुचेतसः पुत्रो विहव्यस्तस्य चात्मजः ।६१।
विहव्यस्य तु पुत्रस्तु वितत्यस्तस्य चात्मजः ।
वितत्यस्य सुतः सत्यः संतः सत्यस्य चात्मजः ।६२।
श्रवास्तस्य सुतश्चर्षिः श्रवसश्चाभवत् तमः ॥
तमसश्च प्रकाशोऽभूत् तनयो द्विजसत्तमः ।
प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतां वरः ।६३।
तस्यात्मजश्च प्रमितिर्वेदवेदाङ्गपारगः ।
घृताच्यां तस्य पुत्रस्तु रुरुर्नामोदपद्यत ।६४।

प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत ।
शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः ।६५।

(महा० १३।३०)

अर्थ—आक्रमण से दिवोदास वाराणसीपुरी छोड़कर पलायन कर गये । वे भागकर ऋषि भरद्वाज के आश्रम में गये और हाथ जोड़कर ऋषि की शरण ग्रहण की ।

दिवोदास पुत्र 'प्रतर्दन' इतिहास (श्रुति) में अति प्रसिद्ध हुआ ।

भृगु (भार्गव) ऋषि के वचन से वीतहव्य (हैहयवंशज) ब्रह्मर्षि (ब्राह्मण) होगया । वीतहव्य का पुत्र 'गृत्समद' रूप में इन्द्र के समान था । उसको इन्द्र समझकर दैत्य असुरों ने पकड़ लिया ।

ऋग्वेद (द्वितीय मण्डल) में उसकी श्रुति (मन्त्र) हैं । गृत्समद का पुत्र सुचेता हुआ । सुचेता का पुत्र हुआ वर्चा और उसका पुत्र विहव्य हुआ । विहव्य का पुत्र वितत्य हुआ । वितत्य का पुत्र सत्य और उसका पुत्र हुआ सन्त । सन्त का पुत्र था श्रवा और उसका पुत्र ऋषि तम हुआ । तम का पुत्र हुआ प्रकाश और उसका पुत्र हुआ वागिन्द्र उसका पुत्र था प्रमिति जो वेदवेदांग में पारंगत था । प्रमिति से घृताची द्वारा रुरु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और रुरु द्वारा प्रमद्वरा से 'शुनक' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके वंशज शौनक' कहलाये ।

षष्ठोऽध्याय

यदुवंशः

(वायुपुराण अ० ३२)

हैहयवंशः—

यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पंच देवसुतोपमाः ।
सहस्रजिदथ श्रेष्ठः कोष्टुर्नीलो जितो लघुः ॥
सहस्रजित्सुतः श्रीमाञ्शतजिन्नाम पार्थिवः ।
शतजित्सुता विख्यातास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः ।
हैहयस्य तु दायादो धर्मतन्त्र इति श्रुतिः ॥
धर्मतन्त्रस्य कीर्तिस्तु संज्ञेयस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
संज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः ॥
आसीन्महीष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ।
वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्व एव हि ॥
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः ।
दुर्दमस्य ततो धीमान्कनको नाम विश्रुतः ॥
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।
कृतवीर्यः कार्तिवीर्यः कृतवर्मा तथैव च ॥
कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुनः ।
जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ॥

× × ×

तस्य पुत्रशतं ह्यासीत्पंच तत्र महारथाः ।
शूरश्च शूरसेनश्च वृष्ट्याद्यं वृष एव च ।
जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशाम्पते ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥
तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजंघा इति श्रुतम् ।
तेषां पंचगणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ॥

वीतहोत्रा ह्यसंख्याता भोजाश्चावर्तयस्तथा ।
तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजंघास्तथैव च ॥
वीतिहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिवः ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवाऽमित्रदर्शनः ॥

अर्थ—यदु के पांच देवतुल्य पुत्र उत्पन्न हुए—ज्येष्ठपुत्र सहस्रजित्, क्रोष्टा, नील, जित और लघु ।

सहस्रजित् का पुत्र श्रीमान् शतजित् नाम का राजा हुआ। शतजित् के तीन परमधार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए—हैहय, हय और वेणुहय । हैहय का उत्तराधिकारी धर्मतन्त्र राजा था। धर्मतन्त्र का पुत्र हुआ कीर्ति, और उसका पुत्र था संज्ञेय। संज्ञेय का पुत्र हुआ महिष्मान् राजा। महिष्मान् का पुत्र हुआ प्रतापी भद्रश्रेण्य, जो वाराणसी का शासक भी रहा, जैसाकि पूर्वकथित है। भद्रश्रेण्य का पुत्र हुआ राजा दुर्दम। दुर्दम का पुत्र विद्वान् कनक प्रसिद्ध राजा था। कनक के चार पुत्र हुए जो संसार में विख्यात थे—कृतवर्मा, कार्तिवीर्य, कृतवर्मा और कृतजात ।

कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन हुआ, जिसके एकसहस्रबाहु थी तथा जो सम्पूर्ण पृथिवी (सप्तद्वीप) का सार्वभौम सम्राट् था। अर्जुन के सौ पुत्र थे, जिनमें पांच प्रधान महारथी हुए—शूर, शूरसेन, वृष्ट्याद्य, वृष और जयध्वज। जयध्वज के पुत्र अवन्ति के शासक हुए। जयध्वज का प्रधान पुत्र तालजंघ था, उसके सौ पुत्र (और वंशज भी) 'तालजंघ' नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुए।

महाबली हैहय क्षत्रियों के पांच गण विख्यात थे—वीतिहोत्र (असंख्य) भोज, आवर्ति (अवन्ति), तुण्डिकेर और पराक्रमी तालजंघ।

वीतिहोत्र का पुत्र अनन्त नाम का राजा था। उसका पुत्र हुआ दुर्जय और उसका पुत्र था अमित्रदर्शन ।

क्रोष्टुवंशः

क्रोष्टोः शृणुत राजर्षे वंशमुत्तमपुरुषम् ।
यस्याऽन्ववाये सम्भूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥
क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।
वार्जिवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहावतां वरम् ॥
स्वाहेः पुत्रोऽभवद्राजा रुशद्रुर्ददतांवरः ।
सुतं प्रसूतमिच्छन्ति रुशद्रोरग्रचमात्मजम् ॥
महक्रतुभिरीजे स विविधैराप्तदक्षिणैः ।
चित्रैश्चित्ररथस्तस्य पुत्रकर्मभिरन्वितः ॥
एवं चित्ररथो वीरो यज्ञान्विपुलदक्षिणान् ।

शशबिन्दुः परं वृतो राजर्षीणमनुष्ठितः ॥
चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः ।
तत्रानुवंशश्लोकोऽयं यस्मिन् गीतः पुराविदैः ॥
शशबिन्दोऽस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ।
धीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ।
तेषां षट् च प्रधानास्तु पृथुसाह्वा महाबलाः ॥
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुंजयः ।
पृथुकीर्तिः पृथुदन्तो राजानः शशबिन्दवः ।
शंसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसममन्तरम् ।
अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ।
उशना स तु धर्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम् ।
मरुतस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुष्ठितः ॥
वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुत्ततनयः स्मृतः ।
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ॥
राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्य वीरहाः ।
जज्ञिरे पंच पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबलाः ॥
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः हरिः···।

× × ×

ज्यामघवंशः (विदर्भवंशः)—

ज्यामघस्याऽभवद्भार्या शैव्या बलवती भृशम् ।
तस्य सा तपसोग्रेण शैव्या वैरां असूयत ।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैव्या परिणीता सती ।

अर्थ—अब राजर्षि क्रोष्टु के वंश का वर्णन सुनिये जो स्वयं एक उत्तम पुरुष थे तथा जिनके कुल में वृष्णिकुल नामक भगवान् कृष्ण ने जन्म लिया ।

क्रोष्टु का एकमात्र यशस्वी पुत्र हुआ वृजिनीवान् । वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहि हुआ जो श्रेष्ठ यज्ञकर्त्ता था । स्वाहि का पुत्र महादानी रुशद्रु हुआ । वह रुशद्रु अपने कुल का अग्रणी पुत्र उत्पन्न करना चाहते थे, अतः अनेक महायज्ञों का अनुष्ठान करके पर्याप्त दक्षिणायें दीं । अतः उनका विचित्र कर्मों से युक्त पुत्र 'चित्ररथ' उत्पन्न हुआ । इसी प्रकार वीर राजा चित्ररथ ने विपुल दक्षिण यज्ञ किये तब 'शशबिन्दु' का जन्म हुआ ।

शशबिन्दु महाबली, विशाल शरीर और बहुत सन्तानों वाला महान् चक्रवर्ती सम्राट् था । उसके सम्बन्ध में अनुवंश (वंशसम्बन्धी) यह श्लोक पुराण

(इतिहास) में गाया जाता है। पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा—"शशबिन्दु के सौ पुत्रों में प्रत्येक के सौ पुत्र उत्पन्न हुए जो सभी विद्वान् और रूप तथा धन और तेज से सम्पन्न थे। उनमें से छः अति प्रधान थे, जिनके नाम के आगे 'पृथु' (विशेषण) शब्द लगा हुआ था—यथा—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुंजय, पृथुकीर्ति और पृथुदान्त—ये सभी शशबिन्दु के पुत्र राजा थे। पुराणज्ञ शशबिन्दु के पश्चात् पृथुश्रवा को उसके पश्चात् यज्ञपुत्र पार्थश्रवस उशना को राजा वर्णन करते हैं। धर्मात्मा उशना ने इस पृथिवी का राज्य प्राप्त करके तदनन्तर राजर्षियों द्वारा सेवित मरुत्त को अपना पुत्र बनाया। उसका पुत्र कम्बलबर्हि विद्वान् (ऋषि) राजा था। उसका पुत्र रुक्मकवच हुआ। राजा रुक्मकवच से पांच वीर पुत्र उत्पन्न हुए जो विशाल शरीर और महाबली थे—रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ हरि और ।

विदर्भवंश—ज्यामघ की बलवती पत्नी शैव्या थी। उसके उग्र तप द्वारा शैव्या ने पुत्र विदर्भ को उत्पन्न किया। सौभाग्यवती शैव्या ने (पति द्वारा अपहृत कन्या से) पुत्र विदर्भ का विवाह कराया।

राजपुत्रौ तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ।
पुत्रो विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ।
लोमपादं तृतीयन्तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकम्।
लोमपादात्मजो वस्तुराहृतिस्तस्य चात्मजः।
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्॥
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरो धृष्टः प्रतापवान्।
धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा।
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः।
दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः।
अथ भीमरथस्याऽऽसीत्पुत्रो रथवरः किल॥
तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः।
तस्य चैकादशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात्करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः।
देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशाः।
देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनन्दनः॥
देवनात्स मधुर्जज्ञे यस्य मेधार्थसम्भवः।

मधोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवशस्तथा ॥
नन्दनश्च महातेजा महापुरुवशस्तथा ।
आसीत्पुरुवशात्पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः ॥
जज्ञे पुरुद्वतः पुत्रो भद्रवत्यां पुरूद्वहः ।
ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ॥
सत्त्वात्सत्त्वगुणोपेतः सत्त्वतः कीर्तिवर्धनः ।

अर्थ—जीमूत की पुत्रवधू से विदर्भ ने दो विद्वान् (राजर्षि) पुत्र उत्पन्न किये—'क्रथ' और 'कौशिक' जो महान् वीर और रणकुशल हुए। विदर्भ का तृतीय पुत्र लोमपाद हुआ जो अत्यन्त धार्मिक था। लोमपाद का पुत्र वस्तु और उसका पुत्र आहृति था।

कैशिक का पुत्र 'चिदि' हुआ, जिसके वंशज 'चैद्य' क्षत्रिय हुए। विदर्भपुत्र क्रथ का पुत्र 'कुन्ति' हुआ। कुन्ति का पुत्र था 'धृष्ट' जो युद्ध में प्रतापी और धृष्ट था। धृष्ट का पुत्र शत्रुहन्ता, धर्मात्मा राजा निर्वृत्ति था। उसका पुत्र 'दशार्ह' बड़ा महाबली और पराक्रमी था। दशार्ह का पुत्र हुआ व्योम और उसका पुत्र 'जीमूत' (द्वितीय) हुआ। जीमूत का पुत्र विकृति तथा उसका पुत्र भीमरथ था। भीमरथ का पुत्र था 'रथवर' और उसका पुत्र हुआ नवरथ और इसका पुत्र था दशरथ, उसका पुत्र एकादशरथ और उसका पुत्र शकुनि हुआ। उसका पुत्र धनुर्धर और करम्भक था और उसका पुत्र देवरात हुआ। देवरात का पुत्र महा-यशस्वी देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्र का पुत्र था देवन, जो क्षत्रियों को आनन्द देने वाला था।

देवन का पुत्र 'मधु' था और उसका पुत्र मेधार्थसम्भव, महातेजस्वी मनु, मनुवश, नन्दन और महापुरुवश थे। महापुरुवश का पुत्र पुरुद्वान् हुआ। पुरुद्वान् का पुत्र भद्रवती से पुरुद्वह हुआ, उसकी पत्नी ऐक्ष्वाक वंश की कन्या थी। इसका पुत्र 'सत्वत'। यह 'सत्वत' सत्त्वगुण से सम्पन्न सात्विकी कीर्ति को बढ़ानेवाला हुआ।

हरिवंश १।अ० ३७–३८

सात्वतवंशः—

बभूव माधवसुतः सत्वतो नाम वीर्यवान् ।
सत्त्ववृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणे स्थितः ।
सत्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत् ।
ये भैमाः सुसंवृताः सत्त्वतात् सात्त्वता स्मृताः ॥
राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन् रामे राज्यं प्रशासति ।

शत्रुघ्नो लवणं हत्वा चिच्छेद स मधोर्वनम् ।।
तस्मिन् मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम् ।
निवेशयामास विभुः सुमित्रानन्दवर्धनः ।।
पर्यये चैव रामस्य भरतस्य तथैव च ।
सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम् ।।
भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसम्बन्धकारणात् ।
स्ववशे स्थापिता पूर्वं स्वयमध्यासिता तथा ।।
ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि ।
अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत् ।।
अन्धकस्य सुतो जज्ञे रेवतो नाम पार्थिवः ।
ऋक्षोऽपि रेवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्धनि ।।
रैवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भो महायशाः ।
बभूव पृथिवीपालः पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः ।।
तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु केशव ।
चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाः शुभाः ।।
वसुर्बभ्रुः सुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान् ।
यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे ।।
तैरियं यादवो वंशः पार्थिवैर्बहुलीकृतः ।।

अर्थ—माधव का पुत्र 'सत्वत' हुआ जो बड़ा बलवान् और सर्वगुणों से सम्पन्न था। उसमें सभी राजगुण भी थे।

सत्वत का पुत्र भीम नाम का महान् राजा हुआ। इसी के नाम से भैम नाम के क्षत्रिय (यादव) और सत्वत से सात्वत क्षत्रिय प्रख्यात हुए। इसी भीम (सात्वत) के समय में रामदशरथि का राज्य चल रहा था। इसी समय शत्रुघ्न (दाशरथि) ने लवणासुर को मारकर मधुवन को नष्ट कर दिया तथा मधुवन में मथुरापुरी बसाई (वस्तुतः प्राचीन मधुपुरी-मथुरा) का शत्रुघ्न ने नवीकरण किया, मधु के नाम से नगरी पहिले ही बसी हुई थी। इसी युग में राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने जब वैष्णव पद को प्राप्त किया, तभी भीमसेन सात्वत ने अपने पूर्वराज्य पर पुनः कब्जा कर लिया। कुश के राज्यकाल और लव के यौवराज्यकाल में भीम के पुत्र अन्धक ने राज्य किया। अन्धक का पुत्र राजा रेवत हुआ। रेवत का एक पुत्र ऋक्ष रम्य पर्वत शिखर पर हुआ, जिसका नाम विश्वगर्भा था, जो पृथिवी पर यशस्वी राजा हुआ। उसकी दिव्यरूप वाली तीन पत्नियों से चार लोकपालों के समान शुभलक्षणयुक्त श्रेष्ठ और बलवान् चार पुत्र उत्पन्न

हुए—वसु, बभ्रु, सुषेण और सभाक्ष। ये चारों ही यादववीर चार लोकपालों के समान प्रख्यात थे। इनके द्वारा पृथिवी पर यादव वंश का बहुत विस्तार हुआ।

वायुपुराण अ० ३४

सात्वतवंशस्य विस्तारः—

सात्वती रूपसम्पन्ना कौशल्या सुषुवे सुतान्।
अजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥
अन्धकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्॥
तेषां हि सर्गाश्चत्वारः शृणुध्वं विस्तरेण वै।

अर्थ—रूपसम्पन्न सत्वतपत्नी कोसल्या (कोसल देश की राजकुमारी) ने इन पुत्रों को उत्पन्न किया—भजी, भजमान, दिव्य देवावृध, अन्धक, महाभोज और यादव वृष्णि। उनके चार वंशों को विस्तार से सुनिये।

भजमानवंशः—

भजमानस्य सृंजय्यां बाह्यश्च परिबाह्यकः।
सृंजयस्य सुते द्वे तु बाह्यकस्ते उदावहत्।
तस्य भार्ये भगिन्यौ ते प्रसूतेति सुतान्बहून्॥
निमिश्च पणवश्चैव वृष्णिः परपुरंजयः॥
ये बाह्यकार्यसृंजय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे।
अयुतायुः सहस्रजिदथ······वामकः।
बाह्यकार्यभगिन्यां ये भजमानाद्विजज्ञिरे।
तेषां देवावृधो राजा चकार परमं तपः॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं यथा देवावृधेप्सितः।
तत्र वंशे पुराणज्ञा गाथां गायन्ति वै द्विजाः।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च सहस्राणि च सप्ततिः।
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रुदेवावृधादपि॥

अर्थ—भजमान ने सृंजयराजकुमारी सृंजयी से बाह्य और परिबाह्यक पुत्र हुए। सृंजय वंश के (किसी अन्य) राजा की दो पुत्रियां थीं। उनका विवाह बाह्यक के साथ हुआ, उन दोनों भगिनियों ने, जो बाह्यक की पत्नियां थीं, बहुत से पुत्रों को उत्पन्न किया। उनमें से कुछ पुत्रों के नाम थे—निमि पणव, वृष्णि-शत्रुविजेता। बाह्यक ने आर्यसृंजयी से ये पुत्र उत्पन्न किये—अयुतायु, सहस्रजित् और वामक। बाह्यक ने आर्याभगिनी से जो भजमानवंशज उत्पन्न हुए उनमें देवावृध ने महान् तप किया, उसने अपना इष्टपुत्र, जो सर्वगुण सम्पन्न था, उसके

सम्बन्ध में पुराणज्ञ (इतिहासविद्) ब्राह्मण यह गाथा गाते हैं—बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ है जो देवों ने देवावृध (पिता) के समान किया। उसके साथ पैंसठ हजार और सत्तर पुरुषों ने अमरपद प्राप्त किया—बभ्रु देवावृध के समान।

वृष्णिवंशः—

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णेर्भार्ये बभूवतुः।
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम्।
माद्री युधाजितं पुत्रं सा तु वै देवमीढुषम्॥
अनमित्रं सुतं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभुवतुः।
प्रसेनश्च महाभागः शक्रजिच्च सुतावुभौ॥
तस्य सत्राजितः सूर्यसखा प्राणसमोऽभवत्॥

× × ×

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्।
सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः॥
सात्यकिर्युयुधानश्च तस्य भूतिः सुतोऽभवत्॥

अर्थ—वृष्णि की दो पत्नियां थीं—गान्धारी और माद्री। गान्धारी ने मित्रों को आनन्द देने वाले पुत्र सुमित्र को उत्पन्न किया। माद्री ने युधाजित् और देवमीढुष को उत्पन्न किया। एक अन्य पुत्र अनमित्र था, दोनों ही पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष) थे। अनमित्र का पुत्र था निघ्न। निघ्न के दो पुत्र हुए—महाभाग प्रसेन और शक्रजित्। प्रसेन का पुत्र था सत्राजित् जो सूर्यसखा और उनके प्राण के समान था।

कनिष्ठ वृष्णिपुत्र अनमित्र से शिनि उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र सत्य सम्पन्न सत्यवादी सत्यक हुआ। सत्यक का पुत्र था युयुधान सात्यकि और उसका पुत्र भूति हुआ।

भूतेर्युगन्धरः पुत्र इति भौत्याः प्रकीर्तिताः॥
माद्र्या सुतस्य जज्ञे तु सुतः पृश्निर्युधाजितः।
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकश्च यौ।

× × ×

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिन्दिताम्।
गन्दिनीं नाम कन्यां हि ददौ श्वफल्काय सः।
तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वाफल्को भूरिदक्षिणः॥

अर्थ—भूति का पुत्र युगन्धर हुआ। ये सभी भौत्य कहलाते थे। माद्रीपुत्र युधाजित् से पृश्नि उत्पन्न हुआ। पृश्नि के पुत्र श्वफल्क और चित्रक हुए।

श्वफल्क ने काशिराज की सुन्दरी पुत्री गन्दिनी से विवाह किया। काशिराज ने वह कन्या श्वफल्क को दे दी। उसका पुत्र अक्रूर श्वाफल्कि हुआ, जो यज्ञों में बड़ी दक्षिणायें देता था।

हरिवंशपुराणे १।३४ अध्याय

उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः॥
धर्मधृग् यतिधर्मा च ग्रध्रो भोजोऽन्धकस्तथा।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना॥
अक्रूरेणाग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दनः।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ।
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत् तथा॥
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥
अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः।
महिष्यां जज्ञिरे शूराद् भोज्यायां पुरुषा दश॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि॥
देवभागस्ततो जज्ञे देवश्रवा ·· पुनः।
अनाधृष्टिः कनबको वत्सवानथ गृंजिमः॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पंच चास्य वराङ्गनाः।
पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः॥
राजाधिदेवी च तथा पंचैता वीरमातरः।
पृथां दुहितरं वव्रे कुन्तिस्तां कुरुनन्दनः॥
शूरः पूज्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ॥

अर्थ—गन्दिनी अक्रूर के साथ उपासंग, मद्गु, मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन धर्मधृक्, यतिधर्मा, ग्रध्र, भोज, अन्धक, आवाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा वरांगना नाम की सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई। अक्रूर से उग्रसेनी सुगात्रा द्वारा देवतुल्य प्रसेन और उपदेव पुत्र उत्पन्न हुए। चित्रक के पुत्र थे पृथु, विमृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्व, गवेशणक, अरिष्टनेमि

(नेमिनाथ) सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु, बहुबाहु तथा श्रविष्ठा और श्रवणा दो कन्यायें थीं।

देवमीढुष ने अश्मकी से 'शूर' नाम का पुत्र उत्पन्न किया। शूर से भोज राजकुमारी द्वारा दश पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें वसुदेव प्रधान थे जिनके जन्म लेने पर आकाश में दुन्दुभियां बजने लगी। अन्य थे—देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनबक, वत्सवान्, गृंजिम, श्याम, शमीक और गण्डूष। पांच श्रेष्ठ कन्यायें (शूर की पुत्रियां) थीं पृथुकीर्ति, पृथा (कुन्ती) श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी—ये पांचों वीर पुत्रों की मातायें हुईं।

शूरपुत्री कुन्ती (पृथा) को कुन्तीराष्ट्र के राजा कुन्तिभोज ने वरण किया, अतः शूर ने वह पुत्री वृद्ध कुन्तिभोज के लिए दे दी।

तस्माद् कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा पृथा।
श्रावन्तस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषुवे सुतः।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः।
पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः।
करुषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः॥
उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्।
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्धवम्॥
अश्मक्यां प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्॥
निवृतशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा व्यजायत॥
देवश्रवाः प्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः।
एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्धितः।
वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्॥
गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्।
चारुदेष्णं सुचारुं च पंचालं कृतलक्षणम्।
तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनबकस्य तु।
वीरश्चाश्वहनश्चैव वीरौ तावथ गृंजिमौ।

अर्थ—अतः कुन्ति की पत्नी पृथा कुन्ती (पाण्डवों की माता) नाम से विख्यात हुई।

अवन्तिराज ने श्रुतदेवा से विवाह किया और पुत्र उत्पन्न किया। श्रुतश्रवा चैद्य सुनीथ का पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ। पृथुकीर्ति से करुषराज वृद्धशर्मा द्वारा महाबली दन्तवक्र उत्पन्न हुआ।

देवभाग का पुत्र उद्धव था। देवश्रवा को पण्डितों में श्रेष्ठ कहा जाता है। अश्मकी से उद्धव ने अनाधृष्टि नाम के यशस्वीपुत्र को प्राप्त किया। देवश्रवा के निवृत्तशत्रु शत्रुघ्न उत्पन्न हुआ। जो एकलव्य नैषादि, निषादों द्वारा पालित-पोषित था, वह वसुदेव का पुत्र था उसको वसुदेव ने अपुत्र वत्सावत कौशिक को वसुदेव शौरि ने दे दिया। विष्वक्सेन कृष्ण ने गण्डूष को चारुदेष्ण और सुचारु (अपने पुत्रों) को दे दिया। तन्द्रिज और तन्द्रिपाल—कनबक के पुत्र थे और गृंजिम के वीर पुत्र थे— वीर और अश्ववह।

(हरिवंश १।३५ अ०)

वसुदेवसन्ततिः—

याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः।
पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथा वरा।
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पंचमी।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता।।
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके।।
पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत्।
ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः।।
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं शठमेव च।
दुर्दमं दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम्।
चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन।।

अर्थ—वसुदेव की चौदह पत्नियां थीं—पौरवी, रोहिणी, इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी, देवकी, सुतनु, वडवा—अन्तिम दो परिचारिकायें थीं। पौरवी रोहिणी बाह्लिक की पुत्री थी। वह आनकदुन्दुभि (वसुदेव शौरि) की ज्येष्ठ पत्नी (महिषी) थी। उससे ज्येष्ठ पुत्र राम (बलराम=बलदेव), सारण, शठ, दुर्दम, दमन, श्वभ्र, पिण्डारक और उशीनर उत्पन्न हुए।

वसुदेव की चित्रा नाम की एक कन्या थी और रोहिणी से दश पुत्र उत्पन्न हुए। चित्रा ही सुभद्रा नाम से विख्यात हुई।

वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः।।

अक्रूरात् काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ।

× × ×

वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान् निबोध मे ।
भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
वृकदेवसुतामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥
उपासङ्गवरं लेभे तनयं देवरक्षिता ।
अवगाहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ॥
गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेषधारिणी ।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् ।
स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः ॥

अर्थ—वसुदेव से देवकी द्वारा महायशस्वी 'वासुदेव कृष्ण (शौरि)' उत्पन्न हुए। बलराम से रेवती द्वारा उनका प्रिय पुत्र निशठ उत्पन्न हुआ। अक्रूर से काशिकन्या द्वारा सत्यकेतु उत्पन्न हुआ।

वसुदेव से सात पत्नियों द्वारा जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे भोज और विजय—शान्तिदेवा के पुत्र थे। वृकदेवपुत्री से गद और दो पुत्र उत्पन्न हुए। देवरक्षिता से उपासंगवर उत्पन्न हुआ। वृकदेवी से अवगाह पैदा हुआ।

कालयवन गोपाली नाम की अप्सरा (सुन्दरी) से, जो गोपवेशधारिणी थी, उसने गार्ग्य (शिशिरायण के) पुत्र अच्युत और दुर्धर पुत्र महाबली कालयवन को उत्पन्न किया।

अन्धकवंशः (कुकुरवंशः) —

अन्धकात् काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ।
कुकुरं भजमानं च शर्यिं कम्बलबर्हिषम् ॥
कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा ॥
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ॥
जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित् तु पुनर्वसोः ।
तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल ॥
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ ।

× × ×

आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ।
आहुकस्य च काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवपुत्रसमावुभौ ।

देवकस्याभवन्पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ।
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ॥
कुमार्यः सप्त चाप्यासन् वसुदेवाय ता ददौ ।
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ।
वृकदेवी उपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी ।

अर्थ—अन्धक से काश्यपुत्री ने चार पुत्रों को उत्पन्न किया—कुकुर, भजमान, शमी और कम्बलबर्हि । कुकुर का पुत्र हुआ धृष्णु, उसका पुत्र हुआ कपोतरोमा और उसका पुत्र था तैत्तिरि । उससे पुनर्वसु तथा पुनर्वसु से अभिजित् पुत्र उत्पन्न हुआ । अभिजित् से दो मिथुन सन्तान उत्पन्न हुई । आहुक और आहुकी जो बहुत विख्यात थे ।

अन्धक क्षत्रियों ने आहुकी का विवाह अवन्तिराज से कर दिया । आहुक द्वारा काशिराजपुत्री से दो देवतुल्य पुत्र उत्पन्न हुए—देवक और उग्रसेन । देवक के चार पुत्र हुए, जो देवतुल्य प्रभावशाली थे । देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित ।

देवक की सात कन्यायें थीं जो उसने वसुदेव को दे दी (उनका विवाह वसुदेव से कर दिया) देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सप्तमी सुनाम्नी ।

नवाग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः ।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कशङ्कुसुभूमिपः ॥
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान् ॥
तेषां स्वसारः पंचाऽऽसन् कंसा कंसवती तथा ।
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ॥

अर्थ— उग्रसेन के नौ पुत्र थे, उनमें कंस ज्येष्ठ था । अन्य पुत्र थे—न्यग्रोध, सुनामा, कंक, शंकु, सुभूमिप, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनाधृष्टि और पुष्टिमान् । उनकी पांच बहिनें थी— कंसा, कंसवती, राष्ट्रपाली, कंका नाम की श्रेष्ठ सुन्दरी । इस प्रकार उग्रसेन का पुत्रसहित कुकुरवंश कहा गया ।

द्वितीयभजमानवंशः (अन्धकवंशान्तर्गतः)—

भजनमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः ।
राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथ सुतोऽभवत् ॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः ।
दत्तातिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥

शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित् ।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः ॥
शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ।
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्हृदीकः सम्बभूव ह ॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः ।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वाथ मध्यमः ।
देवर्षेर्वचनात् तस्य भिषग् वैतरणश्च यः ।
सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका ॥

अर्थ—भजमान (द्वितीय) का पुत्र महारथी विदूरथ था। विदूरथ का पुत्र राजाधिदेव शूर था। राजाधिदेव के बलशाली पुत्र थे दत्त और अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु और शत्रुजित्। उनकी दो बहिनें थीं—श्रवण और श्रविष्ठा।

शमी का पुत्र था प्रतिक्षत्र, उसका पुत्र हुआ स्वयंभोज, उसका पुत्र था हृदीक और हृदीक के सभी पुत्र भयंकर रूप से पराक्रमी थे—उनमें कृतवर्मा ज्येष्ठ था, शतधन्वा मध्यम था। देवर्षि नारद के वचन (वरदान) से भिषक् वैतरण, सुदान्त और विदान्त नाम के पुत्र तथा कामदा और कामदन्तिका पुत्रियां हुईं।

कम्बलबर्हिवंशः—

देववांश्चाभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ।
असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ ॥
अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे ।
सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धकास्त्रयः ॥

(हरिवंशे १।३८ अ०)

अर्थ—कम्बलबर्हि का पुत्र हुआ देववान् विद्वान् तथा असमौजा और नासमौजा। असमौजा ने अपने भाई नासमौजा को अपने पुत्र सुदंष्ट्र, चारुरूप और कृष्ण (जो अन्धकवंशीय थे) दे दिये।

वसुदेववंशः—

ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयिताऽऽनकदुन्दुभेः ।
ज्येष्ठं लेभे सुतं रामं सारणं निशठं तथा ।
दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारककुशीतकौ ।
चित्रां नाम कुमारीं च रौहिण्यष्टौ व्यजायत ।
पौत्रौ रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निशितोत्सुकौ ।

पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशुः सत्यधृतिस्तथा ॥
मन्दबाह्योऽथ रामाणगिरिकौ गिर एव च।
शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च॥
कुमार्यश्चापि पंचाद्या नामतस्ता निबोधत।
अर्चिष्मती सुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा॥
तथा शतबला चैव सारणस्य सुतास्त्विमाः।
भद्राश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविद्यस्तथैव च।
भद्रबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च।
सुपार्श्वकः कीर्तिमांश्च रोहिताश्वश्च भद्रकः।
दुर्दमश्चाभिभूतश्च रोहिण्याः कुलजाः स्मृताः॥
नन्दोपनन्दौ मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथाचलः।
चित्रोपचित्रे कन्ये च स्थितिः पुष्टिरथाऽपरा।
मदिरायाः सुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे।
उपबिम्बोऽथ बिम्बश्च सत्त्वदत्तो महौजसः।
चत्वार एते विख्याता भद्रापुत्रा महाबलाः॥
वैशाख्यां समदाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमुत्तमम्।
देवक्यां जज्ञिरे शौरिः सुषेणः कीर्तिमानपि।
तनयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पंचमः।
षष्ठो भद्रविदेकस्य कंसः सर्वान् जघान तान्।

× × ×

अतोऽस्य सहदेवायां शूरो जज्ञे भयासखः।
शार्ङ्गं देवाऽजनयत्तम्बुं शौरी जज्ञे कुलोद्वहम्॥
उपसङ्गं वसुं चापि तनयौ देवरक्षितौ।
एवं दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत्॥

अर्थ—वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी (रोहिणी) से राम, सारण, निशठ, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक कुशीन और कौतक उत्पन्न हुए तथा चित्रा (सुभद्रा) नाम की पुत्री- इस प्रकार आठ पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न की। राम के पौत्र थे—निशित, उत्सुक, पार्श्वी, पार्श्वनन्दी, शिशु, सत्यधृति, मन्दबाह्य, रामण, गिरिक, गिर, शुक्लगुल्म, गुल्म और दरिद्रान्तक।

वसुदेव की पांच कन्यायें थीं- अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा और शतबला। सारण के पुत्र थे—भद्राश्व, भद्रगुप्ति, भद्रविद्य, भद्रबाहु, भद्ररथ, सुपार्श्वक, कीर्तिमान्, रोहिताश्व, भद्रक, दुर्दम, अभिभूत—ये रोहिणीकुल के पुत्र थे।

मदिरा (वसुदेव की पत्नी) से—नन्द, उपनन्द, मित्र कुक्षिमित्र, अचल, चित्र और उपचित्र और कन्यायें थीं स्थिति तथा पुष्टि ।

भद्रा के पुत्र महाबली चार थे—उपबिम्ब, बिम्ब, सत्त्वदत्त और महोज ।

वैशाखी से शौरि वसुदेव ने कौशिक नाम के उत्तम पुत्र को उत्पन्न किया ।

देवकी से शौरि (कृष्ण वासुदेव), सुषेण, कीर्तिमान्, भद्रसेन और पंचम यजुदाय तथा षष्ठ भद्रविद्—कंस ने इन सबको (कृष्ण छोड़कर) मार दिया ।

वसुदेव ने सहदेवा से भया का सखा शूर नाम का पुत्र उत्पन्न किया । शार्ङ्गदेवा से तम्बु नाम का कुलवाहक वसुदेवपुत्र उत्पन्न हुआ । देवरक्षिता उपसंग और वसु वसुदेवपुत्र थे । इस प्रकार वसुदेव के इन दश पुत्रों को भी कंस ने मरवा दिया था ।

विजयं रोचनं चैव वर्धमानं तथैव च ।
एतान्सर्वान्महाभागानुपदेवा व्यजायत ॥
स्वगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ।
आगही च स्वसा चैव सुरूपा शिशिरायणी ।
सप्तमं देवकी पुत्रं सुनासा सुषुवे भुवम् ।
गवेषणं महाभागं संग्रामे चित्रयोधिनम् ॥
श्राद्धदेवं पुरा येन वैनं विरचितं द्विजाः ।
शैव्यायामददाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमव्ययम् ।
सुगन्धी वनराजी च शौरेरास्तां परिग्रहः ।
पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ हि तौ ॥
तयोः राजाऽभवत् पुण्ड्रः कपिलस्तु वनं ययौ ।
तस्यां समभवद्वीरो वसुदेवात्मजो बली ।
राजा नाम निषादोऽसौ प्रथमः स धनुर्धरः ॥

(वायुपुराणे ३४ अ०)

अर्थ—वसुदेव पत्नी उपदेवा ने विजय, रोचन और वर्धमान नाम के महाभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न किये । वृकदेवी ने स्वगावह नाम का पुत्र उत्पन्न किया । उसकी बहिन आगही थी । शिशिरायण की पुत्री सुरूपा थी । देवकी का सातवां पुत्र गवेषण था, जो युद्ध में विचित्र योद्धा था । वसुदेव ने श्राद्धदेव कौशिक नाम के पुत्र को शैव्या (पत्नी) से उत्पन्न किया । सुगन्धी और वनराजी भी शौरि वसुदेव की पत्नियां थीं । उनसे पुण्ड्र (पौण्ड्र वासुदेव) और कपिल उत्पन्न हुए । उनमें पुण्ड्र राजा हुआ और कपिल वन में चला गया । वसुदेव का पुत्र महाबली राजा निषादराज (एकलव्य) था, जो महान् धनुर्धर हुआ ।

वासुदेवसन्ततिः—

अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्राधान्यतः स्मृताः ।
सर्वा वीरप्रजाश्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च देवी नाग्नजिती तथा ।
सुदत्ता च तथा शैव्या लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
मित्रविन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी ॥
सुभीमा च तथा माद्री रुक्मिणी तनयाञ्छृणु ॥
प्रद्युम्नः प्रथमं जज्ञे शम्बरान्तकरः शुभः ।
द्वितीयो चारुदेष्णश्च वृष्णिसिंहो महारथः ॥
चारुभद्रश्चारुगर्भः सुदेष्णो द्रुम एव च ।
सुषेणश्चारुगुप्तश्च चारुविन्दश्च वीर्यवान् ॥
चारुबाहुः कनीयांश्च कन्या चारुमती तथा ॥
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भीमरथः क्षुपः ।
रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रजाक्षो जलान्तकः ॥
भानुर्भीममलिका चैव ताम्रपर्णी जलन्धया ।
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात् ॥

अर्थ--वासुदेव कृष्ण की पत्नियां और सन्तति—कृष्ण की प्रधान आठ महिषियां (रानियां) थीं—जो सभी वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली थीं। उनके नाम और पुत्रों को सुनिये—रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, सुदत्ता शैव्या, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा कालिन्दी, जाम्बवती पौरवी और सुभीमा माद्री।

रुक्मिणीपुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—प्रथम (ज्येष्ठ) पुत्र प्रद्युम्न था, जो बड़ा सुन्दर (शुभ) था, जिसने शम्बर असुर को मारा। द्वितीय चारुदेष्ण, द्रुम, सुषेण, चारुगुप्त, चारुविन्द, चारुबाहु और कन्या चारुमती, (रुक्मिणी की सन्तानें थीं)।

सत्यभामा के पुत्र थे—भानु, भीमरथ, क्षुप, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रजाक्ष, जलान्तक तथा चार पुत्रियां थी – भानु भीममलिका, ताम्रपर्णी और जलन्धरा। ये गरुडध्वज कृष्ण से उत्पन्न हुईं।

(हरिवंश २।१०३ अ०)

जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः ।
मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रवत्यपि चाङ्गना ।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजाः शृणु ॥
भद्रकारो भद्रविन्दः कन्या भद्रवती तथा ।

सुदत्तायां तु शैब्यायां संग्रामजिदजायत ।
सत्यजित् सेनजिच्चैव तथा शूरः सपत्नजित् ॥
सुभीमायाः सुतो माद्रया वृकाश्वो वृकनिर्वृतिः ।
कुमारो वृकदीप्तिश्च लक्ष्मणायाः प्रजाः शृणु ॥
गात्रवान् गात्रगुप्तश्च गात्रविन्दश्च वीर्यवान् ।
जज्ञिरे गात्रवत्या च भगिन्याऽनुजया सह ॥
अश्रुतश्च सुतो जज्ञे कालिन्द्याः श्रुतसम्मितः ।
अश्रुतं श्रुतसैनायै प्रददौ मधुसूदनः ।
बृहत्यां तु गदं प्राहुः शैब्यायामङ्गदं सुतम् ।
उत्पन्नं कुमुदं चैव श्वेतं श्वेता तथाङ्गना ॥
अवगाहः सुमित्रश्च शुचिश्चित्ररथस्तथा ।
चित्रसेनः सुदेवायाश्चित्रा चित्रवती तथा ॥
वनस्तम्बश्च जज्ञाते सुतः स्तम्बवनश्च ह ।
निवासनाऽवनस्तम्बः कन्या स्तम्बवती तथा ।
उपसम्नश्च शङ्कश्च वज्रांशुः क्षिप्र एव च ।
कौशिक्यां सुतसोमायां यौधिष्ठिर्यां युधिष्ठिरः ॥
कपाली गरुडश्चैव जज्ञाते चित्रयोधिनौ ।
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोध मे ।
दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः ॥
अयुतानि तथा चाष्टौ शूरा रणविशारदाः ।
जनार्दनस्य प्रसवः कीर्तितोऽयं तथा मया ॥

कृष्णोत्तरवंशः—

प्रद्युम्नस्य सुतो जज्ञे वैदर्भ्यां राजसत्तम ।
अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञे स मृगकेतनः ॥
सानुर्जज्ञेऽनिरुद्धस्य वज्रः सानोरजायत ।
वज्राज्जज्ञे प्रतिरथः सुचारुस्तस्य चात्मजः ॥

अर्थ—जाम्बवती (पौरवी, पौरवराजा की पुत्री) से साम्ब नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो सभा में सुशोभित होता था । अन्य जाम्बवतीपुत्र थे—मित्रवान्, मित्रविन्द, मित्रबाहु, सुनीथ और कन्या मित्रवती ।

नाग्नजिती (नग्नजित् गान्धार की पुत्री)— से भद्रकार, भद्रविन्द पुत्र और कन्या भद्रवती उत्पन्न हुई ।

सुदत्ता शैव्या (शिविराजकुमारी)—से संग्रामजित्, सत्यजित्, सेनजित्, सत्यजित् और शत्रघाती शूर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

सुभीमा माद्री (मद्रराजकुमारी)—से वृकाश्व, वृकनिवृ॑त्ति और कुमार वृकदीप्ति उत्पन्न हुए।

लक्ष्मण के पुत्र थे—गात्रवान्, गात्रगुप्त और बली गात्रविन्द और पुत्री गात्रवती थी।

मित्रविन्दा कालिन्दी (कलिन्दराजकुमारी)—का पुत्र था अश्रुत जो (श्रुति) इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। मधुसूदन कृष्ण ने अश्रुत को श्रुतसेना को दे दिया।

बृहती शैव्या से अंगद, गद कुमुद और श्वेत तथा श्वेता कन्या उत्पन्न हुई। अन्य पुत्र थे—अवगाह, सुमित्र, शुचि, चित्ररथ और चित्रसेन।

सुदेवा के चित्रा, चित्रवती पुत्रियां और पुत्र—वनस्तम्ब तथा वनस्तम्ब हुए तथा अवनस्तम्ब और निवासना, स्तम्बवती, उपसन्न, शंक, वज्रांशु और क्षिप्र अन्य सन्तानें थीं।

कौशिकी सुतसोमपुत्री यौधिष्ठिरी में युधिष्ठिर, कपाली और गरुड नाम के विचित्र योद्धा पुत्र उत्पन्न हुए।

इस प्रकार वासुदेव कृष्ण के अनेक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। कृष्ण के पुत्र (तथा पौत्रों) की संख्या एक लाख कही जाती है। इनमें अस्सी हजार पुत्र अत्यन्त शूर और रणविशारद थे। इस प्रकार जनार्दन कृष्ण की सन्तति का विवरण दिया गया।

विदर्भराजकुमारी से प्रद्युम्न का पुत्र हुआ अनिरुद्ध जिसकी युद्ध में अवरुद्ध गति (अबाध) थी। उसका मृगकेतु था। अनिरुद्ध का पुत्र सानु था। सानु का पुत्र वज्र हुआ, वज्र से प्रतिरथ और प्रतिरथ का पुत्र हुआ सुचारु।

तुर्वसुवंशः—

तुर्वसोस्तु सुतो वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः॥
करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्य तु चात्मजः॥
अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितः पुरा।
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजाऽऽसीदिति श्रुतः।
दुष्कृतं पौरवं चापि सर्वे पुत्रमकल्पयन्॥
एवं ययातिशापेन जराया संक्रमेण च।
तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल॥
दुष्कृतस्य दायाद शरूथो नाम पार्थिवः।

शरूथात्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ।
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कुल्यस्तथैव च ।।
तेषां जनपदाः कुल्या पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ।।

तुर्वसु का पुत्र वह्नि था। वह्नि का पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का पुत्र अपराजेय वीर त्रिसानु हुआ। त्रिसानु का पुत्र करन्धम हुआ। करन्धम का पुत्र मरुत्त हुआ। आविक्षित मरुत्त इस मरुत्त कारन्धम से पृथक् था। यह मरुत्त कारन्धम अनपत्य (बिना सन्तान) का था ऐसा इतिहास है। दुष्कृत पौरव को सभी तौर्वशों ने अपना उत्तराधिकारी मान लिया। इस प्रकार ययातिशाप एवं जरासंक्रमण के कारण तुर्वसुवंश पौरववंश में संक्रमित होगया। दुष्कृत का उत्तराधिकारी शरूथ नाम का राजा हुआ। शरूथ का पुत्र जनपीड हुआ, उसके चार पुत्र हुए—पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य और इन्हीं के नाम से चार जनपद (राष्ट्र) प्रथित हुए—पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य ।

द्रुह्युवंशः—

द्रुह्योस्तु तनयौ वीरौ बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतौ ।
अरुद्धः सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते ।।
यौवनाश्वेन समिति कृच्छ्रेण निहतो बली ।
युद्धं सुमहदासीत्तु मासान्परि चतुर्दश ।
अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः ।।
ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ।।
गान्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्य सुतोऽभवत् ।।
धृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ।
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ।।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः ।।

(हरिवंश ३२ अ०)
(वायु० अ० ३६)

अर्थ—द्रुह्यु के दो विख्यात पुत्र हुए—बभ्रु और सेतु। सेतु का पुत्र हुआ अरुद्ध और बभ्रु का पुत्र था रिपु। अरुद्ध को मान्धाता यौवनाश्व ने बड़ी कठिनाई से युद्ध में मारा था। उनमें चौदह मास से अधिक समय तक युद्ध होता रहा। अरुद्ध का उत्तराधिकारी 'गान्धार' नाम का राजा हुआ, जिसके नाम से गान्धार देश (राष्ट्र) प्रथित हुआ। गान्धार का पुत्र था धर्म। धर्म का पुत्र हुआ धृत और उसका पुत्र हुआ दुर्दम। उसका पुत्र हुआ प्रचेता। प्रचेता के सौ पुत्र (या वंशज) हुए जो सभी उत्तर दिशा के म्लेच्छ राष्ट्रों के राजा बने ।

(वायु० अ० ३६)

अनुवंशः—

अनोः पुत्रा महात्मानस्त्रयः परमधार्मिकाः ।
सभानरः पक्षश्च परपक्षस्तथैव च ॥
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ।
कालानलस्य धर्मात्मा सृंजयो नाम धार्मिकः ॥
सृंजयस्याभवत्पुत्रो वीरो राजा पुरंजयः ।
जनमेजयो महासत्वः पुरंजयसुतोऽभवत् ॥
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवन्नृपः ॥
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशा दिवि ।
महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्ती महायशाः ।
महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास विश्रुतौ ॥
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव धार्मिकम् ॥

अनु के तीन परमधार्मिक पुत्र हुए— सभानर, पक्ष और परपक्ष। सभानर का पुत्र हुआ कालानल । राजा कालानल का पुत्र था धर्मात्मा राजा सृंजय । सृंजय का पुत्र हुआ वीर राजा पुरंजय । पुरंजय का पुत्र हुआ महाबली राजा जनमेजय । राजर्षि जनमेजय का पुत्र हुआ राजा महाशाल । धार्मिक महाशाल का पुत्र महामना इन्द्रतुल्य पराक्रमी और महायशस्वी राजा था, जिसकी कीर्ति स्वर्ग-लोक (इन्द्रलोक) तक फैली हुई थी । महायशस्वी सम्राट् महामना सम्पूर्ण पृथिवी अर्थात् सातों महाद्वीपों का शासक था । महामना के दो जगद्विख्यात पुत्र हुए— उशीनर और धार्मिक तितिक्षु ।

औशीनरवंशः—

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पंच राजर्षिवंशजाः ।
मृगा कृमी नवा दर्वा पंचमी च दृषद्वती ॥
उशीनरस्य पुत्रास्तु पंच तासु कुलोद्वहाः ।
मृगायास्तु मृगः पुत्रो नवाया एव नव तु ।
कृम्याः कृमिस्तु दर्वायाः सुव्रतो नाम धार्मिकः ।
द्रषद्वती सुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजः ॥
शिबे शिबपुरं ख्यातं यौधेयं तु मृगस्य तु ॥
नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिलापुरी ।
सुव्रतस्य तथाऽऽम्बष्ठाः शिबिपुत्रान्निबोधत ॥

शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकसम्मताः ।
वृषदर्भः सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा ॥
तेषां जनपदाः स्फीताः केकया माद्रकास्तथा ॥
वृषदर्भाः सूचीदीर्घास्तितिक्षोः शृणुत प्रजाः ।

अर्थ—औशीनर वंश की प्रसिद्ध शाखायें—उशीनर की राजर्षि पुत्रियां पांच पत्नियां थीं—मृगा, कृमी, नवा, दर्वा और पंचमी दृषद्वती। उनसे उशीनर के पांच वंशप्रवर्तक पुत्र उत्पन्न हुए। मृगी का पुत्र मृग, नवा का पुत्र नव, कृमि का पुत्र कृमि, देवी का पुत्र सुव्रत धार्मिक तथा द्वषद्वती का पुत्र शिबि औशीनर। शिबि से शिबपुर प्रसिद्ध हुआ। मृग से यौधेय क्षत्रिय प्रथित हुए। नव से नवराष्ट्र, कृमि से कृमिलापुरी और सुव्रत से अम्बष्ठराष्ट्र प्रसिद्ध हुआ।

शिबि औशीनर से चार राष्ट्र—शिबि से चार शैब्यपुत्र उत्पन्न हुए, जो पृथिवी लोक में सम्मानित थे—वृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्र। उनसे इन्हीं के चार राष्ट्र प्रथित हुए जो विशाल थे—कैकय, माद्रक, वृषदर्भ और सौवीर।

अब तितिक्षु वंश को सुनिये।

तितिक्षुवंशः—

तैतिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः ।
उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेमः सुतोऽभवत् ॥
हेमस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतयशा बली ।
जातो मनुष्ययोन्यां वै क्षीणे वंशे प्रजेप्सया ।
महायोगी स तु बलिर्बद्धो यः स महामनाः ॥
पुत्रानुत्पादयास चातुर्वर्ण्यकरान्भुवि ।
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्यं तथैव च
पुण्ड्रं कलिंगं च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ।
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ।

× × ×

अङ्गवंशः—

अङ्गपुत्रो महानासीद् राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ।
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः ।
विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥
अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥

तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः।
ऋष्यशृंगप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्धनः ॥
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः।
पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥
हर्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः।
पुत्रो भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥
बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः।
बृहन्मनास्तु राजेन्द्र जनयामास व सुतम् ॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद् दृढ़रथो नृपः।
आसीद् दृढ़रथस्यापि विश्वजिज्जमेजय ॥
दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्धनम्।

अर्थ—तितिक्षु का पुत्र महाबली उशद्रथ पूर्व दिशा (पूर्व) में प्रसिद्ध वंश प्रवर्तक राजा हुआ। उसका पुत्र हुआ हेम। हेम का पुत्र था सुतपा (या विरोचन), उसका पुत्र हुआ बलि वैरोचन जो मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ (दुबारा), दैत्य असुर वंश के क्षीण होने पर जिससे उसकी प्रजावृद्धि हो सके। जिस बलि वैरोचन महायोगी और महामना को (विष्णु ने) बांधा था, उसने चातुर्वर्ण्य प्रवर्तक पांच पुत्र उत्पन्न किये—अंग, वंग, सुह्य, पुण्ड्र और कलिंग। ये बालेय क्षत्रिय कहलाते थे। बलि वैरोचन (अंगराज) से वंशप्रवर्तक ब्राह्मण भी उत्पन्न हुए।

अंग का पुत्र हुआ महान् राजेन्द्र दधिवाहन। दधिवाहन का पुत्र हुआ इन्द्रतुल्य पराक्रमी राजा दियिरथ। उसका पुत्र हुआ चित्ररथ। उसका पुत्र हुआ दशरथ, जो लोमपाद (रोमपाद) के नाम से विख्यात था जिसकी पुत्री शान्ता हुई। अंगराज दशरथ का पुत्र महायशस्वी वीर चतुरंग था जो ऋषि ऋष्यशृंग की कृपा से अपने कुल को बढ़ानेवाला हुआ। चतुरंग का पुत्र इतिहास में 'पृथुलाक्ष' नाम से विख्यात हुआ। पृथुलाक्ष का पुत्र राजा चम्प महायशस्वी था। चम्प नाम से चम्पापुरी प्रथित हुई जो उससे पूर्व 'मालिनी' कही जाती थी। पूर्णभद्र ऋषि की कृपा से चम्प का पुत्र हर्यङ्ग हुआ। हर्यङ्ग का उत्तराधियारी राजा भद्ररथ हुआ। भद्ररथ का पुत्र राजा बृहत्कर्मा था। उसका पुत्र बृहद्दर्भ हुआ। उससे बृहन्मना उत्पन्न हुआ। बृहन्मना ने जयद्रथ नाम के पुत्र को उत्पन्न किया जिससे दृढ़रथ उत्पन्न हुआ। दृढ़रथ का पुत्र विश्वजित् था, जिसका उत्तराधिकारी कर्ण हुआ। कर्ण का पुत्र हुआ विकर्ण। विकर्ण के अंगकुल के वर्द्धक सौ पुत्र हुए।

बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः ॥
तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे ॥
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते ।
जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत ।
ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः ॥
विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः ।
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः ॥
सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै ।
यः कर्णं प्रतिजग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः ॥
कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥

(हरिवंशे १।३१।४३–५६)

अर्थ—बृहद्दर्भ का पुत्र राजा बृहन्मना था। उसकी दो पत्नियां थीं, जो चैद्यराज की पुत्रियां थीं—यशोदेवी और सत्या, इनसे वंश दो भागों में बंट गया। यशोदेवी से जयद्रथ उत्पन्न हुआ। सत्या से ब्रह्मक्षत्रोत्तर पुत्र विजय प्रसिद्ध हुआ। विजय का पुत्र धृति था, उसका पुत्र हुआ धृतव्रत। धृतव्रत का पुत्र था महायशस्वी सत्यकर्मा। सत्यकर्मा का पुत्र था अधिरथ सूत जिसने कुन्तीपुत्र कर्ण को ग्रहण किया। अतः कर्ण इसी कारण 'सूतपुत्र' कहलाया।

कर्ण का पुत्र हुआ वृषसेन और उसका पुत्र हुआ वृष।

पाण्डव—जनमेजयवंशः—

जनमेजयस्य के पुत्राः पठ्यन्ते लौमहर्षणे ।
कस्मिन् प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ।

× × ×

पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ।
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
जनमेजय इत्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥
तेषां श्रेष्ठस्तु राजासीत् पुरे वारणसाह्वये ।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ।
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ।
तस्माद् वनगताद् गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ।
सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मानिनी भ्रातृमालिनी ।

× × ×

कुमारं तं परित्यज्य भर्तारं चान्वगच्छत।

× × ×

श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः।
दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य प्राक्षालयतां जलैः॥
निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ॥
अजश्यामौ तु पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ।
तथैव तु समारूढ़ो अजपार्श्वस्ततोऽभवत्॥
ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह।
स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः॥
वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत् पुत्रकारणात्।
वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद् ब्राह्मणौ सचिवौ च तौ।

(हरिवंशे ३।१ अ०)

अर्थ—(शौनक ने सौति से पूछा)—हे लौमहर्षणे ! जनमेजय के कौन से पुत्र पुराण में पढ़े जाते हैं और श्रेष्ठ पाण्डववंश किस पुत्र में प्रतिष्ठित है ?

(लौमहर्षणि—उग्रश्रवा सूत ने उत्तर दिया)—हे शौनक ! पारीक्षित् जनमेजय के काशिराजपुत्री वपुष्टमा से दो पुत्र उत्पन्न हुए—राजा चन्द्रापीड और मोक्षविद् सूर्यापीड। चन्द्रापीड के सौ उत्तम धनुर्धारी पुत्र पृथिवी पर (इतिहास में) 'जनमेजय या जानमेजय' नाम से ही विख्यात थे। हस्तिनापुर में उनमें सबसे बड़ा पुत्र महाबाहु सत्यकर्ण राजा हुआ, जो बड़ा भारी यज्ञकर्त्ता और विपुल दक्षिणाओं का दाता था।

सत्यकर्ण का उत्तराधिकारी प्रतापी राजा श्वेतकर्ण हुआ। वह बिना पुत्र के ही धर्माचरण करता हुआ तपोवन में चला गया। उसके वन में जाने से (पूर्व) ही यादव बंश की कन्या, सुचारु की पुत्री मानिनी सुभ्रू, जो अनेक भ्राताओं वाली थी, उसने (श्वेत कर्ण से ही) गर्भ धारण किया।

वह कुमार (शिशु) को छोड़कर अपने पति के पास तपोवन में ही चली गई।

श्रविष्ठा के दो पुत्र—पिप्पलाद और कौशिक मुनियों ने कृपान्वित होकर उस शिशु को देखा। उसको ग्रहण करके स्नानादि कराया। उसके (शिशु के) दोनों पार्श्व वन में शिलाओं से छिल गये थे और रुधिर से सने हुए थे। वे पार्श्व बकरे के पार्श्व के समान होगये थे। अतः उसका नाम मुनियों ने 'अजपार्श्व' (अज) रख दिया। उसका पालन वेमक की पाठशाला में दोनों ब्राह्मण मुनियों ने किया। वेमक मुनि की पत्नी ने पुत्र की इच्छा से उसका पालन पोषण किया। वह वेमकी का पुत्र हुआ और वे दोनों ब्राह्मण उसके सचिव (मन्त्री) बने।

(इसी 'अजपार्श्व' का दूसरा नाम अधिसीमकृष्ण था)।

सप्तमोऽध्याय

कलियुगीनराजवंशाः

(पुराणपाठात् संकलिताः पार्जीटरकृतात्)

सूत उवाच—

यथा मे कीर्तितम् पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा ।
भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च ।।
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत ।
अत ऊर्ध्वम् प्रवक्ष्यामि भविष्ये ये नृपास्तथा ।।
ऐलांश्चैव तथा इक्ष्वाकून् सौद्युम्नांश्चैव पार्थिवान् ।
येषु संस्थाप्यते क्षत्रम् ऐलैक्ष्वाकुकुलम् शुभम् ।।
तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान् ।
तेभ्यो परेऽपि ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः ।।
क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथाऽन्ये ये बहिश्चराः ।
आन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च कुलिन्दा यवनास्तथा ।।
कैवर्ताभीरा ये चान्ये याश्चान्या म्लेच्छजातयः ।
पौरवा वीतिहोत्रा वै वैदिशा पंचकोशजाः ।।
मेकलाः कोशलाः पौण्ड्रा गोनर्दा············।
शुनीधर्माः शका नीपा याश्चान्या म्लेच्छजातयः ।
वर्षाग्रतो प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ।।

अर्थ—हे ऋषियो ! जिस प्रकार पहिले मुझसे सहज कार्य करनेवाले श्री व्यास जी ने कहा—भावी कलियुग और मन्वन्तरों का वृत्तान्त, वही भविष्य के सभी वर्णन मैं कहता हूं । आप सुनें । इससे आगे मैं आपसे भविष्य में होनेवाले राजाओं का वर्णन करूंगा । ऐल, ऐक्ष्वाक और सौद्युम्न राजाओं के मैं नाम कहूंगा । जिनसे इन ऐल और ऐक्ष्वाक वंशों की समाप्ति हुई । उन सभी भविष्य कालिक राजाओं को मैं कहूंगा । इनके अतिरिक्त आगे जो क्षत्रिय, पाराशव, शूद्र तथा बाह्य म्लेच्छ राजगण—आन्ध्र, शक, पुलिन्द, कुलिन्द, यवन, कैवर्त, आभीर

तथा पौरव, वीतिहोत्र, वैदिश, पंचकोशल, मेकल, कोसल, पौण्ड्र, गोनर्द, शुनीधर्म, शक, नीप तथा अन्य म्लेच्छ जातियां जो भी राजगण होंगे उनके राज्यकाल और नामों सहित बताऊंगा।

पौरववंशः—

अभिमन्योः परीक्षित्तु पुत्रः परपुरंजयः।
जनमेजयः पारीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः॥
जनमेजयात् शतानीक तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्॥
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूच्च शतानीकस्य वीर्यवान्।
पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद् वै जातः परपुरंजयः।
अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतं यो महायशाः॥
अधिसीमकृष्णपुत्रो विचक्षुर्भविता नृपः।
गंगयाऽपहृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये॥
त्यक्त्वा निचक्षुः नगरं कौशाम्ब्यां स निवत्स्यति।
भविष्यस्तु सुतः तस्य महाबलपराक्रमः॥

अर्थ—अभिमन्यु का पुत्र शत्रुघाती परीक्षित् हुआ। उसका पुत्र परमधार्मिक पारीक्षित जनमेजय था। जनमेजय से बलवान् राजा शतानीक उत्पन्न हुआ। शतानीक का पुत्र बलवान् राजा अश्वमेधदत्त हुआ जो दूसरों के राज्यों (नगरों) को जीतने वाला था। अश्वमेधदत्त का धर्मात्मा और महायशस्वी पुत्र हुआ अधिसीमकृष्ण, जो इस समय (उग्रश्रवा सौति के समय) राज्य कर रहा है।

अधिसीमकृष्ण (अजपार्श्व) का पुत्र होगा निचक्षु, जो गंगा के द्वारा हस्तिनापुर को बहाये जाने पर, उसे छोड़कर कौशाम्बी को राजधानी बनाकर उसे बसायेगा। उसका पुत्र बड़ा यशस्वी और महाबली होगा।

भूरिज्येष्ठसुतस्तस्य तस्य चित्ररथः स्मृतः।
शुचिरथः चित्ररथाद् वृष्णिमांश्च शुचिरथात्।
वृष्णिमतः सुषेणश्च भविष्यति शुचिः नृपः॥
तस्मात् सुषेणाद् भविता सुनीथो नाम पार्थिवः।
रुचहः सुनीथाद् भविता नृचक्षुर्भविता तथा।
नृचक्षुषदायादो भविता वै सुखीबलः॥
सुखीबलसुतश्चापि भावि राजा पारिप्लवः।
पारिप्लवसुतश्चापि भविता सुनयो नृपः।
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति नराधिपः॥
मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति नृपञ्जयः।

ध्रुवो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः ।
तिग्मात्माद् बृहद्रथो भाव्यो वसुदानो बृहद्रथात् ।
वसुदानात् शतानीको भविष्योदयनस्तथा ।।
भविष्यते चोदयनात् वीरो राजा वहीनरः ।
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति ।।
दण्डपाणेर्निरमित्रो निरमित्राद् तु क्षेमकः ।
पंचविंशः नृपा ह्येते भविष्याः पुरुवंशजाः ।
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो पुरा पुराविदैः ।
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः ।
क्षेमकम् प्राप्य राजानं संस्थाम् प्राप्स्यति वै कलौ ।
इत्येष पौरवो वंशो यथावत् परिकीर्तितः ।
धीमतः पाण्डुपुत्रस्यार्जुनस्य महात्मनः ।।

अर्थ—निचक्षु का पुत्र भूरिज्येष्ठ होगा और उसका पुत्र होगा चित्ररथ। चित्ररथ का पुत्र होगा शुचिरथ और शुचिरथ का पुत्र होगा वृष्णिमान्। वृष्णिमान् का पुत्र होगा सुषेण और उसका पुत्र होगा सुनीथ नाम का राजा। सुनीथ का पुत्र होगा रुचह और उसका पुत्र होगा नृचक्षु। नृचक्षु का पुत्र होगा सुखीबल और उसका पुत्र होगा राजा परिप्लव। परिप्लव का पुत्र होगा राजा सुनय और उसका उत्तराधिकारी होगा मेधावी नाम का राजा। मेधावी का पुत्र राजा नृपंजय। उसका पुत्र होगा ध्रुव तथा उसका पुत्र होगा तिग्मात्मा। तिग्मात्मा से उसका पुत्र बृहद्रथ भावी राजा होगा और बृहद्रथ का पुत्र होगा वसुदान। वसुदान का पुत्र होगा शतानीक तथा उसका पुत्र होगा उदयन। राजा उदयन से उसका वीरपुत्र होगा वहीनर और वहीनर का उत्तराधिकारी होगा राजा दण्डपाणि। दण्डपाणि का पुत्र होगा निरमित्र और निरमित्र का पुत्र होगा क्षेमक।

ये पच्चीस पौरव (भारत-पाण्डववंशीय) भविष्यकालिक (कलियुगीन) राजा होंगे। इस सम्बन्ध में पुराविदों (इतिहासज्ञों) ने यह अनुवंश श्लोक गाया है— "ब्रह्म और क्षत्र की योनि (मूल) यह देवर्षियों द्वारा सत्कृत वंश राजा क्षेमक के पश्चात् कलियुग में समाप्त हो जायेगा।

इस प्रकार यह पौरववंश महाबली और बुद्धिमान् पाण्डव अर्जुन का वंश यथावत् कहा गया।

इक्ष्वाकुवंशः—

अत ऊर्ध्वम् प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणाम् महात्मनाम् ।

बृहद्बलस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षपः ॥
उरुक्षपः सुतस्तस्य वत्सव्यूह उरुक्षपात् ।
वत्सव्यूहात् प्रतिव्योमस्तस्य पुत्रो दिवाकरः ।
यश्च साम्प्रतमध्यास्ते अयोध्यां नगरीं शुभाम् ॥

अर्थ—(सूत जी ने कहा)—अब मैं आगे महाबली ऐक्ष्वाकों का वर्णन करूंगा ।

बृहद्बल का उत्तराधिकारी राजा बृहत्क्षप हुआ । उसका पुत्र हुआ उरुक्षप । उरुक्षप का पुत्र हुआ वत्सव्यूह और वत्सव्यूह का पुत्र हुआ प्रतिव्योम तथा उसका पुत्र था राजा दिवाकर, जो इस समय (अधिसीमकृष्ण पाण्डव और उग्रश्रवा सौति के समय), अयोध्या में राज्य कर रहा है ।

दिवाकरस्य पुत्रो वै भविता सहदेवो महामनाः ।
तस्य भानुरथो भाव्यः प्रतीताश्वश्च ततः सुतः ॥
प्रतीताश्वसुतश्चापि सुप्रतीको भविष्यति ।
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रश्च ततः सुतः ॥
किन्नराश्वः सुनक्षत्राद् भविष्यति परंतपः ।
भविता चान्तरिक्षस्तु किन्नराश्वस्य सुतो महान् ।
अन्तरिक्षात् सुपर्णस्तु सुपर्णाच्चाप्यमित्रजित् ।
पुत्रस्तस्य बृहद्राजो धर्मी तस्य सुतः स्मृतः ॥
पुत्रः कृतंजयो नामा धर्मिणः स भविष्यति ।
कृतंजयसुतो विद्वान् भविष्यति रणंजयः ।
भविता संजयश्चापि वीरो राजा रणंजयात् ॥
रणंजयस्य सुतो शाक्यः शाक्याच्च शुद्धोधनोऽभवत् ।
शुद्धोधनस्य भविता सिद्धार्थो राहुलस्तस्य वै सुतः ।
प्रसेनजित् ततो भविता क्षुद्रको भविता ततः ।
क्षुद्रकात् कुलको भविता कुलकात् सुरथः स्मृतः ।
सुमित्रः सुरथस्यापि अन्त्यश्च भविता नृपः ।
एत ऐक्ष्वाकवः प्रोक्ता भविष्या ये कलौ युगे ॥
बृहद्बलान्वये जाता भविष्याः कुलवर्धनाः ।
निश्शेषाः कथिताश्चैव नृपा ये वै पुरातनाः ।
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं विप्रैः गीतो पुरातनैः ।
इक्ष्वाकूणामयं वंशो सुमित्रान्तो भविष्यति ।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।

अर्थ—दिवाकर का पुत्र होगा महामनस्वी राजा सहदेव। उसका पुत्र होगा भानुरथ और उसका पुत्र होगा प्रतीताश्व। प्रतीताश्व का पुत्र होगा सुप्रतीक और उसका पुत्र होगा मरुदेव और उसका पुत्र होगा सुनक्षत्र। सुनक्षत्र का पुत्र होगा किन्नराश्व और किन्नराश्व का महान् पुत्र होगा अन्तरिक्ष। अन्तरिक्ष का पुत्र होगा सुपर्ण और सुपर्ण का पुत्र होगा अमित्रजित्। उसका पुत्र होगा बृहद्भाज। उसका पुत्र होगा धर्मी। धर्मी का पुत्र होगा कृतंजय। कृतंजय का विद्वान् पुत्र होगा रणंजय। रणंजय का भावी पुत्र होगा वीर राजा संजय। संजय का पुत्र होगा शाक्य और शाक्य का पुत्र होगा शुद्धोधन। शुद्धोधन का पुत्र होगा सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) और उसका पुत्र होगा राहुल। तब राजा प्रसेनजित् होगा और उसका पुत्र होगा क्षुद्रक। क्षुद्रक का पुत्र होगा कुलक। कुलक से उसका पुत्र होगा राजा सुरथ। सुरथ का पुत्र राजा सुमित्र इस वंश का अन्तिम राजा होगा।

ये ऐक्ष्वाक राजा बृहद्बल के कुल में भविष्य युग (कलियुग) में हुए, जो इस कुल के वर्धक थे। मैंने पुरातन समस्त ऐक्ष्वाक वंश के राजा बता दिये। इस सम्बन्ध में प्राचीन इतिहासविद् विद्वानों ने यह श्लोक गाया है—"ऐक्ष्वाकों का यह वंश राजा सुमित्र तक ही रहेगा, इसके पश्चात् इसका अन्त हो जायेगा। सुमित्र को प्राप्त करके यह ऐक्ष्वाक वंश कलियुग में समाप्त हो जायेगा।"

बार्हद्रथवंशः—

अत ऊर्ध्वम् प्रवक्ष्यामि मागधा ये बृहद्रथाः।
जरासन्धस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः।
अतीता वर्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः॥
प्राधान्यतो प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत।
संग्रामे भारते वृत्ते सहदेवे निपातिते।
सोमाधिस्तस्य दायादो राजाऽभूत् स गिरिव्रजे।
पंचाशतं तथाऽष्टौ च समा राज्यमकारयत्।
श्रुतश्रवाश्चतुषष्टि समास्तस्यान्वयेऽभवत्॥
अयुतायुस्तु षड्विंशद् राज्यं वर्षाण्यकारयत्।
चत्वारिंशत् समास्तस्य निरमित्रो दिवं गतः।
पंचाशतं समाः षट् च सुक्षत्रो प्राप्तवान् महीम्॥
त्रयोविंशत् बृहत्कर्मा राज्यं वर्षाण्यकारयत्॥
सेनजित् साम्प्रतं चापि भुक्त्वा पंचाशतं महीम्।
श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद् भविष्यति।

महाबलो महाबाहुर्महाबुद्धिपराक्रमः ।
अष्टाविंशतिवर्षाणि महीम् प्राप्स्यति वै विभुः ।
अष्टौ पंचाशतं चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचिः ॥
अष्टाविंशतिसमा राजा क्षेमो भोक्ष्यते वै महीम् ।
सुव्रतस्तु चतुःषष्टिं राज्यम् प्राप्स्यति वीर्यवान् ॥
पंचविंशतिवर्षाणि सुनेत्रो भोक्ष्यते महीम् ।
भोक्ष्यते निव्रतिश्चैमामष्टाविंशतिः वै समाः ।
त्रिनेत्रो भोक्ष्यते ततः, चत्वारिंशत् तथाष्टौ च दृढ़सेनो भविष्यति ।
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि महीनेत्रो प्रकाशते ।
द्वात्रिंशत्तु समा राजा सुचलस्तु भविष्यति ॥
चत्वारिंशत् समा राज्यं सुनेत्रो भोक्ष्यते ततः ।
सत्यजित् पृथ्वीम् राजा त्रयोविंशतिं भोक्ष्यते ।
प्राप्येमाम् विश्वजिच्चापि पंचविंशद् भविष्यति ।
रिपुजंयस्तु वर्षाणि पंचाशत् प्राप्स्यते महीम् ॥
द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ।
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥

अर्थ—अब आगे मैं मगध के बार्हद्रथ राजाओं का वर्णन करूंगा, जो जरासन्धपुत्र सहदेव के कुल में हुए । भूतकाल, वर्तमान और भविष्य में जो राजा, इस वंश में हुए, उनका वर्णन मुझसे सुनो ।

महाभारतयुद्ध में सहदेव के मारे जाने पर सोमाधि उसका उत्तराधिकारी राजधानी गिरिव्रज (राजगृह) में हुआ । उसने वहां ५८ वर्षों तक राज्य किया । उसके पुत्र श्रुतश्रवा ने ६४ वर्ष राज्य किया । उसके पुत्र अयुतायु ने २६ वर्ष राज्य किया । उसके उत्तराधिकारी निरमित्र ने ४० वर्ष राज्य करके स्वर्ग सिधार गया । इसके पश्चात् ५६ वर्ष तक राजा सुक्षत्र प्रतापी ने मगध में राज्य किया । उसके पश्चात् २३ वर्ष पर्यन्त बृहत्कर्मा ने राज्य किया । इस समय (अधिसीमकृष्ण के समकालिक) सेनाजित् ५० वर्ष राज्य करेगा । उसका उत्तराधिकारी श्रुतंजय ४० वर्ष राज्य करेगा, वह महाबली, महाबाहु, महाबुद्धि तथा महापराक्रमी था । इसके अनन्तर २८ वर्ष राजा विभु पृथिवी पर राज्य करेगा । तदनन्तर राजा शुचि ५८ वर्ष तक राज्य करेगा । उसके पश्चात् राजा क्षेम २८ वर्षों तक पृथिवी का राज्य करेगा । उसका उत्तराधिकारी सुव्रत ६४ वर्ष तक राज्य करेगा । तब राजा सुनेत्र २५ वर्ष तक राज्य भोगेगा । तदनन्तर निव्रति २८ वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा । तब राजा त्रिनेत्र

४० वर्ष तक राज्य करेगा और ८ वर्ष दृढ़सेन राजा रहेगा। उसके पश्चात् राजा महीनेत्र ३३ वर्ष तक शासन करेगा। उसके पश्चात् राजा सुचल ३२ वर्ष राज्य करेगा। तब सुनेत्र ४० वर्ष तक राज्य भोगेगा। उसके बाद राजा सत्यजित् २३ वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर राजा विश्वजित् २५ वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद राजा रिपुंजय ५० वर्ष राजा रहेगा।

ये २२ बार्हद्रथ मागध राजा सम्पूर्ण एक सहस्र (१०००) वर्षों तक राज्य करेंगे।

प्रद्योतवंशः—

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेषु अवन्तिषु।
पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति॥
मिषतां क्षत्रियाणां च बालकः।
पुलकोद्भवः सैव प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः।
त्रयोविंशत् समा राजा भविता स नरोत्तमः।
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः।
विशाखयूपो भविता नृपः पंचाशतं समाः।
एकविंशत् समा राजा सूर्यस्तु भविष्यति॥
भविष्यति समा विंशत् तत्सुतो नन्दिवर्धनः।
द्विपंचाशत् ततो भुक्त्वा अष्टात्रिंशत् शतम्।
भाव्याः प्रद्योताः पंच ते सुताः॥

अर्थ—(मगध में) बार्हद्रथों और अवन्ति में वीतिहोत्रों की राज्य समाप्ति पर मन्त्री पुलक ने (मागध राजा रिपुंजय) राजा को मारकर अपने 'बालक' पुत्र को राजा बनायेगा। सभी क्षत्रिय राजाओं के मध्य पुलकपुत्र बालक प्रद्योत नयवर्जित परन्तु प्रणतसामन्त (सामन्त वंश में) था। वह श्रेष्ठ राजा २३ वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र पालक २४ वर्ष राज्य करेगा। तदनन्तर राजा विशाखयूप ५० वर्ष तक मगध में राज्य करेगा। पुनः राजा सूर्य २१ वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र नन्दिवर्धन २० वर्ष राज्य करेगा। ये ५ प्रद्योतवंशीय राजा १३८ वर्ष तक राज्य करेंगे।

शिशुनागवंशः—

हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्याश्रयति गिरिव्रजम्।
शिशुनागश्च वर्षाणि चत्वारिंशद् भविष्यति।

काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशत् प्राप्स्यते महीम् ॥
षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति ।
चत्वारिंशत् समा राज्यं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः ।
अष्टाविंशतिवर्षाणि बिम्बसारो भविष्यति ।
अजातशत्रुभविता पंचविंशत् समा नृपः ।
पंचविंशत् समा राजा दर्शको तु भविष्यति ॥
उदायी भविता तस्माद् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः ।
सैव पुरवरम् पृथिव्यां कुसुमाह्वयम् ।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ।
चत्वारिंशत् समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः ।
चत्वारिंशत् त्रयश्चैव महानन्दिर्भविष्यति ।
इत्येते भवितारो वै शैशुनागा नृपा दश ॥
शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टिवर्षाधिकानि तु ।
शिशुनागा भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः ॥

अर्थ—इन प्रद्योतों के यश का नाश करके शिशुनाग राजा बनेगा। वह अपने पुत्र को वाराणसी में राजा बनाकर स्वयं गिरिव्रज (राजगृह) में राज्य करेगा। शिशुनाग का राज्य ४० वर्ष पर्यन्त रहेगा। उसका पुत्र राजा काकवर्ण ३६ वर्ष राज्य करेगा। उसके पश्चात् राजा क्षेमधर्मा का राज्य ३६ वर्ष रहेगा। इसके पश्चात् राजा क्षत्रौजा ४० वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका पुत्र बिम्बसार २८ वर्ष राज्य करेगा। बिम्बसार का पुत्र अजातशत्रु २५ वर्ष तक राज्य करेगा। उसके पश्चात् राजा दर्शक २५ वर्ष तक रहेगा। उसका पुत्र उदायी ३३ वर्ष राज्य करेगा। वही पृथिवी (मगध) पर श्रेष्ठ पाटलिपुत्र नगर को अपने राज्यकाल के चतुर्थ वर्ष में गंगा के दक्षिणी तट पर बसायेगा। उदायी के पश्चात् राजा नन्दिवर्धन ४० वर्ष राज्य करेगा। राजा महानदी ४३ वर्ष तक राज्य करेगा।

ये १० शैशुनाग राजा ३६० वर्ष राज्य करेंगे। (ब्राह्मणों के अनुसार शुद्धि की दृष्टि से) शैशुनाग राजा निम्नकोटि के क्षत्रिय (वस्तुतः नाग जाति के) थे।

प्राक्शैशुनागा समकालिकावंशाः—

एते सार्धम् भविष्यन्ति तावत् कालम् नृपाः परे ।
तुल्यकालम् भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षितः ॥
ऐक्ष्वाकश्चतुर्विंशत् पांचाला सप्तविंशतिः ।

काशेयास्तु चतुर्विंशत् अष्टाविंशतिर्हैहयाः ।।
कलिङ्गाश्चैव द्वात्रिंशत् अश्मकाः पंचविंशतिः ।
कौरवाश्चापि षट्त्रिंशत् अष्टाविंशतिः मैथिलाः ।
शूरसेनाश्च त्रयोविंशत् वीतिहोत्राश्च विंशतिः ।
एते सर्वे भविष्यन्ति एककाले महीक्षितः ।
(वायुपुराणे)

अर्थ—ये राजा प्रायः एक ही समय में समकालिक शासक होंगे। यथा २४ ऐक्ष्वाक राजा, २७ पांचाल राजा, ३४ काशेय राजा, २८ हैहय राजा, ३२ कालिंग नृपति गण, २५ अश्मक राजा, ३६ कौरव राजा, २८ मैथिल राजा, २३ शूरसेन और २० वीतिहोत्र। ये सभी (शैशुनागों से पूर्व) प्रायः समकालिक राजा थे।

नन्दवंशः—

महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः ।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः ।
ततः प्रभृतिर्राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः ।।
एकराट् स महापद्म एकक्षत्रो भविष्यति ।
अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथ्वीम् च भविष्यति ।
सर्वक्षत्रमथोद्धृत्य भाविनार्थेन चोदितः ।
सुकल्पादिसुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः ।।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ।
उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः ।
भुक्त्वा महीम् वर्षशतम् ततो मौर्यान् गमिष्यति ।।

अर्थ—कलि का अंश, महानन्दी का पुत्र महापद्म नन्द शूद्रा से उत्पन्न होगा। वह महापद्म सभी क्षत्रियों का अन्तक होगा। उसके पश्चात् प्रायः शूद्र जातीय राजा होंगे। वह महापद्म एकक्षत्र एकराट् सम्राट् होगा। वह ८८ वर्ष तक पृथिवी का राज्य करेगा। भावी अर्थ से प्रेरित वह सभी क्षत्रवंशों का उच्छेद करेगा। उसके सुकल्पादि आठ पुत्र १२ वर्ष राज्य करेंगे। महापद्मयुग में ही ये राजा होंगे। (ये सभी नन्दवंश के राजा कहलायेंगे।)

कौटिल्य (चाणक्य) इन नन्द राजाओं का १६ वर्ष में उच्छेद करेगा, तब यह पृथिवी (भारतवर्ष) "१०० वर्ष नन्दों के अधीन" रहने के पश्चात् मौर्यों के पास चली जायेगी।

मौर्यवंशः—

कौटिल्यश्चन्द्रगुप्तं तु ततो राज्येऽभिषेक्ष्यति ।
षट्त्रिंशत्तु समा राजा भविता अशोक एव च ॥
सप्तानां दशवर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति ।
राजा दशरथोऽष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति ॥
भविता नववर्षाणि तस्य पुत्रश्चैव सम्प्रतिः ।
भविता शतधन्वा च तस्य पुत्रस्तु षट् स्मृतः ।
बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रं च सप्ततिः ॥
इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम् ।
सप्तत्रिंशत् शतम् पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति ॥
चन्द्रगुप्तं नृपम् राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति ।
चतुर्विंशत् समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ॥
भविता बिन्दुसारस्तु पंचविंशत् समा नृपः ।
षट्त्रिंशत्तु समा राजा भविताऽशोक एव च ॥
तस्य पुत्रः कुणालस्तु वर्षाणि अष्टौ भविष्यति ।
कुणालतनयश्चाष्टौ भोक्ता वै बन्धुपालितः ।
दशनाह सप्त वर्षाणि तेषां नप्ता भविष्यति ।
राजा दशरथस्तु अष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति ।
भविता नववर्षाणि तस्य पुत्रस्तु सम्प्रतिः ।
शालिशूकः समा राजा त्रयोदश भविष्यति ।
सप्तवर्षाणि देवधर्मा भविष्यति नराधिपः ।
राजा शतधनुश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति ।
बृहद्रथस्तु वर्षाणि सप्ताशितिम् भविष्यति ॥
इत्येते नवमौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम् ।
सप्तत्रिंशत् शतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गो भविष्यति ॥

अर्थ—कौटिल्य राज्य पर चन्द्रगुप्त को अभिषिक्त करेगा। ३६ वर्ष तक राजा अशोक राजा रहेगा। अशोक का नाती ७ वर्ष राजा रहेगा। उसका उत्तराधिकारी दशरथ ८ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र सम्प्रति नौ वर्ष राज्य करेगा। उसके पश्चात् शतधन्वा राजा होगा। उसका पुत्र ६ वर्ष राजा होगा। तदनन्तर बृहद्रथ ७० वर्ष राज्य करेगा। इस प्रकार दश मौर्य राजा पृथिवी पर १३७ वर्ष राज्य करेंगे। पुनः पृथिवी शुंगों के पास चली जायेगी।

कौटिल्य राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को शासन पर स्थापित करेगा। चन्द्रगुप्त

२४ वर्ष तक राज्य करेगा। तब उसका पुत्र बिन्दुसार २५ वर्ष राज्य करेगा। तदनन्तर राजा अशोक ३६ वर्ष शासन करेगा। उसका पुत्र कुणाल ८ वर्ष राज्य करेगा। कुणाल का पुत्र बन्धुपालित भी ८ वर्ष राज्य करेगा। उसका नप्ता (अशोक का नाती दशरथ) सात वर्ष राज्य करेगा। दशरथ का पुत्र सम्प्रति ९ वर्ष राज्य करेगा। तदनन्तर शालिशूक १३ वर्ष शासन करेगा। उसके पश्चात् राजा देवधर्मा ७ वर्ष राजा होगा। राजा शतधनु ८ वर्ष और उसका पुत्र बृहद्रथ ८७ वर्ष राज्य करेगा। इस प्रकार नौ मौर्य राजा इस पृथिवी को १३७ वर्ष भोगेंगे। तदनन्तर पृथिवी का शासन शुंगों के पास चला जायेगा।

शुङ्गवंशः—

पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथम्।
कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशत् समा नृपः॥
अग्निमित्रसुतश्चाष्टौ भविष्यति समा नृपः।
भविताऽपि वसुज्येष्ठः सप्त वर्षाणि वै नृपः।
वसुज्येष्ठसुतो भाव्यो दश वर्षाणि पार्थिवः।
ततोऽन्धकः समे द्वे तु तस्य पुत्रो भविष्यति।
भविष्यति समाः तस्मात् त्रीण्येवम् पुलिन्दकः।
भविष्यति च मेधस्तु त्रीणि वर्षाणि वै ततः।
भविता वज्रमित्रस्तु राजा पुनर्नव समाः।
द्वात्रिंशत्तु समा भागः समाभागात् ततो नृपः।
भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समा दश।
दशैते शुङ्गा राजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।
शतं पूर्णं दश द्वे च ततः कण्वान् गमिष्यति॥

अर्थ—सेनापति पुष्यमित्र शुंग बृहद्रथ मौर्य का उच्छेद करके ३६ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र अग्निमित्र ८ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र वसुज्येष्ठ ७ वर्ष राज्य करेगा। वसुज्येष्ठ का पुत्र १० वर्ष राजा रहेगा। तदनन्तर उसका पुत्र अन्धक दो वर्ष राज्य करेगा। तीन वर्ष पुलिन्दक राज्य करेगा। तदनन्तर मेध तीन वर्ष राजा होगा। वज्रमित्र नौ वर्ष राज्य करेगा। ३२ वर्ष भागमित्र राज्य करेगा। उसका पुत्र देवभूमि १० वर्ष राजा रहेगा।

ये १० शुंग राजा ११२ वर्ष राज्य करेंगे, तत्पश्चात् राज्य काण्वों के पास चला जायेगा।

काण्ववंशः—

अमात्यो वासुदेवस्तु बाल्याद् व्यसनिनं नृपम्।

देवभूमिमथोत्साद्य शुङ्गांस्तु भविता नृपः ॥
भविष्यति समा राजा नव काण्वायनो द्विजः ।
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति ।
नारायणः सुतस्तस्य भविता द्वादशैव तु ।
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति दशैव तु ।
इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः काण्वायना नृपाः ।
चत्वारस्तु द्विजा ह्येते काण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
चत्वारिंशत् पंच चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ।
एते प्रणतसामन्ता भविष्या धार्मिकास्तु ये ।
येषाम् पर्यायकाले तु भूमिरान्ध्रान् गमिष्यति ॥

अर्थ—देवभूमि का मन्त्री वासुदेव काण्वायन ब्राह्मण मूर्खतावश व्यसनी राजा (देवभूमि) को मारकर शुंगों का नाश करेगा और स्वयं राजा बनेगा। वह ९ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र भूमिमित्र १४ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र नारायण १२ वर्ष तक राजा रहेगा। उसका पुत्र सुशर्मा १० वर्ष राज्य करेगा। इस प्रकार काण्वायना शुंगभृत्य कहे गये। ये ४ काण्वायन राजा ४५ वर्ष तक राज्य करेंगे। ये राजा धार्मिक तथा सामन्तों को वश में रखेंगे। इनके राज्यकाल के अन्त में शासन आन्ध्र सातवाहनों के पास चला जायेगा।

आन्ध्रसातवाहनवंशः—

काण्वायाणां ततो भृत्यः सुशर्मा तु प्रसह्य तम् ।
शुङ्गानाम् चैव यशश्शेषम् क्षपित्वा तु बली एषः ।
शिशुकोऽन्ध्रकसजातीयः प्राप्स्यतीमाम् वसुन्धराम् ।
त्रयोविंशत् समा राजा सिमुको तु भविष्यति ।
कृष्णो भ्राता यवीयांस्तु अष्टादश भविष्यति ।
श्रीसातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रो तु वै दश ।
पूर्णोत्संगस्ततो राजा वर्षाणि अष्टादशैव तु ॥
स्कन्धस्तम्भि तथा राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ।
पंचाशत् समाः षट् वै शातकर्णिर्भविष्यति ।
दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः ॥
अपीलको दश द्वे च तस्य पुत्रो भविष्यति ।
दश चाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति ॥
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु ।
स्कन्दस्वामिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ।

मृगेन्द्रः स्वातिकणस्तु भविष्यति समास्त्रयः ।
कुन्तलो स्वातिकर्णस्तु भविताष्टौ समा नृपः ।।
एकं संवत्सरम् राजा स्वातिकर्णो भविष्यति ।।
षट्त्रिंशदेव वर्षाणि पुलोमाविर्भविष्यति ।
भवितारिष्टकर्णस्तु वर्षाणाम् पंचविंशतिः ।
ततः संवत्सरम् पंच हालो राजा भविष्यति ।।
पंच मन्तलको राजा भविष्यति समा नृपः ।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात् सौम्यो भविष्यति ।।
सुन्दरः शातकर्णिस्तु अब्दमेकम् भविष्यति ।।
चकोरशातकर्णिस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ।
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति ।।
राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत् ततो नृपः ।
अष्टाविंशः सुतस्तस्य पुलोमाविर्भविष्यति ।।
एकोनत्रिंशतम् भाव्यः शातकर्णिस्ततो नृपः ।
शिवश्रीः वै पुलोमा तु सप्त वै भविता नृपः ।।

अर्थ—काण्वायनों का बली भृत्य सुशर्मा बलपूर्वक शुंगों के यश को समाप्त करके अपने शिशुक (पुत्र) आन्ध्रजातीय को राजा बनायेगा। शिशुक (या शिमुक २३ वर्ष तक राजा रहेगा। उसका अनुज १८ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र श्रीशातकर्णि दश वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र पूर्णोत्संग १८ वर्ष राजा होगा। स्कन्धस्तम्भी १८ वर्ष राज्य करेगा। पुनः श्रीशातकर्णि ५६ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र लम्बोदर १८ वर्ष राज्य करेगा। उसका पुत्र अपीलक १२ वर्ष राजा होगा। मेघस्वाति १८ वर्ष राज्य करेगा। स्वाति १८ वर्ष राजा होगा। स्कन्दस्वामी ७ वर्ष राज्य करेगा। मृगेन्द्र स्वातिकर्णि ३ वर्ष शासन करेगा। कुन्तल स्वातिकर्ण ८ वर्ष राजा रहेगा। स्वातिकर्ण केवल एक वर्ष राज्य करेगा! पुलोमावि ३६ वर्ष पर्यन्त शासन करेगा। अरिष्टकर्ण २५ वर्ष तक राज्य करेगा। राजा हाल ५ वर्ष राज्य करेगा। इसी प्रकार मन्तलक ५ वर्ष राज्य करेगा। पुनः पुरीन्द्रसेन, तत्पश्चात् सौम्य राजा होगा। सुन्दर शातकर्णि केवल १ वर्ष राज्य करेगा। चकोर शातकर्णि केवल छः महीने शासन करेगा। शिवस्वाति २८ वर्ष तक राज्य करेगा। गौतमीपुत्र इक्कीस वर्ष तक राजा रहेगा। उसका पुत्र पुलोमावि २८ वर्ष राज्य करेगा। राजा शातकर्णि २९ वर्ष राजा होगा। शिवश्री पुलोमा ७ वर्ष के लिए राजा होगा।

शिवस्कन्धः शातकर्णिर्भविता त्रयो समाः ।
नवविंशति वर्षाणि यज्ञश्रीः शातकर्णिः ॥
षडेव भविता तस्माद् विजयस्तु समा नृपः ।
चन्द्रश्रीः शातकर्णिस्तु तस्य पुत्रः समा दश ।
पुलोमावि समा सप्त अन्त्यस्तेषाम् भविष्यति ॥
इत्येते वै नृपा त्रिंशत् आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
समाः शतानि चत्वारि षष्टिरेव च ॥

अर्थ—शिवस्कन्ध शातकर्णि ३ वर्ष राज्य करेगा । यज्ञश्री शातकर्णि २९ वर्ष शासन करेगा । विजय शातकर्णि ६ वर्ष राज्य करेगा । उसका पुत्र चन्द्रश्री शातकर्णि १० वर्ष राज्य करेगा । अन्तिम शातकर्णि (सातवाहन आन्ध्र) राजा ७ वर्ष राज्य करेगा ।

इस प्रकार ये ३० आन्ध्र सातवाहन राजा ४५० वर्ष देश का शासन करेंगे ।

सातवाहनोत्तरकालीनवंशाः—

आन्ध्राणां संस्थिते राज्ये तेषाम् भृत्यान्वये नृपाः ।
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ॥
सप्त गर्दभिनस्तथा शकाश्चाष्टादशैव तु ।
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश ॥
त्रयोदश गुरुण्डाश्च हूणा ह्योनविंशतिः ।
मौना एकादशैव तु । ( )

अर्थ—आन्ध्रसातवाहनवंश की समाप्ति पर उनके भृत्यगणों में सात आन्ध्रभृत्य (श्रीपार्वतीय=गुप्त वंश) के सात राजा, दश आभीर राजा, सात गर्दभिल (शूद्रक) राजा, अठारह शक राजा, आठ यवन राजा, चौदह तुरुष्क, तेरह गुरुण्ड, उन्नीस हूण राजा और ग्यारह मौन राजा होंगे ।

पाठभेदः—

दश गर्दभिनो नृपाः शका षोडश भूपालाः ।
भविष्यन्त्यतिलोलुपास्ततोऽष्टौ यवना भाव्याः ॥
चतुर्दश च तुषाराः । ( )

अर्थ—दश गर्दभिल राजा, सोलह शकराजा अतिलोपुप होंगे । आठ यवन और चौदह तुषार राजा होंगे ।

अन्यपाठः—

आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्चैव शते द्वे पंचाशतम् समाः ।

सप्तषष्टिस्तु वर्षाणि दशाभीरास्तथैव च ।।
सप्त गर्दभिला भूयो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ।
शतानि त्रीणि अशीति च शकाष्टादशैव तु ।
यवनाष्टौ भविष्यन्ति सप्त वर्षाणि सहस्राणि ।
तुषाराणाम् मही स्मृता । अशीतिं चैव वर्षाणि भोक्तारो
यवना महीम् ।। शतान्यर्धचतुष्कानि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गुरुण्डा वृषला सार्धम् भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ते हूणा एकदशैव तु ।

अर्थ—आन्ध्रभृत्य श्री पार्वतीय २५० वर्ष राज्य करेंगे। दश आभीर राजा ६७ वर्ष और सात गर्दभिल राजा पृथिवी भोगेंगे। ३८० वर्ष अठारह शकराजा राज्य करेंगे। आठ यवन राजा होंगे। तुषार सात हजार वर्ष तक राज्य करेंगे। आठ यवन ८० वर्ष राज्य करेंगे। तेरह गुरुण्ड (मुरुण्ड) राजा ४५० वर्ष राज्य करेंगे। शूद्रों के साथ ये म्लेच्छ राज्य करेंगे। ग्यारह हूण राजा ३०० वर्ष राज्य करेंगे।

भिन्नपाठः—

आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुन्धरां शते द्वे च शतम् चैव ।
सप्त षष्टिं च वर्षाणि दशाभीरास्ततो नृपाः ।
सप्त गर्दभिनाश्चैव भोक्ष्यन्तीमां द्विसप्ततिः ।
शतानि त्रीणि अशीति च भोक्ष्यन्ति वसुधां शकाः ।।
पंचवर्षशतानि हि तुषाराणम् मही स्मृता ।।

अर्थ—आन्ध्र (भृत्य) २०० वर्ष राज्य करेंगे। १६७ वर्ष दश आभीर राजा राज्य करेंगे। सात गर्दभिल ७२ वर्ष राज्य करेंगे। ३८० वर्ष तक शक राज्य करेंगे और पांच सौ वर्ष पृथिवी (भारत) पर तुषारों का राज्य रहेगा।

नागवंशः—

शेषस्य नागराजस्य पुत्रः परपुरंजयः ।
भोगी भविष्यति राजा नागकुलोद्भवः ।।
सदाचन्द्रस्तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवांस्तथा ।
धनधर्मास्तथा चापि चतुर्थो वंगः स्मृतः ।।
भूतनन्दिस्तथा चापि वदिशे तु भविष्यति ।
शुङ्गनां तु कुलस्यान्ते शिशुनन्दिर्भविष्यति ।।
तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नन्दियशाः किल ।
तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै ।।

दौहित्रः शिशुको नामा पुरिकायां नृपोऽभवत् ।

अर्थ—नागराज शेष का परपुरंजय (दूसरों को जीतनेवाला) पुत्र राजा भोगी नागवंशज राजा होगा। चन्द्रांश सदाचन्द्र और नखवान् (नहपान शकराज), तृतीय राजा और चतुर्थ राजा धनधर्मा वंग (वंगरि), विदिशा में भूतनन्दि और शुंगों के कुल के अन्त में शिशुनन्दि और उसका छोटा भाई नन्दियशा राजा होगा। उसके कुल में तीन राजा होंगे। शिशुनन्दि का दौहित्र पुरिका में राजा होगा।

किलकिलावंशः (वाकाटकवंशः)—

तच्छन्नेन च कालेन ततः कोलकिला नृपाः ।
ततः कोलकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति ॥
समा षण्णवति ज्ञात्वा पृथिवी च समेष्यति ।
विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।
भोक्ष्यति च समाः षष्टिं पुरीं कांचनिकां च वै ।
यक्ष्यते वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः ।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपाः ॥

अर्थ—अन्धकारकाल के व्यतीत होने पर कोलकिल (या किलकिला) राजा होंगे। उनसे ही विन्ध्यशक्ति राजा होगा। वह ९६ वर्ष पृथिवी पर राज्य करेगा। उसका पुत्र प्रवीर जो बलवान् राजा था कांचनिकापुरी में ६० वर्ष राज्य करेगा। वह श्रेष्ठ दक्षिणाओं से मुक्त वाजपेय यज्ञ करेगा। उसके चार पुत्र (राजा) होंगे।

अन्यपाठः—

तेषूत्सन्नेषु कैंकिला यवना भूपतयो भविष्यन्त्यमूर्द्धाभिषिक्ताः ।
तेषामपत्यं विन्ध्यशक्तिस्त्वतः पुरंजयस्तस्माद्रामचन्द्रस्तस्माद्धर्मवर्मा
ततो वङ्गस्ततोऽभून्नन्दनस्ततस्सुनन्दी तद्भ्राता नन्दियशाशुक्रः
प्रवीर एते वर्षशतं षड्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ॥

(विष्णुपुराणे ४।२४।५५-५७)

अर्थ—उसके उच्छिन्न होने पर कैंकिल नाम के यवन (?) मूर्धाभिषिक्त राजा होंगे। उनकी सन्तान पुरंजय विन्ध्यशक्ति, तदनन्तर धर्मवर्मा, तब वंग, पुनः नन्दन, पुनः सुनन्दी और उसका भ्राता नन्दियशा और तेजस्वी प्रवीर। इनका राजा १०६ वर्षपर्यन्त रहेगा।

स्थानीयवंशाः—

विन्ध्यकानां कुलेऽतीते नृपा वै बाह्लिकास्त्रयः ।

सुप्रतीको नाभिश्च समा भोक्ष्यन्ति त्रिंशतिम् ॥
शाक्यमानोऽभवत् राजा महिषाणाम् महीपतिः ।
पुष्पमित्रा भविष्यन्ति पटुमित्रास्त्रयोदश ।
मेकलायां नृपाः सप्त भविष्यन्ति सप्ततिम् ।
कौसलायां तु राजानो भविष्यन्ति महाबलाः ॥
मेघा इति संख्याता बुद्धिमन्तो नवैव तु ।
नैषधाः पार्थिवा सर्वे भविष्यन्ति आमनुक्षयात् ॥
नलवंशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबलाः ॥

अर्थ— विन्ध्यकों के वंश की समाप्ति पर तीन बाह्लिक तथा सुप्रतीक नाभि तीस वर्ष तक राज्य करेंगे। महिषों का राजा शाक्यमान हुआ। पुष्पमित्र और पटुमित्र वंश के तेरह राजा हुए। मेकला में सात राजाओं ने ७० वर्ष राज्य किया। कोसला में महाबली और बुद्धिमान् ९ मेघसंज्ञक राजा होंगे। मनुष्यों के विनाश तक नलवंश में उत्पन्न महाबली राजा होंगे।

विश्वफाणिः सम्राट्—

मागधानाम् महावीर्यो विश्वफाणिर्भविष्यति ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति ॥
कैवर्तान् पंचकांश्चैव पुलिन्दान् ब्राह्मणांस्तथा ।
स्थापयिष्यति राज्ञो नानादेशेषु ते जनाः ।
विश्वफाणिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥
विश्वफाणिर्नरपतिः क्लीबकीर्ति इवोच्यते ।
उत्सादयित्वा क्षत्रं तु क्षत्रमन्यत् करिष्यति ॥
देवान् पितृंश्च विप्रांश्च तर्पयित्वाऽसकृत् पुनः ।
जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरम् यास्यते बली ॥
संन्यस्य स्वशरीरं तु शक्रलोकं गमिष्यति ॥

अर्थ— मगध में विश्वफाणि नाम का महाबली राजा होगा। सभी राजाओं का विनाश करके वह अन्य वर्णों को क्षत्रिय (राजा) बनायेगा। कैवर्त, पंचक, पुलिन्द, ब्राह्मणक इत्यादि को विभिन्न देशों में राजा बनायेगा। महाबली विश्वफाणि युद्ध में विष्णु के समान बली था। विश्वफाणि आकृति में हिजड़े के समान था। उसने मूल क्षत्रियवंशों का विनाश करके अन्य म्लेच्छादि को क्षत्रिय बनाया। उसने बारम्बार देवों, पितरों और ब्राह्मणों का तर्पण किया। अन्त में उसने गंगातट पर अपने शरीर को क्षपित किया और अपने शरीर को छोड़कर स्वर्ग चला गया।

अन्त्यवंशाः (गुप्तोत्तरकालीनवंशाः)—

नवनागास्तु भोक्ष्यन्ति पुरीं चम्पावतीं नृपाः ।
मथुरां च पुरीं रम्याम् नागाः सप्त वै ।।
अनुगङ्गाप्रयागम् च साकेतम् मागधांस्तथा ।
एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ।।
नैषधान् यदुकांश्चैव शेषितान् कालतोयकान् ।
एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते मणिधान्यकाः ।
कोसलांश्चान्ध्रपुण्ड्रांश्चैव ताम्रलिप्तान् ससागरान् ।
चम्पां चैव पुरीं रम्याम् भोक्ष्यन्ते देवरक्षिताः ।।
कलिंगा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये ।
एतान् जनपदान् सर्वान् पालयिष्यति वै गुहः ।।
स्त्रीराज्यं भोजकाश्चैव भोक्ष्यन्ते कनकान्वयाः ।
सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ।।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनपदाः ।
सिन्धोश्च तटं चन्द्रभागां काश्मीरमण्डलम् ।।
भोक्ष्यन्ति शूद्रव्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ।
तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ह्यते महीक्षितः ।
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधाः ह्यधार्मिकाः ।।

अर्थ—नौ नाग राजाओं ने चम्पावती में राज्य किया। सात नागराजाओं ने सुन्दर मथुरानगरी में राज्य किया। अन्तिम गुप्त राजाओं ने गंगा के तटवर्ती प्रयाग, साकेत और मगध में राज्य किया। मणिधान्यकों ने नैषध, यदुक, शेषित और कालतोयक जनपदों में राज्य किया। देवरक्षित क्षत्रियों ने कोसल, आन्ध्रपुण्ड्र, ताम्रलिप्त, सागरपर्यन्त, चम्पापुरी में राज्य किया। गुह राजा ने कलिंग, महिष, महेन्द्र पर्वत इत्यादि भूक्षेत्रों में शासन किया। कनक नाम के राजाओं ने स्त्री-राज्य, भोजक आदि में राज्य किया। सौराष्ट्र, अवन्ति, आभीर, अर्बुद, मालव इत्यादि में व्रात्य ब्राह्मण और शूद्रप्राय रहेगी। अब्राह्मण शूद्र व्रात्यादि ने सिन्धुतट, चन्द्रभागा और कश्मीर मण्डल में राज्य किया।

ये सभी राजा एककाल में होंगे तथा स्वभाव से क्रोधी, झूठे, अधार्मिक और बहुत कम प्रसन्न होंगे।

राज्यकालस्य गणनाः—

महापद्माभिषेकात्तु जन्म यावत्परीक्षितः ।
एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पंचाशदुत्तरम् ।।

(एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पंचदशोत्तरम् ।)
(एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पंचशतोत्तरम् ।।)
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् ।
अन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः ।
एतत्कालान्तरं भाव्या आन्ध्रान्ता ये प्रकीर्तिताः ।।
भविष्यज्ञैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ।।
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या आन्ध्राणां ते त्वन्वयाः पुनः ।
सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयः तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।
सप्तर्षीणाम् युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।।

× × ×

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ।
आन्ध्रांशे च चतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम ।।

अर्थ—परीक्षित् के जन्म से महापद्म नन्द के अभिषेक तक एक सहस्र पचास (वस्तुतः एक सहस्र पांच सौ) वर्ष व्यतीत हुए। महापद्म नन्द से आन्ध्र सातवाहन पूर्व तक ८३६ वर्ष व्यतीत हुए। भविष्यज्ञ इतिहासकारों ने आन्ध्रों तक के समय की गणना की है। सप्तर्षिनक्षत्र प्रतीप के राज्यकाल में जहां पर थे; वहां से २७०० वर्ष पश्चात् आन्ध्रों का वंश प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में सप्तर्षिगण २७०० वर्षपर्यन्त रहते हैं। प्रत्येक नक्षत्र में वे १००-१०० वर्ष रहते हैं। यह २७०० वर्ष सप्तर्षियुग कहा जाता है।

परीक्षित् राज्यकाल में सप्तर्षिगण मघानक्षत्र में थे और आन्ध्रसातवाहन (के प्रारम्भ) काल में तब से २४०० वर्ष व्यतीत हुए।

कल्किर्विष्णुयशाः—

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्याश्लिष्टे भविष्यति ।।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।।
दशमो भाव्य सम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ।
अनुकर्षन् सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ।।
नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित् ।
उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ।।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।

गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनाञ्शकान् ।
तुषारान् बर्बरान् चैव पुलिन्दान् दरदान् खशान् ॥
लम्पाकानांध्रकान् हूणान् किरातांश्चैव स प्रभुः ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली ।
अदृश्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति ॥
मानवः स तु संजज्ञे देवस्यांशेन धीमतः ।
पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगेऽभवत् ॥

× × ×

पंचविंशोत्थिते कल्पे पंचविंशतिः वै समाः ।
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ॥
कृत्वा बीजावशेषान्तु महीं क्रूरेण कर्मणा ॥
संघातयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥
ततः स वै तदा कल्किश्चारितार्थः ससैनिकः ।
कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम् ।
अकस्मात् कुपिताऽन्योन्यं भविष्यन्ति च मोहिताः ॥
क्षपयित्वा तु तान् सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान् ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः ॥

अर्थ—इसी युग (कलियुग) में, उसके क्षीण होने पर युगसन्ध्याकाल में कल्कि विष्णयशा नाम के पराशरगोत्रीय प्रतापी ब्राह्मण (विष्णु के अवतार) होंगे। भावी दशम अवतार के समय याज्ञवल्क्यगोत्रीय ब्राह्मण उनका पुरोहित होगा। हाथी, घोड़े और रथ से परिपूर्ण सभी प्रकार की सेना का वह संचालन करेंगे। लाखों ब्राह्मण उस सेना में आयुधों से सन्नद्ध होंगे। जो राजा अधिक धार्मिक नहीं थे तथा कुछ उनमें धर्मद्वेषी थे तथा उदीच्य, मध्यदेशीय, विन्ध्यक, अपरान्तिक, दाक्षिणत्य, द्रविड, सिंहल, गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द, दरद, खश, लम्पाक, आन्ध्रक, हूण और किरातों का वह चक्रवर्ती विष्णुयशाकल्कि नाश करेंगे। सभी प्राणियों में अदृश्य के समान वह सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त करेंगे। वह देवांश से बुद्धिमान् मानव राजा के रूप में उत्पन्न हुए। पूर्वजन्म में वे प्रमिति नाम के बली विष्णु थे। चन्द्रगोत्र में कलियुग के पूर्ण (१२०० वर्ष बीतने) होने पर वे उत्पन्न हुए।

पच्चीसवें कल्प (वर्ष) में पच्चीस वर्ष पर्यन्त सभी प्राणियों और सभी मनुष्यों को मारते हुए तथा क्रूर कर्म से केवल उनका बीज वंश बचाते हुए सभी

वृषल (शूद्रप्रायः) अधार्मिक राजाओं को मारकर सैनिकों के सहित कल्कि अपना नाम चरितार्थ करेंगे।

अपने कर्म (युद्ध) द्वारा मारे जाने पर, पुनः सफल राजा कुपित होकर एवं मोहित होकर एक दूसरे को मारकर भावी उद्देश्य से प्रेरित कल्कि महाराज गंगा यमुना के मध्य अपने अनुचरों सहित निष्ठा (अन्त) को प्राप्त होंगे।

महाभारते कल्किवृत्तान्तः-

कल्की विष्णुयशा नाम द्विजः कालप्रचोदितः।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महाबुद्धिपराक्रमः॥
सम्भूतः सम्भलग्रामे ब्राह्मणावसथे शुभे॥
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च।
स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति॥
स मे संकुलं लोकं प्रसादमुपनेष्यति।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः॥
संक्षेपको हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तकः।
स सर्वत्र गतान् क्षुद्रान् ब्राह्मणैः परिवारितः॥
उत्सादयिष्यति तदा सर्वम्लेच्छगणान् द्विजः॥
ततश्चोरक्षपं कृत्वा द्विजेभ्यः पृथ्वीमिमाम्।
वाजिमेधे महायज्ञे विधिवत् कल्पयिष्यति॥
स्थापयित्वा च मर्यादाः स्वयम्भुविहिताः शुभाः।
वनं पुण्ययशःकर्मा रमणीयं प्रवेक्ष्यति॥
तच्छीलमनुवर्त्स्यन्ति मनुष्या लोकवासिनः।
विप्रैश्चोरक्षये चैव कृते क्षेमं भविष्यति॥
कृष्णाजिनानि शक्तीश्च त्रिशूलन्यायुधानि च।
स्थापयन् द्विजशार्दूलो देशेषु विजितेषु च॥
संस्तूयमानो विप्रेन्द्रैर्मानदानो द्विजोत्तमान्।
कल्की चरिष्यति महीं सदा दस्युवधे रतः॥
हा मातस्तात पुत्रेति तास्ता वाचः सुदारुणाः।
विक्रोशमानान् सुभृशं दस्यून् नेष्यति संक्षयम्॥
ततोऽधर्मविनाशो वै धर्मवृद्धिश्च भारत।
भविष्यति कृते प्राप्ते क्रियावांश्च जनस्तथा॥

(महा० ३।९०-९१ अध्याय)

अर्थ - काल से प्रेरित कल्की विष्णुयशा नाम के महाबली और महाबुद्धि ब्राह्मण ने सम्भलग्राम में ब्राह्मण के शुभ गृह में जन्म लिया। वे एक धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा थे, जिसके साथ योद्धा, शस्त्र और कवच होंगे। वे इस धराधाम पर प्रसन्नता वापस लायेंगे। वे उदारबुद्धि उठ खड़े होकर तेजस्वी ब्राह्मण के रूप में दुष्टों का अन्त करेंगे। वे युग का अन्त करके नवीन परिवर्तयुग का प्रवर्तन करेंगे। वे ब्राह्मणों से परिवारित होकर सभी म्लेच्छगणों का विनाश करेंगे। वह चोरभय (दस्युभय) का नाश करके यथाविधि अश्वमेध यज्ञ करके इस पृथिवी को ब्राह्मणों को दान में दे देंगे। स्वयम्भू द्वारा विहित मर्यादाओं को प्रस्थापित करके वे पुण्यकीर्ति और यशःकर्मा वन में चले जायेंगे। तदनन्तर लोग उनके शील का अनुसरण करेंगे। चोर-दस्युओं का नाश होने पर ब्राह्मण (प्रजा) का कल्याण होगा। वह ब्राह्मण सिंहकल्कि महाराज विजित देशों में कृष्णजिन (यज्ञ) शक्ति, त्रिशूल एवं अन्य आयुध स्थापित करके ब्राह्मणों द्वारा स्तुत तथा वे ब्राह्मणों का सम्मान करेंगे।

कल्कि सदा दस्युओं का वध करते हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे। दस्युगण हे माता हे पिता हे पुत्र! ऐसा कहकर भयंकर रूप से विलाप करेंगे। वे रोते बिलखते दस्युओं का विनाश करेंगे। तब अधर्म का विनाश और धर्म (यज्ञ) की वृद्धि होगी। तब कृतयुग की प्राप्ति होने पर लोग पुनः यज्ञादि में प्रवृत्त होंगे।

कल्किपुराणे कल्किवृत्तान्तविशेषः—

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम्॥
सुमत्यां मातरि विभो! कन्यायां त्वन्निदेशतः॥
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव करिष्यामि कलिक्षयम्।
भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेवतरिष्यथ॥
इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले संभविष्यति।
वृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा।
भार्यायां मम भार्येषा पद्मा नाम्नी भविष्यति।

× × ×

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कवि-प्राज्ञ-सुमन्त्रकाः।

× × ×

गार्ग्यभर्ग्यविशालाया ज्ञातयस्तदनुव्रताः॥
विशाखयूपभूपालपालितास्तापवर्जिताः।

× × ×

त्वं गरुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।
शुकमेनञ्च सर्वज्ञं मया दत्तं गृहाण भोः ।
रत्नत्सरुं करालं च करवालं महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् ॥

× × ×

कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ ।
बृहत्कीर्तिर्बृहद्बाहू महाबलपराक्रमौ ॥
प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः ।
यज्ञविज्ञौ सर्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ॥
सुमन्त्रकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम् ।
वेगवन्तं च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ ॥
ततः कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च ॥
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ॥

अर्थ—कमलयनविष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा—हे विभो ! मैं आपके आदेश से माता सुमति कन्या से उत्पन्न होऊंगा शम्भलग्राम में विष्णुयशा ब्राह्मण के घर। हे देव ! मैं चार भाइयों के साथ कलियुग का विनाश करूंगा। मेरे बान्धव देवगण अपने-अपने अंश से पृथिवी पर अवतीर्ण होंगे। मेरी प्रिया यह लक्ष्मी सिंहल के राजा बृहद्रथ की भार्या कौमुदी के उदर से मेरी भार्या पद्मा के रूप में अवतार लेगी।

कल्कि के तीन शूरवीर भ्राता थे - कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक।

गार्ग्य, भर्ग्य, विशालादि जातिबन्धु थे, जो उनका अनुसरण करते थे। विशाखयूप (प्रद्योतवंशीयमागधराजा) राजा द्वारा पालित और तापत्रयवर्जित प्रजा थी।

तुम इस गारुड अश्व, जो कामग और बहुरूपी है तथा इस सर्वज्ञ तोते को मेरे से ग्रहण करो और इस रत्नजटित कराल तलवार को जो बड़ी चमकीली है मुझसे ग्रहण करो जिससे गुरुभार पृथिवी का भार हल्का हो।

कवि की पत्नी कामकला ने परमेष्ठी बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु जो महाबली और महापराक्रमी थे को उत्पन्न किया। प्राज्ञ की पत्नी सन्नति से यज्ञविद् सर्वलोकपूजित, विजितेन्द्रिय दो पुत्र हुए और सुमन्त्रक की पत्नी मालिनी ने साधुओं के उपकारक शासन और वेगवान् को उत्पन्न किया।

कल्कि ने पद्मा से जय और विजय लोकविख्यात महाबली पुत्रों को उत्पन्न किया।

× × ×

समीक्ष्य कल्किः प्रोवाच पितामहमिवेश्वरः ।
कारयिष्याम्यश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भोः ॥

× × ×

ततः कल्किर्म्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।
बाणैः संताडितानन्यानानयद्यमसादनम् ॥
विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युर्यमक्षयम् ॥
कपोतरोमा काकाक्षः काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धाः शौद्धोधना याता युयुधुः कल्किसैनिकैः ॥

× × ×

सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायण प्रभुः ।
भल्लाटनगरं प्रायात्खड्गधृक्सप्तिवाहनः ॥
शशिध्वजो महातेजा, गजायुतबलः सुधीः ।

× × ×

देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः संपालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभुः ।
विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ॥

अर्थ—कल्कि ने पितामह से ईश्वर के समान कहा—मैं दिग्विजय हेतु अश्वमेध यज्ञ कराऊंगा ।

तब कल्कि ने अपनी तलवार से काल के ग्रास बने म्लेच्छगणों को बाणों द्वारा यमलोक पहुंचाया । राजा विशाखयूप, कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक, गार्ग्य, भार्ग्य, विशालादि ने म्लेच्छों का संहार किया । कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्णादि अन्य शूरवीरों ने शौद्धधन बौद्धों से युद्ध किया !

सेनागणों से परिवृत नारायण प्रभु नारायण घोड़े पर सवार हो हाथ में तलवार ले भल्लाट नगर गये, जहां शशिध्वज राजा सहस्रों हाथियों की सेना के साथ खड़ा था ।

कल्कि की आज्ञा का पालन करनेवाले देवापि कौरव और मरु ऐक्ष्वाक ने स्वेच्छा से प्रजा और पृथिवी (राष्ट्र) की रक्षा की । विशाखयूप राजा भी कल्कि के महाप्रस्थान को देखकर अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर वन को चले गये ।

(कल्किपुराण)

युगपुराणे राजवृत्तम् (कलिराजवृत्तान्तः)—

ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितो गुणैः।
गंगातीरे स राजर्षिर्दक्षिणे स महानदे।
स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पारामजनाकुलम्॥
तेषां पुष्पपुरं रम्यं नगरं पाटलीसुतम्।
पंच वर्षसहस्राणि स्थास्यते नात्र संशयः।
वर्षाणां पंचशतं च पंच संवत्सरास्तथा।
मासपंचमहोरात्रं मुहूर्ता पंच एव च॥
तस्मिन् पुष्पपुरे रम्ये जनराजशताकुले।
ऋतुक्षाः च कर्मसुतः शालिशूको भविष्यति।
स राजा कर्मसुतो दुष्टात्मा प्रियविग्रहः।
स्वराष्ट्रमर्दने घोरं धर्मवादी अधार्मिकः।
स ज्येष्ठभ्रातरं साधुं साकेते प्रथितं गुणैः।
स्थापयिष्यति मोहात्मा विजयं नाम धार्मिकम्।
ततः साकेतमाक्रम्य पञ्चाला माथुरास्तथा।
यवनाश्च सुविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हि ते।
आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः।
शस्त्रद्रुममहायुद्धं तद् भविष्यति पश्चिमम्।
अनार्याश्चाप्यधर्माश्च भविष्यन्ति नराधमाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैव युगक्षये।
समवेषाः समाचारा भविष्यन्ति न संशयः।
पाषंडैश्च समायुक्ता नरास्तस्मिन् युगक्षये।
स्त्रीनिमित्तं च मित्राणि करिष्यन्ति न संशयः।
चीरवल्कलसंवीता जटावल्कलधारिणः।
भिक्षुका वृषला लोके भविष्यन्ति न संशयः।

× × ×

अर्थ--कलियुग में शिशुनाग का आत्मज (वंशज) बली, धार्मिक और गुणवान् राजा उदायी होगा, जो राजर्षि गंगातट पर और शोणनद के दक्षिण में पुष्प वाटिकाओं से संकुल पाटलिपुत्र या पुष्पपुर नाम के रम्य नगर की स्थापना करेगा। वह नगर भविष्य में पांच हजार पांच सौ पांच वर्ष और पांच मास,

पांच दिन तथा पांच मुहूर्तपर्यन्त स्थित रहेगा। उस रम्य पुष्पपुर में, जिनमें सहस्रों नगरवासी रहते थे, ऋतुक्षा कर्मसुत शालिशूक (मौर्य) राजा होगा। वह कर्मसुत दुष्टात्मा युद्धप्रिय अधार्मिक परन्तु अपने को धार्मिक कहनेवाला अपनी प्रजा राष्ट्र का मर्दन करेगा। वह मोहात्मा अपने ज्येष्ठ भ्राता गुणी साधु विजय नाम के धार्मिक व्यक्ति को साकेत का शासक बनायेगा। तब पञ्चाल, माथुर और पराक्रमी यवनगण साकेत पर आक्रमण करके पाटलिपुत्र तक पहुंचेंगे। तब युद्ध होने पर प्रथित पुष्पपुर में सभी लोग व्याकुल हो जायेंगे, इसमें संशय नहीं। तदुपरान्त शस्त्रों और वृक्षों द्वारा महायुद्ध होगा, उस समय शासक और राजा अधार्मिक और अनार्य होंगे। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी का आचरण और वेश समान रूप से कुत्सित होगे। उस युगान्त में मनुष्य गण पाखण्डों से समायुक्त होंगे। वे लोग स्त्री के लिये ही मित्र बनायेंगे। चीरवल्कल पहिने जटावल्कलधारी भिक्षु (बौद्ध) और शूद्र लोक में बहुलता से होंगे।

धर्मभीततमा वृद्धा जनं भोक्ष्यन्ति निर्भयाः।
यवना ज्ञापयिष्यन्ति नगरे पंच पार्थिवाः।
मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदाः।
तेषामन्योऽन्यसंभावाद् भविष्यति न संशयः।
आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम्।
ततो युगवशात्तेषां यवनानां परिक्षये।
साकेते सप्त राजानो भविष्यन्ति महाबलाः।
लोहिद्रास्तथा योधैर्योधा युद्धपरिक्षताः।
करिष्यन्ति पृथ्वीं शून्यां रक्तघोराः सुदारुणाम्।
ततस्ते मागधाः कृत्स्ना गंगासीना सुदारुणाः।
रक्तपातं तथा युद्धं भविष्यति तु पश्चिमम्।
अग्निवेश्यास्तु ते सर्वे राजानो कृतविग्रहाः।
क्षयं यास्यन्ति युद्धेन यथैषामाश्रिता जनाः।
शकानां च ततो राजा ह्यर्थलुब्धो महाबलः।
दुष्टभावश्च पापश्च विनाशे समुपस्थिते।
कलिंगराजशतार्थे विनाशं वै गमिष्यति।

× × ×

विनष्टे शकराज्ये च शून्या पृथ्वी भविष्यति।
पुष्पनाम तदा शून्यं बीभत्सं भवति वनम्।

भविष्यति नृपः कश्चिन्न वा कश्चिद् भविष्यति ।
ततो तु रणे तुमुलो भविष्यति महाबलः ।
अम्लाटो लोहिताक्षेति पुष्पनामं गमिष्यति ।
सर्वे ते नगरं गत्वा शून्यमासाद्य पर्वतम् ।
अर्थलुब्धाश्च ते सर्वे भविष्यन्ति महाबलाः ।
ततः स म्लेच्छ आम्लाटो रक्ताशो रक्तवस्त्रभृत् ।
जनमादाय विवशं परमुत्सादयिष्यति ।
ततो वर्णांस्तु चतुरः स नृपो नाशयिष्यति ।
वर्णान्सावस्थितान् सर्वान् कृत्वा पूर्णाव्यवस्थितान् ।
आम्लाटो लोहिताश्च विपत्स्यति सबान्धवः ।

अर्थ—निर्भय वृद्धजन, परन्तु धर्महानि से भयभीत, लोगों को भय से मुक्त करेंगे । नगर में यवनगण पांच राज्यों की स्थापना करेंगे । युद्ध में दुर्मद यवन मध्यदेश में नहीं ठहर सकेंगे । वे स्वयं ही परस्पर भयंकर घोर युद्ध में फंस जायेंगे । युगवश (काल के वश) उन यवनों का नाश होगा और साकेत में महाबली सात राजा होंगे । योधागण परस्पर युद्ध में परिक्षत होंगे । वह घोर दारुण युद्ध से शून्य एवं रक्तरंजित होगी । तदुपरान्त गंगातट पर मागध युद्ध होगा जिसमें भारी रक्तपात होगा । अग्निवेशवंशीय सभी राजा युद्धग्रस्त होकर क्षय को प्राप्त होंगे तथा जो लोग उनके आश्रित होंगे, उनका भी विनाश होगा । धन का लोभी महाबली शकों का राजा, जो दुष्ट और पापी भी था, वह कलिंगराज हेतु विनाश को प्राप्त होगा ।

शकराज्य के विनष्ट हो जाने पर पृथिवी शून्य सदृश हो जायेगी । पुष्पपुर और पुष्पवन भी बीभत्स एवं शून्य हो जायेगा । उस समय वहां कोई राजा होगा और कदाचित् नहीं भी होगा । तब आम्लाट नाम का लोहिताक्ष शकराज पुष्पपुर में जायेगा । वे शक नगर में जायेंगे, वह शून्य (जनशून्य) पाकर पर्वत पर पहुंचेंगे । वे शकगण महाबली और धन के लोभी होंगे । वह शकराज म्लेच्छ आम्लाट लाल कपड़े पहिने हुए और लाल आंखों वाला दुष्ट राजा विवश लोगों का घोर विनाश करेगा । वह चारों ही वर्णों का नाश करेगा । जब वह म्लेच्छ सभी वर्णों को अव्यवस्थित कर देगा तब वह लोहिताक्ष आम्लाट सकुटुम्ब विपत्ति में पड़ जायेगा ।

ततो भविष्यति राजा गोपालो नाम नामतः ।
गोपालस्तु ततो राज्यं भुक्त्वा संवत्सरं नृपः ।
पुष्यके चाभिसंयुक्तं ततो निधनमेष्यति ।

ततो धर्मपरो राजा पुष्यको नाम नामतः।
सोऽपि संवत्सरं राज्यं भुक्त्वा निधनमेष्यति।
ततः स विपुलो राजा अनरण्यो महाबलः।
सोऽपि वर्षत्रयं भुक्त्वा पश्चान्निधनमेष्यति।
ततो विष्वक्यशा कश्चिद् ब्राह्मणो लोकविश्रुतः।
तस्यापि त्रीणि वर्षाणि राज्यं हृष्टं भविष्यति।
यतः पुष्पपुरं रम्यं तथैव जनसंकुलम्।
भविष्यति वीरं सिद्धार्थं प्रसवोत्सवसंकुलम्।
पुरस्य दक्षिणे पार्श्वे वाह्लं तस्य दृश्यते।
हयानां द्वे सहस्रे तु गजवाहास्तु कल्पतः।
तदा भद्रायके देशे अग्निमित्रस्तु कीलके।
तस्मिन्नुत्पत्स्यते कन्या सुमहारूपशालिनी।
तस्यार्थे स नृपो घोरं विग्रहं ब्राह्मणैः सह।
तत्र विवशा देहं विमोक्ष्यति न संशयः।
तस्मिन् युद्धे महाघोरेऽव्यतिक्रान्ते सुदारुणे।
आग्निवेश्यस्तदा राजा भविष्यति महाप्रभुः।
तस्यापि विंशद्वर्षाणि राज्यं स्फीतं भविष्यति।
आग्निवेश्यस्तदा राजा प्राप्य राज्यं महेन्द्रवत्।
भीमैश्च शरसंघातैर्विग्रहं समुपैष्यति।
तता शररसंघोरे प्रवृत्ते सुमहाबले।
वृषपातेन स नृपो मृत्युं समुपयास्यति।

× × ×

ततः सांतुवरो राजा हत्वा हेडेन मेदिनीं।
व्यतीते दशमे वर्षे मृत्युं समुपयास्यति।
ततः प्रनष्टचारित्रा स्वकर्मोपहता प्रजाः।
करिष्यन्ति शका घोरा बहुलाश्च इति श्रुतिः।

अर्थ—तदनन्तर गोपाल नाम का राजा होगा। एक वर्ष राज्य करने के पश्चात् पुष्यनक्षत्र में निधन को प्राप्त होगा। तदनन्तर पुष्यक नामक धर्मात्मा राजा होगा, वह भी एक वर्ष राज्य करके मृत्यु को प्राप्त होगा। तब महाबली अनरण्य राजा होगा। वह भी तीन वर्ष राज्य करके मृत्यु को प्राप्त होगा। तदनन्तर कोई विष्वक्यशा नामक कोई लोकप्रसिद्ध राजा तीन वर्ष राज्य करेगा। तब पुष्पपुर में, जो रम्य और जनों से भरा हुआ था, वीर राजा की सिद्धि का

महान् उत्सव होगा, उसका पाटलिपुत्र के दक्षिण पार्श्व में वाहन दिखलाई पड़ता है। दो हजार घोड़े और गजवाहिनी होगी।

भद्रायक देश में अग्निमित्र राजा होगा, उसकी श्रेष्ठ रूपवाली कन्या होगी। उसके लिए राजा का घोर युद्ध ब्राह्मणों के साथ होगा तब विवश होकर वह शरीर छोड़ेगा। उस अतिदारुण महाघोर युद्ध के पश्चात् आग्निवेश्य (ब्राह्मण) राजा होगा, उसका विशाल राज्य बीस वर्ष तक रहेगा। वह महेन्द्र के समान शासक होगा। भयंकर शबरों के युद्ध में वह महाबली राजा बैल से गिर जाने पर मर जायेगा।

तदनन्तर सांतुवर राजा क्रोध से लोगों को मारेगा और दश वर्ष व्यतीत होने पर मृत्यु को प्राप्त होगा। तब प्रजा का चरित्र नष्ट हो जायेगा और अपने ही कर्म से शक घोर अत्याचार करेंगे। ऐसा इतिहास (श्रुति) में प्रसिद्ध है।

चतुर्भागं तु शस्त्रेण नाशयिष्यन्ति प्राणिनाम्।
हरिष्यन्ति शकाः कोशं चतुर्भागं स्वकं परम्॥
ततः प्रजायां शेषायां तस्य राज्यपरिक्षयात्।
देवो द्वादशवर्षाणि अनावृष्टिः करिष्यति।
प्रजाः नाशं गमिष्यन्ति दुर्भिक्षभयपीडिताः।
तत पापक्षते लोके दुर्भिक्षे लोमहर्षणे।
भविष्यति युगस्यान्ते सर्वप्राणिविनाशनम्॥
जनमारस्ततो घोरो भविष्यति न संशयः।

× × ×

एतद्भविष्यमाख्यातं मया ते बर्हिध्वजः॥

(इति गार्गीये ज्योतिषे स्कन्दपुराणं नामाध्यायः)

अर्थ—वे शकगण प्रजा के चतुर्थ भाग को शस्त्रों से मार देंगे। तथा कोश के चतुर्थ भाग का भी अपहरण करेंगे। तब अवशिष्ट प्रजा का राज्यपरिक्षय के कारण पर्जन्य देव बारह वर्ष तक नहीं बरसेंगे। अतः दुर्भिक्ष भय से पीड़ित प्रजा नाश को प्राप्त होगी। तब पाप से नष्ट एवं घोर दुर्भिक्ष से सभी प्राणियों का युग के अन्त में नाश होगा। उस समय जनता का घोर संहार (मृत्यु) होगा।

हे कार्तिकेय! मैंने आपसे यह भविष्यकालिक वृत्तान्त कहा।

अष्टोऽध्यायः

कलियुगीनविद्यावंशाः

(वायुपुराण अ० २३, श्लोक १०६-२१२)

व्यासानां परम्परा (अष्टाविंशतियुगेषु)

प्रथमे युगे—

तदा चतुर्युगावस्थे कल्पे तस्मिन्युगान्तिके ।
भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ॥
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे ।
चतुःशिष्या शिवे युक्ताः भविष्यन्ति तदा मम ।
श्वेतश्चैव शिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ॥
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥

अर्थ—प्रथम युग के प्रथम व्यास ब्रह्मा (कश्यप)—चतुर्युगाख्यकल्प के युगान्त में मैं शिखायुक्त 'श्वेत' नाम का महामुनि होऊंगा । हिमवान् पर्वत के शिखर 'छागल' नाम के पर्वत पर मेरे योगी चार शिष्य होंगे—श्वेत, शिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित । वे चारों ब्राह्मण और वेदपारंगत होंगे ।

द्वितीये युगे—

पुनरस्तु मम देवेशो द्वितीयद्वापरे प्रभुः ।
प्रजापतिर्यदा व्यासः सत्यो नाम भविष्यति ।
तदा लोकहितार्थाय सुतारो नाम नामतः ।
भविष्यामि कलौ तस्मिल्लोकानुग्रहकारणात् ।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्या नाम नामतः ।
दुन्दिभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ॥

अर्थ—द्वितीययुग में प्रजापति सत्य व्यास—पुनः द्वितीय द्वापर (परिवर्तयुग) में समर्थ प्रभु प्रजापति सत्यनारायण नाम के व्यास होंगे । तब उस कलियुग में जनता की भलाई के लिए मैं 'सुतार' नाम से अवतार लूंगा । तब उस समय मेरे चार पुत्र होंगे—दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक और केतुमान् ।

तृतीये युगे—

तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
तदा ह्यहं भविष्यामि दमस्तु युगान्तिके ॥
तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः ।
विशोकश्च विकेशश्च विशापः शापनाशनः ॥

अर्थ—तृतीय युग के तृतीय व्यास उशनाकाव्य— तृतीय युग में जब भार्गव (उशनाकाव्य—शुक्राचार्य) होंगे। तब मैं युगान्त में 'दम' नाम से प्रसिद्ध योगी होऊंगा। तब मेरे चार पुत्र होंगे—विशोक, विकेश, विशाप और शापनाशन।

चतुर्थे युगे—

चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः सुतः ।
तदाऽहं भविष्यामि सुहोत्री नाम नामतः ।
तत्रापि मम सत्पुत्राश्चत्वारश्च तपोधनाः ॥
भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठा योगात्मानो दृढव्रताः ।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः ॥

अर्थ—चतुर्थ युग के व्यास बृहस्पति आंगिरस— चतुर्थ युग में अंगिरा के पुत्र बृहस्पति होंगे। तब मैं सुहोत्री नाम का योगी होऊंगा। वहां मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे - श्रेष्ठ ब्राह्मण, योगी और दृढ़व्रती—सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम।

पंचमे युगे—

पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा ।
तदा चापि भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः ।
अनुग्रहार्थं लोकानां योगात्मा नैककर्मकृत् ।
चत्वारस्तु महाभागा अविरजाः शुद्धयोनयः ॥
पुत्रा मम भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः ।
सनकः सनन्दश्चैव प्रभुर्यस्य सनातनः ॥
ऋभुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहंकृताः ।

अर्थ—पंचम युग में पंचम व्यास सविता (विवस्वान्=सूर्य)—पंचम युग में पंचम व्यास सविता=विवस्वान् होंगे। उस युग में मैं महातपस्वी कंक नाम का योगी होऊंगा। लोकों (जनता) की भलाई के लिए अनेक कर्मों का कर्त्ता मैं योगी होऊंगा। मेरे महाभाग्यशाली चार निष्पाप और शुद्ध योनि पुत्र होंगे—वे दृढ़व्रती योगी होंगे—सनक, सनन्द, सनातन और सनत्कुमार। वे निर्मम (संन्यासी) और निरहंकृत होंगे।

षष्ठे युगे—

परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः।
तदाऽप्यहं भविष्यामि लोकाक्षि नाम नामतः॥
शिष्याश्च मम ते दिव्या योगात्मानो दृढव्रताः।
भविष्यन्ति महाभागाश्चत्वारो लोकसम्मताः।
सुधामा विरजश्चैव शंखः पादप एव च॥

अर्थ—षष्ठ द्वापर में मृत्यु = यम वैवस्वत व्यास—छठे परिवर्त में जब प्रभु यम वैवस्वत (मृत्यु) व्यास होंगे, तब मैं 'लोकाक्षि' नाम का योगीश्वर होऊंगा। उस समय मेरे दिव्य योगी दृढ़वती चार भाग्यशाली, लोकपूजित पुत्र (या शिष्य) होंगे—सुधामा, विरजा, शंख और पादप।

सप्तमे युगे—

सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः।
विभुर्नाम महातेजाः पूर्वमासीच्छतक्रतुः॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन्युगान्तके।
जैगीषव्येति विख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति युगे तदा॥
सारस्वतः सुमेधश्च वसुवाहः सुवाहनः।

अर्थ—सप्तम युग में शतक्रतु (इन्द्र) व्यास—सप्तम परिवर्त युग में शतक्रतु (सौ यज्ञों को करानेवाला पुरोहित, काश्यप इन्द्र व्यास होगा। महातेजस्वी इन्द्र पहिले शतक्रतु (ऋत्विक्) ब्राह्मण = शक्र था। (बाद में देवराज इन्द्र हुआ)। उस समय कलियुग (परिवर्त) के अन्त में, मैं योगियों में श्रेष्ठ 'जैगीषव्य' होऊंगा। तब मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे—सारस्वत (अपान्तरतमा—शिशु आंगिरस दाधीच), सुमेधा, वसुवाह और सुवाहन।

अष्टमे युगे—

वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्तें भविष्यति।
कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पंचशिखो मुनिः।
वाग्वलिश्च महायोगी सर्व एव महौजसः॥

अर्थ—अष्टम युग में अष्टम व्यास = वसिष्ठ मैत्रावरुणि—आठवें युग में वसिष्ठ व्यास होंगे। उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और वाग्वलि—महायोगी और महातपस्वी होंगे।

नवमे युगे—

परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा।

तदा चाहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ।
पराशरश्च गार्ग्यश्च भार्गवो ह्यङ्गिरास्तथा ॥

अर्थ—नवम युग में नवम व्यास = सारस्वत = अपान्तरमा - नवम परिवर्त में सारस्वत व्यास होंगे। तब मैं 'ऋषभ' नाम का योगी होऊंगा। उस समय मेरे महातेजस्वी पुत्र होंगे—पराशर, गार्ग्य, भार्गव और आंगिरस।

दशमे युगे—

दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नाम नामतः।
भविष्यन्ति यदा विप्रस्तदाऽहं भविता पुनः।
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे ॥
नाम्ना भृगोस्तु शिखरं तस्मात्तच्छिखरं भृगुः।
तत्रैव मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुश्रृंगस्तपोधनः ॥

अर्थ—दशम युग में दशम व्यास त्रिधामा—दशम परिवर्त युग में त्रिधामा नाम का व्यास होगा, तब मैं भार्गव ब्राह्मण के रूप में योगी होऊंगा। हिमालय पर रम्य भृगुतंग शिखर पर मेरे चार दृढ़वती पुत्र होंगे—बलबन्धु, निरामित्र, केतुश्रृंग और तपोधन।

एकादशे युगे—

एकादशे द्वापरे तु शरद्वान् व्यासो भविष्यति।
तदाऽप्यहं भविष्यामि गङ्गाद्वारे कलेर्धुरि ॥
उग्रा नाम महानादास्तत्रैव मम पुत्रकाः।
भविष्यन्ति महोजस्काः सुवृत्ता लोकविश्रुताः ॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः।

अर्थ—एकादश युग में एकादश व्यास शरद्वान् (गौतम)—एकादश युग में शरद्वान् गौतम व्यास होंगे। तब मैं हरिद्वार में कलि के अन्त में उग्र नाम से होऊंगा। वहां मेरे उग्र नाम से ही चार शिष्य होंगे, जो महानाद करते होंगे—लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष और लम्बकेशक।

द्वादशे युगे—

द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा महामुनिः।
भविष्यति महासत्त्वो व्यासः कविवरोत्तमः।
ततोऽप्यहं भविष्यामि अत्रिर्नाम युगान्तके ॥
हैमकं वनमासाद्य योगमास्थाय भूतले ॥

अत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः।
भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः ॥
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च ॥

अर्थ—द्वादशयुग में द्वादश व्यास शततेजा मुनि—द्वादश युग में महाबली श्रेष्ठ कवि महामुनि शततेजा व्यास होंगे। तब मैं अत्रि (दत्तात्रेय) नाम का योगी होऊंगा। उस समय पृथिवी पर हैमक नाम के वन में योगस्थ होकर रहूंगा। तब चार पुत्र भस्म से स्नान करेंगे। वे रुद्र के भक्त और महायशी होंगे सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और सर्व।

त्रयोदशे युगे—

त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु।
धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि बालिर्नाम महामुनिः।
बालखिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गन्धमादने ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरज्यस्तथा ॥

अर्थ—त्रयोदश युग में त्रयोदश व्यास धर्म नारायण—त्रयोदश परिवर्त में धर्म नारायण (द्वितीय) नाम के व्यास होंगे। तब मैं बालि नाम का महामुनि और महायोगी होऊंगा।

बालखिल्याश्रम में पुण्य गन्धमादन पर्वत पर मेरे महातपस्वी चार शिष्य होंगे—सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा।

चतुर्दशे युगे—

यदा व्यास सुरक्षस्तु पर्यायश्च चतुर्दश।
तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके ॥
वंशे त्वङ्गिरस श्रेष्ठो गौतमो नाम योगवित्।
तस्माद्भविष्यति पुण्यं गौतमं नाम तद्वनम् ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तथा ॥
अत्रिरुग्रतपाश्चैव श्रवणोऽथ सुविष्टकः ॥

अर्थ— चतुर्दश युग के चौदहवें व्यास सुरक्षमुनि—चतुर्दश युग में सुरक्ष व्यास होंगे। युगान्त में मैं अंगिरा के वंश में गौतम आंगिरस नाम का योगी होऊंगा। उसी के नाम से वह पुण्यवन 'गौतम' कहलायेगा। उस समय मेरे युगान्त में चार शिष्य होंगे—अत्रि (आत्रेय), उग्रतपा, श्रवण और सुविष्टक।

पंचदशे युगे—

ततः प्राप्ते पंचदशे परिवर्ते क्रमागते ॥

त्र्यारुणिस्तु यदा व्यासो द्वापरे भविता प्रभुः ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजः ।
तत्र वेदशिरा नाम अस्त्रं तत्पारमेश्वरम् ॥
भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः ।
हिमवत्पृष्ठमाश्रित्य सरस्वत्या नदीतटे ॥
तदाऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥

अर्थ—पंचदश युग में त्र्यारुणि व्यास—पंचदश परिवर्त के आने पर त्र्यारुणि नाम का व्यास होगा । तब मैं वेदशिरा नाम का योगी होऊंगा और पारमेश्वर अस्त्र होऊंगा । महावीर्य वेदशिरा के नाम से वेदशीर्ष पर्वत होगा । हिमालय के पृष्ठ में सरस्वती के तट पर, तपस्वी मेरे चार शिष्य होंगे—कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक ।

षोडशे युगे—

ततश्च षोडशे चापि परिवर्ते क्रमागते ।
व्यासस्तु संजयो नाम भविष्यति तदा प्रभुः ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि गोकर्णो नाम नामतः ।
तस्माद् भविष्यते पुण्यं गोकर्णं नाम तद्वनम् ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ।
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः ॥

अर्थ—षोडश युग में व्यास संजय—सोलहवें परिवर्त युग में समर्थ संजय नाम के व्यास होंगे । उस समय मैं (शिव) गोकर्ण नाम का महायोगी होऊंगा । उस समय मेरे नाम से गोकर्णवन प्रख्यात होगा । मेरे महातेजस्वी चार पुत्र होंगे—काश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति ।

सप्तदशे युगे—

ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते ।
तदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतंजयः ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः ।
हिमवच्छिखरे चैव महातुङ्गे महालये ।
सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम् ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा ब्रह्मज्ञा योगवेदिनः ।
भविष्यन्ति महात्मानो मर्मज्ञा निरहंकृताः ।

उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महालयः ॥
तेषां शतसहस्रं तु शिष्याणां ध्यानसाधनम् ।

अर्थ—सप्तदश युग के व्यास देव कृतंजय—क्रमशः सप्तदशवें परिवर्त युग में देव कृतंजय नाम का व्यास होगा। तब मैं 'गुहावसी' नाम का महायोगी होऊंगा। मनोहर हिमालय पर्वत के महालय महातुंग पर्वत पर महापुण्य सिद्ध क्षेत्र में मेरे ब्रह्मज्ञानी और योगी पुत्र होंगे—उतथ्य, वामदेव, महाकाल और महालय। वे मर्मज्ञ एवं निरंहकारी होंगे। उनके लाखों शिष्य (अनुयायी) होंगे।

अष्टादशे युगे—

ततोऽष्टादशमश्चैव परिवर्ती यदा भवेत् ।
तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तु भविता मुनिः ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ॥
वाचश्रवाः ऋचीकः श्यावाश्वश्च दृढव्रतः ॥

अर्थ—अष्टादश युग में अठारहवां व्यास ऋतंजय—क्रमशः अठारहवें परिवर्त युग में ऋतंजय नाम के व्यास होंगे, तब मैं शिखण्डी नाम से प्रसिद्ध योगी होऊंगा। तब मेरे तपोधन पुत्र होंगे—वाचश्रवा, ऋचीक, श्यावाश्व और दृढ़व्रत।

एकोनविंशे युगे—

ततस्त्वेकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते ।
व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः ॥
तत्रापिऽहं भविष्यामि जटामालीति नामतः ।
हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥
हिरण्यनाभो कौशल्यः काक्षीवान् कुयुमिस्तथा ।

अर्थ—उन्नीसवें युग में उन्नीसवें व्यास भरद्वाज (भारद्वाज)—क्रमशः उन्नीसवें परिवर्त युग में महामुनि भरद्वाज व्यास होंगे। उस समय में मैं जटामाली नाम का योगी होऊंगा। हिमालय पर्वत पर जटायु शिखर पर मेरे तेजस्वी शिष्य होंगे--हिरण्यनाभ, कौसल्य, कक्षीवान् और कुयुमि।

विंशतितमे युगे—

ततो विंशतमे सर्गे परिवर्ते क्रमेण तु ।
वाजश्रवाः स्मृतो व्यासो भविष्यति महामतिः ॥

तदाऽप्यहं भविष्यामि ह्यट्टहासेति नामतः ।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥
सुमन्तुर्बर्बरिर्विद्वान् सुबन्धुः कुशिकन्धरः ॥

अर्थ—बीसवें युग में बीसवें व्यास वाजश्रवा—बीसवें युग में महामति वाजश्रवा (गौतम) व्यास होंगे । तब मैं 'अट्टहास' नाम का योगी होऊंगा । वहां मेरे तेजस्वी शिष्य होंगे—सुमन्तु, बर्बरि, सुबन्धु और कुशिकन्धर ।

एकविंशे युगे—

एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु ।
वाचस्पतिः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः ।
तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं महत् ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ।
प्लक्षो दाक्षायणिश्चैव केतुमाली बकस्तथा ॥

अर्थ—इक्कीसवें युग में इक्कीसवां व्यास वाचस्पति—क्रमशः इक्कीसवें युग ऋषिश्रेष्ठ वाचस्पति नाम के व्यास होंगे । तब मैं दारुक नाम का योगीश्वर होऊंगा । उनके नाम से महान् देवदास वन प्रथित होगा । उस समय मेरे तेजस्वी शिष्य होंगे– प्लक्ष, दाक्षायणी, केतुमाली और बक ।

द्वाविंशे युगे—

द्वाविंशे परिवर्ते तु व्यासः शुक्लायनो यदा ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ।
नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवा सवासवाः ।
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नतवीर्णं हलायुधम् ॥
यत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः ।
तुल्यार्चि मधुः पिङ्गाक्षः श्वेतकेतुस्तथैव च ॥

अर्थ—बाईसवें युग के बाईसवें व्यास शुक्लायन—बाईसवें युग में शुक्लायन नाम के व्यास होंगे । तब मैं वाराणसी में लांगली भीम महामुनि (महायोगी) होऊंगा । उस समय मुझे युगान्त में इन्द्रसहित देवगण हलायुध' के रूप में देखेंगे । उस समय मेरे अत्यन्त धार्मिक पुत्र होंगे –तुल्यार्चि, मधु, पिगांक्ष और श्वेतकेतु ।

त्रयोविंशे युगे—

परिवर्ते त्रयोविंशे तृणविन्दुर्यदा मुनिः ।
व्यासो भविष्यति ब्रह्मा तदाऽहं भविता पुनः ।

श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रः सुधार्मिकः ।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ।।
उशिजो बृहदुक्थश्च देवलः कविरेव च ।।

अर्थ—तेईसवें युग में तृणबिन्दु व्यास—तेईसवें परिवर्त युग में महामुनि तृणबिन्दु नाम के व्यास होंगे। तब मैं श्वेत ब्रह्मा (ब्राह्मण) नाम से महाकाय मुनिपुत्र, सुधार्मिक योगी होऊंगा। उस समय मेरे शिष्य होंगे—उशिज, बृहदुक्थ, देवल और कवि।

चतुर्विंशे युगे—

परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति ।
तत्राहं भविता ब्रह्मन् कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।
शूली नाम महायोगी नैमिषे योगिवन्दिते ।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ।
शीलहोत्रोऽग्निवेश्यश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ।।

अर्थ—चौबीसवें युग में चौबीसवें व्यास ऋक्ष (वाल्मीकि)—चौबीसवें युग में ऋक्ष (वाल्मीकि) नाम का व्यास होगा। युगान्त में मैं 'शूली' नाम का महायोगी नैमिषारण्य होऊंगा। उस समय में मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे—शीलहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व और शरद्वसु।

पंचविंशे युगे—

पंचविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते यथाक्रमम् ।
वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिनाम भविष्यति ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ।
कोटिवर्षं समासाद्य नगरं देवपूजितम् ।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति क्रमागताः ।
योगात्मनो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ।
छगलः कुम्भकर्षाश्वः कुम्भश्चैव प्रवाहुकः ।

अर्थ—पच्चीसवें युग में पच्चीसवें व्यास शक्ति वसिष्ठ—यथाक्रम पच्चीसवें परिवर्त के प्राप्त होने पर शक्ति वासिष्ठ नाम के व्यास होंगे। उस समय मैं, दण्डी मुनीश्वर प्रभु नाम से पूज्य कोटिवर्ष नगर में रहूंगा। तब मेरे चार प्रधान शिष्य होंगे—वे सभी योगी, महात्मा और ब्रह्मचारी होंगे—छगल, कुम्भकर्षाश्व, कुम्भ और प्रबाहुक।

षड्विंशे युगे—

षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः ।

तदाऽप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः ॥
पुण्यं रुद्रवटं प्राप्यं कलौ तस्मिन् युगान्तिके ।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः ॥
उलूको वैद्युतश्चैव शर्वको ह्याश्वलायनः ।

अर्थ—छब्बीसवें युग में छब्बीसवें व्यास पराशर—छब्बीसवें युग में व्यास पराशर होंगे। युगान्त कलि में पुण्य रुद्रवट के आश्रम में मैं 'सहिष्णु नाम का योगी होऊंगा। उस समय मेरे अत्यन्त धार्मिक शिष्य होंगे— उलूक, वैद्युत, शर्वक और आश्वलायन।

सप्तविंशे युगे—

सप्तविंशतमे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते ।
जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः ।
प्रभासं तीर्थमासाद्य योगात्मा लोकविश्रुतः ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ।
अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च ॥

अर्थ—सत्ताईसवें युग में सत्ताईसवें व्यास कातूकर्ण्य—सत्ताईसवें युग में क्रमागत रूप से तपस्वी जातूकर्ण्य (पाराशर्य) व्यास होंगे। उस समय मैं ब्राह्मण सोमशर्मा के नाम से महायोगी के रूप में प्रसिद्ध प्रभासतीर्थ में रहूंगा। वहां मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे—अक्षपाद (गौतम), कणाद, उलूक और वत्स।

अष्टाविंशे युगे—

अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते ।
पराशरसुतः श्रीमान् विष्णुर्लोकपितामहः ॥
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः ।
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः ॥
वसुदेवाद् यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ।

× × ×

दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना ।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन्नकुली नाम नामतः ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ।
कुशिकश्चैव गार्ग्यश्च मित्रको रुष्ट एव च ॥
योगयुक्ता महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्ध्वरेतसः ॥

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।

(वायुपुराणे, त्रयोविंशोऽध्यायः)

अर्थ— अट्ठाइसवें युग में पाराशर्य कृष्णद्वैपायन व्यास—अट्ठाइसवें परिवर्त युग में पराशरसुत, श्रीमान् विष्णु के अवतार पितामह (पाण्डवों के) श्री कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे। उसी समय महायोगीश्वर पुरुषोत्तम भगवान् के षष्ठांश से उत्पन्न वसुदेव के पुत्र यदुश्रेष्ठ वासुदेव कृष्ण होंगे।

उस समय मैं दिव्य, पुण्य, मेरुगुहा में विष्णु (कृष्ण वासुदेव) के साथ 'नकुली' नाम से महायोगी होऊंगा। उस समय मेरे चार तपस्वी पुत्र (शिष्य) होंगे—कुशिक (कौशिक), गार्ग्य, मित्रक और रुष्ट। वे योगी, महात्मा, ब्राह्मण, वेदज्ञ, विमल (निष्पाप) ब्रह्मचारी माहेश्वर योग को प्राप्त करके रुद्रलोक (शिवधाम) को जायेंगे, जहां से पुनर्जन्म नहीं होता है।

वेदव्यास परम्परा:—

द्वापरे प्रथमे स्वायम्भुवो मतः।
बिभेद बहुधा वेदोपनिषद्ब्राह्मणान् प्रभुः।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थेस्याद् बृहस्पतिः ।।
सविता पंचमे व्यासः षष्ठे मृत्युः प्रकीर्तितः ।।
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः ।।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः ।।
एकादशे तु ऋषभः सुतेजा द्वादशे स्मृतः।
त्रयोदशे तथा धर्मः सुचक्षुस्तु चतुर्दशे ।।
त्रय्यारुणिः पंचदशे षोडशे तु धनंजयः।
कृतंजय सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतंजयः ।।
ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वं तु गौतमः ।।
वाचश्रवाश्चैकविंशे तस्मान्नारायणः परः ।।
तृणविन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृतः ।।
पंचविंशे तथा शक्तिस्ततो पराशरः स्मृतः ।।
सप्तविंशे तथा व्यासो जातुकर्णो महामुनिः।
पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत् ।।
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः ।।

(कूर्मपुराण अध्याय ५२)

अर्थ—प्रथम द्वापर (प्रथम परिवर्त युग) में स्वायम्भुव (कश्यप) वेदव्यास थे, उन्होंने अनेकबिध से वेद, ब्राह्मण और उपनिषदों का विभाजन किया। द्वितीय द्वापर (परिवर्त युग) में प्रजापति (ब्रह्मा =वरुण) वेदव्यास थे। तृतीय युग में उशना काव्य (शुक्राचार्य) वेदव्यास थे। चतुर्थ युग में बृहस्पति व्यास हुए। पांचवें युग में सविता (विवस्वान्) पंचम व्यास थे। षष्ठ युग में वैवस्वतमनु व्यास हुए और सप्तम युग में इन्द्र शतक्रतु=शक्र) वेदव्यास बने। अष्टमयुग में वसिष्ठ, नवम युग में सारस्वत (अपान्तरतमा), दशम युग में त्रिधामा ऋषि, एकादश में ऋषभ, द्वादश युग में सुतेजा, त्रयोदश में धर्म, चतुर्दश युग में सुचक्षु, पंचदश में त्यारुणि, षोडश में धनंजय, सप्तदश में कृतंजय, अष्टादश में ऋतंजय व्यास थे। तदनन्तर उन्नीसवें युग में भरद्वाज, बीसवें युग में गौतम, इक्कीसवें में वाचश्रवा, बाइसवें में नारायण (द्वितीय), तेईसवें युग में तृणबिन्दु, चौबीसवें में वाल्मीकि, पच्चीसवें युग में शक्ति वासिष्ठ, तदनन्तर छब्बीसवें युग में पराशर व्यास, सत्ताईसवें युग में जातूकर्ण महामुनि व्यास और अट्ठाईसवें (अन्तिम) युग में कृष्णद्वैपायन व्यास हुए, वही व्यास सभी वेदों और पुराणों के पथप्रदर्शक (रचयिता) थे।

पुराणप्रवक्तृपरम्परा:—

ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने।
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः॥
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम्॥
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः॥
इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च॥
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते।
शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान्॥
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि च त्रयारुणाय।
त्र्य्यारुणो धनंजये स च प्रादात् कृतंजये।
कृतंजयात्तृणंजयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ॥
गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरे पुनः॥
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च॥
स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे॥
तृणबिन्दुस्तु ऋक्षाय ऋक्षः प्रोवाच शक्तये।
शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम्।
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः।

द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।
मया वै तत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायऽमितबुद्धये ।।

(वायुपुराणे अध्याय १०३)

अर्थ— ब्रह्मा (कश्यप) ने यह पुराणशास्त्र मातरिश्वा (वायुमुनि) को दिया (पढ़ाया), वायुमुनि से उशना (शुक्र) ने प्राप्त किया, शुक्र से बृहस्पति ने पढ़ा, देवगुरु बृहस्पति ने सविता (विवस्वान्) को पढ़ाया और विवस्वान् ने अपने पुत्र वैवस्वत यम को पुराण पढ़ाया । वैवस्वत यम ने अपने शिष्य इन्द्र (शतक्रतु) को पढ़ाया, इन्द्र ने वसिष्ठ ऋषि को पुराण अध्ययन कराया, वसिष्ठ ने सारस्वत दाधीच (अपान्तरतमा) ऋषि को पुराण पढ़ाया । सारस्वत ने त्रिधामा को, त्रिधामा ने शरद्वान् को, शरद्वान् ने त्रिविष्ट को, उसने अन्तरिक्ष ऋषि को पुराण विद्या दी । अन्तरिक्ष ने वर्षी को, वर्षी ने त्र्यारुणि को, त्र्यारुणि ने धनंजय को, उसने कृतंजय को पुराण पढ़ाया । कृतंजय से पुराण तृणंजय ने पढ़ा, उसने भरद्वाज को और उसने अपने शिष्य निर्यन्तर को, निर्यन्तर ने वाजश्रवा को और उसने सोमशुष्म को पुराण विद्या दी । उसने तृणबिन्दु को दी, तृणबिन्दु ने ऋक्ष (वाल्मीकि) ऋषि को पुराण पढ़ाया । ऋक्ष ने शक्ति को, शक्ति ने पराशर को गर्भ में ही पुराण सुनाया । पराशर से जातूकर्ण्य ने पुराण सुना और जातूकर्ण्य ने कृष्णद्वैपायन को पुराणविद्या प्रदान की ।

श्रीकृष्ण द्वैपायन ने मुझे (रोमहर्षण सूत) को, हे ब्राह्मणो पुराण पढ़ाया और मैंने अपने अमितबुद्धि पुत्र उग्रश्रवा सौति को पुराण विद्या दी ।

कुशिकवंशः—

जह्नोरजस्तु तनयो बलाकाश्वस्तु तत्सुतः ।
कुशिको नाम धर्मज्ञस्तस्य पुत्रो महीपते ।३।
गाधिर्नामाभवत् पुत्रः कौशिकः पाकशासनः ।६।
तस्य कन्याभवद् राजन् नाम्ना सत्यवती प्रभो ।
तां गाधिर्भृगुपुत्राय सर्चीकाय ददौ प्रभुः ।७।
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवः ।२९।
ऋचीको जनयामास जमदग्निं तपोनिधिम् ।३१।
अर्जुनो नाम तेजस्वी क्षत्रियो हैहयाधिपः ।३५।
दत्तात्रेयप्रसादेन राजा बाहुसहस्रवान् ।३६।
आपवस्तु ततो रोषाच्छशापार्जुनमच्युत ।४२।
विश्वामित्रस्य पौत्रस्तु रैभ्यपुत्रो महातपाः ।५६।
परावसुर्महाराज क्षिप्त्वाऽऽह जनसंसदि ।५७।

प्रतर्दनप्रभृतयो राम किं क्षत्रिया न ते ।५८।

(महा० १२।अ० ४९)

अर्थ—जह्नु का पुत्र अज (अजक) था, उसका पुत्र था बलाकाश्व और उसका पुत्र था धर्मज्ञ कुशिक (राजा)। कुशिक का पुत्र हुआ गाधि जिसको कौशिक और पाकशासन (इन्द्र) भी कहते हैं। गाधि की कन्या सत्यवती थी। गाधि ने अपनी कन्या सत्यवती भृगुपुत्र (भार्गव) ऋचीक को दे दी। सत्यवती ने तपोनिधि पुत्र जमदग्नि को उत्पन्न किया। तेजस्वी हैहयाधिपति क्षत्रिय राजा अर्जुन, महर्षि दत्तात्रेय की कृपा से 'बाहु सहस्रवान् (हजार भुजाओं वाला या हजार पुत्रों वाला)।' आपने (वसिष्ठ ने) क्रोध में अर्जुन को (उसके नाश का) शाप दिया।

विश्वामित्र का पौत्र और रैभ्य का पुत्र महातपस्वी परावसु था। उसने आक्षेपपूर्वक परशुराम से कहा--"क्या प्रतर्दन इत्यादि क्षत्रिय नहीं हैं?"

पुराणप्रवक्तृपरम्परा (विष्णुपुराणे)—

इदमार्षं पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः।
ऋभुः प्रियव्रतस्याह स च भागुरयेऽब्रवीत्॥
भागुरिः स्तम्भमित्राय दधीचाय स चोक्तवान्।
सारस्वताय तेनोक्तं भृगुस्सारस्वतेन च।
भृगुणा पुरुकुत्साय नर्मदायै स चोक्तवान्॥
नर्मदा धृतराष्ट्राय नागाय पूरणाय च॥
ताभ्यां च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज।
वासुकिः प्राह वत्साय वत्सश्चाश्वतराय वै।
कम्बलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वै।
पातालं समनुप्राप्तस्ततो वेदशिरा मुनिः।
प्राप्तवानेतदखिलं स च प्रमतये ददौ।
दत्तं प्रमतिना चैतज्जातूकर्णाय धीमते।
जातूकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यकर्मणाम्।
पुलस्त्यवरदानेन मयाप्येतत्स्मृतिं गतम्।
मयापि तुभ्यं मैत्रेय यथावत्कथितं त्विदम्॥

(विष्णु पुराण ६।८)

अर्थ—इस आर्ष (ऋषिकृत) इस विष्णु पुराण (आदिम-मूल) को ब्रह्मा (कश्यप) ने ऋभु को पढ़ाया, ऋभु ने प्रियव्रत (अज्ञात वंश) को पढ़ाया, प्रियव्रत ने भागुरि (भृगु ?) को, भागुरि ने स्तम्भमित्र को और उसने दधीचि को पढ़ाया।

दधीचि ने (अपने पुत्र) सारस्वत (अपान्तरतमा) ऋषि को, सारस्वत ने भृगु (भार्गव अज्ञात) को, भृगु ने पुरुकुत्स (ऐक्ष्वाक) को, पुरुकुत्स ने (अपनी पत्नी) नर्मदा (नागकन्या) को यह पुराण पढ़ाया। नर्मदा ने धृतराष्ट्र नाग और पूरण नाग को, उन दोनों नाग ऋषियों ने वासुकि नागराज को, वासुकि ने वत्स नाग को, वत्स ने अश्वतर को, उसने कम्बल को, उसने ऐलपुत्र नाग को, उसने पाताल (विदेश) में जाकर वेदशिरा (मार्कण्डेय) मुनि को, वेदशिरा ने प्रमति (भार्गव) को पुराण पढ़ाया। प्रमति ने जातूकर्ण्य ऋषि को, जातूकर्ण्य ने अन्य पुण्यकर्मा ऋषियों को (उनमें पौलस्त्य-पुलस्त्य ऋषि थे) पढ़ाया। पुलस्त्य से मैंने (पराशर ने) विष्णु-पुराण प्राप्त किया! मैंने हे मैत्रेय (बकदाल्भ्य) ऋषे! आपको यथावद् यह पुराण सुना दिया है।

मन्त्रद्रष्टार ऋषिगणाः

(वायुपुराण अ० ५९ श्लोक ८८

मन्त्रकृतः ऋषयः आदिवंशाः—

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥

अर्थ—भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ और पुलस्त्य—ये दश (आदिम ऋषि) थे।

ऋषिगणः—

काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा।
उतथ्यो वामदेवश्च अयास्यश्चौशिजस्तथा॥
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्बालखिल्यास्तथा धराः।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषितां गताः॥

अर्थ—उशनाकाव्य, बृहस्पति, कश्यप, उशना (वही), उतथ्य, वामदेव, अयास्य, औशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, बालखिल्य तथा धरा—ये ऋषि कथित हैं जो ज्ञान द्वारा ऋषित्व को प्राप्त हुए।

ऋषिपुत्राः—

वत्सरो रहूगणश्चैव भरद्वाजस्तथैव च।
बृहदुक्थः शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा॥
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शरद्वतः।
वाजश्रवाः सुवित्तश्च सुवाग्वेषपरायणः।
दधीचः शङ्खश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा।
इत्येते ऋषिकाः प्रोक्ताः·····················॥

अर्थ—वत्सर, रहूगण, भरद्वाज, बृहदुक्थ, शरद्वान्, अगस्त्य, औशिज, दीर्घतमा, बृहदुक्थ, शरद्वान्, वाजश्रवा, सुवित्त, सुवाग्वेष (श्यावाश्व), दधीचि, शंख, वैश्रवण ये ऋषीक कहे गये हैं।

आङ्गिरसवंशीया मन्त्रकृतः ऋषयः

भार्गवाः—

भृगुः काव्यः प्रचेतास्तु दधीचो ह्याप्नुवानपि।
औवोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा॥
अद्विषेणो ह्यरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः॥
वैन्यः पृथुर्दिवोदासः प्रश्वारो गृत्समन्तभः।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः॥

अर्थ—भृगु, काव्य, उशना, प्रचेता (वरुण), दधीचि, आप्नुवान्, और्व, जमदग्नि, विद, सारस्वत, अद्विषेण, अरूप, वीतहव्य, सुमेधा, वैन्य, पृथु, दिवोदास, प्रश्वार, गृत्समद, नभ—ये उन्नीस मन्त्रकर्ता अंगिरस ऋषि थे।

आङ्गिरसः—

अङ्गिरा वेधसश्चैव भरद्वाजोऽथ वाष्कलिः।
तथामृतस्तथा गार्ग्यः शेनी संहृतिरेव च।
पुरुकुत्सोऽथ मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च॥
आहार्योपाजमीढश्च ऋषभो बलिरेव च।
पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चेवाथ मुद्गलः।
युवनाश्वः पौरुकुत्स्यस्त्रसदस्युः सदस्युमान्॥
उतथ्यश्च भारद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च।
औशजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतमा तथा॥
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिशत् स्मृता अङ्गिरसो वराः।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत।

अर्थ—अंगिरा, वेधस, भरद्वाज, वाष्कलि, गार्ग्य, शेनी, संहृति, पुरुकुत्स, मान्धाता, अम्बरीष, आहार्य, अजमीढ़, ऋषभ, बलि, पृषदश्व, विरूप, कण्व, मुद्गल, युवनाश्व, पौरुकुत्स त्रसदस्यु, सदस्युमान्, उतथ्य, भरद्वाज, वाजश्रवा, आयाप्य, अयास्य, सुवित्ति, वामदेव, औशज, बृहदुक्थ, दीर्घतमा, कक्षीवान्—ये ३३ आंगिरस मन्त्रकर्ता ऋषि थे।

अब काश्यप ऋषियों के नाम सुनिये।

काश्यपाः—

काश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च ।
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थ—काश्यप, वत्सार, विभ्रम, रैम्य, असित और देवल ये छः प्रमुख ब्रह्मकर्त्ता (वेदकर्त्ता) काश्यप ऋषि थे।

आत्रेयः—

अत्रिरर्च्चिसनश्चैव श्यावाश्वश्चाथ निष्ठुरः ।
बल्गूतको मुनिर्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च यः ।
इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ।

अर्थ—अत्रि, अर्च्चिसन, श्यावाश्व, निष्ठुर, बल्गूतक, विद्वान् ऋषि पूर्वातिथि—ये आत्रेय मन्त्रकर्त्ता ऋषि थे।

वासिष्ठाः—

वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः ।
चतुर्थ इन्द्रप्रमितिः पंचमस्तु भरद्वसुः ॥
षष्ठस्तु मैत्रावरुणः कुण्डिनः सप्तमस्तथा ॥
सुद्युम्नश्चाष्टमश्चैव नवयोऽथ बृहस्पतिः ॥
दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारकाः ॥

अर्थ—वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, चतुर्थ इन्द्रप्रमिति, पंचम भरद्वसु, षष्ठ मैत्रावरुणि, कुण्डिन सप्तम, अष्टम सुद्युम्न, नवम बृहस्पति और दशम भरद्वाज—ये मन्त्रों और ब्राह्मणग्रन्थों के रचयिता ऋषिगण थे।

कृष्णद्वैपायनशिष्यपरम्पराः—

पराशरात् सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ।
पैलाय संहितमाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ।
वैशम्पायसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ॥
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ।

(भागवते १२।६

अर्थ—पराशर से सत्यवती द्वारा भगवदंशकला से प्रभु, महाभाग्यशाली भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास ने वेद की चार संहितायें बनाईं—उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य पैल को ऋग्वेद (बह्वृच) संहिता पढ़ाई, वैशम्पायन को निगद (गद्यरूप) यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और अपने शिष्य सुमन्तु को अथर्ववेद पढ़ाया।

व्यासशिष्याः—

अस्मिन् युगे कृतो व्यासः पाराशर्यः परंतपः ।
द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ॥
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन्वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान्स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च ।
पैलं तेषां चतुर्थं तु पंचमं लोमहर्षणम् ॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह विधिवद् द्विजम् ।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥
जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत ।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ॥
इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि ।
मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ॥

अर्थ—इस (द्वापर) युग में पाराशर्य कृष्णद्वैपायन व्यास विष्णु के अंशावतार कहे गये हैं। ब्रह्मा (ईश्वर) प्रेरणा से उन्होंने वेद का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने प्रमुख चार शिष्यों को वेद पढ़ाये। जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन, पैल और पांचवें शिष्य लोमहर्षण थे। उन्होंने शिष्य पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद पढ़ाया। अथर्ववेद प्रमुख रूप से सुमन्तु को और पंचमवेद इतिहासपुराण को मुझ (लोमहर्षण) को भगवान् प्रभु व्यास ने पढ़ाया।

पैलशिष्याः—

ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विः कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददात्प्रभुः ।
इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां वाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा वाष्कलिर्द्विजसत्तमः ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हि तान् ॥
बोध्यं तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पराशरं तृतीयां तु याज्ञवल्क्यमथापराम् ॥
इन्द्रप्रमतिरेकां तु संहितां द्विजसत्तमः ।
अध्यापयन्महाभागं माण्डूकेयं यशस्विनम् ॥
सत्यश्रवसमग्रचं तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवा सत्यहितं पुनरध्यापयद् द्विजः ॥
सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयत्प्रभुः ।

सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम् ॥
अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः ।
सत्यश्रियस्तुविद्वासः शास्त्रग्रहणतत्पराः ॥
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथीतरः ।
वाष्कलिश्च भारद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ।

अर्थ— व्यास से पैल ने ऋग्वेद पढ़कर उसने पुनः उसके दो विभाग किये अर्थात् एक साथ दो शिष्यों को पढ़ाया—एक इन्द्रप्रमति और दूसरा बाष्कलि था। बाष्कलि के चार शिष्यों ने चार संहितायें (शाखायें) बनाई। सेवा में रत शिष्यों में से बौध्य ने प्रथम बौध्यशाखा, द्वितीय अग्निमाठर शाखा, तृतीय पाराशर शाखा और चतुर्थी याज्ञवल्क्य शाखा बनाई। पैलशिष्य इन्द्रप्रमति ने अपनी ऋग्वेद संहिता (शाखा) महाभाग्य यशस्वी माण्डूकेय (शौनक) को पढ़ाई। यशस्वी माण्डूकेय ने अपने पुत्र सत्यश्रवा को पढ़ाई। उसने भी अपने पुत्र सत्यहित को पढ़ाई। पुनः सत्यहित ने अपने पुत्र सत्यतर को वह ऋक्संहिता शाखा पढ़ाई। उसने अपने पुत्र सत्यश्री को पढ़ाई जो महामनस्वी और सत्यधर्मपरायण था। सत्यश्री के सुमहातेजस्वी, विद्वान्, शास्त्रग्रहण में तत्पर तीन शिष्य थे, प्रथम शाकल्य (देवमित्र), द्वितीय रथीतर और तृतीय बाष्कलि भारद्वाज। ये तीनों अपनी-अपनी ऋग्वेद शाखा के प्रवर्तक थे।

पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।
वाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥
चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गवः ।
पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ।
अध्यापयत् संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ॥
तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥

(भागवते १२।६)

× × ×

वेदमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः ।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ।
तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गालवस्तथा ॥
शालीयश्च तथा वात्स्यः शैशिरेयस्तु पंचमः ॥ (वायुपुराणे)
बाष्कलिश्च भारद्वाजस्तिस्रः प्रोवाच संहिताः ।
रथीतरो निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थकम् ॥

तस्य शिष्यास्तु चत्वारः पैलश्चेलकस्तथा ।
धीमान् शितबलाकश्च गजश्चैव द्विजोत्तमाः ।।

(वायुपुराण अ० ६०)

अर्थ—पैल ने अपनी (ऋग्वेद) संहिता मुनि इन्द्रप्रमिति को पढ़ाई। इन्द्रप्रमिति ने बाष्कल को, उसने भी अपने चार शिष्यों को पढ़ाई—बौध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र को पढ़ाई। इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता माण्डूकेय ऋषि को पढ़ाई। उसने अपने शिष्य देवमित्र शाकल्य को और शाकल्य ने सौभरि आदि शिष्यों को पढ़ाई।

वेदमित्र शाकल्य के पांच शिष्य—विद्वान् ब्राह्मण वेदमित्र शाकल्य ने, जो पदवेत्ता था, पांच शिष्यों के माध्यम से पांच ऋग्वेद शाखा कीं—वे शिष्य थे—मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और पंचम शैशिरेय।

बाष्कलि भारद्वाज के तीन शिष्य—बाष्कलि भारद्वाज के तीन शिष्यों ने संहितायें बनाईं। रथीतर ने पुनः चतुर्थ निरुक्त शास्त्र को रचा। उस रथीतर के चार शिष्य थे—पैल, चेलक, विद्वान् शितबलाक और गज।

वैशम्पायनशिष्यपरम्परा—

वैशम्पायनगोत्रोऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत् ।
षडशीतिस्तु येनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः ।।

× × ×

उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधाः ।
श्यामायनिरुदीच्यानां प्रधानः सम्बभूव ह ।
मध्यप्रतिष्ठानामरुणिः प्रथमः स्मृतः ।
आलम्बिरादिः प्राच्यानां त्रयोदशादयस्तु ते ।

अर्थ—वैशम्पायन गोत्रीय शिष्य ने यजुर्वेद की संरचना की। (उसके शिष्यों ने) छियासी (८६) कृष्ण यजुर्वेद की श्रेष्ठ संहितायें बनाईं—प्रवचन कीं।

वे उदीच्य, मध्यदेशीय और प्राच्य पृथक् पृथक् थीं।

उदीच्यों में श्यामायनि शाखा प्रधान थी। मध्यदेशीय आचार्यों में आरुणि शाखा प्रधान थी। प्राच्यशाखाओं में आलम्बि शाखा प्रथम थी। उनकी तेरह और शाखायें थीं।

(वायुपुराण अ० ६०)

इत्येते चरकाः प्रोक्ताः संहितावादिनो द्विजाः ।

× × ×

याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते कण्ववैधेयशालिनः ।

मध्यन्दिनश्च शापेयी विदग्धश्चाप्यथ उद्दलः ।
ताम्रायणो वात्स्यश्च तथा मालवशैषिरी ।
आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपराशरः ।
इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दश पंच च संस्मृताः ।

अर्थ—ये वैशम्पायनशिष्य, सभी चरक कहे जाते हैं, जिन्होंने संहिताओं का प्रवचन किया ।

याज्ञवल्क्य वाजसनेय के शिष्य—(शुक्ल यजुर्वेद के प्रवर्तक) याज्ञवल्क्य वाजसनेय के पन्द्रह शिष्य थे—काण्व, वैधेय, शालि, मध्यंदिन, शापेयी, विदग्ध, उद्दल, ताम्रायण, वात्स्य, गालव, शैषिरि, आटवी, पर्णी, वीरणी, पराशर—ये सभी वाजिन या वाजसनेय कहे जाते हैं ।

जैमिनिराचार्यस्य शिष्यपरम्परा—

पुत्रमध्यापयामास समन्तुमथ जैमिनिः ।
सुमन्तुश्चापि सुत्वानं पुत्रमध्यायपयत्प्रभुः ।
सुकर्माणं सुतं सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभुः ।।
स सहस्रमधीत्याशु सुकर्माप्यथ संहिताः ।
प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः ।।

× × ×

तस्य शिष्यो भवेद्धीमान्पौष्यंजिर्द्विजसत्तमाः ।
हिरण्यनाभः कौशल्यो द्विजो योऽभून्नराधिपः ।।
अध्यापयत्तु पौष्यंजिः सहस्रन्तु संहिताः ।
तेनोदीच्याः सामान्याः शिष्याः पौष्यञ्जिनः शुभाः ।
शतानि पंच कौशल्यः संहितानां वीर्यवान् ।
शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगाः ।
लौगाक्षिः कुथुमिश्चैव कुषीती लाङ्गलिस्तथा ।
पौष्यंजिशिष्याश्चत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत ।
राणायणनीयः स हि तण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान् ।
साकेतिपुत्रः सहसात्यपुत्र एतान् भेदान् वित्त लोकाक्षिणस्तु ।
त्रयस्तु कुथुमेः पुत्रा औरसो··· ············
भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधाः कौथुमाः स्मृताः ।।
··· ·· · ···शृङ्गिपुत्रश्च द्वावेतौ चरितव्रतौ ।
राणायनिः सौमित्रिः सामवेदविशारदौ ।।

अर्थ—आचार्य जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को सामवेद पढ़ाया । सुमन्तु ने अपने पुत्र सुत्वा को वेद पढ़ाया । सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को अथर्ववेद पढ़ाया ।

सुकर्मा ने अपने एक सहस्र शिष्यों (प्रशिष्यों) को जो सूर्य के समान तेजस्वी थे अथर्ववेद पढ़ाया।

उसका शिष्य विद्वान् पौष्यंजि हुआ। पौष्यंजि ने राजा हिरण्यनाभ कौसल्य को सहस्रसाम शाखायें पढ़ाईं। पौष्यंजि के उत्तम उदीच्य सामग शिष्य थे। शक्तिशाली विद्वान् हिरण्यनाभ कौसल्य के प्राच्यसामग ५०० शिष्य थे। उनमें चार प्रमुख हुए—लौगाक्षि, कुथुमि, कुषीती और लांगलि। राणायन से राणायन साम शाखा चली, वह तण्डि का पुत्र था, मूलचारी आचार्य अन्य था। साकेतिपुत्र, सहसात्यपुत्र, लोकाक्षि ये सामगों के भेद थे। कुथुम के तीन औरस पुत्र थे—भागवित्ति ····(पाठलुप्त)····तीन कौथुम कहे गये हैं।

राणायनि और सौमित्रि—ये शृंगिपुत्र सामवेदविशारद और ब्रह्मचारी थे।

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शृङ्गिपुत्रो महातपाः।
चैलः प्राचीनयोगश्च सुरालश्च द्विजोत्तमाः॥
प्रोवाच संहिताः षट् तु पाराशर्यस्तु कौथुमः।
आसुरायणवैशाख्यौ वेदवृद्धपरायणौ॥
प्राचीन योगपुत्रश्च बुद्धिमान् पतंजलिः।
कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य षट् स्मृताः।
लाङ्गलिः शालिहोत्रश्च षट् षट् प्रोवाच संहिताः॥
भालुकिः कामायनिश्च जैमिनिर्लोमगायनिः।
कण्डश्च कहोलश्चैव षडेते लाङ्गलाः स्मृताः।
ततो हिरण्यनाभस्य कृतः शिष्यो नृपात्मजः।
सोऽकरोच्च चतुर्विंशत्संहिता द्विपदां वरः।
राडश्च महावीर्यश्च पंचमो वाहनस्तथा।
तालकः पाण्डकश्चैव कलिको राजिकस्तथा।
गौतमश्चाजबस्तश्च सोम··········
पृष्ठघ्नः परिकृष्टश्च उलूखलक एव च।
यवीयसश्च वैशालो अंगुलीयश्च कौशिकः॥
सालमंजरिसत्यश्च कापीयः कानिकश्च यः।
पराशरस्तु धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगाः॥
सामगानान्तु सर्वेषां द्वौ श्रेष्ठौ तु प्रकीर्तितौ।
पौष्यंजिश्च कृतिश्चैव संहितानां विकल्पकौ॥

अर्थ—तपस्वी शृङ्गिपुत्र ने तीन संहितायें कहीं—चैल, प्राचीनयोग और सुराल पाराशर्य कौथुम ने छः संहितायें कीं—आसुरायण, वैशाख्य, प्राचीनयोग, बुद्धिमान् पतंजलि। ये कौथुम के भेद हैं। पाराशर्य की छः संहितायें (शिष्य)

थीं लांगलि, शीलहोत्र ने छः छः संहितायें कहीं—भालुकि, कामायनि, जैमिनि, लोमगायनि, कण्ड और कहोल—ये छः लांगल के शिष्य थे।

कृत का शिष्य राजा हिरण्यनाभ कौसल्य था। उसने (उसके चौबीस शिष्यों ने) २४ साम संहितायें बनाईं—राड, महावीर्य, पंचम, वाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गौतम, अजबस्त, सोम, पृषघ्न, पारिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाल, अंगुलीय, कौशिक, सालमंजरि, सत्य, कापीय, कनिक और धर्मात्मा पराशर। ये सामग आचार्य कहे गये।

सामगों में दो श्रेष्ठतम कहे गये हैं—पौष्यंजि और कृति—ये संहिताओं के विकल्पक थे।

सुमन्तुशिष्यपरम्परा—

अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद् द्विजाः।
कबन्धाय पुनः कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम्।
कबन्धास्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायैकं पुनर्ददौ।
द्वितीयं वेदस्पर्शाय स चतुर्धाकरोत् पुनः॥
मोदो ब्रह्मबलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च।
शाक्यायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपनः स्मृतः॥
वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्त्वेते दृढव्रताः॥
पुनस्त्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम्॥
जाजलिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनकः स्मृतः॥
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु बभ्रवे॥
द्वितीयां संहितां धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते॥
सैन्धवो मुंजकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः।
नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः।
चतुर्थोऽङ्गिरसकल्पः शान्तिकल्पश्च पंचमः॥
श्रेष्ठास्त्वथर्वणे ह्येते संहितानां विकल्पकाः।

अर्थ—सुमन्तु ने अपने शिष्यों को अथर्ववेद पढ़ाया। कबन्ध को सम्पूर्ण अथर्ववेद पढ़ाया। कबन्ध ने दो शाखा करके एक शाखा 'पथ्य' नाम के शिष्य को दी। द्वितीय शिष्य वेदस्पर्श को दी। वेदस्पर्श ने चार शाखायें (चार शिष्यों द्वारा) कीं—मोद, ब्रह्मबल, पिप्पलाद और शाक्यायनि—यह चतुर्थ शिष्य धर्मज्ञ और तपस्वी था। वेदस्पर्श के चार ये दृढ़वती शिष्य थे।

पथ्यों के पुनः तीन भेद हुए—जाजलि, कुमुद और तृतीय शौनक। शौनक ने अथर्ववेद को द्विविध करके एक बभ्रु को दी। द्वितीय संहिता विद्वान् सैन्धवायनि ने बनाई। सैन्धव ने मुञ्जकेश को दी, उसने पुनः अपने दो शिष्यों को पढ़ाई।

नक्षत्रकल्प, वैतानकल्प, संहिताविधि तृतीय, चतुर्थ आंगिरसकल्प और पंचम शान्तिकल्प ।

अथर्ववेद के ये संहिताविकल्पक श्रेष्ठ आचार्य थे ।

रोमहर्षणशिष्यपरम्परा:—

षट्शः कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः ।
आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो ह्यकृतव्रणः ।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च यः ।।
सावर्णिः सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः ।
एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रताः ।
त्रिभिस्तिस्रः संहिताः पुनरेव हि ।
काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः ।
सावर्णिका च चतुर्थी स्यात्सा चैषा पूर्वसंहिता ।
सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः ।।
पाठान्तरे पृथग्भूताः वेदशाखा यथा तथा ।
चतुःसहस्रिकाः सर्वा शांशपयनिकामृते ।
लोमहर्षणिका मूलास्ततः काश्यपिकाः पराः ।।
सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थमण्डिताः ।
शांशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिता ।।

अर्थ—हे ऋषिसत्तमो ! मैंने भी पुराण छः प्रकार से छः शिष्यों को पढ़ाया—सुमति आत्रेय विद्वान्, अकृतव्रण काश्यप, अग्निवर्चा भारद्वाज, मित्रयु वासिष्ठ, सावर्णि, सोमदत्ति और सुशर्मा शांशपायन । ये मेरे पांच शिष्य पुराणों में दृढ़व्रत (विशेषज्ञ) थे ।

पुनः तीन पुराण संहितायें प्रख्यात हुई—काश्यप पुराण संहिता, सावर्णि पुराण संहिता और शांशपायनपुराण संहिता । चतुर्थी सावर्णिपुराणसंहिता थी, वह इन तीनों से पूर्व संहिता (कृति) थी ।

सभी पुराणसंहिता चतुष्पादी और एकार्थवाचिका थी । केवल वेदशाखा के समान पाठान्तर में भेद था । सभी में चार सहस्र श्लोक हैं, केवल शांशपायनिका पुराण संहिता को छोड़कर । इनमें लोमहर्षण (रोमहर्षण) की मूल संहितायें थीं । उसके पश्चात् काश्यपिकापुराण संहितायें थीं । इसके पश्चात् सावर्णिपुराण का स्थान था, जो यजुर्वाक्यों से मण्डित थीं ।

शांशपायनिका तथा अन्य पुराण संहितायें नोदनार्थों (धर्माज्ञा) वाक्यों से विभूषित हैं ।

पुराणेष्वैतिह्यसन्दर्भाः

द्वितीयभागस्य—उत्तरखण्डम्

हरिवंशपुराणे वंशानुचरितम्

१. स्वायम्भुवमनुवंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

स सृष्टासु प्रजास्वेवमापवो वै प्रजापतिः ।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी ने कहा—जनमेजय ! इस प्रकार (अयोनिज-मानसिक) प्रजाओं की रचना हो जाने पर वह आपव प्रजापति (ब्रह्मा) ही (अपनी देह के दो भाग करके एक भाग से मनु नामक) पुरुष बन गये और उन्होंने देह के दूसरे भाग से बनी हुई अयोनिजा शतरूपा को पत्नी रूप में स्वीकार किया।

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः
धर्मेणैव महाराज शतरूपा व्यजायत ॥२॥

अर्थ—महाराज ! अपनी महिमा से द्युलोक को व्याप्त करके स्थित हुए मनु के धर्म से ही उनकी पत्नी शतरूपा की उत्पत्ति हुई।

सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३॥

अर्थ—वह शतरूपा दस हजार वर्षों तक परम दुष्कर तप करके (सन्तान की कामना से) तप से चमकते हुए अपने स्वामी वैराज पुरुष के पास आयीं।

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

अर्थ--तात ! वे पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं। उन (के अधिकार) का (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगरूप) इकहत्तर चतुर्युगों का समय इस संसार में मन्वन्तर कहलाता है (यह मन्वन्तर संध्या और संध्यांश के कारण इकहत्तर चतुर्युगों से भी कुछ अधिक समय का होता है।)

वैराजात् पुरुषाद्द वीरं शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ।।५।।

अर्थ—वैराज पुरुष मनु से उनकी पत्नी शतरूपा ने वीर नामक पुत्र को जन्म दिया और वीर से उनकी पत्नी काम्या ने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद को उत्पन्न किया ।

काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः ।
प्रियव्रतं समासाद्य पतिं सा सुषुवे सुतान् ।।६।।

अर्थ महाबाहो ! कर्दम प्रजापति की एक काम्या नामवाली पुत्री थी, उस काम्या के सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए । उस काम्या ने प्रियव्रत को पति रूप में पाकर इन पुत्रों को उत्पन्न किया था ।

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताजनयत् सुतान् ।।७।।

अर्थ—प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को पुत्ररूप में ग्रहण कर लिया । उत्तानपाद से उनकी पत्नी सूनृता ने चार पुत्रों को उत्पन्न किया ।

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ।।८।।

अर्थ—धर्म की एक सूनृता नाम से प्रसिद्ध सुन्दर कटिवाली पुत्री थी, वह धर्म के यहां अश्वमेध यज्ञ से प्रकट हुई थी, यही कल्याणकारिणी सूनृता ध्रुव की माता थी ।

ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम् ।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ।।९।।

अर्थ—प्रजापति उत्तानपाद ने सूनृता नामवाली पत्नी में ध्रुव, कीर्तिमान्, शान्तस्वरूप शिव और अयस्पति नामक पुत्र को उत्पन्न किया था ।

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत ।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः ।।१०।।

अर्थ-भरतवंशी महाराज ! ध्रुव ने जिनका नाम महायशा है, उन भगवान् नारायण को पाने की इच्छा से तीन हजार दिव्या वर्षों तक तप किया था ।

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमप्रतिमं भुवि ।
अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ।।११।।

अर्थ—प्रजापालक भगवान् ब्रह्मा (विष्णु) ने ध्रुव पर प्रसन्न होकर उनको सप्तर्षियों के सम्मुख एक अलौकिक, अचल स्थान प्रदान किया।

तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ ॥१२॥

अर्थ—ध्रुव की बड़ी भारी समृद्धि और महिमा को देखकर देवता और असुरों के आचार्य शुक्राचार्य ने इस श्लोक का गान किया।

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम्।
यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३॥

दक्ष—इन ध्रुव के तपोबल को देखकर आश्चर्य होता है, इनका शास्त्रज्ञान भी विस्मय विमुग्ध कर देता है और इनकी शक्ति भी अद्भुत है, तभी तो ये सप्तर्षि भी इनको अपने आगे स्थापित करके स्थित हैं।

तस्माच्छिलष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥१४॥
रिपुं रिपुञ्जयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम्।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥१५॥

अर्थ—उन ध्रुव से शम्भु नामवाली स्त्री ने श्लिष्टि और भव्य नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। श्लिष्टि से सुच्छाया (नाम की पत्नी रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल और वृकतेजा पांच निष्पाप पुत्रों को उत्पन्न किया। रिपु से उनकी बृहती नाम की पत्नी सब देवताओं के तेज से परिपूर्ण चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया।

अजीजनत् पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥१६॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः।
कन्यायामभवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७॥

अर्थ—चाक्षुष ने वीरण की पुत्री पुष्करिणी के गर्भ से मनु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वैराज प्रजापति के वंश में उत्पन्न हुए इन परम तेजस्वी मनु से महात्मा अरण्य की पुत्री नड्वला से दस श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए।

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८॥
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः।
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥१९॥

अर्थ—ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, अग्निष्टुत्, अतिरात्र और सुद्युम्न—ये नौ और दसवां अभिमन्यु ये नड्वला के पुत्र कहे जाते हैं। ऊरु से अग्नि की कन्या ने अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय उत्तम कान्ति वाले छः पुत्रों को उत्पन्न किया था।

अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत ।
अपचारात् तु वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ॥२०॥

अर्थ—अंग से (मृत्यु की पुत्री) सुनीथा ने वेन नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया था। वेन अत्याचारी था (देवता, धर्म आदि से द्रोह रखता था), अत एव ऋषियों को उसपर बड़ा क्रोध आया।

प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिः पृथुः ॥२१॥

अर्थ—(ऋषियों के कोप से नष्ट हुए) वेन के दाहिने हाथ को मुनियों ने सन्तान उत्पन्न करने के लिए मथा, तब मुनियों के मथे हुए वेन के दाहिने हाथ से पृथु की उत्पत्ति हुई।

तं दृष्ट्वा ऋषयः प्राहुरेष वै मुदितः प्रजाः ।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥२२॥

अर्थ— ऋषियों ने उसको देखकर कहा—'यह पृथु प्रजाओं को प्रसन्न करेगा और इस महातेजस्वी को उत्तम यश की प्राप्ति होगी'।

स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव ।
पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥२३॥

अर्थ तब वे क्षत्रिय जाति में प्रथम उत्पन्न हुए वेन के पुत्र पृथु धनुष, कवच और तलवार धारण कर अपने तेज से (डाकू, अधर्मी आदि दुष्ट पुरुषों को) भस्म सा करते हुए इस पृथ्वी की रक्षा करने लगे।

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥२४॥

अर्थ—पृथु राजसूय यज्ञ में अभिषिक्त होनेवाले राजाओं में प्रथम भूपति हैं। (उन्हीं के यज्ञ में अग्नि से राजाओं की स्तुति करने में) चतुर सूत तथा (राजाओं की वंशावली पढ़ने में) प्रवीण मागध प्रकट हुए थे।

तेनेयं गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत ।
प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह ॥२५॥

अर्थ—भरतवंशी महाराज! प्रजाओं को आजीविका देने की इच्छा वाले पृथु ने देवता और ऋषियों की मण्डलियों को साथ में ले गौ-रूपिणी पृथ्वी से अन्न (आदि सकल वस्तुओं) को दुहा था।

पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥२६॥
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद् यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ॥२७॥

अर्थ—(पृथु के समय) पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, वृक्ष और पर्वतों ने अपने-अपने पात्रों में दुहा था। पृथ्वी ने उनको इच्छानुसार दूध दिया था और उस दूध से उन सबने अपने प्राणों को धारण किया था।

पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालितौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ॥२८॥

अर्थ—पृथु के अन्तर्धान और पालित—ये दो धर्मज्ञ पुत्र हुए और अन्तर्धान से शिखण्डिनी ने हविर्धान नामक पुत्र को उत्पन्न किया।

हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥२९॥

अर्थ—हविर्धान से अग्नि की पुत्री धिषणा ने प्राचीनबर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामवाले छः पुत्रों को उत्पन्न किया।

प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।
हविर्धानान्महाराज येन संवर्द्धिताः प्रजाः ॥३०॥

अर्थ—महाराज ! भगवान् प्राचीनबर्हि, जिन्होंने प्रजाओं का पालन एवं संवर्धन किया था, अपने पिता हविर्धान से बढ़कर प्रजापालक हुए।

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमेजय ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणः ॥३१॥

अर्थ—जनमेजय ! उनके यज्ञ करते समय बिछे हुए प्राचीनाग्र कुश समस्त भूमण्डल पर फैलकर उनके महत्त्व को प्रकट कर रहे थे, अतएव उनका नाम भगवान् प्राचीनबर्हि है।

समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतिः ॥३२॥

अर्थ—महीपति प्रभु प्राचीनबर्हि ने बड़ा भारी तप करने के पश्चात् समुद्र की पुत्री सवर्णा के साथ विवाह किया।

सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥३३॥

अर्थ—प्राचीनबर्हि से समुद्र की पुत्री सवर्णा ने दस पुत्र उत्पन्न किये, उन दसों का 'प्रचेता' यह एक ही नाम था। वे सब धनुर्वेद के पारगामी थे।

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥३४॥

अर्थ—वे सब प्रचेतागण एक साथ समान धर्म-कर्म का आचरण करते थे और एक से शीलवाले थे, उन्होंने समुद्र के जल में प्रवेश करके दस हजार वर्षों तक बड़ी भारी तपस्या की ।

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतस्सु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥३५॥

अर्थ—जब प्रचेतागण तप कर रहे थे, तब अरक्षित पड़ी हुई पृथ्वी को वृक्षों ने चारों ओर से ढक दिया, इससे प्रजाओं का नाश होने लगा ।

नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद् द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥३६॥

अर्थ—दस हजार वर्षों में वृक्षों ने आकाश तक को घेर लिया, तब वायु का चलना बन्द हो गया और प्रजाओं का चेष्टा करना (हाथ पैर हिलाना) भी बन्द होने लगा ।

तदुपश्रुत्य तपसा युक्ताः सर्वे प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजञ्जातमन्यवः ॥३७॥

अर्थ—अपनी तपस्या (ज्ञानदृष्टि) से इन सब बातों को जानकर सब प्रचेता इसका उपाय करने के लिए उद्यत हो गये और उन्होंने क्रोध में भरकर अपने मुखों से वायु और अग्नि को प्रकट किया ।

उन्मूलानथ तान् कृत्वा वृक्षान् वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोरं एवमासीद् द्रुमक्षयः ॥३८॥

अर्थ—वायु ने वृक्षों को जड़ से उखाड़कर उनको सुखा दिया, तब अग्नि प्रचण्ड होकर उन वृक्षों को जलाने लगी, इस प्रकार वृक्षों का नाश होने लगा ।

द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ॥३९॥

अर्थ—इस प्रकार जलते-जलते जब कुछ ही वृक्ष बाकी बचे, तब वृक्षों के संहार की बात को जानकर इन वृक्षों के राजा सोम प्रजापति प्रजेताओं के पास जाकर बोले—

कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०॥

अर्थ—'प्राचीनबर्हि के पुत्र प्रचेताओ ! तुमने तो पृथ्वी को वृक्षों से शून्य

ही कर डाला । राजाओ ! अब अपने क्रोध को रोको तथा इन अग्नि और पवन को शान्त करो ।

रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ।
भविष्यं जानता तत्त्वं धृता गर्भेण वै मया ।।४१।।

अर्थ—यह वृक्षों की रत्नस्वरूपा सुन्दरी कन्या है । मैंने भविष्य के तत्त्व को जानकर इसे अपने गर्भ में स्थापित कर लिया था ।

मारिषा नाम कन्येयं वृक्षाणामिति निर्मिता ।
भार्या वोऽस्तु महाभागाः सोमवंशविवर्द्धिनी ।।४२।।

अर्थ—यह मारिषा नामवाली कन्या वृक्षों के वीर्य अर्थात् सारांश से रची गयी है । महाभाग ! इस सोमवंश की वृद्धि करनेवाली वृक्षों की कन्या को तुम भार्यारूप में ग्रहण करो ।

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ।।४३।।

अर्थ—तुम्हारे और मेरे दोनों के तेज के आधे-आधे भाग द्वारा इस कन्या के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा—दक्ष प्रजापति ।

य इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्धयिष्यति ।।४४।।

अर्थ—तुम्हारे तपरूपी अग्नि से अग्नि के समान ही प्रतापी वह दक्ष अधिकांश जली हुई इस पृथ्वी पर फिर प्रजाओं की वृद्धि करेगा ।

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ।।४५।।

अर्थ—चन्द्रमा के इस प्रकार कहने पर उन प्रचेताओं ने वृक्षों की ओर से अपने क्रोध को समेट लिया और मारिषा को विवाहरूपी धर्म के द्वारा पत्नीरूप में ग्रहण कर लिया ।

मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ।४६।।

अर्थ—तदनन्तर उन प्रचेताओं ने अपने मन से मारिषा में गर्भ स्थापित किया । भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार चन्द्रमा अंश से दस प्रचेताओं के द्वारा मारिषा के गर्भ से महातेजस्वी दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए ।

पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्धनान् ।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।
स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत् स्त्रियः ।।४७।।

अर्थ—तब उन दक्ष प्रजापति ने चन्द्रमा के वंश को बढ़ानेवाले पुरुष उत्पन्न किये और स्थावर, जंगम, दो पैर वाले, चार पैर वाले रचने योग्य प्राणियों की सृष्टि के लिए मन में विचारकर स्त्रियों की भी रचना की।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
शिष्टा सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८॥

अर्थ—प्रभु दक्ष ने उनमें से दस कन्यायें धर्म को, तेरह कन्यायें कश्यप को और शेष बची हुई नक्षत्र सम्बन्धी नामवाली सत्ताईस कन्यायें राजा चन्द्रमा को दे दीं।

तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥

अर्थ—उन कन्याओं से देवता, पक्षी, सर्प, गौएं, दैत्य-दानव-गन्धर्व, अप्सराएं तथा अन्य जातियों के प्राणी उत्पन्न हुए।

ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसम्भवाः।
संकल्पाद् दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥५०॥

अर्थ—राजेन्द्र ! तभी से प्रजाएं मैथुन द्वारा उत्पन्न होने लगीं। इससे पहले प्राणियों की उत्पत्ति संकल्प, दर्शन और स्पर्श से होती थी—ऐसा कहा जाता है।

जनमेजय उवाच—

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥

जनमेजय ने कहा—मुने ! आपने पहले भी देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षस तथा महात्मा दक्ष की उत्पत्ति का वर्णन किया है।

अंगुष्ठाद् ब्रह्मणो जातो दक्षः प्रोक्तस्त्वयानघ।
वामांगुष्ठात् तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥

अर्थ—निष्पाप महर्षे ! वहां आपने कहा है कि ब्रह्मा जी के (दाहिने) अंगूठे से दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के बायें अंगूठे से दक्ष की पत्नी उत्पन्न हुई।

कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः।
एतन्मे संशयं विप्र सम्यगाख्यातुमर्हसि।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥५३॥

अर्थ—वे महातपस्वी दक्ष फिर प्रचेताओं के पुत्र कैसे हुए ? चन्द्रमा के नाती दक्ष फिर उनके श्वसुर कैसे बन गये ? विप्रवर ! मेरे इन संदेहों को भली प्रकार व्याख्या करके आप दूर कर दीजिये।

वैशम्पायन उवाच—

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जनाः ।।५४।।

अर्थ—वैशम्पायनजी ने कहा—पृथ्वीनाथ ! जन्म और मृत्यु—ये समस्त प्राणियों के लिए नित्य (स्वाभाविक) हैं। इस विषय में ऋषियों को कभी मोह नहीं होता । जो विद्वान् पुरुष हैं, वे भी इस विषय में मोहित नहीं होते ।

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृप ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ।।५५।।

अर्थ—नरेश्वर ! ये दक्ष आदि सब लोग प्रत्येक युग में उत्पन्न होते और मरते रहते हैं, अतः विद्वान् पुरुष इस विषय में मोह को नहीं प्राप्त होते हैं ।

ज्यैस्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वंनासीज्जनाधिप ।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ।।५६।।

अर्थ—राजन् ! पहले इनमें ज्येष्ठता और कनिष्ठता का अर्थात् पहले-पीछे उत्पन्न होने का कोई विचार नहीं था, तप ही इनकी दृष्टि में गरिष्ठ था और प्रभाव ही इनमें सम्बन्ध होने का कारण होता था ।

इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।
प्रजावानापदुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ।।५७।।

अर्थ—जो मनुष्य चर तथा अचर प्राणियों सहित इस दक्ष प्रजापति की सृष्टि के तत्त्व को जानता है, वह सन्तानवान् होता है और आपत्तियों के पार हो स्वर्ग में प्रतिष्ठापूर्वक रहता है ।

द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।।२।।

२. प्राचेतसदक्षचरितम्, कश्यपसन्ततिश्च

जनमेजय उवाच—

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय ।।१।।

अर्थ—जनमेजय ने कहा—वैशम्पायनजी ! आप इस देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसों की उत्पत्ति को विस्तारपूर्वक कहिये ।

वैशम्पायन उवाच—

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज भूतानि तथा श्रृणु महीपते ।।२।।

अर्थ—वैशम्पायन जी बोले—राजन् ! पहले स्वयम्भू ब्रह्मा जी ने दक्ष को आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाओं की सृष्टि करो' उस समय दक्ष ने (जरायुज आदि) प्राणियों की सृष्टि जिस प्रकार की थी, उसे सुनो।

मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत् प्रभुः।
ऋषीन् देवान् सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान्।
यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुसरीसृपान् ॥३॥

अर्थ—प्रभु दक्ष ने पहले ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच पशु, पक्षी और सर्पों की मानसी सृष्टि रची अर्थात् इनको अपने संकल्प-मात्र से ही उत्पन्न कर दिया।

यदास्य तास्तु मानस्यो न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः।
अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥४॥
ततः संचिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः।
स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥५॥
असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः।
सुतां सुतपसायुक्तां महतीं लोकधारिणीम् ॥६॥

अर्थ—परन्तु (पूर्वकल्प के वैर को स्मरण कर) बुद्धिमान् भगवान् महादेव ने जब यह विचार किया कि दक्ष की मानसी प्रजा न बढ़े और तदनुसार जब उनकी मन से उत्पन्न की हुई प्रजाएं अधिक उन्नति न कर सकीं, तब दक्ष प्रजापति विचार में पड़ गये और फिर उन्होंने प्रजा की वृद्धि करने के लिए मैथुन धर्म से अनेक प्रकार की प्रजाओं को रचने का विचार किया। इस विचार के अनुसार वे परम तप करने के कारण संसार को धारण करने में समर्थ वीरण प्रजापति की महामहिम पुत्री असिक्नी को पत्नीरूप में विवाह कर लाये।

अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्या पञ्च वीर्यवान्।
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥७॥

अर्थ—इसके बाद वीर्यवान् दक्ष प्रजापति ने वीरण की पुत्री असिक्नी में पांच हजार पुत्रों को उत्पन्न किया।

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् संविवर्धयिषून् प्रजाः।
देवर्षि प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८॥

अर्थ—परन्तु उन महाभाग्यवान् दक्ष पुत्रों को प्रजा की वृद्धि करने के लिए उत्सुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदजी ने उनको (ज्ञान का अधिकारी समझकर आत्मज्ञान का) उपदेश दिया। नारदजी के उस वचन से दक्षपुत्र नष्ट हो गये

(अथवा उनकी संसार में आसक्ति नष्ट हो गयी), परन्तु नारदजी का यह ज्ञानोपदेश देना स्वयं शाप पाने में ही एक कारण बन गया।

यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९॥

अर्थ—ब्रह्माजी ने जिन श्रेष्ठ पुत्र नारद को उत्पन्न किया था, उनको ही कश्यप मुनि ने दक्ष के शाप के भय से (दक्ष की पत्नी की छोटी बहिन अतएव) उनकी (पुत्री के समान) कन्या में उत्पन्न किया था।

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिना।
असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः।
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥

अर्थ—नारदजी पहले ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए थे, फिर वे ही देवर्षि सत्तम नारद वीरण की पुत्री असिक्नी (की छोटी बहिन) में उत्पन्न हुए थे। उन मुनिपुंगव नारदजी को कश्यप ने ब्रह्माजी के समान ही फिर प्रकट किया था।

तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः।
निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः ॥११॥

अर्थ—(इस घटना को स्पष्ट करते हैं—) दक्ष के हर्यश्व नाम से प्रसिद्ध (जो पांच हजार) पुत्र थे, नारदजी ने उनको शास्त्रोक्त रीति से देहाभिमान से मुक्त कर इस संसार से नष्ट कर दिया था (अर्थात् वे सब नारदजी से चेतावनी पाकर संसार को त्याग परमात्मा की खोज करने के लिए वन में चले गये), इसमें कुछ संदेह नहीं है।

तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः।
महर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ॥१२॥

अर्थ—तब अनुपम पराक्रमी दक्ष प्रजापति नारदजी को नष्ट करने के लिए उद्यत हो गये। उस समय ब्रह्माजी ने मरीचि आदि महर्षियों के साथ जाकर दक्ष से ऐसा न करने के लिए प्रार्थना की।

ततोऽभिसंधिं चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना।
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ॥१३॥

अर्थ तब महर्षियों ने दक्ष और ब्रह्माजी में सन्धि करा दी। दक्ष ने कहा कि 'आपका पुत्र नारद मेरी पुत्री (अर्थात् छोटी साली) का पुत्र बनकर उत्पन्न हो'।

ततो दक्षस्तु तां प्रादात् कन्यां वै परमेष्ठिने ।
स तस्यां नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषिः ॥१४॥

अर्थ—तब दक्ष ने प्रजापति कश्यप को (तेरह कन्याएं अर्पण करते समय) उस कन्या का दान कर दिया था। इस प्रकार दक्ष के शाप के भय से नारद ऋषि उस कन्या से फिर उत्पन्न हुए थे।

जनमेजय उवाच—

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।
प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१५॥

अर्थ—जनमेजय ने पूछा—द्विजश्रेष्ठ ! महर्षि नारद ने प्रजापति दक्ष के पुत्रों को किस प्रकार नष्ट किया था ? इसको मैं स्पष्ट रूप से सुनना चाहता हूं।

वैशम्पायन उवाच—

दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः ।
समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६॥

अर्थ—वैशम्पायनजी ने कहा—राजन् ! दक्ष के हर्यश्व नामक पुत्र महावीर्यवान् थे, जब वे प्रजाओं की वृद्धि का विचार करने के लिए उद्यत हुए, तब नारदजी ने उनसे कहा—

बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीथ वै भुवः ।
प्रमाणं स्रष्टुकामाः स्थ प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥१७॥

अर्थ—'प्राचेतस (दक्ष) के पुत्रो ! खेद के साथ कहना पड़ता है कि तुम बड़े नादान हो। तुम्हें प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा हुई है; किन्तु तुम इतना भी नहीं जानते कि जहां सृष्टि करनी है, उस पृथ्वी की लम्बाई-चौड़ाई कितनी है ? यह ऊपर-नीचे और भीतर से कैसी है ? ऐसी दशा में तुम लोग प्रजाओं की सृष्टि कैसे करोगे ?'

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गताः प्राचेतसात्मजाः ॥१८॥

अर्थ नारदजी की इस बात को सुनकर वे प्राचेतस दक्ष के पुत्र (इस पृथ्वी का) प्रमाण अर्थात् माप देखने के लिए सब दिशाओं की ओर चल दिये।

वायोरनशनं प्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥१९॥

अर्थ—प्राणवायु के लिए आहार न पाकर वे सबके सब पराभव (विनाश)

को प्राप्त हो गये। जैसे नदियां समुद्र में मिल जाने पर फिर वहां से पीछे नहीं लौटती हैं, उसी प्रकार वे जाकर अब तक नहीं लौटे।

हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः।
वैरण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः ॥२०॥

अर्थ—प्रचेताओं के पुत्र प्रभु दक्ष ने हर्यश्वों के नष्ट हो जाने पर वीरण की पुत्री में ही फिर सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया।

विवर्धयिषवस्ते तु शबलाश्वा प्रजास्तदा।
पूर्वोक्तं वचनं तात नारदेनैव नोदिताः ॥२१॥

अर्थ—तात ! वे दक्ष के पुत्र शबलाश्व जब प्रजा की वृद्धि के लिए इच्छुक हुए, तब नारदजी ने पूर्वोक्त वचन कहकर उनको भी पृथ्वी का प्रमाण जानने के लिए प्रे॑ित किया।

अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः।
भ्रातॄणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ॥२२॥

अर्थ---तब वे सब आपस में कहने लगे—'महामुनि नारजी ठीक कहते हैं, अपने भाइयों के मार्ग को जानने के लिए निःसंदेह हमें भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुख स्रक्ष्यामहे प्रजाः।
एकाग्राः स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वशः ॥२३॥

अर्थ—'हम पृथ्वी के प्रमाण को जानकर एकाग्र और स्वस्थचित्त सुखपूर्वक प्रजाओं की क्रमानुसार सृष्टि करेंगे'।

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम्।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२४॥

अर्थ—ऐसा निश्चय करके वे भी उसी मार्ग से चारों दिशाओं की ओर चल दिये और समुद्रों से उनमें मिली हुई नदियों के समान अभी तक नहीं लौटे।

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽवदद् वचः।
नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥२५॥

अर्थ—शबलाश्वों के भी नष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने क्रोध में भरकर, नारदजी से यह बात कही कि 'तुम्हारी देह नष्ट हो जाए और तुम फिर गर्भ में निवास करो'।

तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणं नृप।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥२६॥

अर्थ—राजन् ! उस दिन से जो भाई भाई को खोजने के लिए जाता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, अतएव विद्वान् को ऐसा न करना चाहिये अर्थात् भाई को ढूंढ़ने के लिए भाई को नहीं जाना चाहिये ।

तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं भूयोऽसृजत् कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम् ।।२७।।

अर्थ—हमने सुना है कि अपने उन पुत्रों को भी नष्ट हुआ जानकर दक्ष प्रजापति ने वीरण की पुत्री में फिर साठ कन्याओं को उत्पन्न किया (क्योंकि कन्याएं स्त्री होने से नारदजी के आत्मज्ञान के उपदेश की पात्र नहीं थीं) ।

तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थे कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्मश्च कौरव्य यथैवान्ये महर्षयः ।।२८।।

अर्थ—कुरुकुलोत्पन्न जनमेजय ! उन (में से कुछ कन्याओं) को प्रभु कश्यपजी ने अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया एवं चन्द्रमा, धर्म तथा दूसरे महर्षियों ने भी उन (में से कितनी ही कन्याओं) को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया ।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।।२९।।
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ।।३०।।

अर्थ—दक्ष ने धर्म को दस, कश्यपजी को तेरह, चन्द्रमा को सत्ताईस, अरिष्टनेमि को चार, भृगुपुत्र को दो, अंगिरा को दो और विद्वान् कृशाश्व ऋषि को दो कन्याएं दीं, उनके नामों को मुझसे सुनो—

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारत ।
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ।।३१।

अर्थ—भरतवंशी राजन् ! अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या विश्वा—ये दश धर्म की पत्नियां हैं । इनमें जो सन्तान उत्पन्न हुई, उनके नामों को मुझसे सुनो—

विश्वेदेवाश्च विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ।।३२।।

अर्थ—विश्वा ने विश्वेदेव नामक पुत्रों को और साध्या ने साध्य नाम वाले पुत्रों को उत्पन्न किया, मरुत्वती से मरुत्वान् और वसु से वसु प्रकट हुए ।

भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताया मुहूर्तजाः ॥३३॥

अर्थ—और तात ! भानु से भानु देवता और मुहूर्ता से (क्षण, लव आदि कालभिमानी देवता) मुहूर्तज उत्पन्न हुए ।

लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥३४॥

अर्थ—घोष नामक (मन्त्राभिमानी) देवता लम्बा से उत्पन्न हुआ तथा यामी से (स्वर्गाभिमानिनी) नागवीथी उत्पन्न हुई तथा अरुन्धती में (घृत, पशु, औषध आदि) सब पृथ्वी के विषय उत्पन्न हुए ।

संकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे संकल्प एव हि ।
नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलम्बा व्यजायत ॥३५॥

अर्थ— तथा संकल्पा से सर्वात्मा संकल्प अर्थात् मानसक्रियाभिमानी देवता उत्पन्न हुआ और यामिपुत्री नागवीथी से वृषलम्बा (कालान्तर में फलवृष्टि करनेवाले धर्म या ईश्वर का अवलम्बन करनेवाला देवता) उत्पन्न हुआ ।

या राजन् सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसो ददौ ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्यौतिषे परिकीर्तिताः ॥३६॥

अर्थ—राजन् ! प्राचेतस दक्ष ने चन्द्रमा को जो कन्याएं दी थीं, वे सब सोम पत्नियां नक्षत्रों के नाम से ज्यौतिष शास्त्र में प्रसिद्ध हैं ।

ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिःपुरोगमाः ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३७॥

अर्थ—अब जो ज्योति आदि दूसरे प्रसिद्ध देवता हैं और जो विख्यात आठ वसु देवता हैं, उनका विस्तृत वर्णन मैं आपसे करूंगा ।

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३८॥

अर्थ—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास (—ये आठ) वसु नाम से प्रसिद्ध हैं ।

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः ॥३९॥

अर्थ—आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनिनामक पुत्र उत्पन्न हुए और संसार को अपने अंकुश में रखनेवाले भगवान् काल ध्रुव के पुत्र हैं ।

सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते ।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥४०॥

अर्थ—और सोम नामक वसु के पुत्र भगवान् वर्चा हैं, जिन (का पूजन करने) से मनुष्य वर्चस्वी हो जाता है। घर वसु के द्रविण और हुतहव्यवह नामक दो पुत्र हुए तथा (धर की दूसरी पत्नी) मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण नामक पुत्र हुए।

अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥४१॥

अर्थ—अनिल की पत्नी का नाम शिवा था, उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञात गति थे, ये दोनों अनिल के पुत्र थे।

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥४२॥

अर्थ—अग्नि के पुत्र श्रीमान् कुमार सरकण्डों के झुंड में प्रकट हुए थे। उनके पीछे शाख, विशाख और नैगमेय हुए (इस प्रकार अग्नि के चार पुत्र थे)।

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ॥४३॥

अर्थ—(ये कुमार ही) कृत्तिकाओं की सन्तान कार्तिकेय (और) स्कन्द कहलाते हैं और ये ही सनत्कुमार हैं। (अग्नि ने इन्हें अपने तेज के एक अंश से प्रकट किया है (और शाख आदि तीन को भी अपने तेज के एक एक चौथाई अंश से प्रकट किया है। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि 'तं स्कन्द इत्याचक्षते' यह सनत्कुमार ही स्कन्द है। इससे प्रतीत होता है कि सनत्कुमार इनका उपनाम है)

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम् ।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ ॥४४॥

अर्थ—प्रत्यूष के पुत्र का नाम देवल और (पुत्री का नाम) ऋष्टि था। देवल के भी दो पुत्र थे, जो क्षमावान् तथा तपस्वी थे।

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ।
योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ॥४५॥

अर्थ—बृहस्पति की बहिन का नाम ब्रह्मचारिणी था, यह योगसिद्ध श्रेष्ठ स्त्री-आसक्ति को त्यागकर सारे संसार में विचरण किया करती थी।

प्रभासस्य च भार्या वसूनामष्टमस्य च ।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः ॥४६॥

अर्थ— वह प्रभास नामवाले आठवें वसु की भार्या बन गयी। उसके गर्भ से विश्वकर्मा नामवाले महाभाग्यवान् प्रजापति उत्पन्न हुए।

कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः ।
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ॥४७॥

अर्थ—उन्होंने हजारों शिल्पों (कलाओं) की रचना की है और वे देवताओं के बढ़ई हैं तथा वे शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा सब आभूषणों के बनाने वाले हैं।

यः सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह ।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥४८॥

अर्थ—उन्होंने सब देवताओं के विमानों को बनाया है और उन महात्मा के शिल्प से मनुष्य भी अपनी आजीविका चलाते हैं।

सुरभी कश्यपाद् रुद्रानेकादश विनिर्ममे ।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥४९॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत ।
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥५०॥

अर्थ—(अब दक्ष ने कश्यप मुनि को जो तेरह कन्याएं दी थीं, उनमें से सुरभि की सन्तान का वर्णन करते हैं—) तप में मग्न हुई सुरभि ने महादेवजी से वर पाकर कश्यपजी के द्वारा ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया था। भरतवंशी राजन्! अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा तथा रुद्र—ये सब सुरभि की ही सन्तानें हैं। त्वष्टा के महायशस्वी और श्रीमान् पुत्र का नाम विश्वरूप था।

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥५१॥
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशाम्पते ।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥५२॥

अर्थ–राजन्! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये तीनों भुवनों के ईश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं।

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ।
पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ताः सचराचराः ॥५३॥
लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा ॥५४॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रुर्मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥५५॥

अर्थ—भरतश्रेष्ठ! पुराणों में इन अमित पराक्रमी रुद्रों के सैकड़ों रूप

बताये गये हैं। इनसे चराचर लोक भरे हुए हैं। भरतशार्दूल ! अब तुम मुझसे कश्यप की (स्त्रियों के नाम) सुनो। (वे हैं—) अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि। राजेन्द्र ! अब इनसे जो सन्तानें उत्पन्न हुईं, उनका वर्णन मुझसे सुनो।

पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५६॥
उपस्थितेऽतियशसि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
हितार्थं सर्वसत्त्वानां समागम्य परस्परम् ॥५७॥

अर्थ—पहले चाक्षुष मन्वन्तर में तुषित नामवाले बारह श्रेष्ठ देवता थे। वे उस अत्यन्त यशस्वी मन्वन्तर का अन्त आने पर वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ में सब प्राणियों का हित करने के लिए परस्पर मिलकर कहने लगे—

आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्न श्रेयो भविष्यति ॥५८॥

अर्थ—'देवताओ ! शीघ्र आओ ! हम अदिति में प्रवेश करके अगले (वैवस्वत) मन्वन्तर में उत्पन्न होंगे, यह कार्य हमारे लिए श्रेयस्कर होगा'।

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
मारीचात् कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया ॥५९॥

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं—वे सभी देवता चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में इस प्रकार वार्तालाप कर मरीचिपुत्र कश्यप से दक्ष की कन्या अदिति के गर्भ से उत्पन्न हो गये।

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ॥६०॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥६१॥

अर्थ—भारत ! वहां विष्णु और इन्द्र फिर उत्पन्न हुए। वे तथा अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश और परम तेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाते हैं।

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन् ये तुषिताः सुराः।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ॥६२॥

अर्थ—पहले चाक्षुष मन्वन्तर में जो तुषित नामवाले देवता थे, वे अब वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य कहलाते हैं।

सप्तविंशतिर्याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ।
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसाम् ॥६३॥

अर्थ—और वो सुन्दर व्रत धारण करनेवाली चन्द्रमा की सत्ताईस पत्नियां कही गयी हैं, उन अमित तेजस्विनी पत्नियों की ज्योतिर्मयी सन्तानें उत्पन्न हुईं ।

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥६४॥

अर्थ—अनेक पुत्रवाले विद्वान् अरिष्टनेमि की विद्युत् नामवाली चार पत्नियां थीं । उनसे सोलह सन्तानें उत्पन्न हुईं ।

प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ॥६५॥

अर्थ—राजर्षि कृशाश्व के ब्रह्मर्षियों से सत्कृत श्रेष्ठ प्रत्यंगिरसजा ऋचाएं और देवताओं के आयुध प्रकट हुए ।

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत् तु कामजाः ॥६६॥

अर्थ—तात ! ईश्वर की कामना से उत्पन्न होनेवाले तैंतीस देवता सत्ययुग आदि चारों युगों के एक हजार बार बीतने पर (प्रत्येक कल्प में) पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं ।

तेषामपि च राजेन्द्र निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥६७॥

अर्थ—राजेन्द्र ! उन देवताओं की भी उत्पत्ति और नाश का वर्णन उपलब्ध होता है ।

यथा सूर्यस्य गगने उदयास्तमने इह ।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥६८॥

अर्थ—जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त बारंबार होता रहता है, इसी प्रकार ये देवताओं के समूह प्रत्येक युग में उत्पन्न (तथा नष्ट) होते हैं ।

दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥६९॥

अर्थ—(इस प्रकार आदित्यों का वर्णन करके अब दैत्यों का वर्णन करते हैं—) हमने सुना है, कश्यप ऋषि से दिति के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, (उनमें से एक) हिरण्यकशिपु और (दूसरा) वीर्यवान् हिरण्याक्ष था ।

सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।
सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः ।
गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥७०॥

अर्थ—(इन कश्यप और दिति की) एक सिंहिका नामवाली कन्या भी थी, वह विप्रचित्ति को विवाही गयी थी। उसके महाबली पुत्र सैंहिकेय नाम से प्रसिद्ध हैं। राजेन्द्र ! वे अपने गणों सहित दस हजार हैं।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु ॥७१॥

अर्थ—और उनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। महाबाहो ! अब हिरण्यकशिपु की (सन्तानों का वर्णन) सुनो।

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥७२॥
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ध्रादपुत्रो ह्रदस्तथा।
संह्लादपुत्रः सुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौ स्मृतौ ॥७३॥

अर्थ—हिरण्यकशिपु के अनुह्लाद, ह्लाद, वीर्यवान् प्रह्लाद और चौथा संह्लाद—ये चार प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। ह्लाद का पुत्र ह्रद हुआ। सुन्द और निसुन्द—ये दोनों संह्लाद के पुत्र कहलाते हैं।

अनुह्लादसुतौ ह्यायुः शिविकालस्तथैव ह।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥७४॥

अर्थ—अनुह्लाद के आयु और शिबिकाल नामक दो पुत्र थे। प्रह्लाद के विरोचन नामक पुत्र हुआ और विरोचन से बलि नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

बले पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं नराधिप।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः ॥७५॥
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७६॥

अर्थ— बलि के सौ पुत्र थे। उनमें बाण (सबसे) बड़ा था। राजन् ! धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुक्षि आदि (बलि के सौ पुत्र थे)। इनमें अतिबली बाण बड़ा था और वह शिव का प्रिय भक्त था।

पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७७॥

अर्थ—पहले कल्प में बाणासुर ने उमापति शंकर को प्रसन्न करके यह वर मांगा था कि 'मैं आपके पास विहार करूं'।

बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुपपद्यत।
गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्रसम्मिताः ॥७८॥

अर्थ—बाण के लोहिती नाम की पत्नी में इन्द्रदमन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजन् ! लाखों असुर उसके गण थे।

हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥७९॥

अर्थ—हिरण्याक्ष के झर्झर, शकुनि, भूतसंतापन, महानाभ और पराक्रमी कालनाभ नामक पांच पुत्र हुए, वे विद्वान् और परम पराक्रमी थे।

अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः।
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान् ॥८०॥

अर्थ—(अब दनु के वंश का वर्णन करते हैं—) दनु के सौ पुत्र हुए। वे सब परम पराक्रमी, तपस्वी और महावीर्यवान् थे। उनमें से मुख्य-मुख्य असुरों का वर्णन सुनिये।

द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शंकुशिरा विभुः।
शंकुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥८१॥
मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शंकुशिरा वृकः।
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवार्यशतह्रदौ ॥८२॥
इन्द्रजित् सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥८३॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ ॥८४॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः।
सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः ॥८५॥
असिलोमा च केशी च शठश्च बलको मदः।
तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महासुरः ॥८६॥
प्रमदो मयः कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान्।
वैसृपः सविरूपाक्षः सुपथोऽथ हराहरौ ॥८७॥
हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायश्च शम्बरः।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥८८॥
एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ॥८९॥

अर्थ—द्विमूर्धा, शकुनि तथा विभु, शंकुशिरा, शंकुकर्ण, विराध और गवेष्ठी,

दुन्दुभि तथा अयोमुख, शम्बर और कपिल, वामन तथा मरीचि, मघवान् और इरा, शंकुशिरा, वृक, विक्षोभण और केतु तथा केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सत्यजित् और वज्रनाभ तथा महानाभ और विक्रान्त, कालनाभ, महाभुज एकचक्र और महाबली तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण और महासुर, स्वर्भानु, वृषपर्वा और महान् असुर तुहुण्ड, सूक्ष्म और अतिचन्द्र तथा ऊर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा और केशी एवं शठ तथा बलक, मद तथा गगनमूर्धा और महान् असुर कुम्भनाभ, प्रमद, मय और कुपथ, हयग्रीव और वीर्यवान् वैसृप, विरूपाक्षसहित सुपथ और हर, अहर, हिरण्यकशिपु तथा सैकड़ों प्रकार की माया जाननेवाले शम्बर, शरभ, शलभ और वीर्यवान् विप्रचित्ति—ये सब दनु के पुत्र कश्यपजी से उत्पन्न हुए थे। इनमें विप्रचित्ति प्रधान था। ये सब दानव बड़े बलवान् थे।

एतेषां यदपत्यं तु तन्न शक्यं नराधिप ।
प्रसंख्यातुं महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥९०॥

अर्थ—नराधिप ! इनकी जो सन्तानें हुईं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। महीपाल ! इनके अनन्त पुत्र-पौत्र उत्पन्न हुए।

स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम् ।
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥९१॥

अर्थ—स्वर्भानु के प्रभा नामक पुत्री उत्पन्न हुई और पुलोमा के उपदानवी, हयशिरा (तथा शची) तीन कन्याएं उत्पन्न हुईं। वृषपर्वा के शर्मिष्ठा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥९२॥

अर्थ—वैश्वानर दानव की पुलोमा और कालिका नाम की दो पुत्रियां हुईं। ये दोनों मरीचिनन्दन कश्यप को विवाही गयीं, ये बड़ी शक्तिशाली थीं। इन कन्याओं के बहुत-सी सन्तानें उत्पन्न हुईं।

तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिं दानवनन्दनान् ।
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ॥९३॥
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ॥९४॥
अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः ।
कृताः पितामहेनाजौ निहता सव्यसाचिना ॥९५॥

अर्थ— परम तपस्वी मारीचि (कश्यप) ने उन दोनों स्त्रियों में दानवों को आनन्द देनेवाले साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया। फिर चौदह सौ पुत्र और

उत्पन्न किये। ये सब हिरण्यपुर में रहते थे। इन हिरण्यपुर में रहनेवाले महाबली पौलोम और कालकेय दानवों को ब्रह्माजी ने (वर देकर) देवताओं से भी अवध्य (न मारे जाने योग्य) कर दिया था। अर्जुन ने इनको रण में मार डाला था।

प्रभाया नहुषः पुत्रः सृंजयश्च शचीसुतः।
पूरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी ॥९६॥

अर्थ--प्रभा के नहुष नामक पुत्र हुआ और शची के सृंजय। शर्मिष्ठा ने पूरु को उत्पन्न किया और उपदानवी ने दुष्यन्त को।

ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः।
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तदा ॥९७॥
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः।
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ॥९८॥

अर्थ—तदनन्तर और भी बहुत-से महावीर्यवान् अतिदारुण दानव सिंहिका में विप्रचित्ति से उत्पन्न हुए, फिर दैत्य-दानवों के संयोग से विप्रचित्ति के बहुत-से तीव्र पराक्रमी पुत्र हुए। इनमें तेरह महाबली दानव 'सैंहिकेय' नाम से प्रसिद्ध हैं।

व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः।
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ॥९९॥
आज्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च।
शुक्रः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्च वीर्यवान् ॥१००॥

अर्थ--(उनके नाम इस प्रकार हैं-) बलवान् व्यंश और शल्य, महाबली नभ, वातापि और नमुचि, इल्वल तथा खसृम, आज्जिक और नरक तथा कालनाभ, शुक्र और पोतरण यथा वीर्यवान् वज्रनाभ।

राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै सूर्यचन्द्रविमर्दनः।
मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्लादपुत्रौ बभूवतुः ॥१०१॥

अर्थ—इनमें राहु सबसे बड़ा है, जो सूर्य तथा चन्द्रमा को पीड़ा देता रहता है। ह्लाद के मूक और तुहुण्ड नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए।

मारीचः सुन्दपुत्रश्च ताडकायां व्यजायत।
शिवमाणस्तथा चैव सुरकल्पश्च वीर्यवान् ॥१०२॥

अर्थ—सुन्द के ताडका में मारीच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा (सुन्द और ताडका के) शिवमाण और वीर्यवान् सुरकल्प नामक पुत्र भी उत्पन्न हुए।

एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०३॥

अर्थ–ये सभी दानव श्रेष्ठ और दनु के वंश का विस्तार करनेवाले हैं, इनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हैं।

संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ।
समुत्पन्नाः सुतपसा महान्तो भावितात्मनः ॥१०४॥

अर्थ—संह्लाद दैत्य के कुल में निवातकवच उत्पन्न हुए, वे सब उदार थे और उन्होंने बड़ा भारी तप करके अपने चित्त को पवित्र कर लिया था।

तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिमत्यां निवासिनाम् ।
तेऽप्यवध्यास्तु देवानामर्जुनेन निपातिताः ॥१०५॥

अर्थ—वे मणिमती नगरी में निवास करते थे। उनके तीन करोड़ पुत्र थे। वे भी देवताओं से अवध्य थे, उनको भी अर्जुन ने मार डाला था।

षट् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः ।
काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि गृध्रिका ॥१०६॥

अर्थ–ताम्रा के काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका नाम की अत्यन्त बलशालिनी छः पुत्रियां कही जाती हैं।

काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान् ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान् गृध्रांश्च गृध्रचपि ॥१०७॥
शुचिरौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु परंतप ।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ॥१०८॥

अर्थ—परंतप ! काकी ने कौओं को, उलूकी ने उल्लुओं को, श्येनी ने श्येनों (बाजों) को, भासी ने भास नामक पक्षियों को और गृधी ने गीधों को उत्पन्न किया। शुचि ने जल में रहनेवाले पक्षियों और सुग्रीवी ने घोड़े, ऊंट तथा गाधों को जन्म दिया। यह मैंने ताम्रा के वंश का वर्णन किया है।

विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा ।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ॥१०९॥

अर्थ—विनता के अरुण और गरुड नामक दो पुत्र हुए। इनमें से पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड अपने कर्म के कारण बड़े दारुण माने गये हैं।

सुरसाया सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम् ।
अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम् ॥११०॥

अर्थ—सुरसा के हजारों सर्प उत्पन्न हुए। तात ! वे सब सर्प अमित पराक्रमी, अनेक फनोंवाले आकाश में विचरण करनेवाले तथा विशालकाय हैं।

काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः ।
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरेऽनेकमस्तकाः ॥१११॥
तेषां प्रधानां सततं शेषवासुकितक्षकाः ।
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥११२॥
एलापत्रस्तथा शङ्खः कर्कोटकधनंजयौ ।
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ॥११३॥
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ।
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ॥११४॥
नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडेन निपातिताः ॥११५॥

अर्थ—कद्रू के भी परम पराक्रमी हजारों सर्प उत्पन्न हुए। उन बलवान् सर्पों के अनेक मस्तक हैं और वे सदा गरुड के अधीन रहते हैं। उनमें शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शंख, शंखपाल, कपिल, वामन, नहुष, शंखरोमा तथा मणि आदि प्रधान हैं। इनके पुत्र और पौत्रों को गरुड ने मार डाला था।

चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पवनाशिनाम् ।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥११६॥

अर्थ—वायु पीकर रहनेवाले चौदह हजार क्रूर सर्पों का क्रोधवश नामवाला एक गण है। उस गण के समस्त सर्प दाढ़ोंवाले हैं।

स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥११७॥

अर्थ—स्थल और जल के पक्षी धरा की सन्तान कहलाते हैं। सुरभि ने गौ, बैल और भैंसों को उत्पन्न किया।

इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः ।
खशा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥११८॥

अर्थ—इरा ने वृक्ष, लता बेल तथा सब प्रकार की घासों को उत्पन्न किया। खशा ने यक्षों और राक्षसों को तथा मुनि ने अप्सराओं को जन्म दिया।

अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वानमितौजसः ।
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजंगमाः ॥११९॥

अर्थ—अरिष्टा ने महासत्त्ववाले अमित पराक्रमी गन्धर्वों को उत्पन्न किया। यह कश्यप ऋषि की स्थावर और जंगम सन्तानों का वर्णन हुआ।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ॥१२०॥

अर्थ—इनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हुए। तात ! यह स्वारोचिष मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन है।

वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ ।
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥१२१॥

अर्थ—जब वैवस्वत मन्वन्तर में वरुणदेवतासम्बन्धी बड़ा भारी यज्ञ चल रहा था, तब ब्रह्माजी के आहुति देते समय प्रजाओं को रचने का जो क्रम चला था, उसका यहां वर्णन किया जाता है।

पूर्वं यत्र तु ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान् सप्त मानसान् ।
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥१२२॥

अर्थ—उस समय पितामह ब्रह्मा ने पहले अपने मन के संकल्प से उत्पन्न हुए सात ब्रह्मर्षियों को स्वयं ही अपने औरस पुत्र के रूप में स्वीकार किया।

ततो विरोधे देवानां दानवानां च भारत ।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥१२३॥

अर्थ—भारत ! तदनन्तर जब देवता और दैत्यों में विरोध होने पर दिति के पुत्र नष्ट हो गये, तब उसने (महर्षि) कश्यप को (फिर) प्रसन्न किया।

तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ।
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः ॥१२४॥
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ।
स च तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं सुमहातपाः ॥१२५॥

अर्थ—उसके भली-भांति आराधना करने पर कश्यपजी का चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने उससे वर मांगने के लिए कहा। तब उस दिति ने वर मांगा कि 'मुझे इन्द्र का वध करने के लिए अमित पराक्रमी पुत्र दीजिये।' यह सुनकर उन महातपस्वी कश्यप ने उसका मांगा हुआ वर उसको दे दिया।

दत्त्वा च वरमव्यग्रो मारीचस्तामभाषत ।
भविष्यति सुतस्तेऽयं यद्येवं धारयिष्यसि ॥१२६॥
इन्द्रं सुतो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम् ।
यदि धारयसे शौचं तत्परा व्रतमास्थिता ॥१२७॥

अर्थ—वह वर देकर कश्यप मुनि उससे शान्तभाव से बोले—'यदि तुम इस (गर्भ) को मेरी बतायी हुई विधि से धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र

को मारनेवाला होगा। तुम्हें पवित्रतापूर्वक रहने का व्रत लेकर सौ वर्ष तक अपने उदर में इस गर्भ को धारण करना पड़ेगा। यदि तुम ऐसा कर सकोगी तो वह पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा'।

तथेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा वसुधाधिप ॥१२८॥

अर्थ—तब उस देवी ने अपने महातपस्वी स्वामी से कहा कि 'अच्छा मैं ऐसा ही करूंगी।' राजन्! फिर वह गर्भ को धारण कर पवित्रतापूर्वक रहने लगी।

ततोऽभ्युपागमद् दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम् ॥१२९॥
तेजः सम्भृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि।
जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः ॥१३०॥

अर्थ—अमित पराक्रमी देवताओं के श्रेष्ठ गण को प्रकाशित करनेवाले कश्यप जी इस प्रकार दिति में गर्भ को स्थापित कर वहां से चल दिये। वे प्रशंसित तप वाले महर्षि (दिति में) देवताओं से भी अवध्य अपने दुर्धर्ष तेज को स्थापित करके तप करने के लिए पर्वत पर चले गये।

तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः।
ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥१३१॥

अर्थ—(इधर) इन्द्र उसके छिद्र को ढूंढ़ने लगे और अच्युत इन्द्र ने सौ वर्ष पूर्ण होने से पहले ही उसका दोष देख लिया।

अकृत्वा पादयोः शोचं दितिः शयनमाविशत्।
निद्रां च कारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥१३२॥

अर्थ—(एक बार) दिति बिना पैर धोये ही शयन करने के लिए चली गयी। इसी समय इन्द्र ने उसकी कोख में घुसकर उसे (अपनी माया से) निद्रा के अधीन कर दिया।

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तत।
स पाटयमानो वज्रेण गर्भस्तु प्ररुरोद ह ॥१३३॥

अर्थ—फिर वज्रपाणि इन्द्र ने उस गर्भ के सात टुकड़े कर डाले, वज्र से काटे जाने पर वह गर्भ जोर जोर से रोने लगा।

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥१३४॥

एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्शनः ।
मरुतो नाम देवास्ते बभूवुर्भरतर्षभ ॥१३५॥

अर्थ—तब उस गर्भ से इन्द्र ने बार-बार 'मां रोदी—मत रो' इस प्रकार कहा और उस गर्भ के सात टुकड़े हो गये, तब शत्रुओं को नष्ट करनेवाले इन्द्र ने फिर क्रोध में भरकर वज्र द्वारा उस प्रत्येक टुकड़े के भी सात-सात टुकड़े कर डाले। भरतर्षभ ! वे मरुत् नामक (उनचास) देवता हुए ।

यथैवोक्तं मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ।
देवा एकोनपञ्चाशत् सहाया वज्रपाणिनः ॥१३६॥

अर्थ—इन्द्र ने चूंकि (मां रोदी) कहा था, इसलिए वे मरुत् नामक देवता हो गये। वे उनचास हैं और वज्रपाणि इन्द्र की सहायता करते हैं ।

तेषामेवं प्रवृद्धानां भूतानां जनमेजय ।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम् ॥१३७॥
निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् ।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भारत ॥१३८॥

अर्थ—जनमेजय ! जब वे प्राणी इस प्रकार बढ़ गये, तब अमित पराक्रमी देवताओं की श्रेष्ठ मण्डली को प्रकाशित करनेवाले हरि ने उनकी टोलियों में प्रजापति नियुक्त कर दिये। भारत ! फिर उन्होंने पृथु को पहले राज्य अर्पण किया, तब से ये राज्य क्रमशः चले आ रहे हैं ।

स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ।
पर्जन्यस्तपनोऽव्यक्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥१३९॥

अर्थ—वे हरि पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु और प्रजापति हैं तथा वे ही मेघ, सूर्य और अव्यक्त हैं एवं यह सब जगत् उन्हीं का है !

भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो भरतर्षभ ।
मरुतां च शुभं जन्म शृण्वतः पठतोऽपि वा ।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१४०॥

अर्थ—भरतर्षभ ! इस भूतसृष्टि को पूर्णरूप से जाननेवाले और मरुतों के शुभ जन्म को सुनने या पढ़नेवाले को जन्म-मरण का भय नहीं रहता, फिर परलोक का भय तो होगा ही कहां से ?

तृतीयोऽध्यायः समाप्त ॥३॥

---

३. पृथुचरितम् (बृहदाख्यानम्)

वैशम्पायन उवाच—

अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः ।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! पितामह (मैं विराजमान हरि) ने राजाओं के ऊपर भी अधिराजा रूप से वेन के पुत्र पृथु का अभिषेक किया, फिर (उन प्रजापति ने) क्रमशः राज्य का वितरण आरम्भ किया ।

द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा ।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥

अर्थ—(प्रजापति ने) द्विज, लता, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ और तप के राज्य पर चन्द्रमा का अभिषेक किया ।

अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम् ।
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावाङ्गिरसं पतिम् ॥३॥

अर्थ—जल के राज्य पर वरुण का तथा राजाओं (और यक्षों) के राज्य पर विश्रवा के पुत्र कुबेर का अभिषेक कर दिया । विश्वेदेवों पर आंगिरसगोत्री बृहस्पति को राजा बना दिया ।

भृगूणामधिपं चैवं काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥४॥

अर्थ भृगुवंशियों के स्वामी रूप से शुक्राचार्य का राज्याभिषेक कर दिया । आदित्यों के ऊपर विष्णु को और वसुओं के ऊपर अग्नि को (राजा बना दिया)

प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम् ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥५॥
वैवस्वतं च पितृणां यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।

अर्थ—दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतों का तथा अमित पराक्रमी प्रह्लाद को दैत्य और दानवों का राजा बना दिया एवं पितरों के राज्य पर विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र यम का अभिषेक कर दिया ।

मातृणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम् ॥६॥
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च ।
नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥७॥

अर्थ—सोडशमातृका, व्रत, मन्त्र, गो, यक्ष, राक्षस, पार्थिव पदार्थ और

साध्य देवताओं के राज्य पर नारायण का अभिषेक कर दिया और रुद्रों के राज्य वृषभध्वज (शंकरजी) अभिषिक्त हुए।

विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत्।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥८॥

अर्थ—विप्रचित्ति दानवों का राजा बनने का आदेश दे दिया और सकल भूत पिशाचों का शूलपाणि महादेवजी को राजा बना दिया।

शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्।
गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम्।
शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम् ॥९॥

अर्थ—हिमाचल को पर्वतों का और समुद्र को नदियों का राजा बना दिया। गन्धद्रव्यों, मरुद्गणों, अमूर्त भूतों तथा शब्द और आकाशवाली वस्तुओं के राज्य पर भी बलवानों में श्रेष्ठ वायु का अभिषेक कर दिया।

गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम्।
नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥१०॥

अर्थ—प्रभावशाली चित्ररथ को गन्धर्वों का स्वामी बना दिया, वासुकि को नागों का और तक्षक को सर्पों का राजा बनाया।

वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत्।
उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥११॥

अर्थ—हाथियों का ऐरावत को, घोड़ों का उच्चैःश्रवा को और पक्षियों का गरुड़ को राजा बना दिया।

मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम्।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवादिशत् प्रभुम् ॥१२॥

अर्थ— वनचारी पशुओं पर सिंह को तथा गौओं पर सांड को स्वामी बनाया और पाकड़ को वृक्षों का प्रभावशाली राजा बना दिया।

सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च।
आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥१३॥

अर्थ—सागर, नदी, मेघ, वर्षा और सूर्य की किरणों के अधिपति पद पर पर्जन्य का अभिषेक कर दिया।

सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजानमभ्यषेचयत्।
सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम् ॥१४॥

अर्थ—दाढ़वाले समस्त सर्पों के ऊपर शेष को, (निर्विष डुण्डुभ आदि) सर्पों

और सरीसृपों (पेट के बल पर चलनेवाले जीवों) के ऊपर तक्षक को राजा बना दिया।

गन्धर्वाप्सरसां चैव कामदेवं तथा प्रभुम्।
ऋतूनामथ मासानां दिवसानां तथैव च ॥१५॥
पक्षाणां च क्षपाणां च मुहूर्ततिथिपर्वणाम्।
कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ॥१६॥
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम्।

अर्थ—गन्धर्व और अप्सराओं के ऊपर ऐश्वर्यशाली कामदेव का अभिषेक कर दिया। ऋतु, मास, दिन, पक्ष, रात्रि, मुहूर्त तिथि, पर्व, कला-काष्ठा के प्रमाण-उत्तरायण और दक्षिणायन की गति तथा उपराग अर्थात् ग्रहण (के अभिमानी देवताओं) पर प्रभु संवत्सर का अभिषेक कर दिया।

एवं विभज्य राज्यानि क्रमेण स पितामहः ॥१७॥
दिशापालानथ ततः स्थापयामास भारत।

अर्थ—भारत! पितामह ने इस प्रकार क्रमपूर्वक राज्यों का विभाग करके फिर दिक्पालों की स्थापना की थी।

पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः ॥१८॥
दिशापालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत्।

अर्थ—उन्होंने वैराज प्रजापति के पुत्र राजा सुधन्वा का पूर्व दिशा के दिक्पाल पद पर अभिषेक कर दिया।

दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः ॥१९॥
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत्।

अर्थ—कर्दम प्रजापति के पुत्र महात्मा राजा शंखपाद का दक्षिण दिशा के दिक्पाल पद पर अभिषिक्त किया।

पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ॥२०॥
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत्।

अर्थ—इसी प्रकार पश्चिम दिशा में रजस के पुत्र अच्युत महात्मान् का राजा (दिक्पाल) के पद पर अभिषेक कर दिया।

तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥२१॥
उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत्।

अर्थ—इसी प्रकार उत्तर दिशा में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र दुर्धर्ष हिरण्यरोमा का राजपद (दिक्पाल पद) पर अभिषेक कर दिया।

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥२२॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते।

अर्थ—उन पुरुषों द्वारा सातों द्वीप और पर्वतों सहित सारी पृथ्वी और उसके वे-वे प्रदेश आज भी धर्मानुसार पालित हो रहे हैं।

राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेभिर्नराधिपैः ।
वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप ॥२३॥

अर्थ—जनेश्वर ! इन राजाओं ने वेद में वर्णित विधि से राजसूय यज्ञ में राजाओं के भी राजा के पद पर पृथु का अभिषेक किया था।

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ।
वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत् ।
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥२४॥
तवानुकूल्याद् राजेन्द्र यदि शुश्रूषसेऽनघ ।
महद्ध्येतदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम् ॥२५॥

अर्थ—तदनन्तर अमिततेजस्वी चाक्षुष मनु के मन्वन्तर के बीतने पर ब्रह्माजी ने वैवस्वत मनु को राज्य दे दिया था। निष्पाप राजेन्द्र ! यदि आप अनुकूल रहकर सुनना चाहेंगे तो मैं आपसे वैवस्वत मनु के विस्तार का वर्णन करूंगा। मैंने आपको यह बड़ा भारी प्राचीन इतिहास कह सुनाया। इसको सुनने से प्रतिष्ठा बढ़ती है, धन मिलता है, यश मिलता है, आयु की वृद्धि होती है और इस शुभ आख्यान को सुनने से (अन्त में) स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

जनमेजय उवाच—

विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय ।
यथा महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुन्धरा ॥२६॥

अर्थ—जनमेजय ने कहा—वैशम्पायनजी ! आप पृथु के जन्म का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, उन महात्मा ने इस पृथ्वी को किस प्रकार दुहा था।

यथा च पितृभिर्दुग्धा यथा देवैर्यथर्षिभि ।
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥२७॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमैः ।
राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥२८॥
तेषां पात्रविशेषांश्च वैशम्पायन कीर्तय ।
वत्सान् क्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः ॥२९॥

अर्थ—पितरों ने इस पृथ्वी को जिस प्रकार दुहा था, देवता तथा ऋषियों ने, दैत्यों और नागों ने, यक्षों और वृक्षों ने इस पृथ्वी को जिस प्रकार दुहा था

तथा पर्वत, पिशाच, गन्धर्व द्विजोत्तम और महान् शक्तिशाली राक्षसों ने इस वसुन्धरा पृथ्वी को जिस प्रकार दुहा था, वह बताइये। वैशम्पायनजी ! इन सबके पास कैसे-कैसे पात्र थे, कैसे-कैसे बछड़े थे, कैसा-कैसा दूध दुहा गया था और कौन-कौन दुहनेवाले थे ? इन सबका क्रमपूर्वक वर्णन कीजिये।

यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा।
क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥३०॥

अर्थ— तात ! प्राचीन काल में महर्षियों ने जिस कारण से वेन के हाथ का मन्थन किया था और महर्षियों ने जिस कारण क्रोध किया था, उस कारण का भी आप वर्णन कीजिए।

वैशम्पायन उवाच—

हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्।
एकाग्रः प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय ॥३१॥

अर्थ—वैशम्पायनजी ने कहा—जनमेजय ! मैं तुमसे बेन के पुत्र पृथु का चरित्र अब विस्तारपूर्वक कहता हूं, इस चरित्र को एकाग्र और सावधान होकर सुनो।

नाशुचेः क्षुद्रमनसः कुशिष्यायाव्रताय च।
कीर्तनीयमिदं राजन् कृतघ्नायाहिताय वा ॥३२॥

अर्थ— राजन् ! जिसका मन तुच्छ हो, जो अपवित्र हो, जो कुशिष्य हो और जो व्रत न करता हो तथा जो कृतघ्न हो एवं जो संसार का अहित करनेवाला हो, उससे इस चरित्र का वर्णन नहीं करना चाहिये।

स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन सम्मितम्।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन् यथातथम् ॥३३॥

अर्थ—राजन् ! यह (इतिहास) स्वर्ग, यश, आयु तथा धर्म की प्राप्ति करानेवाला और वेद के समान है। ऋषियों ने इस रहस्य का वर्णन किया है, इसे तुम यथार्थ रीति से सुनो।

यश्चैनं कथयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतैः ॥३४॥

अर्थ—जो पुरुष ब्राह्मणों को प्रणाम करके बेन के पुत्र पृथु के इस चरित्र को विस्तारपूर्वक कहता है, उसे कार्याकार्य के (मैंने सदा पाप कर्म किये, धर्म कभी नहीं किया, ऐसे) पश्चात्ताप से शोक नहीं करना पड़ता अर्थात् इस चरित्र को

सुनने से सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं और सब यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं।

चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥

वैशम्पायन उवाच—

आसीद् धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः प्रभुः।
अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! प्राचीनकाल की बात है, धर्म के रक्षक अत्रि के वंश में एक प्रजापति उत्पन्न हुए, जिनका नाम था अंग। वे अत्रि के ही समान प्रभावशाली थे।

तस्य पुत्रोऽभवद् वेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२॥

अर्थ—उनका पुत्र वेन हुआ, परन्तु उसे धर्म के रहस्य का पता न था। वह राजा वेन मृत्यु की पुत्री सुनीथा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजाऽऽत्मजः।
स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥३॥

अर्थ—काल की पुत्री सुनीथा का पुत्र वह वेन नाना के दोष से अपने धर्म की उपेक्षा कर काम के कारण लोभ में फंस गया।

मर्यादां स्थापयामास धर्मापेतां स पार्थिवः।
वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥४॥

अर्थ—वह राजा धर्मविहीन मर्यादा को स्थापित करने लगा और वेदोक्त धर्मों का उल्लंघन कर अधर्म में फंस गया।

निःस्वाध्यायवषट्कारास्तस्मिन् राजनि शासति।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥५॥

अर्थ—उस राजा के शासनकाल में देवता लोग (उनकी तृप्ति के लिए किये जानेवाले) स्वाध्याय और वषट्कार से वंचित हो गये थे; इसलिए अपने उद्देश्य से अर्पित तथा यज्ञकुण्डों में होमे गये सोम का भी वे पान नहीं करते थे।

न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥६॥

अर्थ—उसका विनाशकाल समीप आ गया था, अतः उस प्रजापति ने यह क्रूर प्रतिज्ञा घोषित की कि 'मेरे राज्य में कोई यज्ञ और हवन न करे'।

अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥७॥

अर्थ– कुरुश्रेष्ठ ! (वह कहता था कि) 'मैं ही यज्ञों द्वारा आराध्य और मैं ही यज्ञ करनेवाला हूं तथा यज्ञ भी मैं ही हूं। मेरे लिए ही यज्ञ और हवन करना चाहिए'।

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।
ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥८॥

अर्थ—जब वह इस प्रकार मर्यादा को तोड़ने लगा और अनुचितरूप से (कर आदि लगाकर) सब कुछ लूटने लगा, तब जो मरीचि आदि बड़े-बड़े ऋषि थे, उन्होंने उससे कहा—

वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून् ।
अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मः सनातनः ॥९॥

अर्थ—'हम बहुत वर्षों में पूर्ण होनेवाली दीक्षा में प्रवेश करेंगे। वेन ! अब तुम अधर्म न करो; क्योंकि यह सनातन धर्म नहीं है।

निधनेऽत्र प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम् ।
प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयः कृतः ॥१०॥

अर्थ—'निःसन्देह तुम इस वंश में प्रजापति के रूप में उत्पन्न हुए हो और तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं प्रजा का पालन करूंगा'।

तांस्तदा ब्रुवतः सर्वान् महर्षीनब्रवीत् तदा ।
वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥११॥

अर्थ—जब महर्षि इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अनर्थ को अपनानेवाले दुर्बुद्धि वेन ने हंसकर उन लोगों से ये बातें कहीं।

वेन उवाच—

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया ।
श्रुतवीर्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि ॥१२॥

अर्थ—वेन ने कहा—धर्म का रचनेवाला मेरे सिवा और कौन है ? मैं किस की बात सुनूं ? इस पृथ्वी पर वेद, वीर्य, तप और सत्य में मेरे समान दूसरा कौन है ?

प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः ।
सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मामचेतसः ॥१३॥

अर्थ—आप लोग मूर्ख हैं और अचेत हो रहे हैं, अतः सब भूतों के और विशेषतः धर्मों के उत्पत्तिस्थान मुझ वेन को नहीं जानते।

इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं तथा जलैः ।
खं भुवं चैव रुन्धेयं नात्र कार्या विचारणा ॥१४॥

अर्थ– मैं चाहूं तो पृथ्वी को भस्म कर दूं अथवा इसको जल में डुबो दूं

और पृथ्वी तथा आकाश को भी (अपने तेज से) ढक दूं; इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है।

यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः।
अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥१५॥

अर्थ—गर्व और मोह के वश में पड़े हुए उस राजा वेन को जब वे ऋषि अधर्म करने से न रोक सके, तब वे क्रोध में भर गये।

निगृह्य तं महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम्।
ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः ॥१६॥

अर्थ—फिर तो वे महात्मा उस उछल कूद मचाते हुए महाबली राजा को बलपूर्वक पकड़कर क्रोध में भर उसकी दाहिनी जांघ को मथने लगे।

तस्मिंस्तु मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान्।
ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुषः कृष्णश्चाति बभूव ह ॥१६॥

अर्थ—राजा की उस जंघा के मथे जाने पर उसमें से बहुत ठिगना और बहुत ही काला एक पुरुष निकला।

स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवाञ्जनमेजय।
तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत् तदा ॥१८॥

अर्थ—जनमेजय! वह डरा हुआ था, अतः हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब अत्रि ने उसे भय से विह्वल देखकर उससे कहा 'निषीद—बैठ जा।'

निषादवंशकर्तासौ बभूव वदतां वर।
धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसम्भवान् ॥१९॥

अर्थ—वक्ताओं में श्रेष्ठ जनमेजय! वह निषादों के वंश का चलानेवाला हुआ और उसने धीवरों को जन्म दिया। ये सभी वेन के पाप से उत्पन्न हुए थे।

ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुषारास्तुम्बरास्तथा।
अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान् वेनसम्भवान् ॥२०॥

अर्थ—इन धीवरों के अतिरिक्त और भी जो विन्ध्य में रहनेवाले तुषार, तुम्बर तथा अधर्म से प्रेम करनेवाले वनवासी (गोण्ड कोल आदि) हैं, इन सबको तुम वेन (के पाप) से उत्पन्न हुआ समझो।

ततः पुनर्महात्मनः पाणिं वेनस्य दक्षिणम्।
अरणीमिव संरब्धा ममन्थुस्ते महर्षयः ॥२१॥

अर्थ—तदनन्तर वे क्रोध में भरे हुए महात्मा महर्षि वेन के दाहिने हाथ को अरणी के समान मथने लगे।

पृथुस्तस्मात् समुत्तस्थौ कराज्ज्वलनसंनिभः।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥२२॥

अर्थ—तब उस हाथ से अग्नि के समान पृथु उत्पन्न हुए, वे अपने शरीर से साक्षात् प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे थे।

स धन्वी कवची जातः पृथुरेव महायशाः।
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम्।
शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥२३॥

अर्थ—महायशस्वी पृथु हाथ में धनुष और बाण को धारण किए हुए और रक्षा के लिए महाकान्तिमान् कवच और दिव्य बाणों को धारण किए हुए ही उत्पन्न हुए। वे हाथ में महान् शब्दवाले प्राचीन आजगव नामक धनुष को धारण किए हुए थे।

तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः।
समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिवं गतः ॥२४॥

अर्थ—महाराज! उनके उत्पन्न होने पर सब प्राणी प्रसन्न होकर उनके पास दौड़ आए और वेन स्वर्ग को चला गया।

समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेण महात्मना।
त्रातः स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात् तदा ॥२५॥

अर्थ—पुरुषव्याघ्र कौरव! उस महात्मा सत्पुरुष के उत्पन्न होने पर उस वेन की 'पुं' नासक नरक से रक्षा हो गयी।

तं समुद्रांश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व एवोपतस्थिरे ॥२६॥

अर्थ—उन पृथु का अभिषेक करने के लिए सब समुद्र और नदियां चारों ओर से जल और रत्न लेकर वहां उपस्थित हुई।

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥२७॥
समागम्य तश वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम्।
महता राजराज्येन प्रजापालं महाद्युतिम् ॥२८॥

अर्थ—भगवान् पितामह भी अङ्गिरा के पुत्र, पौत्रों तथा सभी देवताओं के साथ वहां आये और स्थावर-जंगम प्राणियों ने भी वहां आकर महाकान्तिमान् वेन के प्रजापालक पुत्र पृथु का बड़े भारी राजाधिराज-पद पर अभिषेक कर दिया।

सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः।
आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥२६॥
पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः।
अनुरागात् ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥३०॥

अर्थ—जब धर्म के जाननेवालों ने महातेजस्वी और प्रतापी वेन के पुत्र पृथु का राजाओं के आदिराज्य (साम्राज्य) पद पर विधिवत् अभिषेक कर दिया, तब उन्होंने पिता द्वारा पीड़ित की हुई प्रजा को अपनी सेवाओं से खूब प्रसन्न किया। इस प्रकार प्रजा से अनुराग करने के कारण उनका नाम राजा पड़ गया।

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥३१॥

अर्थ—जब ये समुद्र पर चलते थे, तब जल स्तम्भित हो जाता था (अर्थात् समुद्र का जल स्थल की तरह कड़ा हो जाता था) और जब ये आकाश में चलते थे, तब पर्वत इनके लिए मार्ग छोड़ देते थे। इस कारण इनके रथ की ध्वजा वृक्ष आदि से कभी नहीं टूटती थी।

अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥३२॥

अर्थ—(उनके शासनकाल में) पृथ्वी बिना जोते हुए ही अन्न देती थी। चिन्तनमात्र से ही अन्न (भोज्य पदार्थ) तैयार हो जाते थे, गौएं कामधेनु के समान सब कामनाओं को पूर्ण करती थीं और वृक्षों के पत्ते-पत्ते में मधुर रस भरा रहता था।

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे।
सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥३३॥

अर्थ—इन्हीं के (राजस्व) काल में पितामह के शुभ यज्ञ में सोम को निकालने के दिन सोम का अभिषव करते समय अर्थात् रस निकालने के लिए सोमलता को कूटते समय महाबुद्धिमान् सूत की उत्पत्ति हुई थी।

तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः।
पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ॥३४॥

अर्थ—तदनन्तर उसी महायज्ञ में बुद्धिमान् मागध प्रकट हुआ। देवता और ऋषियों ने पृथु की स्तुति करने के लिए उन दोनों का वहां आह्वान किया था।

तावूचुर्ऋषयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥३५॥

अर्थ—सब ऋषियों ने उन दोनों से कहा कि तुम दोनों इन पृथ्वीपति की स्तुति करो, यह कर्म तुम्हारे अनुरूप है और ये राजा भी स्तुति के पात्र हैं।

तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥३६॥

अर्थ—उस समय सूत और मागध ने उन सब ऋषियों से कहा, हम अपने कर्मों से देवता और ऋषियों को प्रसन्न करेंगे।

न चास्य विद्वो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः ।
स्तोत्रं येनास्य कुर्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥३७॥

अर्थ—परन्तु ब्राह्मणो ! इन तेजस्वी राजा के कर्म, लक्षण और यश को तो हम जानते ही नहीं, जिससे इनकी स्तुति करें।

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च भविष्यैः स्तूयतामिति ।
यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः ॥३८॥

अर्थ—तब ऋषियों ने उन्हें यह कहकर स्तुति-कार्य में नियुक्त किया कि 'तुम दोनों इनके भविष्य में होनेवाले गुणों का उल्लेख करते हुए स्तवन करो।' उन्होंने वैसा ही किया। सूत और मागध ने जो-जो कर्म बताये, उन्हीं को महाबली पृथु ने पीछे से पूर्ण किया।

सत्यवाग् दानशीलोऽयं सत्यसंधो नरेश्वरः ।
श्रीमाञ्जैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः ॥३९॥

अर्थ—(सूत और मागध ने राजा पृथु की स्तुति इस प्रकार आरम्भ की–) 'ये नरेश्वर सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले, सत्यवादी, दान देनेवाले, लक्ष्मीवान् और विजयी हैं। ये क्षमा करनेवाले, पराक्रमी तथा दुष्टों का शासन करनेवाले हैं।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषणः ।
मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥४०॥

अर्थ—'ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान् और प्रियभाषण करनेवाले हैं। ये माननीय हैं और (दूसरों का) मान करनेवाले हैं। यज्ञ करनेवाले, ब्राह्मण-भक्त तथा सत्यप्रतिज्ञ हैं।

शमः शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृपः ।
ततः प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय ।
आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥४१॥

अर्थ—'ये राजा शमसम्पन्न, शान्त, कार्यतत्पर तथा अपने व्यवहार में संलग्न रहनेवाले हैं।' जनमेजय! उसी समय से लोगों में स्तुति के अवसरों पर सूत, मागध और वन्दियों के द्वारा आशीर्वाद दिलाने की प्रथा प्रचलित हुई।

तयोः स्तवैस्तैःसुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः।
अनूपदेशं सूताय मगधान् मागधाय च ॥४२॥

अर्थ—प्रजाओं के ईश्वर पृथु ने उन दोनों के इन स्तोत्रों से प्रसन्न होकर सूत को अनूपदेश और मागध को मगध देश दे दिया।

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्राहुर्महर्षयः।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वरः ॥४३॥

अर्थ—इस बात को देखकर महर्षि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रजाओं से कहा, 'ये जनेश्वर (राजा) तुम्हें वृत्ति-आजीविका देनेवाले होंगे।

ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः।
त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात् तदा ॥४४॥

अर्थ—महाराज! महर्षियों के ऐसा कहने पर प्रजा वेनपुत्र राजा पृथु के पास दौड़-दौड़कर आने और कहने लगी कि 'आप हमारी वृत्ति का प्रबन्ध कीजिये'।

सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया।
धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमाद्रवद्‌ बली ॥४५॥

अर्थ—जब प्रजा उनके पास इस प्रकार दौड़कर आयी, तब वे महाबली नरेश प्रजा का हित करने की इच्छा से अपने धनुष और बाण लेकर पृथ्वी को लक्ष्य करके दौड़े।

ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥४६॥

अर्थ—तब तो पृथ्वी वेनकुमार पृथु के भय से त्रस्त हो गौ का रूप धारणकर भागने लगी। पृथु भी धनुष लेकर उस भागती हुई पृथ्वी के पीछे दौड़ने लगे।

सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात् तदा।
प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥४७॥

अर्थ—पृथ्वी राजा पृथु के भय से ब्रह्मलोक आदि लोकों में गयी, परन्तु (उसने सर्वत्र ही) वेनपुत्र पृथु को हाथ में धनुष-बाण धारण किए अपने सामने खड़ा हुआ देखा।

ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।
महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥४८॥
अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ॥४९॥
उवाच वैन्यं नाधर्म्यं स्त्रीवधं कर्तुमर्हसि ।
कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया ॥५०॥

अर्थ—अपनी मर्यादा से कभी च्युत न होनेवाले पृथु प्रज्वलित तीखे बाणों द्वारा और भी तेज से उद्भासित हो रहे थे। वे महान् योगबल से सम्पन्न महात्मा नरेश देवताओं के लिए भी दुर्धर्ष थे। जब पृथ्वी को कहीं भी शरण न मिली, तब वह पृथु की शरण में पहुंची और तीनों लोकों की सदा से पूजनीया पृथ्वी दोनों हाथ जोड़कर वेनपुत्र पृथु से कहने लगी—'आपको स्त्रीवधरूप अधर्म का काम करना उचित नहीं है। राजन्! (पहले आप यह तो सोचिए कि) मेरे बिना इन प्रजाओं को कहां स्थापित करेंगे?

मयि लोकाः स्थिता राजन् मयेदं धार्यते जगत् ।
मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिव विद्धि तत् ॥५१॥

अर्थ—'राजन्! ये सब लोक मुझ पर ही स्थित हैं, मैं ही इस जगत् को धारण कर रही हूं, (अतः) भूपाल! आप इस सब बात को जान रखें कि मेरा विनाश होने पर ये सब प्रजा भी नष्ट हो जायेंगी।

न त्वमर्हसि मां हन्तुं श्रेयश्चेत् त्वं चिकीर्षसि ।
प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥५२॥

अर्थ—'पृथ्वीपाल! यदि आप प्रजा का कल्याण करना चाहते हैं तो आपको मेरा वध करना उचित नहीं है। साथ ही आप मेरी इस बात को भी सुनिए।

उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा नृप ॥५३॥

अर्थ—'प्रायः सब कार्य ठीक उपाय से आरम्भ किए जाने पर ही सिद्ध होते हैं, अतः राजन्! उस उपाय का विचार कीजिए, जिससे कि आप प्रजा पालन कर सकें।

हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप ।
अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोपं महाद्युते ॥५४॥

अर्थ—'राजन्! आप मेरा वध करके भी प्रजा का पालन एवं धारण न

कर सकेंगे। अतः महाद्युते ! आप अपने क्रोध को शान्त करें, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगी।

अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
सत्त्वेषु पृथिवीपाल न धर्मं त्यक्तुमर्हसि ।।५५।।

अर्थ—'भूपाल ! तिर्यक् योनि के प्राणियों में भी स्त्रियों को अवध्य कहा है, अतः आप धर्म का परित्याग न करें।

एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः ।
कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ।।५६।।

अर्थ—ऐसे ही और बहुत से (अनुनय विनय के) वाक्यों को सुनकर धर्मात्मा और उदार मनवाले राजा पृथु अपने क्रोध को रोककर वसुधा से इस प्रकार बोले।

इति हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने पञ्चमोऽध्याय ।।५।।

पृथुरुवाच—

एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
बहून् वै प्राणिनो लोके भवेत् तस्येह पातकम् ।।१।।

पृथु ने कहा—वसुधे ! जो पुरुष इस संसार में अपने या पराये किसी भी एक व्यक्ति के लिए बहुत से जीवों का वध करता है, उसे ही यहां पाप लगता है।

सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे ।
तस्मिन् नास्ति हते भद्रे पातकं चोपपातकम् ।।२।।

अर्थ—भद्रे ! जिस पापी व्यक्ति के मारे जाने से बहुत से प्राणियों को सुख मिलता हो, उसको मारने से न तो पाप लगता है और न ही उपपतक ही।

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः ।।३।।

अर्थ—जहां दुष्टता का व्यवहार करनेवाले एक व्यक्ति का वध करने से बहुत से मनुष्यों का कल्याण होता हो, वहां उसका वध करना पुण्यप्रद ही है।

सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुन्धरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ।।४।।

अर्थ—अतः वसुन्धरे ! यदि आज तू जगत् का हित करनेवाले मेरे वचन को नहीं मानती है तो मैं प्रजा के हित के लिए तेरा अवश्य वध कर डालूंगा।

त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता चिरम् ।।५।।

अर्थ—तू आज मेरे शासन से पराङ्मुख हो रही है। अतः आज तुझे बाण से मारकर अपने देह को ही फैलाकर मैं उस पर प्रजा को धारण करूंगा।

सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे।
संजीवय प्रजाः सर्वाः समर्था ह्यसि धारणे ॥६॥

अर्थ—अतएव धर्मधारियों में श्रेष्ठ देवि! तू मेरे शासन को मानकर सारी प्रजा को जीवित रख, क्योंकि तू प्रजा को धारण करने—जीवित रखने में समर्थ है।

दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम्।
नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥७॥

अर्थ—साथ ही तू मेरी पुत्री बन जा, तब मैं तेरे वध के लिए उठाए हुए इस भयंकर दीखनेवाले बाण को रोक लूंगा।

पृथिव्युवाच—

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः।
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्धयन्त्युपक्रमाः ॥८॥

पृथ्वी ने कहा—वीर! मैं निस्सन्देह यह सब कुछ करूंगी, परन्तु ठीक उपाय से आरम्भ करने पर ही सब कार्य सिद्ध होते हैं।

उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा इमाः।
वत्सं तु मम सम्पश्य क्षरेयं येन वत्सला ॥९॥

अर्थ—अतः आप उस उपाय को देखिए या ढूंढ़ निकालिए, जिससे आप इन प्रजाओं को पुष्ट करके धारण कर सकें। (इसकी युक्ति मैं बताती हूं) आप मेरे लिए एक बछड़े की खोज कीजिए, जिससे मैं (स्नेह से) पेन्हाकर दूध दूं।

समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर।
यथा निस्यन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ॥१०॥

अर्थ—धर्मधारियों में श्रेष्ठ! आप मुझे सर्वत्र सम (चौरस) कीजिए, जिससे कि मेरा झरता हुआ दूध सर्वत्र (व्याप्त) हो जाय।

वैशम्पायन उवाच—

तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥११॥

वैशम्पायनजी ने कहा—जनमेजय! तब वेनपुत्र पृथु ने धनुष के कोने से

सैकड़ों और सहस्रों पर्वतों को उठाकर (ईंटों की दीवार के समान) खड़ा कर दिया, इससे पर्वत बड़े हो गये।

इत्थं वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद् वसुन्धरा ॥१२॥

अर्थ—इस प्रकार वेनपुत्र राजा पृथु ने पृथ्वी को सम (चौरस) कर दिया। पिछले मन्वन्तरों में यह पृथ्वी ऊंची-नीची थी।

स्वभावेनाभवन् ह्यस्याः समानि विषमाणि च।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल ॥१३॥

अर्थ—पहले चाक्षुष मन्वन्तर में इस पृथ्वी के प्रदेश स्वभावतः ऊंचे-नीचे थे।

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत् ॥१४॥

अर्थ—पहले सर्ग में पृथ्वी के विषम होने के कारण नगर और ग्रामों का विभाग नहीं हुआ था।

न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः।
नैव सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः ॥१५॥

अर्थ—उस समय न किसी प्रकार का धान्य होता था, न गोरक्षा होती थी और न खेती होती थी तथा न सत्य एवं मिथ्या से मिला हुआ (वाणिज्य) होता था, उस समय न लोभ था न मत्सर।

वैवस्वतेऽन्तरे चास्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते।
वैन्यात् प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥१६॥

अर्थ—राजेन्द्र! इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर वेनपुत्र पृथु के समय से ही इन सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है।

यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीदिहानघ।
तत्र तत्र प्रजाः सर्वाः संवासं समरोचयन् ॥१७॥

अर्थ—निष्पाप नरेश! जहां-जहां यह भूमि सम हो गयी, वहां प्रजा ने रहना पसंद किया।

आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत् तदा।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥१८॥

अर्थ—हमने ऐसा सुना है कि (वेनपुत्र पृथु द्वारा भूमिका दोहन होने से) पहले प्रजाओं का आहार फल और मूल था तथा वह भी उन्हें बड़ी कठिनता से मिलता था।

संकल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम् ।
स्वपाणौ पुरुषश्रेष्ठ दुदोह पृथिवीं ततः ।
सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥१९॥
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ।

अर्थ पुरुषश्रेष्ठ ! वेनपुत्र प्रतापी पृथु ने प्रभु स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी से सब प्रकार के धान्यों को अपने हाथ में ही दुहा । तात ! उस दिन से सब प्रजा उसी अन्न से आजतक बढ़ रही है ।

ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥२०॥
वत्सः सोमोऽभवत् तेषां दोग्धा चाङ्गिरसः सुतः ।
बृहस्पतिर्महातेजाः पात्रं छन्दांसि भारत ।
क्षीरमासीदनुपमं तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥२१॥

अर्थ—भारत ! सुना है, फिर ऋषियों ने भी भूमि को दुहा था, उस समय सोम उनका बछड़ा हुआ, अङ्गिरा के पुत्र महातेजस्वी बृहस्पति दुहनेवाले बने और छन्द (वेद) पात्र बने थे । तपोमय शाश्वत ब्रह्म अनुपम दुग्ध के रूप में प्रकट हुआ था ।

पुनर्देवगणैः सर्वैः पुरन्दरपुरोगमैः ।
काञ्चनं पात्रमादाय दुग्धेयं श्रूयते मही ॥२२॥

अर्थ—(यह भी) सुना जाता है कि फिर इन्द्र आदि सब देवताओं ने भी सुवर्ण का पात्र लेकर इस पृथ्वी को दुहा था ।

वत्सस्तु मघवानासीद् दोग्धा च सविता प्रभुः ।
क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः ॥२३॥

अर्थ—(उस समय) इन्द्र बछड़ा और भगवान् सूर्य दुहनेवाले बने तथा पुष्टिकारक अमृतरूपी क्षीर प्रकट हुआ, जिससे देवता सदा जीवित रहते हैं ।

पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः ॥२४॥

अर्थ सुना है कि फिर अतुल पराक्रमी पितरों ने भी पृथ्वी को दुहा था, उन्होंने चांदी का पात्र लेकर स्वधा (रूपी दूध) का दोहन किया था ।

यमो वैवस्वतस्तेषामासीद् वत्सः प्रतापवान् ।
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा कालो लोकप्रकालनः ॥२५॥

अर्थ प्रतापी विवस्वान्-पुत्र उनका बछड़ा बने और लोकों का अन्त करने वाला काल-अन्तक उनका दुहनेवाला बना था ।

नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम् ।
अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम ।।२६।।

अर्थ—नरोत्तम ! (फिर यह भी) सुना जाता है कि नागों ने तक्षक को वत्स बनाकर अलाबु (तूम्बी) के पात्र को लेकर विषरूपी दूध दुहा था ।

तेषामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।
नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते ।।२७।।

अर्थ—भरतश्रेष्ठ भूपाल ! उस समय दुहनेवाला नाग ऐरावत था और सर्पों ने प्रतापी धृतराष्ट्र को दुहनेवाला बनाया था ।

तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विषोल्वणाः ।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ।।२८।।

अर्थ—जिनमें स्पष्टरूप से विष झलकता है, ऐसे ये विशाल शरीरवाले सर्प उस विष से अपनी आजीविका चलाते हैं । ये इस विष को खाते हैं और इस विष का प्रयोग कर दूसरा आहार प्राप्त करते हैं तथा ये इस विषरूपी बल का सहारा लेकर इस संसार में अपनी प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं ।

असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हिणीम् ।।२९।।

अर्थ—सुना जाता है कि असुरों ने भी लोहे का पात्र लेकर शत्रुओं को नष्ट करनेवाली माया (रूपी दूध) को इस पृथ्वी से दुहा था ।

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत् तदा ।
ऋत्विग्द्विमूर्द्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ।।३०।।

अर्थ—उस समय प्रह्लाद का पुत्र विरोचन उनका बछड़ा बना था और दैत्यों का ऋत्विक् दो शिरोंवाला महाबली मधु उनका दुहनेवाला था ।

तयैते माययाद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः ।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम् ।।३१ ।

अर्थ— अमित बुद्धिवाले मायावी असुर आजकल भी उसी माया से काम लेते हैं, यह माया ही उनका अपार बल है ।

यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
आमपात्रे महाराज पुरान्तर्द्धानमक्षयम् ।।३२।।

अर्थ—तात ! यह भी सुना जाता है कि इसके बाद उस प्राचीनकाल में यक्षों ने भी पृथ्वी को दुहा था । महाराज ! उन्होंने कच्चे पात्र में अन्तर्धान (गुप्त) होने की अक्षय विद्या को दुहा था ।

वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा ।
दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य यः ॥३३॥

अर्थ—उस समय यक्ष और राक्षसों ने विश्रवा के पुत्र कुबेर को बछड़ा तथा मणिवर के पिता रजतनाभ को दुहनेवाला बनाया था ।

यक्षानुजो महातेजास्त्रिशीर्षः सुमहातपाः ।
तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥३४॥

अर्थ—उन यक्षों के छोटे भाई महातेजस्वी और महातपस्वी रजतनाभ के तीन सिर हैं । इस अन्तर्धान विद्या से वे यक्ष जीविका चलाते हैं, इस प्रकार परमर्षि (व्यासदेव) ने कहा था ।

राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
शावं कपालमादाय प्रजा भोक्तुं नरर्षभ ॥३५॥

अर्थ—नरश्रेष्ठ ! फिर राक्षसों और पिशाचों ने मुर्दे की खोपड़ी लेकर अपनी संतान को तृप्त करने के लिए इस वसुन्धरा को दुहा था ।

दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत् कुरूद्वह ।
वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च ॥३६॥

अर्थ—कुरुवंशधर ! उस समय रजतनाभ उनका दुहनेवाला था और सुमाली उनका बछड़ा था । कौरव्य ! उस समय उन्होंने रक्तरूपी दूध दुहा था ।

तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्चामरोपमाः ।
वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसंघास्तथैव च ॥३७॥

अर्थ—देवताओं की ही भांति यक्ष, राक्षस, पिशाच और भूतों की भी मण्डलियां उस दूध से अपनी-अपनी आजीविका चलाती हैं ।

पद्मपत्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धान् नरर्षभ ॥३८॥

अर्थ—नरर्षभ ! फिर अप्सराओं और गन्धर्वों ने भी चित्ररथ को बछड़ा बनाकर पद्मपत्र में वसुधा से पवित्र गन्धों को दुहा था ।

तेषां च सुरुचिस्त्वासीद् दोग्धा भरतसत्तम ।
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसंनिभः ॥३९॥

अर्थ—भरतसत्तम ! उस समय सूर्य के तुल्य तेजस्वी और अत्यन्त बलवान् महात्मा गन्धर्वराज सुरुचि उनका दुहनेवाला था ।

शैलैश्च श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
औषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥४०॥

अर्थ—राजन् ! सुना जाता है कि पर्वतों ने भी पृथ्वी से मूर्तिमती ओषधियों और नाना प्रकार के रत्नों को दुहा था ।

वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महागिरिः ।
पात्रं तु शैलमेवासीत् तेन शैला विवर्धिताः ॥४१॥

अर्थ—उस समय हिमालय बछड़ा बना था, महागिरि मेरु दुहनेवाला था तथा पत्थर के पात्र की दोहनी बनी थी । उस दूध से पर्वतों की वृद्धि हुई ।

वीरुद्भिः श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
पालाशं पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ॥४२॥

अर्थ—राजन् ! सुना जाता है कि इसके बाद पलाश के पत्ते का पात्र (दोना) लेकर वृक्षों ने भी पृथ्वी का दोहन किया । जल जाने या कट जाने पर जो पुनः अंकुरित होने की शक्ति है, वही उन्हें दूध के रूप में प्राप्त हुई थी ।

दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षोऽभवत् तदा ।
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा ॥४३॥

अर्थ—उस समय खिले हुए साल वृक्ष ने इस पृथ्वी को दुहा था और पाकड़ का वृक्ष बछड़ा बना था । इस प्रकार यह पृथ्वी धात्री-विधात्री (माता के समान सबका धारण-पोषण करनेवाली) तथा पवित्र है ।

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वसस्यप्ररोहिणी ॥४४॥

अर्थ—यह पृथ्वी समस्त चराचर प्राणियों का आश्रय-स्थान और उत्पत्ति-स्थान है । यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु है तथा यही सब प्रकार के सस्यों (अन्न के पौदों) को अंकुरित करनेवाली है ।

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसाभिपरिप्लुता ।
तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥४५॥

अर्थ—पहले यह समुद्र तक की सारी पृथ्वी मधु और कैटभ के मेद (चरबी) से भर गयी थी, इसलिए 'मेदिनी' नाम से विख्यात हुई, अतएव यह देवी ब्रह्मवादियों द्वारा मेदिनी कही जाती है ।

ततोऽभ्युपगमाद् राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भारत ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ।
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा ॥४६॥
सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी ।
एवंप्रभावो वैन्यः स राजासीद् राजसत्तमः ॥४७॥

अर्थ—भरतवंशी राजन् ! फिर वेनपुत्र राजा पृथु के पुत्रीरूप में अङ्गीकार करने पर यह देवी उनकी पुत्री बन गई, इससे यह पृथ्वी कहलाती है। इस पृथ्वी को पृथु ने अनेक भागों में विभक्त एवं शुद्ध किया, इसको अन्न आदि की खान बना दिया और समृद्धिशालिनी बनाकर इसे ग्रामों और नगरों की श्रेणियों से सुशोभित कर दिया। नृपश्रेष्ठ ! महाराज पृथु ऐसे प्रभावशाली थे।

नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः।
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥४८॥
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः।

अर्थ—अतएव सभी प्राणियों को निःसन्देह उनकी पूजा तथा वन्दना करनी चाहिए। वेद-वेदाङ्ग के पारगामी महात्मा ब्राह्मणों को भी (अत्रिकुल में उत्पन्न होने के कारण) ब्रह्मयोनि एवं सनातन पुरुष (विष्णुरूप) पृथु के प्रति निश्चय ही नमस्कार करना चाहिए।

पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमभीप्सुभिः ॥४९॥
आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।

अर्थ—पृथ्वी के स्वामित्व को चाहनेवाले महाभाग्यवान् राजाओं को भी आदि राजा वेनपुत्र प्रतापी पृथु को प्रणाम करना चाहिए।

योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि।
पृथुरेव नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥५०॥

अर्थ—जो पराक्रमी राजा युद्ध में विजय चाहते हों उनको भी योद्धाओं में अग्रणी राजा पृथु को अवश्य प्रणाम करना चाहिए।

यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम्।
स घोररूपान् संग्रामान् क्षेमी तरति कीर्तिमान् ॥५१॥

अर्थ—जो योद्धा राजा पृथु का कीर्तन करके युद्ध में जाता है, वह भयङ्कर संग्राम को कुशलमापूर्वक तर जाता (उसमें विजय प्राप्त करता) और यशस्वी होता है।

वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैः पण्यवृत्तिमनुष्ठितैः।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥५२॥

अर्थ—वाणिज्य आदि से आजीविका चलानेवाले धनवान् वैश्यों को भी चाहिए कि वे वृत्ति (आजीविका) प्रदान करनेवाले महायशस्वी पृथु को अवश्य प्रणाम करें।

तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः।
आदिराजो नमस्कार्यः श्रेयः परमभीप्सुभिः ॥५३॥

अर्थ—इसी प्रकार परम कल्याण चाहनेवाले एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णों की सेवा में परायण रहनेवाले पवित्र शूद्रों को भी आदि राजा पृथु को प्रणाम करना चाहिए।

एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च।
पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि ते ॥५४॥

अर्थ—मैंने तुझसे इन बछड़ों का, पात्रों का, दुहनेवालों का और दुग्धों का वर्णन कर दिया। अब मैं तुमसे और क्या कहूं।

य इदं शृणुयान्नित्यं पृथोश्चरितमादितः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदते सुचिरं भुवि ॥५५॥

अर्थ--जो पुरुष (प्रत्येक कल्प में होनेवाले अतएव) नित्य इस पृथु-चरित्र को आदि से (अन्त तक) सुनता है, वह पुरुष पुत्र-पौत्रों के साथ इस पृथ्वी पर चिर-काल तक आनन्द करता है।

इति हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने षष्ठोऽध्याय ॥६॥

—o—o—

तत्सर्वं क्रमयोगेन कालसंख्याविभागवित्।
सहस्रयुगसंख्यानं कृत्वा दिवसमीश्वरः ॥४१॥
रात्रिं युगसहस्रान्तां कृत्वा च भगवान् विभुः।
संहरत्यथ भूतानि सृजते च पुनः पुनः ॥४२॥

अर्थ—काल की संख्या का विभाग करने में चतुर वे सर्वसमर्थ भगवान् परमात्मा क्रमानुसार सहस्र युगों की संख्यावाले दिन और (इसी प्रकार) सहस्र चतुर्युगियों की रात्रि को बनाकर प्राणियों की बारम्बार रचना और संहार करते रहते हैं।

व्यक्ताव्यक्तो महादेवो हरिर्नारायणः प्रभुः।
तस्य ते कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥४३॥
विसर्गं भरतश्रेष्ठ साम्प्रतस्य महाद्युते।
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम् ॥४४॥
यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः।
सर्वासुरविनाशाय सर्वलोकहिताय च ॥४५॥

अर्थ—महादेव श्रीहरिनारायण प्रभु ही स्थूल-सूक्ष्म-रूप (से सर्वत्र विराजमान) हैं। महाद्युते ! वर्तमान वैवस्वत मनु भी उनके ही अंश हैं। वृष्णिवंश के प्रसंग से मैं उनकी पुरातन सृष्टि का वर्णन करूंगा। भरतश्रेष्ठ ! वे परमात्मा और प्रभु श्रीहरि सारे असुरों का विनाश तथा सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने के लिए इसी वृष्णिवंश में उत्पन्न हुए थे।

इति हरिवंशे मन्वन्तरगणनायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

४. सूर्य (विवस्वत) चरितम्,

वैशम्पायन उवाच—

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम।
तस्य भार्याभवत् संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुदमन ! कश्यप जी से दक्ष की पुत्री में विवस्वान् उत्पन्न हुए और त्वष्टा की पुत्री संज्ञादेवी उन विवस्वान् (सूर्य) की भार्या हुई।

सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी।
सा वै भार्या भगवती मार्तण्डस्य महात्मनः ॥२॥

अर्थ—महात्मा मार्तण्ड की वह पवित्र अन्तःकरणवाली भार्या भगवती संज्ञा तीनों लोकों में सुरेणु के नाम से (भी) प्रसिद्ध है।

भर्तृरूपेण नातुष्यद् रूपयौवनशालिनी।
संज्ञा नाम सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता ॥३॥

अर्थ—वह रूप यौवनशालिनी संज्ञा अपने पति सूर्यदेव के मण्डल के तीव्र तप, तेज एवं दीप्ति के कारण प्रसन्न नहीं रहती थी।

आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा।
गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥४॥

अर्थ—उस संज्ञा का रूप सूर्यमण्डल के तेज से अंगों के संतप्त होने के कारण (झुलस-सा गया। अतएव सूर्य उसको) बहुत अच्छे नहीं लगते थे।

न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत।
अज्ञानात् कश्यपस्तस्मान्मार्तण्ड इति चोच्यते ॥५॥

अर्थ—(अदिति के) अज्ञान में पड़ने पर कश्यपजी ने स्नेहपूर्वक कहा था कि यह मरा नहीं है, किन्तु अण्ड (गर्भ) में स्थित है, इसलिये तबसे सूर्य 'मार्तण्ड' कहे जाते हैं।

तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः।
येनातितापयामास त्रीँल्लोकान् कश्यपात्मजः ॥६॥

अर्थ—तात ! (कश्यप के माहात्म्य के कारण जीवित हुए) विवस्वान् में सर्वदा अधिक तेज रहता है। उसी तेज से कश्यप जी के पुत्र सूर्य तीनों लोकों को तपाते रहते हैं।

त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥

अर्थ—कुरुवंशी राजन् ! तपानेवालों में श्रेष्ठ आदित्य ने संज्ञा के गर्भ से दो प्रजापति और एक कन्या—इन तीन संतानों को उत्पन्न किया।

मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः।
यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः ॥८॥

अर्थ—उनमें एक प्रजापति तो विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र वैवस्वत मनु थे और दूसरे प्रजापति श्राद्धदेव यम थे। इस तरह यम तथा यमुना नामक दो जुड़वीं सन्तान हुई थी।

सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः।
असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः ॥९॥

अर्थ—तदनन्तर संज्ञा ने सूर्य की कठिनता से सहने योग्य तेजस्वी रूप को देखकर उनके तेज को न सह सकने के कारण अपनी छाया को ही अपने समान नाम और रूपवाली बनाकर तैयार कर दिया।

मायामयी तु सा संज्ञा तस्याश्छाया समुत्थिता।
प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां नरेश्वर ॥१०॥
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते।
स्थितास्मि तव निदेशे शाधि मां वरवर्णिनि ॥११॥

अर्थ—वह मायामयी संज्ञा संज्ञा की छाया से उत्पन्न हुई थी। नरेश्वर ! वह छाया संज्ञा को प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोली—शुचिस्मिते ! बताओ, मुझे क्या करना चाहिए ? श्रेष्ठ अङ्गोंवाली ! मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूंगी, तुम मुझे आज्ञा दो'।

संज्ञोवाच—

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः।
त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया ॥१२॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा।
सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित् ॥१३॥

अर्थ—संज्ञा ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो ! मैं अब अपने पिता के घर जा रही हूं, तुम मेरे इस घर में शान्त होकर रहो। ये मेरे दोनों पुत्र हैं और यह एक सुमध्यमा (सुन्दर कटिवाली) कन्या है। इसका तू ध्यान रखना और इस रहस्य को भगवान् सूर्य से कभी न बतलाना।

छायोवाच—

आ कचग्रहणाद् देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥१४॥

अर्थ—छाया ने कहा—देवि ! मेरे बाल पकड़े जाने तथा शाप देने की नौबत आने के पूर्व मैं यह बात किसी प्रकार भी न कहूंगी। आप सुखपूर्वक (अपने पिता के यहां) जायें।

वैशम्पायन उवाच—

समादिश्य सवर्णां तां तथेत्युक्ता च सा तया।
त्वष्टुः समीपमगमद् व्रीडितेव तपस्विनी ॥१५॥
पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा।
भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥१६॥
आगच्छद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता।
कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥१७॥

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं—अपने समान नाम रूपवाली छाया को आज्ञा देकर और उससे 'तथास्तु' कहे जाने पर वह तपस्विनी लज्जित सी होती हुई अपने पिता त्वष्टा के यहां चली गयी। पिता के पास पहुंचने पर उसके पिता ने उसे बड़े जोरों से डाटा तथा उससे बार-बार पति के पास ही जाने के लिए कहा। तब निन्दित कर्मों से दूर रहनेवाली वह संज्ञा अपने रूप को बदलकर घोड़ी का रूप धारण करके उत्तर कुरु के देशों में जाकर घास चरने लगी।

द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन्।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥१८॥

अर्थ—उस दूसरी संज्ञा को भी संज्ञा ही समझते हुए सूर्य देवता ने उसके गर्भ से अपने ही समान पुत्र उत्पन्न किया।

पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः।
सवर्णत्वान्मनोर्भूयः सावर्ण इति चोक्तवान् ॥१९॥

अर्थ—तात ! ये अपने बड़े भाई मनु के समान वर्ण तथा शक्तिवाले थे, अतएव सावर्ण कहलाये।

मनुरेवाभवन्नाम्मा सावर्ण इति चोच्यते।
द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः ॥२०॥

अर्थ—वे ही मनु हुए, जिनका नाम सावर्ण मनु है। उस (छाया) से जो दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उसको तुम शनैश्चर समझो।

संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै ॥२१॥
मनुस्तस्याक्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे।

अर्थ—वह पार्थिवी संज्ञा अपने पुत्र से तो अधिक स्नेह करती थी, परन्तु वैसा स्नेह उनसे पहले की सन्तानों से नहीं करती थी। मनु ने तो इस बात को सह लिया, परन्तु यम इसे न सह सके।

तां स रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
पदा संतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः ॥२२॥

अर्थ—वे वैवस्वत यम बालस्वभाव एवं रोष के कारण तथा होनहार (भावी) के वशीभूत हो संज्ञा को पैर दिखाकर डाटने लगे।

तं शशाप ततः क्रोधात् सावर्णजननी नृप।
चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता ॥२३॥

अर्थ—राजन्! इस पर सावर्ण की माता ने अतिदुःखित हो कोप में भर कर उन्हें शाप दिया कि 'तुम्हारा यह चरण गिर जाय'।

यमस्तु तत् पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः ॥२४॥

अर्थ—छाया संज्ञा के उस वाक्ल से पीड़ित और शाप के भय से अत्यन्त व्याकुल होकर यम ने हाथ जोड़कर पिता से वह सब बात कह दी।

शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा।
मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥२५॥

अर्थ—वे पिता से बोले—'मुझे यह शाप न लगे। (देखिये) माता को तो सब पुत्रों के प्रति समान रूप से स्नेहपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

सेयमस्मानपाहाय यवीयांसं बुभूषति।
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ॥२६॥
बाल्याद्वा यदि वा मोहात् तद्भवान् क्षन्तुमर्हति।

अर्थ—'पर यह हम सबको छोड़कर सबसे छोटे से ही स्नेह का व्यवहार करती है। सो मैंने उसके ऊपर पैर उठाया ही था, शरीर पर मारा नहीं था। मैंने यह काम लड़कपन से किया हो अथवा मोहवश, परन्तु आप मुझे क्षमा कर दें।

यस्मात् ते पूजनीयाहं लंघितास्मि त्वया सुत ॥२७॥
तस्मात् तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः।
अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत् ॥२८॥

अर्थ—'(संज्ञा ने कहा—) बेटा! मैं तुम्हारी पूजनीया हूं, तो भी तुमने मेरा तिरस्कार किया है, अतः तुम्हारा यह पैर निस्सन्देह गिर जायगा।' सन्तान तो कुसन्तान हो सकती है, परन्तु माता कुमाता नहीं हो सकती।

शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥२९॥

अर्थ—'लोकेश्वर ! माता ने मुझे शाप दे दिया है, परन्तु तपनेवालों में श्रेष्ठ गोपते ! आपकी कृपा से मेरा पैर न गिरे (ऐसी कृपा कीजिए)'।

विवस्वानुवाच—

असंशयं पुत्र महद् भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥३०॥

अर्थ—सूर्य ने कहा—पुत्र ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी हो, तुमको जो क्रोध चढ़ आया इसमें निस्सन्देह कोई बड़ा भारी कारण होगा।

न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव।
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ॥३१॥
तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्वं प्राप्स्यसे सुखम्।
कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति ॥३२॥
शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि।

अर्थ—मैं तुम्हारी माता के वचन को (सर्वथा तो) लौटा नहीं सकता। (पर) महाप्राज्ञ ! कीड़े तुम्हारे चरण में से मांस लेकर पृथ्वीतल पर चले जायेंगे, तब तुम्हें सुख मिलेगा। इस प्रकार तुम्हारी माता का कहा हुआ वचन (भी) सत्य हो जायेगा और शाप का परिहार होने से तुम्हारी भी रक्षा हो जायेगी।

आदित्योऽथाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै ॥३३॥
तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेहः क्रियतेऽति पुनः पुनः।
सा तत्परिहसन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते ॥३४॥

अर्थ—फिर सूर्य ने संज्ञा से कहा—'सभी पुत्र बराबर हैं, तो भी तू (किसी से कम और किसी से) अधिक स्नेह क्यों करती है।' सूर्य ने यह बात बार-बार कही, परन्तु वह हंसती ही रह गयी और उसने सूर्य से कुछ भी न कहा।

आत्मानं सुसमाधाय योगात् तथ्यमपश्यत।
तां शप्तुकामो भगवान् नाशाय कुरुनन्दन ॥३५॥
मूर्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च।
सा तत् सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ॥३६॥

अर्थ—कुरुनन्दन ! भगवान् सूर्य ने अपने चित्त को एकाग्र करके योग के द्वारा सत्य बात जान ली और शाप द्वारा उसका विनाश करने के लिए उसके

केश पकड़ लिए। तब अपनी शपथ के उतर जाने पर छाया ने सूर्य नारायण से सारी बात ज्यों-की त्यों बतला दी।

विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्।
त्वष्टा तु तं यथा न्यायमर्चयित्वा विभावसुम्।
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा ॥३७॥

अर्थ—सूर्य नारायण इस बात को सुनते ही क्रोध में भरकर त्वष्टा के पास पहुंचे। त्वष्टा ने विधिपूर्वक उनकी पूजा करके जब देखा कि ये तो रोष से मुझे भस्म ही करना चाहते हैं, तब उन्होने सूर्यनारायण को इस प्रकार शान्त करना—समझाना आरम्भ किया।

त्वष्टोवाच—

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते।
असहन्ती च तत् संज्ञा वने चरति शाद्वले ॥३८॥

अर्थ—त्वष्टा ने कहा—आदित्य! आपका यह अति तेजस्वी रूप अच्छा नहीं लगता। इसको न सह सकने के कारण ही संज्ञा हरी घासवाले वन में (हरी घासों को) चर रही है।

द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्।
नित्यं तपस्यभिरतां वडवारूपधारिणीम् ॥३९॥
पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम्।
हस्तिहस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव।
श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते ॥४०॥

अर्थ—किरणों के स्वामी! आज आप हाथी के सूंड से खींचे जाने के कारण पद्मिनी के समान व्याकुल हुई, शुद्ध आचरणवाली और योग के बल से सम्पन्न अतएव योग से घोड़ी का रूप धारण करके सदा तप करती हुई, पत्तों का आहार करनेवाली, दुबली, दीन, जटाधारिणी और ब्रह्मचारिणी अपनी उस प्रशंसनीया भार्या को देखेंगे।

अनुकूलं तु देवेश यदि स्यान्मम तन्मतम्।
रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिंदम ॥४१॥

अर्थ—देवेश! यदि आपको मेरी बात ठीक लगे तो शत्रुदमन! मैं आज आपके रूप को मनोहर बना दूं।

रूपं विवस्वतश्चासीत् तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै।
तेनासौ सम्भृतो देवरूपेण तु विभावसुः ॥४२॥

अर्थ—पहले सूर्य का रूप तिरछा, ऊंचा और सब ओर से एक-सा था। उस रूप से सम्पन्न होने के कारण ही वे विभावसु कहे जाते हैं।

तस्मात् त्वष्टुः स वै वाक्यं बहु मेने प्रजापतिः।
समनुज्ञातवांश्चैव त्वष्टारं रूपसिद्धये ॥४३॥

अर्थ· इसलिए उन प्रजापति सूर्यनारायण ने त्वष्टा की बात को बहुत अच्छा समझा और उन्होंने अपना रूप ठीक करने के लिए त्वष्टा को अनुमति दे दी।

ततोऽभ्युपगमात् त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः।
भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातयामास भारत ॥४४॥

अर्थ—भारत ! तब त्वष्टा ने मार्तण्ड (सूर्य) के समीप जाकर उनको सान पर चढ़ाकर उनके तेज को खरादना आरम्भ कर दिया।

ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहृतेन वै।
कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥४५॥

अर्थ—इस प्रकार तेज के छिल जाने से उनका रूप खिल उठा और उनका रूप रम्यातिरम्य होकर अधिक सुशोभित होने लगा।

मुखे निर्वर्तितं रूपं तस्य देवस्य गोपतेः।
ततः प्रभृति देवस्य मुखमासीत् तु लोहितम्।
मुखरागं तु यत्पूर्वं मार्तण्डस्य मुखच्युतम् ॥४६॥
आदित्या द्वादशैवेह सम्भूता मुखसम्भवाः।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥४७॥
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः ॥४८॥

अर्थ—तबसे किरणों के स्वामी भगवन् सूर्य के मुख का रूप बदल गया। उस समय से उनका मुख रक्तवर्ण का हो गया। उन मार्तण्ड के मुख से जो मुखराग छूटा था, उससे बारह आदित्य उत्पन्न हुए। उनके मुख से धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, दसवें पर्जन्य, त्वष्टा, बारहवें विष्णु उत्पन्न हुए, जो अन्त में प्रकट होने के कारण सबसे छोटे होकर भी गुणों में सर्वश्रेष्ठ थे।

हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान् स्वदेहजान्।
गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्भास्वता मुकुटेन च ॥४९॥

अर्थ—गन्ध, पुष्प अलंकार और प्रकाशमान मुकुटों से सुशोभित अपने शरीर से उत्पन्न हुए उन आदित्यों को देखकर भगवान् सूर्य बड़े प्रसन्न हुए।

एवं सम्पूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह।
गच्छ देव निजां भार्यां कुरूंश्चरति सोत्तरान् ।।५०।।
वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले।

अर्थ—इस प्रकार सूर्यनारायण का पूजन कर त्वष्टा ने उनसे कहा—'देव ! अब आप अपनी पत्नी के पास जाइये। वह उत्तर कुरु (देशों) में भ्रमण कर रही है और हरी घास से भरे हुए वन में घोड़ी का रूप धारण करके विचर रही है'।

स तथा रूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया ।।५१।।
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां ततः।
अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ।।५२।।
वडवावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयाम्।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ।।५३।।
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकायां विवस्वतः ।।५४।।

अर्थ—तब सूर्यनारायण ने भी अपनी पत्नी के रूप के अनुसार घोड़े के समान विचरण करने के लिये घोड़े का ही रूप धारण कर लिया। उस समय सूर्य ने ध्यान से देखा तो उन्हें तेज और नियम के कारण सब भूतों से अदृश्य घोड़ी का रूप धारण करके किसी ओर से भी भय की आशंका न कर निर्भय हो विचरती हुई अपनी भार्या (संज्ञा) दीख पड़ी। राजन् ! फिर तो घोड़े के रूप में भगवान् सूर्य उसके मुख के समीप पहुंचे। पर वह पर-पुरुष की आशंका से मैथुन के प्रतिकूल चेष्टा करने लगी और सूर्य के वीर्य को उसने अपनी नाक पर से गिरा दिया।

देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ।।५५।।

अर्थ—उससे वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवता उत्पन्न हुए। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नाम से प्रसिद्ध हैं।

मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः।
संज्ञायां जनयामास वडवायां स भारत।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ।।५६।।

अर्थ—भारत ! ये दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र हैं। इन्हें सूर्य भगवान् ने अश्वारूपा संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न किया था। तदनन्तर सूर्य ने उसे अपने मनोहर रूप में दर्शन दिया।

सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय।
यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥५७॥

अर्थ—जनमेजय ! तब वह स्वामी को देखकर बड़ी सन्तुष्ट हुई। इधर यम अपने उस कर्म से मन ही मन बड़े दुःखित रहते थे।

धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इव प्रजाः।
स लेभे कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥५८॥
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत् सावर्णः सतपोधनः ॥५९॥

अर्थ—अतएव वे अपने धर्मराजत्व के अनुरूप ही धर्मयुक्त आचरण से प्रजाओं को प्रसन्न रखने लगे। उस श्रेष्ठ कर्म के कारण उन महाकान्तिमान् धर्मराज को पितरों का आधिपत्य और लोकपाल का पद मिला तथा वे तपस्या के धनी प्रजापति सावर्ण मनु हुए।

भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेऽन्तरे।
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः ॥६०॥

अर्थ-- वे सर्वसमर्थ सावर्ण भविष्य के (आठवें) मन्वन्तर के मनु होंगे। वे आज भी सुमेरुपर्वत के शिखर पर घोर तप कर रहे हैं।

भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान्।
नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्वर्वैद्यौ तौ बभूवतुः ॥६१॥

अर्थ—इनके भाई शनैश्वर ग्रह बन गये और जिन नासत्यों का वर्णन किया है, वे स्वर्ग के वैद्य बन गये।

सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शान्तिदोऽभवत्।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥६२॥
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया।

अर्थ—वे उपासना करनेवाले के घोड़ों को शान्ति देते हैं। उसी तेज (की छीलन) से त्वष्टा ने विष्णु भगवान् का (सुदर्शन) चक्र बनाया। वह दानवों के अन्त करने की इच्छा से बनाया गया चक्र युद्ध में किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं जाता।

यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ।।६३।।
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ।।६४।।

अर्थ—उन दोनों में छोटी जो यमी नाम की यशस्विनी कन्या थी, वह नदियों में श्रेष्ठ, लोकों में पवित्र करनेवाली यमुना हुई। मनु संसार में मनु कहलाते हैं और सावर्ण भी कहलाते हैं।

द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः ।
ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्वलोकाभिपूजितम् ।।६५।।

अर्थ— उनके दूसरे पुत्र और मनु के भ्राता जो शनैश्चर हैं, उन्होंने सब लोकों से पूजित ग्रह का पद प्राप्त किया।

य इदं जन्म देवानां शृणुयाद् वापि धारयेत् ।
आपद्भ्यः स विमुच्येत प्राप्नुयाच्च महद् यशः ।।६६।।

अर्थ—जो मनुष्य देवताओं के जन्म (की इस कथा) को सुनता है अथवा मन में धारण करता है, वह आपत्तियों से छूट जाता और बड़ा भारी यश पाता है।

इति हरिवंशे वैवस्वतोत्पत्तौ नवमोऽध्यायः ।।९।।

५. वैवस्वतमनुवंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः ।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ।।१।।
नरिष्यंश्च तथा प्रांशुर्नाभागारिष्टसप्तमाः ।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ ।।२।।

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं-भरतर्षभ ! वैवस्वत मनु के उनके ही समान इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, सातवें नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र—ये नौ पुत्र हुए।

अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ।
मित्रावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशाम्पते ।।३।।
अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत ।
तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ।।४।।

मित्रावरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत् ।
आहुत्यां हूयमानायां देवगन्धर्वमानुषाः ॥५॥
तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥६॥

अर्थ—प्रजापालक तात ! इन नौ पुत्रों के उत्पन्न होने से पहिले प्रजापति मनु ने पुत्र की कामना से मित्रावरुण की इष्टि (यज्ञ) की थी। भारत ! जब यह इष्टि हो रही थी, उस समय मुनि ने मित्रावरुण के लिये आहुति दी। भरतश्रेष्ठ ! आहुति के सम्पन्न होने पर देवता, गन्धर्व, मनुष्य और तपोधन मुनि परम प्रसन्न हुए (और कहने लगे–) 'अहो ! इसका तपोबल आश्चर्यजनक है और इसका शास्त्रीय ज्ञान भी अद्भुत है !'

तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ॥७॥

अर्थ—उस यज्ञ में दिव्य वस्त्रों को धारण किए हुए, दिव्य आभूषणों से विभूषित और दिव्य शरीरवाली इला नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, ऐसी ख्याति है।

तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ।
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥८॥

अर्थ—राजा मनु ने उस कन्या को 'इला' कहकर पुकारा और कहा— 'भद्रे ! तू मेरे पीछे-पीछे आ।' तब पुत्र की कामनावाले प्रजापति को इला ने यह धर्ममय उत्तर दिया।

इलोवाच—

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतां वर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हतोऽवधीत् ॥९॥

अर्थ—इला ने कहा—वक्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं धर्म की हत्या नहीं कर सकती, अन्यथा धर्म मुझे भी मार डालेगा। मैं मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूं. अतः उनके ही पास जाऊंगी।

सैवमुक्त्वा मनुं देव मित्रावरुणयोरिला ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥

अर्थ—श्रेष्ठ नितम्बोंवाली इला राजा मनु से इस प्रकार कहकर मित्रावरुण के पास गई और दोनों हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहने लगी।

अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।
मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति ॥११॥

अर्थ—'देवताओं ! मैं आप दोनों के अंश से उत्पन्न हुई हूं, अतः आप लोग बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूं ? मनु जी ने मुझसे कहा है कि तू मेरे पीछे-पीछे आ' ।

तां तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुर्यन्निबोध तत् ॥१२॥

अर्थ—राजन् ! धर्मपरायणा साध्वी इला के इस प्रकार कहने पर मित्र और वरुण ने उससे जो कुछ कहा था, उसे सुनो ।

अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥१३॥

अर्थ—'सुन्दर कटिभागवाली सुन्दरी ! तेरे इस धर्म, विनय, इन्द्रियसंयम और सत्य से हम दोनों तुम पर बहुत प्रसन्न हैं ।

आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि ।
मनोर्वंशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१४॥

अर्थ—'महाभागे ! तू हमारी पुत्रीरूप से प्रसिद्ध होगी और मनु का वंशधर पुत्र भी तू ही होगी ।

सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने ।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः ॥१५॥

अर्थ—'शोभने ! (उस समय) तू मनु के वंश को बढ़ानेवाले, जगत् में प्रिय, धर्मशील सुद्युम्न के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगी ।'

निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकम् ।
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ॥१६॥

अर्थ—इस को सुनकर वह अपने पिता मनु के पास वापस जारही थी, इसी बीच में अवसर देखकर बुध ने उसे सहवास के लिए आमन्त्रित किया ।

सोमपुत्राद् बुधाद् राजंस्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः ।
जनयित्वा सुतं सा तमिला सुद्युम्नतां गता ॥१७॥

अर्थ—राजन् ! चन्द्रमा के पुत्र बुध द्वारा उस इला के गर्भ से पुरुरवा उत्पन्न हुए और उस पुत्र को उत्पन्न करके वह इला सुद्युम्न हो गयी ।

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥१८॥

अर्थ—भारत ! सुद्युम्न के उत्कल, गय और विनताश्व नामक तीन परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए।

उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमा।
दिक् पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गया पुरी ॥१९॥

अर्थ—राजन् ! उत्कल की राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई। विनताश्व को पश्चिम दिशा का राज्य मिला और भरतश्रेष्ठ ! गय की राजधानी पूर्व दिशा में गया नाम की पुरी हुई।

प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिंदम।
दशधा तद्दधत्क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ॥२०॥

अर्थ—तात ! शत्रुसूदन ! मनु के सूर्य में प्रवेश कर जाने पर उनके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों ने पृथ्वी को दस भागों में बांट लिया।

यूपाङ्किता वसुमती यस्येयं सवनाकरा।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२१॥

अर्थ—मनु के बड़े पुत्र इक्ष्वाकु को मध्यदेश का राज्य मिला। यज्ञस्तम्भों से अलंकृत एवं वन और खानों सहित यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकु की ही है।

कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैनं गुणमवाप्तवान्।
वसिष्ठवचनाच्चासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२२॥
प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरूद्वह।

अर्थ—सुद्युम्न कन्याभाव के कारण इस सौभाग्यपूर्ण पद को न पा सके। परन्तु कुरूद्वह ! वशिष्ठजी के वचन से महात्मा धर्मराज सुद्युम्न को भी प्रतिष्ठानपुर (झूंसी - प्रयाग) का राज्य मिल गया था।

तत्पुरूरवसे प्रादाद् राज्यं प्राप्य महायशाः ॥२३॥
सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम्।

अर्थ—महायशस्वी सुद्युम्न ने राज्य पाने के बाद प्रतिष्ठान में (कुछ दिन तक) राज्य किया, फिर उन्होंने अपना राज्य पुरूरवा को दे दिया।

उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।
धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥२४॥

अर्थ—उत्कल के तीन पुत्र थे, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे। उनके नाम थे—धृष्टक, अम्बरीष और दण्ड।

यश्चकार महात्मा वै दण्डकारण्यमुत्तमम्।
वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् ॥२५॥

तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात् प्रमुच्यते ।

अर्थ—महात्मा दण्ड ने दण्डकारण्य नामक वन का निर्माण किया, जो तपस्वियों के लिए परमोत्तम (आश्रम) तथा लोक में अत्यन्त विख्यात है । उसमें प्रवेश करते ही मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।

सुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ।।२६।।
मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः ।
धृतवान् य इलेत्येव सुद्युम्नश्चातिविश्रुतः ।।२७।।

अर्थ—भरतवंशी महाराज ! सुद्युम्न कन्यावस्था में ऐल (पुरूरवा) को (और पुरुषावस्था में उत्कल आदि अन्य तीन पुत्रों को) उत्पन्न करके स्वर्ग चले गये । ये सुद्युम्न स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही लक्षणों से संयुक्त हुए थे । इन्होंने इला के रूप में रहने पर गर्भ धारण किया था, फिर ये ही (पुरुषत्व प्राप्त होने पर) सुद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ।

नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत ।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ।।२८।।

अर्थ—भारत ! (मनु के पञ्चम पुत्र) नरिष्यन्त के पुत्र शक हुए और (मनु के द्वितीय पुत्र) नाभाग के पुत्र राजराजेश्वर अम्बरीष हुए ।

धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।।२९।।
सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रान्तः सम्बभूव ह ।
नाभागारिष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः ।।३०।।

अर्थ—(मनु के तृतीय पुत्र) धृष्णु के धार्ष्टक नामक क्षत्रिय हुए । वे रण में ढीठ थे । (मनु के आठवें पुत्र) करूष से कारूष नामवाले युद्धदुर्मद क्षत्रिय हुए । यह हजारों क्षत्रियों का मण्डल परम पराक्रमी था । (मनु के सप्तम पुत्र) नाभागारिष्ट के क्षत्रिय पुत्र वैश्य हो गये थे ।

प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः शर्यातिरिति विश्रुतः ।
नरिष्यतस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ।
शर्यातेर्मिथुनं चासीदानर्तो नाम विश्रुतः ।।३१।।
पुत्रः कन्यासुकन्याख्या या पत्नी च्यवनस्य ह ।
आनर्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युतिः ।।३२।।

अर्थ—(मनु के छठें पुत्र) प्रांशु के एक पुत्र हुआ, वह शर्याति नाम से प्रसिद्ध था । (मनु के पञ्चम पुत्र) नरिष्यन्त का पुत्र दण्डधारी राजा दम हुआ । (मनु के चौथे पुत्र) शर्याति की दो सन्तान उत्पन्न हुईं; उनमें एक तो पुत्र था,

जो आनर्त नाम से प्रसिद्ध हुआ और एक कन्या थी, जिसका नाम सुकन्या था। वह च्यवन ऋषि की पत्नी हुई। आनर्त के रेव नाम का महाकान्तिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ।

आनर्तविषयश्चासीत् पुरी चास्य कुशस्थली।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥३३॥

अर्थ—उसका राज्य आनर्त (जहां आज द्वारका है) देश में था और उसकी पुरी (राजधानी) का नाम कुशस्थली (आज की द्वारकापुरी) था। रेव के पुत्र रैवत हुए, इन्हीं का दूसरा नाम ककुद्मी था। ये धार्मिक थे।

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद् राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्।
स कन्या सहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३४॥
मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो।
आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥३५॥

अर्थ—(रेव के) सौ पुत्रों में ये सबसे ज्येष्ठ थे। कुशस्थली का राज्य पाने के अनन्तर एक दिन ये अपनी कन्या के साथ (ब्रह्मलोक में) गये, वहां ब्रह्माजी के समीप गन्धर्वों का गीत सुनने लगे। राजन्! संगीत सुनते-सुनते ये दो घड़ी वहां ठहरे रहे। इतने ही समय में मानवलोक में अनेक युग बीत गये। तत्पश्चात् ये यादवों से घिरी हुई अपनी पुरी में आये। उस समय तक इनकी युवावस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी।

कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम्।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ॥३६॥

अर्थ—(उस समय उस पुरी में) बहुत से दरवाजे बन गये थे और वासुदेव आदि भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी उस रमणीय पुरी की रक्षा कर रहे थे। यादवों ने उसका नाम बदलकर द्वारवती रख दिया था।

ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिंदम।
कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ॥३७॥
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥३८॥

अर्थ—शत्रुमर्दन! इन सब बातों को यथार्थरीति से जानकर राजा रैवत अपनी रेवती नाम की सुव्रता कन्या को बलदेव जी के हाथ में देकर स्वयं मेरु-पर्वत के शिखर पर चले गये और वहां तपस्या में लग गये। (इधर) धर्मात्मा बलराम जी भी रेवती के साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे।

इति हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोध्यायः ॥१०॥

६. धुन्धुमारचरितम्

जनमेजय उवाच—

कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥१॥

अर्थ—जनमेजय ने पूछा—द्विजोत्तम ! बहुत से युगों का समय बीत जाने पर भी रेवती और ककुद्मी रैवत को बुढ़ापा क्यों नहीं व्याप्त हुआ ?

मेरुं गतस्य वा तस्य शार्यातेः संततिः कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२॥

अर्थ—शर्याति के प्रपौत्र रैवत मेरुपर्वत पर चले गये, तब भी उनकी सन्तान आज तक पृथिवी पर कैसे वर्तमान है ? इस बात को मैं यथार्थ रीति से सुनना चाहता हूं ।

वैशम्पायन उवाच—

न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ ।
ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदानघ ॥३॥

अर्थ—वैशम्पायन जी ने उत्तर दिया—निष्पाप भरतश्रेष्ठ ! ब्रह्मलोक में मृत्यु, भूख-प्यास और बुढ़ापा नहीं होते और वहां ऋतुचक्र भी अपना प्रभाव नहीं दिखाता (वहां तो सदा एक-सी दशा रहती है) ।

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह ।
हता पुण्यजनैस्तात राक्षसैः सा कुशस्थली ॥४॥

अर्थ—तात ! जब रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोक को चले गये, तब यक्षों और राक्षसों ने कुशस्थली को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।

तस्य भ्रातृशतं चासीद् धार्मिकस्य महात्मनः ।
तद् वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम् ॥५॥

अर्थ—धर्मात्मा एवं महात्मा रैवत के सौ भाई थे । वे राक्षसों से हारे नहीं, परन्तु राक्षसों के बार-बार आक्रमण करने के कारण (अनेक) दिशाओं में भाग गये ।

विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै ।
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ॥६॥

अर्थ—राजेन्द्र ! जब उनके सौ भाई भाग गये, तब उस कुल के अन्य क्षत्रिय भी राक्षसों के भय से भागकर जहां-तहां बस गये ।

अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशाम्पते ।
येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः ॥७॥
क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः ।
सर्वशः पर्वतगणान् प्रविष्टाः कुरुनन्दन ॥८॥

अर्थ—प्रजानाथ ! उनका बड़ा भारी वंश जहां-तहां फैल गया । महाराज ! उनके वंश के ही ये धार्मिक क्षत्रिय सब दिशाओं में शार्यात नाम से प्रसिद्ध हैं । भरतश्रेष्ठ कुरुनन्दन ! वे सब क्षत्रिय चारों ओर के पर्वतों की कन्दराओं में प्रविष्ट हो गये थे ।

नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।
करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥९॥

अर्थ—नाभाग और अरिष्ट के पुत्र ये दोनों वैश्य होकर (पुनः) ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गये । करूष के कारूष नामक युद्धदुर्मद क्षत्रिय उत्पन्न हुए ।

प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम् ।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥१०॥
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः ।
वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ ॥११॥

अर्थ—हमने सुना है कि (मनु के छठे पुत्र) प्रांसु के प्रजाति नाम का एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था । जनमेजय ! गुरु की गौ को मारने पर (गुरु के) शाप से पृषध्र शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था । भरतर्षभ ! यहां तक वैवस्वत मनु के नौ पुत्रों का मैंने वर्णन किया ।

क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥१२॥

अर्थ—तात ! मनु के छींकने से इक्ष्वाकु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । उन इक्ष्वाकु के भी सौ पुत्र उत्पन्न हुए । ये सब के सब बड़ी-बड़ी दक्षिणा देनेवाले थे ।

तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ।
प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ॥१३॥

अर्थ—उनमें सबसे बड़ा पुत्र विकुक्षि था । यह विकुक्षि-विशाल कोख (वक्षःस्थल) वाला होने से सर्वथा अयोध्य था, अर्थात् उसके सामने कोई योद्धा ठहर नहीं सकता था । वही परम धार्मिक राजा विकुक्षि अयोध्या का स्वामी हुआ ।

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः ।
उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते ।।१४।।

अर्थ—राजन् ! उसके शकुनि आदि पचास उत्तम पुत्र थे, वे उत्तरापथ देश में रहकर उस देश की रक्षा करते थे ।

चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ।
शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशाम्पते ।।१५।।

अर्थ—जनेश्वर ! उसके शशाद आदि अड़तालीस पुत्र दक्षिण दिशा में रहकर दक्षिण दिशा की रक्षा करते थे ।

इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत् ।
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः । १६।।

अर्थ—महाबली इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध के लिए (अपने पुत्र) विकुक्षि को आज्ञा दी कि तू मृग नामक कन्द विशेष को काटकर श्राद्ध के लिए उसका गूदा ला ।

श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टमकृते श्राद्धकर्मणि ।
भक्षयित्वा शशं तात शशादो मृगयागतः ।।१७।।

अर्थ—परन्तु तात ! विकुक्षि ने श्राद्धकर्म के लिये नियत किए हुए शश (कन्द-विशेष) को श्राद्धपूर्ण होने से पहले ही खाकर उच्छिष्ट कर दिया और शिकार करके वापस लौट आया ।

इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः ।
इक्ष्वाकौ संस्थिते तात शशादः पुरमावसत् ।।१८।।

अर्थ—उस समय इक्ष्वाकु ने वशिष्ठ जी के कहने से शशाद को त्याग दिया । तात ! फिर इक्ष्वाकु के मरने पर शशाद नगर में आया (और राज्य का स्वामी बनकर राज्य करने लगा) ।

शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान् ।।१९।।
पूर्वं देवासुरे युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृतः ।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः ।।२०।।

अर्थ—शशाद के ककुत्स्थ नामवाला बीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे पहले देवासुर-संग्राम में इन्द्र ने स्मरण किया था । उस समय उसने इन्द्र को बैल बनाकर उनके ककुद् (पीठ) पर बैठकर असुरों को जीता था, इसलिए इसका नाम ककुत्स्थ हुआ । ककुत्स्थ के अनेना नामक पुत्र हुआ और अनेना का पुत्र पृथु हुआ ।

विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत ।
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मजः ॥२१॥

अर्थ - पृथु के विष्टराश्व और विष्टराश्व के आर्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, आर्द्र के युवनाश्व और युवनाश्व का पुत्र श्राव हुआ ।

जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ।
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥२२॥

अर्थ—वह श्रावस्तक नाम धारण करके राजसिंहासन पर बैठा, उसी ने श्रावस्तीपुरी बसायी । श्रावस्त का पुत्र महायशस्वी बृहदश्व हुआ ।

कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः ।
यः स धुन्धुवधाद् राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥२३॥

अर्थ—उसका पुत्र परमधार्मिक राजा कुवलाश्व हुआ, धुन्धु-नामक दैत्य को मारने के कारण वह राजा 'धुन्धुमार' नाम से भी प्रसिद्ध हुआ ।

जनमेजय उवाच—

धुन्धोर्वधमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
यदर्थं कुवलाश्वः सन् धुन्धुमारत्वमागतः ॥२४॥

अर्थ—जनमेजय ने कहा ब्रह्मन् ! मैं धुन्धु के वध की उस कथा को यथार्थ रीति से सुनाना चाहता हूं, जिससे कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार पड़ गया था ।

वैशम्पायन उवाच—

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥२५॥

अर्थ—वैशम्पायनजी बोले—कुवलाश्व के धनुर्धारियों में श्रेष्ठ सौ पुत्र थे । वे सभी समस्त विद्याओं में निपुण, बलवान् तथा दुर्दम्य थे ।

बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
कुवलाश्वं सुतं राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥२६॥

अर्थ—वे सभी धार्मिक पुत्र यज्ञ करके बहुत-सी दक्षिणा दिया करते थे । बृहदश्व ने अपने ज्येष्ठ पुत्र कुवलाश्व को राजसिंहासन पर बैठाया ।

पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा समाविशत् ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥२७॥

अर्थ—अपनी राज्यलक्ष्मी को पुत्र के अधीन करके राजा बृहदश्व स्वयं वन को चले । उस समय ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने उन्हें वन में जाने से रोका ।

उतङ्क उवाच—

भवता रक्षणं कार्यं तत् तावत् कर्तुमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव ।।२८।।

अर्थ—उतङ्क ऋषि ने कहा—राजन् ! हमारी रक्षा करना आपका कर्तव्य हैं, अतः पहले वही कीजिए। अन्यथा आप निश्चिन्त होकर तप नहीं कर सकते ।

त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना ।
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि ।।२९।।

अर्थ—राजन् ! जब आप-जैसे महात्मा इस पृथ्वी की रक्षा करेंगे, तभी इस पृथ्वी पर शान्ति होगी; अतः आपका वन में जाना उचित नहीं है ।

पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते ।
न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी ।।३०।।

अर्थ—हम देखते हैं कि यहां रहकर प्रजा का पालन करने से आपको महान् पुण्य होगा। वन में रहने पर ऐसे पुण्य की प्राप्ति आपको हो, यह हमें नहीं दीखता। इसलिए आप ऐसा विचार न करें ।

ईदृशो न हि राजेन्द्र धर्मः क्वचन दृश्यते ।
प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः ।
रक्षितव्याः प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि ।।३१।।

अर्थ—राजेन्द्र ! प्राचीनकाल में राजर्षियों ने प्रजाओं का पालन करके जैसा पुण्य संचय किया है, वैसा पुण्य और कहीं नहीं दिखायी देता। राजा को प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिये; अतः आप प्रजा की रक्षा करें ।

ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुतः ।
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ।।३२।।
अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ।
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुनामा महासुरः ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ।।३३।।

अर्थ—मेरे आश्रम के समीप मरुप्रदेश की समतल भूमि में बालू से भरा हुआ उज्जानक नामवाला समुद्र है। वहीं एक विशालकाय महाबली राक्षस रहता है, जो देवताओं के लिए भी अवध्य है। वह महान् असुर मधु नामक राक्षस का पुत्र है। उसका नाम धुन्धु है। वह वहां पृथ्वी के भीतर बालू में छिपकर सोता है और सम्पूर्ण लोकों का संहार करने के लिए कठोर तपस्या कर रहा है ।

संवत्सरस्य पर्यन्ते स निःश्वासं प्रमुञ्चति।
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना ॥३४॥

अर्थ – वह एक वर्ष बीतने पर जब बड़े जोर से सांस छोड़ता है, उस समय पर्वत और वनों सहित सारी पृथिवी डोलने लगती है।

तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत्।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥३५॥

अर्थ—उसके श्वास की वायु से बड़ी भारी धूलि उड़ती है, जो सूर्य के मार्ग को भी ढंक लेती है, साथ ही एक सप्ताह तक भूकम्प होता रहता है।

सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम्।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्वकाश्रमे ॥३६॥

अर्थ—तात! (उस समय पृथिवी में से) चिनगारियां, अंगारे और अत्यन्त दारुण धुएं निकलने लगते हैं। इसलिये तात! मैं अपने आश्रम में (सुखपूर्वक) नहीं रह पाता।

तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया।
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे ॥३७॥

अर्थ—आप लोकों का हित करने की इच्छा से उस विशाल शरीरवाले दैत्य का संहार करें, आज उस असुर के मारे जाने पर सब लोग सुखी हो जायें।

त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ ॥३८॥

अर्थ—पृथिवीपते! एक आप ही उसका वध कर सकते हैं, क्योंकि निष्पाप नरेश! भगवान् विष्णु ने पहले युग में मुझे एक वर दिया था।

यस्त्वं महासुरं रौद्रं हनिष्यसि महाबलम्।
तस्य त्वं वरदानेन तेज आप्याययिष्यसि ॥३९॥

अर्थ—भगवान् के उस वरदान के अनुसार जब कि (अयोध्या के राजा) आप इस महाबली भयंकर दानव का संहार करेंगे, अपने तेज को (वैष्णव तेज से) परिपुष्ट कर लोगे।

न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल स हि वर्षशतैरपि।
वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ॥४०॥

अर्थ—पृथिवीपाल! महातेजस्वी धुन्धु को अल्प तेजवाला पुरुष सौ वर्ष में

भी नहीं मार सकता। उसमें इतना अधिक बल है कि देवताओं के लिए भी उसे दबाना कठिन है।

स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात् तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥४१॥

अर्थ—महात्मा उत्तङ्क ने जब उन राजर्षि से इस प्रकार कहा, तब उन्होंने धुन्धु दैत्य को नष्ट करने के लिए अपने पुत्र कुवलाश्व को उनकी सेवा में दे दिया।

बृहदश्व उवाच—

भगवन् न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥४२॥

अर्थ—बृहदश्व ने कहा—भगवान्! मैंने तो शस्त्र त्याग दिए हैं किन्तु द्विजश्रेष्ठ! यह मेरा पुत्र (आपको समर्पित) है यह अवश्य धुन्धुमार होगा।

स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥४३॥

अर्थ—(यह कहकर) प्रशंसनीय व्रतवाले वे राजर्षि अपने पुत्र को धुन्धु का वध करने की आज्ञा देकर स्वयं तप करने के लिए पर्वत पर चले गये।

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पार्थिवः।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे ॥४४॥

अर्थ—तब राजा कुवलाश्व अपने सौ पुत्रों और उत्तङ्क को साथ में लेकर धुन्धु को दण्ड देने के लिए चल दिए।

तमाविशत् तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद् वै लोकस्य हितकाम्यया ॥४५॥

अर्थ—उस समय भगवान् विष्णु उत्तङ्क ऋषि की प्रेरणा से लोकों का हित करने के लिए अपने तेजःस्वरूप से उस राजा के शरीर में प्रविष्ट होगये।

तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥४६॥

अर्थ—तब उस दुर्धर्ष राजा के प्रस्थान करने पर आकाश से गम्भीर वाणी सुनाई दी कि 'ये श्रीमान् राजा अवध्य हैं, आज इनके हाथ से धुन्धु अवश्य मारा जायेगा।'

दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समन्तात् समवाकिरन्।
देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्षभ ॥४७।

अर्थ—भरतर्षभ ! तदनन्तर देवताओं ने अपनी दुन्दुभियां बजाकर उनके ऊपर चारों ओर से दिव्य पुष्पों की वर्षा की।

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान्।
समुद्रं खानयामास वालुकार्णवमव्ययम् ॥४८॥

अर्थ—विजय पानेवालों में श्रेष्ठ वह वीर्यवान् राजा अपने पुत्रों के साथ वहां पहुंचकर अपार रेते से भरे हुए समुद्र को खुदवाने लगे।

नारायणेन कौरव्य तेजसाऽऽप्यायितः स वै।
बभूव स महातेजा भूयो बलसमन्वितः ॥४९॥

अर्थ—कौरव्य ! वे महाबली राजा भगवान् नारायण के तेज से पुष्ट होने के कारण और भी अधिक तेजस्वी हो गये।

तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकान्तर्हितस्तदा।
धुन्धुरासादितो राजन् दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥५०॥

अर्थ—राजन् ! धरती खोदते हुए कुवलाश्व पुत्रों ने बालू के भीतर छिपे हुए धुन्धु का पता लगा लिया। वह पश्चिम दिशा को घेरकर पड़ा था।

मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥५१॥
सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलं महत्।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा ॥५२॥

अर्थ—धुन्धु अपने मुख की आग से सम्पूर्ण लोकों का संहार-सा करता हुआ जल का स्रोत बहाने लगा। भरतश्रेष्ठ ! जैसे चन्द्रमा के उदयकाल में समुद्र में ज्वार आता है, उसकी उत्ताल तरङ्गें बढ़ने लगती हैं, उसी प्रकार वहां धारा, लहर और कीचड़ से युक्त महान् जलस्रोत वेगपूर्वक बढ़ने लगा। उस राक्षस ने कुवलाश्व के सौ पुत्रों में से तीन को छोड़कर शेष सबको अपनी मुखाग्नि से जलाकर भस्म कर दिया।

ततः स राजा कौरव्य राक्षसं तं महाबलम्।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुनिबर्हणः ॥५३॥

अर्थ—कुरुनन्दन! तब धुन्धु का संहार करने के लिए आए हुये वे महातेजस्वी राजा उस महाबली राक्षस के सामने पहुंचे।

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः।
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ॥५४॥

अर्थ—फिर उन योगी नरेश ने योग के प्रभाव से उसके जलमय वेग को

पी लिया तथा जल से अग्नि को शान्त कर दिया ।

निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥५५॥

अर्थ—इस प्रकार उस विशाल शरीरवाले जल-राक्षस को बलपूर्वक मारकर राजा ने अपना काम पूर्ण करके उस मारे हुए राक्षस को उत्तङ्क ऋषि को दिखाया ।

उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात् तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ॥५६॥

अर्थ—उस समय उत्तङ्क ने उन महात्मा राजा को वरदान दिया कि—'आपके पास अक्षय धन रहेगा तथा शत्रुओं से आप कभी पराजित नहीं होंगे ।

धर्मे रतिं च सततं स्वर्गवासं तथाक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥५७॥

अर्थ—'धर्म पर आपकी श्रद्धा सर्वदा बनी रहेगी तथा आप अनन्त काल तक स्वर्ग में रहेंगे । साथ ही राक्षस ने आपके जिन पुत्रों को मार डाला है, उन्हें भी स्वर्ग में अक्षय लोक मिलेंगे ।

इति हरिवंशे धुन्धुवधे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

---

७. इक्ष्वाकुवंशः

वैशम्पायन उवाच—

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उन (धुन्धुमार) के तीन पुत्र बच गये थे, जिनमें दृढाश्व सबसे बड़ा था तथा चन्द्राश्व और कपिलाश्व दो छोटे थे ।

धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥२॥

अर्थ—धुन्धुमार के दृढाश्व, दृढाश्व के हर्यश्व और हर्यश्व के निकुम्भ नामक पुत्र हुआ, जो सदा क्षत्रियधर्म में तत्पर रहता था ।

संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः।
अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहयाश्वसुतौ नृप ॥३॥

अर्थ—निकुम्भ के संहताश्व नामक पुत्र हुआ, जो युद्ध की कला में निपुण था। राजन्! संहताश्व के अकृशाश्व और कृशाश्व नामक दो पुत्र हुए।

तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥४॥

अर्थ—उस (संहताश्व) की भार्या हिमवान् की पुत्री थी, जो तीनों लोकों में दृषद्वती के नाम से प्रसिद्ध है। उससे प्रसेनजित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वह श्रेष्ठ पुत्रों की जननी थी।

लेभे प्रसेनजिद् भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत् ॥५॥

अर्थ—प्रसेनजित् की गौरी नामवाली भार्या थी। वह पतिव्रता थी। वह पति के शाप देने पर बाहुदा नदी हो गयी।

तस्याः पुत्रो महानासीद् युवनाश्वो महीपतिः।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥६॥

अर्थ—उसके पुत्र महाराज युवनाश्व थे, युवनाश्व के त्रिलोक-विजयी मान्धाता नामक पुत्र हुआ।

तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताभवत्।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥७॥

अर्थ—शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती, जिसका दूसरा नाम चैत्ररथी था, मान्धाता की भार्या थी। वह साध्वी पृथ्वी में अनुपम रूपवती थी।

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य सा।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप ॥८॥
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम्।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत् त्रसदस्युर्महीपतिः ॥९॥

अर्थ—उसके दस हजार भाई थे और वह पतिव्रता उनमें सबसे बड़ी थी। राजन्! मान्धाता ने उसके गर्भ से धर्मज्ञ पुरुकुत्स और धार्मिक मुचुकुन्द—इन दो पुत्रों को उत्पन्न किया। पुरुकुत्स का पुत्र राजा त्रसदस्यु हुआ।

नर्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः।
सम्भूतस्य तु दायदः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥१०॥

अर्थ—त्रसदस्यु के नर्मदा नामवाली स्त्री के गर्भ से सम्भूत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सम्भूत का पुत्र सुधन्वा नामक राजा था।

सुधन्वनः सुतश्चासीत् त्रिधन्वा रिपुमर्दनः।
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद् विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः ॥११॥

अर्थ—सुधन्वा के त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओं का मर्दन करनेवाला था। राजा त्रिधन्वा के त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ।

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः।
पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ॥१२॥

अर्थ—त्रय्यारुण के सत्यव्रत नामवाला महाबली कुमार हुआ। उसकी बुद्धि बड़ी खोटी थी। वह (परस्त्रीहरण द्वारा) विवाह के मन्त्रों में विघ्न डालने लगा।

येन भार्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै।
बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च ॥१३॥

अर्थ—उसने बालकपन, काम, मोह, हर्ष और चपलता के कारण किसी दूसरे (नागरिक) की विवाहिता स्त्री को छीन लिया था।

जहार कन्यां कामात् स कस्यचित् पुरवासिनः।
अधर्मशङ्कुना तेन राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत् ॥१४॥
अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः।
पितरं सोऽब्रवीत् त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥१५॥

अर्थ—इसी प्रकार उसने काम के वश में होकर एक पुरवासी की कन्या को हर लिया था। इस पापरूपी कील से विद्ध होने के कारण राजा त्रय्यारुण ने क्रोध में उसे बार-बार कहा—'ओ नीच! भाग जा यहां से!' पिता के त्याग देने पर उसने बार-बार उनसे पूछा—'मैं कहां जाऊं?'

पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ॥१६॥

अर्थ – तब उसके पिता ने कहा—'ओ कुलकलंक! जा तू श्वपाकों के साथ रह, मैं तुझ जैसे पुत्र से पुत्रवान् बनना नहीं चाहता।'

इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद् वचनात् पितुः।
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१७॥

अर्थ—पिता के इस प्रकार कहने पर वह उनके कथनानुसार नगर से बाहर निकल गया। उस समय भगवान् वशिष्ठ ऋषि ने उसके पिता को इस प्रकार कहने से नहीं रोका।

स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके।
पित्रा त्यक्तोऽवसद् धीरः पिता तस्य वनं ययौ ॥१८॥

अर्थ—तात ! धीर सत्यव्रत पिता के त्याग देने पर चाण्डालों की बस्ती में रहने लगा और उसके पिता त्रय्यारुण (विरक्त होकर) वन को चले गये ।

ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः ।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा ॥१९॥

अर्थ—राजेन्द्र ! उस समय उस देश में (उस कन्या-हरणरूप) अधर्म के कारण इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की ।

दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ।
संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥२०॥

अर्थ—उस समय महातपस्वी विश्वामित्र भी सत्यव्रत के उस देश में अपनी स्त्री को न्यास (धरोहर) के रूप में रखकर समुद्र के तट पर भयंकर तप कर रहे थे ।

तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ।
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद् गोशतेन वै ॥२१॥

अर्थ—विश्वामित्र की स्त्री अपने शेष कुटुम्ब के पालन के लिए अपने मध्यम पुत्र के गले में रस्सी बांधकर उसको सौ गौओं के मूल्य पर बेचने के लिए लेकर घूमने लगी ।

तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः ।
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भारत ॥२२॥

अर्थ—भारत ! धर्मात्मा राजकुमार (सत्यव्रत) ने उस महर्षि-पुत्र को गले में बंधा तथा बिकता देखकर छुड़ा लिया ।

सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् ।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥२३॥

अर्थ—फिर महाबाहु सत्यव्रत ने विश्वामित्र को सन्तुष्ट करने और उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए उस पुत्र का भरण-पोषण किया ।

सोऽभवद् गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः ।
महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः ॥२४॥

अर्थ—वह महातपस्वी गले में बन्धन पड़ने के कारण गालव नाम से प्रसिद्ध हुआ । तात ! (इस प्रकार) उस वीर ने कुशिकवंशी महर्षि (गालव) को (इस आपत्ति से) मुक्त किया था ।

इति हरिवंशे गालवोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

८. त्रिशंकुचरितम्, हरिश्चन्द्रवंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया।
विश्वामित्रकलत्रं तद् बभार विनये स्थितः ॥१॥

अर्थ— **वैशम्पायन** जी कहते हैं— राजन् ! विश्वामित्र जी के प्रति श्रद्धा-भक्ति, उनके असहाय कुटुम्ब के प्रति दयाभाव तथा अपनी की हुई प्रतिज्ञा से प्रेरित हो सत्यव्रत विनयपूर्वक विश्वामित्र जी की स्त्री का पालन करने लगा।

हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध सः ॥२॥

अर्थ— वह ढूंढ़ने से मिलनेवाले कंद-विशेष, वराही कंद तथा महिष कंद आदि जंगली कंद-मूलों को काटकर उनका गूदा विश्वामित्र के आश्रम के पास के वृक्षों में बांध देता था।

उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्।
पितुर्नियोगादवसत् तस्मिन् वनगते नृपे ॥३॥

अर्थ—पिता (राजा) के वन चले जाने पर बारह वर्षों के लिए वह चुपचाप (किसी को विदित न हो इस प्रकार) व्रत करने लगा।

अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
याज्योपाध्यायसम्बन्धाद् वशिष्ठः पर्यरक्षत ॥४॥

अर्थ—इधर पुरोहिताई और यजमानी के सम्बन्ध के कारण मुनि वशिष्ठ अयोध्या की, राज्य की और रनिवास की रक्षा करने लगे।

सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वा बलात्।
वशिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास वै तदा ॥५॥

अर्थ—इधर सत्यव्रत अपनी मूर्खता या होनहार के कारण वशिष्ठ जी के ऊपर अधिक कुपित रहने लगा।

पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात् त्यज्यमानं स्वमात्मजम्।
न वारयामाश मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥६॥

अर्थ—परन्तु मुनि वशिष्ठ ने तो उसके पिता को, उनके द्वारा अपने पुत्र के राज्य से निकाले जाते समय विशेष कारणवश ही नहीं रोका था।

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥७॥

अर्थ—पाणिग्रहण अर्थात् विवाह के मन्त्र सप्तपदी के पूर्ण होने पर पूर्ण हुए माने जाते हैं। (इसके पहले स्त्री में कन्यात्व ही रहता है; अतः वशिष्ठ जी सत्यव्रत से बारह वर्षों तक कन्या-हरण का प्रायश्चित्त कराना चाहते थे)। परंतु वशिष्ठ जी के इस गूढ़ आशय को सत्यव्रत समझ न सका।

जानन् धर्मं वशिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वशिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥

अर्थ—'वशिष्ठ जी धर्म को जानते हैं, तब भी मेरी रक्षा नहीं करते हैं।' भारत! यह विचार कर सत्यव्रत अपने मन में उन पर कुपित रहने लगा।

गुणबुद्ध्या तु भगवान् वशिष्ठः कृतवांस्तथा।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९॥

अर्थ—भगवान् वशिष्ठ जी ने तो गुणबुद्धि से ऐसा किया था, परन्तु सत्यव्रत उनके इस गुप्त अभिप्राय को समझ न सका।

तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत पाकशासनः ॥१०

अर्थ—उसके महात्मा पिता को सत्यव्रत के ऊपर जो असन्तोष उत्पन्न हो गया, इस कारण इन्द्र ने उसके राज्य में बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की।

तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि।
कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति ॥११॥
न तं वशिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः ॥१२॥

अर्थ—तात! 'यदि (सत्यव्रत) भूतल पर कठिनता से पूर्ण होनेवाली इस दीक्षा को पूर्ण कर लेगा तो इसके कुल का उद्धार हो जायेगा'। यह विचार कर भगवान् वशिष्ठ ने उसके पिता द्वारा त्यागे गये सत्यव्रत को नहीं रोका था, उनका विचार था कि '(प्रायश्चित्त के अनन्तर) इसके पुत्र को ही मैं राज्य पर अभिषिक्त कर दूंगा।

स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद् बली।
उपांशुव्रतमास्थाय महत् सत्यव्रतो नृप ॥१३॥

अर्थ—राजन्! बलवान् सत्यव्रत ने भी चुपचाप दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक इस महाव्रत को धारण किया।

अविद्यमाने मांसे तु वशिष्ठस्य महात्मनः।
सर्वकामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः ॥१४॥

अर्थ—एक समय कंदमूल के गूदे के न रहने पर उस राजकुमार की दृष्टि सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली महात्मा वषिष्ठ की दुधारु गौ के ऊपर पड़ी।

तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधार्दितः।
दशधर्मान् गतो राजा जघान जनमेजय ॥१५॥

अर्थ—जनमेजय ! राजकुमार सत्यव्रत ने उस गौ को क्रोध, मोह और काम के कारण तथा भूख से पीड़ा पाने के कारण दश अनिष्ट धर्मों (अवस्थाओं) को प्राप्त होने की दशा में मार डाला।

तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान्।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वशिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे।
क्रुद्धस्तु भगवान् वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् ॥१६॥

अर्थ—उस मांस को उसने विश्वामित्र के पुत्रों को खिलाया और अपने आप भी खाया। यह सुनकर वशिष्ठ जी भी क्रोध में भर गये और क्रोध में भरे हुए वशिष्ठ जी ने राजा के पुत्र से यह बात कही।

वशिष्ठ उवाच—

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७॥

अर्थ—वशिष्ठजी ने कहा—क्रूर ! यदि तुझमें फिर किए हुए ये दो शङ्कु (पाप) न होते तो मैं तेरे प्रथम शङ्कु (पाप) को अवश्य नष्ट कर देता।

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः।

अर्थ—पिता को सन्तुष्ट न रखने, गुरु की दूध देनेवाली गौ की हत्या कर डालने और अप्रोक्षित मांस खाने से तुम्हारे द्वारा तीन प्रकार के पाप बन गये।

वैशम्पायन उवाच—

एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः।
त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुरिति स स्मृतः ॥१९॥

अर्थ वैशम्पायनजी बोले—इस प्रकार उसके तीन शङ्कुओं को देखकर महातपस्वी वशिष्ठ जी ने जो उसे त्रिशङ्कु कहा, इसके कारण वह त्रिशङ्कु ही कहलाने लगा।

विस्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते।
स तु तस्मै चरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥२॥

अर्थ—जब विश्वामित्र जी घर लौटे, तब अपनी स्त्री आदि का भरण-पोषण करने के कारण प्रसन्न होकर त्रिशङ्कु को वर देने लगे।

छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः ॥२१॥

अर्थ—जब विश्वामित्र जी ने राजकुमार से इच्छानुसार वर मांगने के लिए कहा तब उसने मुनि से वर मांगा कि 'मैं सदेह स्वर्ग में जाऊं।'

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके।
राज्येऽभिषिच्य पित्र्ये तु याजयामास तं मुनिः।

अर्थ—(विश्वामित्र के प्रसादमात्र से) बारह वर्षों की अनावृष्टि का भय दूर हो जाने पर विश्वामित्र (मुनि अपने तप से उसके पापों को भस्म करके) उसका पिता के राज्य पर अभिषेक कर उसका यज्ञ कराने लगे।

मिषतां देवतानां च वशिष्ठस्य च कौशिकः।
सशरीरं तदा तं तु दिवमारोपयत् प्रभुः ॥२३॥

अर्थ—तदनन्तर तप की शक्ति से सम्पन्न कौशिक गोत्री विश्वामित्र ने वशिष्ठ और देवताओं के देखते-देखते ही त्रिशङ्कु को सशरीर स्वर्ग में भेज दिया।

तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४॥

अर्थ—त्रिशङ्कु के कैकयवंश में उत्पन्न हुई एक सत्यरथा नाम की भार्या थी। उसमें उसने हरिश्चन्द्र नामवाले निष्पाप पुत्र को उत्पन्न किया।

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः।
आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः ॥२५॥

अर्थ—वे राजा हरिश्चन्द्र त्रैशङ्कव नाम से प्रसिद्ध थे, उन्होंने राजसूय यज्ञ किया था, अतएव वे सम्राट् कहलाते थे।

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान्।
येनेदं रोहितपुरं कारितं राज्यसिद्धये ॥२६॥

अर्थ—हरिश्चन्द्र के रोहित नामवाला वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अपने राज्य-कार्य की सिद्धि के लिए रोहितपुर बसाया था।

कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वथ प्रजाः।
संसारासारतां ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत्पुरं ददौ ॥२७॥

अर्थ—उस राजर्षि ने राज्य तथा प्रजा का पालन करने के अनन्तर संसार की असारता को जानकर अपना नगर ब्राह्मणों को दे दिया था।

हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ।
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः ॥२८॥

अर्थ—रोहित का पुत्र हरित और हरित का पुत्र चञ्चु हुआ—यह प्रसिद्ध है। चञ्चु के विजय और सुदेव नामवाले दो पुत्र हुए।

जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः ।
रुरुकस्तनयस्तस्य राजधर्मार्थकोविदः ॥२९॥

अर्थ—उस (विजय) ने सम्पूर्ण क्षत्रियों को जीत लिया था, इसलिए वह विजय कहलाता था। उसके राज-कार्य, धर्म-कार्य और आर्थिक विषयों में चतुर रुरुक नामवाला पुत्र हुआ।

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान् ।
शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैः सह ॥३०॥
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम् ।
नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥३१॥

अर्थ—रुरुक का पुत्र वृक हुआ और वृक के बाहु नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। वह राजा उस (राज) धर्म के युग में अतिधार्मिक नहीं था, इसलिए हैहय और तालजङ्घ वंश के राजाओं ने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लव (आदि) राजाओं का साथ देकर बाहुक को उसके राज्य से भ्रष्ट कर दिया।

सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च ।
और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥३२॥

अर्थ—बाहुक का जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह गर अर्थात् विष के साथ ही उत्पन्न हुआ था। इससे वह सगर कहलाने लगा। (उसकी माता के) और्व के आश्रम में आने पर भृगुवंशी और्व ने उसकी रक्षा की थी।

आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः ।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ॥३३॥

अर्थ—सगर ने भृगुवंशी और्व से आग्नेय अस्त्र को सीखकर तालजंघ और हैहय राजाओं को मारकर पृथिवी को जीत लिया।

शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः ।
क्षत्रियाणां कुरुश्रेष्ठ पारदानां स धर्मवित् ॥३४॥

अर्थ—कुरुश्रेष्ठ ! धर्म को जाननेवाले पूर्णशक्ति-सम्पन्न सगर ने शक, पह्लव और पारद क्षत्रियों को धर्म-भ्रष्ट कर दिया था।

इति हरिवंशे त्रिशङ्कुचरितकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

—०—०—

९. सगरचरितम्, सागराश्च

जनमेजय उवाच—

कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥१॥
धर्मं कुलोचितं क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥२॥

अर्थ—**जनमेजय ने कहा**—तपोधन! वे राजा सगर विष के साथ क्यों उत्पन्न हुए थे? विष के साथ रहते हुए भी मरे क्यों नहीं? और मर्यादा से च्युत न होनेवाले उन नरेश ने क्रोध में भरकर महाबली शक आदि क्षत्रियों के कुलोचित धर्म को क्यों नष्ट कर दिया था? इसका आप मुझसे विस्तापूर्वक वर्णन कोजिए।

वैशम्पायन उवाच—

बाहोर्व्यसनिनस्तात हृतं राज्यमभूत् किल।
हैहयैस्तालजंघैश्च शकैः सार्द्धं विशाम्पते ॥३॥

अर्थ—वैशम्पायन जी बोले—राजन्! राजा बाहु शिकार और जुए आदि व्यसनों में ही पड़ा रहता था। तात! (इस अवसर से लाभ उठाकर) बाहु के राज्य को हैहय, तालजङ्घ तथा शकों ने छीन लिया।

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः खसाः।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥४॥

अर्थ—यवन, पारद, काम्बोज, खस और पह्लव—इन पांच गणों ने भी हैहय राजाओं के लिए पराक्रम किया था।

हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी वने प्राणानवासृजत् ॥५॥

अर्थ—राज्य के छिन जाने पर राजा बाहु वन को चला गया और उसकी पत्नी भी उसके पीछे-पीछे गयी। इसके बाद उस राजा ने दुःखी होकर वन में ही अपने प्राणों को त्याग दिया।

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात्।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वमभूत् किल ॥६॥

अर्थ—उसकी पत्नी यदुवंश की कन्या थी। वह गर्भवती थी, तब भी बाहु के पीछे-पीछे वन में गयी थी। उसकी सौत ने उसे पहले ही विष दे

दिया था।

सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने तामध्यरोहत।
और्वस्तां भार्गवस्तात कारुण्यात् समवारयत् ॥७॥

अर्थ— तात! जब वह स्वामी की चिता बनाकर उस पर चढ़ने लगी, उसी समय वन में विराजमान भृगुवंशी और्व ऋषि ने दया के कारण उसे रोका।

तस्याश्रमे च तं गर्भं गरेणैव सहाच्युतम्।
व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम पार्थिवम् ॥८॥

अर्थ—तब उसने उनके आश्रम में ही विष (गर) सहित गर्भ को, जो आगे चलकर सगर नामक महाबाहु राजा के रूप में प्रसिद्ध हुआ, उत्पन्न किया। राजा सगर कभी धर्म से च्युत नहीं हुए थे।

और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥९॥

अर्थ—और्व ने महामना सगर के जातकर्म आदि संस्कार कराकर उन्हें वेद और शास्त्र पढ़ाये, फिर अस्त्रविद्या सिखायी।

आग्नेयं तु महाघोरममरैरपि दुःसहम्।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥१०॥
हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव।
आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः ॥११॥

अर्थ—उन्होंने सगर को देवताओं के लिए भी असह्य महाघोर आग्नेय अस्त्र दिया था। जब वे अस्त्र-बल और शारीरिक बल से सम्पन्न हो गये, तब क्रोध में भरकर रुद्र जैसे शीघ्रता से पशुओं का संहार करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हैहयों का संहार कर डाला। इस प्रकार कीर्तिमानों में श्रेष्ठ उन वीर पुरुष ने संसार में (अद्‌भुत) कीर्ति पायी थी।

ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा।
पह्लवांश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितस्तदा ॥१२॥

अर्थ—इसके अनन्तर उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लावों को भी निःशेष (सर्वथा नष्ट) करने का निश्चय किया।

ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥१३॥

अर्थ—जब वीर और महात्मा सगर उनका सर्वनाश करने लगे, तब वे

(शक, यवनादि) बुद्धिमान् वशिष्ठ जी की शरण में गये और उनके पैरों में गिर पड़े।

वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः।
सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ॥१४॥

अर्थ—परम यशस्वी वशिष्ठ जी ने कुछ विशेष शर्तों पर उनको अभयदान दिया और सगर को (उन्हें मारने से) रोका।

सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥१५॥

अर्थ—सगर ने अपनी प्रतिज्ञा और गुरु के वाक्य की ओर ध्यान देकर (उनके प्राण नहीं लिए) उनके धर्म को नष्ट कर दिया, और उनका वेष बदल दिया।

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥१६॥

अर्थ—उन्होंने शकों के आधे शिर को मूंडकर छोड़ दिया, यवनों के सारे शिर को मूंड दिया, और पह्लवों के भी शिर को मुंडवा दिया।

पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥१७॥

अर्थ—उन महात्मा नरेश ने पारदों के शिर को मुक्तकेश (खुले हुए केशों-वाला) कर दिया और पह्लवों को श्मश्रुधारी (केवल दाढ़ीवाला) बना दिया और सबको स्वाध्याय तथा वषट्कार से रहित कर दिया।

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशाम्पते।
कोलिसर्पाः समहिषा दार्वाश्चोला सकेरलाः ॥१८॥
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनाद् राजन् सगरेण महात्मना ॥१९॥

अर्थ—तात! जनेश्वर! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोलिसर्प, महिष, दर्द, चोल और केरल—वे सब क्षत्रिय ही थे। वसिष्ठ जी के वचन से महात्मा सगर ने (इन सबका संहार न करके केवल) इनके धर्म को ही नष्ट कर दिया था।

खसांस्तुषारांश्चोलांश्च मद्रान् किष्किन्धकांस्तथा।
कौन्तलांश्च तथा वङ्गान् साल्वान् कौङ्कणकांस्तथा ॥२०॥
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्।
अश्वं वै प्रेरयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥२१॥

अर्थ—उन धर्म-विजयी राजा ने अश्वमेध की दीक्षा लेकर खस, तुषार, चोल, मद्र, किष्किन्धक, कौन्तल, वङ्ग, साल्व तथा कोङ्कण देश के राजाओं को जीता। इस प्रकार पृथ्वी का विजय करते हुए उन्होंने अश्वमेध यज्ञ के लिए अपना घोड़ा छोड़ा।

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥२२॥

अर्थ—जब उनका घोड़ा घुमाया जारहा था, उस समय पूर्व-दक्षिण में समुद्र के किनारे किसी ने उस घोड़े को चुरा लिया और उसे भूमि में छिपा दिया।

स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः।
आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥२३॥
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषोत्तमम् ॥२४॥

अर्थ--उस समय राजा (सगर) ने अपने पुत्रों से उस स्थान को खुदवाया। समुद्र के खोदने पर उनके पुत्रों ने आदिपुरुष, हरि (अविद्या कोहरने वाले), कृष्ण (सच्चिदानन्द-स्वरूप) प्रजापति पुरुषोत्तम, (कपिलरूपी विष्णु को वहां सोते हुए समाधि में स्थित) देखा।

तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः।
दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥२५॥
बर्हकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः।
शूरः पञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरो नृपः ॥२६॥

अर्थ—उनके योगनिद्रा को त्यागने पर उनके नेत्र में से निकलते हुए तेज से वे सब (राजकुमार) भस्म हो गये। महाराज! केवल बर्हकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ और वंश को चाहनेवाला शूर पञ्चजन—ये चार राजकुमार ही जीवित बच सके थे।

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरान्।
अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्तिं चाप्यनिवर्तनीम् ॥१७॥
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गवासं तथाक्षयम्।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकांस्तस्य ये चक्षुषा हताः ॥१७॥

अर्थ—उन्हें (कपिलरूपी) विभु हरिनारायण भगवान् ने यह वरदान दिया था कि इक्ष्वाकु का वंश अक्षय रहेगा और राजा सगर की कीर्ति कभी नष्ट

नहीं होगी। समुद्र उनका पुत्र कहा जायेगा (अर्थात् भविष्य में यह सागर नाम से प्रसिद्ध होगा) और उन्हें अक्षय स्वर्गवास मिलेगा। कपिल जी ने अपने नेत्र के तेज से भस्म हुए सगर पुत्रों को भी अक्षय लोकों की प्राप्ति होने का वर दिया।

समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम्।
सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ।।२६।।

अर्थ—(उस समय) समुद्र ने अर्घ्य लेकर उन राजा (सगर) को प्रणाम किया और सगर के इस कर्म के कारण समुद्र का सागर नाम पड़ गया।

तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्।
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहायशाः।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ।।३०।।

अर्थ—उन्होंने अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को भी समुद्र से प्राप्त किया। इस तरह उन महायशस्वी राजा ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे—ऐसा सुना जाता है। इन महाराज के पुत्रों की संख्या साठ हजार थी।

इति हरिवंशे सगरोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

---

१०. पैजवनाः सागराश्च (ऐक्ष्वाकाः)

जनमेजय उवाच—

सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महात्मनः।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज ।।१।।

अर्थ—जनमेजय ने कहा—द्विज! महात्मा सगर के साठ हजार वीर और पराक्रमी पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए थे?

वैशम्पायन उवाच—

द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्विषे।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ।।२।।

अर्थ वैशम्पायन जी ने उत्तर दिया—सगर की दो रानियां थीं। तप से उनके पाप नष्ट हो गये थे। उनमें बड़ी रानी विदर्भ नरेश की पुत्री थीं और केशिनी नाम से प्रसिद्ध थीं।

कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥३॥

अर्थ—उन राजा की जो छोटी पत्नी थी, वह बड़ी ही धर्मात्मा थी । वह अरिष्टनेमि (कश्यप) की पुत्री थी । उसके समान पृथिवी पर कोई भी दूसरी रूपवती स्त्री नहीं थी ।

और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात् तं निबोध जनाधिप ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ॥४॥
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति ।

अर्थ—जनाधिप ! और्व ने उन दोनों को जो वर दिया था, उसे सुनो ! (और्व ने कहा था) दोनों में से कोई एक तपस्विनी रानी तो साठ हजार पुत्र मांग ले और एक वंश चलानेवाले एक ही पुत्र को मांगे । अब जिसे जो वर अच्छा लगता हो वह उस वर को मांग ले ।

तत्रैका जगृहे पुत्राँल्लुब्धा शूरान् बहूंस्तथा ॥५॥
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः ।
केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥६॥

अर्थ—उनमें से एक पुत्रलोभिनी स्त्री ने तो बहुत से शूरवीर पुत्रों को मांग लिया तथा एक ने एक ही वंशधर पुत्र को मांगा । तब मुनि ने तथास्तु—ऐसा ही होगा, कहकर वरदान दे दिया । केशिनी के सगर से असमञ्जस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः ।
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ॥७॥

अर्थ—वह पञ्चजन नाम से प्रसिद्ध महाबलवान् राजा था । दूसरी ने बीजों से भरी हुई एक तूंबी उत्पन्न की, वह बात प्रसिद्ध है ।

तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ।
सम्बभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥८॥

अर्थ—उस तूंबी में तिल के समान साठ हजार गर्भ थे, जो समय आने पर उत्पन्न हुए और क्रमशः बढ़ने लगे ।

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान् निदधे पिता ।
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात् तावतीरेव पोषणे ॥९॥

अर्थ—पिता ने उन गर्भों को घृत से भरे हुए घड़ों में डाल दिया और उनका पोषण करने के लिए एक-एक घड़े पर एक-एक करके उतनी ही धाइयों को नियुक्त कर दिया ।

ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् ।
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धना: ॥१०॥

अर्थ—दस महीने बीतने पर सगर की प्रीति को बढ़ानेवाले बहुत से बच्चे सुखपूर्वक समयानुसार उत्पन्न होने लगे।

षष्टिः पुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् नृप ।
गर्भादलाबुमध्याद् वै जातानि पृथिवीपते ॥११॥

अर्थ—राजन् ! इस प्रकार सगर के साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे और पृथिवीपते ! वे तूंबी के बीजों की तरह तूंबी (लौकी) के मध्य में रखे हुए गर्भों से उत्पन्न हुए थे।

तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ।
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥१२॥

अर्थ—भगवान् नारायण (कपिलदेव) के तेज में प्रविष्ट हुए राजकुमारों में से एक पञ्चजन (असमंजस) नामक राजपुत्र ही राजा हो पाया।

सुतः पञ्चजनस्यासीदंशुमान् नाम वीर्यवान् ।
दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ॥१३॥

अर्थ—पञ्चजन[1] (असमंजस) का पुत्र वीर्यवान् अंशुमान् हुआ। उसका पुत्र दिलीप हुआ, जो खट्वाङ्ग नाम से भी प्रसिद्ध है।

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ।
त्रयोऽनुसंधिता लोका बुद्धया सत्येन चानघ ॥१४॥

अर्थ—अनघ ! उसने मुहूर्त भर का (४८ मिनट का) जीवन पाकर स्वर्ग से इस मृत्युलोक में आकर सूक्ष्म बुद्धि से तथा सत्य (ब्रह्मभाव) के द्वारा तीनों लोकों को तत्त्वतः जान लिया था।

दिलीपस्य तु दायदो महाराजो भगीरथः ।
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः ॥१५॥

अर्थ—दिलीप के पुत्र महाराज भगीरथ हुए। उन प्रभु ने नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी को (स्वर्ग से भूमि पर) उतारा था।

कीर्तिमान् स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत् ।
तस्माद् भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः ॥१६॥

---

१. शुद्ध पाठ—पिजवनः=(पैंजवनः)

अर्थ—इन्द्र के तुल्य पराक्रमी उन यशस्वी महापुरुष ने गङ्गाजी को समुद्र तक पहुंचा दिया और उन्होंने गङ्गाजी को अपनी पुत्री बनाया; इसीलिए वंश का कीर्तन करनेवाले विद्वान् गङ्गाजी को भागीरथी (भगीरथ की पुत्री) कहते हैं।

भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्मिकः ॥१७॥

अर्थ—भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम से प्रसिद्ध है। श्रुत का नाभाग नामक परमधार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ।

अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत्।
अयुताजित् तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥१८॥

अर्थ—नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ। वह सिन्धुद्वीप का पिता था। सिन्धुद्वीप के अयुताजित् नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ।

अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः।
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ॥१९॥

अर्थ—अयुताजित् के ऋतपर्ण नामवाला महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। वह दिव्य अक्ष (द्यूत) विद्या का रहस्य-वेत्ता राजा नल का सखा तथा बड़ा बली था।

ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्तुपर्णिर्महीपतिः।
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत् ॥२०॥

अर्थ—ऋतुपर्ण का पुत्र राजा आर्तुपर्णि हुआ, जो राजा कल्माषपाद और मित्रसह नाम से भी प्रसिद्ध था।

कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद् विश्रुतः सर्वकर्मणः ॥२२॥

अर्थ—कल्माषपाद के सर्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ और सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य नाम से विख्यात हुआ।

अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः।
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभ सत्तमौ ॥२३॥

अर्थ—नृपश्रेष्ठ! अनरण्य का पुत्र निघ्न हुआ, निघ्न के अनमित्र और रघु नामक दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए।

अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत्।
दिलीपस्तनयस्तस्य रामप्रपितामहः ॥२४॥

अर्थ—अनमित्र के दुलिदुह नामवाला धर्मात्मा और विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ। दुलिदुह के पुत्र दिलीप हुए, जो श्री रामचन्द्र जी के वृद्ध पितामह थे।

दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाभवत् सुतः।
अयोध्यायां महाराजो रघुश्चासीन्महाबलः ॥२५॥

अर्थ—दिलीप के रघु नामक महाबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। ये रघु अयोध्या में महाबली सम्राट् हुए।

अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद् दशरथोऽभवत्।
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः ॥२६॥

अर्थ—रघु से अज उत्पन्न हुए। अज से दशरथ हुए तथा दशरथ से धर्मात्मा एवं महायशस्वी श्रीरामचन्द्र प्रकट हुए।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥२७॥

अर्थ—श्रीराम के कुश नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। कुश के अतिथि नामक पुत्र हुआ और अतिथि के पुत्र का नाम निषध था।

निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥२८॥

अर्थ—निषध का पुत्र नल, नल का पुत्र नभ, नभ का पुत्र पुण्डरीक और पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा हुआ।

क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद् देवानीकः प्रतापवान्।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकसुतः प्रभुः ॥२९॥

अर्थ—क्षेमधन्वा का पुत्र प्रतापी देवानीक हुआ, देवानीक के अहीनगु नामक प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न हुआ।

अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः।
सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृपः ॥३०॥

अर्थ—अहीनगु का पुत्र राजा सुधन्वा हुआ और सुधन्वा का पुत्र अनल नामक राजा हुआ।

उक्थो नाम स धर्मात्मानलपुत्रो बभूव ह।
वज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः ॥३१॥

अर्थ—अनल के उक्थ नामक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ और उन महात्मा उक्थ के पुत्र का नाम वज्रनाभ हुआ।

शङ्खस्तस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः।
पुष्पस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥३२॥

अर्थ—वज्रनाभ के शंख नामक विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो व्युषिताश्व के नाम से भी प्रसिद्ध है। शंख का पुत्र पुष्प और पुष्प का पुत्र विद्वान् अर्थ-सिद्धि था।

सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः ॥३३॥

अर्थ—अर्थसिद्धि का पुत्र सुदर्शन, सुदर्शन से अग्निवर्ण, अग्निवर्ण का पुत्र शीघ्र और शीघ्र से मरु नामक पुत्र हुआ।

मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थितः।
तस्यासीद् विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥३४॥

अर्थ—मरु योग का आश्रय लेकर कलापद्वीप में रहने लगे। परम प्रसिद्ध मरु के पुत्र राजा बृहद्बल हुए।

नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥३५॥

अर्थ—भरतर्षभ! पुराण में नल नाम से दो ही राजा प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेन-पुत्र नल और दूसरा इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न (निषध पुत्र) नल।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येनेह कीर्तिताः।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥३६॥

अर्थ—विवस्वान् (सूर्य) के वंश में ये परम तेजस्वी राजा उत्पन्न हुए हैं। यहां इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए मुख्य-मुख्य राजाओं का वर्णन किया गया है।

पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥३७॥
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः।
विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत ॥३८॥

अर्थ—जो मनुष्य अदितिनन्दन भगवान् सूर्य की तथा प्रजाओं के पोषक देवता श्राद्धदेव की इस सृष्टि-परम्परा का भलीभांति पाठ करता है, वह संतानवान् होता और निष्पाप, रजोगुण रहित एवं दीर्घायु हो अन्त में भगवान् सूर्य का सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

इति हरिवंशे आदित्यस्य वंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

११. सोमचरितम्—बुधोत्पत्तिश्च

वैशम्पायन उवाच—

पिता सोमस्य वै राजन् जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः ।
ब्रह्मणो मानसात् पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—राजन् ! प्राचीनकाल में ब्रह्मा जी ने प्रजा की सृष्टि करने का विचार किया। उस समय उनके मानसिक संकल्प से सोम (चन्द्रमा) के पिता भगवान् अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए।

तत्रात्रिः सर्वभूतानां तस्थौ स्वतनयैर्युतः ।
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव चचार सः ॥२॥

अर्थ—अत्रि ऋषि भी प्रजा की सृष्टि में ही संलग्न हुए। वे तथा उनके पुत्र मन, वाणी और कर्म से सब प्राणियों का कल्याण करनेवाले कार्य ही करते थे।

अहिंस्रः सर्वभूतेषु धर्मात्मा संशितव्रतः ।
काष्ठकुडचशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥३॥

अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं महत् पुरा ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥४॥

अर्थ—हमने सुना है कि प्राचीनकाल में प्रशंसनीय व्रत का पालन करने वाले, महातेजस्वी, धर्मात्मा अत्रि ऋषि ने तीन हजार दिव्य वर्षों तक अपनी भुजाएं ऊपर उठाकर काष्ठ, दीवार और पत्थर के समान निश्चल रहकर किसी प्राणी को तनिक भी कष्ठ पहुंचाये बिना ही अनुत्तर नामक महान् तप किया था।

तत्रोर्ध्वरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य ह ।
सोमत्वं तनुरापेदे महासत्त्वस्य भारत ॥५॥

अर्थ—भारत ! अत्रि ऋषि महान् सत्त्वगुण से सम्पन्न थे। वे एकटक देखते हुए ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) रहकर सोम की भावना से खड़े-खड़े तपस्या करते थे, अतः उनका शरीर सोमरूप में परिणत हो गया।

ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः ।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद् दिशः ॥६॥

अर्थ—शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनि के नेत्रों से वह सोमरूप तेज, जलरूप

में वह निकला और दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ आकाश में चढ़ने लगा।

तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥७॥

अर्थ—तब प्रसन्नता में भरी हुई दस दिशारूपी देवियों ने सम्मिलित हो उस तेज को अपने गर्भ में विधिपूर्वक धारण किया, परन्तु वे उस तेज को धारण करने में समर्थ न हो सकीं।

स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः।
पपात भासयँल्लोकाञ्छीतांशु सर्वभावनः ॥८॥

अर्थ—तब (औषध आदि के द्वारा) सब लोकों को पुष्ट करनेवाला शीतल किरणों से सुशोभित वह प्रकाशमान गर्भ लोकों को प्रकाशित करता हुआ दिग्देवियों के उदर से सहसा गिर पड़ा।

यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः।
ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुन्धराम् ॥९॥

अर्थ—जब दिशाएं उस गर्भ के तेज को न रोक सकीं, तो वह गर्भ उनके साथ ही पृथ्वी पर गिर पड़ा।

पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥१०॥

अर्थ—सोम को गिरा हुआ देख लोक-पितामह ब्रह्माजी ने संसार का हित करने की भावना से उसे रथ पर रख लिया।

स हि वेदमयस्तात धर्मात्मा सत्यसंग्रहः।
युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम् ॥११॥

अर्थ—तात! हमने सुना है कि वह रथ वेदमय, धर्म-स्वरूप तथा सत्य से नियन्त्रित था। उसमें एक हजार श्वेत घोड़े जुते हुए थे।

तस्मिन् निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त ये श्रुताः ॥१२॥

अर्थ—अत्रिपुत्र भगवान् सोम के गिरने पर ब्रह्मा जी के सुप्रसिद्ध सात मानस पुत्र उनकी स्तुति करने लगे।

तथैवाङ्गिरसस्तत्र भृगुरेवात्मजैः सह।
ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुलैरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥१३॥

अर्थ—अङ्गिरा-गोत्री भृगु ऋषि और उनके पुत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद (सामवेद) और अथर्ववेद की अनेक श्रुतियों से सोम की स्तुति करने लगे।

तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः।
आप्यायमानं लोकांस्त्रीन् भासयामास सर्वशः ॥१४॥

अर्थ—('अंशु' रंशुष्टे देव सोमाप्यायताम्' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा) स्तुति करने पर पुष्ट हुआ प्रकाशमान सोम का तेज तीनों लोकों को सर्वथा प्रकाशित करने लगा।

स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम्।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥१५॥

अर्थ—तब उन परम यशस्वी (ब्रह्माजी) ने उस (सोमवान्) श्रेष्ठ रथ में बैठकर समुद्र तक की पृथ्वी की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की।

तस्य यच्च्यावितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत।
ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा प्रज्वलन्त्युत ॥१६॥

अर्थ—उस समय (रथ के वेग से छलक कर) सोम का जो तेज पृथ्वी पर टपकने लगा, उस तेज से प्रकाशपूर्ण ओषधियां उत्पन्न हुईं।

ताभिर्धार्यास्त्रयो लोकाः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः।
पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो जगतीपते ॥१७॥

अर्थ—उन ओषधियों से भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक—इन तीनों लोकों का और जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज्ज—इन चार प्रकार की प्रजाओं का पालन होता रहता है। राजन्! इस प्रकार भगवान् सोम सम्पूर्ण-जगत् का पोषण करते हैं।

स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः।
तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥१८॥

अर्थ—महाभाग! उन स्मृतिरूप कर्मों से तेजस्वी होकर भगवान् सोम ने एक हजार पद्म वर्षों तक तप किया।

हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत्।
निधिस्तासामभूद्देवः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा ॥१९॥

अर्थ—चांदी के समान शुक्ल वर्णवाली जो जल की अधिष्ठात्री देवियां अपने स्वरूपभूत जल से जगत् का पालन करती हैं, चन्द्रदेव उनकी निधि हुए। वे अपने कर्मों से विख्यात हैं।

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च जनमेजय ॥२०॥

अर्थ—जनमेजय ! तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को बीज, ओषधि, ब्राह्मण और जल का राजा बना दिया।

सोऽभिषिक्तो महाराज राजराज्येन राजराट्।
लोकांस्त्रीन् भासयामास स्वभासा भास्वतां वरः ॥२१॥

अर्थ—महाराज ! जब प्रकाशवानों में श्रेष्ठ चन्द्रमा का इन चारों के राज्य पर सम्राट् के रूप में अभिषेक हो गया, तब (सम्राट्) चन्द्रमा अपनी कान्ति से तीनों लोकों को प्रकाशित करने लगे।

सप्तविंशतिमिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः।
ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः ॥२२॥

अर्थ—उस समय प्रचेताओं के पुत्र दक्ष ने अपनी महाव्रत-धारिणी सत्ताईस कन्याएं चन्द्रमा को ब्याह दीं, जिन्हें विद्वान् पुरुष सत्ताईस नक्षत्रों के रूप में जानते हैं।

स तत् प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां वरः।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥२३॥

अर्थ—इस बड़े भारी राज्य को पाकर पितृ देवताओं में श्रेष्ठ सोम ने राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें उन्होंने एक लाख गौएं दक्षिणा में दी थीं।

होतास्य भगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान् भृगुः।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् ॥२४॥

अर्थ—सोम के (उस यज्ञ में) भगवान् अत्रि होता बने। भगवान् भृगु अध्वर्यु, हिरण्यगर्भ उद्गाता तथा वशिष्ठ जी ब्रह्मा बने।

सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम्।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥२५॥

अर्थ—उस यज्ञ में सनत्कुमार आदि प्राचीन ब्रह्मर्षियों ने स्वयं भगवान् नारायण हरि को ही सदस्य बनाया था।

दक्षिणामददात् सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भारत ॥२६॥

अर्थ—भारत ! हमने सुना है कि उन ब्रह्मर्षियों में श्रेष्ठ सदस्यों को सोम ने तीनों लोक दक्षिणा में दे दिए थे।

तं सिनिश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥२७॥

अर्थ उस समय सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी (शोभा)—ये नौ देवियां नित्य-प्रति चन्द्रमा की सेवा में लगी रहती थीं।

प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ।।२८।।

अर्थ – इस प्रकार सभी ऋषि और देवताओं से सत्कार पाकर द्विजराज चन्द्रमा ने अवभृथ स्नान किया, फिर वे दसों दिशाओं को प्रकाशित करने लगे।

तस्य तत् प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यं मुनिसत्कृतम्।
विबभ्राम मतिस्तात विनयादनयाऽऽहता ।।२९।।

अर्थ – तात! मुनियों द्वारा सम्मानित उस दुर्लभ ऐश्वर्य को पाकर चन्द्रमा की बुद्धि विनय से भ्रष्ट हो गयी और उसे अनीति ने धर दबाया।

बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम्।
जहार तरसा सर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान् ।।३०।।

अर्थ—तब उन्होंने अङ्गिरा के सब पुत्रों का तिरस्कार करके बृहस्पति की यशस्विनी भार्या तारा का बलपूर्वक अपहरण कर लिया।

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिः सह।
नैव व्यसर्जयत् तारां तस्मा अङ्गिरसे तदा।
स संरब्धस्ततस्तस्मिन् देवाचार्यो बृहस्पतिः ।।३१।।

अर्थ—देवताओं तथा देवर्षियों के याचना करने पर भी उन्होंने बृहस्पति की स्त्री उनको नहीं लौटायी। तब तो देवताओं के आचार्य बृहस्पति जी उनके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे।

उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तदा।
स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वो बृहस्पतेः ।।३२।।

अर्थ—उस समय शुक्राचार्य ने चन्द्रमा का पक्ष लिया और इन्द्र ने बृहस्पति का; क्योंकि महातेजस्वी रुद्र बृहस्पति के पिता अंगिरा के शिष्य थे।

तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पते।
पार्ष्णिग्राहोऽभवद् देवः प्रगृह्याजगवं धनुः ।।३३।।

अर्थ—उसी गुरुभाई के स्नेह से भगवान् शिव अपना आजगव नामक धनुष लेकर बृहस्पति जी के पार्ष्णिग्राह (सहायक) बने थे।

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना।
उद्दिश्य दैत्यानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ।।३४।।

अर्थ—महात्मा रुद्र ने दैत्यों को लक्ष्य करके ब्रह्मशिर नामक श्रेष्ठ अस्त्र छोड़ा, जिसने उन (दैत्यों) के सारे यश पर ही पानी फेर दिया।

तत्र तद् युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम्।
देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् ॥३५॥

अर्थ—वहां तारा के लिए देवताओं और दानवों में बड़ा भारी युद्ध हुआ, जो तारकामय महासंग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें संसार का बड़ा भारी संहार हुआ।

तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव भारत।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥३६॥

अर्थ—भारत! इस युद्ध में मरने से बचे हुए देवता और तुषितगण आदि-देव सनातन ब्रह्मा जी की शरण में गये।

ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शङ्करम्।
ददावङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥३७॥

अर्थ—तब ब्रह्मा जी ने शुक्राचार्य तथा रुद्रों में श्रेष्ठ शङ्कर को भी समझा-बुझाकर युद्ध करने से रोका; फिर उन्होंने स्वयं ही तारा को लाकर बृहस्पति जी को दिया।

तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा तारां प्राह बृहस्पतिः।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथंचन ॥३८॥

अर्थ—उस समय तारा को गर्भवती देख बृहस्पति जी ने कहा—तुझे मेरे क्षेत्र में किसी तरह पराया गर्भ नहीं धारण करना चाहिए।

अयोनावुत्सृजत् तं सा कुमारं दस्युहन्तमम्।
इषीकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् ॥३९॥

अर्थ—तब तारा ने अयोग्य स्थान सींकों के झुरमुट में जाकर प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी उस भारी दस्युहन्ताकुमार को उत्पन्न किया।

जातमात्रः स भगवान् देवानामक्षिपद् वपुः।
ततः संशयमापन्ना इमामकथयन् सुराः ॥४०॥

अर्थ—उस ऐश्वर्यवान् कुमार ने उत्पन्न होते ही अपने शरीर की कान्ति से देवताओं का तेज फीका कर दिया। तब तो देवता सन्देह में पड़कर तारा से कहने लगे।

सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः।
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा साध्वसाधु वा ॥४१॥

तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ।
तं निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ।।४२।।

अर्थ—'अरी ! सच बता, यह पुत्र चन्द्रमा का है अथवा बृहस्पति का ? परन्तु देवताओं के पूछने पर भी जब उसने भला-बुरा कुछ उत्तर न दिया, तब वह दस्युहन्ताकुमार उसे शाप देने के लिए तैयार होगया। उस समय ब्रह्मा जी ने उसे रोक कर तारा से इस सन्देह को पूछा—

यदत्र तथ्यं तद् ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ।
सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम् ।।४३।।

अर्थ—'तारे ! यह किसका पुत्र है इस बात को तू ठीक-ठीक बता।' तब उसने दोनों हाथ जोड़कर वर देनेवाले प्रभु ब्रह्मा जी से कहा—

सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम् ।
ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः ।।४४।।
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ।
प्रतिकूलं च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ।।४५।।

अर्थ—'प्रभो ! यह सोम का ही पुत्र है।' तब उस गर्भ को धारण करानेवाले प्रजापति चन्द्रमा ने उस महामना दस्युहन्ताकुमार का मस्तक सूंघकर उस बुद्धिमान् पुत्र का नाम 'बुध' रखा। यह बुध जब आकाश में उदय होता है, तब प्रतिकूल चेष्टा (उत्पात) किया करता है।

उत्पादयामास ततः पुत्रं वै राजपुत्रिका ।
तस्यापत्यं महाराजो बभूवैलः पुरूरवाः ।।४६।।

अर्थ—तदनन्तर वैराज मनु की पुत्री इला ने बुध से एक पुत्र उत्पन्न किया। उनके वे पुत्र महाराज पुरूरवा हुए।

उर्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः ।
प्रसह्य धर्षितस्तत्र सोमो वै राजयक्ष्मणा ।।४७।।

अर्थ—महात्मा पुरूरवा के उर्वशी के गर्भ से सात पुत्र उत्पन्न हुए। इधर सोम को हठात् राजयक्ष्मा ने धर दबाया।

ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः ।
जगाम शरणार्थाय पितरं सोऽत्रिमेव तु ।।४८।।

अर्थ—यक्ष्मा से ग्रस्त होने पर चन्द्रमा का मण्डल क्षीण होने लगा, तब वे अपने पिता अत्रि की शरण में पहुंचे।

तस्य तत्तापशमनं चकारात्रिर्महातपाः ।
स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वतः ॥४६॥

अर्थ—महातपस्वी अत्रि ने उनके ताप को दूर कर दिया । वे (चन्द्रमा) राजयक्ष्मा रोग से मुक्त होकर सब ओर से प्रकाशित हो उठे ।

एवं सोमस्य वै जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्धनम् । ।
वंशमस्य महाराज कीर्त्यमानं च मे शृणु ॥५०॥

अर्थ—महाराज ! इस प्रकार मैंने तुमसे चन्द्रमा के जन्म का वर्णन किया, जो कीर्ति को बढ़ानेवाला है । अब मेरे द्वारा चन्द्रमा के वंश का वर्णन सुनो ।

धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं संकल्पसाधनम् ।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥५१॥

अर्थ—मनुष्य चन्द्रमा के जन्म को सुनते ही सब पापों से मुक्त हो जाता है । यह चन्द्रमा के जन्म की कथा धन, आयु, आरोग्य और पुण्य देनेवाली है । इसे सुनने से मनुष्य के सारे संकल्प—मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ।

इति हरिवंशे सोमोत्पत्तिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

---

१२. ऐलचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

बुधस्य तु महाराज विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः ।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१॥
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः ।
आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः ॥२॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—महाराज ! बुध के विद्वान् पुत्र पुरूरवा हुए, जो तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्त्ता, बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले ब्रह्मवादी, युद्ध में पराक्रम दिखानेवाले और शत्रुओं से दुर्जय थे । वे राजा अग्निहोत्र और यज्ञों के अनुष्ठान करनेवाले थे ।

सत्यवादी पुण्यमतिः काम्यः संवृतमैथुनः ।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमस्तदा ॥३॥

अर्थ—राजा पुरूरवा सत्यभाषी और पवित्र विचारवाले थे। उनका रूप वड़ा सुन्दर था और वे गुप्तरूप से सहवास करनेवाले थे। वे अपने समय में तीनों लोकों में अनुपम यशस्वी थे।

तं ब्रह्मवादिनं क्षान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम्।
उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४॥

अर्थ—उन ब्रह्मवादी, क्षमापरायण, धर्मज्ञ तथा सत्यभाषी राजा को यशस्विनी उर्वशी अप्सरा ने गर्व का परित्याग करके पति रूप में वरण कर लिया था।

तया सहावसद् राजा वर्षाणि दश पञ्च च।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दस चाष्टौ च भारत ॥५॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥६॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरथफलद्रुमान्।
गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे ॥७॥

अर्थ—भारत! राजा पुरूरवा उस अप्सरा के साथ दस वर्ष तक रमणीय चैत्ररथ वन में, पांच वर्ष तक मन्दाकिनी के तट पर बसी हुई अलकापुरी में, पांच वर्ष तक बदरीनारायण के वनों में, छः वर्ष तक उत्तम उपवन नन्दन वन में, सात वर्ष तक मनोरथ-रूप फल को देनेवाले वृक्षों से परिपूर्ण उत्तर कुरु देशों में, आठ वर्ष तक गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर, दस वर्ष तक मेरु पर्वत पर तथा आठ वर्ष तक उत्तराचल पर विहार करते रहे।

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८॥

अर्थ—राजा पुरूरवा उर्वशी को साथ में लेकर देवताओं से सेवित इन मुख्य-मुख्य वनों में बड़े आनन्द के साथ विहार किया करते थे।

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते।
राज्यं च कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥९॥

अर्थ—पृथ्वीपति पुरूरवा (उर्वशी के साथ) महर्षियों से प्रशंसित परम-पवित्र देश प्रयाग में राज्य करते थे।

तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥१०॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥११॥

अर्थ—राजा के द्वारा उर्वशी के गर्भ से स्वर्ग में देव-पुत्रों के तुल्य आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु, और शतायु नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी महान् आत्मबल से सम्पन्न थे।

जनमेजय उवाच—

गान्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् ।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ॥१२॥

अर्थ—जनमेजय ने पूछा- बहुश्रुत वैशम्पायन जी ! उर्वशी देवी तो अप्सरा थी, फिर देवताओं का परित्याग कर वह मनुष्य राजा के पास क्योंकर गयी ? यह मुझे बताइये।

वैशम्पायन उवाच—

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत ।
ऐलं तु सा वरारोहा समयात् समुपस्थिता ॥१३॥

अर्थ—वैशम्पायन जी ने कहा—राजन् ! ब्रह्मश्राप के कारण उर्वशी को मनुष्यलोक में आना पड़ा था। वह सुन्दर अंगोंवाली उर्वशी कुछ शर्तों के साथ इला-नन्दन पुरूरवा के पास रही थी।

आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह ।
अनग्नदर्शनं चैव सकामायां च मैथुनम् ॥१४॥
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः ।
घृतमात्रो तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव ॥१५॥

अर्थ—भूपाल ! उसने अपने शाप से छूटने के लिये यह शर्त करा ली थी कि 'मैं आपको नंगा न देखूं, मेरे सकाम होने पर ही आप सहवास करें, मेरे पलंग के पास सदा दो मेंड़ बंधे रहेंगे और मैं दिन में एक बार थोड़ा-सा घृतमात्र भोजन करूंगी।

यद्येष समयो राजन् यावत्कालं च ते दृढः ।
तावत्कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः ॥१६॥

अर्थ—राजन् ! जब तक इन प्रतिज्ञाओं का आप दृढ़ता के साथ पालन करते रहेंगे, तब तक मैं आपके पास रहूंगी—यह मैं आपसे प्रतिज्ञा कहती हूं।'

तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत् ।
एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी ॥१७॥

अर्थ—राजा उसकी सब शर्तों का पालन करने लगे। बस प्रकार वह श्रेष्ठ अप्सरा पुरूरवा के यहां रहने लगी।

वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता ।
उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः ॥१८॥

अर्थ—शाप के कारण उर्वशी को जब राजा में आसक्त होकर रहते हुए उनसठ वर्ष बीत गये, तब गन्धर्वों को मनुष्यों के बीच बसनेवाली उर्वशी की चिन्ता हुई ।

गन्धर्वा ऊचुः—

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना ।
समागच्छेत् पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम् ॥१९॥

अर्थ—**गन्धर्वों ने कहा**—महाभागो ! वराङ्गना उर्वशी देवताओं में फिर किस प्रकार आवे ? इसका उपाय सोचो; क्योंकि वह स्वर्ग का भूषण है ।

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः ।
मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा ॥२०॥

अर्थ—तब वक्ताओं में श्रेष्ठ विश्वावसु नामक गन्धर्व ने कहा—'उन दोनों ने पहले जो प्रतिज्ञाएं की थीं, उन्हें मैंने सुना है ।

व्युत्क्रान्तसमयं सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा ।
तदहं वेद्म्यशेषेण यथा भेत्स्यत्यसौ नृपः ॥२१॥

अर्थ—राजा के प्रतिज्ञा भङ्ग करने पर वह उसे छोड़ देगी । उस राजा की प्रतिज्ञा जिस प्रकार टूटेगी, मैं उसे भी भलीभांति जानता हूं ।

ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये ।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः ॥२२॥

अर्थ—'तुम्हारे काम को सिद्ध करने के लिए अपने सहायकों को साथ लेकर मैं वहां जाऊंगा ।' यों कहकर वह महायशस्वी गन्धर्व प्रतिष्ठानपुर (झूंसी-प्रयाग) में गये ।

निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः ।
मातृवद् वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥२३॥

अर्थ—वहां आकर उन्होंने रात में एक भेंड़ चुरा ली । मनोहर हासवाली वह उर्वशी उन भेंड़ों पर माता के समान स्नेह करती थी ।

गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी ।
राजानमब्रवीत् तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा ॥२४॥

अर्थ—यशस्विनी उर्वशी ने गन्धर्वों के आगमन को सुनकर बिचारा कि अब

मेरे शाप के अन्त होने का समय आ गया, तब उसने राजा से कहा—'राजन् ! मेरे एक बच्चे को चोर चुरा ले गये।'

एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत।
नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत् ॥२५॥

अर्थ—यह कहने पर भी वह यह विचारकर नंगा नहीं उठा कि यदि यह देवी मुझे नंगा देख लेगी तो मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जायेगी।

ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः।
द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम् ॥२६॥

अर्थ—इतने ही में गन्धर्व पुनः दूसरे भेंड़ को भी उठा ले गये। दूसरे भेंड़ के चुराये जाने पर देवी उर्वशी ने पुरूरवा से यह कहा—

पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो।
एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥२७॥
मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्यथ।
उत्पादिता सुमहती ययौ तद्भवनं महत् ॥२८॥
प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत।
नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साप्सरा कामरूपिणी ॥२९॥

अर्थ—'सामर्थ्यशाली राजन् ! अनाथ स्त्री के समान मेरे पुत्रों को छीन लिया गया।' यों उर्वशी के कहने पर राजा नंगे ही उठकर भेड़ों के पैर के चिह्न का अनुसरण करते हुए दौड़े। इसी समय गन्धर्वों ने बड़ी भारी बिजली चमकायी। उस समय वह विशाल भवन एक साथ प्रकाशित होगया। तब तो उर्वशी ने राजा को नंगा देख लिया। वह कामरूपिणी अप्सरा राजा को नंगा देखते ही अन्तर्धान हो गयी।

उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे।
अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥३०॥

अर्थ—उधर राजा भी (गन्धर्वों, के छोड़े हुए भेड़ों को देख उन्हें साथ लेकर घर में घुसे, पर वहां उन्हें उर्वशी नहीं दिखायी दी। तब वे परम दुःखित हो विलाप करने लगे।

चचार पृथिवीं सर्वां मार्गमाण इतस्ततः।
अथापश्यत् स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥३१॥
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम्।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥३२॥

अर्थ—फिर वे उर्वशी को खोजते हुए पृथ्वी पर सर्वत्र घूमने लगे। कुछ समय के अनन्तर उन महाबली नरेश ने उस शोभामयी अप्सरा को कुरुक्षेत्र के प्लक्षतीर्थ की हैमवती नामवाली पुष्करिणी में स्नान कर अपनी पांच सखियों के साथ क्रीड़ा करते देखा।

तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः।
सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः ॥३३॥
उर्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः।
यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ॥३४॥

अर्थ क्रीड़ा करती हुई उर्वशी को देखकर राजा दुःखित होकर विलाप करने लगे। इधर उर्वशी ने भी उस राजा को समीप ही देखकर अपनी सखियों से राजा को दिखाया और कहा—'ये वे ही पुरुषोत्तम हैं, जिनके पास मैं रही थी।'

समाविग्नास्तु ताः सर्वाः पुनरेव नराधिपः।
जाये ह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ॥३५॥
एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत।
उर्वशी चाब्रवीदैलं सगर्भाहं त्वया प्रभो ॥३६॥

अर्थ—उस समय वे सभी अप्सराएं (उर्वशी के पुनर्गमन की आशङ्का से) घबरा गयीं। इधर राजा उससे फिर कहने लगे—'प्रिये! तू थोड़ा ठहर, ओ कठोर हृदयवाली! ठहर जा और अपने वचनों पर दृढ़ रह! इस प्रकार वैदिक-सूक्तों को वे दोनों एक-दूसरे के प्रति उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में कहने लगे। उस समय उर्वशी ने इला-पुत्र पुरूरवा से कहा—'प्रभो! मैं आपके द्वारा गर्भवती हूं।'

संवत्सरात् कुमारास्ते भविष्यन्ति नः संशयः।
निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह ॥३७॥

'राजन्! निस्सन्देह एक-एक वर्ष पर मेरे गर्भ से आपके कुमार उत्पन्न होंगे तथा प्रतिवर्ष एक रात्रि आप मेरे साथ रह सकेंगे।'

हृष्टो जगाम राजाथ स्वपुरं तु महायशाः।
गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत् ॥३८॥

अर्थ—तब वे महायशस्वी राजा प्रसन्न हो गये और अपने नगर में आ गये। वर्ष समाप्त होने पर उर्वशी उनके पास फिर आयी।

उषितश्च तया सार्द्धमेकरात्रं महायशाः।
उर्वश्यथाब्रवीदैलं गन्धर्वा वरदास्तव ॥३९॥

अर्थ—महायशस्वी पुरूरवा उसके साथ एक रात्रि रहे। तदनन्तर उर्वशी ने पुरूरवा से कहा—'गन्धर्व आपको वर देना चाहते हैं।

तान् वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैनांस्त्वमेव हि।
वृणीष्व समतां राजन् गन्धर्वाणां महात्मनाम् ॥४०॥

अर्थ—'महाराज ! अब आप वर मांग लीजिए। आप इनसे इन महात्मा गन्धर्वों की समता मांग लीजिये।'

तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति।
पूरयित्वाग्निना स्थालीं गन्धर्वाश्च तमब्रुवन् ॥४१॥

अर्थ—तब पुरूरवा ने 'बहुत अच्छा' कहकर गन्धर्वों से वर मांग लिया। तब गन्धर्वों ने 'बहुत अच्छा, 'ऐसा ही होगा,' कहकर एक थाली में अग्नि भरकर पुरूरवा से कहा—

अनेनेष्ट्वा च लोकान्नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप।
तानादाय कुमारांस्तु नगरायोपचक्रमे ॥४२॥

अर्थ—'राजन् ! इस अग्नि से यज्ञ करके तुम हमारे लोकों में आ जाओगे।' तब वे राजा (अग्नि और) अपने पुत्रों को लेकर नगर की ओर चले।

निक्षिप्याग्निमरण्ये तु सपुत्रस्तु गृहं ययौ।
स त्रेताग्निं तु नापश्यदश्वत्थं तत्र दृष्टवान् ॥४३॥

अर्थ—(मार्ग में) उन्होंने वन में अग्नि को रख दिया और अपने पुत्रों को लेकर घर में प्रवेश किया। फिर वन में जाने पर वहां उन्होंने अग्नि को नहीं देखा; किन्तु उसकी जगह एक पीपल के वृक्ष को खड़ा देखा।

शमीजातं तु तं दृष्ट्वा अश्वत्थं विस्मितस्तदा।
गन्धर्वेभ्यस्तदाशंसदग्निनाशं ततस्तु सः ॥४४॥

अर्थ—तब वे राजा (अग्नि को अपने गर्भ में छिपानेवाले) शमी (जंड) के वृक्ष में से उत्पन्न हुए पीपल को देखकर विस्मय में पड़ गये और उन्होंने गन्धर्वों से अग्नि के न दीखने का वृत्तान्त कहा।

श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणीं तु समादिशन्।
अश्वत्थादरणीं कृत्वा मथित्वाग्निं यथाविधि ॥४५॥
मथित्वाग्निं त्रिधा कृत्वा अयजत् स नराधिपः।
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् ॥४६॥

अर्थ—गन्धर्वों ने सब बात को सुनकर कहा, 'तुम पीपल की अरणी बना लो' तब उन्होंने पीपल की अरणी बनाकर शास्त्रीय विधि के अनुसार उन

अरणियों को मथकर अग्नि को उत्पन्न किया। फिर उस अग्नि के तीन विभाग किए। तदनन्तर उस अग्नि से उन्होंने यजन किया था! वे उस त्रेताग्नि से अनेक प्रकार के यज्ञ कर गन्धर्वों की समानता पाकर गन्धर्वों के लोक में पहुंच गये।

गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत्।
एकोऽग्निः पूर्वमेवासीदैलस्त्रेतामकारयत् ॥४७॥

अर्थ—राजा पुरूरवा ने गन्धर्वों से वर पाकर त्रेताग्नि की रचना की थी। पहले अग्नि एक ही था, पुरूरवा ने उसको तीन बनाया था।

एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तम।
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ॥४८॥
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः।
उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥४९॥

अर्थ—नरश्रेष्ठ! राजा पुरूरवा ऐसे प्रतापी थे। उन महायशस्वी पृथ्वीपति ने गङ्गा के उत्तर तट पर बसे हुए महर्षियों से प्रशंसित परम पवित्र प्रतिठान (झूंसी—प्रयाग) में राज्य किया था।

इति हरिवंशे ऐलोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

---

१३. अमावसुवंशानुचरितम्–विश्वामित्रचरितम् च

वैशम्पायन उवाच—

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सर्वे देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥१॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥२॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय! पुरूरवा के सभी पुत्र देवकुमारों के तुल्य थे। (उनके नाम इस प्रकार हैं—) आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु और शतायु।

अमावसोश्च दायादो भीमो राजाथ नग्नजित्।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत् काञ्चानप्रभः।
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥३॥

अर्थ—अमावसु के राजा भीम और नग्नजित् नामक पुत्र हुए थे। भीम के पुत्र श्रीमान् राजा काञ्चनप्रभ हुए। काञ्चन के महाबली पुत्र सुहोत्र हुए, जो बड़े विद्वान् थे।

सौहोत्रिरभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः।
आजह्रे यो महत्सत्रं सर्वमेधमहामखम् ॥४॥

अर्थ—सुहोत्र के केशिनी के गर्भ से जह्नु नामक पुत्र हुए। उन्होंने सर्वमेध नामक महायज्ञ का अनुष्ठान किया था (जिसमें बहुत बड़ा 'अन्नसत्र' होता है)।

पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेऽभिससार ह।
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गां च तत्सदः।
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥५॥
सौहित्रिरब्रवीद् गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम ॥६॥

अर्थ—गङ्गा जी उनको पति बनाने के लोभ से उनके पास गयी थीं, परंतु जब उन्होंने इस बात की इच्छा न की, तब गङ्गा जी ने उनकी सभा को जल से भर दिया था। भरतसत्तम! सुहोत्र-पुत्र जह्नु ने अपने यज्ञवाट को गङ्गा जी के द्वारा डूबता हुआ देख क्रोध में भरकर गङ्गा जी से कहा—

एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम्।
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥७॥

अर्थ—'गङ्गे! मैं तेरे इस जल को पीकर तेरे यत्न को व्यर्थ किए देता हूं। तू अपने अभिमान का फल शीघ्र ही पा ले।'

राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः।
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ॥८॥

अर्थ—तदनन्तर उन महर्षियों ने गङ्गा जी को पी लिया। यह देखकर महर्षियों ने महाभागा गंगा जी को उनकी पुत्री मानकर (उनका नाम) जाह्नवी रख दिया।

युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्।
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्धेन विनिर्ममे।
कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥९॥

अर्थ—जह्नु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह किया था, जिसे युवनाश्व के शाप से गंगा ने अपने ही आधे भाग द्वारा प्रकट किया था, इस प्रकार सरिताओं में श्रेष्ठ साध्वी कावेरी जह्नु की भार्या हुई।

जह्नुस्तु दयितंपुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम्।
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥१०॥

अर्थ—जह्नु ने कावेरी के गर्भ से सुनह नामक धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया सुनह के पुत्र अजक हुए।

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः
वभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥११॥

अर्थ—अजक के पुत्र राजा बलाकाश्व हुए। उनको मृगया का व्यसन था। उनके पुत्र कुश हुए।

कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाश्वो मूर्तिमांस्तथा ॥१२॥

अर्थ—कुश के देवताओं के समान कान्तिमान् कुशिक, कुशनाभ, कुशाम्ब और मूर्तिमान् नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए।

पह्लवैः सह संवृद्धि राजा वनचरैस्तदा।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमप्रभम्।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥१३॥

अर्थ—राजा कुशिक वनवासी पह्लवों के साथ पलकर बड़े हुए थे। उन्होंने इन्द्र के समान प्रभाववाले पुत्र को पाने की इच्छा से तप करना आरम्भ कर दिया। तब इन्द्र उनके भय से स्वयं ही उनके यहां पुत्र बनकर उत्पन्न हो गये।

पूर्णे वर्षसहस्रे वै तं तु शक्रो ह्यपश्यत।
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः ॥१४॥
समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः सुरोत्तमः ॥१५॥

अर्थ—राजा कुशिक को जब (तप करते) एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तब इन्द्र का ध्यान कुशिक की ओर गया, हजार नेत्रोंवाले पुरन्दर इन्द्र ने राजा को अति उग्र तप करके पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ देख उन (के वीर्य) में अपने अंश को स्थापित कर दिया। इस प्रकार देवेन्द्र सुरोत्तम कुशिक के पुत्र बने थे।

सगाधिरभवद् राजा मघवान् कौशिकः स्वयम्।
पौरुकुत्स्यभवद् भार्या गाधिस्तस्यामजायत ॥१६॥

अर्थ—इस प्रकार इन्द्र स्वयं (कुशिक के पुत्र) कौशिक गाधि बनकर उत्पन्न

हुए थे। राजा कुशिक की पत्नी पुरुकुत्स की पुत्री थी, उसके गर्भ से ही गाधि उत्पन्न हुए थे।

गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा।
तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ॥१७॥

अर्थ—गाधि की महाभाग्यवती शुभ कन्या का नाम सत्यवती था, राजा गाधि ने सत्यवती का विवाह भृगु-पुत्र ऋचीक के साथ कर दिया था।

तस्याः प्रीतोऽभवद् भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः।
पुत्रार्थं कारयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥१८॥

अर्थ—सत्यवती के स्वामी भृगुवंशी ऋचीक ने अपनी पत्नी के ऊपर प्रसन्न होकर उसके और गाधि के लिए पुत्र देनेवाला चरु बनाया।

उवाचाहूय तां भर्ता ऋचीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव ॥१९॥

अर्थ—तदनन्तर सत्यवती के स्वामी भृगुवंशी ऋचीक ने सत्यवती को बुलाकर कहा—'तू इस चरु का उपयोग करना और इस (दूसरे) चरु का उपयोग करने के लिए अपनी माता से कहना।

तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभः।
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥२०॥

अर्थ—'तुम्हारी माता के जो पुत्र होगा, वह क्षत्रियों में श्रेष्ठ, दीप्तिमान्, संसार में क्षत्रियों से अजेय और बड़े-बड़े क्षत्रियों को दबानेवाला होगा।

तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोनिधिम्।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥२१॥

अर्थ—'कल्याणि! यह चरु तुम्हें भी धैर्यधारी तपोनिधि शान्तस्वरूप द्विज-श्रेष्ठ पुत्र देगा।'

एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥२२॥

अर्थ—सदा तपस्या में ही तत्पर रहनेवाले भृगुनन्दन ऋचीक अपनी पत्नी से इस प्रकार कहकर (तप करने के लिए) वन में चले गये।

गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकावासमभ्यगात्।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः ॥२३॥

अर्थ—उसी समय राजा गाधि अपनी भार्या के साथ तीर्थयात्रा के प्रसंग से अपनी पुत्री को देखने के लिए ऋचीक ऋषि के आश्रम पर आये।

चरुद्वयं गृहीत्वा तदृषेः सत्यवती तदा।
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ॥२४॥

अर्थ—तब सत्यवती ने ऋषि के दिए हुए दोनों चरुओं को ग्रहण करके उन्हें यत्नपूर्वक अपनी माता के सामने लाकर रख दिये।

माता व्यत्यस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ॥२५॥

अर्थ—तब दैववश माता ने चरु बदलकर पुत्री को अपना चरु दे दिया और उसने अज्ञानवश पुत्री के चरु को स्वयं खा लिया।

अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम् ॥२६॥

अर्थ—तदनन्तर सत्यवती ने क्षत्रियों का संहार करनेवाले गर्भ को धारण कर लिया, जो अपने शरीर की कान्ति के कारण घोर (क्रूर) दीखने लगा।

तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च।
तामब्रवीद् द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ॥२७॥

अर्थ—उसको देखकर ऋषि ने ध्यान के द्वारा सारी बातों को जान लिया। फिर द्विजश्रेष्ठ ऋचीक ऋषि अपनी श्रेष्ठ अंगोंवाली भार्या से कहने लगे—

मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः ॥२८॥
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः।
विश्वं हि ब्रह्मतपसा मया तस्मिन् समर्पितम् ॥२९॥

अर्थ—'भद्रे! माता ने तुझे ठग लिया है, चरु में उलट-फेर होने से तेरा पुत्र अत्यन्त दारुण क्रूर कार्य करनेवाला होगा और तेरा भाई तपस्या का धनी एवं ब्रह्म-स्वरूप होगा, मैंने तप के द्वारा उस (चरु) में सारा वेद भर दिया था।'

एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा।
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्।
ब्राह्मणापसदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥३०॥

अर्थ—पति के इस प्रकार कहने पर महाभाग्यवती सत्यवती स्वामी को प्रसन्न करके बोली—'मेरा पुत्र ऐसा ब्राह्मणाधम न हो।' तब मुनि ने उससे कहा—

नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति।
उग्रकर्मा भवेत् पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात्।

पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ॥३१॥

अर्थ—'भद्रे ! पिता अथवा माता के कारण ही पुत्र क्रूर कर्म करनेवाला हो जाता है, मैंने तो उग्र कर्म करनेवाले पुत्र की कामना नहीं की थी (परन्तु तेरी ही असावधानी से चरु का उलट-फेर हो गया है अतएव ऐसा ही पुत्र होगा), इस प्रकार कहने पर सत्यवती ने फिर कहा—

इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ।
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ॥३२॥

अर्थ—'मुने ! आप चाहें तो तीनों लोकों का निर्माण कर सकते हैं, फिर पुत्र की तो बात ही क्या ? आप तो मुझे शमपरायण सरल पुत्र ही प्रदान करें ।'

काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ।
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेतद् द्विजोत्तम ॥३३॥

अर्थ—प्रभो ! द्विजश्रेष्ठ ! यदि इस बात को पलटा न जा सके तो भले ही आपका और मेरा पौत्र ऐसा हो जाये ।'

ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात् ।
भद्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रं भविष्यति ॥३४॥

अर्थ—तब उन्होंने अपने तपोबल से उसके ऊपर अनुग्रह किया और कहा—'भद्रे ! वरवर्णिनि ! मैं (पुत्र में और) पौत्र में कुछ भेद नहीं समझता, अतः तूने जो कहा है, वह वैसा ही होगा ।'

ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥३५॥

अर्थ—तदनन्तर सत्यवती ने भृगुवंशी जमदग्नि को जन्म दिया, जो तपस्या-परायण, जितेन्द्रिय तथा शम (मनोनिग्रह) से सम्पन्न थे ।

भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा ।
यजनाद् वैष्णवेऽथांशे जमदग्निरजायत । ३६॥

अर्थ—भृगुवंशी ऋचीक मुनि ने पूर्वकाल में जो देवताओं की आराधना की थी, उसी के प्रभाव से रुद्र और विष्णु के अंशभूत उन दोनों चरुओं में उलट-फेर हो जाने पर भी वैष्णव चरु के अंश से शान्तस्वरूप जमदग्नि मुनि का जन्म हुआ ।

सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ॥३७॥

अर्थ—सत्यवती सत्य-धर्म में तत्पर रहनेवाली पुण्यात्मा स्त्री थी। यही कौशिकी नाम से विख्यात महानदी हुई।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ॥३८॥

अर्थ—इक्ष्वाकुवंश में रेणु नामवाले एक नरेश थे। उनकी कन्या महाभागा रेणुका थी, जिसका दूसरा नाम कामली भी था।

रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः।
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ॥३९॥
सर्वविद्यानुगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥४०॥

अर्थ—उस रेणुका या कामली के गर्भ से तपस्वी एवं विद्वान् ऋचीक-पुत्र जमदग्नि ने अत्यन्त कठोर स्वभाववाले परशुराम जी को प्रकट किया, जो समस्त विद्याओं में पारङ्गत, धनुर्वेद में प्रवीण, क्षत्रियकुल का संहार करनेवाले तथा प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी थे।

और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः।
जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥४१॥

अर्थ—इस प्रकार और्व नाम से प्रसिद्ध ऋचीक मुनि के तपोबल से उनकी पत्नी सत्यवती के गर्भ से ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ महायशस्वी जमदग्नि का प्रादुर्भाव हुआ।

मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ॥४२॥
जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम्।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं सप्तर्षितां गतः ॥४३॥

अर्थ—ऋचीक के मझले पुत्र शुनःशेप और छोटे पुत्र शुनःपुच्छ थे। इधर कुशिकनन्दन महाराज गाधि ने विश्वामित्र को पुत्ररूप में प्रकट किया, जो तपस्वी विद्वान् और शान्त थे। वे ब्रह्मर्षि की समता पाकर सप्तर्षियों में प्रतिष्ठित हुए हैं।

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद् वंशवर्धनः ॥४४॥

अर्थ—धर्मात्मा विश्वामित्र का दूसरा नाम विश्वरथ था। वे कुशिकवंशी राजा गाधि के यहां भृगुवंशी ऋचीक मुनि की कृपा से उत्पन्न हुए थे और अपने वंश का विस्तार करनेवाले थे।

विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥४५॥

अर्थ—विश्वामित्र के देवरात आदि बहुत-से पुत्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकों में विख्यात थे । उनके नाम मुझसे सुनो ।

देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः ।
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ॥४६॥
सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः ।
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः ॥४७॥
कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य वै सुताः ।
तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ॥४८॥

अर्थ—देवश्रवा, कात्यायन गोत्र के प्रवर्तक कति और हिरण्याक्ष—ये तीनों शालावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । उनकी दूसरी स्त्री का नाम रेणु था, जिससे रेणुमान्, साङ्कृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय तथा देवल उत्पन्न हुए थे । अष्टक (दृष्टद्वती या माधवी का पुत्र था), कच्छप और हारित भी विश्वामित्र के ही पुत्र थे । इन कौशिकवंशी महात्माओं के प्रसिद्ध गोत्र इस प्रकार हैं ।

पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ।
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कलाः ॥४९॥
लोहिता यामदूताश्च तथा कारीषवः स्मृताः ।
सौश्रुताः कौशिका राजंस्तथान्ये सैन्धवायनाः ॥५०॥
देवला रेणवश्चैव याज्ञवल्क्याघमर्षणाः ।
औदुम्बरा ह्यभिष्णातास्तारकायनचुञ्चुलाः ॥५१॥
शालावत्या हिरण्याक्षाः सांकृत्या गालवास्तथा ।
बादरायणिनश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः ॥५२॥

अर्थ—राजन् ! पाणिन, बभ्रु, ध्यानजप्य, पार्थिव, देवरात, शालङ्कायन, बाष्कल, लोहित, यामदूत, कारीषु, सौश्रुत, कौशिक, सैन्धवायन, देवल, रेणु, याज्ञवल्क्य, अघमर्षण, औदुम्बर, अभिष्णात, तारकायन, चुञ्चुल, शालावत्य, हिरण्याक्ष, साङ्कृत्य, गालव तथा बादरायणि—ये तथा और भी बहुत से बुद्धिमान् विश्वामित्र के पुत्र थे ।

ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः ।
पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च ।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन्ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥५३॥

अर्थ—कौशिक-गोत्री ब्राह्मणों की संख्या बहुत है। वे अन्य ऋषियों के कुल में विवाह–सम्बन्ध स्थापित करने के योग्य हैं। महाराज! राजर्षि पौरव तथा ब्रह्मर्षि कौशिक के कुल में सम्बन्ध हुआ है। इस प्रकार इस वंश में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का परस्पर वैवाहिक-सम्बन्ध विख्यात है।

विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः।
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥५४॥

अर्थ—विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेप सबसे बड़े माने गये हैं। मुनिश्रेष्ठ शुनःशेप का जन्म यद्यपि भृगुकुल में हुआ था तथापि वे कौशिक-गोत्री हो गये।

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥५५॥
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः।
देवैर्दत्तः स वै यस्माद् देवरातस्ततोऽभवत् ॥५६॥

अर्थ—कहते हैं, राजा हरिदश्व (हरिश्चन्द्र) के यज्ञ में शुनःशेप पशु बनाकर लाये गये थे। उसी समय वे विश्वामित्र के पुत्र हुए। देवताओं ने विश्वामित्र के हाथ में पुनः शुनःशेप को दे दिया था। देवताओं द्वारा प्रदत्त होने के कारण वे ('देवैः रातः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार) देवरात नाम से विख्यात हुए।

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः।
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात् तथाष्टकः ॥५७॥

अर्थ—विश्वामित्र के देवरात आदि सात प्रमुख पुत्र थे। उन्हीं से अष्टक का भी जन्म हुआ था, जो दृषद्वती का पुत्र था।

अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥५८॥

अर्थ—अष्टक का पुत्र लौहि बताया गया है। इस प्रकार मैंने जह्नुकुल का वर्णन किया। इसके बाद महात्मा आयु के वंश का वर्णन करूंगा।

इति हरिवंशपर्वण्यमावसुवंशकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

———

१४. रजिचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

आयोः पुत्रास्तथा पञ्च सर्वे वीरा महारथाः ।
स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृप ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—नरेश्वर ! स्वर्भानुकुमारी प्रभा आयु की पत्नी थी । उसके गर्भ से आयु के पांच पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब वीर और महारथी थे ।

नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम् ।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥२॥

अर्थ उनमें सबसे पहले नहुष का जन्म हुआ । तत्पश्चात् वृद्धशर्मा उत्पन्न हुए । तदनन्तर क्रमशः रम्भ, रजि और अनेना प्रकट हुए । ये तीनों लोकों में विख्यात थे ।

रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै ।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥३॥

अर्थ—रजि ने पांच सौ पुत्रों को जन्म दिया । वे सभी क्षत्रिय राजेय नाम से विख्यात हुए । उनसे इन्द्र भी डरते थे ।

यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥४॥
आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति ।
ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छामि ते वचः ॥५॥

अर्थ— पूर्वकाल में देवताओं तथा असुरों में अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ होने पर उन दोनों पक्षों के लोगों ने पितामह ब्रह्माजी से पूछा—'भगवन् ! सर्वभूतेश्वर ! बताइये, हम दोनों के युद्ध में कौन विजयी होगा ? हम इस विषय में आपकी यथार्थ बात सुनना चाहते हैं ।

ब्रह्मोवाच—

येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ।
योत्स्यते ते जयिष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥६॥

अर्थ—ब्रह्मा जी ने कहा—शक्तिशाली राजा रजि हाथ में हथियार लेकर जिनके लिए संग्राम-भूमि में खड़े हो युद्ध करेंगे, वे तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर लेंगे । इसमें संशय नहीं है ।

यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः ।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥७॥

अर्थ—जिस पक्ष में रजि हैं, उधर ही धृति है जहां धृति है वहीं लक्ष्मी है तथा जहां धृति और लक्ष्मी हैं वहीं धर्म एवं विजय है ।

ते देवदानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजेर्जये ।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वाना भरतर्षभः ।८॥

अर्थ—भरतकुलभूषण जनमेजय ! रजि की विजय के विषय में ब्रह्मा जी के ऐसा कहने पर देवता और दानव प्रसन्न हो अपनी-अपनी विजय चाहते हुए रजि का वरण करने के लिए उनके पास गये ।

स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत ।
राजा परमतेजस्वी सोमवंशप्रवर्धनः ॥९॥

अर्थ—वे राहु के दौहित्र थे । राहु की पुत्री प्रभा के गर्भ से उनका जन्म हुआ था । सोमवंश की वृद्धि करनेवाले वे राजा रजि बड़े तेजस्वी थे ।

ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं देवाश्च दानवाः ।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥१०

अर्थ—समस्त देवता और दानव दोनों प्रसन्नचित्त हो रजि के पास जाकर बोले—'राजन् ! आप हमारी विजय के लिए अपना श्रेष्ठ धनुष धारण कीजिये ।'

अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः ।
स्वार्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥११॥

अर्थ—तब स्वार्थ को समझनेवाले रजि ने वहां स्वार्थ को सामने रखकर अपने यश को प्रकाश में लाते हुए देवता और दानव दोनों पक्ष के लोगों से कहा—

रजिरुवाच—

यदि दैत्यगणान् सर्वाञ्जित्वा शक्रपुरोगमाः ।
इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ।।१२॥

अर्थ—रजि बोले—इन्द्रादि देवताओ ! यदि मैं समस्त दैत्यों को जीतकर धर्मतः इन्द्र हो सकूं तो तुम्हारी ओर से रणभूमि में युद्ध करूंगा ।

देवाः प्रथमतो भूयः प्रत्यूचुर्हृष्टमानसाः ।
एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥१३॥

अर्थ—यह सुनकर देवताओं ने फिर प्रसन्नचित्त हो पहले ही उत्तर दिया—'नरेश्वर ! ऐसा ही होगा। तुम्हारी अभीष्ट कामना पूर्ण हो।'

श्रुत्वा सुरगणानां तु वाक्यं राजा रजिस्तदा।
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥१४॥

अर्थ—देवताओं की यह बात सुनकर उस समय राजा रजि ने मुख्य-मुख्य असुरों से वैसी ही बात पूछी जैसी देवताओं से पूछी थी।

दानवा दर्पपूर्णास्तु स्वार्थमेवानुगम्य ह।
प्रत्यूचुस्ते नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥१५॥

अर्थ—तब अहंकारी दानवों ने स्वार्थ को सामने रखकर अनुसरण करते हुए उन नृपश्रेष्ठ को अभिमानपूर्वक यों उत्तर दिया—

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे।
अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा राजसत्तम ॥१६॥

अर्थ—राजशिरोमणे ! हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद ही हैं, जिनके लिए हम विजय प्राप्त करना चाहते हैं। राजन् ! आपको इसी शर्त पर हमारे पक्ष में खड़ा होना चाहिए।'

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैवं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः।
जघान दानवान् सर्वान् ये वध्या वज्रपाणिनः ॥१७॥

अर्थ—वे 'बहुत अच्छा' कहकर असुरों की बात मानना ही चाहते थे कि देवताओं ने फिर उन्हें अपने पक्ष में आने के लिये प्रेरणा देते हुए कहा—'राजन् ! तुम इस प्रकार विजय पाकर हमारे इन्द्र हो जाओगे।' देवताओं के ऐसा कहने पर राजा रजि ने उन समस्त दानवों का संहार कर डाला, जो वज्र-पाणि इन्द्र के द्वारा मारे जाने योग्य थे।

स विप्रणष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी।
निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः ॥१८॥

अर्थ—मन को वश में रखनेवाले परमकान्तिमान् एवं शक्तिशाली राजा रजि ने समस्त दानवों का संहार करके देवताओं की खोयी हुई सम्पत्ति को फिर वापस ला दिया।

ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः।
रजेः पुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद् वचः ॥१९॥

अर्थ—तब देवताओं सहित इन्द्र ने अपने को रजि का पुत्र बताकर उन महापराक्रमी रजि से पुनः इस प्रकार कहा—

इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र संशयः।
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः ॥२०॥

अर्थ—'तात ! आप हम सब देवताओं के इन्द्र हैं, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि मैं इन्द्र आज से आपके इन वीरोचित कर्मों द्वारा अनुगृहीत हो आपका पुत्र कहलाऊंगा। आपके पुत्ररूप में ही मेरी ख्याति होगी।'

स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया।
तथेत्येवाब्रवीद् राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ॥२१॥

अर्थ—इन्द्र की यह बात सुनकर उनकी माया से वंचित हो महाराज रजि ने 'तथास्तु' कह दिया। वे इन्द्र पर बहुत प्रसन्न थे।

तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ।
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारात् तनया रजेः ॥२२॥

अर्थ—उन देवोपम भूपाल रजि के ब्रह्मलोकवासी हो जाने पर उनके पुत्रों ने लोक-व्यवहार के अनुसार इन्द्र से अपना दायभाग मांगा और बलपूर्वक ले लिया।

पञ्चपुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः।
समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥२३॥

अर्थ—रजि के पांच-सौ पुत्र थे। उन्होंने इन्द्र के त्रिविष्टप नाम से प्रसिद्ध स्वर्गलोक पर बारम्बार आक्रमण करके उसे ले लिया।

ततो बहुतिथे काले समतीते महाबलः।
हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥२४॥

अर्थ—तदनन्तर बहुत समय बीत जाने पर राज्य और यज्ञभाग से वंचित हो अत्यन्त दुर्बल हुए इन्द्र ने एक दिन एकान्त में बृहस्पति जी से कहा।

इन्द्र उवाच—

बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे।
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितः सदा ॥२५॥

अर्थ—**इन्द्र बोले**—ब्रह्मर्षे ! आप एक बेर के बराबर भी पुरोडाशखण्ड की व्यवस्था मेरे लिए कर दें, जिससे मैं भी सदा तेज से परिपुष्ट होता रहूं।

ब्रह्मन् कृशोऽहं विमना हृतराज्यो हृताशनः।
हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः कृतः प्रभो ॥२६॥

अर्थ—ब्रह्मन् ! प्रभो ! रजि के पुत्रों ने मेरा राज्य और भोजन छीनकर मुझे अत्यन्त कृश, खिन्नचित्त, हतोत्साह, दुर्बल एवं मूढ़ बना दिया है।

बृहस्पतिरुवाच—

यद्येवं चोदितः शक्र त्वयास्यां पूर्वमेव हि।
नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्तव्यं ममानघ ॥२७॥

अर्थ—बृहस्पति जी ने कहा—निष्पाप इन्द्र ! यदि ऐसी बात है तो तुम्हें मुझसे पहले ही यह कहना चाहिए था। तुम्हारा प्रिय करने के लिए ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मैं न कर सकूं।

प्रयतिस्यामि देवेन्द्र त्वत्प्रियार्थं न संशयः।
यथा भागं च राज्यं च नचिरात् प्रतिलप्स्यसे ॥२८॥

अर्थ—देवेन्द्र ! मैं तुम्हारे प्रिय मनोरथ की सिद्धि के लिए निःसन्देह ऐसा प्रयत्न करूंगा, जिससे तुम अपना राज्य और यज्ञभाग शीघ्र प्राप्त कर लोगे।

तथा तात करिष्यामि मा भूत् ते विक्लवं मनः।
ततः कर्म चकारास्य तेजसो वर्धनं तदा ॥२९॥

अर्थ—तात ! तुम जैसा चाहते हो वैसा ही करूंगा। तुम्हारा मन व्याकुल न हो। ऐसा कहकर बृहस्पति जी ने उस समय इन्द्र के तेज को बढ़ानेवाले कर्म का अनुष्ठान किया।

तेषां च बुद्धिसम्मोहमकरोद् द्विजसत्तमः।
नास्तिवादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषणं परम् ॥३०॥

अर्थ—द्विजश्रेष्ठ बृहस्पति ने रजि के पुत्रों की बुद्धि में मोह उत्पन्न करने के लिए ऐसे शास्त्र का निर्माण किया, जो नास्तिकवाद से परिपूर्ण तथा धर्म के प्रति अत्यन्त द्वेष उत्पन्न करनेवाला था।

परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोऽनुगम्।
न हि धर्मप्रधानानां रोचते तत्कथान्तरे ॥३१॥

अर्थ—केवल तर्क के आधार पर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रों में वह उत्कृष्ट माना गया है। बृहस्पति का वह नास्तिक दर्शन दुष्ट पुरुषों के ही मन को अधिक भाता है। धर्मप्रधान पुरुषों को बातचीत के प्रसंग में भी उसकी चर्चा नहीं सुहाती है।

ते तद् बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाल्पचेतसः।
पूर्वोक्तधर्मशास्त्राणामभवन् द्वेषिणः सदा ॥३२॥

अर्थ—बृहस्पति के उस शास्त्र को सुनकर वे मन्दबुद्धि रजि-पुत्र पहले के धर्मशास्त्रों से सदा द्वेष रखने लगे।

प्रवक्तुर्न्यायरहितं तन्मतं बहु मेनिरे।
तेनाधर्मेण ते पापाः सर्व एव क्षयं गताः ॥३३॥

अर्थ—वक्ता का वह न्यायरहित मत उन्हें बहुत उत्तम जान पड़ने लगा। उसी अधर्म से वे सब पापी नष्ट हो गये।

त्रैलोक्यराज्यं शक्रस्तु प्राप्य दुष्प्रापमेव च।
बृहस्पतिप्रसादाद्धि परां निर्वृत्तिमभ्ययात् ॥३४॥

अर्थ—इस तरह बृहस्पति की कृपा से त्रिलोकी का वह दुर्लभ राज्य पाकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए।

ते यदा तु सुसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः।
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ॥३५॥
ततो लेभे सुरैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्।
हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ॥३६॥

अर्थ—वे रजि के पुत्र जब नास्तिकवाद का आश्रय ले विवेकशून्य, रागोन्मत्त, धर्म के विपरीत चलनेवाले, ब्रह्म-द्रोही, शक्तिहीन और पराक्रमशून्य हो गये, तब काम-क्रोध में तत्पर रहनेवाले उन समस्त रजिपुत्रों को मारकर इन्द्र ने देवताओं का ऐश्वर्य और उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया।

य इदं च्यावनं स्थानात् प्रतिष्ठां च शतक्रतोः।
शृणुयाद् धारयेद्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥३७॥

अर्थ—जो इन्द्र के अपने स्थान से भ्रष्ट होने और पुनः उस पर प्रतिष्ठित होने के इस प्रसंग को सुनता और अपने हृदय में धारण करता है, उसके मन में कभी दुर्भावना नहीं आती।

इति हरिवंशे आयोर्वंशकीर्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

---

१५. काशिवंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

रम्भोऽनपत्यस्तत्रासीद् वंशं वक्ष्याम्यनेनसः।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय ! आयुपुत्र रम्भ के कोई संतान नहीं हुई। अब मैं अनेना के वंश का वर्णन करूंगा। अनेना के पुत्र महायशस्वी राजा प्रतिक्षत्र हुए।

प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृञ्जयो नाम विश्रुतः।
सृञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥२॥

अर्थ—प्रतिक्षत्र के पुत्र सृञ्जय नाम से विख्यात हुए। सृञ्जय के पुत्र जय और जय के पुत्र विजय हुए।

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वतः सुतः।
हर्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥३॥

अर्थ—विजय के पुत्र कृति, कृति के हर्यश्वत और हर्यश्वत के पुत्र प्रतापी राजा सहदेव हुए।

सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य संकृतिः ॥४॥

अर्थ—सहदेव का धर्मात्मा पुत्र नदीन नाम से विख्यात हुआ। नदीन का पुत्र जयत्सेन और जयत्सेन का सङ्कृति था।

संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य मे शृणु ॥५॥

अर्थ—सङ्कृति के पुत्र महायशस्वी धर्मात्मा क्षत्रधर्मा हुए। यहां तक अनेना के पुत्रों का वर्णन हुआ। अब मुझसे क्षत्रवृद्ध की संतति का वर्णन सुनो।

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥६॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ॥७॥

अर्थ—क्षत्रवृद्ध के पुत्र महायशस्वी सुनहोत्र हुए। सुनहोत्र के परमधार्मिक तीन पुत्र थे—काश, शल और प्रभावशाली गृत्समद। गृत्समद के पुत्र शुनक हुए, जिससे शौनक-वंश का विस्तार हुआ।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।
शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तनयस्तस्य काशकः ॥८॥

अर्थ—शौनक-वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग हुए। शल के पुत्र का नाम आर्ष्टिषेण था। उनके पुत्र काशक हुए।

काशस्य काशयो राजन् पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।
धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥९॥

अर्थ—राजन् ! काश के वंशज (पुत्र) काशि कहलाये । इनमें दीर्घतपा सबसे प्रथम पुत्र थे । दीर्घतपा के धन्व और धन्व से विद्वान् धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव हुआ ।

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ॥१०॥

अर्थ—अपनी महान् तपस्या पूरी करके अन्त में धन्वन्तरि देव ने बुद्धिमान् एवं वृद्ध राजा धन्व के यहां इस मनुष्यरूप में पुनः जन्म ग्रहण किया ।

जनमेजय उवाच—

कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ।
एतद् वेदितुमिच्छामि तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥११॥

अर्थ—जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! धन्वन्तरि देव इस मनुष्य-लोक में किस प्रकार उत्पन्न हुए ? यह मैं जानना चाहता हूं । अतः यह प्रसंग मुझे ठीक-ठीक बताइये ।

वैशम्पायन उवाच—

धन्वन्तरेः सम्भवोऽयं श्रूयतां भरतर्षभ ।
जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुरामृते ॥१२॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! धन्वन्तरि के जन्म का यह प्रसङ्ग सुनो । वे पूर्वकाल में अमृतमन्थन के समय समुद्र से प्रकट हुये थे ।

उत्पन्नः कलशात् पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः ।
अभ्यसन् सिद्धिकार्यं हि विष्णुं दृष्ट्वा हि तस्थिवान् ॥१३॥

अर्थ—पहले जब वे समुद्र से प्रकट हुए, उस समय भगवान् विष्णु के नामों का जप और आरोग्य-साधक कार्य का चिन्तन करते हुए सब ओर से दिव्य कान्ति से प्रकाशित हो रहे थे । वे अपने सामने भगवान् विष्णु को देखकर खड़े हो गये ।

अब्जस्त्वमिति होवाच तस्मादब्जस्तु स स्मृतः ।
अब्जः प्रोवाच विष्णुं वै तव पुत्रोऽस्मि वै प्रभो ॥१४॥
विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरेश्वर ।
एवमुक्तः स दृष्ट्वा वै तथ्यं प्रोवाच तं प्रभुः ॥१५॥

अर्थ—भगवान् विष्णु ने उनसे कहा—'तुम अप् अर्थात् जल से प्रकट हुए हो, इसलिये अब्ज हो।' उनके ऐसा कहने से वे अब्ज कहलाने लगे। उस समय अब्ज ने भगवान् विष्णु से कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूं। सुरेश्वर! मेरे लिए यज्ञभाग की व्यवस्था कीजिए और लोक में मेरे लिये कोई स्थान दीजिए।' उनके ऐसा कहने पर भगवान् विष्णु ने उनकी ओर देखकर यह यथार्थ बात कही—

कृतो यज्ञविभागो हि यज्ञियैर्हि सुरैः पुरा।
देवेषु विनियुक्तं हि विद्धि होत्रं महर्षिभिः ॥१६॥

अर्थ—'पूर्वकाल में यज्ञसम्बन्धी देवताओं ने यज्ञ का विभाग कर लिया है। महर्षियों ने हवनीय पदार्थों का देवताओं के लिए ही विनियोग किया है। इस बात को तुम अच्छी तरह समझ लो।

न शक्यमुपहोमा वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन।
अर्वाग्भूतोऽसि देवानां पुत्र त्वं तु न हीश्वरः ॥१७॥

अर्थ—बेटा! तुम्हें छोटे-मोटे उपहोम कभी नहीं अर्पित किये जा सकते (क्योंकि वे तुम्हारे योग्य नहीं हैं)। तुम देवताओं से पीछे उत्पन्न हुए हो अतः तुम्हारे लिये वेद-विरुद्ध यज्ञभाग की कल्पना नहीं की जा सकती और वैदिक यज्ञभाग पाने के तुम अधिकारी नहीं हो।

द्वितीयायां तु सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादिश्च ते सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ॥१८॥

अर्थ—दूसरे जन्म में तुम संसार में विख्यात होओगे। वहां गर्भावस्था में ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।

तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो।
चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥१९॥

अर्थ—प्रभो! तुम उसी शरीर से देवत्व प्राप्त कर लोगे और ब्राह्मण लोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रों द्वारा तुम्हारा यजन करेंगे।

अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना ॥२०॥

अर्थ—'फिर तुम उस जन्म में आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करके उसे आठ अंगों से युक्त बना दोगे, यह बात अवश्य होनेवाली है। कमलयोनि ब्रह्मा जी ने इसे पहले से ही देख लिया है।

द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः।
इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः ॥२१॥

अर्थ—'दूसरा द्वापर आने पर तुम संसार में प्रकट होओगे, इसमें संशय नहीं है।' धन्वन्तरि को यह वर देकर भगवान् विष्णु फिर अन्तर्धान हो गये।

द्वितीये द्वापरं प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे धन्वो दीर्घं तपस्तदा। ॥२२॥

अर्थ—जब दूसरा द्वापर आया, तब सुनहोत्र के पुत्र काशिराज धन्व-पुत्र की कामना से दीर्घकालीन तपस्या करने लगे।

प्रपद्ये देवतां तां तु या मे पुत्रं प्रदास्यति।
अब्जं देवं सुतार्थाय तदाऽऽराधितवान् नृपः ॥२३॥

अर्थ—उन्होंने मन ही मन सोचा कि 'मैं उस देवता की शरण लूं, जो मुझे पुत्र प्रदान करेगा।' ऐसा विचार कर राजा ने पुत्र के लिए अब्जदेव (भगवान् धन्वन्तरि) की आराधना की।

ततस्तुष्टः स भगवानब्जः प्रोवाच तं नृपम्।
यदिच्छसि वरं ब्रूहि तत् ते दास्यामि सुव्रत ॥२४॥

अर्थ—उस आराधना से सन्तुष्ट होकर भगवान् अब्ज राजा धन्व से बोले—'उत्तम व्रत का पालन करनेवाले नरेश! तुम जो वर प्राप्त करना चाहते हो, उसे बताओ। वह मैं तुम्हें दूंगा!'

नृप उवाच—

भगवन् यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे ख्यातिमान् भव।
तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥२५॥

अर्थ—राजा बोले—भगवन्! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तो मेरे पुत्र हो जायँ और इसी रूप में आपकी ख्याति हो। तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् धन्वन्तरि वहीं अन्तर्धान हो गये।

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः ॥२६॥

अर्थ—महाराज! तदनन्तर धन्वन्तरिदेव धन्व के घर में अवतीर्ण हुए, काशिराज धन्वन्तरि समस्त रोगों का नाश करने में समर्थ थे।

आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२७॥

अर्थ—उन्होंने मुनिवर भारद्वाज से आयुर्वेद तथा चिकित्सा-कर्म का ज्ञान प्राप्त करके उसे आठ भागों में विभक्त किया और उन सबकी विस्तृत विवेचना की। फिर बहुत से शिष्यों को उस अष्टाङ्गयुक्त आयुर्वेद की शिक्षा दी।

धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥२८॥

अर्थ—धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान् नाम से विख्यात हुए, केतुमान् के वीर पुत्र का नाम भीमरथ था।

सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ।।२९।।

अर्थ—भीमरथ के पुत्र धर्मात्मा राजा दिवोदास हुए, जो वाराणसीपुरी के स्वामी थे ।

एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप ।
शून्यां निवासयामास क्षेमको नाम राक्षसः ।।३०।।

अर्थ—नरेश्वर ! राजा दिवोदास के राज्यकाल में ही शापवश वाराणसी-पुरी जनशून्य हो गयी थी, जिसे पीछे भगवान् रुद्र के अनुचर क्षेमक नामक राक्षस ने बसाया था ।

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशयः ।।३१।।

अर्थ—भगवान् रुद्र के पार्षद बुद्धिमान् महात्मा निकुम्भ ने यह शाप दे दिया था कि 'वाराणसीपुरी एक हजार वर्षों तक जनशून्य बनी रहेगी । इसमें संशय नहीं है ।

तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ।।३२।।

अर्थ—उस पुरी के शापग्रस्त हो जाने पर राजा दिवोदास ने अपने राज्य की सीमा पर गोमती नदी के किनारे एक रमणीय नगरी बसायी ।

भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसीत्यभूत् ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।।३३।।
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभः ।
भद्रश्रेण्यस्य तद् राज्यं हृतं तेन बलीयसा ।।३४।।

अर्थ—पहले वाराणसीपुरी (यदुवंशी महिष्मान् के पुत्र) भद्रश्रेण्य के अधिकार में थी । भद्रश्रेण्य के सौ पुत्र थे, जो श्रेष्ठ धनुर्धर माने जाते थे, नरश्रेष्ठ दिवोदास ने उन सबको मारकर वहां अपना राज्य स्थापित किया । उन महाबली नरेश ने भद्रश्रेण्य के उस राज्य का बलपूर्वक अपहरण कर लिया ।

जनमेजय उवाच—

वाराणसीं निकुम्भस्तु किमर्थं शप्तवान् प्रभुः ।
निकुम्भकश्च धर्मात्मा सिद्धिक्षेत्रं शशाप यः ।।३५।।

अर्थ—जनमेजय ने पूछा—मुने ! वाराणसी तो सिद्धिक्षेत्र (मोक्षधाम) है और प्रभावशाली निकुम्भ बड़े धर्मात्मा हैं । फिर उन्होंने उस पुरी को शाप किसलिये दिया ?

वैशम्पायन उवाच—

दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः।
वसति स्म महातेजाः स्फीतायां तु नराधिपः ॥३६॥

अर्थ—वैशम्पायन जी ने कहा—राजन् ! महातेजस्वी नरेश्वर राजर्षि दिवोदास वाराणसी नगरी को पाकर वहां के राजा हो गये। वे उस समृद्धिशालिनी नगरी में सदा ही निवास करते थे।

एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः।
देव्याः स प्रियकामस्तु न्यवसच्छ्वशुरान्तिके ॥३७॥

अर्थ—इन्हीं दिनों भगवान् शङ्कर विवाह करके देवी पार्वती का प्रिय करने की इच्छा से अपने श्वसुर के पास ही निवास करते थे।

देवाज्ञया पार्षदा ये त्वधिरूपास्तपोधनाः।
पूर्वोक्तैरुपदेशैश्च तोषयन्ति स्म पार्वतीम् ॥३८॥

अर्थ—उस समय महादेव जी की आज्ञा से उनके सुयोग्य पार्षद, जो तपस्या के धनी थे, उनके पहले दिए हुए उपदेश के अनुसार पार्वतीदेवी को संतुष्ट करते रहते थे।

हृष्यते वै महादेवी मेना नैव प्रहृष्यति।
जुगुप्सत्यसकृत् तां वै देवीं देवं तथैव सा ॥३९॥

अर्थ—इससे महादेवी पार्वती तो प्रसन्न रहती थीं, परन्तु उनकी माता मेना को सन्तोष नहीं होता था। वे महादेवी पार्वती तथा भगवान् शङ्कर की बारम्बार निन्दा ही करती थीं।

सपार्षदस्त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः।
दरिद्रः सर्वदैवासौ शीलं तस्य न वर्तते ॥४०॥

अर्थ—उन्होंने एक दिन कहा—'उमे ! तेरे पति महादेव और उनके पार्षद सभी अनाचारी हैं। साथ ही वे भोलेनाथ सदा के दरिद्र हैं। शील तो उनमें नाममात्र को भी नहीं है।

मात्रा तथोक्ता वरदा स्त्रीस्वभावाच्च चुक्रुधे।
स्मितं कृत्वा च वरदा भवपार्श्वमथागमत् ॥४१॥

अर्थ—वरदायिनी उमा माता के ऐसा कहने पर स्त्री-स्वभाववश कुपित हो उठीं और किंचित् मुसकराकर महादेव जी के पास आयीं।

विवर्णवदना देवी महादेवमभाषत।
नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निकेतनम् ॥४२॥

अर्थ - उस समय उनका मुख मलीन हो रहा था। निकट आकर देवी ने महादेव जी से कहा—'देव ! अब मैं यहां (नैहर में) नहीं रहूंगी। आप मुझे अपने घर ले चलें।'

तथा कर्तुं महादेवः सर्वलोकानवैक्षत।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां कुरुनन्दन ॥४३॥
वाराणसीं महातेजाः सिद्धिक्षेत्रं महेश्वरः।

अर्थ—कुरुनन्दन ! पार्वती जी के कथनानुसार कार्य करने के लिए महादेव जी ने सम्पूर्ण लोकों पर दृष्टिपात किया। उन महातेजस्वी महेश्वर ने पृथ्वी पर अपने रहने के लिए सिद्धिक्षेत्र वाराणसीपुरी को पसन्द किया।

दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः ॥४४॥
पार्श्वे तिष्ठन्तमाहूय निकुम्भमिदमब्रवीत्।

अर्थ—परन्तु उस नगरी में राजा दिवोदास निवास करते हैं, यह जानकर महादेव जी ने अपने पास खड़े हुए निकुम्भ से इस प्रकार कहा—

गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु ॥४५॥
मृदुनैवाभ्युपायेन ह्यतिवीर्यः स पार्थिवः।

अर्थ—'गणेश्वर ! तुम जाकर वाराणसीपुरी को मनुष्यों से सूनी कर दो, परन्तु इसके लिए कोमल उपाय से ही काम लेना, क्योंकि वे राजा दिवोदास बड़े बलवान् हैं।'

ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं तदा ॥४६॥
स्वप्ने निदर्शयामास कण्डुकं नाम नापितम्।
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ ॥४७॥
मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते तथैव च।
ततः स्वप्ने यथोद्दिष्टं सर्वं कारितवान् नृप ॥४८॥

अर्थ—तब निकुम्भ ने वाराणसीपुरी में जाकर कण्डुक नाई को स्वप्न में दर्शन दिया और कहा—'अनघ ! तू नगर की सीमा पर मेरी प्रतिमा बनाकर मेरे लिए निवास-स्थान की व्यवस्था कर। ऐसा करने से मैं तेरा कल्याण करूंगा।' नरेश्वर ! तब उस नाई ने स्वप्न में जैसा कहा गया था। उसके अनुसार सब कुछ किया और कराया।

पुरीद्वारे तु विज्ञाप्य राजानं च यथाविधि।
पूजां तु महतीं तस्य नित्यमेव प्रयोजयत् ॥४९॥

अर्थ—राजा को सूचना देकर उसने नगर के द्वार पर विधिपूर्वक निकुम्भ प्रतिमा की स्थापना की। फिर वह प्रतिदिन बड़े समारोह के साथ उस प्रतिमा की पूजा करने लगा।

गन्धैश्च धूपमाल्यैश्च प्रोक्षणीयैस्तथैव च।
अन्नपानप्रयोगैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ॥५०॥

अर्थ—गन्ध, पुष्प, माला, धूप, प्रोक्षणीय जल तथा अन्न-पान आदि अर्पण करके वह नाई निकुम्भ की पूजा करता था। यह वहां अत्यन्त अद्भुत-सी बात हुई।

एवं सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः।
ततो वरसहस्रं तु नागराणां प्रयच्छति।
पुत्रान् हिरण्यमायुश्च सर्वान् कामांस्तथैव च ॥५१॥

अर्थ—इस प्रकार वहां नित्य ही निकुम्भ नामक गणेश की पूजा होती और वे नागरिकों को सहस्रों वर प्रदान करते थे। पुत्र, सुवर्ण, आयु तथा सम्पूर्ण मनोवांछित वस्तुएं सबको देते थे।

राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता।
पुत्रार्थमागता देवी साध्वी राज्ञा प्रचोदिता ॥५२॥

अर्थ—राजा दिवोदास की श्रेष्ठ महारानी सुयशा नाम से विख्यात थीं। राजा की आज्ञा लेकर वे साध्वी महारानी पुत्र की कामना से वहां आयीं।

पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रमयाचत।
पुनः पुनरथागत्य बहुशः पुत्रकारणात् ॥५३॥

अर्थ—वहां जाकर बड़े विस्तार के साथ पूजा करके देवी सुयशा ने निकुम्भ से पुत्र के लिए याचना की। उन्होंने बारम्बार आकर पूजन किया और अनेक बार पुत्र के लिए प्रार्थना की।

न प्रयच्छति पुत्रं हि निकुम्भः कारणेन हि।
राजा तु यदि नः कुप्येत् कार्यसिद्धिस्ततो भवेत् ॥५५॥

अर्थ—परन्तु निकुम्भ कारणवश उन्हें पुत्र नहीं देते थे। उन्होंने सोचा—'यदि राजा किसी तरह हम पर कुपित हो जाये तो हमारा काम बन जाये।

अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत्।
भूत एष महान् द्वारि नागराणां प्रयच्छति ॥५५॥
प्रीतो वरान् वै शतशो मम किं न प्रयच्छति।
मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मे सदैव हि ॥५६॥

विज्ञापितो मयात्यर्थं देव्या मे पुत्रकारणात् ।
न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नः केन हेतुना ॥५७॥
ततो नार्हति सत्कारं मत्सकाशाद् विशेषतः ।
तस्मात् तु नाशयिष्यामि स्थानमस्य दुरात्मनः ॥५८॥

अर्थ—तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् राजा के मन में क्रोध हुआ। वे सोचने लगे 'मेरे नगर के द्वार पर बैठा हुआ यह महान् भूत प्रसन्न होकर नागरिकों को सैकड़ों प्रकार के वर देता है, परन्तु मुझे क्यों नहीं देता ? सदा मेरी ही नगरी में, मेरे ही लोग इसकी नित्य पूजा करते हैं। मैंने भी देवी को पुत्र प्रदान करने के लिए बार-बार निवेदन किया; परन्तु यह कृतघ्न न जाने किस कारण से मुझे पुत्र नहीं दे रहा है। अतः अब यह विशेषतः मुझसे सत्कार पाने के योग्य नहीं रहा। इसलिए इस दुरात्मा के स्थान का मैं नाश कर दूंगा।'

एवं स तु विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्विषी ।
स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः ॥५९॥

अर्थ—ऐसा निश्चय करके दुरात्मा, दुर्बुद्धि एवं पापी राजा ने गणपति निकुम्भ के उस स्थान को नष्ट करा दिया।

भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत् प्रभुः ।
यस्मादनपराधस्य त्वया स्थानं विनाशितम् ।
पुर्यकस्मादियं शून्या तव नूनं भविष्यति ॥६०॥

अर्थ अपने वासस्थान को भग्न हुआ देख भगवान् निकुम्भ ने राजा को शाप देते हुए कहा—'राजन् ! तुमने बिना किसी अपराध के मेरे स्थान को नष्ट कराया है, इसलिए निश्चय ही तुम्हारी यह नगरी अकस्मात् जन-शून्य हो जायेगी।'

ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा ।
शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथागमत् ।६१॥

अर्थ—तदनन्तर उस शाप से उस समय वाराणसीपुरी सूनी हो गयी। उस पुरी को शाप देकर निकुम्भ महादेव जी के पास चले गये।

अकस्मात् तु पुरी सा तु विद्रुता सर्वतोदिशम् ।
तस्यां पुर्यां ततो देवो निर्ममे पदमात्मनः ॥६२॥

अर्थ—वाराणसी में रहनेवाले सब लोग अकस्मात् सम्पूर्ण दिशाओं में भाग गये। तब महादेव जी ने उस पुरी में अपना निवास-स्थान बनाया।

रमते तत्र वै देवो रममाणो गिरेः सुताम्।
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात्।
वसाम्यत्र न पुर्यां तु देवी देवमथाब्रवीत् ।।६३।।

अर्थ—फिर वे भगवान् शिव गिरिराजनन्दिनी उमा का मनोरंजन करते हुए वहां आनन्दपूर्वक रहने लगे। परन्तु देवी पार्वती का मन वहां नहीं लगता था, क्योंकि वहां कोई निश्चित गृह न होने से वे विस्मय में पड़ी रहती थीं। (अथवा पिता के घर के लिए उत्कण्ठित होने के कारण देवी को वहां प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती थी।) उन्होंने महादेव जी से कहा – 'भगवन्! मैं इस पुरी में नहीं रहूंगी (आप मेरे घर को चलिये)।'

देव उवाच—

नाहं वेश्मनि वत्स्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम्।
नाहं तत्र गमिष्यामि गच्छ देवि गृहं प्रति ।।६४।।

अर्थ—महादेव जी बोले—देवि! मैं और किसी घर में नहीं रहूंगा। यह अविमुक्त क्षेत्र ही मेरा घर है। अतः मैं वहां नहीं चलूंगा। तुम जाना चाहो तो अपने उस घर को जाओ।

हसन्नुवाच भगवांस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः।
तस्मात् तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ।।६५।
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम् ।।६६।।

अर्थ—त्रिपुरों का विनाश करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव ने हंसते हुए पूर्वोक्त बात कही थी। महादेव जी ने स्वयं ही उस क्षेत्र को अविमुक्त कहा था, इसलिए वह अविमुक्त नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस तरह वाराणसीपुरी को शाप प्राप्त हुआ और उसे अविमुक्त क्षेत्र कहा गया।

यस्मिन् वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ।।६७।।

अर्थ – सर्वदेववन्दित धर्मात्मा देव महेश्वर सत्ययुग आदि तीन युगों में देवी पार्वती के साथ उस अविमुक्त क्षेत्र में प्रत्यक्ष निवास करते हैं।

अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः।
एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता ।।६८।।

अर्थ—कलियुग आने पर महात्मा महादेव जी का वह नगर अदृश्य हो जाता है। उसके अदृश्य हो जाने पर वाराणसीपुरी फिर से बसती है। इस प्रकार

वाराणसी नगरी शापग्रस्त होकर उजड़ी और पुनः बसी थी।

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रो वै दुर्दमो नाम विश्रुतः।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः ॥६९॥

अर्थ—भद्रश्रेण्य का एक पुत्र दुर्दम नाम से विख्यात था। दिवोदास ने उसे बालक समझकर दयावश जीवित छोड़ दिया था।

हैहयस्य तु दायाद्यं कृतवान् वै महीपतिः।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥७०॥

अर्थ—उस राजा ने हैहय का पुत्र होना स्वीकार किया और उन्हीं की सहायता से उसने दिवोदास द्वारा वलपूर्वक अपहृत हुई अपनी पैतृक सम्पत्ति को फिर वापस लौटाया।

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना।
वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता ॥७१॥

अर्थ—महाराज! भद्रश्रेण्य का महामनस्वी पुत्र दुर्दम एक वीर क्षत्रिय था। उसने वैर का बदला लेने के लिए ही वैसा किया था।

दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः।
तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ॥७२॥

अर्थ—दिवोदास के द्वारा उनकी पत्नी दृषद्वती के गर्भ से वीर प्रतर्दन का जन्म हुआ। उस राजकुमार ने बालक होने पर भी दुर्दम से पुनः राज्य छीन लिया।

प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभार्गौ बभूवतुः।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्य चात्मजः ॥७३॥

अर्थ—प्रतर्दन के दो पुत्र थे—वत्स और भार्ग। वत्स के पुत्र अलर्क और अलर्क के संनति हुए।

अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।
अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः ॥७४॥

अर्थ—काशिराज अलर्क बड़े ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। राजर्षि अलर्क के विषय में प्राचीन पुरुषों ने निम्नाङ्कित श्लोक का गान किया है।

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च।
युवा रूपेण सम्पन्न आसीत् काशिकुलोद्वहः ॥७५॥

अर्थ—'काशिवंशावतंस अलर्क छासठ हजार छः सौ वर्षों तक युवावस्था तथा सुन्दर रूप-वैभव से सम्पन्न रहे।'

लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः।
तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥७६॥

अर्थ—उन्होंने लोपामुद्रा की कृपा से उत्तम आयु प्राप्त की थी रूप और युवावस्था से सुशोभित होनेवाले अलर्क का राज्य बहुत विशाल था।

शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्।
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥७७॥

अर्थ—महाबाहु अलर्क ने निकुम्भ के शाप का अन्त होने पर क्षेमक नामक राक्षस को मारकर पुनः रमणीय वाराणसीपुरी बसायी थी।

संनतेरपि दायदः सुनीथो नाम धार्मिकः।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ॥७८॥

अर्थ—संनति के पुत्र धर्मात्मा सुनीथ हुए और सुनीथ का यहायशस्वी पुत्र क्षेम्य नाम से प्रसिद्ध हुआ।

क्षेम्यस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥७९॥

अर्थ—क्षेम्य के पुत्र केतुमान्, केतुमान् के पुत्र सुकेतु और सुकेतु के भी पुत्र धर्मकेतु हुए।

धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥८०॥

अर्थ—धर्मकेतु के पुत्र महारथी सत्यकेतु हुए और सत्यकेतु के पुत्र प्रजापालक विभु हुए।

आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्तु तत्सुतः।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः।
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ॥८१॥

अर्थ—विभु के पुत्र का नाम आनर्त था। आनर्त का पुत्र सुकुमार हुआ। सुकुमार के पुत्र परम धर्मात्मा धृष्टकेतु हुए और धृष्टकेतु के पुत्र राजा वेणुहोत्र थे।

वेणुहोत्रसुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ॥८२॥

अर्थ—वेणुहोत्र का पुत्र राजा भर्ग के नाम से विख्यात हुआ। प्रतर्दन के जो वत्स और भर्ग नामक दो पुत्र बतलाये गये हैं, उनमें से वत्स के वत्सभूमि तथा भर्ग के भृगुभूमि नामक पुत्र हुए।

एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्रशः।
इत्येते काशयः प्रोक्ता नहुषस्य निबोध मे ॥८३॥

अर्थ—ये अङ्गिरागोत्री गालव के वंशज हैं, जो भार्गववंश में उत्पन्न हुए। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लोग हैं। वत्सभूमि और भृगुभूमि के सहस्रों पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार ये राजा काशि के कुल में उत्पन्न हुए क्षत्रिय बताये गये हैं। अब तुम मुझसे नहुष की सन्तानों का वर्णन सुनो।

इति हरिवंशे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

---

१६. नहुषचरितम्, ययात्युपाख्यानञ्च

वैशम्पायन उवाच—

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—राजन्! नहुष के उनकी पत्नी पितृ-कन्या विरजा के गर्भ से छः महाबली पुत्र उत्पन्न हुए, जो इन्द्र के समान तेजस्वी थे।

यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पाञ्चिको भवः।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत्।
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम् ॥२॥

अर्थ—उनके नाम इस प्रकार हैं—यति, ययाति, संयाति, आयाति, पांचवां भव और छठा सुयाति। इनमें से ययाति ही राजा हुए। इन छः भाइयों में सबसे बड़े थे यति और उनके बाद ययाति उत्पन्न हुए थे।

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥३॥

अर्थ—परम धर्मात्मा यति ने ककुत्स्थ की कन्या गौ को पत्नीरूप में प्राप्त किया था। वे मोक्षधर्म का आश्रय ले ब्रह्मस्वरूप मुनि हो गये।

तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम्।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः ॥४॥

अर्थ—शेष पांच भाइयों में ययाति ने इस पृथ्वी को जीतकर शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा असुरराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को भी पत्नी के रूप में प्राप्त किया।

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥५॥

अर्थ—देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु तथा पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये।

तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्।
असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः ॥६॥
युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन भार्यामुवाह सः।

अर्थ—ययाति पर प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें एक अत्यन्त प्रकाशमान रथ प्रदान किया, जिसमें मन के समान वेगशाली, दिव्य, उत्तम एवं श्वेतवर्ण के अश्व जुते हुए थे। वह दिव्य रथ सोने का बना हुआ था। उसकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी। उसी रथ के द्वारा वे अपनी भार्या को व्याह कर लाये थे।

स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेनाजयन्महीम्।
ययातिर्युधि दुर्धर्षस्तथा देवान् सदानवान् ॥७॥

अर्थ—उस श्रेष्ठ रथ के द्वारा दुर्धर्ष राजा ययाति ने छः रातों में ही सम्पूर्ण पृथ्वी तथा देवताओं और दानवों को भी जीत लिया था।

स रथः पौरवाणां तु सर्वेषामभवत् तदा।
यावत्तु वसुनाम्नो वै कौरवाज्जनमेजय ॥८॥

अर्थ—जनमेजय! कुरुवंशी राजा वसु तक सभी पौरव नरेशों के पास वह रथ परम्परया प्राप्त होकर विद्यमान था।

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्र राज्ञः पारीक्षितस्य ह।
जगाम स रथो नाशं शापाद् गार्ग्यस्य धीमतः ॥९॥

अर्थ—राजेन्द्र! कुरुवंशी परीक्षित्कुमार इन्द्रोत जनमेजय को बुद्धिमान् गार्ग्य का शाप प्राप्त होने के कारण वह रथ उनके यहां से अदृश्य हो गया।

गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः।
वाक्छूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥१०॥

अर्थ—बात यह भी थी कि गार्ग्य के एक बालक पुत्र था, जो बड़ा ही वाचाल था। उसे इन्द्रोत नामवाले राजा जनमेजय ने मार डाला। इससे उन्हें ब्रह्महत्या प्राप्त हुई।

स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ।।११।।

अर्थ—पुरवासियों तथा जनपद के लोगों ने उन्हें त्याग दिया । उनके शरीर से लोहे की सी गन्ध आती थी (अथवा वे पतित के समान जान पड़ते थे)। राजर्षि इन्द्रोत इधर-उधर भागते-फिरते थे, किन्तु कहीं भी उन्हें शांति नहीं मिलती थी ।

ततः स दुःखसंतप्तो नालभत् संविदं क्वचित् ।
इन्द्रोतः शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ।।१२।।

अर्थ—जब कहीं भी स्वस्थ होने का उपाय नहीं सूझा, तब दुःख से संतप्त हुए राजा इन्द्रोत शौनक मुनि की शरण में गये ।

याजयामास चेन्द्रोतं शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ।।१३।।

अर्थ—द्विजश्रेष्ठ शौनक ने राजा इन्द्रोत जनमेजय को शुद्ध करने के लिए उनसे अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करवाया ।

स लोहगन्धो व्यनशत् तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यो रथो राजन् वसोश्चेदिपतेस्तदा ।
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद् बृहद्रथः ।।१४।।

अर्थ—उस यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान कर लेने पर इन्द्रोत का पाप दूर हो गया और उनके शरीर से जो लोहे की सी गन्ध आती थी, वह मिट गयी। राजन् ! तत्पश्चात् इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर वह दिव्य रथ चेदिराज उपरिचर वसु को दे दिया। फिर वसु से वह रथ मगधराज बृहद्रथ को मिला।

बृहद्रथात् क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् ।
ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।।१५।।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ।

अर्थ—बृहद्रथ से क्रमशः वह रथ उनके पुत्र राजा जरासंध को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कौरवकुल को आनन्दित करनेवाले भीमसेन ने जरासंध को मारकर वह उत्तम रथ प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण को दे दिया ।

सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ।।१६।।
व्यभजत् पञ्चधा राजन् पुत्राणां नाहुषस्तदा ।

अर्थ—राजन् ! नहुषनन्दन राजा ययाति ने समुद्र और सातों द्वीपों सहित सारी पृथ्वी को जीतकर उसके पांच भाग किये और उन्हें अपने पांचों पुत्रों में बांट दिया।

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान् नृपः ॥१७॥
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च नाहुषः।
दिशि पूर्वोत्तरस्यां वै यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ॥१८॥

अर्थ—उन बुद्धिमान् नरेश ने दक्षिण-पूर्व दिशा तुर्वसु को, पश्चिम में द्रुह्यु को और उत्तर दिशा में अनु को अभिषिक्त करके पूर्वोत्तर दिशा के (ईशान कोण) राज्य पर ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त कर दिया।

मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत नाहुषः।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥१९॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते।
प्रजास्तेषां पुरस्तात् तु वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥२०॥

अर्थ—इसके बाद नहुषनन्दन ययाति ने मध्यदेश के राज्यसिंहासन पर पूरु का अभिषेक किया। नृपश्रेष्ठ ! वे तथा उनके वंशज आज भी सातों द्वीपों और नगरों सहित इस सारी पृथ्वी का अपने-अपने प्रदेश के अनुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं। अब आगे मैं उनकी सन्तानों का वर्णन करूंगा।

धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः।
जरावानभवद् राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥२१॥

अर्थ—पांच पुरुषप्रवर पुत्रों से कृतकृत्य हो राजा ययाति ने राज्य का भार अपने उन बन्धु-बान्धवों पर रखकर धनुष और बाणों का भी त्याग कर दिया। तत्पश्चात् उन्हें जरावस्था ने काबू में कर लिया।

निःक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं निरीक्ष्य पृथिवीपतिः।
प्रीतिमानभवद् राजा ययातिरपराजितः।
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ॥२२॥

अर्थ—किसी से परास्त न होनेवाले पृथ्वीपति राजा ययाति अस्त्र-शस्त्रों का त्याग करके पृथ्वी को सुव्यवस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए। इस तरह भूमण्डल का विभाग करके ययाति ने यदु से कहा—

जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै।
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२३॥

अर्थ—'बेटा ! एक दूसरा कार्य उपस्थित हुआ है, जिसके लिए मुझे तुम्हारी युवावस्था चाहिए। तुम मेरा बुढ़ापा ग्रहण करो और मैं तुममें अपनी वृद्धावस्था स्थापित करके तुम्हारे रूप से तरुण होकर इस पृथ्वी पर विचरण करूं।' तब यदु ने उन्हें यों उत्तर दिया—

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता।
अनपाकृत्य तां राजन् न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२४॥

अर्थ—'महाराज ! मैंने एक ब्राह्मण को मुंह-मांगी भिक्षा देने की प्रतिज्ञा कर ली है, अभी तक उसने यह स्पष्टरूप से बताया नहीं है कि 'मुझे अमुक वस्तु चाहिये।' मैं जब तक उसकी भिक्षा का ऋण उतार न दूं, तब तक आपका बुढ़ापा नहीं ले सकूंगा।

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥२५॥

अर्थ—राजन् ! बुढ़ापे में खान-पानसम्बन्धी बहुत-से दोष हैं, अतः मैं आपका बुढ़ापा नहीं ग्रहण करूंगा।

सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप।
प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥२६॥

अर्थ—'नरेश्वर ! आपके तो बहुत-से पुत्र हैं, जो मुझसे भी बढ़कर प्रिय है; अतः धर्मज्ञ महाराज जरावस्था ग्रहण करने के लिए किसी दूसरे पुत्र का वरण कीजिये।'

स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥२७॥

अर्थ—यदु के ऐसा कहने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ राजा ययाति कुपित हो उठे और अपने उस पुत्र की निन्दा करते हुए बोले—

क आश्रयस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥२८॥

अर्थ—'दुर्बुद्धे ! मेरा अनादर करके तेरा कौन-सा दूसरा आश्रय है ? अथवा तू किस धर्म का पालन कर रहा है ? मैं तो तेरा गुरु हूं (फिर मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन कैसे कर रहा है ?)'

एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति नराधम ॥२९॥

अर्थ—तात ! अपने पुत्र यदु से ऐसा कहकर कुपित हुए राजा ययाति ने उन्हें शाप दिया—'मूढ़ ! नराधम ! तेरी सन्तान सदा राज्य से वञ्चित रहेगी।'

स तुर्वसुं च द्रुह्युं चाप्यनुं च भारतर्षभ।
एवमेवाब्रवीद् राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥३०॥

अर्थ—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर राजा ययाति ने क्रमशः तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु को भी बुलाकर उनसे ऐसी ही बात कही, परन्तु उन्होंने भी उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया।

शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः।
यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तमः ॥३१॥

अर्थ—तब किसी से भी पराजित न होनेवाले राजर्षिशिरोमणि ययाति ने अत्यन्त कुपित हो उनको भी वैसा ही शाप दिया जैसा यदु के प्रसङ्ग में पहले तुम्हें बताया गया है।

एवं शप्त्वा सुतान् सर्वांश्चतुरः पूरुपूर्वजान्।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भारत ॥३२॥

अर्थ—भारत ! इस प्रकार पूरु से पहले उत्पन्न हुए अपने चारों पुत्रों को शाप देकर राजा ययाति ने पूरु के सामने भी वही प्रस्ताव रक्खा।

तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥३३॥

अर्थ—'पूरो ! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपने बुढ़ापे का भार तुम पर रखकर तुम्हारे रूप से तरुण होकर इस पृथ्वी पर विचरूं।'

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान्।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यचरन्महीम् ॥३४॥

अर्थ—यह सुनकर प्रतापी पूरु ने पिता का बुढ़ापा ले लिया और ययाति भी पूरु के रूप से तरुण हो इस पृथ्वी पर विचरने लगे।

स मार्गमाणः कामानामन्तं भरतसत्तम।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥३५॥

अर्थ—भरतश्रेष्ठ ! प्रभावशाली ययाति कामनाओं का अन्त ढूंढते हुए चैत्ररथ नामक वन में गये और वहां विश्वाची नामक अप्सरा के साथ रमण करने लगे।

यदावितृष्णः कामानां भोगेषु स नराधिपः।
तदा पूरोः सकाशाद् वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥३६॥

अर्थ—इतने पर भी जब उन्हें कामोपभोग से तृप्ति नहीं हुई, तब उन नरेश ने घर आकर पूरु से अपना बुढ़ापा ले लिया।

तत्र गाथा महाराज शृणु गीता ययातिना।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत् ॥३७॥

अर्थ—महाराज! वहां ययाति ने जो गाथाएं गायीं (उद्‌गार प्रकट किये), उन्हें सुनो। उन पर ध्यान देने से मनुष्य सब भोगों की ओर से अपने मन को उसी प्रकार हटा सकता है जैसे कछुआ अपने अङ्गों से सब ओर से समेट लेता है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥३८॥

अर्थ—ययाति ने कहा—'भोगों की इच्छा उन्हें भोगने से कभी शान्त नहीं होती; अपितु घी से आग की भांति और भी बढ़ती ही जाती है।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥३९॥

अर्थ—'इस पृथ्वी पर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु तथा स्त्रियां हैं, वे सब एक पुरुष के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। ऐसा समझकर विद्वान् पुरुष मोह में नहीं पड़ता।

यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४०॥

अर्थ—'जब जीव मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी के प्रति पापबुद्धि नहीं करता, तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

यदान्येभ्यो न बिभ्येत यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४१॥

अर्थ—'जब वह दूसरे प्राणियों से नहीं डरता, जब उससे भी दूसरे प्राणी नहीं डरते तथा जब वह इच्छा-द्वेष से परे हो जाता है, उस समय ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४२॥

अर्थ—'खोटी बुद्धिवाले पुरुषों द्वारा जिसका त्याग होना कठिन है, जो मनुष्य के बूढ़े होने पर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राण-नाशक रोग के समान है, उस तृष्णा का त्याग करनेवाले को ही सुख मिलता है।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥४३॥

अर्थ—'बूढ़े होनेवाले मनुष्य के बाल पक जाते हैं, उसके दांत भी टूटने लगते हैं, परन्तु धन और जीवन की आशा उस मनुष्य के जीर्ण होने पर भी जीर्ण (शिथिल) नहीं होती ।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥४४॥

अर्थ—'संसार में जो कामजनित सुख है तथा जो दिव्य महान् सुख हैं, वे सब मिलकर तृष्णा-क्षय से होनेवाले सुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकते ।'

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद् वनम् ।
कालेन महता वापि चचार विपुलं तपः ॥४५॥

अर्थ—ऐसा कहकर राजर्षि ययाति स्त्री सहित वन में चले गये । वहां बहुत समय तक उन्होंने भारी तपस्या की ।

भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तपसोऽन्ते महातपाः ।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४६॥

अर्थ—उन महातपस्वी नरेश ने भृगुतुङ्ग नामक शिखर पर तपस्या करके स्त्री सहित उपवास के द्वारा देह को त्याग दिया और स्वर्गलोक प्राप्त किया ।

तस्य वंशे महाराज पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥४७॥

अर्थ—महाराज ! उनके वंश में यदु आदि पांच राजर्षिशिरोमणि हुए, जिनके वंशजों से यह सारी पृथ्वी उसी प्रकार व्याप्त है, जैसे सूर्य की किरणों से वह व्याप्त होती है ।

यदोस्तु श्रृणु राजर्षेर्वंशं राजर्षिसत्कृतम् ।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥४८॥

अर्थ—राजर्षि यदु का वंश समस्त राजर्षियों द्वारा सम्मानित है । तुम उसका वर्णन सुनो । उसी वंश में वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण के रूप में श्रीनारायण हरि का अवतार (प्रादुर्भाव) हुआ था ।

धन्यः प्रजावानायुस्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातेश्चरितं पुण्यं पठञ्छृण्वन् नराधिप ॥४९॥

अर्थ—नरेश्वर ! जो मनुष्य ययाति के इस पुण्यमय चरित्र को पढ़ता और सुनता है, वह धनसम्पन्न, सन्तानवान्, दीर्घायु तथा यशस्वी होता है।

इति हरिवंशे ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

---

१७. पूरुवंशानुचरितम्—शिबिवंशश्च

जनमेजय उवाच—

पूरोर्वंशमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक् ॥१॥

अर्थ—जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं पूरु, द्रुह्यु, अनु, यदु और तुर्वसु के वंश का पृथक्-पृथक् यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूं।

वृष्णिवंशप्रसङ्गेन स्वं वंशं पूर्वमेव तु।
विस्तरेणानुपूर्व्या च तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥२॥

अर्थ—वृष्णिवंश के प्रसंग से इन सबका वर्णन मुझे सुनना है; परन्तु सबसे पहले मैं अपने ही वंश (पूरु-कुल) का क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन सुनना चाहता हूं। अतः आप पहले उसी का वर्णन करें।

वैशम्पायन उवाच—

शृणु पूरोर्महाराज वंशमुत्तमपौरुषम्।
विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥३॥

अर्थ—वैशम्पायन जी बोले—महाराज ! उत्तम पराक्रम से सम्पन्न पूरुवंश का, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है, मैं क्रमानुसार विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं। पृथ्वीनाथ ! तुम इसे सुनो।

हन्त ते कीर्तयिष्यामि पूरोर्वंशमनुत्तमम्।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च नराधिप ॥५॥

अर्थ—नरेश्वर ! में बड़े हर्ष के साथ तुमसे परम उत्तम पूरुवंश का वर्णन करूंगा। फिर द्रुह्यु, अनु यदु तथा तुर्वसु के वंश का कीर्तन किया जायेगा।

पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजाऽऽसीज्जनमेजयः।
प्रचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद् दिशम् ॥५॥

अर्थ—पूरु के महापराक्रमी पुत्र राजा जनमेजय हुए। उनके पुत्र का नाम प्रचिन्वान् था, जिन्होंने पूर्वदिशा को जीता था।

प्रचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥६॥

अर्थ—प्रचिन्वान् के पुत्र प्रवीर और प्रवीर के मनस्यु हुए, मनस्यु के पुत्र राजा अभयद थे।

तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा तु महीपतिः।
सुधन्वनो बहुगवः शम्यातिस्तस्य चात्मजः ॥७॥

अर्थ—अभयद के पुत्र का नाम सुधन्वा था, जो इस पृथ्वी का अधिपति हुआ। सुधन्वा के बहुगव और बहुगव के पुत्र शम्याति हुए।

शम्यातेस्तु रहस्याती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः।
रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥८॥

अर्थ—शम्याति के रहस्याति और रहस्याति के पुत्र रौद्राश्व हुए, रौद्राश्व के घृताची अप्सरा के गर्भ से दस पुत्र हुए।

ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च।
कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥९॥
दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रिकाश्च दश स्त्रियः ॥१०॥

अर्थ—उनके नाम इस प्रकार हैं—ऋचेयु अपने सभी भाइयों में ज्येष्ठ थे। उनके बाद कृकणेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, दशार्णेयु, जलेयु, महायशस्वी स्थलेयु, धनेयु और वनेयु थे। इनके सिवा रौद्राश्व के दस कन्याएं भी थीं, जो पुत्रिका-धर्म के अनुसार ब्याही जानेवाली थीं।

रुद्रा शूद्रा च भद्रा च मलदा मलहा तथा।
खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च।
तथा गोचपला तु स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ॥११॥

अर्थ—राजेन्द्र! उन कन्याओं के नाम इस प्रकार हैं—रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला तथा स्त्रीरत्नकूटा—वे कुल मिलाकर दस थीं।

ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः।
रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम् ॥१२॥

अर्थ—अत्रिकुल में उत्पन्न महर्षि प्रभाकर उन सबके पति हुए। उन्होंने रुद्रा के गर्भ से यशस्वी सोम को पुत्ररूप में उत्पन्न किया।

स्वर्भानुना हते सूर्यं पतमाने दिवो महीम्।
तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्तिता ॥१३॥

अर्थ—राहु से आहत होकर जब सूर्य आकाश से पृथ्वी पर गिरने लगे और समस्त संसार में अन्धकार छा गया, उस समय प्रभाकर ने ही अपनी प्रभा फैलायी।

स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तो वै पतमानो दिवाकरः।
वचनात् तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम् ॥१४॥

अर्थ—महर्षि ने गिरते हुए सूर्य को 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर आशीर्वाद दिया। उन ब्रह्मर्षि के इस वचन से सूर्यदेव पृथ्वी पर नहीं गिरे।

अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः।
यज्ञेष्वत्रेर्धनं चैव सुरैर्यस्य प्रवर्तितम् ॥१५॥

अर्थ—महातपस्वी प्रभाकर ने सब गोत्रों में अत्रिगोत्र की ही श्रेष्ठता स्थापित की। अत्रि के यज्ञों में उन्हीं के प्रभाव से देवताओं ने धन प्रस्तुत किया था।

स तासु जनयामास पुत्रिकासु सनामकान्।
दश पुत्रान् महात्मा स तपस्युग्रे रतान् सदा ॥१६॥

अर्थ—महात्मा प्रभाकर ने रौद्राश्व की पुत्रिका-धर्म के अनुसार प्राप्त हुई कन्याओं के गर्भ से एक-से ही नामवाले दस पुत्रों को जन्म दिया, जो सदा उग्र तपस्या में तत्पर रहनेवाले थे।

ते तु गोत्रकरा राजन्नृषयो वेदपारगाः।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याताः किं त्वत्रिधनवर्जिताः ॥१७॥

अर्थ—राजन्! वे सब-के-सब वेदों के पारङ्गत विद्वान् तथा गोत्र-प्रवर्तक ऋषि हुए। स्वस्त्यात्रेय नाम से नकी ख्याति हुई, परन्तु वे अत्रिगोत्री पिता के धन से वञ्चित रहे (क्योंकि पुत्रिका-धर्म के अनुसार वे अपने नाना के पुत्र थे)।

कक्षेयोस्तनयाश्चासंस्त्रयः एव महारथाः।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च ॥१८॥

अर्थ—कक्षेय के सभानर, चाक्षुष और परमन्यु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। तीनों ही महारथी थे।

सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः।
कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ॥१९॥

अर्थ—सभानर का पुत्र विद्वान् राजा कालानल हुआ। कालानल का धर्मज्ञ पुत्र सृञ्जय नाम से विख्यात हुआ।

सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः।
जनमेजयो महाराज पुरञ्जयसुतोऽभवत् ॥२०॥

अर्थ सृञ्जय के पुत्र वीर राजा पुरञ्जय हुए। महाराज ! पुरञ्जय का पुत्र जनमेजय हुआ।

जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः।
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि ॥२१॥

अर्थ—राजर्षि जनमेजय के पुत्र महाशाल हुए, जो देवताओं में भी विख्यात थे और इस पृथ्वी पर भी उनका यश फैला हुआ था।

महामना नाम सुतो महाशालस्य धार्मिकः।
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहायशाः ॥२२॥

अर्थ महाशाल के धार्मिक पुत्र का नाम महामना था। वे एक वीर पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। महायशस्वी महामना का देवता भी सम्मान करते थे।

महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भारत।
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं च महाबलम् ॥२३॥

अर्थ—भरतनन्दन ! महामना ने दो पुत्रों को जन्म दिया—धर्मज्ञ उशीनर और महाबली तितिक्षु।

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्चराजर्षिवंशजाः।
नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती ॥२४॥

अर्थ—उशीनर की पांच पत्नियां थीं, जो राजर्षियों के कुल में उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—नृगा, कृमी, नवा, दर्वा और पांचवीं दृषद्वती।

उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः।
तपसा वै सुमहता जाता वृद्धस्य भारत ॥२५॥

अर्थ—उनके गर्भ से उशीनर के पांच पुत्र हुए, जो अपने वंश की मर्यादा को ऊंचे उठानेवाले थे। भारत ! वे अपने वृद्ध पिता के महान् तप से उत्पन्न हुए थे।

नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमिरजायत।
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वायाः सुव्रतोऽभवत् ॥२६॥

अर्थ—नृगा के पुत्र नृग थे, कृमी के गर्भ से कृमि का जन्म हुआ था, नवा के पुत्र नव तथा दर्वा के सुव्रत हुए।

दृषद्वत्यास्तु संजज्ञे शिबिरौशीनरो नृपः।
शिबेस्तु शिबयस्तात यौधेयास्तु नृगस्य ह ॥२७॥

अर्थ—तात ! दृषद्वती के गर्भ से उशीनरकुमार राजा शिबि का जन्म हुआ। शिबि को शिब्रि देश का राज्य मिला और नृग को यौधेय प्रदेश का।

नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी।
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोध मे ॥२८॥

अर्थ— नव को नवराष्ट्र तथा कृमि को कृमिलापुरी का राज्य प्राप्त हुआ। सुव्रत के अधिकार में अम्बष्ठ देश आया। अब शिबि के पुत्रों का वर्णन सुनो।

शिबेश्च पुत्राश्चत्वारो वीरास्त्रैलोक्यविश्रुताः।
वृषदर्भः सुवीरश्च मद्रकः कैकयस्तथा ॥२९॥

अर्थ—शिबि के चार वीर पुत्र हुए—वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा कैकय। ये चारों राजकुमार तीनों लोकों में विख्यात थे।

तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा।
वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजाः श्रृणु ॥३०॥

अर्थ—इनके समृद्धिशाली जनपद भी इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध होकर वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा केकय कहलाये। अब तितक्षु की सन्तति का वर्णन सुनो।

तैतिक्षवोऽभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि भारत।
पषद्रथो महाबाहुस्तस्य फेनः सुतोऽभवत् ॥३१॥

अर्थ—भारत ! तितिक्षु के पुत्र महाबाहु राजा उषद्रथ हुए, जो पूर्व दिशा के अधिपति थे। इनके पुत्र का नाम फेन था।

फेनात् तु सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः।
जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः ॥३२॥

अर्थ— फेन से सुतपा का जन्म हुआ। सुतपा के पुत्र बलि थे। दानवराज बलि ही मनुष्ययोनि में जन्म लेकर राजा बलि के नाम से विख्यात हुए। वे सोने का तरकस रखते थे।

महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा।
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि ॥३३॥

अर्थ—पूर्वकाल में राजा बलि महान् योगी थे। उन्होंने इस भूतल पर वंश की वृद्धि करनेवाले पांच पुत्र उत्पन्न किये।

अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च ।
पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ॥३४॥

अर्थ—उनमें सबसे पहले अङ्ग की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः वङ्ग, सुह्म, पुड्र तथा कलिङ्ग उत्पन्न हुए। ये सब लोग बालेय क्षत्रिय कहलाये हैं।

बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ।
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन भारत ॥३५॥
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ।
संग्रामे वाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानता ॥३६॥
त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥३७॥
चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वं च स्थापयिता भुवि ।
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ॥३८॥

अर्थ—बलि के कुल में बालेय ब्राह्मण भी हुए, जो इस भूतल पर उनके वंश की वृद्धि करनेवाले थे। भरतनन्दन ! ब्रह्मा जी ने बलि पर प्रसन्न होकर उन्हें निम्नाङ्कित वर दिये थे—'तुम महायोगी होओगे, तुम्हारी आयु एक कल्प की होगी, तुम युद्ध में अजेय होओगे, धर्म में तुम्हारी प्रधानता होगी, तुम तीनों लोकों की देखभाल करोगे (अथवा तुम तीनों लोकों की सभी बातें प्रत्यक्ष की भांति देखोगे) तुम्हारी संतति श्रेष्ठ समझी जायेगी, बल में तुम्हारी समानता करनेवाला कोई न होगा, तुम धर्मतत्त्व के ज्ञाता होओगे तथा भूतल पर चारों वर्णों को नियन्त्रण में रखकर उन्हें मर्यादा के भीतर स्थापित करोगे।' भगवान् ब्रह्मा जी के ऐसा कहने पर राजा बलि को बड़ी शान्ति मिली।

तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिपुङ्गवात् ।
सम्भूता दीर्घतपसो सुदेष्णायां महौजसः ॥३९॥

अर्थ—उनके वे सभी पुत्र क्षेत्रज थे। मुनिवर दीर्घतपा द्वारा रानी सुदेष्णा के गर्भ से प्रकट हुए थे। उनका बल महान् था।

बलिस्तानभिषिच्येह पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।
कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य स प्रभुः ॥४०॥
अधृष्यः सर्वभूतानां कालापेक्षी चरन्नपि ।
कालेन महता राजन् स्वं च स्थानमुपागमत् ॥४१॥

अर्थ—राजा बलि ने उन पांचों निष्पाप पुत्रों को विभिन्न राज्यों पर अभिषिक्त करके अपने को कृतार्थ माना। उसका मन सदा योग में लगा रहता

था। वे योग का आश्रय ले समस्त प्राणियों के लिए अजेय हो गये थे। काल की प्रतीक्षा करते हुए सर्वत्र विचरते थे। राजन्! दीर्घकाल के पश्चात् उन्हें अपना स्थान (सुतललोक) उपलब्ध हुआ।

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः।
कलिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य मे शृणु ॥४२॥

अर्थ—उनके पांच पुत्रों के अधिकार में जो जनपद थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग और पुण्ड्रक। अब तुम मुझसे अङ्ग की सन्तानों का वर्णन सुनो।

अङ्गपुत्रो महानासीद् राजेन्द्रो दधिवाहनः।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिवोरथोऽभवत् ॥४३॥

अर्थ—अङ्ग के पुत्र महान् राजाधिराज दधिवाहन थे और दधिवाहन के पुत्र राजा दिविरथ हुए।

पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः।
विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥४४॥

अर्थ—दिविरथ के पुत्र इन्द्रतुल्य पराक्रमी और विद्वान् थे। उनका नाम धर्मरथ था। धर्मरथ के पुत्र चित्ररथ हुए।

तेन चित्ररथेनाम तदा विष्णुपदे गिरौ।
यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥४५॥

अर्थ—राजा चित्ररथ जब विष्णुपद पर्वत पर यज्ञ करते थे, उस समय उन महामना नरेश ने इन्द्र के साथ बैठकर सोमपान किया था।

अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥४६॥

अर्थ—चित्ररथ के पुत्र दशरथ हुए, जिनका दूसरा नाम लोमपाद था तथा शान्ता जिनकी पुत्री थी।

तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः।
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्धनः ॥४७॥

अर्थ—उन लोमपाद या दशरथ के पुत्र महायशस्वी वीर चतुरङ्ग हुए, जो ऋष्यशृङ्ग मुनि की कृपा से उत्पन्न हुए। चतुरङ्ग अपने कुल की वृद्धि करने वाले थे।

चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः।
पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः। ४८॥

अर्थ—चतुरङ्ग के पुत्र पृथुलाक्ष कहे गये हैं। पृथुलाक्ष के महायशस्वी राजा चम्प हुए।

चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४६॥

अर्थ—चम्प की राजधानी चम्पा थी, जो पहले मालिनी नाम से प्रसिद्ध थी। चम्प के पुत्र हर्यङ्ग हुए, जो पूर्णभद्र नामक मुनि की कृपा से उत्पन्न हुए थे।

ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम्।
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥५०॥

अर्थ—विभाण्डक पुत्र ऋष्यशृङ्ग ने हर्यङ्ग की सवारी के उत्तम वाहन गजराज ऐरावत को मन्त्रों द्वारा स्वर्ग पर उतारा था।

हर्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः।
पुत्रो भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥५१॥

अर्थ—हर्यङ्ग के पुत्र राजा भद्ररथ कहे गये हैं। भद्ररथ के पुत्र राजा बृहत्कर्मा थे।

बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः।
बृहन्मनास्तु राजेन्द्र जनयामास वै सुतम् ॥५२॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद् दृढरथो नृपः।
आसीद् दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजय ॥५३॥

अर्थ—बृहत्कर्मा के पुत्र बृहद्दर्भ थे, उनसे बृहन्मना का जन्म हुआ। राजेन्द्र! बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को जन्म दिया, जिससे राजा दृढरथ की उत्पत्ति हुई। जनमेजय! दृढरथ के पुत्र विश्वजित् हुए।

दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्धनम् ॥५४॥

अर्थ—विश्वजित् के पुत्र कर्ण तथा कर्ण के पुत्र विकर्ण हुए। विकर्ण के सौ पुत्र थे, जो अङ्गवंश की वृद्धि करनेवाले थे।

बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे।
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते ॥५५॥

अर्थ—बृहद्दर्भ का जो बृहन्मना नाम से प्रसिद्ध पुत्र था, उसकी दो पत्नियां थीं। ये दोनों ही चेदिराज की सुन्दरी कन्याएं थीं एक का नाम यशो-

देवी था और दूसरी का सत्या। उन दोनों के द्वारा उस वंश में भेद होगया अर्थात् दोनों की पृथक्-पृथक् वंश-परम्परा चली।

जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत।
ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः ॥५६॥

अर्थ—राजेन्द्र! बृहन्मना का जो जयद्रथ नामक पुत्र था, वह यशोदेवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था तथा उनका दूसरा पुत्र, जो विजय नाम से विख्यात था, सत्या के पेट से पैदा हुआ था। वह शान्ति आदि गुणों में ब्राह्मणों से और शौर्य आदि गुणों में क्षत्रियों से भी उत्कृष्ट था।

विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः।
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः ॥५७॥

अर्थ—विजय का पुत्र धृति और धृति का पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रत के पुत्र महायशस्वी सत्यकर्मा हुए।

सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै।
यः कर्णं प्रतिजग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः ॥५८॥

अर्थ—सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ नामक सूत हुआ, जिसने कर्ण को गोद लिया था। इसीलिए कर्ण को सूतपुत्र कहा जाता है।

एतत् ते कथितं सर्वं कर्णं प्रति महाबलम्।
कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥५९॥

अर्थ—राजन्! यह सब मैंने तुम्हें महाबली कर्ण के विषय में बताया है। कर्ण का पुत्र वृषसेन हुआ और वृषसेन का पुत्र वृष कहा गया है।

एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।
सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥६०॥

अर्थ—ये सब अङ्गवंशी राजा मेरे द्वारा बताए गए हैं, जो सत्यव्रती, महात्मा, पुत्रवान् तथा महारथी थे।

ऋचेयोस्तु महाराज रौद्राश्वतनयस्य ह।
शृणु वंशमनुप्रोक्तं यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥६१॥

अर्थ—महाराज! पृथ्वीनाथ! अब मैं रौद्राश्वकुमार ऋचेयु के वंश का वर्णन करूंगा, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम इसे सुनो।

इति हरिवंशे कुक्षेयुवंशानुकीर्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

---

१८. पौरववंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

अनाधृष्यस्तु राजर्षिऋचेयुश्चैकराट् स्मृतः।
ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय ! राजर्षि ऋचेयु एकच्छत्र सम्राट् माने गये हैं। वे दूसरों के लिए अजेय थे। ऋचेयु की पत्नी का नाम ज्वलना था, जो तक्षक नाग की पुत्री थी।

तस्यां स देव्यां राजर्षिर्मतिनारो महीपतिः।
मतिनारसुताश्चासंस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥२॥
तंसुराद्यः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः।
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातृजननी शुभा ॥३॥

अर्थ—महारानी ज्वलना के गर्भ से पृथ्वीपति राजर्षि मतिनार का जन्म हुआ। मतिनार के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—प्रथम तंसु, दूसरे प्रतिरथ और तीसरे धर्मात्मा सुबाहु। मतिनार के एक कन्या भी हुई थी, जो गौरी नाम से विख्यात थी। शुभलक्षणा गौरी ही राजा मान्धाता की जननी हुई।

सर्वे वेदविदस्तत्र ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः।
सर्वे कृतास्त्रा बलिनः सर्वे युद्धविशारदाः ॥४॥

अर्थ—मतिनार के सभी पुत्र वेदवेत्ता, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, अस्त्रविद्या के विद्वान्, बलवान् तथा युद्धकुशल थे।

पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृपः।
मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्वायना द्विजाः ॥५॥

अर्थ—मतिनार के दूसरे पुत्र प्रतिरथ के बेटे का नाम कण्व था। कण्व राजा थे। कण्व के पुत्र मेधातिथि हुए, जिनसे काण्वायन ब्राह्मणों की परम्परा प्रचलित थी।

ईलिनी भूप यस्यासीत् कन्या वै जनमेजय।
ब्रह्मवादिन्यधि स्त्रीं च तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥६॥

अर्थ—राजा जनमेजय ! जिनकी कन्या ईलिनी नाम से प्रसिद्ध हुई थी, वे ईलिन नामक नरेश ब्रह्मवादी ब्राह्मण-समुदाय में उत्कृष्ट माने जाते थे। उनकी उस ईलिनी नामक कन्या को तंसु ने पत्नीरूप में प्राप्त किया।

तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः ।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ॥७॥
उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान् ।
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥८॥

अर्थ—तंसु के महायशस्वी राजर्षि सुरोध हुए, जो धर्म के प्रवर्तक होने से धर्मनेत्र कहलाये थे। वे ब्रह्मवादी और पराक्रमी थे। उनकी पत्नी उपदानवी थी। उपदानवी ने चार पुत्र प्राप्त किये, जो दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर और अनघ के नाम से विख्यात थे। ये चारों ईलिनीकुमार सुरोध या धर्मनेत्र के पुत्र थे।

दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान् ।
स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥९॥

अर्थ—दुष्यन्त के पुत्र का नाम भरत था। वे बड़े पराक्रमी थे। सबका दमन करने के कारण उनका दूसरा नाम सर्वदमन भी था। महान् वीर भरत में दस हजार हाथियों का बल था।

चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः ॥१०॥

अर्थ—महात्मा दुष्यन्त के वीर्य और शकुन्तला के गर्भ से चक्रवती भरत पुत्ररूप में उत्पन्न हुए थे, जिनके नाम पर तुम लोग भारत कहलाते हो।

दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी ।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥११॥
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ।
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ॥१२॥
एवं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।

अर्थ—(कहते हैं—दुष्यन्त ने तपोवन में जाकर शकुन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह किया था और अपनी राजधानी को लौटकर उसके विषय में कुछ बताया नहीं था। जब शकुन्तला भरत को लेकर दुष्यन्त के यहां गयी, तब वे उसे पहचानने में भूल करने लगे। उस समय) आकाशवाणी ने राजा दुष्यन्त को सम्बोधित करके कहा—'दुष्यन्त ! माता तो केवल चमड़े की धौंकनी के समान है, पुत्र पर अधिकार तो पिता का ही है। पुत्र जिसके द्वारा जन्म ग्रहण करता है, उसी का स्वरूप होता है। तुम इस पुत्र का पालन-पोषण करो, शकुन्तला का अपमान मत करो। नरदेव ! अपने ही वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र अपने

पिता को यमलोक से (निकालकर स्वर्गलोक को) ले जाता है। 'इस पुत्र के आधान करनेवाले तुम्हीं हो'—शकुन्तला ने यह बात ठीक ही कही है।'

भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ॥१३॥
मातॄणां तात कोपेन मया ते कथितं पुरा।

अर्थ—राजा भरत के कई पुत्र होकर मर गये। तात ! माताओं के क्रोध से ऐसा हुआ था। यह बात मैं तुम्हें पहले (आदि पर्व में) बता चुका हूं।

बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन् महामुनिः।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥१४॥

अर्थ—राजन् ! भरत के यज्ञ में आये हुये देवताओं ने भरत के लिए अङ्गिरानन्दन बृहस्पति जी के पुत्र महामुनि भरद्वाज को ही पुत्र बनाकर दे दिया।

अत्रैवोदाहरन्तीमं भरद्वाजस्य धीमतः।
धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै ॥१५॥
अयाजयद् भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हि तम्।
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ॥१६॥
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत्।

अर्थ—इसी प्रसंग में बुद्धिमान् भरद्वाज के धर्म-संक्रमण की यह बात कही जाती है। मरुद्गणों ने भरत को पुत्ररूप में जब भरद्वाज को ही अर्पित कर दिया, तब भरद्वाज ने भरत से देवताओं सहित यज्ञ का अनुष्ठान करवाया। इसके पहले भरत के पुत्र-जन्म का सारा प्रयास वितथ (व्यर्थ) हो चुका था। भरद्वाज के प्रयत्न से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम वितथ हुआ।

ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ॥१७॥
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ।

अर्थ—वितथ का जन्म हो जाने पर भरत स्वर्गवासी हो गये। तत्पश्चात् वितथ का राज्याभिषेक करके भरद्वाज जी भी वन में चले गये।

स राजा वितथः पुत्राञ्जनयामास पञ्च वै ॥१८॥
सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च।
कपिलं च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ॥१९॥
काशिकश्च महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥२०॥
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा।

अर्थ—राजा वितथ ने पांच पुत्र उत्पन्न किये—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग तथा महात्मा कपिल। सुहोत्र के भी दो पुत्र हुये – महान् शक्तिशाली काशिक तथा राजा गृत्समति। गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लोग हुए। काशिक के दो पुत्र थे—काशेय और दीर्घतपा।

आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां पुरुषर्षभ ॥२१॥
सुहोत्रस्य बृहत् पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ॥२२॥

अर्थ—पुरुषप्रवर! अब आजमीढ नामक दूसरे वंश का वर्णन सुनो—पूर्वोक्त राजा सुहोत्र के एक तीसरा पुत्र और था बृहत्। बृहत् के तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ और पराक्रमी पुरुमीढ।

अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः।
नीलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना ॥२३॥

अर्थ—अजमीढ की तीन स्त्रियां थीं। तीनों ही बड़ी यशस्विनी थीं। उनके नाम थे—नीलिनी, केशिनी और स्त्रियों में श्रेष्ठ धूमिनी।

अजमीढस्य नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत।
पुरुजातिः सुशान्तेस्तु वाह्याश्वः पुरुजातितः ॥२४॥
वाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमा ॥२५॥

अर्थ—अजमीढ के नीलिनी के गर्भ से सुशान्ति नामक पुत्र हुआ। सुशान्ति से पुरुजाति और पुरुजात्ति से वाह्याश्व का जन्म हुआ। वाह्याश्व के पांच देवोपम पुत्र हुए।

मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुः स्मृतः।
यवीनरश्च विक्रान्तः क्रुमिलाश्वश्च पञ्चमः ॥२६।

अर्थ—उनके नाम इस प्रकार हैं—मुद्गल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर तथा पांचवें क्रुमिलाश्व।

पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः।
पञ्चानां विद्धि पञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान् ॥२७॥

अर्थ—ये पांचों अपने अधिकार में आये हुये देशों की रक्षा के लिए अलं (समर्थ) थे, इसलिए समृद्धिशाली जनपदों से युक्त उन देशों को पञ्चाल समझो।

अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः।
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ॥२८॥

सर्वं एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः ॥२९॥

अर्थ—उन देशों की रक्षा के लिए अलं होने से ये पांचों वीर पञ्चाल नाम से विख्यात हुए। मुद्गल के पुत्र महायशस्वी मौद्गल्य थे। ये सब-के-सब महात्मा क्षात्रधर्म से युक्त ब्राह्मण थे। ये अङ्गिरा के पक्ष का आश्रय लेकर कण्वमौद्गल कहलाये।

मौद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मर्षिः सुमहायशाः।
इन्द्रसेनो यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥३०॥

अर्थ—मौद्गल के ज्येष्ठ पुत्र महायशस्वी ब्रह्मर्षि इन्द्रसेन हुए, जिनसे वध्र्यश्व का जन्म हुआ।

वध्र्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥३१॥

अर्थ—वध्र्यश्व से मेनका के गर्भ से एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ, ऐसी प्रसिद्धि है। पुत्र का नाम दिवोदास था, जो राजर्षि एवं ब्रह्मर्षि थे। कन्या यशस्विनी अहल्या थी।

शरद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः ॥३२॥
पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः।

अर्थ—अहल्या महर्षि शरद्वान् (गौतम) की पत्नी थी। उसने गौतम के पुत्र मुनिश्रेष्ठ शतानन्द को जन्म दिया। शतानन्द के भी एक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सत्यधृति था। (ये सत्यधृति भी अपने पितामह के समान शरद्वान् कहलाते थे।) सत्यधृति धनुर्वेद के पारङ्गत विद्वान् थे।

तस्य सत्यधृते रेतो दृष्ट्वाप्सरसमग्रतः ॥३३॥
अवस्कन्नं शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत।
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः ॥३४॥

अर्थ—एक दिन अपने सामने एक अप्सरा को उपस्थित देख सत्यधृति (शरद्वान्) का वीर्य स्खलित होकर सरकंडों के समूह पर गिर पड़ा। उससे एक बालक और बालिका जुड़वीं संतानें उत्पन्न हुईं। उस समय राजा शन्तनु शिकार खेलने के लिए वन में गये हुये थे। उन्होंने कृपापूर्वक उन दोनों बालकों को ले लिया।

कृपः स्मृतः स वै तस्माद् गौतमी च कृपी तथा ।
एते शारद्वताः प्रोक्ता एते गौतमाः स्मृताः ॥३५॥

अर्थ—कृपापूर्वक ग्रहण करने के कारण बालक का नाम कृप और उस गौतम–बालिका का नाम कृपी हुआ । ये शतानन्द, सत्यधृति और कृप शारद्वत कहे गये हैं तथा ये गौतम भी कहलाते हैं ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य संततिम् ।
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृप ॥३६॥
मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः ।
एते हि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः ॥३७॥

अर्थ— नरेश्वर ! अब मैं दिवोदास की सन्तति का वर्णन करूंगा । दिवोदास के पुत्र ब्रह्मर्षि मित्रयु हुए । मित्रयु से मैत्रायण का जन्म हुआ । मैत्रायण से सोम हुए । सोम के वंशज मैत्रेय कहे गये हैं । ये भार्गव-पक्ष का आश्रय लेकर क्षत्रोपेत भार्गव कहलाये ।

आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥३८॥

अर्थ—महात्मा सृञ्जय के पञ्चजन नामक पुत्र हुआ और पञ्चजन के पुत्र पृथ्वीपति सोमदत्त हुए ।

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः ।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम पार्थिवः ॥३९॥

अर्थ—सोमदत्त के पुत्र महायशस्वी सहदेव थे और सहदेव के पुत्र राजा सोमक हुए ।

अजमीढात् पुनर्जातः क्षीणवंशे तु सोमकः ।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ॥४०॥

अर्थ—अजमीढवंशी सहदेव से सोम का जन्म उस अवस्था में हुआ जब कि उनकी वंश--परम्परा क्षीण हो चली थी । सोमक के पुत्र का नाम जन्तु था । जिसके स्थान पर सोमक के सौ पुत्र होगये ।

तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ।
धृष्टद्युम्नस्तु द्रुपदाद् धृष्टकेतुश्च तत्सुतः ॥४१॥
अजमीढाः स्मृता ह्येते महात्मानस्तु सोमकाः ।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वं महात्मनः ॥४२॥

अर्थ—उनमें सबसे छोटे थे पृषत, जो राजा द्रुपद के प्रभावशाली पिता थे। द्रुपद से धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्न से धृष्टकेतु का जन्म हुआ। ये महामनस्वी क्षत्रिय अजमीढ और सोमक कहे गये हैं। महामना अजमीढ के सन्तानों की ही सोमक संज्ञा हुई।

महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी।
तृतीया तव पूर्वेषां जननी पृथिवीपते ॥४३॥

अर्थ—राजा अजमीढ की जो धूमिनी नामवाली तीसरी रानी थीं, उनके मन में पुत्र की बड़ी लालसा थी। पृथ्वीनाथ! वे ही तुम्हारे पूर्वजों की जननी हुईं।

सा तु पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यासमन्विता।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥४४॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सा तु पवित्रमितभोजना।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप जनमेजय ॥४५॥

अर्थ–जनमेजय! पुत्र की अभिलाषा रखनेवाली धूमिनी देवी व्रत का पालन करने लगीं। वे दस हजार वर्षों तक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करती हुई विधिपूर्वक अग्नि में आहुति देतीं, पवित्रतापूर्वक परिमित भोजन करतीं और अग्निहोत्र के कुशों पर ही सोतीं।

धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान्।
ऋक्षं संजनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम् ॥४६॥

अर्थ—तदनन्तर राजा अजमीढ ने देवी धूमिनी के साथ समागम किया। इससे उन्होंने ऋक्ष नामक पुत्र को जन्म दिया। ऋक्ष धूम्र के समान वर्णवाले एवं सुन्दर दर्शनीय पुरुष थे।

ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् तथा।
यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥४७॥

अर्थ—ऋक्ष से संवरण और संवरण से कुरु उत्पन्न हुए, जिन्होंने प्रयाग से जाकर कुरुक्षेत्र की स्थापना की।

तद्वै तत्स महाभागो वर्षाणि सुबहून्यथ।
तप्यमाने तदा शक्रो यत्रास्य वरदो बभौ ॥४८॥

अर्थ—महाभाग कुरु ने उस क्षेत्र में बहुत वर्षों तक तप किया। उनके तप करते समय वरदायक भगवान् इन्द्र ने वहां जाकर उन्हें वर प्रदान किया।

पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
तस्यान्ववायः सुमहांस्तस्य नाम्ना स्थ कौरवाः ॥४९॥

अर्थ—वह पवित्र एवं रमणीय क्षेत्र पुण्यात्माओं द्वारा सेवित है। कुरु का वंश बहुत बड़ा है। तुम लोग कुरु के ही नाम से कौरव कहलाते हो।

कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा।
परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥५०॥

अर्थ—कुरु के चार पुत्र हुए—सुधन्वा, सुधनु, महाबाहु परीक्षित् और श्रेष्ठ वीर अरिमेजय।

सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमांस्ततः।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः ॥५१॥

अर्थ—सुधन्वा के पुत्र सुहोत्र हुए। सुहोत्र के मतिमान् तथा मतिमान् के पुत्र राजा च्यवन हुए, जो धर्म और अर्थ के ज्ञाता थे।

च्यवनात् कृतयज्ञस्तु इष्ट्वा यज्ञैः स धर्मवित्।
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसमं नृपः ॥५२॥

अर्थ—च्यवन से कृतयज्ञ हुए। उन धर्मज्ञ नरेश ने यज्ञ करके इन्द्र के समान सुविख्यात पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया।

चैद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम्।
चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त मानवान् ॥५३॥

अर्थ—उसका नाम था उपरिचर वसु। वे वसु चेदि देश के निवासी थे और आकाशमार्ग से चलते थे। चेदिदेशीय उपरिचर वसु से उनकी पत्नी गिरिका ने सात मनुष्यों को उत्पन्न किया।

महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः।
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम् ॥५४॥
मारुतश्च यदुश्चैव मत्स्यः काली च सत्तमः।

अर्थ—उनमें प्रथम सन्तान थे सुविख्यात महारथी राजा बृहद्रथ, जो मगध देश के अधिपति थे। दूसरे पुत्र का नाम प्रत्यग्रह था। तीसरे राजा कुश थे, जिन्हें मणिवाहन भी कहते हैं। चौथे मारुत, पांचवें यदु और छठे श्रेष्ठ-तम पुरुष मत्स्य थे। सातवीं सन्तान कन्या थी, जो काली (या सत्यवती) कहलायी।

बृहद्रथस्य दायदः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥५५॥
कुशाग्रस्यात्मजो विद्वान् वृषभो नाम वीर्यवान्।

अर्थ—बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र नाम से विख्यात हुआ। कुशाग्र के पुत्र वृषभ थे, जो विद्वान् और बलवान् थे।

वृषभस्य तु दायादः पुष्पवान्नाम धार्मिकः ॥५६॥
दायादस्तस्य विक्रान्तो राजा सत्यहितः स्मृतः ॥५७॥

अर्थ—वृषभ का पुत्र धर्मात्मा पुष्पवान् था। उसके पुत्र पराक्रमी राजा सत्यहित हुए।

तस्य पुत्रोऽथ धर्मात्मा नाम्ना ऊर्जस्तु जज्ञिवान्।
ऊर्जस्य सम्भवः पुत्रो यस्य जज्ञे स वीर्यवान् ॥५८॥

अर्थ—सत्यहित के धर्मात्मा ऊर्ज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऊर्ज के पुत्र का नाम सम्भव था (जिसे बृहद्रथ भी कहते हैं)। इसी से पराक्रमी राजा जरासंध की उत्पत्ति हुई थी।

शकले द्वे स वै जातो जरया संधितः स तु।
जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्तत स्मृतः ॥५९॥

अर्थ—वह आधे-आधे शरीर के दो टुकड़ों के रूप में (दो माताओं के गर्भ से) उत्पन्न हुआ था। इन दोनों टुकड़ों को जरा नामवाली राक्षसी ने जोड़ दिया। जरा से संधित (जोड़ा गया) होने से उसका नाम जरासंध हुआ।

सर्वक्षत्रस्य जेतासौ जरासंधो महाबलः।
जरासंधस्य पुत्रौ वै सहदेवः प्रतापवान् ॥६०॥

अर्थ—महाबली जरासंध ने सम्पूर्ण क्षत्रिय-समुदाय को जीत लिया था। उसका पुत्र प्रतापी सहदेव था।

सहदेवात्मजः श्रीमानुदायुः स महायशाः।
उदायुर्जनयामास पुत्रं परमधार्मिकम् ॥६१॥
श्रुतधर्मेति नामानं मगधान् योऽवसद् विभुः।

अर्थ—सहदेव के कान्तिमान् पुत्र महायशस्वी उदायु हुए। उदायु ने श्रुत-धर्मा नामक परम धर्मात्मा पुत्र को जन्म दिया, जो वैभव-सम्पन्न होकर मगध देश में निवास करता था।

परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ॥६२॥
जनमेजयस्य दातादास्त्रय एव महारथाः।
श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥६३॥
एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः।
जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥६४॥

अर्थ—कुरु के दूसरे पुत्र परीक्षित् के आत्मज धर्मात्मा जनमेजय हुए। जनमेजय के श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन—ये तीन महारथी पुत्र थे। ये

सभी महाभाग राजकुमार पराक्रमी तथा बलशाली थे। जनमेजय के दो पुत्र हुए सुरथ और मतिमान्।

सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः॥६५॥
द्वितीयः स बभौ राजा नाम्ना तेनैव संज्ञितः।

अर्थ—सुरथ के एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था विदूरथ। विदूरथ के महारथी पुत्र का नाम भी ऋक्ष ही था। ये दूसरे राजा थे, जो उसी (ऋक्ष) नाम से प्रसिद्ध हुए।

द्वावृक्षौ तव वंशेऽस्मिन् द्वावेव तु परीक्षितौ॥६६॥
भीमसेनास्त्रयो राजन् द्वावेव जनमेजयौ।

अर्थ—राजन्! तुम्हारे इस वंश में दो 'ऋक्ष' और दो ही 'परीक्षित्' नाम के राजा हो गये हैं। तीन 'भीमसेन' और दो 'जनमेजय' हुए हैं।

ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत् सुतः॥६७॥
प्रतीपो भीमसेनस्य प्रतीपस्य तु शन्तनुः।
देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः॥६८॥

अर्थ—द्वितीय ऋक्ष के पुत्र भीमसेन हुए। भीमसेन के प्रतीप और प्रतीप के पुत्र शन्तनु, देवापि तथा बाह्लिक थे। ये तीनों ही महारथी वीर थे।

शन्तनोः प्रसवस्त्वेष यत्र जातोऽसि पार्थिव।
बाह्लिकस्य तु राज्यं वै सप्तवाह्यं नरेश्वर॥६९॥

अर्थ—पृथ्वीनाथ! यह शन्तनु का कुल है, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। नरेश्वर! बाह्लिक का राज्य सप्तवाह्य (मन्त्री आदि सात अंगों द्वारा संचालित होने योग्य) था।

बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः॥७०॥

अर्थ—बाह्लिक के पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुए। सोमदत्त से भूरि, भूरिश्रवा और शल—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः।
च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्टश्चासीन्महात्मनः॥७१॥

अर्थ—देवापि देवताओं के उपाध्याय और मुनि हुए। महात्मा च्यवय ने उन्हें अपना प्रिय पुत्र बना लिया था।

शन्तनुस्त्वभवद् राजा कौरवाणां धुरन्धरः ।
शन्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि पार्थिव ।।७२।।

अर्थ—राजा शन्तनु कौरव कुल का भार वहन करनेवाले हुए । पृथ्वीनाथ ! अब मैं शन्तनु के वंश का वर्णन करता हूं, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है ।

गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः ।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ।।७३।।

अर्थ—प्रभावशाली शन्तनु ने गंगा जी के गर्भ से देवव्रत नामक पुत्र को जन्म दिया । वे ही भीष्म नाम से विख्यात हुए, जो पाण्डवों के पितामह थे ।

काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भारत ।
शन्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम् ।।७४।।

अर्थ—भारत ! उनकी दूसरी पत्नी काली (सत्यवती) ने शन्तनु के प्रिय पुत्र विचित्रवीर्य को उत्पन्न किया, जो पापशून्य तथा धर्मात्मा थे ।

कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ।।७५।।

अर्थ विचित्रवीर्य के क्षेत्र (अर्थात् उनके पत्नियों के गर्भ) से श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास जी ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था ।

धृतराष्ट्रश्च गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम् ।
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वेषामेव स प्रभुः ।।७६।।

अर्थ—धृतराष्ट्र ने गान्धारी के गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न किए । उन सबमें दुर्योधन ही श्रेष्ठ और प्रभावशाली था ।

पाण्डोर्धनंजयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः ।
अभिमन्योः परीक्षित् तु पिता तव जनेश्वर ।।७७।।

अर्थ-पाण्डु के पुत्र धनंजय (अर्जुन) हुए । धनंजय से सुभद्रा-कुमार अभिमन्यु का जन्म हुआ । जनेश्वर ! अभिमन्यु के पुत्र तुम्हारे पिता परीक्षित् थे ।

एष ते पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव ।
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ।।७८।।

अर्थ—जनमेजय ! यह तुमसे पौरववंश का वर्णन किया गया, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है । अब तुर्वसु, द्रुह्यु, यदु और अनु की सन्तति का वर्णन करूंगा ।

सुतस्तु तुर्वसोर्वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः ।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैसानुरपराजितः ।।७९।।

अर्थ – तुर्वसु के पुत्र वह्नि और वह्नि के गोभानु हुए। गोभानु के पुत्र राजा त्रैसानु थे, जो कभी परास्त नहीं होते थे।

करन्धमस्तु त्रैसानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वावीक्षितो राजा मरुत्तः कथितस्तव ॥८०॥

अर्थ—त्रैसानु के करन्धम और करन्धम के पुत्र मरुत्त हुए। अविक्षित् के पुत्र राजा मरुत्त दूसरे हैं। उनका परिचय तुम्हें दिया जा चुका है।

अनपत्योऽभवद् राजा यज्वा विपुलदक्षिणः।
दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपते ॥८१॥

अर्थ—ये करन्धम-पुत्र राजा मरुत्त पुत्रहीन थे। ये बड़े-बड़े यज्ञ करते और उनमें प्रचुर दक्षिणाएं देते थे। पृथ्वीनाथ! उनके एक पुत्री थी, जिसका नाम सम्मता था।

दक्षिणार्थं स्म वै दत्ता संवर्ताय महात्मने।
दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥८२॥

अर्थ—उन्होंने महात्मा संवर्त को अपनी वह कन्या ही दक्षिणारूप में दे दी थी। (फिर संवर्त ने दुष्यन्त के पिता को वह कन्या अर्पित कर दी। उनके संयोग से) सम्मता ने पुरुवंशी दुष्यन्त को पुत्ररूप में प्राप्त किया। दुष्यन्त निष्पाप राजा थे।

एवं ययातेः शापेन जरासंक्रमणे तदा।
पौरवं तुर्वसोर्वंशः प्रविवेश नृपोत्तम ॥८३॥

अर्थ—नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार पुत्रों को अपना बुढ़ापा लेने के लिए कहते समय ययाति ने जो शाप दिया था, उसके अनुसार तुर्वसु का वंश समाप्त होकर पौरववंश में विलीन होगया।

दुष्यन्तस्य तु दायादः करुत्थामः प्रजेश्वरः।
करुत्थामात् तथाऽऽक्रीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥८४॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः।
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ॥८५॥

अर्थ—दुष्यन्त के (शकुन्तला से भिन्न दूसरी रानी के गर्भ से) राजा करुत्थाम हुए। करुत्थाम से आक्रीड का जन्म हुआ। उसके चार पुत्र थे—पाण्ड्य, केरल, कोल तथा राजा चोल। उनके समृद्धिशाली प्रदेश भी उन्हीं के नाम पर पाण्ड्य, चोल और केरल कहलाये।

द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुः सेतुश्च पार्थिवः।
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते ॥८६॥

अर्थ—राजन्! ययातिकुमार द्रुह्यु के पुत्र राजा बभ्रु और सेतु हुए। सेतु के पुत्र अंगारसेतु हुए। इन्हें मरुत्पति भी कहा जाता है।

यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली।
युद्धं सुमहदस्यासीन्मासान्परि चतुर्दश ॥८७॥

अर्थ—युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के साथ इनका चौदह महीनों तक बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस समरांगण में बलवान् अंगारसेतु शत्रु द्वारा बड़ी कठिनाई से मारे गये।

अङ्गारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत।
ख्यायते तस्य नाम्ना वै गाधारविषयो महान् ॥८८॥
गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः।

अर्थ—भरतनन्दन! अंगार के पुत्र गान्धार हुए। उन्हीं के नाम से महान् गान्धार देश की ख्याति हुई। गान्धार देश के घोड़े सब घोड़ों से श्रेष्ठ माने गये हैं।

अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद् धृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥८९॥
धृतात् तु दुदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः।
प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्तितो ह्यानवो मया ॥९०॥

अर्थ—ययाति पुत्र अनु के पुत्र धर्म हुए और धर्म के पुत्र धृत, धृत से दुदुह का जन्म हुआ। दुदुह के पुत्र प्रचेता और प्रचेता के पुत्र सुचेता हुए। इस प्रकार मैंने (संक्षेप से) अनु वंश का वर्णन किया है।

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः।
विस्तरेणानुपूर्व्यात्तु गदतो मे निशामय ॥९१॥

अर्थ—अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र उत्तम तेजस्वी यदु के वंश का क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा। तुम मेरे मुख से इसको सुनो।

इति हरिवंशे पूरुवंशानुकीर्तने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

---

१५. यदुवंशानुचरितम् (हैहयार्जुनचरितम्)

वैशम्पायन उवाच—

बभूवुस्तु यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः।
सहस्रदः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय यदु के पांच देवोपम पुत्र हुए—सहस्रद, पयोद, क्रोष्टु, नील और अंजिक।

सहस्रदस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः।
हैहयश्च हयश्चैव राजन् वेणुहयस्तथा ॥२॥

अर्थ—राजन्! सहस्रद के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय, हय और वेणुहय।

हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्मनेत्र इति स्मृतः।
धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः ॥३॥

अर्थ—हैहय का पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्र के कार्त और कार्त के साहञ्ज नामक पुत्र हुए।

साहञ्जनी नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता।
साहञ्जस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः ॥४॥
माहिष्मती नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता।

अर्थ—राजा साहञ्ज ने साहञ्जनी नामक पुरी बसायी। साहञ्ज के पुत्र राजा महिष्मान् हुए, जिन्होंने माहिष्मती नामक नगरी बसायी थी।

आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥५॥
वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्वमेव तु।

अर्थ—महिष्मान् के पुत्र प्रतापी भद्रश्रेण्य थे, जो वाराणसीपुरी के अधिपति कहे गये हैं। राजा भद्रश्रेण्य का परिचय तुम्हें पहले ही दे दिया गया है।

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥६॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान्।

अर्थ—भद्रश्रेण्य के पुत्र का नाम दुर्दम था, जो भूमण्डल के विख्यात राजा थे। दुर्दम के पुत्र कनक हुए, जो बुद्धिमान् और बलवान् थे।

कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥७॥
कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतवर्मा तथैव च।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् तथार्जुनः ॥८॥

अर्थ—कनक के चार पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्व में विख्यात थे। उनके नाम इस प्रकार हैं— कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि। कृताग्नि कनक के चौथे पुत्र थे। कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई।

यस्तु बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा।।९।।

अर्थ—अर्जुन सहस्र भुजाओं से युक्त हो सातों द्वीपों का राजा हुआ। उसने अकेले ही सूर्य के समान तेजस्वी रथ द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया था।

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्।।१०।।

अर्थ—कृतवीर्यकुमार अर्जुन ने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके अत्रि-पुत्र दत्त (दत्तात्रेय) की आराधना की।

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः।
पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम्।।११।।

अर्थ—दत्तात्रेय जी ने उसे परम तेजस्वी चार वर प्रदान किये। पहले तो उसने बहुत बड़ा वर यह मांगा था कि 'युद्ध में मेरी सहस्र भुजाएं हो जायें।'

अधर्मे वर्तमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम्।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा स्वधर्मेणानुरञ्जनम्।।१२।।

अर्थ—दूसरा वर यह मांगा था कि 'यदि कभी मैं अधर्म-कार्य में प्रवृत्त होऊं तो वहां साधु पुरुष आकर मुझे रोक दें।' तीसरे वर के रूप में उसने यह प्रार्थना की कि 'मैं युद्ध के द्वारा पृथ्वी को जीतकर स्वधर्म-पालन के द्वारा प्रजा को प्रसन्न रक्खूं।'

संग्रामान् सुबहून् कृत्वा हत्वा चारीन् सहस्रसः।
संग्रामे वर्तमानस्य वधं चाप्यधिकाद् रणे।।१३।।

अर्थ—चौथा वर इस प्रकार है—'मैं बहुत-से संग्राम करके सहस्रों शत्रुओं को मौत के घाट उतारकर संग्राम में ही रहते समय जो युद्ध में मुझसे अधिक शक्तिशाली हो, उसके द्वारा वध को प्राप्त होऊं।'

तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भारत।
योगाद् योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया।।१४।।

अर्थ—भरतनन्दन! युद्ध करते समय किसी योगेश्वर की भांति योगबल और संकेतमात्र से उसके एक सहस्र भुजाएं प्रकट हो जाती थीं।

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना।
ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१५॥

अर्थ—राजा अर्जुन ने द्वीप, समुद्र, पत्तन और नगरों सहित सारी पृथ्वी को उग्रकर्म (युद्ध) के द्वारा जीता था।

तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते जनमेजय ॥१६॥

अर्थ—जनमेजय ! उस राजा ने सातों द्वीपों में विधिपूर्वक सात सौ यज्ञ किए थे, ऐसा सुना जाता है।

सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः।
सर्वे काञ्चनयूपाश्च सर्वे काञ्चनवेदयः ॥१७॥

अर्थ—महाबाहु अर्जुन के वे समस्त यज्ञ प्रचुर दक्षिणा देकर सम्पन्न किए गए थे। सबमें सोने के यूप गड़े थे और सोने की ही वेदियां बनायी गयी थीं।

सर्वैर्देवैर्महाराज विमानस्थैरलंकृताः।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥१८॥

अर्थ—महाराज ! विमानों पर बैठे हुए सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सराएं सदा ही उन यज्ञों को अलंकृत एवं सुशोभित करती थीं।

यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा।
वरीदासात्मजो विद्वान् महिम्ना तस्य विस्मितः ॥१९॥

अर्थ—कार्तवीर्य के यज्ञ में उसकी महिमा से चकित होकर वरीदास के विद्वान् पुत्र नारद नामक गन्धर्व ने इस गाथा का गान किया था।

नारद उवाच—

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥२०॥

अर्थ—नारद बोले—अन्य राजा लोग यज्ञ, दान, तपस्या, पराक्रम और शास्त्र-ज्ञान में कार्तवीर्य अर्जुन की स्थिति को नहीं पहुंच सकते।

स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः ॥२१॥

अर्थ—वह योगी था। इसलिए मनुष्यों को सातों द्वीपों में ढाल—तलवार, धनुष-बाण और रथ लिए सदा सब ओर विचरता दिखायी देता था।

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः।
प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥२२॥

अर्थ—धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करनेवाले महाराज कार्तवीर्य के प्रभाव से किसी का धन नष्ट नहीं होता था। न तो किसी को शोक होता और न कोई भ्रम में ही पड़ता था।

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणि वै नराधिपः।
स सर्वरत्नभाक् सम्राट चक्रवर्ती बभूव ह ॥२३॥

अर्थ—वह पचासी हजार वर्षों तक सब प्रकार के रत्नों से सम्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् रहा।

स एव यज्ञपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च।
स एव वृष्ट्यां पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥२४॥

अर्थ—योगी होने के कारण राजा अर्जुन ही यज्ञों और खेतों की रक्षा करता था और वही वर्षाकाल में मेघ बन जाता था।

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा।
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव दिवाकरः ॥२५॥

अर्थ—जैसे शरदृतु में भगवान् भास्कर अपनी सहस्रों किरणों से शोभा पाते हैं, उसी प्रकार राजा कार्तवीर्य अर्जुन प्रत्यञ्चा की रगड़ से जिनकी त्वचा कठोर हो गयी थी, उन सहस्रों भुजाओं से सुशोभित होता था।

स हि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटकसुताञ्जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत् ॥२६॥

अर्थ—महातेजस्वी अर्जुन ने कर्कोटक नाग के पुत्रों को जीतकर उन्हें अपनी नगरी माहिष्मती पुरी में मनुष्यों के बीच बसाया था।

स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः।
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ॥२७॥

अर्थ—कमलनयन कार्तवीर्य वर्षाकाल में जल-क्रीडा करते समय समुद्र की जलराशि के वेगों को अपनी भुजाओं के आघात से रोककर पीछे की ओर लौटा देता था।

लुण्ठिता क्रीडिता तेन फेनस्रग्दाममालिनी।
चलदूर्मिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नर्मदा ॥२८॥

अर्थ—फेनरूपी पुष्पहारों से अलंकृत नर्मदा की जलराशि में जब वह लोटता और क्रीडा करता था, तब वह परम पुरुष के उपभोग में आयी हुई नारी के समान शङ्कित-सी होकर अपनी सहस्रों चञ्चल लहरों के साथ अपने पति समुद्र के निकट जाती थी।

तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महोदधौ।
भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥२९॥

अर्थ—महासागर में घुसकर जब वह अपनी सहस्रों भुजायें पटकता, उस समय समुद्र विक्षुब्ध हो उठता था और पाताल-निवासी महादैत्य निश्चेष्ट होकर भय से छिप जाते थे।

चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीनमहातिमिम्।
मारुताविद्धफेनौघमावर्तक्षोभदुःसहम् ॥३०॥
प्रावर्तयत् तदा राजा सहस्रेण च बाहुना।
देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः ॥३१॥

अर्थ—जब राजा अर्जुन अपनी सहस्र भुजाओं से समुद्र को मथने लगता, उस समय उसकी उठती हुई उत्ताल तरंगें चूर-चूर हो जाती थीं। बड़े-बड़े तिमि और मीन आदि जल-जन्तु छटपटाने लगते थे। भुजाओं के वेग से उठी हुई वायु से टकराकर उसकी फेनराशि छिन्न-भिन्न हो जाती थी और समुद्र बड़ी-बड़ी भंवरों के कारण क्षुब्ध एवं दुःसह दिखायी देता था। देवताओं और असुरों के द्वारा डाले हुए मन्दराचल ने क्षीर-समुद्र की जो दशा कर दी थी, वैसी ही दशा उसकी भुजाओं से मथित हुए महासागर की हो रही थी।

मन्दरक्षोभचकिता अमृतोद्भवशङ्किताः।
सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥३२॥
नता निश्चलमूर्धानो बभूवुस्ते महोरगाः।
सायाह्ने कदलीखण्डाः कम्पितास्तस्य वायुना ॥३३॥

अर्थ—उस समय मन्दराचल के द्वारा समुद्रमन्थन की आशङ्का से चकित और अमृत की उत्पत्ति से भयभीत हुए बड़े-बड़े नाग सहसा उछलकर देखते और भयंकर नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्य पर दृष्टि पड़ते ही मस्तक झुकाकर पत्थर के समान निश्चेष्ट हो जाते थे। जैसे सन्ध्या के समय वायु के झोंके से कदलीखण्ड (केलों के बगीचे) कांपने लगते हैं, उसी प्रकार उसके शरीर से उठी हुई वायु के द्वारा वे नाग भी हिलने लगते थे।

स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः।
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्।।
निर्जित्यैव समानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥३४॥

अर्थ—राजा कार्तवीर्य ने अभिमान से भरे हुए लङ्कापति रावण को अपने पांच ही बाणों द्वारा सेना सहित मूर्छित और पराजित करके धनुष की प्रत्यञ्चा से बांध लिया और माहिष्मतीपुरी में लाकर बन्दी बना लिया।

श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन तु।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम्।
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुयाचितः ॥३५॥

अर्थ—अर्जुन ने मेरे वंशज रावण को कैद कर लिया है, यह सुनकर महर्षि पुलस्त्य स्वयं वहां गये और अर्जुन से मिले। पुलस्त्य के प्रार्थना करने पर उसने पौत्र राक्षस रावण को मुक्त कर दिया।

यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः।
युगान्ते त्वम्बुदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ॥३६॥

अर्थ— अर्जुन की हजार भुजाओं में धारण किये गये धनुषों की प्रत्यञ्चा का ऐसा घोर शब्द होता था, मानो प्रलयकाल के मेघ गरजते हों, अथवा वज्र फट पड़ा हो।

अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्।
राज्ञो बाहुसहस्रं तु हैमं तालवनं यथा ॥३७॥

अर्थ—अहो! भृगुवंशी परशुराम जी का पराक्रम धन्य है, जिससे उन्होंने युद्ध में सुवर्णमय तालवन के समान राजा कार्तवीर्य की सहस्रों भुजाओं को काट डाला था।

तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना।
स भिक्षामददाद् वीरः सप्तद्वीपान् विभावसोः ॥३८॥
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः।
जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया ॥३९॥
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः।
ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चैव वनानि च ॥४०॥

अर्थ—एक दिन की बात है—भूखे-प्यासे अग्निदेव ने राजा कार्तवीर्य से भिक्षा मांगी। तब उस वीर राजा ने सातों द्वीप, नगर, गांव गोष्ठ तथा सारा राज्य अग्निदेव को भिक्षा में दे दिये। अग्निदेव सर्वत्र प्रज्वलित हो उठे और पुरुषप्रवर महात्मा कार्तवीर्य के प्रभाव से समस्त पर्वतों एवं वनों को जलाने लगे।

स शून्यमाश्रयं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै।
ददाह वनवद् भीतश्चित्रभानुः सहैहयः ॥४१॥

अर्थ—कार्तवीर्य की सहायता से अग्नि ने दूसरे साधारण वनों की भांति वरुण पुत्र के रमणीय आश्रम को भी सूना पाकर डरते-डरते जला दिया।

यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ।
वसिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।।४२।।

अर्थ—पूर्वकाल में वरुण ने जिन तेजस्वी एवं श्रेष्ठ महर्षि को पुत्ररूप में प्राप्त किया था, उनका नाम वशिष्ठ है। वे ही मुनि आपव नाम से भी विख्यात हैं।

यत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुनं विभुः ।
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ।।४३।।
तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ।

अर्थ महर्षि वसिष्ठ का सूना आश्रम जलाया गया था, इसलिए उन ऐश्वर्यशाली आपव ने अर्जुन को क्रोधपूर्वक शाप दिया—'हैहय ! तूने मेरे इस वन को भी जलाये बिना न छोड़ा, इसलिए तेरे द्वारा जो विश्व-विजय आदि यशोवर्द्धक दुष्कर कर्म किया गया है, उसे दूसरा वीर (तुझे पराजित करके) नष्ट कर डालेगा।

रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।।४४।।
छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली ।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां वधिष्यति स भार्गव ।।४५।।

अर्थ—'जमदग्नि के प्रतापी पुत्र महाबाहु परशुराम बलवान् और तपस्वी ब्राह्मण हैं। वे भृगुवंशी वीर तुझे बलपूर्वक मथ डालेंगे और तेरी इन सहस्र भुजाओं को काटकर तुझे भी मौत के घाट उतार देंगे।'

वैशम्पायन उवाच—

अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्शन ।
प्रभावेण नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः ।।४६।।

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—शत्रुसूदन जनमेजय ! धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करनेवाले राजा कार्तवीर्य के प्रभाव से उसके राज्य में किसी की धन-सम्पत्ति या दूसरी कोई वस्तु नष्ट नहीं होती थी।

रामात् ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुनेर्नृप ।
वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा ।।४७।।

अर्थ—कुरुवंशी नरेश ! वसिष्ठ मुनि के शाप से ही परशुराम के हाथ से उसकी मृत्यु हुई थी। उसने स्वयं ही पहले इसी तरह का वर मांगा था।

तस्य पुत्रशतस्यासन् पञ्च शेषा महात्मनः ।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ।।४८।।

अर्थ—महामना कार्तवीर्य के सौ पुत्र थे, किंतु उनमें पांच ही शेष बचे। वे सभी अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और यशस्वी थे।

शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च।
जयध्वजश्च नाम्नाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥४९॥

अर्थ—उनके नाम ये हैं—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज। इनमें जयध्वज अवन्ती देश के महाराज थे।

कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महारथाः।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ॥५०॥

अर्थ—कार्तवीर्य के ये सभी पुत्र बलवान् और महारथी थे। जयध्वज के पुत्र महाबली तालजङ्घ हुए।

तस्य पुत्राः शतं ख्यातास्तालजङ्घा इति श्रुताः।
तेषां कुले महाराज हैहयानां महात्मनाम् ॥५१॥
वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः।
तौण्डिकेरा इति ख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२॥
भरताश्च सुता जाता बहुत्वान्नानुकीर्तिताः।
वृषप्रभृतयो राजन् यादवाः पूर्णकर्मिणः ॥५३॥

अर्थ—तालजङ्घ के सौ पुत्र थे, जो तालजङ्घ नाम से ही विख्यात थे। महाराज! महामनस्वी हैहयों के कुल में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजङ्घ तथा भरत आदि क्षत्रियों के समुदाय उत्पन्न हुए। इनकी संख्या बहुत होने के कारण इनके पृथक्-पृथक् नाम नहीं बताए गए। राजन्! वृष आदि बहुत से पुण्यात्मा यादव इसी पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे।

वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥५४॥

अर्थ—उनमें वृष वंशप्रवर्तक हुए। वृष के पुत्र मधु थे। मधु के सौ पुत्र हुए, जिनमें वृषण वंश चलानेवाले हुए।

वृषणाद् वृष्णयः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः।
यादवा यदुना चाग्रे निरुच्यन्ते च हैहयाः ॥५५॥

अर्थ—वृषण से जो संतान-परम्परा चली, उसके अन्तर्गत सभी क्षत्रिय वृष्णि कहलाये और मधु के वंशज माधव नाम से प्रसिद्ध हुये। इसी प्रकार यदु के नाम पर उस वंश के लोग यादव कहलाते हैं तथा आगे होनेवाले हैहय के वंशज हैहय कहे जाते हैं।

न तस्य वित्तनाशोऽस्ति नष्टं प्रतिलभेच्च स।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कीर्तयेदिह नित्यशः ॥५६॥

अर्थ—जो यहां प्रतिदिन कार्तवीर्य अर्जुन के जन्म का वृत्तान्त कहता या सुनता है, उसके धन का नाश नहीं होता और उसकी खोयी हुई वस्तु भी उसे मिल जाती है।

एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा विशाम्पते।
कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ॥५७॥
भूतानीव महाराज पञ्च स्थावरजङ्गमान्।

अर्थ—प्रजानाथ! इस प्रकार ये विश्वविख्यात वीर ययाति पुत्रों के पांच वंश यहां बतलाये गये हैं! महाराज! जैसे पांचों भूत स्थावर, जङ्गम प्राणियों के शरीरों को धारण करते हैं, उसी प्रकार ये पांचों वंश समस्त लोकों को धारण करते हैं।

श्रुत्वा पञ्चविसर्गं तु राजा धर्मार्थकोविदः ॥५८॥
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः।

अर्थ—इन पांचों वंशों की सृष्टि का वर्णन सुनकर राजा धर्म और अर्थ के तत्त्व का ज्ञाता होता है, अपनी पांचों इन्द्रियों को वश में रखता है तथा अपने पुत्रों पर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है।

लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ॥५९॥
आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भारत ॥६०॥

अर्थ—भरतनन्दन! इन पांचों वंशों के श्रवण और धारण से मनुष्य इस जगत् में आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य तथा भूमि—इन पांच लोकोपयोगी दुर्लभ वरों को प्राप्त कर लेता है।

क्रोष्टोस्तु शृणु राजेन्द्र वंशमुत्तमपौरुषम्।
यशोवंशधरस्याथ यज्वनः पुण्यकर्मणः ॥६१॥
क्रोष्टोर्हि वंशं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥६२॥

अर्थ—राजेन्द्र! अब तुम उत्तम पुरुषार्थ से युक्त क्रोष्टुवंश का वर्णन सुनो। राजा क्रोष्टु यदु के वंशधर, यज्ञ करनेवाले तथा पुण्यकर्मा थे। उनके इस वंश का वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। राजा क्रोष्टु वे ही हैं, जिनके कुल में सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि ने वृष्णिवंशावतंश श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया था।

इति हरिवंशे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

२०. वृष्णिवंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय! क्रोष्टा की गान्धारी और माद्री नाम की दो भार्याएं थीं। गान्धारी के गर्भ से महाबली अनमित्र उत्पन्न हुए।

माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्।
तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्धनः ॥२॥

अर्थ—माद्री के पुत्र युधाजित् और दूसरे पुत्र देवमीढुष हुए, वृष्णिओं के कुल को बढ़ानेवाला उनका वंश तीन शाखाओं में बंट गया।

माद्रयाः पुत्रस्य जज्ञाते सुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ।
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥३॥

अर्थ—माद्री के पुत्र (युधाजित्) के वृष्णि और अन्धक नाम के दो पुत्र हुए और वृष्णि के पुत्र श्वफल्क तथा चित्रक हुए।

श्वफल्कस्तु महाराज धर्मात्मा यत्र वर्तते।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षभयमप्युत ॥४॥

अर्थ—महाराज! धर्मात्मा श्वफल्क जहां रहते थे, वहां व्याधि और अनावृष्टि का भय नहीं होता था।

कदाचित् काशिराजस्य विभोर्भरतसत्तम।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत पाकशासनः ॥५॥

अर्थ—भरतसत्तम! एक समय शक्तिशाली काशिराज के देश में इन्द्र ने तीन वर्ष तक पानी नहीं बरसाया।

स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम्।
श्वफल्कपरिवर्ते च ववर्ष हरिवाहनः ॥६॥

अर्थ—तब उन्होंने परम पूज्य श्वफल्क को बुलाकर अपने यहां ठहराया और श्वफल्क के पधारते ही इन्द्र ने जल बरसाना आरम्भ कर दिया।

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत।
गान्दिनीं नाम सा गां तु ददौ विप्रेषु नित्यशः ॥७॥

अर्थ—श्वफल्क का काशिराज की गान्दिनी नामवाली पुत्री से विवाह हो गया। वह ब्राह्मणों को नित्यप्रति गौओं का दान देती रहती थी (इसलिए उसका नाम गान्दिनी पड़ा था)।

सा मातुरुदरस्था तु बहून् वर्षगणान् किल।
निवसन्ती न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताब्रवीत् ॥८॥

अर्थ—वह अपनी माता के उदर में बहुत वर्षों तक रही थी और उत्पन्न नहीं होती थी, तब गर्भ में स्थित कन्या से उसके पिता ने कहा—

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थमिह तिष्ठसि।
प्रोवाच चैनं गर्भस्था कन्या गां च दिने दिने ॥९॥
यदि दद्यां ततोऽद्याहं जाययिष्यामि तां पिता।
तथेत्युवाच तं चास्याः पिता काममपूरयत् ॥१०॥

अर्थ—'(भद्रे!) तेरा कल्याण हो, तू शीघ्र ही उत्पन्न हो, तू (इतने वर्षों से) किसलिए गर्भ में पड़ी हुई हैं!' तब उस गर्भ में स्थित कन्या ने कहा—'यदि आप प्रतिदिन मुझसे गोदान कराने का संकल्प करें तो मैं आज ही उत्पन्न हो जाऊं।' तब पिता ने उससे 'तथास्तु' कहकर उसकी कामना को पूर्ण किया।

दाता यज्वा च धीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद् भूरिदक्षिणः ॥११॥

अर्थ—इन श्वफल्क (और गान्दिनी) के यहां दान देनेवाले, यज्ञ करनेवाले धैर्यवान्, शास्त्रों के ज्ञाता, अतिथियों से प्रेम करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणाएं देनेवाले अक्रूर उत्पन्न हुए।

उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः ॥१२॥
धर्मधृग् यतिधर्मा च गृध्रो भोजोऽन्धकस्तथा।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥१३॥

अर्थ—तब उपासङ्ग, मद्गु, मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अन्धक, आवाह और प्रतिवाह (नामक अक्रूर जी के भाई) तथा वराङ्गना नाम की सुन्दरी कन्या (भी) उत्पन्न हुई।

अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दन।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥१४॥

अर्थ—कुरुनन्दन ! इन अक्रूर जी से सुन्दराङ्गी उग्रसेना के द्वारा देवताओं के समान कान्तिवाले प्रसेन तथा उपदेव नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए ।

चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥१५॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत् तथा ।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥१६॥

अर्थ—(अक्रूर जी के भाई) चित्रक के श्रविष्ठा और श्रवणा नाम की दो धर्मपत्नियां थीं, जिनसे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।

अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः ।
महिष्यां जज्ञिरे शूरान् भोज्यायां पुरुषा दश ॥१७॥

अर्थ—(क्रोष्टा के तृतीय पुत्र) देवमीढुष के अश्मकी नाम की पत्नी से शूर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । शूर के भोजराज कुमारी से दस पुत्र उत्पन्न हुए ।

वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि ॥१८॥

अर्थ—पहले महाबाहु वसुदेव जी उपनाम आनकदुन्दुभि उत्पन्न हुए, इनके उत्पन्न होने पर स्वर्ग में—आकाश में दुन्दुभियां बजी थीं ।

आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद् दिवि ।
पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत् ॥१९॥

अर्थ—तथा स्वर्ग में—आकाश में नगारों का बड़ा भारी शब्द हुआ था । (इसी से वसुदेव जी का नाम आनकदुन्दुभि पड़ा ।) साथ ही इनके उत्पन्न होने पर शूर के घर में पुष्पों की बड़ी भारी वर्षा हुई थी ।

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।
यस्यासीत् पुरुषाग्रयस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥२०॥

अर्थ—पुरुषों में अग्रगण्य वसुदेव जी की कान्ति चन्द्रमा के समान थी, इनके समान रूपवान् सम्पूर्ण मनुष्यलोक में और कोई नहीं था ।

देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः ।
अनाधृष्टिः कनवको वत्सावानथ गृञ्जिमः ॥२१॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः ।
पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः ॥२२॥

राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।
पृथां दुहितरं वव्रे कुन्तिस्तां कुरुनन्दन ॥२३॥
शूरः पूज्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ ।
तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा पृथा ॥२४॥

अर्थ—कुरुनन्दन ! वासुदेव जी के बाद (शूर के यहां) देवभाग, देवश्रवा अनाधृति, कनवक, वत्सावान्, गृञ्जिम, श्याम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम की पांच कन्याएं उत्पन्न हुई थीं, जो रमणियों में रत्न के समान थीं। ये पांचों कन्यायें वीरपुत्रों की माता थीं। राजा कुन्ति ने पृथा को अपनी पुत्री बनाने के लिए मांग लिया। (इस पर) शूरसेन ने पृथा को पूज्य तथा वृद्ध राजा कुन्तिभोज को दे दिया। इस कारण पृथा कुन्तिभोज की पुत्री और कुन्ती नाम से विख्यात हुई।

अन्त्यस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषुवे सुतः ।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः ॥२५॥
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत् पुरा ।

अर्थ—अन्त्य के श्रुतदेवा से जगृहु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा चेदिवंशी दमघोष के श्रुतश्रवा से महाबली शिशुपाल उत्पन्न हुआ, यह पहले जन्म में दैत्यराज हिरण्यकशिपु था।

पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः ॥२६॥
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ।

अर्थ—वृद्धशर्मा से पृथुकीर्ति के करूष देश का स्वामी महाबली वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ।

पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् ॥२७॥
यस्यां स धर्मविद् राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः ।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनंजयः ॥२८॥
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः ।

अर्थ—कुन्तिभोज ने जिन पृथा को अपनी पुत्री बना लिया था, उनका विवाह पाण्डु के साथ हुआ। उन पृथा के धर्म के जाननेवाले राजा युधिष्ठिर धर्म से उत्पन्न हुए और वायु से भीमसेन तथा इन्द्र से संसार के अनुपम वीर, इन्द्र के समान पराक्रमी धनंजय (अर्जुन) उत्पन्न हुए।

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ॥२९॥
शैनेयः सत्यकस्तस्माद् युयुधानश्च सात्यकिः ।

असङ्गो युयुधानस्य भूमिस्तस्याभवत् सुतः ॥३०॥
भूमेर्युगधरः पुत्र इति वंशः समाप्यते।

अर्थ—क्रोष्टा के सबसे छोटे पुत्र, सकल वृष्णिवंशियों को प्रसन्न करनेवाले अनमित्र से शिनि उत्पन्न हुए, उनसे शैनेय उपनाम सत्यक हुए और उनसे युयुधान उपनामवाले सात्यकि हुए। युयुधान के पुत्र असङ्ग हुए और असंग के पुत्र भूमि हुए। भूमि के पुत्र युगधर हुए। यहां पर क्रोष्टा का वंश समाप्त होता है।

उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्।
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्धवम् ॥३१।

अर्थ—(वसुदेव जी के भ्राता) देवभाग के उद्धव नामक महाभाग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुए। ये उद्धव देवताओं के समान कीर्तिवाले एवं परम पण्डित के रूप में प्रसिद्ध हुए।

अश्मक्यां प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्।
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा व्यजायत ॥३२॥

अर्थ—(वसुदेव जी के तीसरे भाई) अनाधृष्टि ने अश्मकी से यशस्वी नामक पुत्र को उत्पन्न किया तथा दूसरे भाई देवश्रवा ने शत्रुओं को हटानेवाले शत्रुघ्न नामक पुत्र को उत्पन्न किया।

देवश्रवाः प्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः।
एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्धितः ॥३३॥

अर्थ--महाराज! (किसी कारणवश बालकपन में ही त्याग दिये जाने के कारण) इस देवश्रवा के पुत्र को निषादों ने पालकर बड़ा किया था, इसलिये यह निषादवंशी एकलव्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम् ॥३४॥

अर्थ—शूरनन्दन प्रतापी वसुदेव जी ने (अपने छोटे भाई) पुत्रहीन वत्सावान् को अपना औरस पुत्र कौशिक जल से संकल्प करके दे दिया।

गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्।
चारुदेष्णं सुचारुं च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥३५॥

अर्थ—(इसी प्रकार) श्रीकृष्ण ने (वसुदेव जी के दूसरे छोटे भाई) अपुत्र गण्डूष को चारुदेष्ण, सुचारु, पञ्चाल और कृतलक्षण नाम के अपने चार पुत्र दे दिये।

असंग्रामेण यो वीरो नावर्तत कदाचन ।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् पुरुषर्षभ ।।३६।।

अर्थ—पुरुषर्षभ ! रुक्मिणी के छोटे पुत्र महाभुज चारुदेष्ण युद्ध किए बिना (रणभूमि से) कभी नहीं लौटते थे ।

वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः ।
चारुमांसानि भोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानि तु ।।३७।।

अर्थ – उनके पीछे हजारों कौए इस इच्छा से जाते थे कि इनके द्वारा मारे गये शत्रुओं का चारु (स्वादिष्ट) मांस हम खायेंगे, (इस प्रकार कौओं को) चारु (स्वादिष्ट) भोजन देनेवाले होने से ये चारुदेष्ण कहलाये ।

तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तु ।
वीरश्चाश्वहनश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ ।।३८।।

अर्थ - (वसुदेव जी के भाई) कनवक के तन्द्रिज और तन्द्रिपाल नामक दो पुत्र हुए तथा गृञ्जिम के वीर और अश्वहन नामक दो वीर पुत्र उत्पन्न हुए ।

श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जुगुप्समानो भोजत्वाद् राजसूयमवाप सः ।
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ।।३९।।

अर्थ—(वसुदेव जी के भाई श्याम अपने छोटे भाई शमीक को अपने पुत्र के समान मानते थे । इस कारण) श्याम के पुत्र शमीक हुए । इन शमीक ने राज्य किया था, उन्होंने भोज होने के कारण (अर्थात् भोजवंशी एक वंश के और एक देश के ही राजा हैं—यह) निन्दा मानकर उन्होंने राजसूय (साम्राज्य) पाया था । शमीक के शत्रुनाशक अजातशत्रु नामक पुत्र हुआ ।

वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्तयिष्यामि ताञ्छृणु ।।४०।।

अर्थ - अब मैं वसुदेव जी के वीर पुत्रों का वर्णन करता हूं, उसको आप सुनिये ।

वृष्णेस्त्रिविधमेतत् तु बहुशाखं महौजसम् ।
धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ।।४१।।

अर्थ—जो मनुष्य वृष्णि के बहुत-सी शाखाओंवाले, महापराक्रमी पुरुषों से सुशोभित इस तीन प्रकार के बड़े विशाल वंश के वृत्तान्त को मन में धारण करता हैं, वह इस संसार के अनर्थों से मुक्त रहता है ।

इति हरिवंशे वृष्णिवंशकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४।।

वैशम्पायन उवाच—

याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ।
पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथा वरा ॥१॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता ॥२॥
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥३॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय ! वसुदेव जी की जो चौदह सुन्दराङ्गी पत्नियां थीं, उनमें रोहिणी और रोहिणी से छोटी इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा तथा पांचवीं सुनाम्नी—ये पांच पौरववंश की थीं तथा सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सातवीं देवकी—ये सात देवल की पुत्रियां थीं तथा सुतनु और वडवा—ये दो उनकी परिचर्या करनेवाली स्त्रियां थीं ।

पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत् ।
ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः ॥४॥

अर्थ—महाराज ! पौरव-वंश की कुमारी रोहिणी (महाराज शन्तनु के बड़े भाई) बाह्लिक की पुत्री थीं, वे वसुदेव जी की प्रियतमा बड़ी पत्नी थीं ।

लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं शठमेव च ।
दुर्दमं दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥५॥
चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश ।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन ॥६॥

अर्थ—कुरुनन्दन ! रोहिणी के ज्येष्ठ पुत्र बलराम और (उनसे छोटे) सारण, शठ, दुर्दम, दमन, श्वभ्र, पिण्डारक और उशीनर हुए तथा चित्रा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई । (यह चित्रा एक अप्सरा थी, जो रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होते ही मर गयी थी । इसने मरते समय अपने को धिक्कारा था कि मैं यादवकुल में जन्म धारण करके भी यदुवंश में उत्पन्न होनेवाले भगवान् की लीला को न देख सकी । इस वासना के कारण) यह चित्रा ही दूसरी बार सुभद्रा बनकर उत्पन्न हुई थी । इस प्रकार रोहिणी के दस सन्तानें उत्पन्न हुईं ।

वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः ।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥७॥

अर्थ—वसुदेव से देवकी में महायशस्वी श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए और बलराम जी से रेवती के द्वारा उनके प्रियपुत्र निशठ उत्पन्न हुए ।

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
अक्रूरात् काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥८॥

अर्थ—अर्जुन से सुभद्रा में रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुए और अक्रूर से काशिराजकुमारी में सत्यकेतु उत्पन्न हुए ।

वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान् निबोध मे ॥९॥

अर्थ—वसुदेव जी की सात महाभाग्यवती पत्नियों में जो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम मैं आपसे कहता हूं, सुनिये ।

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥१०॥

अर्थ—भोज और विजय—ये दोनों शान्तिदेवा के पुत्र थे तथा वृकदेव और गद—ये दो सुनाम्नी के पुत्र थे ।

उपासङ्गवरं लेभे तनयं देवरक्षिता ।
अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ॥११॥

अर्थ—देवरक्षिता का पुत्र उपासंगवर हुए और वृकदेवी के पुत्र महात्मा अगावह हुए ।

कन्या त्रिगर्तराजस्य भर्ता वै शैशिरायणः ।
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देऽथ पौरुषम् ॥१२॥

अर्थ—वृकदेवी त्रिगर्तराज की कन्या थीं । त्रिगर्तराज का भर्ता (पुरोहित) गर्गगोत्री शैशिरायण था । उसके साले ने, जो यादवों का पुरोहित था, यह जानना चाहा कि इसमें पुंस्त्व है अथवा नहीं, परन्तु (व्रतधारी होने से) उसका वीर्य स्खलित नहीं हुआ (इस पर उसके साले ने हास्यवश उसको मिथ्या ही नपुंसक घोषित कर दिया ।

कृष्णायससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा ।
मिथ्याभिशप्तो गार्ग्यस्तु मन्युनाभिसमीरितः ॥१३॥

अर्थ—बारह वर्ष का नियम पूर्ण होने पर मिथ्या ही नपुंसकता का दोष लगाये जाने के कारण गर्गगोत्री शैशिरायण क्रोध में भर गये, इससे उनके शरीर का वर्ण लोहे के समान काला दीखने लगा ।

गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ।
गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेषधारिणी ॥१४॥

अर्थ—उन्होंने एक गोपकन्या के साथ सहवास किया। वह स्त्री गोप-स्त्री का वेश धारण करनेवाली गोपाली नाम की अप्सरा थी।

धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम्।
मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ॥१५॥
स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः।
वृषपूर्वार्धकायास्तमवहम् वाजिनो रणे ॥१६॥

अर्थ—उसने गार्ग्य शैशिरायण के अच्युत और दुर्धर वीर्य को धारण कर लिया। उस मनुष्य का वेश धारण करनेवाली गार्ग्य की भार्या से शिव जी की आज्ञा से कालयवन नामक प्रसिद्ध महाबली राजा उत्पन्न हुआ था, बैलों के समान आधे शरीरवाले घोड़े युद्ध में उसके वाहन बनते थे।

अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः।
यवनस्य महाराज स कालयवनोऽभवत् ॥१७॥

अर्थ—महाराज! एक यवन राजा सन्तानहीन था, उसके अन्तःपुर में वह बालक पलने लगा। इस प्रकार वह कालयवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

स युद्धकामी नृपतिः पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमान्।
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद् विभुः ॥१८॥

अर्थ—वह राजा युद्ध करने की इच्छा से प्रेरित हो ब्राह्मणों से (अपने समान योद्धाओं को) पूछने लगा। सब जगह पहुंचनेवाले नारद जी ने उसे वृष्णि और अन्धककुल के वीरों को उसके समान योद्धा बताया।

अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात् तदा।
दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥१९॥

अर्थ—तब वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरी पर चढ़ आया। उसने वृष्णि और अन्धकों के भवन में दूत को भेजा।

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्।
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात् तदा ॥२०॥

अर्थ—तब कालयवन के डर से वृष्णि और अन्धकों ने महामति श्रीकृष्ण के सभापतित्व में इकट्ठे होकर मन्त्रणा की।

कृत्वा च निश्चयं सर्वे पलायनपरायणाः।
विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिनाकिनम् ॥२१॥
कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः।

अर्थ—तब वे सब निश्चय करके शिव जी की मनौती मानते हुए कुशस्थली द्वारका को बसाने की इच्छा से रमणीय मथुरापुरी को त्यागकर भाग खड़े हुए।

इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः।
पर्वसु श्रावयेद् विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥२२॥

अर्थ—जो विद्वान् पुरुष इन्द्रियों को वश में करके पवित्र होकर श्रीकृष्ण के जन्म की इस कथा को पर्व के समय सुनाता है, उसका ऋण चुक जाता है और उसको परम सुख की प्राप्ति होती है।

इति हरिवंशे श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

————

२१. क्रोष्टुवंशानुचरितम्

वैशम्पायन उवाच—

क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः।
वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतां वरः ॥१॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय ! (यदु के पुत्र) क्रोष्टा के ही एक वृजिनीवान् नामक महायशस्वी पुत्र हुए, वृजिनीवान् के पुत्र स्वाहि हुए, वे स्वाहा अर्थात् होम करनेवालों में श्रेष्ठ थे (जिस प्रकार क्रोष्टा के वंश में श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, उसी प्रकार क्रोष्टा के वंश में सत्यभामा आदि भी हुईं; क्षत्रियों में एक कुल के होने पर भी सात पीढ़ियां बीत जाने के बाद पुरोहित के गोत्र से यजमान क्षत्रिय का भी गोत्र बदल जाता है और इस प्रकार गोत्र-भेद से उनमें विवाह हो जाते हैं। इस अध्याय में क्रोष्टा के वंश की उस शाखा का वर्णन किया जायेगा, जिसमें महालक्ष्मी की अवतार ईश्वरी-शक्ति श्री रुक्मिणी जी उत्पन्न हुई थीं।

स्वाहिपुत्रोऽभवद् राजा रुषद्गुर्वदतां वरः।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥२॥
सुतप्रसूतिमन्विच्छन् रुषद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम्।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥३॥

अर्थ—स्वाहि के पुत्र रुषद्गु हुए, वे अच्छे बोलनेवाले थे और बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेक प्रकार के महायज्ञ करते रहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि मेरे यहां पुत्र-पौत्रोंवाला श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो; इस प्रकार पुत्रेष्टि आदि यज्ञ कर्म करते-करते उनके यहां चित्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः।
शशबिन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥४॥

अर्थ—चित्ररथ के पुत्र वीर शशबिन्दु हुए, वे बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करके राजर्षियों के श्रेष्ठ आचरण का पालन करते रहते थे।

पृथुश्रवाः पृथुयशा राजाऽऽसीच्छशबिन्दुजः।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमुत्तरम् ॥५॥

अर्थ—शशबिन्दु के पुत्र महायशस्वी राजा पृथुश्रवा हुए, पुराणों के जाननेवाले कहते हैं कि पृथुश्रवा के पुत्र उत्तर हुए।

अनन्तरं सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्।
उशतो यज्ञमखिलं स्वधर्ममुशतां वरः ॥६॥

अर्थ—उत्तर के पुत्र सुयज्ञ हुए, सुयज्ञ के पुत्र उशत हुए, कामना करनेवालों में श्रेष्ठ उशत अपने सम्पूर्ण धर्मों और यज्ञ का अनुष्ठान सदा करना चाहते थे।

शिनेयुरभवत् सूनुरुशतः शत्रुतापनः।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥७॥

अर्थ—राजन्! उशत के पुत्र शत्रुओं को संतप्त करनेवाले शिनेयु हुए, उनके पुत्र राजर्षि मरुत्त हुए।

मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम्।
चचार विपुलं धर्मममर्षात् प्रेत्यभागपि ॥८॥

अर्थ—मरुत्त के ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष हुए। जो धर्म मरण के अनन्तर फल देता है, अपने जीवन में ही वह उस महान् धर्म का आचरण करने लगे।

सुतप्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिषः।
बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥९॥

अर्थ—कम्बलबर्हिष बेटों-पोतों से समृद्ध पुत्र पाना चाहते थे, उस धर्मानुष्ठान के फलरूप उनके रुक्मकवच नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सौ बालकों में अकेला बचा था।

निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे ।
धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ।।१०।।

अर्थ—रुक्मकवच ने युद्ध में धनुष और कवच को धारण करनेवाले सौ योद्धाओं को मारकर बड़ी भारी कीर्ति पायी थी ।

जज्ञेऽथ रुक्मकवचात् पराजित् परवीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः पराजितः ।।११।।

अर्थ—रुक्मकवच के पुत्र शत्रुवीरनाशक पराजित् हुए, पराजित् के महावीर्यवान् पांच पुत्र हुए ।

रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ।।१२।

अर्थ—(उनके नाम इस प्रकार हैं—) रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि । उनके पिता पराजित् ने पालित और हरि को विदेह देश का पालन करने के लिए वहां के राजा को दे दिया था ।

रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्य संश्रितः ।
ताभ्यां प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघोऽवसदाश्रमे ।।१३।।

अर्थ—रुक्मेषु पृथुरुक्म का आश्रय लेकर राजा बन गया था, उन दोनों ने ज्यामघ को राज्य से निकाल दिया, तब ज्यामघ आश्रम में रहने लगा ।

प्रशान्तः स वनस्थस्तु ब्राह्मणैश्चावबोधितः ।
जिगाय रथमास्थाय देशमन्यं ध्वजी रथी ।।१४।।

अर्थ—वह (वृद्ध होने से) शान्त होकर वन में पड़ा रहता था, परन्तु ब्राह्मणों ने तप आदि के द्वारा उसको बलवान् बना दिया, तब रथी ज्यामघ ने एक ध्वजावाले रथ में वैठकर एक-दूसरे देश को जीत लिया ।

नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ।।१५।।

अर्थ - उसने अकेले ही नर्मदा के किनारे की मृत्तिकावती नगरी और ऋक्षवान् पर्वत को जीतकर शुक्तिमतीपुरी में अपना निवास-स्थान बनाया ।

ज्यामघस्याभवद् भार्या शैब्या बलवती सती ।
अपुत्रोऽपि च राजा स नान्यां भार्यामविन्दत ।।१६।।

अर्थ—जामघ की भार्या सती शैव्या बड़ी बलवती थी, इसलिये ज्यामघ ने पुत्रहीन होने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया ।

तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः।
भार्यामुवाच संत्रस्तः स्नुषेति स नरेश्वरः ॥१७॥

अर्थ—उसने एक युद्ध में विजय होने पर एक कन्या प्राप्त की, उस नरेश्वर ने डरकर अपनी भार्या से उस कन्या को स्नुषा (पुत्रवधू) कह दिया।

एतच्छ्रुत्वाब्रवीद् देवी कस्य चेयं स्नुषेति वै।
अब्रवीत् तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥१८॥

अर्थ—यह सुनकर पत्नी ने पूछा—'यह किसकी पुत्रवधू है ?' तब राजसत्तम ज्यामघ ने प्रतिज्ञा करके कहा—

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपदानवी।
उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥१९॥

अर्थ—तेरे जो पुत्र उत्पन्न होगा, यह उपदानवी कन्या उसकी भार्या होगी। उस उपदानवी कन्या की उग्र तपस्या के प्रभाव से सौभाग्यवती शैब्या के बूढ़ी होने पर भी उसके विदर्भ नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ।
पश्चाद् विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥२०॥

अर्थ—तदनन्तर विदर्भ ने उस राजकुमारी से शूरवीर एवं रणविशारद क्रथ और कौशिक नाम के दो विद्वान्-पुत्रों को उत्पन्न किया।

लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम्।
लोमपादात्मजो बभ्रुराहृतिस्तस्य चात्मजः ॥२१॥

अर्थ—तथा लोमपाद नामक एक तीसरे परमधार्मिक पुत्र को भी उत्पन्न किया। लोमपाद के पुत्र बभ्रु हुए और उनके पुत्र हुए आहृति।

आहृतेः कौशिकश्चैव विद्वान् परमधार्मिकः।
चेदिः पुत्रः कौशिकस्य तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ॥२२॥

अर्थ—आहृति के पुत्र कौशिक हुए, वे विद्वान् और परमधार्मिक थे। कौशिक के पुत्र चेदि हुए, इस कारण उनके वंश के राजा चैद्य कहलाते हैं।

भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्।
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्।
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥२३॥
आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च यः।
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ॥२४॥

अर्थ—विदर्भ का (चौथा) पुत्र भीम हुआ, भीम के पुत्र कुन्ति हुए, कुन्ति के रण में ढीठ एवं प्रतापवान् धृष्ट नामक पुत्र हुए। धृष्ट के शूरवीर एवं परम-धार्मिक आवन्त, दशार्ह और बलवान् विषहर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। दशार्ह के पुत्र व्योम हुए और व्योम के पुत्र जीमूत हुए।

जीमूतपुत्रो बृहतिस्तस्य भीमरथः सुतः।
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ॥२५॥

अर्थ—जीमूत के पुत्र बृहति और उनके पुत्र भीमरथ हुए, भीमरथ के पुत्र नवरथ हुए।

तस्य चासीद् दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात् करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः ॥२६॥

अर्थ—नवरथ के पुत्र दशरथ हुए और दशरथ के पुत्र शकुनि हुए। शकुनि के पुत्र करम्भ हुए और करम्भ के पुत्र राजा देवरात हुए।

देवक्षत्रोऽभवत् तस्य दैवक्षत्रिर्महायशाः।
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ॥२७॥
मधूनां वंशकृद् राजा मधुर्मधुरवागपि।
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुत्रो मरुवसास्तथा ॥२८॥

अर्थ—देवरात के पुत्र देवक्षत्र हुए। देवक्षत्र को आनन्द देनेवाले महा-यशस्वी दैवक्षत्रि हुए, वे देवताओं के बालकों के समान तेजस्वी थे। उनका नाम मधु था, उनकी वाणी भी मधुर थी, वह मधु-वंश के प्रवर्तक राजा थे। मधु के वैदर्भी से मरुवस नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

आसीन्मरुवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः।
मधुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रवत्यां कुरूद्वहः ॥२९॥
ऐक्ष्वाकी चाभवद् भार्या सत्त्वांस्तस्यामजायत।
सत्त्वान् सर्वगुणोपेतः सात्त्वतां कीर्तिवर्धनः ॥३०॥

अर्थ मरुवस के पुत्र पुरुषोत्तम पुरुद्वान् हुए। उन्हीं के विदर्भ-राजकुमारी भद्रवती से कुरुवंश की वृद्धि करनेवाला मधु नामक पुत्र हुआ और इक्ष्वाकुवंश की भार्या से सत्त्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्त्वान् सर्वगुणसम्पन्न थे और अपने वंश में सात्त्वतों की कीर्ति को बढ़ानेवाले थे।

इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।
युज्यते परया कीर्त्या प्रजावांश्च भवेन्नरः ॥३१॥

अर्थ—मनुष्य महात्मा ज्यामघ के इस वंश का परिचय प्राप्त कर परम-कीर्ति पाता है और संतानवान् हो जाता है।

इति हरिवंशे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

वैशम्पायन उवाच—

सत्त्वतात्सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥१॥
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम् ।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह ताञ्छृणु ॥२॥

अर्थ—वैशम्पायन जी कहते हैं—जनमेजय ! सत्त्वान् उपनामवाले सत्त्वत से कौशिल्या ने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, महाभुज अन्धक और यदुनन्दन वृष्णि नामक सत्त्वसम्पन्न पुत्रों को उत्पन्न किया । उनके चार वंश चले, उनको आप विस्तारपूर्वक सुनिये ।

भजमानस्य सृंजय्यौ बाह्यकाथोपबाह्यका ।
आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः ॥३॥

अर्थ—भजमान के सृञ्जय की पुत्री बाह्यका और उपबाह्यका नामवाली दो स्त्रियां थीं । उनसे उसके बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए ।

कृमिश्च क्रमश्चैव धृष्टः शूरः पुरंजयः ।
एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे ॥४॥

अर्थ—भजमान के सृञ्जय की पुत्री बाह्यका से कृमि, क्रम, धृष्ट, शूर और पुरंजय नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।

अयुताजित्सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दाशकः ।
उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे ॥५॥

अर्थ—उन्हीं भजमान के सृञ्जय की दूसरी पुत्री उपबाह्यका से अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् और दाशक नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।

यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः ।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः ॥६॥

अर्थ—यज्ञ करनेवाले राजा देवावृध ने 'मेरे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो' इस निश्चय के साथ बड़ा भारी तप किया ।

संयुज्यात्मानमेवं तु पर्णाशाया जलं स्पृशन् ।
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥७॥

अर्थ—वे राजा अपने चित्त में ऐसा निश्चय करके पर्णाशा नदी के जल में खड़े होकर तप करते थे । अपने जल में सदा खड़े रहनेवाले राजा का नदी ने प्रिय करना चाहा ।

चिन्तयाभिपरीता सा जगामैकाभिनिश्चयम् ।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥८॥
नाध्यगच्छत तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ।
जायेत तस्मात् स्वयं हन्त भवाम्यस्य सहव्रता ॥९॥

अर्थ—उसको ऐसी कोई स्त्री नहीं दीखी, जिसके द्वारा ऐसा पुत्र उत्पन्न हो सके। तब चिन्ता से व्याप्त होकर नदियों में श्रेष्ठ पर्णाशा ने उस राजा का कल्याण करने के लिए एकान्त में यह विचार किया कि 'मैं ही इनकी सहचारिणी बन जाऊं।'

अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः ।
वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः ॥१०॥

अर्थ—तदनन्तर उसने कुमारी बनकर श्रेष्ठ रूप धारण करके राजा को वरना चाहा और राजा ने भी उसको पत्नी बनाना चाहा।

तस्यामाधत्त गर्भं च तेजस्विनमुदारधीः ।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥११॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ।

अर्थ—तदनन्तर उस महाबुद्धिमान् राजा ने उसमें तेजस्वी गर्भ को स्थापित किया, तब उस नदियों में श्रेष्ठ पर्णाशा ने राजा देवावृध के वीर्य से दसवें महीने में सर्वगुणसम्पन्न बभ्रु नामक पुत्र उत्पन्न किया।

अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥१२॥
गुणान् देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः ।
यथैवाग्रे समं दूरात् पश्याम च तथान्तिके ॥१३॥

अर्थ—सुना है कि इस वंश के प्राचीन इतिहास को जाननेवाले लोग महात्मा देवावृध के गुणों का इस प्रकार कीर्तन करते थे, 'महात्मा देवावृध को हम जैसे दूर देश में देखते थे, वैसे ही उनको समीप में देखते थे अर्थात् उनको योगबल से अनेक रूप धारण कर सर्वत्र एक रूप में विराजमान देखते थे।

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥१४॥
एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रुर्देवावृधावपि ।

अर्थ—बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवता के समान हैं, सात हजार छासठ पुरुषों सहित बभ्रु और देवावृध अमृतत्व को प्राप्त हो गये अर्थात् संग्रामभूमि में अपने प्राणों को त्यागकर ब्रह्मलोक में पहुंच गये।

यज्वा दानपतिर्विद्वान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥१५॥
कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्त्वतानां महावरः ।
तस्यान्ववायः सुमहान् भोजा ये मार्तिकावताः ॥१६॥

अर्थ—राजा बभ्रु दानियों में श्रेष्ठ, यज्ञ करनेवाले, विद्वान् और ब्राह्मण-भक्त थे। उनके आयुध बड़े दृढ़ थे। वे कीर्तिमान्, महातेजस्वी तथा सात्त्वत-वंशियों में परमश्रेष्ठ थे। उन बभ्रु का वंश बहुत बड़ा है, मार्तिकावतभोज उनकी ही सन्तानों में हैं।

अन्धकात् काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ।
कुकुरं भजमानं च शमिं कम्बलबर्हिषम् ॥१७॥

अर्थ—अन्धक से काशिराज (दृढाश्व) की पुत्री के द्वारा कुकुर, भजमान, शमि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए।

कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा ।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ॥१८॥

अर्थ—कुकुर के पुत्र धृष्णु और धृष्णु के पुत्र कपोतरोमा हुए तथा उनके पुत्र तैत्तिरि हुए।

जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित् तु पुनर्वसोः ।
तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल ॥१९॥

अर्थ—तैत्तिरि के पुत्र पुनर्वसु हुए, पुनर्वसु के पुत्र अभिजित् हुए, उन अभिजित् के एक पुत्र और एक पुत्री – ये दो जुड़वां सन्तानें हुईं, ऐसी बात सुनी जाती है।

आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ ।
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम् ॥२०॥

अर्थ—ख्यातिप्राप्त लोगों में श्रेष्ठ वे दोनों आहुक और आहुकी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन आहुक के सम्बन्ध में (मनुष्य) इस गाथा को गाया करते हैं।

श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ।
अशीतिचर्मणा युक्तः स नृपः प्रथमं व्रजेत् ॥२१॥

अर्थ—वह तरुण घोड़े के समान उत्साही राजा जब अपने विशुद्ध परिवार के साथ चलते थे, तब उनके (काठ के बने) राजसिंहासन को अस्सी मनुष्य उठाया करते थे।

नापुत्रवान् नाशतदो नासहस्रसतायुषः ।
नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् ॥२२॥

अर्थ—उन भोज के साथ उन्हें घेरकर चलनेवाले लोगों में ऐसा कोई नहीं था, जो पुत्रहीन हो अथवा सैकड़ों की दक्षिणा देनेवाला न हो अथवा सैकड़ों-सहस्रों वर्षों की आयुवाला न हो अथवा अशुद्ध-कर्म करनेवाला हो तथा यज्ञ करनेवाला न हो।

पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्येत्यनुमोदनम् ।
सोपासङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम् ॥२३॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ।
रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राणि दशापि च ॥२४॥

अर्थ—पूर्व दिशा में राजा भोज (आहुक) का अभिनन्दन करने के लिये चांदी और सोने की सांकलों से बांधे जानेवाले दस हजार हाथी आते थे तथा उपासङ्ग (जुआ), अनुकर्ष (रथ के नीचे का काष्ठ) और वरूथ (रथत्राण कवच) वाले एवं मेघों की भांति घोष करनेवाले ध्वजाधारी दस हजार रथ उनका स्वागत करने के लिये आते थे ।

तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ।
आ भूमिपालान् भोजाः स्वानुपतिष्ठन्किङ्किणीकिणः ॥२५॥

अर्थ—उतते ही हजार रथ और हाथी उत्तर तथा अन्य दिशाओं में भी राजा आहुक का अभिनन्दन करने के लिए आते थे । भोजवंशी यादव सब सामन्तों को वश में करके आहुक की उपासना करते थे । राजा आहुक ने उन सबके रथ सोने की घंटियों-घुंघुरुओंवाले बनवा दिये थे ।

आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ।
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ॥२६॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवपुत्रसमावुभौ ।

अर्थ—अन्धकवंशियों ने आहुक की बहन आहुकी को अवन्ति से राजवंश में ब्याह दी । आहुक के काशिराज की पुत्री से देवकुमारों के समान सुन्दर देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।

देवकस्याभवन्पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥२७॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ।

अर्थ—देवक के देवकुमारों–जैसे देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित नाम के चार पुत्र थे ।

कुमार्यः सप्त चाप्यासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥२८॥
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ।
वृकदेव्युपदेवी च सुनासी चैव सप्तमी ॥२९॥

अर्थ—उन्हीं के देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सातवीं सुनासी—इस प्रकार सात पुत्रियां थीं, देवक ने उन सबका विवाह वसुदेव जी के साथ कर दिया था ।

नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः ।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुः सुभूमिपः ॥३०॥
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाऽऽसन् कंसा कंसवती तथा ॥३१॥

सुतनू राष्टपाली च कङ्का चैव वराङ्गना।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ॥३२॥

अर्थ—उग्रसेन के नौ पुत्र थे, उनमें कंस सबसे बड़ा था। शेष के नाम इस प्रकार हैं - न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क. सुभूमिप, शङ्कु, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनाधृष्टि और पुष्टिमान्। इनकी कंसा, कंसवती, सुतनू, राष्ट्रपाली और कङ्का नाम की पांच सुन्दराङ्गी बहिनें थीं। इस प्रकार कुकुरवंश में उत्पन्न हुए उग्रसेन और उनकी सन्तान का वर्णन किया गया।

कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम्।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥३३॥

अर्थ—जो मनुष्य इन अमिततेजस्त्री कुकुरों के वंश का वर्णन सुनता है, वह सन्तान पाता है तथा उसके वंश की बड़ी वृद्धि होती है।

इति हरिवंशे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

वैशम्पायन उवाच—

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः।
राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१॥

अर्थ—**वैशम्पायन जी कहते हैं**—राजन्! अन्धक पुत्र भजमान के रथियों में मुख्य विदूरथ नामक पुत्र हुआ। विदूरथ के पुत्र शूरवीर राजाधिदेव हुए।

राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः।
दत्तातिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥२॥
शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित्।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः ॥३॥

अर्थ—राजाधिदेव के बलवान् दत्त और अधिदत्त, श्रोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु और शत्रुजित् नामक परम बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए और श्रवणा तथा श्रविष्ठा नाम की दो कन्याएं हुई थीं।

शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः।
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदीकः सम्बभूव ह ॥४॥

अर्थ—शमी के पुत्र प्रतिक्षत्र हुए, प्रतिक्षत्र के पुत्र स्वयंभोज और स्वयंभोज के पुत्र हृदीक हुये।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वाथ मध्यमः ॥५॥

अर्थ—हृदीक के सभी पुत्र भयंकर पराक्रमी थे, उनमें कृतवर्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए और शतधन्वा उनके मझले पुत्र थे।

देवर्षेर्वचनात् तस्य भिषग् वैतरणश्च यः।
सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका ॥६॥

अर्थ—देवर्षि च्यवन के वचन से शतधन्वा के भिषक्, वैतरण, सुदान्त एवं विदान्त नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए तथा कामदा और कामदन्तिका नाम की दो पुत्रियां उत्पन्न हुईं।

देववांश्चाभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः।
असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ ॥७॥

अर्थ—(अन्धक-पुत्र) कम्बलबर्हिष के पुत्र विद्वान् देववान् हुए तथा वीर असमौजा तथा नासमौजा नामक दो पुत्र और हुए।

अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे।
सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धकास्त्रयः ॥८॥

अर्थ—अन्धक के (कुकुर आदि के अतिरिक्त) सुदंष्ट्र, चारुरूप और कृष्ण नाम के तीन पुत्र (और) थे। अन्धक ने उन तीनों पुत्रों को पुत्रहीन असमौजा को दे दिया।

एते चान्ये च बहवो अन्धकाः कथितास्तव।
अन्धकानामिमं वंशं धारयेद् यस्तु नित्यशः ॥९॥
आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः।

अर्थ—इनका तथा और भी बहुत-से अन्धकवंशी राजाओं का आपसे वर्णन कर दिया। जो पुरुष नित्यप्रति अन्धकों के इस वंश का वर्णन सुनता है, उसका वंश अति विस्तृत हो जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

गान्धारी चैव माद्री च क्रौष्टुभार्ये बभूवतुः ॥१०॥
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्।
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ॥११॥

अर्थ—यदुपुत्र क्रोष्टा के गान्धारी और माद्री नाम की दो भार्याएं थीं। गान्धारी के पुत्र बहाबली अनमित्र हुए तथा माद्री के पुत्र युधाजित् और देवमीढ्वान् हुए।

अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम्।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः ॥१२॥
प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ।

अर्थ—अपराजित् अनमित्र शत्रुओं को जीतनेवाले थे। अनमित्र के पुत्र निघ्न हुए, निघ्न के प्रसेन और सत्राजित् नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए, वे दोनों शत्रुओं की सेनाओं को जीतनेवाले थे।

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम् ॥१३॥
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान्।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥१४॥

अर्थ—द्वारकापुरी में बसते समय प्रसेन को स्यमन्तक नाम की दिव्य मणि समुद्र के तट पर परम्परा से प्राप्त हुई थी। प्रसेन के भाई सत्राजित् के सूर्यनारायण प्राण के समान प्रिय मित्र थे।

इति हरिवंशे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

परिशिष्टानि

(परिशिष्टियाँ)

१

षोडशराजोपाख्यानम्

संजय उवाच

श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च ।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाब्रवीत् ।। १ ।।

संजय कहते हैं—राजन् ! मृत्यु की उत्पत्ति और अनुपम कर्म सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर ने पुनः व्यासजी को प्रसन्न करके उनसे यह बात कही ।। १ ।।

युधिष्ठिर उवाच

भुयश्चः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः ।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ।। २ ।।

युधिष्टर बोले—ब्रह्मन् ! इन्द्र के समान पराक्रमी, मेल पुण्यकर्मा, निष्पाप तथा सत्यवादी राजर्षिगण अपने श्रेष्ठ उत्तम स्थान (लोक) में निवास करते हैं ।। २ ।।

भूयः एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय ।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ।। ३ ।।

अतः आप पुनः उन प्राचीन राजर्षियों के सत्कर्मोंका श्रेष्ठ ठहराने वाले अपने यथार्थ वचनों द्वारा मेरा सौभाग्य करके और मुझे आश्वासन दीजिये ।। ३ ।।

कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे ।। ४ ।।

पूर्वकालके किन-किन महामनस्वी पुण्यात्मा राजर्षियोंने यज्ञोंमें कितनी-कितनी दक्षिणाएँ दी थीं । यह सब आप मुझे बताइये ।। ४ ।।

व्यास उवाच

नारद और सृंजय

शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः ।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ।। ५ ।।

व्यासजीने कहा—राजन् ! राजाशैव्यके सृजय नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था । उसके पर्वत और नारद—ये दो ऋषि मित्र थे ।। ५ ।।

तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया ।
विधिवच्चार्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ।। ६ ।।

एक दिन वे दोनों महर्षि सृंजयसे मिलनेके लिये उसके घर पधारे । उसने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वे दोनों वहीं सुखपूर्वक रहने लगे ।। ६ ।।

तं कदाचित् सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता ।
दुहिताभ्यागमत् कन्या सृजयं वरवर्णिनी ।। ७ ।।

एक समय उन दोनों ऋषियोंके साथ राजा सृंजय सुखपूर्वक बैठे थे । उसी समय पवित्र मुसकानवाली परम सुन्दरी सृंजयकी कुमारी पुत्री वहाँ आयी ।। ७ ।।

तयाभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद् यथाविधि ।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ।। ८ ।।

आकर उसने राजाको प्रणाम किया । राजाने उसके अनुरूप अभीष्ट आशीर्वाद देकर अपने पार्श्वभागमें खड़ी हुई उस कन्याका विधिपूर्वक अभिनन्दन किया ।। ८ ।।

तां निरीक्ष्याब्रवीद् वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ।। ९ ।।

तब महर्षि पर्वतने उस कन्याकी ओर देखकर हँसते हुए-से कहा—'राजन् ! यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्मानित चञ्चल कटाक्षवाली कन्या किसकी पुत्री है ? ।। ९ ।।

उताहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम् ।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ।। १० ।।

'अहो ! यह सूर्यकी प्रभा है या अग्निदेवीकी शिखा है अथवा श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, पुष्टि, सिद्धि या चन्द्रमाकी प्रभा है ?' ।। १० ।।

एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
ममेयं भगवन् कन्या मत्तो वरमभीप्सति ।। ११ ।।

इस प्रकार पूछते हुए देवर्षि पर्वतसे राजा सृंजयने कहा—'भगवन् ! यह मेरी कन्या है, जो मुझसे वर प्राप्त करना चाहती है' ।। ११ ।।

नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
भार्यार्थे सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ।। १२ ।।

इसी समय नारदजी राजासे बोले—'नरेश्वर ! यदि तुम परम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेके लिये मुझे दे दो' ।। १२ ।।

ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ।। १३ ।।

तब सृंजयने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीसे कहा—'दे दूँगा' । यह सुनकर पर्वत अत्यन्त कुपित हो नारदजी बोले—।। १३ ।।

हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।
यस्माद् वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ।। १४ ।।

'ब्रह्मन् ! मैंने मन-ही-मन पहले ही जिसका वरण कर लिया था, उसीका तुमने वरण किया है । अतः तुमने मेरी मनोनीत पत्नीको वर लिया है, इसलिये अब तुम इच्छानुसार स्वर्गमें नहीं जा सकते' ।। १४ ।।

एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः ।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता चोदकपूर्वकम् ।। १५ ।।

पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् ।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ।। १६ ।।

उनके ऐसा कहनेपर नारदजीने उन्हें यह उत्तर दिया—'मनसे संकल्प करके, वाणीद्वारा प्रतिज्ञा करके, बुद्धिके द्वारा पूर्ण निश्चयके साथ, परस्पर

सम्भाषणपूर्वक तथा संकल्पका जल हाथमें लेकर जो कन्यादान किया जाता है, वरके द्वारा जो कन्याका पाणिग्रहण होता है और वैदिक मन्त्रके पाठ किये जाते हैं, यही विधि-विधान कन्या-परिग्रहके साधकरूपसे प्रसिद्ध है; परंतु इतनेसे ही पाणिग्रहणकी पूर्णताका निश्चय नहीं होता है। उसकी पूर्ण निष्ठा तो सप्तपदी ही मानी गयी है ।। १५-१६ ।।

अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि ।
तस्मात् त्वमपि न स्वर्गे गमिष्यसि मया विना ।। १८ ।।

'अतः इस कन्याके ऊपर पतिरूपसे तुम्हारा अधिकार नहीं हुआ है—ऐसी अवस्थामें भी तुमने मुझे शाप दे दिया है, इसलिये तुम भी मेरे बिना स्वर्ग नहीं जा सकोगे' ।। १७ ।।

अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा ।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः ।। १८ ।।

पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः ।

इस प्रकार एक दूसरेको शाप देकर वे दोनों उस समय वहीं ठहर गये। इधर राजा सृंजयने पुत्रकी इच्छासे पवित्र हो पूरी शक्ति लगाकर बड़े यत्नसे भोजन, पीने योग्य पदार्थ तथा वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंकी अराधना की ।। १८/१-२ ।।

तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित् पुत्रमीप्सवः ।। १९ ।।

तपः स्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ।। २० ।।

एक दिन राजापर प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र देनेकी इच्छा वाले सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न रहनेवाले तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् थे, एक साथ नारदजीसे बोले—'देवर्षे ! आप इन राजा सृंजयको अभीष्ठ पुत्र प्रदान कीजिये' ।। १९-२० ।।

तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत् ।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ।। २१ ।।

ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर नारदजीने 'तथास्तु' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। फिर वे सृंजयसे इस प्रकार बोले—'राजर्षे ! ये ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर तुम्हारे लिए अभीष्ट पुत्र प्राप्त करना चाहते हैं ।। २१ ।।

वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ।। २२ ।।

यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिंदमम् ।
यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ।। २३ ।।

सर्वं भवेत् प्रसादाद् वै तादृशं तनयं वृणे ।

'तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें जैसा पुत्र अभीष्ट हो, उसके लिये वर मांगो' । नारदजीके ऐसा कहनेपर राजाने हाथ जोड़कर उनसे एक सद्गुण-सम्पन्न, यशस्वी, कीर्तिमान्, तेजस्वी तथा शत्रुदमन पुत्र मांगा । वह बोला—'मुने । मैं ऐसे पुत्रकी याचना करता हूँ, जिसका मल, मूत्र, थूक और पसीना सब कुछ आपके कृपाप्रसादसे सुवर्णमय हो जाय' ।। २२-२३ ।।

व्यास उवाच

तथा भविष्यतीत्युक्ते जज्ञे तस्येप्सितः सुतः ।।

काञ्चनस्याकरः श्रीमान् प्रसादाच्च सुकाङ्क्षितः ।
अपतत् तस्य नेत्राभ्यां रुदतस्तस्य नेत्रजम् ।।

सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाभवत् कृतम् ।
तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमित धनम् ।। २४ ।।

व्यासजी कहते हैं—राजन् । तब मुनिने कहा—'ऐसा ही होगा' । उनके ऐसा कहनेपर राजाको मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त हुआ । मुनिके प्रसादसे वह शोभाशाली पुत्र सुवर्णकी खान निकला । राजा वैसा ही पुत्र चाहते थे । रोते समय उसके नेत्रोंसे सुवर्णमय आँसू गिरता था । इसीलिये उस पुत्रका नाम सुवर्णष्ठीवि प्रसिद्ध हो गया । वरदानके प्रभावसे वह अनन्त धनराशकी वृद्धि करने लगा ।। २४ ।।

कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ।। २५ ।।
शय्यासनास्थानानि स्थालीपिठरभाजनम् ।
तस्य राजाऽपियद् वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ।। २६ ।।
सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।

राजाने घर, परकोटे, दुर्ग एवं ब्राह्मणोंके निवासस्थान सारी अभीष्ट वस्तुएँ सोनेका बनवा लीं । शय्या, आसन, सवारी, बटलोई, थाली, अन्य

वर्तन, उस राजाका महल तथा बाह्य उपकरण—ये सब कुछ सुवर्णमय बन गये थे, जो समयके अनुसार बढ़ रहे थे ।। २५-२६ ।।

अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ।। २७ ।।
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।

तदनन्तर दस्युओंने राजाके वैभवकी बात सुनकर तथा उन्हें वैसा ही सम्पन्न देखकर संगठित हो उनके यहाँ लूट-पाट आरम्भ कर दी ।। २७ ।।

केचित् तदाब्रुवन् राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ।। २८ ।।
सोऽस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे ।

उन डाकुओंमेंसे कोई-कोई इस प्रकार बोले—'हम सब लोग इस राजाके पुत्रको अधिकारमें कर लें; क्योंकि वही इस सुवर्णकी खान है । अतः हम उसीको पकड़नेका यत्न करें' ।। २८ ।।

ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ।। २९ ।।
राजपुत्रं तथा जह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् ।

तब उन लोभी लुटेरोंने राजमहलमें प्रवेश करके राजकुमार सुवर्णष्ठीवीको बलपूर्वक हर लिया ।। २९ ।।

गृह्यैनमनुपायज्ञा नीत्वारण्यमचेतसः ।। ३० ।।
हत्वा विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन ।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद् वरदं वसु ।। ३१ ।।

योग्य उपायको न जानने वाले उन विवेकशून्य डाकुओंने उसे वनमें ले जाकर मार डाला और उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके देखा, परंतु उन्हें थोड़ा-सा भी धन नहीं दिखाई दिया । उसके प्राणशून्य होते ही वह वरदायक वैभव नष्ट हो गया ।। ३०-३१ ।।

दस्यवश्च तदान्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ।। ३२ ।।
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।

उस समय वे विचारशून्य मूर्ख एवं दुराचारी दस्यु भूमण्डलके उस अद्भुत और असम्भव कुमारका वध करके परस्पर एक दूसरेको मारने लगे । इस प्रकार मार-पीट करके वे भी नष्ट हो गये और भयंकर नरकमें पड़ गये ।। ३२ ।।

तं दृष्टा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
विललाप सुदुःखार्तो बहुधा करुणं नृपः ।

मुनिके वरसे प्राप्त हुए उस पुत्रको मारा गया देख वे महातपस्वी नरेश अत्यन्त दुःखसे आतुर हो नाना प्रकारसे करुणाजनक विलाप करने लगे ॥ ३२ ॥

विलपन्तं निशम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य संनिधौ ।

पुत्रशोकसे पीड़ित हुए राजा सृजय विलाप कर रहे हैं——यह सुनकर देवर्षि नारद उनके समीप दिखायी दिये । ३४ ।

उवाच चैन दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥
सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठर ।

युधिष्ठिर ! दुःखसे पीड़ित हो अचेत होकर विलाप करते हुए राजा सृञ्जयके निकट आकर नारदजीने जो कुछ कहा था, वह सुनो ॥ ३५ ॥

नारद उवाच

त्यज शोकं महाराज वैक्लव्य त्यज बुद्धिमन् ।
न मृतः शोचतो जीवेन्मुह्यतो वा जनाधिप ॥

नारदजी बोले—महाराज ! शोकका त्याग करो ! बुद्धिमान् नरेश ! व्याकुलता छोड़ो । जनेश्वर ! कोई कितना ही शोक क्यों न करे या दुःखसे मूर्छित क्यों न हो जाय, इससे मरा हुआ मनुष्य जीवित नहीं हो सकता ॥

त्यज मोहं नृपश्रेष्ठ न हि मुह्यन्ति त्वद्विधाः ।
धीरो भव महाराज ज्ञानवृद्धोऽसि मे मतः ॥

नृपश्रेष्ठ ! मोह त्याग दो ! तुम्हारे-जैसे पुरुष मोहित नहीं होते हैं । महाराज ! धैर्य धारण करो ! मैं तुम्हें ज्ञानमें बढ़ा-चढ़ा मानता हूँ ॥

कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।

सृंजय । जिसके धरमें ये हम-जैसे ब्रह्मवादी मुनि निवास करते हैं, वह तुम भी यहाँ एक दिन भोगोंसे अतृप्त रहकर ही मर जाओगे ॥ ३६ ॥

आविक्षित मरुत

आविक्षितं मरुतं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥

संवर्तो याजसामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद् धनं स भगवान् प्रभुः ।। ३८ ।।

हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः स वै ।
यस्य सेन्द्राऽमरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ।। ३९ ।।

देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चासन् परिच्छदाः ।। ४० ।।

यस्य सवे तदा ह्यन्नं मनोऽभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्रा सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः ।। ४१ ।।

पयोदधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ।। ४२ ।

ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान् वेदपारगान् ।
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् गृहे ।। ४३ ।।

आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्टया सस्यसम्पदः ।। ४४ ।।

हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक् क्लृप्तैर्दिवौकसः ।
ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम् ।। ४५ ।।

ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनयानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ।। ४६ ।।

तत् सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वानिरामयाः ।। ४७ ।।

श्रद्दधानोजिताँल्लोकान् गतःपुण्यदुहोऽक्षयान् ।

सृंजय ! अविक्षितके पुत्र राजा मरुत भी मर गए, ऐसा हमने सुना है। बृहस्पतिजीके साथ स्पर्धा रखनेके कारण उनके भाई संवर्तने जिन राजर्षि मरुतका यज्ञ कराया था, भांति-भाँतिके यज्ञों द्वारा भगवान्‌का यजन करने की इच्छा होनेपर जिन्हें साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रचुर धनराशिके रूपमें हिमालयका एक सुवर्णमय शिखर प्रदान किया था तथा प्रतिदिन यज्ञकार्यके अन्त में जिनकी सभामें इन्द्र आदि देवता और बृहस्पति आदि समस्त प्रजापतिगण सभासद्‌के रूपमें बैठा करते थे, जिनके यज्ञमण्डपकी सारी साम-ग्रियाँ सोनेकी बनी हुई थीं, जिनके यहाँ उन दिनों सब प्रकार का अन्न, मनकी इच्छाके अनुरूप और पवित्ररूप में उपलब्ध होता था और सभी

भोजनार्थी ब्राह्मण एवं द्विज जहाँ अपनी इच्छाके अनुसार दूध, दही, घी, मधु एवं सुन्दर भक्ष्य-भोज्य पदार्थ भोजन करते थे, जिसके सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रसन्नतासे भरे हुए वेदों के पारंगत विद्वान् ब्राह्मणों को अपनी रुचिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण प्राप्त होते थे, जिन अविक्षितकुमार (राजर्षि मरुत्त) के घरमें मरुद्गण रसोई परोसनेका काम करते थे और विश्वेदेवगण सभासद् थे, जिन पराक्रमी नरेशके राज्यमें उत्तम वृष्टिके कारण खेतीकी उपज बहुत होती थी, जिन्होंने उत्तम विधिसे समर्पित किये हुए हविष्योंद्वारा देवताओंको तृप्त किया था, जो ब्रह्मचर्यपालन और वेदपाठ आदि सत्कर्मों द्वारा तथा सब प्रकारके दानोंसे सदा ऋषियों, पितरों एवं सुखजीवी देवताओंको भी संतुष्ट करते थे तथा जिन्होंने इच्छानुसार ब्राह्मणोंको शय्या, आसन, सवारी और दुस्त्यज स्वर्णराशि आदि वह सारा अपरिमित धन दान कर दिया था, देवराज, इन्द्र जिनका सदा शुभ चिन्तन करते थे, वे श्रद्धालु नरेश मरुत्त अपनी प्रजा को नीरोग करके अपने सत्कर्मों द्वारा जीते हुए पुण्यफलदायक अक्षय लोकोंमें चले गये ।। ३७-३७ ।।

सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ।। ४८ ।।
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।

राजा मरुत्तने युवावस्थामें रहकर प्रजा, मन्त्री, धर्म पत्नी, पुत्र और भाईयोंके साथ एक हजार वर्षोंतक राज्य शासन किया था ।। ४८ ।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।। ४९ ।।

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येत्युदाहरत् ।। ५० ।।

श्वैत्य सृंजय ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इन चारों बातोंमें राजा मरुत्त तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । तुम्हारे पुत्र ने तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें उसमें कोई उदारता ही थी। अतः उसको लक्ष्य करके तुम चिन्ता न करो—नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ।। ४९-५० ।।

षोडशराजकीये पञ्चपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।। ५५ ।।

षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पचपनवाँ अध्याय ।। ५५ ।।

सार्वभौम चक्रवर्ती सुहोत्र

नारद उवाच

सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! राजा सुहोत्रकी भी मृत्यु सुनी गयी है । वे अपने समयके अद्वितीय वीर थे । देवता भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते थे ।।

यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान् ।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्टस्तेषां मते स्थितः ।। २ ।।

उन्होंने धर्मके अनुसार राज्य पाकर ऋत्विजों, ब्राह्मणों तथा पुरोहितों से अपने कल्याणका उपाय पूछा और पूछ कर वे सम्मतिके अनुसार चलते रहे ।। २ ।।

प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः ।
एतत् सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद् धनागमम् ।। ३ ।।

प्रजापालन, धर्म, दान, यज्ञ और शत्रुओंपर विजय पाना इन सबको राजा सुहोत्रने अपने लिये श्रेयस्कर मानकर धर्मके द्वारा ही धन पानेकी अभिलाषा की ।। ३ ।।

धर्मेणाराधयन् देवान् बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा ।
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत् ।। ४ ।।

स भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ।। ५ ।।

उन्होंने इस पृथ्वीको म्लेच्छों तथा तस्करोंसे रहित करके इसका उपभोग किया और धर्माचरणद्वारा देवताओंकी आराधन तथा बाणोंद्वारा शत्रुओंपर विजय करते हुए अपने गुणोंसे समस्त प्रजाका मनोरञ्जन किया था, उनके लिये उसने अनेक वर्षोंतक सुवर्णकी वर्षा की थी ।। ४-५ ।।

हैरण्यास्त वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा ।
ग्रहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्चविविधान् बहून् ।। ६ ।।

राजा सुहोत्रके राज्यमें पहले स्वच्छन्द गतिसे बहने वाली स्वर्णजल भरी हुई सरिताएँ सुवर्णमय ग्राहों, केकड़ों, मत्स्यों तथा नाना प्रकारके बहुसंख्यक जलजन्तुओंको अपने भीतर बहाया करती थी ।। ६ ।।

कामान् वर्षति पर्जन्यो रूप्याणि विविधानि च ।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ।। ७ ।।

मेघ अभीष्ट वस्तुओंकी तथा नाना प्रकारके रजत और असंख्य सुवर्णकी बर्षा करते थे। उनके राज्यमें एक-एक कोसकी लंबी-चौड़ी बावड़ियाँ थीं ।। ७ ।।

सहस्रं वामनान् कुब्जान् नक्रान् मकरकच्छपान् ।
सौवर्णान् विहितान् दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ।। ८ ।।

उनमें सहस्रों नाटे-कुबड़े ग्राह, मगर और कछुए रहते थे, जिनके शरीर सुवर्णके बने हुए थे । उन्हें देखकर राजाको उन दिनों बड़ा विस्मय होता था ।। ८ ।।

तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।। ९ ।।

राजर्षि सुहोत्रने कुरुजाङ्गल देशमें यज्ञ किया और उस विशाल यज्ञमें अपनी अनन्त सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको बाँट दी ।। ९ ।।

सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ।। १० ।।

उन्होंने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय तथा बहुतसी श्रेष्ठ दक्षिण-वाले अनेक पुण्यमय क्षत्रिय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ।। १० ।।

काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।। ११ ।।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्युदाहरत् ।। १२ ।।

राजाने नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य यज्ञोंके निरन्तर अनुष्ठानसे मनो-वाञ्छित गति प्राप्त कर ली । श्वैत्य सृञ्जय ! वे भी तुम से धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी विषयोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे । तुम्हारे पुत्रसे भी वे अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब तुम्हें अपने पुत्रके लिये अनुताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें दाक्षिण्य (उदारताका गुण) ही था । नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ।। ११-१२ ।।

षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५६

षोडशराजाकीयोपाख्यानविषयक छप्पनवाँ अध्याय ।। ५६ ।।

राजा पौरवके अद्भुत दानका वृत्तान्त

नारद उवाच

राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ।। १ ।।

नारद जी कहते हैं—सृंजय ! हमने वीर राजा पौरव की भी मृत्यु हुई सुनी है, जिन्होंने दस लाख श्वेत घोड़ों का दान किया था ।। १ ।।

तस्याश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात् समीयुषाम् ।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नासीत् संख्याविपश्चिताम् ।। २ ।।

उन राजर्षिके अश्वमेध, यज्ञमें देश-देशसे आये हुए शिक्षाशास्त्र, अक्षर (विभिन्न देशोंकी लिपि) और यज्ञविधिके ज्ञाता विद्वानोंकी गिनती नहीं थी ।। २ ।।

वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः ।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ।। ३ ।।

वेदविद्याके अध्ययनका व्रत पूर्ण करके स्नातक बने हुए उदार और प्रियदर्शन पण्डितजन राजासे उत्तम अन्न, वस्त्र, गृह, सुन्दर शय्या, आसन और भोजन पाते थे ।। ३ ।।

नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः ।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ।। ४ ।।

नित्य उद्योगशील एवं खेल-कूद करनेवाले नट, नर्तक और गन्धर्वगण कुक्कुटकी-सी आकृतिवाले आरतीवाले आरतीके प्यालोंसे अपनी कला दिखाकर उक्त विद्वानोंका मनोरञ्जन एवं हर्षवर्द्धन करते रहते थे ।। ४ ।।

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत् ।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ।। ५ ।।

सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा ।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ।। ६ ।।

राजा पौरव प्रत्येक यज्ञमें यथासमय प्रचुर दक्षिणा बाँटते थे । उन्होंने स्वर्णकी-सी कान्तिवाले दस हजार मतवाले हाथी, ध्वजा और पताकाओं

सहित सुवर्णमय बहुत-से रथ तथा एक लाख स्वर्णभूषित कन्याओंका दान किया था ।। ५-६ ।।

धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः ।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमालिमहात्मनाम् ।। ७ ।।
गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत् ।

वे कन्याएँ रथ, अश्व एवं हाथियोंपर आरूढ़ थी । उनके साथ ही उन्होंने सौ-सौ घर, क्षेत्र और गौएँ प्रदान की थीं । राजाने सुवर्णमालामण्डित विशालकाय एक करोड़ गाय, बैलों और उनके सहस्रों अनुचरोंको दक्षिणा-रूपसे दान किया था ।। ७ ।।

हेमशृङ्ग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ।। ८ ।।
दासीदासखरोष्ट्राश्च प्रादादाजाविकं बहु ।

सोनेके सींग, चाँदीके खुर और कांसेके दुग्धपात्रवाली बहुत-से बछड़े-सहित गौएँ तथा दास, दासी, गदहे, ऊँट एवं बकरी और भेड़ आदि भारी संख्यामें दान किये ।। ८ ।।

रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ।। ९ ।।
तस्मिन् संवितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।

उस विशाल यज्ञमें नाना प्रकारके रत्नों तया भाँति-भाँतिके अन्नोंके पर्वत-समान ढेर उन्होंने दक्षिणारूपमें दिये ।। ९ ।।

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।। १० ।।

उस यज्ञके सम्बन्धमें प्राचीन बातोंको जाननेवाले लोग इस प्रकार गाथा गाते हैं ।। १० ।।

अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभा, ।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्यासन् सार्वकामिकाः ।। ११ ।।

यजमान अङ्गनरेशके सभी यज्ञ स्वधर्मके अनुसार प्राप्त और शुभ थे । वे उत्तरोत्तर गुणवान् और सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले थे ।।११।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।।

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। १२ ।।

सृंजय ! पौरव धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों बातोंमें तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वैत्य सृंजय जब वे भी मर गये, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासेरहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १२ ॥

षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्ययाय: ॥ ५७ ॥

षोडशराजकीयोपाख्यानविषयण सत्तावनवाँ अध्याय

राजा शिबिके यज्ञ और दानकी महत्ता

नारद उवाच

शिबिमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत् पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! जिन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़ेकी भाँति लपेट लिया था, (सर्वथा अपने अधीन कर लिया था) वे उशीनरपुत्र राजा शिबि भी मरे थे, यह हमने सुना है ॥ १ ॥

साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन्।
स शिबिर्वै रिपून् नित्यं मुख्यान निघ्नन् सपत्नजित: ॥ २ ॥

राजा शिबिने पर्वत, द्वीप, समुद्र और वनोंसहित इस पृथ्वीको अपने रथकी घरघराहटसे प्रतिध्वनित करते हुए प्रधान-प्रधान शत्रुओंको मारकर सदा ही अपने विपक्षियोंपर विजय प्राप्त की ॥ २ ॥

तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणै:।
स राजा वीर्यवान् धीमानवाप्य वसु पुष्कलम्।
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मत: सोऽभवद्युधि।
अयजदश्मेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥

उन्होंने प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे पराक्रमी और बुद्धिमान् नरेश पर्याप्त धन पाकर युद्धमें सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंकी दृष्टिमें सम्माननीय वीर हो गये थे। उन्होंने इस पृथ्वीको जीतकर अनेक अश्वमेध-यज्ञ किये थे ॥ ३-४ ॥

निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोऽजाविभिस्तथा ॥ ५ ॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिबिर्ब्राह्मणसात्करोत् ।

उनके वे यज्ञ प्रचुर फल देनेवाले थे और सदा निर्बाध चलते रहते थे। उन्होंने सहस्रकोटि स्वर्णमुद्राओं का दान किया था। राजा शिबिने हाथी, घोड़े, मृग, गौ, भेड़ और बकरी आदि पशुओं तथा धान्योंसहित नाना प्रकारके पवित्र भूखण्ड ब्राह्मणोंके अधीन कर दिये थे ॥ ५ ॥

यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥

यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः ।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ॥ ७ ॥

तावतीरददद् गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे ।

बरसते हुए मेघसे जितनी धाराएँ गिरती हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र दिखाई देते हैं, गङ्गाके किनारे जितने बालूके कण हैं, सुमेरु पर्वत में जितने स्थूल प्रस्तरखण्ड हैं तथा महासागरमें जितने रत्न और वाणी निवास करते हैं, उतनी गौएँ उशीनरपुत्र शिबिने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दी थीं ॥ ६-७ ॥

नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः ॥ ८ ॥
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम् ।

प्रजापतिने भी अपनी सृष्टिमें भूत, भविष्य और वर्तमान कालके किसी भी दूसरे नरश्रेष्ठ राजाको ऐसा नहीं पाया, जो शिबिके कार्यभारको सँभाल सकता हो ॥ ८ ॥

तस्यासन् विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९ ॥
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः ।

उन्होंने नाना प्रकारके बहुत-से यज्ञ किये, जिनमें प्रार्थियोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण की जाती थीं, उमें यज्ञोंमें यज्ञोंस्तम्भ, आसन, गृह, परकोटे और दरवाजे सुवर्णके बने हुये थे ॥ ९ ॥

शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्लदाः ।
तस्यासन् यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥

उन यज्ञोंमें खाने-पीनेकी वस्तुएँ पवित्र और स्वादिष्ट होती थीं। वहाँ दूध-दहीके बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे। वहाँ वहाँ हजारों और लाखों ब्राह्मण भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थ पदार्थ पाकर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली बातें कहते थे। उनकी यज्ञशालाओंमें पीने योग्य पदार्थोंकी नदियाँ बहती थीं और शुद्ध अन्नके पर्वतोंके समान ढेर लगे रहते ॥ १०-११ ॥

पिबत स्नात खादध्वमिति यत्र रोचते जनाः।
यस्मै प्रादाद् वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥

अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥

वहाँ सबके लिये यह घोषणा की जाती थी कि सज्जनों! स्नान करो और जिसकी जैसी रुचि हो उसके अनुसार अन्न-पान लेकर खूब खाओ-पीओ।' भगवान् शिवने राजा शिबिके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर उन्हें यह वर दिया था कि राजन्! सदा दान करते रहनेपर भी तुम्हारा धन क्षीण नहीं होगा, तुम्हारी श्रद्धा, कीर्ति और पुण्यकर्म भी अक्षय होंगे। तुम्हारे कहनेके अनुसार ही सब प्राणी तुमसे प्रेम करेंगे और अन्तमें तुम्हें उत्तम स्वर्गलोकी प्राप्ति होगी ॥ १२-१३ ॥

एतांल्लब्ध्वा वरानिष्टाञ्छिबिः काले दिवं गतः।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १५ ॥

इन अभीष्ट वरोंको पाकर राजा शिबि समय आनेपर स्वर्गलोकमें गये। सृंजय! वे तुम्हारी अपेक्षा पूर्वोक्त चारों बातोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वित्यनन्दन! जब वे शिबि भी मर गये, तब तुम्हें यज्ञ और दानसे रहित-अपने पुत्रके लिये इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १४-१५ ॥

षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥
षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय ॥ ५८ ॥

रामका चरित्र

नारद उवाच

रामं दाशरथिं चैव मतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम भी यहाँसे परमधामको चले गये थे, यह मेरे सुननेमें आया है । उनके राज्यमें सारी प्रजा निरन्तर आनन्दमग्न रहती थी । जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है, उसी प्रकार वे समस्त प्रजाका स्नेहपूर्वक संरक्षण करते थे ।। १ ।।

असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि ।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः ।। २ ।।
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः ।

वे अत्यन्त तेजस्वी थे और उनमें असंख्य गुण विद्यमान थे । अपनी मर्यादा से कभी च्युत न होनेवाले लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षोंतक अपनी पत्नी सीता (और लक्ष्मण) के साथ वनमें निवास किया था ।। २ ।।

जघान च जनस्थाने राक्षसान् मनुजर्षभः ।। ३ ।।
तपस्विनां रक्षणार्थे सहस्राणि चतुर्दश ।

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिए चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था ।। ३ ।।

तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ।। ४ ।।
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम् ।

वहीं रहते समय लक्ष्मणसहित श्रीरामको मोहमें डाल कर रावण नामक राक्षसने उनकी पत्नी विदेहनन्दिनी सीताको हर लिया ।। ४ ।।

रामो हृतां राक्षसेन भार्यां श्रुत्वा जटायुषः ।
आतुरः शोकसंतप्तोऽगच्छद् रामो हरीश्वरम् ।।

अपनी मनोरमा पत्नीके राक्षसद्वारा हर लिये जानेका समाचार जटायुके मुखसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी आतुर एवं शोकसंतप्त हो वानरराज सुग्रीवके पास गये ।।

तेन रामः सुसङ्गम्य वानरैश्च महाबलैः ।
आजगामोदधेः पारं सेतुं कृत्वा महार्णवे ।।

सुग्रीवसे मिलकर श्रीरामने (उनके साथ मित्रता की और) महाबली वानरोंको साथ ले महासागरमें पुल बाँधकर समुद्रको पार किया ।।

तत्र हत्वातु पौलस्त्यान् समुहृद्गणबान्धवान् ।
मायाविनं महाघोरं रावणं लोककण्टकम् ।।

तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ।। ५ ।।
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।

वहाँ पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको उनके सुहृदों और बन्धुबान्धवोंसहित मारकर श्रीरामने अपने प्रधान अपराधी अत्यन्त और मायावी लोककंटक पुलस्त्यनन्दन रावणको, जो दूसरोंके द्वारा कभी जीता नहीं गया था, कुपित होकर समरभूमिमें मार डाला । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने अन्धकासुरको मारा था ।। ५ ।।

सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ।। ६ ।।
जघान सः महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।

जो देवताओं और असुरोंके लिये भी अवध्य था, देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप उस पुलस्त्यवंशी रावणका रणक्षेत्रमें महाबहु श्रीरामचन्द्रजीने उसके दलबल सहित संहार कर डाला ।। ६ ।।

हत्वा तत्र रिपुं संख्ये भार्यया सह सङ्गतः ।
लंकेश्वरं च चक्रे स धर्मात्मानं विभीषणम् ।।

इस प्रकार वहाँ युद्धस्थलमें अपने वैरी रावणका वध करके वे धर्मपत्नी सीतासे मिले । तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषणको उन्होंने लङ्काका राजा बना दिया ।।

भार्यया सह संयुक्तस्ततो वानरसेनया ।
भार्याध्यामागतो वीरः पुष्पकेण विराजता ।।

तदनन्तर वीर श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी तथा वानरसेनाके साथ पुष्पकविमानके द्वारा अच्छे काममें आये ।।

तत्र राजन् प्रविष्टः स अयोध्यायां महायशाः ।
भ्रातृप्रियान् सचिवानृत्विजः सपुरोहितान् ।।
शुश्रूषमाणः सततं मन्त्रिभिश्चाभिषेचितः ।

राजन् ! अयोध्यामें प्रवेश करके महायशस्वी श्रीराम वहाँ भ्राताओं, मित्रों, मन्त्रियों, ऋत्विजों तथा पुरोहितोंकी सेवामें सदैव संलग्न रहने लगे। फिर मन्त्रियोंने उनका राज्याभिषेक कर दिया ।।

विसृज्य हरिराजानं हनुमन्तं सहाङ्गदम् ।।
भ्रातरं भरतं वीरं शत्रुघ्नं चैव लक्ष्मणम् ।
पूजयन् परया प्रीत्या वैदेह्या चाभिपूजितः ।।
चतुःसागरपर्यन्तां पृथिवीमन्वशासत ।।)
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ।। ७ ।।

इसके बाद वानरराज सुग्रीव, हनुमान् और अङ्गदको विदा करके अपने भ्राता भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणका आदर करते हुए विदेहनन्दिनी सीता द्वारा परम प्रेमपूर्वक सम्मानित हो श्रीरामचन्द्रजीने चारों समुद्रोंतक की सारी पृथ्वीका शासन किया और समस्त प्रजाओंपर अनुग्रह करके वे देवताओं द्वारा सम्मानित हुए ।। ७ ।।

व्याप्य कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विधिवद् राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ।। ८ ।।
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं राजसूयमश्वमेधं च तं विभुः ।। ९ ।।
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ।। १० ।।

देवर्षिगणोंसे सेवित श्रीरामने विधिपूर्वक राज्य पाकर अपनी कीर्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर दिया और समस्त प्राणियोंपर अनुग्रह करते हुए वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे। भगवान् रामने निर्बाधरूपसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और देवराज इन्द्रको हविष्यसे तृप्त करके उन्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान किया। राजा रामने नाना प्रकारके दूसरे-दूसरे यज्ञ भी किये थे, जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न थे ।।

श्रुत्पिपासेऽजयद् रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भूख और प्यासको जीत लिया था । सम्पूर्ण देहधारियोंके रोगोंको नष्ट कर दिया था । वे उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हो सदैव अपने तेजसे प्रकाशित होते थे ॥ ११ ॥

अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥ १२ ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

दशरथनन्दन श्रीराम (अपने महान् तेजके कारण) सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़कर शोभा पाते थे । श्रीरामके राज्यशासन करते समय ऋषि, देवता और मनुष्य सभी एक साथ इस पृथ्वीपर निवास करते थे ॥ १२ ॥

नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ॥ १३ ॥
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ।

उस समय उनके राज्य शासनकालमें प्राणियोंके प्राण, अपान और समान आदि प्राणवायुका क्षय नहीं होता था; इस नियममें कोई हेर-फेर नहीं था ॥ १३ ॥

पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदानार्याश्च नाभवन् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।

(यज्ञों अथवा अग्निहोत्र-गृहोंमें) सब ओर अग्निदेव प्रज्वलित होते रहते थे । उन दिनों किसी प्रकारका अनर्थ नहीं होता था । सारी प्रजा दीर्घायु होती थी । किसी युवककी मृत्यु नहीं हुआ करती थी ॥ १४ ॥

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च ।

चारों वेदोंके स्वाध्यायसे प्रसन्न हुए देवता तथा पितृगण नाना प्रकारके हव्य और काव्य प्राप्त करते थे । सब ओर इष्ट (यज्ञयागादि) और पूर्त (वापी, कूप, तडाग और वृक्षारोपण आदि) का अनुष्ठान होता रहता था ॥ १५ ॥

अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनोऽदहत् ।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें किसी भी देशमें डाँस और मच्छरोंका भय नहीं था। साँप और विच्छू नष्ट हो गये थे। जलमें पड़नेपर भी किसी प्राणीकी मृत्यु नहीं होती थी। चिताकी अग्निने किसी भी मनुष्यको असमयमें नहीं जलाया था (किसीकी अकालमृत्यु नहीं हुई थी) ॥ १६ ॥

अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवंस्तदा ॥ १७ ॥
शिष्टेष्टयज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाभवन् ।

उन दिनों लोग अधर्ममें रुचि रखनेवाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे। उस समय सभी वर्णके लोग अपने लिये शास्त्रविहित यज्ञयागादि कर्मोंका अनुष्ठान करते थे ॥ १७ ॥

स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।

जनस्थानमें राक्षसोंने जो पितरों और देवताओंकी पूजाअर्चा नष्ट कर दी थी, उसे भगवान् श्रीरामने राक्षसोंको मारकर पुनः प्रचलित किया और पितरोंको श्राद्धका तथा देवताओंको यज्ञका भाग दिया ॥ १८ ॥

सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ।

श्रीरामके राज्यकालमें एक-एक मनुष्यके हजार-हजार पुत्र होते थे और उनकी आयु भी एक-एक सहस्र वर्षोंकी होती थी। बड़ोंको अपने छोटोंका श्राद्ध नहीं करना पड़ता था ॥ १९ ॥

न तस्करा वा व्याधिर्वा विविधोपद्रवाः क्वचित् ।
अनावृष्टिभयं चात्र दुर्भिक्षो व्याधयः क्वचित् ॥
सर्वं प्रसन्नमेवासीदत्यन्तसुखसंयुतम् ।
एवं लोकोऽभवत् सर्वो रामे राज्यं प्रशासति ॥

श्रीरामके राज्यमें कहीं भी चोर, नाना प्रकारके रोग और भाँति-भाँतिके उपद्रव नहीं थे। दुर्भिक्ष, व्याधि और अनावृष्टिका भय भी कहीं नहीं था। सारा जगत् अत्यन्त सुखसे सम्पन्न और प्रसन्न ही दिखायी देता था। इस प्रकार श्रीरामके राज्य करते समय सब लोग बहुत सुखी थे ॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः ।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।

भगवान् श्रीरामकी श्यामसुन्दर छवि, तरुण अवस्था और कुछ-कुछ अरुणाई लिये बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उनकी चाल मतवाले हाथी-जैसी थी, भुजाएँ सुन्दर और घुटनोंतक लंबी थीं। कंधे सिंहके समान थे। उनमें महान् बल था। उनकी कान्ति समस्त प्राणियोंके मनको मोह लेनेवाली थी। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था ॥ २०-२१ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवत् कथा ॥ २२ ॥
रामाद् रामं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्य शासन-कालमें समस्त प्रजाओंमें 'राम, राम, राम' यही चर्चा होती थी। श्रीरामके कारण सारा जगत् ही राममय हो रहा था ॥ २२ ॥

चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाष्टधा ।

फिर समयानुसार अपने और भाइयोंके अंशभूत दो दो पुत्रोंद्वारा आठ प्रकारके राजवंशकी स्थापना करके उन्होंने चारों वर्णोंकी प्रजाको अपने धाममें भेजकर स्वयं ही सदेह परमधामको गमन किया ॥ २३ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २५ ॥

श्वैत्य सृञ्जय ! वे श्रीरामचन्द्र जी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़े-बढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी यहाँ नहीं रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ एवं दान-दक्षिणसे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृञ्जयसे यही बात कही ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि ।
षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

राजा भागीरथका चरित्र

नारद उवाच

भागीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
परित्राणाय पूर्वेषां येन गङ्गावतारिता ।
यस्येन्द्रो बाहुवीर्येण प्रीतो राज्ञो महात्मनः ।।

योऽश्वमेधशतैरीजे समाप्तवरदक्षिणैः ।
हवर्मन्त्रान्नसम्पन्नैर्देवानामादधान्मुदम् ।।

यस्येन्द्रो वितते यज्ञे सोमं पीत्वा मदोत्कटः ।
असुराणां सहस्राणि बहूनि च सुरेश्वरः ।।

अजयद् बाहुवीर्येण भगवाँल्लोकपूजितः ।
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृञ्जय ! हमारे सुननेमें आया है कि राजा भागीरथ भी मर गये, जिन्होंने अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये इस भूतलपर गङ्गाजीको उतारा था । जिन महामना नरेशके बाहुबलसे इन्द्र बहुत प्रसन्न थे, जिन्होंने प्रचुर एवं उत्तम दक्षिणासे युक्त हविष्य, मन्त्र और अन्नसे सम्पन्न सौ अशनमेघ यज्ञोंका अनुष्ठान किया और देवताओंका आनन्द बढ़ाया, जिनके महान् यज्ञमें इन्द्र सोमरस पीकर मदोन्मत हो उठे थे तथा जिनके यहाँ रहकर लोकपूजित भगवान् देवेन्द्रने अपने बाहुबलसे अनेक सहस्र असुरोंको पराजित किया, उन्हीं राजा भागीरथने यज्ञ करते समय गङ्गाके दोनों किनारों पर सोनेकी ईटोंकेघाट बनवाये थे ।। १ ।।

यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।। २ ।।

इतना ही नहीं. उन्होंने कितनी ही राजाओं तथा राजपुत्रोंको जीतकर उनके यहाँसे सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित दस लाख कन्याएँ लाकर उन्हें ब्राह्मणोंको दानकिया था ।। २ ।।

सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ।। ३ ।।

वे सभी कन्याएँ रथोंमें बैठी थीं । उन सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते थे । प्रत्येक रथके पीछे सोनेके हारोंसे अलंकृत सौ-सौ हाथी चलते थे ।। ३ ।।

सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः ।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ।। ४ ।।

एक एक हाथीके पीछे हजार हजार घोड़े जा रहे थे और एक-एक घोड़े के साथ सौ-सौ गौएँ एवं गौओंके पीछे भेड़ और बकरियोंके झुंड चलते थे ।। ४ ।।

तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् ।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याङ्के निषसाद ह ।। ५ ।।

राजा भागीरथ गङ्गाके तटपर भूयसी (प्रचुर) दक्षिणा देते हुए निवास करते थे । अतः उनके संकल्पकालिक जलप्रवाहसे आक्रान्त होकर गङ्गादेवी मानो अत्यन्त व्यथित हो उठीं और समीपवर्ती राजाके अङ्कमें आ बैठी ।। ५ ।।

तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाभवत् पुरा ।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत् तदा ।। ६ ।।

इस प्रकार भगीरथकी पुत्री होनेसे गङ्गाजी भागीरथी कहलायीं और उनके ऊरुपर बैठनेके कारण उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुईं । राजाके पुत्रीभावको प्राप्त होकर उनका नरकसे त्राण करनेके कारण वे उस समय पुत्रभावको भी प्राप्त हुईं ।। ६ ।।

तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ।। ७ ।।

सूर्यके समान तेजस्वी और मधुरभाषी गन्धर्वोंने प्रसन्न होकर देवताओं पितरों और मनुष्योंके सुनते हुए यह गाथा गायी थी ।। ७ ।।

भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ।। ८ ।।

यज्ञ करते समय भूयसी दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशी ऐश्वर्यशाली राजा भगीरथको समुद्रगामिनी गङ्गादेवीने अपना पिता मान लिया था ।। ८ ।।

तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलङ्कृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ।। ९ ।।

इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने उनके यज्ञको सुशोभित किया था। उसमें प्राप्त हुए हविष्यको भलीभाँति ग्रहण करके उसके विघ्नोंको शान्त करते हुए उसे निर्बाधरूपसे पूर्ण किया था ।। ९ ।।

यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राददद् वशी ।। १० ।।

जिस-जिस ब्राह्मणने यहाँ-जहाँ अपने मनको प्रिय लगनेवाली जिस-जिस वस्तुको पाना चाहा, जितेन्द्रिय राजाने वहीं-वहीं प्रसन्नतापूर्वक वह वस्तु उसे तत्काल समर्पित की ।। १० ।।

नादेय ब्राह्मणस्यासीद् यस्य यत्स्यात् प्रियं धनम् ।
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ।। ११ ।।

उनके पास जो भी प्रिय धन था, वह ब्राह्मणके लिये अदेय नहीं था। राजा भगीरथ ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए ।। ११ ।।

येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनावस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम् ।। १२ ।।

शत्रुओंकी दशा और आशाका हनन करनेवाले सृंजय ! राजा भगीरथने यज्ञोंमें प्रधान ज्ञानयज्ञ और ध्यानयज्ञको ग्रहण किया था। इसलिये किरणोंका पान करने वाले महर्षिगणभी उस ब्रह्मलोकमें जितेन्द्रिय राजा भगीरणके निकट जाकर उसी स्थानपर रहनेकी इच्छा करते थे ।। १२ ।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।। १३ ।।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्युदाहरत् ।

श्वैत्य सृंजय ! वे भगीरथ उपर्युक्त चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़कर थे। तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा उनका पुण्य बहुत अधिक था। जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ।। १३ ।।

षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ।। ६० ।।

षोडशकीयोपायाख्यानविषक साटवाँ अध्याय ।। ६० ।।

राजा दिलीप

नारद उवाच

दिलीपं चेदैलविलं मृतं सृञ्ज शुश्रुम ।
यस्य यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ।
तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ।। १ ।।

नादरजी कहते है—सृंजय ! इलविलाके पुत्र राजा दिलीपकी भी मृत्यु सुनी गई है, जिनके सौ यज्ञोंमें लाखों ब्राह्मण नियुक्त थे । वे सभी ब्राह्मण वेदोंके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके तात्पर्यको जानने वाले, यज्ञकर्ता तथा पुत्र पौत्रोंसे सम्पन्न थे ।। १ ।।

य इमां वसुसम्पूर्णो वसुधां वसुधाधिपः ।
ईजानो वितते यत्रे ब्राह्मणेभ्यो अमन्यत ।। २ ।।

पृथ्वीपति दिलीपने यज्ञ करते समय अपने बिशाल यज्ञमें धन-धान्यसे सम्पन्न इस सारी पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया था ।। २ ।।

दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ।। ३ ।।

राजा दिलीपके यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनायी गयी थीं । इन्द्र आदि देवता मानो धर्मकी प्राप्तिके लिये उन्हें अलंकृत करते हुए उनके यहाँ पधारते थे ।। ३ ।।

सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभवत् सर्वं सदः परमभास्वरम् ।। ४ ।।

वहाँ पर्वतोंके समान विशालकाय सहस्रों गजराज विचरा करते थे । राजाका सभामण्डल सोनेका बना हुआ था, जो सदा देदीप्यमान रहता था ।। ४ ।।

रसानां चाभवन् कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चासन् हिरण्मयाः ।।

वहाँ रसकी नहरें बहती थीं और अन्नके पहाड़ों-जैसे ढेर लगे हुए थे। राजन्! उनके यज्ञमें सहस्र व्याम-विस्तृत सुवर्णमय यूप सुशोभित होते थे ।। ५ ।।

चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।
नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट् सहस्राणि सप्त च ।। ६ ।।

उनके यूपमें सुवर्णमय चषाल और प्रचषाल लगे हुए थे। उनके यहाँ तेरह हजार अप्सराएँ नृत्य करती थी ।। ६ ।।

यत्र बीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।
सर्बभूतान्यमन्यन्तराजानं सत्यशीलिनम् ।। ७ ।।

इस समय यहाँ साक्षात् गन्धर्वराज विश्वासु प्रेमपूर्वक वीणा बजाते थे। समस्त प्राणी राजा दिलीपको सत्यवादी मानते थे ।। ७ ।।

रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शेरते ।

तदेतवद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ।। ८ ।।
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।

उनके यहाँ आये हुए अतिथि 'रागखाण्डव' नामक मोदक और विविध भोज्यपदार्थ खाकर मतवाले हो सड़कोंपर लेट जाते थे। मेरे मनमें उनके यहां यह एक अद्भुत बात थी, जिमकी दूसरे राजाओंसे तुलना नहीं हो सकती थी। राजा दिलीप युद्ध करते समय जलमें भी चले जाते तो उनके रथके पहिए वहाँ डूबते नहीं थे ।। ८ ।।

राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ।
येऽपश्यन् भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।। ९ ।।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले सत्यवादी राजा दिलीपका लोग दर्शन कर लेते थे, वे मनुष्य भी स्वर्गलोकके अधिकारी हो जाते थे ।। ९ ।।

पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ।। १० ।।
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।

खट्वाङ्ग (दिलीप) के भवनमें ये पाँच प्रकारके शब्द कभी बन्द नहीं होते थे— वेदशास्त्रोंके स्वाध्यायका शब्द, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी ध्वनि

तथा अतिथियोंके लिये कहे जानेवाले 'खाओ, पीओ और अन्न ग्रहण करो ये तीन शब्द ॥ १० ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्यैत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे दिलीप धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे, तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है ? अतः जिसने अभी यज्ञ नहीं किया, दक्षिणाएँ नहीं बांटीं, अपने उस पुत्रके लिए तुम शोक न करो—इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ११-१२ ॥

षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इकसठवाँअध्याय

राजा मान्धाता

नारद उवाच

मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥

नारदजी कहते है —सृञ्जय ! युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता भी मरे थे, यह सुना गया है । वे देवता, असुर और मनुष्य—तीनों लोकोंके विजयी थे ॥ १ ॥

यं देवावश्विनौ गर्भात् पितुः पूर्वे चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन् राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ॥ २ ॥

पूर्वकालमें दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उन्हें पिताके पेटसे निकाला था । एक समयकी बात है, राजा युवनाश्व वनमें शिकार खेलनेके लिये विचर रहे थे । वहाँ उनका घोड़ा थक गया और उन्हें भी प्यास लग गयी ॥ २ ॥

धूमं दृष्ट्वागमत् यत्र पृषदाज्यमवाप सः ।
तं दृष्ठा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
गर्भाद्धि जह्रतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ ।

इतनेमें दूरसे उठता हुआ धूआँ देखकर वे उसी ओर चले और एक यज्ञ-मण्डलमें जा पहुँचे। वहाँ एक पात्रमें रक्खे हुए घृतमिश्रित अभिमन्त्रित जल-को उन्होंने पी लिया। उस जलको युवनाश्वके पेटमें पुत्ररूपमें परिणत हुआ। वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उसे पिताके गर्भसे बाहर निकाला ॥ ३ ॥

तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥

अन्योन्यमब्रुवन् देवाः कमयं धास्यतीति वै।
मामेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः ॥ ५ ॥

देवताके समान तेजस्वी उस शिशुको पिताकी गोदमें शयन करते देख देवता वापसमें कहने लगे, यह किसका दूध पीयेगा? यह सुनकर इन्द्रने कहा —यह पहले मेरा ही दूध पीये ॥ ४-५ ॥

ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत् पयोऽमृतम्।
मां धास्यतीति कारुण्याद् यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत्।
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याद्भुतं कृतम्।

तदनन्तर इन्द्रकी अङ्गुलियोंसे अमृतमय दूध प्रकट हो गया; क्योंकि इन्द्रने करुणावश 'मां धास्यति' (मेरा दूध पीयेगा) ऐसा कहकर उसपर कृपा की थी, इसलिये उसका 'मान्धाता' यह अद्भुत नाम निश्चत कर दिया गया ॥ ६ ॥

ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
तस्यास्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत्।
अपिबत् पाणिमिन्द्रस्य स चात्यह्नाभ्यवर्धत ॥ ८ ॥

तत्पश्वात् महामना मान्धाताके मुखमें इन्द्रके हाथने दूध और घीकी धारा बहायी। वह बालक इन्द्रका हाथ पीने लग और एक ही दिनमें बहुत बढ गया। ७८ ॥

सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान्।

इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥

वह पराक्रमी राजकुमार बारह दिनोंमें ही बारह वर्षोंकी अवस्थावाले बालकके समान हो गया। (राजा होनेपर) मान्धाताने एक ही दिनमें इस सारी पृथ्वीको जीत लिया ॥ ९ ॥

धर्मात्मा धृतिमान् वीरः सत्यसंधो जितेन्द्रियः ।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ।। १० ।।
असितं च नृगं चैव मान्धाता मानवोऽजयत् ।

वे धर्मात्मा, धैर्यवान्, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय थे। मानव मान्धाताने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और नृगको भी जीत लिया ।। १० ।।

उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ।। ११ ।।
तत् सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ।

सूर्य जहाँसे उदय होते थे और जहां जाकर अस्त होते थे, वह सारा-का-सारा प्रदेश युवनाश्वपुत्र मान्धाताका क्षेत्र (राज्य) कहलाता था ।। ११ ।।

सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ।। १२ ।।
अददद् रोहितान् मत्स्यान् ब्राह्मणेभ्योविशाम्पते ।
हैरण्यान् यो जनोत्सेधानाथताञ्शतयोजनम् ।। १३ ।।

राजन् ! उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करके सौ योजन विस्तृत रोहितक, मत्स्य तथा हिरण्यमय (सोनेकी खानोंसे युक्त) जनपदोंको, जो लोगोंमें ऊँची भूमिके रूपमें प्रसिद्ध थे, ब्राह्मणोंको दे दिया ।। १२-१३ ।।

बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् ।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ।। १४ ।।

अनेक प्रकारके सुस्वादु भक्ष्य भोज्य पदार्थोंके पर्वत भी उन्होंने ब्राह्मणोंको दे दिये। ब्राह्मणोंके भोजनसे भी अन्न बच गया, उसे दूसरे लोगोको दिया गया। उस अन्नको खाने वाले लोगोंकी ही वहां कमी रहती थी। अन्न कभी नहीं घटता था ।। १४ ।।

भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः ।
घृतह्रदाः सूपकूपाः दधिफेना गुडोदकाः ।। १५ ।।
रुरुधुः पर्वतान् नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः ।

वहाँ भक्ष्य-भोज्य अन्न और पीने योग्य पदार्थोंकी अनेक राशियां संचित थीं। अन्नके तो पहाड़ों-जैसे ढेर सुशोभित होते थे। उन पर्वतोंको मधु और

दूधकी सुन्दर नदियां घेरे हुए थी । पर्वतोंके चारों ओर घीके कुण्ड और दालके कुएँ भरे थे । वहां कई नदियोंमें फेनकी जगह दही और जलके स्थानमें गुड़के रस बहते थे ।। १५ ।।

देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ।। १६ ।।
विप्रास्तत्रागताश्वासन् वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ब्राह्मणा ऋषयश्चापि नासंस्तत्राविपश्चितः ।। १७ ।।

वहां देवता, असुर, मनुष्य, यज्ञ, गन्धर्व, नाग, पक्षी तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण एवं ऋषि भी पधारे थे; किंतु वहां कोई मनुष्य ऐसे नहीं थे, जो विद्वान् न हों ।। १६-१७ ।।

समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः ।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामास्तं तदा नृपः ।। १८ ।।

उस समय राजा मान्धाता सब ओरसे धन-धान्यसे सम्पन्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको ब्राह्मणोंके अधीन करके सूर्यके समान अस्त हो गये ।। १८ ।।

गतः पुण्यकृतां लोकान् व्याप्य स्वयशसा दिशः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।। १९ ।।

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। २० ।।

उन्होंने अपने सुयशसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त करके पुण्यात्माओंके लोकोमें पदार्पण किया । श्वैत्य सृञ्जय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है । अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ।। १९-२० ।।

अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ।। ६२ ।।
षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक बासठवाँ अध्याय ।। ६२ ।।

राजा ययातिका उपाख्यान

नारद उवाच

ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।

राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः ।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृञ्जय ! नहुषनन्दन राजा ययातिकी भी मृत्यु हुई थी, यह मैंने सुना है । राजाने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, एक हजार पुण्डरीक याग, सौ वाजपेय यज्ञ, एक सहस्र अतिरात्र याग तथा अपनी इच्छाके अनुसार चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकारके प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १-२ ॥

अब्राह्मणानां यद् वित्तं पृथिव्यामस्ति किंचन ।
तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥

इस पृथ्वीपर ब्राह्मणद्रोहियोंके पास जो कुछ धन था, वह सब उनसे छीनकर उन्होंने ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥

सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च ।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥

नदियोंमें परम पवित्र सरस्वती नदी, समुद्रों, पर्वतों तथा अन्य सरिताओंने यज्ञमें लगे हुए परम पुण्यात्मा राजा ययातिको घी और दूध प्रदान किये ॥ ४ ॥

व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् ।
चतुर्धा व्यभजत् सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
देवारण्येषु सर्वेषु विजहारामरोपमः ।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥

देवासुरसंग्राम छिड़ जानेपर उन्होंने देवताओंकी सहायता करके नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन किया और इस सारी पृथ्वीको चार भागोंमें विभक्त करके उसे ऋत्विज, अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता—इन चार प्रकारके ब्राह्मणोंको बाँट दिया । फिर शुक्रकन्या देवयानी और दानवराजकी

पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे धर्मतः उत्तम संतान उत्पन्न करके वे देवोपम नरेश दूसरे इन्द्रकी भाँति समस्त देवकाननोंमें अपनी इच्छाके अनुसार विहार करते रहे । ५—७ ।

यदा नाभ्यगमच्छान्ति कामानां सर्ववेदवित् ।
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद् वनम् ।। ८ ।।

जब भोगोंके उपभोगसे उन्हें शान्ति नहीं मिली, तब सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता राजा ययाति निम्नाङ्कित गाथाका ज्ञान करके अपनी पत्नियोंके साथ वनमें चले गये ।। ८ ।।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ।। ९ ।।

वह गाथा इस प्रकार है—इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक मनुष्यको भी सन्तोष करानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं । ऐसा समझकर मनको शान्त करना चाहिये ।। ९ ।।

एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च ।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ।। १० ।।

इस प्रकार ऐश्वर्यशाली राजा ययातिने धैर्यका आश्रय ले कामनाओं का परित्याग करके अपने पुत्र पूरुको राज्यसिंहासनपर बिठाकर वनको प्रस्थान किया ।। १० ।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। ११ ।।

श्वैत्य सृञ्जय ! वे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी जीवित न रह सके, तब औरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम अपने उस पुत्रके लिये शोक न करो, जिसने न तो यज्ञ किया था और न दक्षिणा ही दी थी । ऐसा नारदजीने कहा ।। ११ ।।

षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।। ६३ ।।

(षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक तिरसठवाँ अध्याय) ।। ६३ ।।

राजा अम्बरीषका चरित्र

नारद उवाच

नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृञ्जय ! मैंने सुना है कि नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष भी मृत्युको प्राप्त हुए थे, जिन्होंने अकेले ही दस लाख राजाओंसे युद्ध किया था ।। १ ।।

जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद् वैरिणोऽभ्ययुः ।
अस्त्रयुद्धविदो घोरा, सृजन्तश्वाशिवा गिरः ।। २ ।।

राजाके शत्रुओंने उन्हें युद्धमें जीतनेकी इच्छासे चारों ओरसे उनपर आक्रमण किया था । वे सब अस्त्रयुद्धकी कलामें निपुण और भयंकर थे तथा राजाके प्रति अभद्र वचनोंका प्रयोग कर रहे थे ।। २ ।।

बललाघवशिक्षाभितेस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च ।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्वा प्रासान् गतव्यथः ।। ३ ।।

परंतु राजा अम्बरीषको इससे तनिक भी व्यथा नहीं हुई । उन्होंने शारीरिक बल, अस्त्र-बल, हाथोंकी फुर्ती और युद्धसम्बन्धी शिक्षाके द्वारा शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा, रथ और आसोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ।। ३ ।।

त एनं मुक्तसंनाहाः प्रार्थयन् जीवितैषिणः ।
शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति वादिनः ।। ४ ।।

तब वे शत्रु अपने प्राण बचानेके लिए कवच खोलकर उनसे प्रार्थना करने लगे और हम सब प्रकारसे आपके ही हैं; ऐसा कहते हुए उन शरणदाता नरेशकी शरणमें चले गये ।। ४ ।।

स तु तान् वशगान् कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम् ।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथानघ ।। ५ ।।

अनघ ! इस प्रकार उन शत्रुओंको वशीभूत करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पाकर उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार सौ अभीष्ट यज्ञोंका अनुष्ठान किया ।। ५ ।।

बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा ।
तस्मिन् यज्ञे तु विप्रेन्द्राः संतृप्ताः परमार्चिताः ।। ६ ।।

उन यज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा अन्य लोग भी सदा सर्वगुण-सम्पन्न अन्न भोजन करते और अत्यन्त आदर सत्कार पाकर अत्यन्त संतुष्ट होते थे ।। ६।।

मोदकान् पूरिकापूपान् स्वादपूर्णाश्च शष्कुलीः ।
करम्भान् पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ।। ७ ।।

सूपान् मैरेयकापूपान् रागखाण्डवपानकान् ।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ।। ८ ।

घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च ।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ।। ९ ।।

लड्डू, पूरी, पुए, स्वादिष्ट कचौड़ी, करम्भ, मोटे भुनक्के, तैयार अन्न मैरेयक, अपूप, रागखाण्डव, पानक, शुद्ध एवं सुन्दर ढंगसे बने हुए मधुर और सुगन्धित भोज्य पदार्थ, घी, मधु, दूध, जल, दही, सरस वस्तुएँ तथा सुस्वादु फल, मूल वहाँ ब्राह्मणलोग भोजन करते थे ।। ७-९ ।।

मादनीयानि पापानि विदित्वा चात्मनः सुखम् ।
अपिबन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ।। १० ।।

मादक वस्तुएँ पानजनक होती हैं, यह जानकर भी पीनेवाले लोग अपने सुखके लिये गीत और वाद्योंके साथ इच्छानुसार उनका पान करते थे ।। १० ।।

तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीबा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ।। ११ ।।

पीकर मतवाले बने हुए सहस्रों मनुष्य वहाँ हर्षमें भरकर गाथा गाते, अम्बरीषकी स्तुतिसे युक्त कविताएँ पढ़ते और नृत्य करते थे ।। ११ ।।

तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दश प्रयुतयाजिनाम् ।। १२ ।।

उन यज्ञोंमें राजा अम्बरीष ने दस लाख यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें दस लाख राजाओंको ही दे दिया था ।। १२ ।।

हिरण्यकवचान् सर्वाञ्छ्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान् सानुयात्रपरिच्छदान् ।। १३ ।।

वे सब राजा सोनेके कवच धारण किये, श्वेत छत्र लगाये, सुवर्णमय रथ-पर आरूढ़ हुए तथा अपने अनुगामी सेवकों और आवश्यक सामग्रियों से सम्पन्न थे ।। १३ ।।

ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ।। १४ ।।
सदण्डकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उस विस्तृत यज्ञमें यजमान अम्बरीषने उन मूर्धाभिषिक्त नरेशों और सैकड़ों राजकुमारोंको दण्ड और खजानोंसहित ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ।। १४ ।।

नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ।
यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ।। १६ ।।

महर्षिलोग उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनके कार्योंका अनुमोदित करते हुए कहते थे कि असंख्य दक्षिणा देनेवाले राजा अम्बरीष जैसा यज्ञ कर रहे हैं वैसा न तो पहलेके राजाओंने किया और न आगे कोई करेंगे ।।१५-१६।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मां पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। १७ ।।

श्वैत्य सृंजय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणा से रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ।। १७ ।।

षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।। ६४ ।।

षोडशराजकीयोहाख्यानविषयक चौसठवाँ अध्याय ।। ६४ ।।

राजा शशबिन्दुका चरित्र

नारद उवाच

शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! मेरे सुननेमें आया है कि राजा शशबिन्दु की भी मृत्यु हो गई थी । उन सत्यपराक्रमी श्रीमान् नरेशने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ।। १ ।।

तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ।। २ ।।

महामना शशबिन्दुके एक लाख स्त्रियाँ थीं और प्रत्येक स्त्रीके गर्भसे एक-एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ।। २ ।।

ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ।। ३ ।।

वे सभी राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी और वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे । वे राजा होनेपर दस लाख यज्ञ करनेका संकल्प ले प्रधान-प्रधान यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ।। ३ ।।

हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शशबिन्दवः ।। ४ ।।

शशबिन्दुके उन सभी पुत्रोंने सोनेके कवच धारण कर रखे थे । वे सब उत्तम धनुर्धर थे और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ।। ४ ।।

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयः ।। ५ ।।

पिता महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें अपने वे सभी पुत्र ब्राह्मणको दे डाले । एक-एक राजकुमारके पीछे सौ-सौ रथ और हाथी गये थे ।। ५ ।।

राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे शतं रथाः ।। ६ ।।

उस समय प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्णभूषित सौ-सौ कन्याएँ थी । एक-एक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ-सौ रथ थे ।। ६ ।।

रथे रथे शतं चाश्वा बलिनो हेममालिनः ।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ।। ७ ।।

हर एक रथके साथ सोनेके हारोंसे विभूषित सौ-सौ बलवान् अश्व थे। प्रत्येक अश्वके पीछे हजार-हजार गौएँ तथा एक-एक गायके पीछे पचास-पचास भेड़ें थीं ॥ ७ ॥

एतद् धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे।
शशबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥

यह अपार धन महाभाग शशबिन्दुने अपने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंके लिये दान किया था ॥ ८ ॥

वाक्षश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे।
ते तथैव पुनश्चान्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥

उनके महायज्ञ अश्वमेधमें जितने काष्ठके यूप थे, वे तो ज्यों-के-त्यों थे ही, फिर उतने ही और सुवर्णमय यूप बनाये गये थे ॥ ९ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः।
तस्याश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥

उस यज्ञमें भक्ष्य-भोज्य अन्न-पानके पर्वतोंके समान एक कोस ऊँचे ढेर लगे हुए थे। राजाका अश्वमेध-यज्ञ पूरा हो जानेपर अन्नके तेरह पर्वत बच गये थे ॥ १० ॥

तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम्।
शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥

शशबिन्दुके राज्यकालमें यह पृथ्वी हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी थी। यहाँ कोई विघ्न-बाधा और रोग-व्याधि नहीं थी। शशबिन्दु इस वसुधाका दीर्घ-काल तक उपभोग करके अन्तमें स्वर्गलोकको चले गये ॥ ११ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य सृञ्जय! वे चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रोंसे तो बहुत अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गए, तब दूसरों की तो बात ही क्या है? अतः तुम यज्ञ और दान दक्षिणासे रहित अपनेके लिए शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ १२ ॥

षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।। ६५ ।।

षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पैंसठवाँ अध्याय ।। ६५ ।।

राजा गयका चरित्र

नारद उवाच

गयं चामूर्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृञ्जय ! राजा अमूर्तरयके पुत्र गयकी भी मृत्यु सुनी गयी है । राजा गयने सौ वर्षोंतक नियमपूर्वक अग्निहोत्र करके होमावशिष्ट अन्नका ही भोजन किया ।। १ ।।

तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात् ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ।। २ ।।

गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाविहिंस्यान्यान् धनमिच्छामि चाक्षयम् ।। ३ ।।

विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्र जन्म च मे भवेत् ।। ४ ।।

अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चास्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ।। ५ ।।

इससे प्रसन्न होकर अग्निदेवने उन्हें वर देनेकी इच्छा प्रकट की । (अग्निदेवकी आज्ञासे) गयने उनसे यह वरदान माँगा—'मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजनोंकी कृपासे वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ । दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना अपने धर्मके अनुसार चलकर अक्षय बन पाना चाहता हूँ । ब्राह्मणोंको दान देता रहूँ और इस कार्यमें प्रतिदिन मेरी अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ती रहे । अपने ही वर्णकी पतिव्रता कन्याओंसे मेरा विवाह हो और उन्हींके गर्भसे मेरे पुत्र उत्पन्न हों । अन्नदानमें मेरी श्रद्धा बढ़े तथा धर्मसे ही मेरा मन लगा रहे । अग्निदेव ! मेरे धर्मसम्बन्धी कार्योंमें कभी कोई विघ्न न आवे' ।। २-५ ।।

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत् सर्वान् धर्मेणारीनजीजयत् ।। ६ ।।

'ऐसा ही होगा' यों कहकर अग्निदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा गयने वह सब कुछ पाकर धर्मसे ही शत्रुओंपर विजय पायी ॥ ६ ॥

स दर्शपौर्णमासाभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चावाप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सरान् शतम्।

राजाने यथासमय सौ वर्षोंतक बड़ी श्रद्धाके साथ दर्श, पौर्णमास, आग्रयण और चातुर्मास्य आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये तथा उनमें प्रचुर दक्षिणा दी ॥ ७ ॥

गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
शतनिष्कसहस्राणि गवां चाप्ययुतानि षट्।
उत्थायोत्थाय स प्रादात् परिसंवत्सरान् शतम् ॥ ९ ॥

वे सौ वर्षों तक प्रतिदिन प्रातः काल उठकर एक लाख साठ हजार गौ, दस हजार अश्व तथा एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करते थे ॥ ८-९ ॥

नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥

वे सोम और अङ्गिराकी भाँति सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें नक्षत्रदक्षिणा देते हुए नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का भजन करते थे ॥ १० ॥

सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम्।
विप्रेभ्यः प्राददद् राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥

राजा गयने अश्वमेध नामक महायज्ञमें मणिमय रेतवाली सोनेकी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणोंको दान की थी ॥ ११ ॥

जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः।
गयस्यासन् समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥

गयके यज्ञमें सम्पूर्ण यूप जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए थे। उन्हें रत्नोंसे विभूषित किया गया था। वे समृद्धिशाली यूप सम्पूर्ण प्राणियोंके मनको हर लेते थे ॥ १२ ॥

सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥

राजा गयने यज्ञ करते समय हर्षसे उल्लसित हुए ब्राह्मणों तथा अन्य समस्त प्राणियोंको सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न उत्तम अन्न दिया था ।। १३ ।।

स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ।। १४ ।।
भूतग्रामाश्च विविधाः संतृप्ता यज्ञसम्पदा ।
गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ।। १५ ।।

समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, कानन, नगर, राष्ट्र, आकाश तथा स्वर्गमें जो नाना प्रकारके प्राणिसमुदाय रहते थे, वे उस यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहने लगे, राजा गयके समान दूसरे किसीका यज्ञ नहीं हुआ है ।। १४-१५ ।।

षट्त्रिंशद् योजनायामा त्रिंशद् योजनमायता ।
पश्चात् पुरश्चतुर्विंशद् वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ।। १६ ।।
गयस्य यजमानस्य मुक्तावज्रमणिस्तृता ।
प्रादात् स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ।। १७ ।।
यथोक्ता दक्षिणाश्चान्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।

यजमान गयके यज्ञमें छत्तीस योजन लम्बी, तीस योजन चौड़ी और आगे-पीछे (अर्थात् नीचेसे ऊपरको) चौबीस योजन ऊँची सुवर्णमयी वेदी बनवायी गयी थी । उसके ऊपर हीरे-मोती एवं मणि रत्न बिछाये गये थे । प्रचुर दक्षिणा देनेवाले गयने ब्राह्मणोंको वस्त्र, आभूषण तथा अन्य शास्त्रोक्त दक्षिणाएँ दी थीं ।। १६-१७ ।।

यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ।। १८ ।।
कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ।। १९ ।।

उस यज्ञमें खाने-पीनेसे बचे हुए अन्नके पचीस पर्वत शेष थे । रसोंको कौशलपूर्वक प्रवाहित करनेवाली कितनी ही छोटी-छोटी नदियाँ तथा वस्त्र, आभूषण और सुगन्धित पदार्थोंकी विभिन्न राशियाँ भी उस समय शेष रह गयी थीं ।। १८-१९ ।।

यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
वटश्चाक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ।। २० ।।

उस यज्ञके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये। साथ ही पुण्यको अक्षय्य करनेवाला अक्षयवट तथा पवित्र तीर्थ ब्रह्मसरोवर भी उनके कारण प्रसिद्ध हो गये ॥ २० ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २१ ॥

श्वैत्य सृञ्जय ! वे धर्म ज्ञानादि चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंके लिये क्या कहना है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये अनुताप न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ २१ ॥

षोडशराजकीये षट्षष्टिमतोऽध्यायः ॥ ६६ ॥
षोडशराजकीयोपाख्याकविषयक छियासठवाँ अध्याय ॥ ६६ ॥

राजा रन्तिदेवकी महत्ता

नारद उवाच

सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषकाः ।
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृञ्जय ! सुना है कि संकृतिके पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं रह सके। उन महामना नरेशके यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो घर पर आये हुए ब्राह्मण अतिथियोंको अमृतके समान मधुर कच्चा-पक्का उत्तम अन्न दिन-रात परोसते रहते थे ॥ १-२ ॥

न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धनका दान किया और चारों वेदोंका अध्ययन करके धर्मके द्वारा समस्त शत्रुओंको अपने वशमें कर लिया ॥ ३ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददन्निष्कान् सौवर्णान् स प्रभावतः ।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ।। ४ ।।

ब्राह्मणोंको सोनेके चमकीले निष्क देते हुए वे बार-बार प्रत्येक ब्राह्मणसे यही कहते थे कि यह निष्क तुम्हारे लिये है, यह निष्क तुम्हारे लिये है ।। ४ ।।

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान् निष्कान् सहस्रशः ।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ।। ५ ।।

'तुम्हारे लिये, तुम्हारे लिये' कहकर वे हजारों निष्क दान किया करते करते थे । इतनेपर भी जो ब्राह्मण पाये बिना रह जाते, उन्हें पुनः आश्वासन देकर वे बहुत-से निष्क ही देते थे ।। ५ ।।

अल्पं दत्तं मयाद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत् सम्प्रदास्यति ।। ६ ।।

राजा रन्तिदेव एक दिन में सहस्रों कोटि निष्क दान करके भी यह खेद प्रकट किया करते थे कि आज मैंने बहुत कम दान किया; ऐसा सोचकर वे पुनः दान देते थे । भला दूसरा कौन इतना दान दे सकता है स ।। ६ ।।

द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत् ।
भविष्यति न संदेह एवं राजाददद् वसु ।। ७ ।।

ब्राह्मणोंके हाथका वियोग होनेपर मुझे सदा महान् दुःख होगा, इसमें संदेह नहीं है । यह विचारकर राजा रन्तिदेव बहुत धन दान करते थे ।।७ ।।

सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान् ।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ।। ८ ।

सृंजय ! एक हजार सुवर्णके बैल, प्रत्येकके पीछे-सौ गायें और एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ—इतने धनको निष्क कहते हैं ।। ८ ।।

अध्यर्धमासमददद् ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ।। ९ ।।

राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मणों को (करोड़ों) निष्क दिया करते थे । इसके साथ अग्निहोत्रके उपकरण और यज्ञ की सामग्री भी होती थी । उनका यह नियम सौ वर्षोंतक चलता रहा ।। ९ ।।

ऋषिभ्यः करकान् कुम्भान् स्थालीः पिठरमेव च ।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ।। १० ।।
वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि च ।
सर्वं सौवर्णमेवासीद् रन्तिदेवस्य धीमतः ।। ११ ।।

वे ऋषियोंको करवे, घड़े, बटलोई, पिठर, शय्या, आसन, सवारी महल और घर, भांति-भांतिके वृक्ष तथा अन्न-धन दिया करते थे । बुद्धिमान् रन्तिदेवकी सारी देय वस्तुएँ सुवर्णमय ही होती थीं ।। १०-११ ।।

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ।। १२ ।।

राजा रतिदेवकी वह अलौकिक समृद्धि देखकर पुराणवेत्ता पुरुष वहाँ इस प्रकार उनकी यशोगाथा गाया करते थे ।

नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ।। १३ ।।

हमने कुबेरके भवनमें भी पहले कभी ऐसा (रन्तिदेवके समान) भरा-पूरा धनका भंडारण नहीं देखा है; फिर मनुष्योंके यहाँ तो हो ही कैसे सकता है ? ।। १३ ।।

व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।

वास्तवमें रन्तिदेवकी समृद्धि का सारतत्त्व उनका सुवर्णमय राजभवन और स्वर्णराशि ही है । इस प्रकार विस्मित होकर लोग उस गाथाका गान करने लगे ।। १३ ।।

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ।। १४ ।।
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः ।

संकृतिपुत्र रन्तिदेवके यहाँ जिस रात में अतिथियोंका समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस हजार गौएँ छूकर दान की जाती थीं ।। १४ ।।

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ।। १५ ।।
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मासं यथा यथा पुरा ।

वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किये रसोइये पुकार-पुकार कहते थे,, आपलोग खूब दाल और कढ़ी खाइये । यह आज जैसी स्वादिष्ट बनी है, वैसी पहले एक महीने तक नहीं बनी थी ।। १५ ।।

रन्तिदेवस्य यत् किंचित् सौवर्णमभवत् तदा ।। १६ ।।
तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उन दिनों राजा रन्तिदेवके पास जो कुछ भी सुवर्णमयी सामग्री थी, वह सब उन्होंने उस विस्तृत यज्ञमें ब्राह्मणोंको बाँट दी ।। १६ ।।

प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ।। १७ ।।
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान् द्विजोत्तमाः ।

उनके यज्ञमें देवता और पितर प्रत्यक्ष दर्शन देकर यथा समय हव्य और कव्य ग्रहण करते थे तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ सम्पूर्ण मनोवांछित पदार्थोंको पाते थे ।। १७ ।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।। १८ ।।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। १९ ।।

श्वैत्य सृंजय ! वे रन्तिदेव चारों कल्याणमय गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या बात है । अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ।। १९ ।।

षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।। ६७ ।।
षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सरसठवाँ अध्याय ।। ६७ ।।

राजा भरतका चरित्र

नारद उवाच

दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान् यः शिशुर्वने ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! दुष्यन्तपुत्र राजा भरतकी भी मृत्यु हुई सुनी गई है, जिन्होंने शैशवावस्थामें ही वनमें ऐसे-ऐसे कर्म किये थे, जो दूसरोंके लिए सर्वथा दुष्कर है ।। १ ।।

हिमावदातान् यः सिंहान् नखदंष्ट्रायुधान् बली ।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ।। २ ।।

बलवान् भरत बाल्यावस्थामें ही नखों और दाढ़ोंसे प्रहार करनेवाले बरफके समान सफेद रंगके सिंहोंको अपने बाहुबलके वेगसे पराजित एवं निर्बल करके उन्हें खींच लाते और बाँध देते थे ।। २ ।।

क्रूरांश्चोग्रतरान् व्याघ्रान् दमित्वा चाकरोद् वशे ।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ।। ३ ।।

वे अत्यन्त भयंकर और क्रूर स्वभाववाले व्याघ्रोंका दमन करके उन्हें अपने वशमें कर लेते थे । मैनसिलके समान पीली और लाक्षाराशिसे संयुक्त लाल रंगकी बड़ी-बड़ी शिलाओंको वे सुगमतापूर्वक हाथसे उठा लेते थे ।। ३ ।।

व्यालादींश्चातिबलवान् सुप्रतीकान् गजानपि ।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्छुष्कास्यानकरोद् वशे ।। ४ ।।

अत्यन्त बलवान् भरत सर्प आदि जन्तुओंको और सुप्रतीक जातिके गजराजोंके भी दाँत पकड़ लेते और उनके मुख सुखाकर उन्हें विमुख करके अपने अधीन कर लेते थे ।।

महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह ।
सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद् बलात् ।। ५ ।।

भरतका बल असीम था । वे बलवान् भैंसों और सौ सौ गर्वीले सिंहोंको भी बलपूर्वक घसीट लाते थे ।। ५ ।।

बलिनः सृमरान् खड्गान् नानासत्त्वानि चाप्युत ।
कृच्छ्रप्राणं वने बद्ध्वादमयित्वाप्यवासृजत् ।। ६ ।।

बलवान् सामरों, गेंड़ों तथा अन्य नाना प्रकारके हिंसक जन्तुओंको वे वनमें बाँध लेते और उनका दमन करते-करते उन्हें अधमरा करके छोड़ते थे ।। ६ ।।

तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य कर्मणा ।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि ।। ७ ।।

उनके इस कर्मसे ब्राह्मणोंने उनका नाम सर्वदमन रख दिया । माता शकुन्तलाने भरतको मना किया कि तू जंगली जीवोंको सताया न कर ।। ७ ।।

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान् ।
त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ।। ८ ।।
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।। ९ ।।

पराक्रमी महाराज भरत जब बड़े हुए, तब उन्होंने यमुनाके तटपर सौ, सरस्वतीके तटपर तीन सौ और गङ्गाजीके किनारे चार सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके पुनः उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय महायज्ञोंद्वारा यजन किया ।। ८-९ ।।

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि ।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ।। १० ।।
इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान्धनैः ।
सहस्रं यत्र पद्मानां काण्वाय भरतो ददौ ।। ११ ।।
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ।

इसके बाद भरतने अग्निष्टोम और अतिरात्र याग करके विश्वजित् नामक यज्ञ किया । तत्पश्चात् सर्वथा सुरक्षित दस लाख वाजपेय यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करके महायशस्वी शकुन्तलाकुमार राजा भरतने धनद्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करते हुए आचार्य कण्वको विशुद्ध जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल भेंट किये ।। १०-११ ।।

यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ।। १२ ।।
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः ।

इन्द्र आदि देवताओंने वहाँ ब्राह्मणोंके साथ मिलकर राजा भरतके यज्ञमें सोनेके बने हुए सौ व्याम (चार सौ हाथ) लम्बे सुवर्णमय यूपका आरोपण किया ।। १२ ।।

अलंकृतान् राजमानान् सर्वरत्नैर्मनोहरैः ।। १३ ।।
हैरण्यानश्वान् द्विरदान् रथानुष्ट्रानजाविकम् ।
दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ।। १४ ।।
ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान् ।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।। १५ ।।
चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिरजितः परैः ।

शत्रुविजयी, दूसरोंसे पराजित न होनेवाले अदीनचित्त चक्रवर्ती सम्राट् भरतने ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण मनोहर रत्नोंसे विभूषित, कान्तिमान् एवं सुवर्ण-शोभित घोड़े, हाथी, रथ, ऊट, बकरी, भेड़, दास, दासी, धन-धान्य, दूध देने वाली सवत्सा गायें, गाँव, घर, खेत तथा वस्त्राभूषण आदि नाना प्रकारकी सामग्री एवं दस लाख कोटि स्वर्णमुद्राएँ दी थीं ।। १३-१५ ।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।। १६ ।।

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। १७ ।।

श्वैत्य सृञ्जय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मृत्युसे बच न सके, तब दूसरे कैसे बच सकते हैं ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ।। १६-१७ ।।

षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।। ६८ ।।

षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अड़सठवाँ अध्याय ।। ६८ ।।

राजा पृथुका चरित्र

नारद उवाच

पृथुं वैन्यं राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यमभ्यषिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं -- सृञ्जय ! वेनके पुत्र राजा पृथु भी जीवित नहीं रह सके; यह हमने सुना है । महर्षियोंने राजसूय यज्ञमें उन्हें सम्राट्के पदपर अभिषिक्त किया था ।। १ ।।

यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः ।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ।। २ ।।

'ये समस्त शत्रुओंको पराजित करके अपने प्रयत्नसे प्रथित (विख्यात) होंगे'--ऐसा महर्षियोंने कहा था । इसलिये वे 'पृथु' कहलाये । ऋषियोंने यह भी कहा कि ये क्षतसे हमारा त्राण करेंगे', इसलिये वे 'क्षत्रिय' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध हुए ।। २ ।।

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥

वेनकुमार पृथुको देखकर प्रजाने कहा, हम इनमें अनुरक्त हैं। इसलिये उस प्रजारञ्जनजनित अनुरागके कारण उनका नाम 'राजा' हुआ ॥ ३ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद् वैन्यस्य कामधुक् ।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधुः ॥ ४ ॥

वेननन्दन पृथुके लिये यह पृथ्वी कामधेनु हो गयी थी। उनके राज्यमें बिना जोते ही पृथ्वीसे अनाज पैदा होता था। उस समय सभी गौएँ कामधेनुके समान थी। पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था ॥ ४ ॥

आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥

कुश सुवर्णमय होते थे। उनका स्पर्श कोमल था और वे सुखद जान पड़ते थे। उन्हींके चीर बनाकर प्रजा उनसे अपना शरीर ढकती थी तथा उन कुशोंकी ही चटाइयोंपर सोती थी ॥ ५ ॥

फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
तेषामासीत् तदाहारो निराहाराश्च नाभवन् ॥ ६ ॥

वृक्षोंके फल अमृतके समान मधुर और स्वादिष्ट होते थे। उन दिनों उन फलोंका ही आहार किया जाता था। कोई भी भूखा नहीं रहता था ॥ ६ ।

अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥

सभी मनुष्य नीरोग थे। सबकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और उन्हें कहींसे भी कोई भय नहीं था। वे अपनी इच्छाके अनुसार वृक्षोंके नीचे और पर्वतोंकी गुफाओंमें निवास करते थे ॥ ७ ॥

प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत् तदा ।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥

उस समय राष्ट्रों और नगरोंका विभाग नहीं था। सबको इच्छानुसार सुख और भोग प्राप्त थे। इससे यह सारी प्रजा प्रसन्न थी ॥ ८ ॥

तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ९ ॥

राजा पृथु जब समुद्रमें यात्रा करते थे, तब पानी थम जाता था और पर्वत उन्हें जानेके लिये, मार्ग दे देते थे । उनके रथकी ध्वजा कभी खण्डित नहीं हुई थी ॥ ९ ॥

तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् ।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः ॥ ११ ॥
देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान् ।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ।

एक दिन सुखपूर्वक बैठे हुए राजा पृथुके पास वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सप्तर्षि, पुण्यजन (यक्ष), गन्धर्व, अप्सरा तथा पितरोंने आकर इस प्रकार कहा—'महाराज ! तुम हमारे सम्राट हो, क्षत्रिय हो तथा राजा, रक्षक और पिता हो । तुम हमें अभीष्ट वर दो, जिससे हमलोग अनन्त कालतक तृप्ति और सुखका अनुभव करें । तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो' ॥ १०-१२ ॥

तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः ।
शरांश्चाप्रतिमान् घोरांश्चिन्तयित्वाब्रवीन्महीम् ॥ १३ ॥

'बहुत अच्छा' ऐसा ही होगा, यह कहकर वेनकुमार पृथुने अपना आजगव नामक धनुष और जिनकी कहीं तुलना नहीं थी, ऐसे भयंकर बाण हाथमें ले लिये और कुछ सोचकर पृथ्वीसे कहा—॥ १३ ॥

एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः काङ्क्षितं पयः ।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥ १४ ॥

'वसुधे ! तुम्हारा कल्याण हो । आओ-आओ, इन प्रजाजनोंके लिये शीघ्र ही मनोवाञ्छित दूधकी धारा बहाओ । तब मैं जिसका जैसा अभीष्ट अन्न है, उसे वैसा दे सकूंगा' ॥ १४ ॥

वसुधोवाच

दुहितृत्वेन मां वीर संकल्पयितुमर्हसि ।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद् वशी ॥ १५ ॥

वसुधा बोली—वीर ! तुम मुझे अपनी पुत्री मान लो, तब जितेन्द्रिय राजा पृथुने 'तथास्तु' कहकर वहाँ सारी आवश्यक व्यवस्था की ।। १५ ।।

ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा ।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुदुधुक्षवः ।। १६ ।।

तदनन्तर प्राणियोंके समुदायने उस समय वसुधाको दुहना आरम्भ किया। सबसे पहले दूधकी इच्छावाले वनस्पति उठे ।। १६ ।।

सातिष्ठद् वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती ।
वत्सोऽभूत् पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाभवत् तदा ।। १७ ।।
छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् ।

उस समय गोरूपधारिणी पृथ्वी वात्सल्य-स्नेहसे परिपूर्ण हो बछड़े, दुहनेवाले और दुग्धपात्रकी इच्छा करती हुई खड़ी हो गयी। वनस्पतियोंमेंसे खिला हुआ शालवृक्ष बछड़ा हो गया। पाकरका पेड़ दुहनेवाला बन गया। गूलर सुन्दर दुग्धपात्रका काम देने लगा। कटनेपर पुनः पनप जाना यही दूध था ।। १७ ।।

उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः ।। १८ ।।
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा ।

पर्वतोंमें उदयाचल बछड़ा, महागिरि मेरु दुहनेवाला, रत्न और ओषधि दूध तथा प्रस्तर ही दुग्धपात्र था ।। १८ ।।

दोग्धा चासीत् तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ।। १९ ।।

देवताओंमें भी उस समय कोई दुहनेवाला और कोई बछड़ा बन गया। उन्होंने पुष्टिकारक अमृतमय प्रिय दूध दुह लिया ।। १९ ।।

असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा ।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीद् वत्सश्चासीद् विरोचनः ।। २० ।।

असुरोंने कच्चे बर्तनमें मायामय दूधका ही दोहन किया। उस समय द्विमूर्धा दुहनेवाला और विरोचन बछड़ा बना था ।। २० ।।

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले ।
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाभवत् पृथुः ।। २१ ।।

भूतलके मनुष्योंने कृषिकर्म और खेतीकी उपजको ही दूधके रूपमें दुहा।

उनके बछड़ेके स्थानपर स्वायम्भू मनु थे और दुहनेका कार्य पृथुने किया ।। २१ ।।

अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुंधरा ।
धृतराष्ट्रोऽभवद् दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ।। २२ ।।

सर्पोंने तुम्बीके बर्तनमें पृथ्वीसे विषका दोहन किया । उनकी ओरसे दुहनेवाला धृतराष्ट्र और बछड़ा तक्षक था ।। २२ ।।

सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्लिष्टकर्मभिः ।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ।। २३ ।।

अक्लिष्टकर्मा सप्तर्षियोंने ब्रह्म (वेद एवं तप) का दोहन किया । उनके दोग्धा बृहस्पति, पात्र छन्द और बछड़ा राजा सोम थे ।। २३ ।।

अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् ।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चासीद् वृषध्वजः ।। २४ ।।

यक्षोंने कच्चे बर्तनमें पृथ्वीसे अन्तर्धान विद्याका दोहन किया । उनके दोग्धा कुबेर और बछड़ा महादेवजी थे ।। २४ ।।

पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन् ।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ।। २५ ।।

गन्धर्वों और अप्सराओंने कमलके पात्रमें पवित्र गन्धको ही दूधके रूपमें दुहा । उनका बछड़ा चित्ररथ और दुहनेवाले गन्धर्वराज विश्वरुचि थे ।। २५।।

स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम् ।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धान्तकस्तदा ।। २६ ।।

पितरोंने पृथ्वीसे चाँदीके पात्रमें स्वधारूपी दूधका दोहन किया । उस समय उनकी ओरसे वैवस्वत यम बछड़ा और अन्तक दुहनेवाले थे ।। २६ ।।

एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट् ।
यैर्वर्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ।। २७ ।।

सृञ्जय ! इस प्रकार सभी प्राणियोंने बछड़ों और पात्रोंकी कल्पना करके पृथ्वीसे अपना अभीष्ट दूधका दोहन किया था, जिससे वे आजतक निरन्तर जीवन-निर्वाह करते हैं ।। २७ ।।

यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
संतर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ।। २८ ।।

तदनन्तर प्रतापी वेनकुमार पृथुने नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन करके मनको प्रिय लगनेवाले सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति कराकर सब प्राणियोंको तृप्त किया ।। २८ ।।

हैरण्यानकरोद् राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि ।
तान् ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे ।। २९ ।।

भूतलपर जो कोई भी पार्थिव पदार्थ हैं, उनकी सोनेकी आकृति बनवाकर राजा पृथुने महायज्ञ अश्वमेधमें उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया ।। २९ ।।

षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद् राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ ।। ३० ।।

राजाने छाछठ हजार सोनेके हाथी बनवाये और उन्हें ब्राह्मणोंको दे दिया ।। ३० ।।

इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद् राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ।। ३१ ।।

राजा पृथुने इस सारी पृथ्वीकी भी मणि तथा रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमयी प्रतिमा बनवायी और उसे ब्राह्मणोंको दे दिया ।। ३१ ।।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।। ३२ ।।

श्वैत्य सृञ्जय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या गिनती है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ।। ३२ ।।

षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।। ६९ ।।
षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय ।।

परशुराम का चरित्र

नारद उवाच

रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।

जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृञ्जय ! महातपस्वी शूरवीर, वीर जनवन्दित महायशस्वी जमदग्निनन्दन परशुरामजी भी अतृप्त अवस्थामें ही मौतके मुखमें चले जायेंगे ॥ १ ॥

यः स्माद्यमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चासीद् विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥

जिन्होंने इस पृथ्वीको सुखमय बनाते हुए आदियुगके धर्मका जहाँ निरन्तर प्रचार किया था तथा परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर भी जिनके मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं आया ॥ २ ॥

यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् ।
ततोऽवधीत् कार्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥

जब क्षत्रियोंने गायके बछड़ेको पकड़ लिया और पिता जमदग्निको मार डाला, तब जिन्होंने मौन रहकर ही समरभूमिमें दूसरोंसे कभी पराजित न होनेवाले कृतवीर्यकुमार अर्जुनका वध किया था ॥ ३ ॥

क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाजयत् ॥ ४ ॥

उस समय मरने-मारनेका निश्चय करके एकत्र हुए चौसठ करोड़ क्षत्रियोंको उन्होंने एकमात्र धनुषके द्वारा जीत लिया ॥ ४ ॥

ब्रह्मद्विषां चाथ तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यानि जग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥ ५ ॥

उसी युद्धके सिलसिलेमें परशुरामजीने चौदह हजार दूसरे ब्रह्मद्रोहियोंका दमन किया और दन्तक्रूर नामक राजाको भी मार डाला ॥ ५ ॥

सहस्रं मुसलेनाहन् सहस्रमसिनावधीत् ।
उद्बन्धनात् सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥

उन्होंने एक सहस्र क्षत्रियोंको मूसलसे मार गिराया, एक सहस्र राजपूतोंको तलवारसे काट डाला, फिर एक सहस्र क्षत्रियोंको वृक्षोंकी शाखाओंमें फाँसीपर लटकाकर मार डाला और पुनः एक सहस्रको पानीमें डुबो दिया ॥ ६ ॥

दन्तान् भङ्क्त्वा सहस्रस्य कर्णान् नासान्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥

एक सहस्र राजपूतोंके दाँत तोड़कर नाक और कान काट डाले तथा सात हजार राजाओं को कड़ुवा धूप पिला दिया ॥ ७ ॥

शिष्टान् बध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च ।
गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद् दक्षिणेन च ।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ॥ ८ ॥
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥

शेष क्षत्रियोंको बाँधकर उनका वध कर डाला । उनमेंसे कितनोंके ही मस्तक विदीर्ण कर डाले । गुणावतीसे उत्तर और खाण्डव वनसे दक्षिण पर्वत के निकटवर्ती प्रदेशमें लाखों हैहयवंशी क्षत्रिय वीर पिताके वधसे कुपित हुए बुद्धिमान् परशुरामजीके द्वारा समरभूमिमें मारे गये । वे अपने रथ, घोड़े और हाथियोंसहित मारे जाकर वहाँ धराशायी हो गए ॥

निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः परशुना तदा ।
न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥ १० ॥
भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमाः ।

परशुरामजीने उस समय अपने फरसेसे दस हजार क्षत्रियोंको काट डाला । आश्रमवासियोंने आर्तभावसे जो बातें कही थीं, वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने 'भृगुवंशी परशुराम ! दौड़ो, बचाओ, इस प्रकार कहकर जो क्रन्दन किया था, उनकी वह कातर पुकार परशुरामजीसे नहीं सही गयी ॥ १० ॥

ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् ।
रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्तिकावतान् ॥ १२ ॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यान् देशान् देशान् सहस्रशः ।
निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

तदन्तर प्रतापी परशुरामने काश्मीर, दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अंग, वंग, कलिंग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिबि तथा अन्य सहस्रों देशोंके क्षत्रियोंका अपने तीखे बाणोंद्वारा संहार किया ॥ १३ ॥

कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।

सहस्रों और लाखों कोटि क्षत्रियोंके इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीट तथा बन्धुजीव (दुपहरिया) पुष्पके समान रंगवाले रक्तकी धाराओंसे भृगु-नन्दन परशुरामने कितने ही तालाब भर दिये और समस्त अठारह द्वीपोंको अपने वशमें करके उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १४-१५ ॥

वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७ ॥
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।

उस यज्ञमें विधिपूर्वक बत्तीस हाथ ऊँची सोनेकी वेदी बनायी गई थी, जो सब प्रकारके सैकड़ो रत्नोंसे परिपूर्ण और सौ पताकाओंसे सुशोभित थी । जमदग्निनन्दन परशुरामकी उस वेदीको तथा ग्रामीण और जंगली पशुओंसे भरी पूरी इस पृथ्वीको भी महर्षि कश्यपने दक्षिणारूपसे ग्रहण किया । ॥ १६-१७ ॥

ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान् हेमभूषणान् ॥ १८ ॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९ ॥

उस समय परशुरामजीने लाखों गजराजोंको सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करके तथा पृथ्वीको चोर-डाकूओंसे सूनी और साधु पुरुषोंसे भरी पूरी करके महायज्ञ अश्वमेधमें कश्यपजीको दे दिया ॥ १८-१९ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २० ॥

वीर एवं शक्तिशाली परशुरामजीने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य करके सैकड़ों यज्ञोंद्वारा यजन किया और और इस वसुधाको ब्राह्मणोंके अधिकारमें दे दिया ॥ २० ॥

सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः ।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया ।। २१ ।।

ब्रह्मर्षि कश्यपने जब सातों द्वपोंसे युक्त यह पृथ्वी दानमें ले ली, तब उन्होंने परशुरामजीसे कहा—'अब तू मेरी आज्ञासे इस पृथ्वीसे निकल जाओ' (और कहीं अन्यत्र जाकर रहो) ।। २१ ।।

स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिम् ।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् ।। २२ ।।
अध्यावसद् गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।

कश्यपके इस आदेशसे योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुरामने जितनी दूर बाण फेंका जा सकता है, समुद्रको उतनी ही दूर पीछे हटाकर ब्राह्मणकी आज्ञाका पालन करते हुए उत्तम पर्वत गिरिश्रेष्ठ महेन्द्रपर निवास किया ।। २२ ।।

एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ।। २३ ।।
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।

इस प्रकार भृगुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले महायशस्वी, महातेजस्वी और सैकड़ों गुणोंसे सम्पन्न जमदग्निनन्दन परशुराम भी एक-न-एक दिन मरेंगे ही ।। २३ ।।

त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव ।। २४ ।।
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

सृंजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा हैं । अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो ।। २४ ।।

एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरधरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ।। २५ ।।

नरश्रेष्ठ सृंजय ! अब तक जिन लोगोंका वर्णन किया गया है, चतुर्विध कल्याणकारी गुणोंमें तो तुमसे बढ़कर थे ही, तुम्हारी अपेक्षा उनके सैकड़ों मङ्गलकारी गुण अधिक भी थे, तथापि वे मर गये और जो विद्यमान हैं, वे भी मरेंगे ही ।। २५ ।।

षोडराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ।
षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तरवाँ अध्याय ।। ७० ।।

नारदजीका सृंजयके पुत्रको जीवित करना

व्यास उवाच

पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम् ।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः ।। १ ।।

व्यासजी कहते है—राजन् ! इन सोलह राजाओंका पवित्र एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला उपाख्यान सुनकर राजा सृंजय कुछ भी नहीं बोलते हुए मौन रह गये ।। १ ।।

तमब्रवीत् तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ।। २ ।।

उन्हें इस प्रकार चुपचाप बैठे देख भगवान् नारदमुनिने उनसे पूछा—महातेजस्वी नरेश ! मैंने जो कुछ कहा है, उसे तुमने सुना और समझा है न ? ।। २ ।।

आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ।। ३ ।।

'अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि जैसे शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको दिया हुआ श्राद्धका दान नष्ट (निष्फल) हो जाता है, उसी प्रकार मेरा यह सारा कहना अन्ततोगत्वा व्यर्थ हो गया हो ।' उनके इस प्रकार पूछने पर उस समय सृंजयने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—।। ३ ।।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम ।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ।।
विस्मयेन हृते शोके तमसीवार्कतेजसा ।
विपाप्मास्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ।। ५ ।।

'महाबाहु महर्षे ! यज्ञ करने और दक्षिणा देनेवाले प्राचीन राजर्षियोंका यह परम उत्तम सराहनीय उपाख्यान सुनकर मुझे ऐसा विस्मय हुआ है कि उसने मेरा सारा शोक हर लिया है । ठीक उसी तरह, जैसे सूर्यका तेज सारा अन्धकार हर लेता है । अब मैं पाप (दुःख) और व्यथासे शून्य हो गया हूं। बताइये, आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ' ।। ४-५ ।।

नारद उवाच

दिष्ट्यापहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि ।
तत् तत् प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ।।

नारदजीने कहा—राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा शोक दूर हो गया । अब तुम्हारी जो इच्छा हो, यहाँ मुझसे माँग लो । तुम्हारी वह सारी अभिलषित वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायेगी । हम लोग झूठ नहीं बोलते हैं ।। ६ ।।

सृंजय उवाच

एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान् मम ।
प्रसन्नो यस्य भगवान् न तस्यास्तीह दुर्लभम् ।। ७ ।।

सृंजयने कहा—मुने ! आप मुझपर प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ । जिसपर आप प्रसन्न हों, उसे इस जगत्में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।। ७ ।।

नारद उवाच

मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा ।
उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा ।। ८ ।।

नारदजीने कहा—राजन् ! लुटेरोंने तुम्हारे पुत्रको प्रोक्षित पशुकी भाँति व्यर्थ ही मार डाला है । तुम्हारे उस मरे हुए पुत्रोंको मैं कष्टप्रद नरकसे निकालकर तुम्हें पुनः वापस दे रहा हूँ ।। ८ ।।

व्यास उवाच

प्रादुरासीत् ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः ।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ।। ९ ।।

व्यासजी कहते है—युधिष्ठिर ! नारदजीके इतना कहते ही सृंजय का अद्भुत कान्तिमान् पुत्र वहाँ प्रकट हो गया । उसे ऋषिने प्रसन्न होकर राजाको दिया था । वह देखनेमें कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था ।।९।।

ततः संगम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तधरदक्षिणैः ।। १० ।।

अपने उस पुत्रसे मिलकर राजा सृंजयको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पुण्यमय यज्ञोंद्वारा यजन किया ।। १० ।।

२

मातलिका उपाख्यान

वैशम्पायन उवाच

जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते है—जनमेजय ! जमदग्निनन्दन परशुरामका यह वचन सुनकर भगवान् कण्व मुनिने भी कौरवसभामें दुर्योधनसे यह बात कही ॥ १ ॥

कण्व उवाच

अक्षयश्चाव्ययश्चैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी ॥ २ ॥

कण्व बोले राजन् । जैसे लोकपितामह ब्रह्मा अक्षय और अविनाशी हैं, उसी प्रकार वे दोनों भगवान् नर-नारायण ऋषि भी हैं ॥ २ ॥

आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः ।
अजय्यश्चाव्ययश्चैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥

अदितिके सभी पुत्रोंमें अथवा सम्पूर्ण आदित्योंमें एकमात्र भगवान् विष्णु ही अजेय, अविनाशी, नित्य विद्यमान एवं सर्वसमर्थ सनातन परमेश्वर हैं ॥ ३ ॥

निमित्तमरणश्चान्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम् ।
वायुरग्निस्तथाऽऽकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा ॥ ४ ॥

अन्य सब लोग तो किसी-न-किसी निमित्तसे मृत्युको प्राप्त होते ही हैं। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह तथा नक्षत्र—ये सभी नाशवान् है ।। ४ ।।

ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा ।
क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः ।। ५ ।।

जगत्का विनाश होनेके पश्चात् ये चन्द्र, सूर्य आदि तीनों लोकोंका सदा के लिये परित्याग करके नष्ट हो जो जाते हैं। फिर सृष्टिकालमें इन सबकी बारंबार सृष्टि होती है ।। ५ ।।

मुहूर्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः ।
तैर्यग्योन्याश्च ये चान्ये जीवलोकचरास्तथा ।। ६ ।।

इनके सिवा ये दूसरे जो मनुष्य, पशु, पक्षी तथा जीवलोकमें विचरने वाले अन्यान्य तिर्यग्योनिके प्राणी हैं, वे अल्पकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं ।।

भूयिष्ठेन तु राजनः श्रियं भुक्त्वाऽऽयुषः क्षये ।
तरुणाः प्रतिपद्यन्ते भोक्तुं सुकृतदुष्कृते ।। ७ ।।

राजालोग भी प्रायः राजलक्ष्मीका उपभोग करके आयुकी समाप्ति होने पर मृत्यु होनेके पश्चात अपने पाप-पुण्यका फल भोगनेके लिये पुनः नूतन जन्म ग्रहण करते हैं ।। ७ ।।

स भवान् धर्मपुत्रेण शमं कर्तुमिहार्हति ।
पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुंधराम् ।। ८ ।।

राजन् ! आपको धर्मपुत्र युधिष्ठिरके साथ संधि कर लेनी चाहिये। मैं चाहता हूँ कि पाण्डव तथा कौरव दोनों मिलकर इस पृथ्वीका पालन करें ।। ८ ।।

बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन ।
बलवन्तो बलिभ्यो हि दृश्यन्ते पुरुषर्षभ ।। ९ ।।

पुरुषरत्न सुयोधन ! तुम्हें यह नहीं मानना चाहिये कि मैं ही सबसे अधिक बलवान् हूँ; क्योंकि संसारमें बलवानोंसे भी बलवान् पुरुष देखे जाते हैं ।। ९ ।।

न बलं बलिनां मध्ये भवति कौरव ।
बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमा: ।। १० ।।

कुरुनन्दन ! बलवानोंके बीचमें सैनिकबलको बल नहीं समझा जाता है । समस्त पाण्डव देवताओंके समान पराक्रमी हैं, अतः वे ही तुम्हारी अपेक्षा बलवान् हैं ।। १० ।।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मातुलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम् ।। ११ ।।

इस प्रसंगमें कन्यादान करनेके लिए वर ढूंढ़नेवाले मातलिके इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ।। ११ ।।

मतस्त्रैलोक्यराजस्य मातलिर्नाम सारथि: ।
तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता ।। १२ ।।

त्रिलोकीनाथ इन्द्रके प्रिय सारथिका मातलि है । उनके कुलमें उन्हींकी कन्या थी; जो अपने रूपके कारण सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात थी ।। १२ ।।

गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सादेवरूपिणी ।
श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्या: सातिरिच्यते ।। १३ ।।

वह देवरूपिणी कन्या गुणकेशीके नामसे प्रसिद्ध थी । गुणकेशी अपनी शोभा तथा सुन्दर शरीरकी दृष्टिसे उस समयकी सम्पूर्ण स्त्रियोंसे श्रेष्ठ थी ।। १३ ।।

तस्या: प्रदानसमयं मातलि: सह भार्यया ।
ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्पर: परिचिन्तयन् ।। १४ ।।

राजन् । उसके विवाहका समय आया जान मातलिने एकाग्रचित हो उसीके विषयमें चिन्तन करते हुए अपनी पत्नीके साथ विचार-विमर्श किया ।। १४ ।।

धिक् खल्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम् ।
नराणां मृदुसत्त्वानां कुले कन्याप्ररोहणम् ।। १५ ।।

‘जिनका शीलस्वभाव श्रेष्ठ है, जो ऊँचे कुलमें उत्पन्न हुए यशस्वी तथा कोमल अःतकरणवाले हैं; ऐसे लोगके कुलमें कन्याका उत्पन्न होना दुःखकी ही बात है ।। १५ ।।

मातु: कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।
कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्याका सताम् ।। १६ ।।

'कन्या मातृकुलको, पितृकुलको तथा जहाँ वह ब्याही जाती है, उस कुलको-सत्पुरुषोंके इन तीनों कुलको संशयमें डाल देती है ।। १६ ।।

देवमानुषलोकौ द्वौ मानुषेणैव चक्षुषा ।
अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः ।।

'मैंने मानवदृष्टिके अनुसार देवलोक तथा मनुष्यलोक दोनोंमें अच्छी तरह घूम-फिरकर कन्याके लिये वरका अन्वेषण किया है, पर वहाँ कोई भी वर मुझे पसंद नहीं आ रहा है' ।। १७ ।।

कण्व उवाच

न देवान् नैव दितिजान् न गन्धर्वान् न मानुषान् ।
अरोचयद् वरकृते तथैव बहुलानृषीन् ।। १८ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—मातलिने वरके लिये बहुत-से देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्यों तथा ऋषियोंको भी देखा; परंतु कोई उन्हें पसंद नहीं आया ।। १८ ।।

भार्ययानु स सम्मन्त्र्य सह रात्रौ सुधर्मया ।
मातलिर्नागलोकाय चकार गमने मतिम् ।। १९ ।।

तब उन्होंने रातमें अपनी पत्नी सुधर्माके साथ सलाह करके नागलोकमें जानेका विचार किया ।। १९ ।।

न मे देवमनुष्येषु गुणकेश्याः समो वरः ।
रूपतो दृश्यते कश्चिन्नागेषु भविता ध्रुवम् ।। २० ।।

वे अपनी पत्नीसे बोले—'देवि ! देवताओं और मनुष्योंमें तो गुणकेशीके योग्य कोई रूपवान् वर नहीं दिखायी देता । नागलोकमें कोई-न-कोई उसके योग्य वर अवश्य होगा' ।। २० ।।

इत्यामन्त्र्य सुधर्मां स कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
कन्यां शिरस्युपाघ्राय प्रविवेश महीतलम् ।। २१ ।।

सुधर्मासे ऐसी सलाह करके मातलिने इष्टदेवकी परिक्रमा की और कन्याका मस्तक सूँघकर रसातलमें प्रवेश किया ।। २१ ।।

मातलिवरान्वेषणे सप्तनवतितमोऽध्यायः ।। ९७ ।।

सत्तानवेवाँ अध्याय ।। ९७ ।।

मातलिका नारदके साथ वरुणलोकगमन

कण्व उवाच

मातलिस्तु व्रजन् मार्गे नारदेन महर्षिणा ।
वरुणं गच्छता द्रष्टुं समागच्छद् यदृच्छया ।। १ ।।

कण्व मुनि कहते है—राजन् ! उसी समय महर्षि नारद वरुणदेवतासे मिलनेके लिए उधर जा रहे थे । नागलोकके मार्गमें जाते हुए मातलिकी नारदजीके साथ अकस्मात् भेंट हो गई ।। ११ ।।

नारदोऽथाब्रवीदेनं क्व भवान् गन्तुमुद्यतः ।
स्वेन वा सूत कार्येण शासनाद् वा शतक्रतोः ।। २ ।।

नारदजीने उनसे पूछा—देवसारथे ! तुम कहाँ जानेको उद्यत हुए हो ? तुम्हारी यह यात्रा किसी निजी अपने अथवा देवेन्द्रके आदेशसे हुई है ? ।। २ ।

मातलिर्नारदेनैव सम्पृष्टः पथि गच्छता ।
यथावत् सर्वमाचष्ट स्वकार्यं नारदं प्रति ।। ३ ।।

मार्गमें जाते हुए नारदजीके इस प्रकार पूछनेपर मातलिने उनसे अपना सारा कार्य यथावत्‌रूपसे बताया ।। ३ ।।

तमुवाचाथ स मुनिर्गच्छावः सहिताविति ।
सलिलेशदिदृक्षार्थमहमप्युद्यतो दिवः ।। ४ ।।

तब उन मुनिने मातलिसे कहा—'हम दोनों साथ-साथ चलें । मैं भी जल के स्वामी वरुणदेवका दर्शन करनेकी इच्छासे देवलोकसे आ रहा हूँ ।। ४ ।।

अहं ते सर्वमाख्यास्ये दर्शयन् वसुधातलम् ।
दृष्ट्वा तत्र वरं कंचिद् रोचयिष्याव मातले ।। ५ ।।

मैं तुम्हें पृथ्वीके नीचेके लोकोंको दिखाते हुए वहाँकी सब वस्तुओंका परिचय दूंगा । मातले ! वहाँ हम दोनों किसी योग्य वरको देखकर पसंद करेंगे' ।। ५ ।।

अवगाह्य तु तौ भूमिमुभौ मातलिनारदौ ।
ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपांपतिम् ।। ६ ।।

तदनन्तर मातलि और नारद दोनों महात्मा पृथ्वीके भीतर प्रवेश करके जलके स्वामी लोकपाल वरुणके समीप गये ॥ ६ ॥

तत्र देवर्षिसदृशीं पूजां स प्राप नारदः ।
महेन्द्रसदृशीं चैव मातलिः प्रत्यपद्यत ॥ ७ ॥

नारदजीको वहाँ देवर्षियोंके योग्य और मातलिको देवराज इन्द्रके समान आदर-सत्कार प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥

तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवन्तौ निवेद्य ह ।
वरुणेनाभ्यनुज्ञातौ नागलोकं विचेरतुः ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उन दोनोंने प्रसन्नचित्त होकर वरुणदेवतासे अपना कार्य निवेदन किया और उनकी आज्ञा लेकर वे नागलोकमें विचरने लगे ॥ ८ ॥

नारदः सर्वभूतानामन्तर्भूमिनिवासिनाम् ।
जानंश्चकार व्याख्यानं यन्तुः सर्वमशेषतः ॥ ९ ॥

नारदजी पाताललोकमें निवास करनेवाले सभी प्राणियोंको जानते थे । अतः उन्होंने इन्द्रसारथि मातलिको वहाँकी सब वस्तुओंके विषयमें विस्तार पूर्वक बताना आरम्भ किया ॥ ९ ॥

नारद उवाच

दृष्टस्ते वरुणः सूत पुत्रपौत्रसमावृतः ।
पश्योदकपतेः स्थानं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ १० ॥

नारदजीने कहा सूत ! तुमने पुत्रों और पौत्रोंसे घिरे हुए वरुणदेवता का दर्शन किया है । देखो, यह जलेश्वर वरुण का समृद्धिशाली निवासस्थान है । इसका नाम है, सर्वतोभद्र ॥ १० ॥

एष पुत्रो महाप्रज्ञो वरुणस्येह गोपतेः ।
एष वै शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते ॥ ११ ॥

ये गोपति वरुणके परम बुद्धिमान् पुत्र हैं; जो अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार और पवित्रताके कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ॥ ११ ॥

एषोऽस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः ।
रूपवान् दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः ॥ १२ ॥

वरुणदेवके इन प्रिय पुत्रका नाम पुष्कर है। इनके नेत्र विकसित कमलके समान सुशोभित हैं। ये रूपवान् तथा दर्शनीय है। इसीलिये सोमकी पुत्रीने इनका पतिरूपसे वरण किया है ।। १२ ।।

ज्योत्स्नाकालीति यामामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम् ।
आदित्यस्यश्चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः ।। १३ ।।

सोमकी जो दूसरी पुत्री हैं, वे ज्योत्स्नाकालीके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा रूपमें साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पड़ती हैं। उन्होंने वरुणदेवके ज्येष्ठ पुत्रको अपना श्रेष्ठपति बनाया एवं माना है ।। १३ ।।

भवनं वारुणं पश्य यदेतत् सर्वकाञ्चनम् ।
यत् प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे ।। १४ ।।

महेन्द्रमित्र ! देखो, यह वरुणदेवताका भवन है, जो सब ओरसे सुवर्णका ही बना हुआ है। यहाँ पहुँचकर ही देवगण वास्तवमें देवत्वलाभ करते हैं ।। १४ ।।

एतानि हृतराज्यानां दैतेयानां स्म मातले ।
दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत ।। १५ ।।

मातले ! जिनके राज्य छीन लिये गये हैं, उन दैत्योंके ये देदीप्यमान सम्पूर्ण आयुध दिखायी देते हैं ।। १५ ।।

अक्षयाणि किलैतानि विवर्तन्ते स्म मातले ।
अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह ।। १६ ।।

देवसारथे ! ये सारे अस्त्र-शस्त्र अक्षय हैं और प्रहार करनेपर शत्रुको आहत करके पुनः अपने स्वामीके हाथमें लौट आते हैं। पहले दैत्यलोग अपनी शक्तिके अनुसार इनका प्रयोग करते थे, परंतु अब देवताओंने इन्हें जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया है ।। १६ ।।

अत्र राक्षसजात्यश्च दैत्यजात्यश्च मातले ।
दिव्यप्रहरणाश्चासन् पूर्वदैवतनिर्मिताः ।। १७ ।।

मातले ! इन स्थानोंमें राक्षस और दैत्यजातिके लोग रहते है। यहाँ दैत्योंके बनाये हुए बहुत से दिव्यास्त्र भी हैं ।। १७ ।।

अग्निरेष महार्चिष्माञ्जागर्ति वारुणे ह्रदे ।
वैष्णवं चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता ।। १८ ।।

ये महातेजस्वी अग्निदेव वरुणदेवताके सरोवरमें प्रकाशित होते हैं। इन धूमरहित अग्निदेवने भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रको भी अवरुद्ध कर दिया था ।। १८ ।।

एष गाण्डीमयाश्चापो लोकसंहारसम्भृतः ।
रक्ष्यतेः दैवतैर्नित्यं यतस्तद् गाण्डिवं धनुः ।। १९ ।।

वज्रकी गाँठको 'गाण्डी' कहा गया है। यह धनुष उसी का बना हुआ है, इसलिये गाण्डीव कहलाता है। जगत्का संहार करनेके लिए इसका निर्माण हुआ है। देवतालोग सदा इसकी रक्षा करते हैं ।। १९ ।।

एष कृत्ये समुत्पन्ने तत् तद् धारयते बलम् ।
सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवः ।। २० ।।

यह धनुष आवश्यकता पड़नेपर लाखगुनी शक्तिसे सम्पन्न हो वैसे-वैसे ही बलको भी धारण करता है और सदा अविचल बना रहता है ।। २० ।।

अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु ।
सृष्टः प्रथमतश्चण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ।। २१ ।।

ब्रह्मवादी ब्रह्माजीने पहले इस प्रचण्ड धनुषका निर्माण किया था। यह राक्षससदृश राजाओंमेंसे अदम्य नरेशोंका भी दमन कर डालता है ।। २१ ।।

एतच्छस्त्रं नरेन्द्राणां महच्चक्रेण भासितम् ।
पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम् ।। २२ ।।

यह धनुष राजाओंके लिये एक महान् अस्त्र है और चक्रके समान उद्भासित होता रहता है। इस महान् अभ्युदकारी धनुषको जलेश वरुणके पुत्र धारण करते हैं ।। २२ ।।

एतत् सलिलराजस्यच्छत्रं छत्रगृहे स्थितम् ।
सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति ।। २३ ।।

और यह सलिलराज वरुणका छत्र है, जो छत्रगृहमें रक्खा हुआ है। यह छत्र मेघकी भाँति सब ओरसे शीतलजल बरसाता रहता है ।। २३ ।।

एतच्छत्रात् परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम् ।
तमसा मूर्छितं भाति येन नार्च्छति दर्शनम् ।। २४ ।।

इस छत्रसे गिरा हुआ चन्द्रमाके समान निर्मल जल अन्धकारसे आच्छन्न रहता है, जिससे दृष्टिपथमें नहीं आता है ।। २४ ।।

बहून्यद्भुतरूपाणि द्रष्टव्यानीह मातले ।
तव कार्याविरोधस्तु तस्माद् गच्छाव मा चिरम् ।। २५ ।।

मातले ! इस वरुणलोकमें देखने योग्य बहुत-सी अद्भुत वस्तुएँ हैं; परंतु सबको देखनेसे तुम्हारे कार्यमें रुकावट पड़ेगी, इसलिये हमलोग शीघ्र ही यहाँसे नागलोकमें चलें ।। २५ ।।

मातलिवरान्वेषणे अष्टनवतितमोऽध्यायः ।। ९८ ।।
अट्ठानवेवाँ अध्याय ।। ९८ ।।

नारदजीके द्वारा पाताललोकवर्णन

नारद उवाच

एतत् नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम् ।
पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ।।
इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद् भुवि जङ्गमाः ।
प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ।। २ ।।

नारदजी बोले—मातले ! यह जो नागलोकके नाभिस्थान (मध्यभाग) में स्थित नगर दिखायी देता है, इसे पाताल कहा है । इस नगरमें दैत्य और दानव निवास करते है । यहाँ जो कोई भूतलके जङ्गम प्राणी जलके साथ बहकर आ जाते हैं, वे इस पातालमें पहुँचनेपर भयसे पीड़ित हो बड़े जोरसे चीत्कार करने लगते हैं ।। १-२ ।।

यथासुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः ।
व्यापारेण घृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ।। ३ ।।

वहां जलका ही आहार करनेवाली आसुर अग्नि सदा उद्दीप्त रहती है । उसे यत्नपूर्वक मर्यादामें स्थापित किया गया है । वह अग्नि अपने-आपको देवताओंद्वारा नियन्त्रित समझती है; इसलिये सब ओर फैल नहीं पाती ।। ३ ।।

अत्रामृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः ।
अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रदृश्यते ।। ४ ।।

देवताओंने अपने शत्रुओंका संहार करके अमृत पीकर उनका अवशिष्ट भाग यहीं रख दिया था । इसीलिये अमृतमय सोमकी हानि और वृद्धि देखी जाती है ।। ४ ।।

अत्रादित्यो हयशिराः काले पर्वणि पर्वणि ।
उत्तिष्ठति सुवर्णाख्यो वाग्भिरापूरयञ्जगत् ॥ ५ ॥

यहाँ अदितिनन्दन हयग्रीव विष्णु सुवर्णमय कान्ति धारण करके प्रत्येक पर्वपर देवध्वनिके द्वारा जगत्को वीरपूर्ण करते हुए ऊपरको उठते हैं ॥ ५ ॥

यस्मादलं समस्तास्ताः पतन्ति जलमूर्तयः ।
तस्मात् पातालमित्येव ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥ ६ ॥

जलस्वरूप जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब वहाँ पर्याप्तरूपसे गिरती हैं, इसलिये ('पतन्ति अलम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार पात±अलम्+इन दोनों शब्दोंके योगसे) यह उत्तम नगर 'पाताल' कहलाता है ॥ ६ ॥

ऐरावणोऽस्मात् सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः ।
मेघेष्वामुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ॥ ७ ॥

जगत्का हित करनेवाला और समुद्रसे उत्पन्न होनेवाला वर्षाकालीन वायु यहींसे शीतल जल लेकर मेघोंमें स्थापित करता है, जिसे देवराज इन्द्र भूतलपर बरसाते हैं ॥ ७ ॥

अत्र नानाविधाकारास्तिमयो नैकरूपिणः ।
अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसन्ति जलचारिणः ॥ ८ ॥

नाना प्रकारकी आकृति तथा भाँति भाँतिके रूपवाले जलचारी तिमि (ह्वेल) मत्स्य चन्द्रमाकी किरणोंका पान करते हुए यहाँ जलमें निवास करते हैं ॥ ८ ॥

अत्र सूर्यांशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः ।
मृता हि दिवसे सूत पुनर्जीवन्ति वै निशि ॥ ९ ॥

मातले ! ये पातालनिवासी जीव-जन्तु यहाँ दिनमें सूर्य की किरणोंसे संतप्त हो मृतप्राय अवस्थामें पहुँच जाते हैं; परंतु रात होनेपर अमृतमयी चन्द्ररश्मियोंके सम्पर्कसे पुनः जी उठते हैं ॥ ९ ॥

उदयन् नित्यशश्चात्र चन्द्रमा रश्मिबाहुभिः ।
अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात् संजीवयति देहिनः ॥ १० ॥

वहाँ प्रतिदिन उदय लेनेवाले चन्द्रमा अपनी किरणमयी भुजाओंसे अमृत का स्पर्श कराकर उसके द्वारा यहाँके मरणासन्न जीवोंको जीवन प्रदान करते हैं ॥ १० ॥

अत्र तेऽधर्मनिरता बद्धाः कालेन पीड़िताः ।
दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हृतश्रियः ॥ ११ ॥

इन्द्रने जिनकी सम्पत्ति हर ली है, वे अधर्मपरायण दैत्य कालसे बद्ध एवं पीड़ित होकर इसी स्थानमें निवास करते हैं ॥ ११ ॥

अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः ।
भूतये सर्वभूतानामचरत् तप उत्तमम् ॥ १२ ॥

सर्वभूतमहेश्वर भगवान् भूतनाथने सम्पूर्ण प्राणालियोंके कल्याणके लिये यहाँ उत्तम तपस्या की थी ॥ १२ ॥

अत्र गोव्रतिनो विप्राः स्वाध्यायस्नानकर्शिताः ।
त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥ १३ ॥

वेदपाठसे दुर्बल हुए तथा प्राणोंकी परवा न करके तपस्याद्वारा स्वर्गलोक विजय पानेवाले गोव्रतधारी ब्राह्मण महर्षिगण यहाँ निवास करते हैं ॥ १३ ॥

यत्रतत्रशयो नित्यं येन केनचिदाशितः ।
येन केनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते ॥ १४ ॥

जो जहाँ कहीं भी सो लेता है, जिस किसी फल-मूल आदिसे भोजनका कार्य चला लेता है तथा वल्कल आदि जिस किसी वस्तुसे भी शरीरको ढक लेता है, वही यहाँ 'गोव्रतधारी' कहलाता है ॥ १४ ॥

ऐरावणो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
प्रसूताः सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥ १५ ॥

यहाँ नागराज ऐरावत, वामन, कुमुद और अञ्जन नामक श्रेष्ठ गज सुप्रतीकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १५ ॥

पश्य यद्यत्र ते कश्चिद् रोचते गुणतो वरः ।
वरयिष्यामि तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥ १६ ॥

मातले ! देखो, यदि यहाँ तुम्हें कोई गुणवान् वर पसंद हो तो मैं चलकर यत्नपूर्वक उसका वरण करूँगा ॥ १६ ॥

अण्डमेतज्जले न्यस्तं दीप्यमानमिव श्रिया ।
आ प्रजानां निसर्गाद् वै नोद्भिद्यति न सर्पति ॥ १७ ॥

जलके भीतर यह एक अण्डा रखा हुआ है, जो यहाँ अपनी प्रभासे उद्भासित-सा हो रहा है। जबसे प्रजाजनोंकी सृष्टि आरम्भ हुई है, तबसे लेकर अबतक यह अण्डा न तो फूटता है और न अपने स्थानसे इधर-उधर जाता ही है ॥ १७ ॥

नास्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि वै ।
पितरं मातरं चापि नास्य जानाति कश्चन ॥ १८ ॥

इसकी जाति अथवा स्वभावके विषयमें कभी किसीको कुछ कहते नहीं सुना हैं। इसके पिता और माताको भी कोई नहीं जानता है ॥ १८ ॥

अतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः ।
धक्ष्यते मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १९ ॥

मातले ! कहते हैं प्रलयकालमें इस अण्डेके भीतरसे बड़ी भारी आग प्रकट होगी, जो चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीको भस्म कर डालेगी ॥ १९ ॥

मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याथ भाषितम् ।
न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो व्रज माचिरम् ॥ २० ॥

नारदजीका यह भाषण सुनकर मातलिने कहा—'यहां मुझे कोई भी वर पसंद नहीं आया: अतः शीघ्र ही अन्यत्र कहीं चलिये' ॥ २० ॥

एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥
निन्यानबेवाँ अध्याय ॥ ९९ ॥

हिरण्यपुरका दिग्दर्शन

नारद उवाच

हिरण्यपुरमित्येतत् ख्यातं पुरवरं महत् ।
दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—मातले ! यह हिरण्यपुर नामक श्रेष्ठ एवं विशाल नगर है, जहाँ सैकड़ों मायाओंके साथ विचरने वाले दैत्यों और दानवोंका निवासस्थान है ॥ १ ॥

अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥ २ ॥

असुरोंके विश्वकर्मा मयने अपने मानसिक संकल्पके अनुसार महान् प्रयत्न करके पातााललोकके भीतर इस नगरका निर्माण किया है ।। २ ।।

अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः ।
दानवा निवसन्ति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ।। ३ ।।

यहाँ सहस्रों मायाओंका प्रयोग करनेवाले और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न वे शूरवीर दानव निवास करते हैं, जिन्हें पूर्वकालमें अवध्य होने का वरदान प्राप्त हो चुका है ।। ३ ।।

नैते शक्रेण नान्येन यमेन वरुणेन वा ।
शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ।। ४ ।।

इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा और कोई देवता भी इन्हें वशमें नहीं कर सकता ।। ४ ।।

असुराः कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः .
नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मपादोद्भवाश्च ये ।। ५ ।।

दंष्ट्रिणो भीमवेगाश्च वातवेगपराक्रमाः ।
मायावीर्योपसम्पन्ना निवसन्त्यत्र मातले ।। ६ ।।

मातले ! विष्णुपदपर्वतपर उत्पन्न हुए कालखञ्ज नामक असुर तथा ब्रह्मपदपर्वतपर उत्पन्न हुए बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, भयंकर वेगसे युक्त, प्रगतिशील पवन के समान पराक्रमी एवं मायाबलसे सम्पन्न नैर्ऋत और यातुधान इस नगरमें निवास करते हैं ।। ५-६ ।।

निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः ।
जानासि च यथा शक्रो नैताञ्च्छक्नोति बाधितुम् ।। ७ ।।

यहीं निवातकवच नामक दानव निवास करते हैं, जो युद्धमें उन्मत्त होकर लड़ते हैं । तुम तो जानते ही हो कि इन्द्र भी इन्हें पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं ।। ७ ।।

बहुशो मातले त्वं च तव पुत्रश्च गोमुखः ।
निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः ।। ८ ।।

मातले ! तुम, तुम्हारा पुत्र गोमुख तथा पुत्रसहित शचीपति देवराज इन्द्र अनेक बार इनके सामनेसे मैदान छोड़कर भाग चुके हैं ।। ८ ।।

पश्य वेश्मानि रौक्माणि मातले राजतानि च ।
कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च ॥ ९ ॥

मातले ! देखो, इनके ये सोने और चांदीके भवन कितनी शोभा पा रहे हैं। इनका निर्माण शिल्पशास्त्रीय विधानके अनुसार हुआ है तथा ये सभी महल एक दूसरेसे सटे हुए है ॥ ९ ॥

वैदूर्यमणिचित्राणि प्रवालरुचिराणि च ।
अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानि च ॥ १० ।

इन सबमें वैदूर्यमणि जड़ी हुई है, जिससे इनकी विचित्र शोभा हो रही है। स्थान-स्थानपर मूंगोंसे सुसज्जित होनेके कारण इनका सौन्दर्य अधिक बढ़ गया है। आकके पुष्प और स्फटिकमणिके समान ये उज्ज्वल दिखायी देते हैं तथा उत्तम हीरोंसे जटित होनेके कारण उनकी दीप्ति अधिक बढ़ गयी है ॥ १० ॥

पार्थिवानीव चाभान्ति पद्मरागमयानि च ।
शैलानीव च दृश्यन्ते दारवाणीव चाप्युत ॥ ११ ॥

इनमें कुछ तो मिट्टीके बने हुएसे जान पड़ते हैं, कुछ महारागमणि द्वारा निर्मित प्रतीत होते हैं, कुछ मकान पत्थरोंके और कुछ लकड़ियोंके बने हुए-से दिखायी देते हैं ॥ ११ ॥

अर्करूपाणि चाभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च ।
विचित्राणि प्रांशूनि निबिडानि च ॥ १२ ॥

ये सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे हैं। मणियोंकी झालरोंसे इनकी विचित्र छटा दृष्टिगोचर हो रही है। ये सभी भवन ऊँचे और घने हैं ॥ १२ ॥

नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतो द्रव्यतस्तथा ।
गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च ॥ १३ ॥

हिरण्यपुरके ये भवन कितने सुन्दर हैं और किन किन द्रव्योंसे बने हुए हैं, इसका निरूपण नहीं किया जा सकता। अपने उत्तम गुणोंके कारण इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। लम्बाई-चौड़ाई तथा सर्वगुणसम्पन्नताकी दृष्टिसे ये सभी प्रशंसाके योग्य हैं ॥ १३ ॥

आक्रीडान् पश्य दैत्यानां तथैव शयनान्युत ।
रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानि च ।। १४ ।।

देखो, दैत्योंके उद्यान एवं क्रीडास्थान कितने सुन्दर हैं। इनकी शय्याएँ भी इनके अनुरूप ही हैं। इनके उपयोगमें आनेवाले पात्र और आसन भी रत्नजटित एवं बहुमूल्य हैं ।। १४ ।।

जलदाभांस्तथा शैलांस्तोयप्रस्रवणानि च ।
कामपुष्पफलांश्चापि पादपान् कामचारिणः ।। १५ ।।

यहाँके पर्वत मेघोंकी घटाके समान जान पड़ते हैं वहाँसे जलके झरने गिर रहे हैं। इन वृक्षोंकी ओर दृष्टिपात करो, ये सभी इच्छानुसार फल और फूल देनेवाले तथा कामचारी हैं ।। १५ ।।

मातले कश्चिदत्रापि रुचिरस्ते वरो भवेत् ।
अथवान्यां दिशं भूमेर्गच्छाव यदि मन्यसे ।। १६ ।।

मातले ! यहाँ भी तुम्हें कोई सुन्दर वर प्राप्त हो सकता है। अथवा तुम्हारी राय हो, तो इस भूमिकी किसी दूसरी दिशाकी ओर चलें ।। १६ ।।

मातलिस्त्वब्रवीदेनं भाषमाणं तथाविधम् ।
देवर्षे नैव मे कार्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम् ।। १७ ।।

तब ऐसी बातें करनेवाले नारदजीसे मातलिने कहा—'देवर्षे ! मुझे कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जो देवताओंको अप्रिय लगे ।। १७ ।।

नित्यानुषक्तवैरा हि भ्रातरो देवदानवाः ।
परपक्षेण सम्बन्धं रोचयिष्याम्यहं कथम् ।। १८ ।।

'यद्यपि देवता और दानव परस्पर भाई ही है, तथापि इनमें सदा वैरभाव बना रहता है। ऐसी दशामें मैं शत्रुपक्षके साथ अपनी पुत्रीका सम्बन्ध कैसे पसंद करूँगा ? ।। १८ ।।

अन्यत्र साधु गच्छाव द्रष्टुं नार्हामि दानवान् ।
जानामि तव चात्मानं हिंसात्मकमनं तथा ।। १९ ।।

'इसलिये अच्छा यही होगा कि हमलोग किसी दूसरी जगह चलें। मैं दानवोंसे साक्षात्कार भी नहीं कर सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि आपके मनमें हिंसात्मक कार्य (युद्ध) का अवसर उपस्थित करने की प्रबल इच्छा रहती है' ।। १९ ।।

शततमोऽध्यायः ।। १०० ।।

सौवाँ अध्याय ।। १०० ।।

गरुड़लोक तथा गरुड़की संतानोंका वर्णन

नारद उवाच

अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम् ।
विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—मातले ! यह सर्पभोजी गरुड़वंशी पक्षियोंका लोक है, जिन्हें पराक्रम प्रकट करने, दूरतक उड़ने और महान् भार दोनोंमें तनिक भी परिश्रम नहीं होता ।। १ ।।

वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् ।
सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ।। २ ।।

सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले ।
वर्धितानि प्रसूत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ।। ३ ।।

पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च ।
कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्धनैः ।। ४ ।।

देवसारथि मातले ! यहां विनतानन्दन गरुड़के छः पुत्रोंने अपनी वश-परम्पराका विस्तार किया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं सुमुख, सुनामा, सुनेव, सुवर्चा, सुरुच तथा पक्षिराज सुबल । विनताके वंशकी वृद्धि करने वाले, कश्यपकुलमें उत्पन्न हुए तथा ऐश्वर्यका विस्तार करनेवाले इन छहों पक्षियोंने गरुड़जातिकी सैकड़ों और सहस्रों शाखाओंका विस्तार किया है ।। २—४ ।।

सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः ।
सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ।। ५ ।।

ये सभी श्रीसम्पन्न तथा श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित हैं । सभी धनसम्पत्ति की कामना रखते हुए अपने भीतर अनन्त बल धारण करते हैं ।। ५ ।।

कर्मणा क्षत्रियाश्चैते निर्घृणा भोगिभोजिनः ।
ज्ञातिसंक्षयकर्तृत्वाद् ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ।। ६ ।।

ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर भी ये कर्मसे क्षत्रिय हैं। इनमें दया नहीं होतीहै। ये सर्पोंको ही अपना आहार बनाते हैं। इस प्रकार अपने भाई-बन्धुओं (नागों) का संहार करनेके कारण इन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं है ॥ ६ ॥

नामानि चैषां वक्ष्यामि यथा प्राधान्यतः शृणु ।
मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥ ७ ॥

मातले ! अब मैं इनके कुल प्रधान व्यक्तियोंके नाम बताऊँगा, तुम श्रवण करो। इनका कुल भगवान् विष्णुका पार्षद् होनेके कारण प्रशंसनीय है ॥ ७ ॥

दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम् ।
हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव सदा गतिः ॥ ८ ॥

भगवान् विष्णु ही इनके देवता हैं। वे ही इनके परम आश्रय हैं। भगवान् विष्णु इनके हृदयमें सदा विराजते हैं और वे विष्णु ही सदा इनकी गति हैं ॥ ८ ॥

सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः ।
अनिलश्चानलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥ ९ ॥

पङ्कजिद् वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथं वामनः ।
वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषोऽनिमिषस्तथा ॥ १० ॥

त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकिर्द्वीपकस्तथा ।
दैत्यद्वीपः सरिद्द्वीपः सारसः पद्मकेतनः ॥ ११ ॥

सुमुखश्चित्रकेतुश्च चित्रबर्हस्तथानघः ।
मेषहृत् कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सहभोजनः ॥ १२ ॥

गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः ।
विष्णुधर्मा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ॥ १३ ॥

सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च ।
मालयो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥ १४ ॥

एते प्रदेशामात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः ।
प्राधान्यतस्ते यशसा कीर्तिताः प्राणिनश्च ये ॥ १५ ॥

सुवर्णचूड, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डली, पङ्कजित्, वज्रविष्कम्भ, वैनतेय. वामन वातवेग, दिशाचक्षु, निमेष, अनिमिष, त्रिराव, सप्तराव बाल्मीकि, दीपक, दैत्यद्वीप, सरिद्द्वीप, सारस, पद्मकेतनसुमुख, चित्रकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेषहृत्, कुमुद दक्षसर्पान्त, सहभोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक विष्णुधर्मा, कुमार, परिबर्ह, हरि, सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मालय, मातरिश्वा, निशाकर तथा दिवाकर। इस प्रकार संक्षेपसे मैंने इन मुख्य-मुख्य गरुड़-संतानोंका वर्णन किया है। ये सभी यशस्वी तथा महाबली बताये गये हैं ।। ९—१५ ।।

यद्यत्र न रुचिः कचिदेहि गच्छाव मातले ।
तं नयिष्यामि देशं त्वां वरं यत्रोपलप्स्यसे ।। १६ ।।

मातले ! यदि इनमें तुम्हारी कोई रुचि न हो तो आओ, अन्यत्र चलें। अब मैं तुम्हें उस स्थानपर ले जाऊंगा, जहाँ तुम्हें कोई-न-कोई वर अवश्य मिल जायगा। १६ ।।

एकाधिकशततमोऽध्यायः ।। १०१ ।।
एक सौ एकवाँ अध्याय ।। १०१ ।।

सुरभि और उसकी संतानोंके साथ रसातलके सुखका वर्णन

नारद उवाच

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् ।
यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसम्भवा ।। १ ।।

नारदजी बोले—मातले ! यह पृथ्वीका सातवाँ तल है, जिसका नाम रसातल हैं। यहाँ अमृतसे उत्पन्न हुई गोमाता सुरभी निवास करती हैं ।। १ ।।

क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसम्भवम् ।
षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम् ।। २ ।।

ये सुरभि पृथ्वीके सारतत्त्वसे प्रकट, छः रसोंके सार भागसे संयुक्त एवं सर्वोत्तम, अनिर्वचनीय एकरसरूप क्षीरको सदा अपने स्तनोंसे प्रवाहित करती रहती हैं ।। २ ।।

अमृतेनाभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा ।
पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता ।। ३ ।।

पूर्वकालमें जब ब्रह्मा अमृतपान करके तृप्त हो उसका सारभाग अपने मुखसे निकाल रहे थे, उसी समय उनके मुखसे अनिन्दता सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ था ।। ३ ।।

यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले ।
ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुच्यते ।। ४ ।।

पृथ्वीपर निरन्तर गिरती हुई उस सुरभिके क्षीरकी धारासे एक अनन्त ह्रद बन गया, जिसे 'क्षीरसागर' कहते हैं। वह परम पवित्र है ।। ४ ।।

पुष्पितस्येव फेनेन पर्यन्तमनुवेष्टितम् ।
पिवन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ।। ५ ।।

क्षीरसागरसे जो फेन उत्पन्न होता है, वह पुष्पके समान ज्ञान पड़ता है' वह फेन क्षीरसमुद्रके तटपर फैला रहता है, जिसे पीते हुए फेनसंज्ञक बहुत-से मुनिश्रेष्ठ इस रसातलमें निवास करते हैं ।। ५ ।।

फेनपा नाम ते ख्याताः फेनाहाराश्च मातले ।
उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ।। ६ ।।

मातले ! फेनका आहार करनेके कारण वे महर्षिगण 'फेनप' नामसे विख्यात हैं। वे बड़ी कठोर तपस्यामें संलग्न रहते हैं। उनसे देवतालोग भी डरते हैं ।। ६ ।।

अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले ।
निवसन्ति दिशां पाल्यो धारयन्त्यो दिशः स्म ताः । ७ ।

मातले ! सुरभिकी पुत्रीस्वरूपा चार अन्य धेनुएँ हैं, जो सब दिशाओंमें निवास करती हैं। ये दिशाओंका धारण पोषण करनेवाली है ।। ७ ।।

पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी ।
दक्षिणां हंसिका नाम धारयत्यपरां दिशम् ।। ८ ।।

सुरूपा नामवाली धेनु पूर्व दिशाको धारण करती है तथा उससे भिन्न दक्षिण दिशाका हंसिका नामबाली धेनु धारण-पोषण करती हैं ।। ८ ।।

पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्यते व सुभद्रया ।
महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ।। ९ ।।

मातले ! महाप्रभावशालिनी विश्वरूपा सुभद्रा नामवाली सुरभिकन्याके द्वारा वरुणदेवकी पश्चिम दिशा धारण की जाती है ।। ९ ।।

सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् ।
उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम् ।। १० ।।

चौथी धेनुका नाम सर्वकामदुघा है। मातले ! वह धर्मयुक्त कुबेर-सम्बन्धिनी उत्तर दिशाका धारण-पोषण करती है ।। १० ।।

आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ।। ११ ।।
उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले ।
उच्चैःश्रवाश्चाश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ।। १२ ।।

देवसारथे ! देवताओंने असुरोंसे मिलकर मन्दराचलको मन्थानी बनाकर इन्हीं धेनुओंके दूधसे मिश्रित क्षीरसागरकी दुग्धराशिका मन्थन किया और उससे वारुणी, लक्ष्मी एवं अमृतको प्रकट किया। तत्पश्चात् उस समुद्रमन्थनसे अश्वराज उच्चैःश्रवा तथा मणिरत्न कौस्तुभका भी प्रादुर्भाव हुआ था ।। ११-१२ ।।

सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् ।
अमृतं चामृताशेषु सुरभी क्षरते पयः ।। १३ ।।

सुरभि अपने स्तनोंसे जो दूध बहाती है, वह सुधाभोजी लोगोंके लिये सुधा, स्वधाभोजी पितरोंके लिये स्वधा तथा अमृत भोजी देवताओंके लिए अमृतरूप है ।। १३ ।।

अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः ।
पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः ।। १४ ।।

यहाँ रसातलनिवासियोंने पूर्वकालमें जो पुरातन गाथा गायी थी, वह अब भी लोकमें सुनी जाती है और मनीषी पुरुष उसका गान करते हैं ।।१४।।

न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।
परिवासः सुखस्तादृग् रसातलतले यथा ।। १५ ।।

वह गाथा इस प्रकार है—'नागलोक' स्वर्गलोक तथा स्वर्गलोकके विमान में निवास करना भी वैसा सुखदायक नहीं होता, जैसा रसातलमें रहनेसे सुख प्राप्त होता है' ।। १५ ।।

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १०२ ।।

एक सौ दोवाँ अध्याय ।। १०२ ।।

नागलोकके नागोंका वर्णन और मातलिका नागकुमार सुमुखके साथ अपनी कन्याको व्याहनेका निश्चय

नारद उवाच

इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ।
यादृशी देवराजस्य पुरीवर्यामरावती ॥ १ ॥

नारदजी बोले—मातले ! यह नागराज वासुकिद्वारा सुरक्षित उनकी भोगवती नामक पुरी है । देवराज इन्द्रकी सर्वश्रेष्ठ नगरी अमरावतीकी तरह ही यह भी सुखसमृद्धिसे सम्पन्न है ॥ १ ॥

एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा ।
तपसा लोकमुख्येन प्रभावसहिता मही ॥ २ ॥

ये शेषनाग स्थित हैं, जो अपने लोकप्रसिद्ध तपोबलसे प्रभावसहित इस सारी पृथ्वीको सदा सिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥

श्वेताचलनिभाकारो दिव्याभरणभूषितः ।
सहस्रं धारयन् मूर्ध्ना ज्वालजिह्वो महाबलः ॥ ३ ॥

भगवान् शेषका शरीर कैलास पर्वतके समान श्वेत है । ये सहस्र मस्तक धारण करते हैं । इनकी जिह्वा अग्निकी ज्वालाके समान जान पड़ती है । ये महाबली अनन्त दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होते हैं ॥ ३ ॥

इह नानाविधाकार नानाविधविभूषणाः ।
सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४ ॥

इस सुरसाके पुत्र नागगण शोक-संतापसे रहित होकर निवास करते हैं । इनके रूप-रंग और आभूषण अनेक प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

मणिस्वस्तिकचक्राङ्काः कमण्डलुकलक्षणाः ।
सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥ ५ ॥

ये सभी नाग सहस्रोंकी संख्यामें यहाँ रहते हैं । ये सबके सब अत्यन्त बलवान तथा स्वभावसे ही भयंकर हैं । इनमेंसे किन्हींके शरीरमें मणिका, किन्हींके स्वस्तिका, किन्हींके चक्रका और किन्हींके शरीरमें कमण्डलुका चिह्न है ॥ ५ ॥

सहस्रशिरसः केचित् केचित् पञ्चशताननाः ।
शतशीर्षास्तथा केचित् केचित् त्रिशिरसोऽपि च ॥ ६ ॥

कुछ नागोंके एक सहस्र सिर होते हैं, किन्हींके पाँच सौ, किन्हींके एक सौ और किन्हींके तीन ही सिर होते हैं ।। ६ ।।

द्विपञ्चशिरसः केचित् केचित् सप्तमुखास्तथा ।
महाभोगा महाकायाः पर्वताभोगभोगिनः ।। ७ ।।

कोई दो सिरवाले, कोई पाँच सिरवाले और कोई सात मुखवाले होते हैं । किन्हींके बड़े-बड़े फन, किन्हींके दीर्घ शरीर और किन्हींके पर्वतके समान स्थूल शरीर होते हैं ।। ७ ।।

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
नागानामेकवंशानां यथाश्रेष्ठं तु मे शृणु ।। ८ ।।

यहाँ एक-एक वंशके नागोंकी कई हजार, कई लाख तथा कई अबुद संख्या है । मैं जेठे छोटेके क्रमसे इनका संक्षिप्त परिचय देता हूँ, सुनो ।। ८ ।।

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ ।
कालियो नाहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ।। ९ ।।

बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः ।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ।। १० ।।

आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ ।
कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ।। ११ ।।

सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ ।
आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्ठूरिकस्तथा ।। १२ ।।

तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः ।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ।। १३ ।।

करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च ।
पिण्डारो विल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः ।। १४ ।।

दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथापराजितः ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ।। १५ ।।

विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः ।
बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः सुरसस्तथा ।। १६ ।।

एते चान्ये च बहवः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ।
मातले पश्य यद्यत्र कश्चित् ते रोचते वरः ।। १७ ।।

वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, कालिय, नहुष, कम्बल, अश्वतर, बाह्यकुण्ड, मणिनाग, आपूरण, खग, वामन, एलपत्र, कुकुर, कुकुण, आर्यक, नन्दक, कलश, पोतक, कैलासक, पिंजरक, ऐरावत, सुमनोमुख, दधिमुख, शंख, नन्द, उपनन्द, आप्त, कोटरक, शिखी, निष्ठूरिक, तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, पद्मनामक दो नाग, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिकाद, शिरीषक, दिलीप, शंखशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, कृशक, विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, बधिर, अन्ध, विशुण्डि: विरस तथा सुरस—ये और दूसरे बहुत-से नाग कश्यपके वंशज हैं। मातले ! यदि यहाँ कोई वर तुम्हें पसन्द हो तो देखो ।। ९—१७ ।।

कण्व उवाच

मातलिस्त्वेकमव्यग्रः सततं संनिरीक्ष्य वै ।
पप्रच्छ नारदं तत्र प्रीतिमानिव चाभवत् ।। १८ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—राजन् ! तब मातलि स्थिरतापूर्वक एक नागका निरन्तर निरीक्षण करके प्रसन्न-से हो उठे और उन्होंने नारदजीसे पूछा ।। १८ ।।

मातलिरुवाच

स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्यार्यकस्य तु ।
द्युतिमान् दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः ।। १९ ।।

मातलिने कहा—देवर्षे ! यह जो कौरव्य और आर्यकके आगे कान्तिमान् और दर्शनीय नागकुमार खड़ा है, किसके कुलको आनन्दित करनेवाला है ? ।। १९ ।।

कः पिता जननी चास्य कतमस्यैष भोगिनः ।
वंशस्य कस्यैष महान् केतुभूत इव स्थितः ।। २० ।।

इसके पिता-माता कौन हैं ? यह किस नागका पौत्र है तथा किसके वंशकी महान् ध्वजके समान शोभा बढ़ा रहा है ।। २० ।।

प्रणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे ।
मनः प्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिर्वरः ।। २१ ।।

देवर्षे ! यह अपनी एकाग्रता, धैर्य रूप तथा तरुण अवस्थाके कारण मेरे मनमें समा गया है । यही गुणकेशीका श्रेष्ठ पति होनेके योग्य है ।। २१ ।।

कण्व उवाच

मातलिं प्रीतमनसं दृष्टा सुमुखदर्शनात् ।
निवेदयामास तदा माहात्म्यं जन्म कर्म च ।। २२ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—राजन् ! मातलिको सुमुखके दर्शनसे प्रसन्नचित्त देखकर नारदजीने उस समय उस नागकुमारके जन्म, कर्म और महत्त्वका परिचय देना आरम्भ किया ।। २२ ।।

नारद उवाच

ऐरावतकुले जातः सुमुखो नाम नागराट् ।
आर्यकस्य मतः पौत्रो दौहित्रो वामनस्य च ।। २३ ।।

नारदजी बोले—मातले ! यह नागराज सुमुख है, जो ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुआ है । यह आर्यकका पौत्र और वामनका दौहित्र है ।। २३ ।।

एतस्य हि पिता नागश्चिकुरो नाम मातले ।
नाचिराद् वैनतेयेन पञ्चत्वमुपपादितः ।। २४ ।।

सूत ! इसके पिता नागराज चिकुर थे, जिन्हें थोड़े ही दिन पहले गरुणने अपना ग्रास बना लिया है ।। २४ ।।

ततोऽब्रवीत् प्रीतमना मातलिर्नारदं वचः ।
एष मे रुचितस्तात जामाता भुजगोत्तमः ।। २५ ।।

तब मातलिने प्रसन्नचित्त होकर नारदजीसे कहा—'तात ! यह श्रेष्ठ नाग मुझे अपना जामाता बनानेके योग्य जँच गया ।। २५ ।।

क्रियतामत्र यत्नो वै प्रीतिमानस्म्यनेन वै ।
अस्मै नागाय वै दातुं प्रियां दुहितरं मुने ।। २६ ।।

'मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ । आप इसीके लिए यत्न कीजिये । मुने ! मैं इसी नागको अपनी प्यारी प्यारी पुत्री देना चाहता हूँ' ।। २६ ।।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।। १०३ ।।

एक सौ तीसरा अध्याय पूरा हुआ ।। १०३ ।।

नारद उवाच

सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत् ।
शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान् बली ॥ १ ॥

नारदजी बोले—नागराज ! ये इन्द्रके प्रिय सखा और सारथि मातलि हैं। इनमें पवित्रता, सुशीलता और समस्त सद्गुण भरे हुए हैं। ये तेजस्वी होनेके साथ ही बल-पराक्रम-से सम्पन्न हैं ॥ १ ॥

शक्रस्यायं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च ।
अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे ॥ २ ॥

इन्द्रके मित्र, मन्त्री और सारथि सब कुछ यही हैं। प्रत्येक युद्धमें ये इन्द्रके साथ रहते हैं। इनका प्रभाव इन्द्रसे कुछ ही कम है ॥ २ ॥

अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम् ।
देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव नियच्छति ॥ ३ ॥

ये देवासुर-संग्राममें सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए देवराजके विजयशील श्रेष्ठ रथका अपने मानसिक संकल्पसे ही (संचालन और) नियन्त्रण करते हैं ॥ ३ ॥

अनेन विजितानश्वैर्दोर्भ्यां जयति वासवः ।
अनेन बलभित् पूर्वे प्रहृते प्रहरत्युत ॥ ४ ॥

ये अपने अश्वोंद्वारा जिन शत्रुओंको जीत लेते हैं, उन्हींको देवराज इन्द्र अपने बाहुबलसे पराजित करते हैं। पहले इनके द्वारा प्रहार हो जानेपर ही बलनाशक इन्द्र शत्रुओंपर प्रहार करते हैं ॥ ४ ॥

अस्य कन्या वरारोहा रूपेणासदृशी भुवि ।
सत्यशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ॥ ५ ॥

इनके एक सुन्दरी कन्या है, जिसके रूपकी समानता भूमण्डलमें कहीं नहीं है। उसका नाम है गुणकेशी। वह सत्य, शील और सद्गुणोंसे सम्पन्न है ॥५॥

तस्यास्य यत्नाच्चरतस्त्रैलोक्यममरद्युते ।
सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ॥ ६ ॥

देवोपम कान्तिवाले नागराज ! ये मातलि बड़े प्रयत्नसे कन्याके लिये वर ढूंढनेके निमित्त तीनों लोकोंमें विचरते हुए यहाँ आये हैं। आपका पौत्र

सुमुख इन्हें अपनी कन्याका पति होने योग्य प्रतीत हुआ है; उसीको इन्होंने पसंद किया है ।। ६ ।।

यदि ते रोचते सम्यग् भुजगोत्तम मा चिरम् ।
क्रियतामार्यक क्षिप्रं बुद्धिः कन्यापरिग्रहे ।। ७ ।।

नागप्रवर आर्यक ! यदि आपको भी यह सम्बन्ध भलीभाँति रुचिकर जान पड़े तो शीघ्र ही इनकी पुत्रीको ब्याह लानेका निश्चिय कीजिये ।। ७ ।।

यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः ।
कुले तव तथैवास्तु गुणकेशी सुमध्यमा ।। ८ ।।

जैसे भगवान् विष्णुके घरमें लक्ष्मी और अग्निके घरमें स्वाहा शोभा पाती हैं, उसी प्रकार सुन्दरी गुणकेशी तुम्हारे कुलमें प्रतिष्ठित हो ।। ८ ।।

पौत्रस्यार्थे भवांस्तस्माद् गुणकेशीं प्रतीच्छतु ।
सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ।। ९ ।।

अतः आप अपने पौत्रके लिये गुणकेशीको स्वीकार करें । जैसे इन्द्रके अनुरूप शची हैं, उसी प्रकार आपके सुयोग्य पौत्रके योग्य गुणकेशी है ।।

पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे ।
बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च ।। १० ।।
सुमुखस्य गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः ।

आपके और ऐरावतके प्रति हमारे हृदयमें विशेष सम्मान है और यह सुमुख भी शील, शौच और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंसे सम्पन्न है, इसलिये इसके पितृहीन होनेपर भी हम गुणोंके कारण इसका वरण करते हैं ।। १० ।।

अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः ।। ११ ।।
मातलिस्तस्य सम्मानं कर्तुमर्हो भवानपि ।

ये मातलि स्वयं चलकर कन्यादान करनेको उद्यत हैं । आपको भी इनका सम्मान करना चाहिये ।। ११ ।।

कण्व उवाच

स तु दीनः प्रहृष्टश्च प्राह नारदमार्यकः ।। १२ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—कुरुनन्दन ! तब नागराज आर्यक प्रसन्न होकर दीनभावसे बोले ।। १२ ।।

आर्यक उवाच

म्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते ।
कथमिच्छामि देवर्षे गुणकेशीं स्नुषां प्रति ।। १३ ।।

आर्यक पुनः बोले—'देवर्षे ! मेरा पुत्र मारा गया और पौत्रका भी उसी प्रकार मृत्युने वरण किया है; अतः मैं गुणकेशीको बहू बनानेकी इच्छा कैसे करूँ ? ।। १३ ।।

न मे नैतद् बहुमतं महर्षे वचनं तव ।
सखा शक्रस्य संयुक्तः कस्यायं नेप्सितो भवेत् ।। १४ ।।

महर्षे ! मेरी दृष्टिमें आपके इस वचनका कम आदर नहीं है और ये मातलि तो इन्द्रके साथ रहनेवाले उनके सखा हैं । अतः ये किसको प्रिय नहीं लगेंगे ? ।। १४ ।।

कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने ।
अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महाद्युते ।। १५ ।।

भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्तास्तेन वै वयम् ।
पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता ।
मासेनान्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो ।। १६ ।।

ध्रुवं तथा तद् भविता जानीमस्तस्य निश्चयम् ।
तेन हर्षः प्रणष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ।। १७ ।।

परन्तु माननीय महामुने ! करणकी दुर्बलतासे मैं चिन्तामें पड़ा रहता हूँ । महाद्युते इस बालकका पिता, जो मेरा पुत्र था, गरुड़का भोजन बन गया । इस दुःखसे हमलोग पीड़ित हैं । प्रभो ! जब गरुड़ यहाँसे जाने लगे, तब पुनः यह कहते गये कि दूसरे महीनेमें मैं सुमुखको भी खा जाऊँगा । अवश्य ही ऐसा ही होगा; क्योंकि हम गरुड़के निश्चयको जानते हैं । गरुड़के उस कथनसे मेरी हँसी-खुशी नष्ट हो गयी है ।। १५—१७ ।।

कण्व उवाच

मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया ।
जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ।। १८ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—राजन् । तब मातलिने आर्यकसे कहा—'मैंने इस विषयमें एक विचार किया है । यह तो निश्चय ही है कि मैंने आपके पौत्रको

जामाताके पदपर वरण कर लिया ॥ १८ ॥

सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः ।
त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥ १९ ॥

'अतः यह नागकुमार मेरे और नारदजीके साथ त्रिलोकीनाथ देवराज इन्द्रके पास चलकर उनका दर्शन करें ॥ १९ ॥

शेषेणैवास्य कार्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः ।
सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ॥ २० ॥

'साधुशिरोमणे ! तदनन्तर मैं अवशिष्ट कार्यद्वारा इसकी आयुके विषयमें जानकारी प्राप्त करूँगा और इस बातकी भी चेष्टा करूँगा कि गरुड़ इसे न मार सकें ॥ २० ॥

सुमुखश्च मया सार्धं देवेशमभिगच्छतु ।
कार्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजंगम ॥ २१ ॥

'नागराज ! आपका कल्याण हो । सुमुख अपने अभीष्ठ कार्यकी सिद्धिके लिये मेरे साथ देवराज इन्द्रके पास चले' ॥ २१ ॥

ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः ।
ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर उन सभी महातेजस्वी सज्जनोंने सुमुखको साथ लेकर परम कान्तिमान् देवराज इन्द्रका दर्शन किया, जो स्वर्गके सिंहासनपर विराजमान ॥ २२ ॥

संगत्या तत्र भगवान् विष्णुरासीच्चतुर्भुजः ।
ततस्तत् सर्वमाचख्यौ नारदो मातलिं प्रति ॥ २३ ॥

दैवयोगसे वहाँ चतुर्भुज भगवान् विष्णु भी उपस्थित थे । तदनन्तर देवर्षि नारदने मातलिसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः पुरंदरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम् ।
अमृतं दीयतामस्मै क्रियताममरैः समः ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय ! तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने लोकेश्वर इन्द्रसे कहा—'देवराज ! तुम सुमुखको अमृत दे दो और इसे देवताओंके समान बना दो ॥ २४ ॥

मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव ।
लभन्तां भवतः कामान् काममेतं यथेप्सितम् ।। २५ ।।

'वासव ! इस प्रकार मातलि, नारद और सुमुख—ये सभी तुमसे इच्छानुसार अमृतका दान पाकर अपना यह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कर लें' ।। २५ ।।

पुरंदरोऽथ संचिन्त्य वैनतेयपराक्रमम् ।
विष्णुमेवाब्रवीदेनं भवानेव ददात्विति ।। २६ ।।

तब देवराज इन्द्रने गरुड़के पराक्रमका विचार करके भगवान् विष्णुसे कहा—'आपही इसे उत्तम आयु प्रदान कीजिये' ।। २६ ।।

विष्णुरुवाच

ईशस्त्वं सर्वलोकानां चराणामचराश्च ये ।
त्वया दत्तमदत्तं कः कर्तुमुत्सहते विभो ।।

भगवान् विष्णु बोले—प्रभो ! तुम सम्पूर्ण जगत्में जितने भी चराचर प्राणी हैं, उन सबके ईश्वर हो । तुम्हारी दी हुई आयुको मिटाने का साहस कौन कर सकता है ? ।। २७ ।।

प्रादाच्छक्रस्ततस्तस्मै पन्नगायायुरुत्तमम् ।
न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा ।। २८ ।।

तब इन्द्रने उस नागको अच्छी आयु प्रदान की, परंतु बलासुर और वृत्रासुरका विनाश करनेवाले इन्द्रने उसे अमृतभोजी नहीं बनाया ।। २८ ।।

लब्ध्वा वरं तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह ।
कृतदारो यथाकामं जगाम च गृहान् प्रति ।। २९ ।।

इन्द्रका वर पाकर सुमुखका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा । वह विवाह करके इच्छानुसार अपने घरको चला गया ।। २९ ।।

नारदस्त्वार्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ ।
अभिजग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम् ।। ३० ।।

नारद और आर्यक दोनों ही कृतकृत्य हो महातेजस्वी देवराजकी अर्चना करके प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये ।। ३० ।।

चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।। १०४ ।।

एक सौ चौथा अध्याय ।। १०४ ।।

भगवान् विष्णुके द्वारा गरुड़का गर्वभञ्जन

कण्व उवाच

गरुडस्तत्र शुश्राव यथावृत्तं महाबलः ।
आयुः प्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत ।। १ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—भारत ! महाबली गरुड़ने यह सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे सुना कि इन्द्रने सुमुख नागको दीर्घायु प्रदान की है ।। १ ।।

पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः ।
सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवं समुपाद्रवत् ।। २ ।।

यह सुनते ही आकाशचारी गरुड़ अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने पंखोंकी प्रचण्ड वायुसे तीनों लोकोंको कम्पित करते हुए इन्द्रके समीप दौड़े आये ।। २ ।।

गरुड उवाच

भगवन् किमवज्ञानाद् वृत्तिः प्रतिहता मम ।
कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि ।। ३ ।।

गरुड बोले—भगवन् ! आपने अवहेलना करके मेरी जीविकामें क्यों बाधा पहुँचायी है ? एक बार मुझे इच्छानुसार कार्य करनेका वरदान देकर अब फिर उससे विचलित क्यों हुए हैं ? ।। ३ ।।

निसर्गात् सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे ।
आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्यते त्वया ।। ४ ।।

समस्त प्राणियोंके स्वामी विधाताने सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करते समय मेरा आहार निश्चित कर दिया था । फिर आप किसलिये उसमें बाधा उपस्थित करते हैं ? ।। ४ ।।

वृतश्चैष महानागः स्थापितः समयश्च मे ।
अनेन च मया देव भर्तव्यः प्रसवो महान् ।। ५ ।।

देव ! मैंने उस महानागको अपने भोजनके लिये चुन लिया था । इसके लिये समय भी निश्चित कर दिया था और उसीके द्वारा मुझे अपने विशाल परिवारका भरण-पोषण करना था ।। ५ ।।

एतस्मिंस्तु तथाभूते नान्यं हिंसितुमुत्सहे ।
क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम् ।। ६ ।।

वह नाग जब दीर्घायु हो गया, तब अब मैं उसके बदले में दूसरेकी हिंसा नहीं कर सकता। देवराज ! आप स्वेच्छाचारको अपनाकर मनमाने खेल कर रहे हैं ।। ६ ।।

सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि तथा परिजनो मम ।
ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान् भव वासव ।। ७ ।।

वासव ! अब मैं प्राण त्याग दूंगा। मेरे परिवारमें तथा मेरे घरमें जो भरण-पोषण करनेयोग्य प्राणी हैं, वे भी भोजनके अभावमें प्राण दे देंगे। अब आप अकेले संतुष्ट होइये ।। ७ ।।

एतच्चैवाहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन् ।
त्रैलोकस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः ।। ८ ।।

बल और वृत्रासुरका वध करनेवाले देवराज ! मैं इसी व्यवहारके योग्य हूँ; क्योंकि तीनों लोकोंका शासन करनेमें समर्थ होकर भी मैंने दूसरेकी सेवा स्वीकार की है ।। ८ ।।

त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम ।
त्रैलोक्यराज राज्यं हि त्वयि वासव शाश्वतम् ।। ९ ।।

देवेश्वर ! त्रिलोकीनाथ ! आपके रहते भगवान् विष्णु भी मेरी जीविका रोकनेमें कारण नहीं हो सकते; क्योंकि वासव ! तीनों लोकोंके राज्यका भार सदा आपके ही ऊपर है ।। ९ ।।

ममापि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता ।
अहमप्युत्सहे लोकान् समन्ताद् वोढुमञ्जसा ।। १० ।।

मेरी माता भी प्रजापति दक्षकी पुत्री हैं। मेरे पिता भी महर्षि कश्यप ही हैं। मैं भी अनायास ही सम्पूर्ण लोकोंका भार वहन कर सकता हूँ ।।१०।।

असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम् ।
मयापि सुमहत् कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ।। १७ ।।

मुझमें भी वह विशाल बल है, जिसे समस्त प्राणी एक साथ मिलकर भी सह नहीं सकते। मैंने भी दैत्योंके साथ युद्ध छिड़नेपर महान् पराक्रम प्रकट किया है ।। ११ ।।

श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान् रोचनामुखः ।
प्रसृतः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ।। १२ ।।

मैंने भी श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रसूत और कालकाक्ष नामक दैत्योंको मारा है ।। १२ ।।

यत् तु ध्वजस्थानगतो यत्नात् परिचराम्यहम् ।
वहामि चैवानुजं ते तेन मामवमन्यसे ।। १३ ।।

यद्यपि मैं जो रथकी ध्वजामें रहकर यत्नपूर्वक आपके छोटे भाई (विष्णु) की सेवा करता और उनको वहन करता हूँ, इसीसे आप मेरी अवहेलना करते हैं ।। १३ ।।

कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः ।
मया योऽहं विशिष्टः सन् वहामीमं सबान्धवम् ।। १४ ।।

मेरे सिवा दूसरा कौन है, जो भगवान् विष्णुका महान् भार सह सके ? कौन मुझसे अधिक बलवान् है ? मैं सबसे विशिष्ट शक्तिशाली होकर भी बन्धु-बान्धवोसहित इन विष्णुभगवान्का भार वहन करता हूँ ।। १४ ।।

अपज्ञाय तु यत् तेऽहं भोजनाद् व्यपरोपितः ।
तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चास्माच्च वासव ।। १५ ।।

वासव ! आपने मेरी अवज्ञा करके जो मेरा भोजन छीन लिया है, उसके कारण मेरा सारा गौरव नष्ट हो गया तथा इसमें कारण हुए हैं आप और ये श्रीहरि ।। १५ ।।

अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः ।
त्वमेषां किल सर्वेषां बलेन बलवत्तरः ।। १६ ।।

विष्णो ! अदितिके गर्भसे जो ये बल और पराक्रमसे सुशोभित देवता उत्पन्न हुए हैं, इन सबमें बलकी दृष्टिसे अधिक शक्तिशाली आप ही हैं ।। १६ ।।

सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः ।
विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ।। १७ ।।

तात ! आपको मैं अपनी पाँखके एक देशमें बिठाकर बिना किसी थकावटके ढोता रहता हूँ । धीरेसे आप ही विचार करें कि यहाँ कौन सबसे अधिक बलवान् है ? ।। १७ ।।

कण्व उवाच

स तस्य वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्कदारुणम् ।
अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ।। १८ ।।

गरुत्मन् मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बलम् ।
अलमस्मत्समक्षं ते स्तोतुमात्मानमण्डज ।। १९ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—राजन् ! गरुड़की ये बातें भयंकर परिणाम उपस्थित करनेवाली थीं । उन्हें सुनकर रथाङ्गपाणि श्रीविष्णुने किसीसे क्षुब्ध न होनेवाले पक्षिराजको क्षुब्ध करते हुए कहा—'गरुत्मन् ! तुम हो तो अत्यन्त दुर्बल, परन्तु अपने आपको बड़ा भारी बलवान् मानते हो । अण्डज ! मेरे सामने फिर कभी अपनी प्रशंसा न करना ।। १८-१९ ।।

त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे ।
अहमेवात्मनाऽऽत्मानं वहामित्वां च धारये ।। २० ।।

'सारी त्रिलोकी मिलकर भी मेरे शरीरका भार वहन करनेमें असमर्थ है । मैं ही अपने द्वारा अपने आपको ढोता हूँ और तुमको भी धारण करता हूँ ।। २० ।।

इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह ।
यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ।। २१ ।।

'अच्छा, पहले तुम मेरी केवल दाहिनी भुजाका भार वहन करो । यदि इस एकको ही धारण कर लोगे तो तुम्हारी यह सारी आत्मप्रशंसा सफल समझी जायगी' ।। २१ ।।

ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहूं समासजत् ।
निपपात स भारार्तो विह्वलो नष्टचेतनः ।। २२ ।।

इतना कहकर भगवान् विष्णुने गरुड़के कंधे पर अपनी दाहिनी बाँह रख दी । उसके बोझसे पीड़ित एवं विह्वल होकर गरुड़ गिर पड़े । उनकी चेतना भी नष्ट-सी हो गयी ।।

यावान् हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह ।
एकस्या देहशाखायास्तावद् भारममन्यत ।। २३ ।।

पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका जितना भार हो सकता है, उतना ही उस एक बाँहका भार है, यह गरुड़को अनुभव हुआ ।। २३ ।।

न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः ।
ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ।। २४ ।।

अत्यन्त बलशाली भगवान् अच्युतने गरुड़को बलपूर्वक दबाया नहीं था; इसीलिये उनके जीवनका नाश नहीं हुआ ।। २४ ।।

व्यात्तास्यः स्रस्तकायश्च विचेता विह्वलः खगः ।
मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः । २५ ।।

उस महान् भारसे अत्यन्त पीड़ित हो गरुड़ने मुंह बा दिया । उनका सारा शरीर शिथिल हो गया । उन्होंने अचेत और विडल होकर अपने पंख छोड़ दिये ।। २५ ।।

स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः ।
विचेता विह्वलो दीनः किंचिद् वचनमब्रवीत् ।। २६ ।।

तदनन्तर अचेत एवं विह्वल हुए विनतापुत्र पक्षिराज गरुड़ने भगवान् विष्णुके चरणोंमें प्रणाम किया और दीनभावसे कुछ कहा—।। २६ ।।

भगवल्लँोकसारस्य सदृशेन वपुष्मता ।
भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले ।। २७ ।।

'भगवन् ! संसारके मूर्तिमान् सारतत्त्व-सदृश आपकी इस भुजाके द्वारा, जिसे आपने स्वाभाविक ही मेरे ऊपर रख दिया था, मैं पिसकर पृथ्वीपर गिर गया हूँ ।। २७ ।।

क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याल्पचेतसः ।
बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः ।। २८ ।।

'देव ! मैं आपकी ध्वजामें रहनेवाला एक साधारण पक्षी हूँ । इस समय आपके बल और तेजसे दग्ध होकर व्याकुल और अचेत-सा हो गया हूँ । आप मेरे अपराधको क्षमा करें ।। २८ ।।

न हि ज्ञातं बलं देव मया ते परमं विभो ।
तेन मन्ये ह्यहं वीर्यमात्मनो न समं परैः ।। २९ ।।

'विभो ! मुझे आपके महान् बलका पता नहीं था । देव ! इसीसे मैं अपने बल और पराक्रमको दूसरोंके समान ही नहीं, उनसे बहुत बढ़-चढ़कर मानता था' ।। २९ ।।

ततश्चक्रे स भगवान् प्रसादं वै गरुत्मतः ।
मैवं भूय इति स्नेहात् तदा चैनमुवाच ह ।। ३० ।।

गरुड़के ऐसा कहनेपर भगवान्ने उनपर कृपादृष्टि की और उस समय स्नेहपूर्वक उनसे कहा—'फिर कभी इस प्रकार घमंड न करना' ।। ३० ।।

पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सुमुखं गरुडोरसि ।
ततःप्रभृति राजेन्द्र सह सर्पेण वर्तते ।। ३१ ।।

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् भगवान्ने अपने पैरके अँगूठेसे सुमुख नागको उठाकर गरुड़के वक्षःस्थल पर रख दिया । तभीसे गरुड़ उस सर्पको सदा साथ लिये रहते हैं ।। ३१ ।।

एवं विष्णुबलाक्रान्तो गर्वनाशमुपागतः ।
गरुडो बलवान् राजन् वैनतेयो महायशाः ।। ३२ ।।

राजन् ! इस प्रकार महायशस्वी बलवान् विनतानन्दन गरुड़ भगवान् विष्णुके बलसे आक्रान्त हो अपना अहंकार छोड़ बैठे ।। ३२ ।।

कण्व उवाच

तथा त्वमपि गान्धारे यावत् पाण्डुसुतान् रणे ।
नासादयसि तान् वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक ।। ३३ ।।

कण्व मुनि कहते हैं—गान्धारीनन्दन वत्स दुर्योधन ! इसी तरह तुम भी जबतक रणभूमिमें उन वीर पाण्डवोंको अपने सामने नहीं पाते' तभीतक जीवन धारण करते हो ।। ३३ ।।

भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः ।
धनंजयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातां तु कं रणे ।। ३४ ।।

योद्धाओंमें श्रेष्ठ महाबली भीम वायुके पुत्र हैं । अर्जुन भी इन्द्रके पुत्र हैं । ये दोनों मिलकर युद्धमें किसे नहीं मार डालेंगे ।। ३४ ।।

विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाश्विनावुभौ ।
एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः ।। ३५ ।।

धर्मस्वरूप विष्णु, वायु, इन्द्र और वे दोनों अश्विनीकुमार—इतने देवता तुम्हारे विरुद्ध हैं । तुम किस कारणसे इन देवताओंकी ओर देखनेका भी साहस कर सकते हो ? ।। ३५ ।।

तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज ।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ।। ३६ ।।

अतः राजकुमार ! इस विरोधसे तुम्हें कुछ मिलनेवाला नहीं है । पाण्डवों के साथ संधि कर लो । भगवान् श्रीकृष्ण को सहायक बनाकर इनके द्वारा तुम्हें अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये ।। ३६ ।।

प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः ।
माहात्म्यस्य तदा विष्णोः सोऽयं चक्रगदाधरः ।। ३७ ।।

इन महातपस्वी नारदजीने उस समय भगवान् विष्णुके माहात्म्यको प्रत्यक्ष देखा था । वे चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु ही ये 'श्रीकृष्ण' हैं ।। ३७ ।।

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन् भृकुटीमुखः ।
राधेयमभिसम्प्रेक्ष्य जहास स्वनवत् तदा ।। ३८ ।।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कण्वका वह कथन सुनकर दुर्योधन की भौहें तन गयीं । वह लम्बी साँस खींचता हुआ राधानन्दन कर्णकी ओर देखकर जोर-जोर से हँसने लगा ।। ३८ ।।

कदर्थीकृत्य तद् वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः ।
ऊरुं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत् ।। ३९ ।।

उस दुर्बुद्धिने कण्व मुनिके वचनोंकी अवहेलना करके हाथीकी सूँडके समान चढ़ाव उतारवाली अपनी मोटी जाँघपर हाथ पीटकर इस प्रकार कहा—।। ३९ ।।

यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद् भावि या च मे गतिः ।
तथा महर्षे वर्तामि किं प्रलापः करिष्यति ।। ४० ।।

'महर्षे ! मुझे ईश्वरने जैसा बनाया है, जो होनहार और जैसी मेरी अवस्था है, उसीके अनुसार मैं बर्ताव करता हूँ । आपलोगोंका यह प्रलाप क्या करेगा ?' ।। ४० ।।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि
मातलिवरान्वेषणे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।। १०५ ।।
एक सौ पाँचवाँ अध्याय ।। १०५ ।।

३

गालवोपाख्यानम्

गालवका विश्वामित्रसे गुरुदक्षिणा मांगनेके लिये हठ करना

जनमेजय उवाच

अनर्थे जातनिर्बन्धं परार्थे लोभमोहितम् ।
अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ।। १ ।।

ज्ञातीनां दुःखकर्तारं बन्धूनां शोकवर्धनम् ।
सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ।। २ ।।

कथं नैवं विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः ।
सौहृदाद् वा सुहृत् स्निग्धो भगवान् वा पितामहः ।। ३ ।।

जनमेजयने कहा—भगवन् ! दुर्योधनका अनर्थकारी कार्योंमें ही अधिक आग्रह था । पराये धनके प्रति अधिक लोभ रखनेके कारण वह मोहित हो गया था । दुर्जनोंमें ही उसका अनुराग था । उसने मरनेका ही निश्चय कर लिया था । वह कुटुम्बीजनोंके लिये दुःखदायक और भाई-बन्धुओंके शोक को बढ़ानेवाला था । सुहृदोंको क्लेश पहुँचाता और शत्रुओं का हर्ष बढ़ाता था । ऐसे कुमार्गपर चलनेवाले इस दुर्योधन को उसके भाई-बन्धु रोकते क्यों नहीं थे ? कोई सुहृद्, स्नेही अथवा पितामह भगवान् व्यास उसे सौहार्दवश मना क्यों नहीं करते थे ।। १-३ ।।

वैशम्पायन उवाच

उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत् क्षमम् ।
उक्तं बहुविधं चैव नारदेनापि तच्छृणु ।। ४ ।।

वैशम्पायनजी बोखे—राजन् ! भगवान् वेदव्यासने भी दुर्योधनसे उसके हितकी बात कही। भीष्मजीने भी जो उचित कर्तव्य था, वह बताया। इसके सिवा नारदजीने भी नाना प्रकारके उपदेश दिये। वह सब तुम सुनो ॥ ४ ॥

नारद उवाच

दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत्।
तिष्ठते हि सुहृद् यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा—अकारण हित चाहनेवाले सुहृद्की बातोंको जो मन लगाकर सुने, ऐसा श्रोता दुर्लभ है। हितैषी सुदृद् भी दुर्लभ ही है; क्योंकि महान् संकटमें सुहृद् ही खड़ा हो सकता है, वहाँ भाई-बन्धु नहीं ठहर सकते ॥ ५ ॥

श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन।
न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ॥ ६ ॥

कुरुनन्दन ! मैं देखता हूँ कि तुम्हें अपने सुहृदोंके उपदेशको सुननेकी विशेष आवश्यकता है; अतः तुम्हें किसी एक बातका दुराग्रह नहीं रखना चाहिये। आग्रहका परिणाम बड़ा भयंकर होता है ॥ ६ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यथा निर्बन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥ ७ ॥

इस विषयमें विज्ञ पुरुष इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि महर्षि गालवने हठ या दुराग्रहके कारण पराजय प्राप्तकी थी ॥ ७ ॥

विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा।
अभ्यगच्छत् स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८ ॥

पहलेकी बात है, साक्षात् धर्मराज महर्षि भगवान् वसिष्ठका रूप धारण करके तपस्यामें लगे हुए विश्वामित्रके पास उनकी परीक्षा लेनेके लिये आये ॥ ८ ॥

सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत।
बुभुक्षुः क्षुभितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य तु ॥ ९ ॥

भारत ! धर्म सप्तर्षियोंमेंसे एक (वसिष्ठजी) का वेष धारण करके भूखसे पीड़ित हो भोजनकी इच्छासे विश्वामित्रके आश्रमपर आये ॥ ९ ॥

विश्वामित्रोऽथ सम्भ्रान्तः श्रपयामास वै चरुम् ।
परमान्नस्य यत्नेन न च तं प्रत्यपालयत् ॥ १० ॥

विश्वामित्रजीने बड़ी उतावलीके साथ उनके लिये उत्तम भोजन देनेकी इच्छासे यत्नपूर्वक चरुपाक बनाना आरम्भ किया; परंतु ये अतिथिदेवता उनकी प्रतीक्षा न कर सके ॥ १० ॥

अन्नं तेन तदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः ।
अथ गृह्यान्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽप्युपागमत् ॥ ११ ॥

उन्होंने जब दूसरे तपस्वी मुनियोंका दिया हुआ अन्न खा लिया, तब विश्वामित्रजी भी अत्यन्त उष्ण भोजन लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ ११ ॥

भुक्तं मे तिष्ठ तावत् त्वमित्युक्त्वा भगवान् ययौ ।
विश्वामित्रस्ततो राजन् स्थित एव महाद्युतिः ॥ १२ ॥

उस समय भगवान् धर्म यह कहकर कि मैंने भोजनकर लिया, अब तुम रहने दो, वहाँसे चल दिये । राजन् ! तब महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि वहाँ उसी अवस्थामें खड़े ही रह गये ॥ १२ ॥

भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना वै बाहुभ्यां संशितव्रतः ।
स्थितः स्थाणुरिवाभ्याशे निश्चेष्टो मारुताशनः ॥ १३ ॥

कठोर व्रतका पालन करनेवाले विश्वामित्रने दोनों हाथोंसे उस भोजन पात्रको थामकर माथेपर रख लिया और आश्रमके समीप ही ठूँठ पेड़की भाँति वे निश्चेष्ट खड़े रहे । उस अवस्थामें केवल वायु ही उनका आहार था ॥ १३ ॥

तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोद् गालवो मुनिः ।
गौरवाद् बहुमानाच्च हार्देन प्रियकाम्यया ॥ १४ ॥

उन दिनों उनके प्रति गौरवबुद्धि, विशेष आदरसम्मानका भाव तथा प्रेम-भक्ति होनेके कारण उनकी प्रसन्नताके लिये गालवमुनि यत्नपूर्वक उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहते थे ॥ १४ ॥

अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत् ।
वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं भोजनेप्सया ।। १५ ।।

तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर पुनः धर्मदेव वसिष्ठ मुनिका वेष धारण करके भोजनकी इच्छासे विश्वामित्र मुनिके पास आये ।। १५ ।।

स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं ध्रियमाणं महर्षिणा ।
तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ।। १६ ।।

प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथैवोष्णं तथा नवम् ।
भुक्त्वाप्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः ।। १७ ।।

उन्होंने देखा कि परम बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्र केवल वायु पीकर रहते हुए सिरपर भोजनापात्र रखे खड़े हैं। यह देखकर धर्मने वह भोजन ले लिया। वह अन्न उसी प्रकार तुरन्तकी तैयारकी हुई रसोईके समान गरम था। उसे खाकर वे बोले—'ब्रह्मर्षे ! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ।' ऐसा कह कर मुनिवेषधारी धर्मदेव चले गये ।। १६-१७ ।।

क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।
धर्मस्य वचनात् प्रीतो विश्वामित्रस्तदाभवत् ।। १८ ।।

क्षत्रियत्वसे ऊँचे उठकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए विश्वामित्रको धर्मके बचनसे उस समय बड़ी प्रसन्नता हुई ।। १८ ।।

विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ।
शुश्रूषया च भक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच ह ।। १९ ।।

वे अपने शिष्य तपस्वी गालव मुनिकी सेवा-शुश्रूषा तथा भक्तिसे संतुष्ट होकर बोले—।। १९ ।।

अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव ।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् ।। २० ।।

प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम् ।
दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरुकर्मणि ।। २१ ।।

'वत्स गालव ! अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जाओ।' उनके इस प्रकार आदेश देनेपर गालवने प्रसन्नता प्रकट करते हुए मधुर वाणीमें महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रसे इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! मैं आपको गुरुदक्षिणाके रूपमें क्या दूँ ? ।। २०-२१ ।।

दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिद्ध्यति मानद ।
दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते ।। २२ ।।

'मानद ! दक्षिणायुक्त कर्म ही सफल होता है । दक्षिणा देनेवाले पुरुषको ही सिद्धि प्राप्त होती है ।। २२ ।।

स्वर्गे क्रतुफलं तद्धि दक्षिणा शान्तिरुच्यते ।
किमाहरामि गुर्वर्थे ब्रवीतु भगवानिति ।। २३ ।।

'दक्षिणा देनेवाला मनुष्य ही स्वर्गमें यज्ञका फल पाता है । वेदमें दक्षिणा को शान्तिप्रद बताया गया है । अतः पूज्य गुरुदेव ! बतावें कि मैं क्या गुरु-दक्षिणा ले आऊँ ?।। २३ ।।

जानानस्तेन भगवाञ्जितः शुश्रूषणेन वै ।
विश्वामित्रस्तमसकृद् गच्छ गच्छेत्यचोदयत् ।। २४ ।।

गालवकी सेवा-शुश्राषासे भगवान् विश्वामित्र उनके वशमें हो गये थे । अतः उनके उपकारको समझते हुए विश्वामित्रने उनसे बार-बार कहा—'जाओ, जाओ' ।। २४ ।।

असकृद् गच्छ गच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः ।
किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत ।। २५ ।।

उनके द्वारा बारबार 'जाओ, जाओ' की आज्ञा मिलनेपर भी गालवने अनेक वार आग्रहपूर्वक पूछा—'मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा दूं ?' ।। २५ ।।

निर्बन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः ।
किंचिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ।। २६ ।।

तपस्वी गालवके बहुत आग्रह करनेपर विश्वामित्रको कुछ क्रोध आ गया; अतः उन्होंने इस प्रकार कहा—।। २६ ।।

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव मा चिरम् ।। २७ ।।

'गालव ! तुम मुझे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले ऐसे आठ सौ घोड़े दो, जिनके कान एक ओरसे श्याम वर्णके हों । जाओ, देर न करो' ।। २७ ।।

षडधिकशततमोऽध्यायः ।। १०६ ।।

एक सौ छवाँ अध्याय ।। १०६ ।।

गालवकी चिन्ता और गरुड़का आकर उन्हें आश्वासन देना

नारद उवाच

एषमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
नास्ते न शेते नाहारं कुरुते गालवस्तदा ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! उस समय परम बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर गालव मुनि तबसे न कहीं बैठते, न सोते और न भोजन ही करते थे ॥ १ ॥

त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ताशोकपरायणः ।
शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना ।
गालवो दुःखितो दुःखाद् विललाप सुयोधन ॥ २ ॥

वे चिन्ता और शोकमें डूबे रहनेके कारण पाण्डुवर्णके हो गये । उनके शरीरमें अस्थि-चर्ममात्र ही शेष रह गये थे । दुर्योधन ! अत्यन्त शोक करते और चिन्ताकी आगमें दग्ध होते हुए दुखी गालव मुनि दुःखसे विलाप करने लगे ॥ २ ॥

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः संचयः कुतः ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥ ३ ॥

'मेरे ऐसे मित्र कहाँ, जो धनसे पुष्ट हो ? मुझे कहाँसे धन प्राप्त होगा ? कहाँ मेरे लिये धन संग्रह करके रक्खा हुआ है ? और कहाँसे मुझे चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले आठ सौ घोड़े प्राप्त होंगे ? ॥ ३ ॥

कुतो मे भोजने श्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे ।
श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे ॥ ४ ॥

'ऐसी दशामें मुझे भोजनकी रुचि कहाँसे हो ? सुख भोगनेकी इच्छा कहाँसे हो ? और इस जीवनसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? इस जीवनको सुरक्षित रखनेके लिये मेरा जो उत्साह था, वह भी नष्ट हो गया ॥ ४ ॥

अहं पारे समुद्रस्य पृथिव्या वा परम्परात् ।
गत्वाऽऽत्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे ॥ ५ ॥

'मैं समुद्रके उस पार अथवा पृथ्वीसे बहुत दूर जाकर इस शरीरको त्याग दूंगा । अब मेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ ५ ॥

अधनस्याकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः ।
ऋणं धारयमाणस्य कुतः सुखमनीहया ।। ६ ।।

'जो निर्धन है, जिसके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि नहीं हुई है तथा जो नाना प्रकारके शुभ कर्मफलोंसे वञ्चित होकर केवल ऋणका बोझ ढो रहा है, ऐसे मनुष्यको बिना उद्यमके जीवन धारण करनेसे क्या सुख होगा ? ।। ६ ।।

सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम् ।
प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम् ।। ७ ।।

'जो इच्छानुसार प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करके सुहृदोंका धन भोगकर उनका प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ हो, उसके जीनेसे मर जाना ही अच्छा है ।। ७ ।।

प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः ।
मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टापूर्तं प्रणश्यति ।। ८ ।।

'जो 'करूँगा' ऐसा कहकर किसी कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ले, परन्तु आगे चलकर उस कर्तव्यका पालन न कर सके, उस असत्यभाषणसे दग्ध हुए पुरुषके 'इष्ट' और 'आपूर्त' सभी नष्ट हो जाते हैं ।। ८ ।।

न रूपमनृतस्यास्ति नानृतस्यास्ति संततिः ।
नानृतस्याधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा ।। ९ ।।

'सत्यसे शून्य मनुष्यका जीवन नहींके बराबर है । मिथ्यावादीको संतति नहीं प्राप्त होती । झूठेको प्रभुत्व नहीं मिलता, फिर उसे शुभगति कैसे प्राप्त हो सकती है ।। ९ ।।

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ।। १० ।।

'कृतघ्न मनुष्यको सुयश कहाँ ? स्थान या प्रतिष्ठा कहाँ और सुख भी कहाँ है ? कृतघ्न मानव अविश्वसनीय होता है, उसका कभी उद्धार नहीं होता है ।। १० ।।

न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम् ।
पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन् कृतम् ।। ११ ।।

'निर्धन एवं पापी मनुष्यका जीवन वास्तवमें जीवन नहीं है । पापी

मनुष्य अपने कुटुम्बका पोषण भी कैसे कर सकता है? पापात्मा (निर्धन) पुरुष अपने पुण्य कर्मोंका नाश करता हुआ स्वयं भी निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चानृतोऽपि च ।
गुरोर्यः कृतकार्यः संस्तत् करोमि न भाषितम् ॥ १२ ॥

'मैं पापी, कृतघ्न, कृपण और मिथ्यावादी हूँ, जिसने गुरुसे तो अपना काम करा लिया, परन्तु स्वयं जो उन्हें देनेकी प्रतिज्ञाकी है, उसकी पूर्ति नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १२ ॥

सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि कृत्वा यत्नमनुत्तमम् ।
अर्थिता न मया काचितु कृतपूर्वा दिवौकसाम् ।
मानयन्ति च मां सर्वे त्रिदशा यज्ञसंस्तरे ॥ १३ ॥

'अतः मैं कोई उत्तम प्रयत्न करके अपने प्राणोंका परित्याग कर दूंगा। मैंने आजसे पहले देवताओंसे भी कभी कोई याचना नहीं की है। सब देवता यज्ञमें मेरा समादर करते हैं ॥ १३ ॥

अहं तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम् ।
विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिमतां वरम् ॥ १४ ॥

'अब मैं त्रिभुवनके स्वामी एवं जङ्गम जीवोंके सर्वश्रेष्ठ आश्रय सुरश्रेष्ठ सच्चिदानन्दघन भगवान् विष्णुकी शरणमें जाता हूँ ॥ १४ ॥

भोगा यस्मात् प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान् सुरासुरान् ।
प्रणतो द्रष्टुमिच्छामि कृष्णं योगिनमव्ययम् ॥ १५ ॥

'जिनकी कृपासे समस्त देवताओं और असुरोंको भी यथेष्ट भोग प्राप्त होते हैं, उन्हीं अविनाशी योगी भगवान् विष्णुका मैं प्रणतभावसे दर्शन करना चाहता हूँ' ॥ १५ ॥

एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः ।
दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया ॥ १६ ॥

गालवके इस प्रकार कहनेपर उनके सखा विनतानन्दन गरुड़ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका प्रिय करनेकी इच्छासे उन्हें दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—॥ १६ ॥

सुहृद् भगवान् मम मतः सुहृदां च मतः सुहृत् ।
ईप्सितेनाभिलाषेण योक्तव्यो विभवे सति ।। १७ ।।

'गालव ! तुम मेरे प्रिय सुहृद् हो और मेरे सुहृदोंके भी प्रिय सुहृद हो । सुहृदोंका यह कर्तव्य है कि यदि उनके पास धन वैभव हो तो वे उसका अपने सुहृद्का अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उपयोग करें ।। १७ ।।

विभवश्चास्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज ।
पूर्वमुक्तस्त्वदर्थं च कृतः कामश्च तेन मे ।। १८ ।।

'ब्रह्मन् ! मेरे सबसे बड़े वैभव हैं इन्द्रके छोटे भाई भगवान् विष्णु । मैंने पहले तुम्हारे लिये उनसे निवेदन किया था और उन्होंने मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार करके मेरा मनोरथ पूर्ण किया था ।। १८ ।।

स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम् ।
देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालव मा चिरम् ।। १९ ।।

'अतः आओ' हम दोनों चलें । गालव ! मैं तुम्हें सुखपूर्वक ऐसे देशमें पहुँचा दूंगा, जो पृथ्वीके अन्तर्गत तथा समुद्रके उस पार है । चलो, विलम्ब न करो' ।। १९ ।।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।। १०७ ।।
गालवचरित्रविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय ।। १०७ ।।

गरुड़का गालवसे पूर्व दिशाका वर्णन करना

सुपर्ण उवाच

अनुशिष्टोऽस्मि देवेन गालवाज्ञातयोनिना ।
ब्रूहि कामं तु कां यामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम् ।। १ ।।

गरुड़ने कहा—गालव ! अनादिदेव भगवान् विष्णुने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुम्हारी सहायता करूँ । अतः तुम अपनी इच्छाके अनुसार बताओ कि मैं सबसे पहले किस दिशाकी ओर चलूँ ? ।। १ ।।

पूर्वां वा दक्षिणां वाहमथवा पश्चिमां दिशम् ।
उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव ।। २ ।।

द्विजश्रेष्ठ गालव ! बोलो, मैं पूर्व, दक्षिण, पश्चिम अथवा उत्तरोंमेंसे किस दिशाकी ओर चलूँ ? ।। २ ।।

यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः ।
सविता यत्र संध्यायां साध्यानां वर्तते तपः ॥ ३ ॥

यस्यां पूर्वं मतिर्याता यया व्याप्तमिदं जगत् ।
चक्षुषी यत्र धर्मस्य यत्र चैष प्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥

कृतं यतो हुतं हव्यं सर्पते सर्वतोदिशम् ।
एतद् द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाध्वनः ॥ ५ ॥

विप्रवर ! जिस दिशामें सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न एवं प्रभावित करनेवाले भगवान् सूर्य प्रथम उदित होते हैं, जिस दिशामें संध्याके समय साध्यगण तपस्या करते हैं, जिस दिशामें (गायत्रीजपके द्वारा) पहले वह बुद्धि प्राप्त हुई है, जिसने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है, धर्मके युगलनेत्रस्वरूप चन्द्रमा और सूर्य पहले जिस दिशामें उदित होते हैं और प्रायः पूर्वाभिमुख होकर धर्मानुष्ठान किये जानेके कारण जहाँ धर्म प्रतिष्ठित हुआ है तथा जिस दिशामें पवित्र हविष्यका हवन करनेपर वह आहुति सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाती है, वही यह पूर्वदिशा दिन एवं सूर्यमार्गका द्वार है ॥ ३—५ ॥

अत्र पूर्वं प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः ।
यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्यात्मसम्भवाः ॥ ६ ॥

इसी दिशामें प्रजापति दक्षकी अदिति आदि कन्याओंने सबसे पहले प्रजावर्गको उत्पन्न किया था और इसीमें प्रजापति कश्यपकी संतानें वृद्धिको प्राप्त हुई है ॥ ६ ॥

अदोमूला सुराणां श्रीर्यत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत ।
सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चात्र तपश्चितम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मर्षे ! देवताओंकी लक्ष्मीका मूलस्थान पूर्व दिशा ही है । इसीमें इन्द्रका देवसम्राट्के पदपर प्रथम अभिषेक हुआ है और इसी दिशामें देवताओंने तपस्याकी है ॥ ७ ॥

एतस्मात् कारणाद् ब्रह्मन् पूर्वेत्येषा दिगुच्यते ।
यस्मात् पूर्वतरे काले पूर्वमेवावृता सुरैः ॥ ८ ॥
अत एव च सर्वेषां पूर्वामाशां प्रचक्षते ।

'ब्रह्मने ! इन्हीं सब कारणोंसे इस दिशाको 'पूर्वा' कहा है; क्योंकि अत्यन्त पूर्वकालमें पहले यही दिशा देवताओंसे ज्ञापन हुई थी, अतएव इसे सबकी आदि दिशा रहती है ॥ ८ ॥

पूर्वं सर्वाणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता ।। ९ ।।

सुखकी अभिलाषा रखनेवाले लोगोंको देवसम्बन्धी सारे सयम यह इसी दिशामें करने चाहिये ।। ९ ।।

अत्र वेदाञ्जगौ पूर्वं भगवाँल्लोकभावनः ।
अत्रैवोक्ता सवित्राऽऽसीद् सावित्री ब्रह्मवादिषु ।। १० ।।

लोकस्रष्टा भागवान् ब्रह्माने पहले इसी दिशामें वेदोंका गान किया था और सविता देवताने ब्रह्मवादी मुनियोंको वहीं सावित्रीमन्त्रका उपदेश किया था ।। १० ।

अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम ।
अत्र लब्धवरः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते ।। ११ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें सूर्यदेवने महर्षि याज्ञवल्क्यको शुक्लयजुर्वेदके मन्त्र दिये थे और इसी दिशामें देवतालोग यज्ञोंमें उस सोमरसका पान करते हैं, जो उन्हें वरदानमें प्राप्त हो चुका है ।। ११ ।।

अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते ।
अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च ।। १२ ।।

इसी दिशामें यज्ञोंद्वारा तृप्त हुए अग्निगण अपने योनिस्वरूप जलका उपभोग करते हैं । यहीं वरुणने पातालका आश्रय लेकर लक्ष्मीको प्राप्त किया था ।। १२ ।।

अत्र पूर्वं वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ ।
सूतिश्चैव प्रतिष्ठा च निधनं च प्रकाशते ।। १३ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें पुरातन महर्षि वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई है । यहीं उन्हें प्रतिष्ठा (सप्तर्षियोंमें स्थान) की प्राप्ति हुई है और इसी दिशामें उन्हें निमिके शापसे देहत्याग करना पड़ा है ।। १३ ।।

ओङ्कारस्यात्र जायन्ते सृतयो दशतीर्दश ।
पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धूमं स्म धूमपाः ।। १४ ।।

इसी दिशामें प्रणव अर्थात् वेदकी सहस्रों शाखाएँ प्रकट हुई हैं और उसी में धूमपायी महर्षिगण हविष्यके धूमका पान करते हैं ।। १४ ।।

प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने ।
शक्रेण यज्ञभागार्थे दैवतेषु प्रकल्पिताः ।। १५ ।।

इसी दिशामें देवराज इन्द्रने यज्ञभागकी सिद्धिके लिये वनमें जंगली सूअर आदि हिंसक पशुओंको प्रोक्षित करके देवताओंको सौंपा था ।। १५ ।।

अत्राहिताः कृतघ्नाश्च मानुषाश्चासुराश्च ये ।
उदयंस्तान् हि सर्वान् वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः ।। १६ ।।

इस दिशामें उदित होनेवाले भगवान् सूर्य जो दूसरोंका अहित करनेवाले एवं कृतघ्न मनुष्य और असुर होते हैं, उन सबका क्रोधपूर्वक विनाश करते (उनकी आयु क्षीण कर देते) हैं ।। १६ ।।

एतद् द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च ।
एष पूर्वो दिशां भागो विशावोऽत्र यदीच्छसि ।। १७ ।।

गालव ! यह पूर्व दिग्विभाग ही त्रिलोकीका, स्वर्गका और सुखका भी द्वार है । तुम्हारी इच्छा हो तो हम दोनों इसमें प्रवेश करें ।। १७ ।।

प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्यास्मि वचने स्थितः ।
ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाप्यपरां दिशम् ।। १८ ।।

मैं जिनकी आज्ञाके अधीन हूँ, उन भगवान् विष्णुका प्रिय कार्य मुझे अवश्य करा है; अतः गालव ! बताओ, क्या मैं पूर्व दिशामें चलूं अथवा दूसरी दिशाका भी वर्णन सुन लो ।। १८ ।।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।। १०८ ।।
एकसौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ।। १०८ ।।

दक्षिण दिशाका वर्णन

सुपर्ण उवाच

इयं विवस्वता पूर्वं श्रौतेन विधिना किल ।
गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यते च दिक् ।। १ ।।

गरुड़ कहते है—गालव ! यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें भगवान् सूर्यने वेदोक्त विधिके अनुसार यज्ञ करके आचार्य कश्यपको दक्षिणारूपसे इस दिशाका दान किया था, इसीलिये इसे दक्षिण दिशा कहते है ।। १ ।।

अत्र लोकत्रयस्यास्य पितृपक्षः प्रतिष्ठितः ।
अत्रोष्मपाणां देवानां निवासः श्रूयते द्विज ।। २ ।।

ब्रह्मन् ! तीनों लोकोंके पितृगण इसी दिशामें प्रतिष्ठित है तथा 'ऊष्मप' नामक देवताओंका निवास भी इसी दिशामें सुना जाता है ।। २ ।।

अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्धमासते ।
इज्यमानाः स्म लोकेषु सम्प्राप्तास्तुल्यभागताम् ।। ३ ।।

पितरोंके साथ विश्वेदेवगण सदा दक्षिण दिशामें ही वास करते हैं । वे समस्त लोकोंमें पूजित हो श्राद्धमें पितरोंके समान ही भाग प्राप्त करते हैं ।। ३ ।।

एतद् द्वितीयं देवस्य द्वारमाचक्षते द्विज ।
त्रुटिशो लवशश्चापि गण्यते कालनिश्चयः ।। ४ ।।

विप्रवर ! विद्वान् पुरुष इस दक्षिण दिशाको धर्मदेवताका दूसरा द्वार कहते हैं । यही (चित्रगुप्त आदिके द्वारा) 'त्रुटि' और 'लव' आदि सूक्ष्मसे सूक्ष्म कालांशोंपर दृष्टि रखते हुए प्राणियोंकी आयुकी निश्चित गणनाकी जाती है ।। ४ ।।

अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा ।
तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः ।। ५ ।।

देवर्षि, पितृलोकके ऋषि तथा समस्त राजर्षिगण दुःखरहित हो सदा इसी दिशामें निवास करते हैं ।। ५ ।।

अत्र धर्मश्च सत्यं च कर्म चात्र निगद्यते ।
गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणामवसायिनाम् ।। ६ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें (रहकर चित्रगुप्त आदिके द्वारा धर्मराजके निकट प्राणियोंके) धर्म, सत्य तथा साधारण कर्मोंके विषयमें कहा जाता है । मृत प्राणी तथा उनके कर्म इसी दिशाका आश्रय लेते हैं ।। ६ ।।

एषा दिक् सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते ।
वृता त्वनवबोधेन सुखं तेन न गम्यते ।। ७ ।।

विप्रवर ! यह वह दिशा है, जिसमें मृत्युके पश्चात् सभी प्राणियोंको जाना पड़ता है । यह सदा अज्ञानान्धकारसे आवृत रहती है, इसलिये इसमें सुखपूर्वक यात्रा सम्भव नहीं हो पाती है ।। ७ ।।

नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ ।
सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः ।। ८ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्माजीने इस दिशामें प्रतिकूल स्वभाव एवं आचारणवाले सहस्त्रों राक्षसोंकी सृष्टि की है, जिनका दर्शन अशुद्ध अन्तः करण वाले पुरुषों को ही होता है ।। ८ ।।

अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च ।
गायन्ति गाथा गन्धर्वाश्चित्तबुद्धिहरा द्विज ।। ९ ।।

ब्रह्मन् ! इसी दिशामें गन्धर्वगण मन्दराचलके कुञ्जों और ब्रह्मर्षियोंके आश्रमोंमें मन और बुद्धिको आकर्षित करनेवाली गाथाओंका गान करते हैं ।। ९ ।।

अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः ।
गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः ।। १० ।।

पूर्वकालमें यही राजा रैवत गाथाओंके रूपमें सामगान सुनते-सुनते अपनी स्त्री, मन्त्री तथा राज्यसे भी वियुक्त हो वनमें चले गये थे ।। १० ।।

अत्र सार्वणिना चैव यवक्रीतात्मजेन च ।
मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन् यां सूर्यो नातिवर्तते ।। ११ ।।

ब्रह्मन् ! इस दिशामें सार्वणि मनु तथा यवक्रीतके पुत्रने सूर्यकी गतिके लिये मर्यादा (सीमा) स्थापितकी थी, जिसका सूर्यदेव कभी उल्लङ्घन नहीं करते हैं ।। ११ ।।

अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना ।
रावणेन तपश्चीर्त्वा सुरेभ्योऽमरता वृता ।। १२ ।।

पुलस्त्यवंशी राक्षसराज महामना रावणने इसी दिशामें तपस्या करके देवताओंसे अवध्य होनेका वरदान प्राप्त किया था ।। १२ ।।

अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान् ।
अत्र सर्वासवः प्राप्ताः पुनर्गच्छन्ति पञ्चधा ।। १३ ।।

इसी दिशामें घटित हुई घटनाके कारण वृत्रासुर देवराज इन्द्रका शत्रु बन बैठा था । दक्षिण दिशामें ही आकर सबके प्राण पुनः (प्राण-अपान आदिके भेदसे) पाँच भागोंमें बंट जाते हैं (अर्थात् प्राणी नूतन देह धारण करते हैं). ।। १३ ।।

अत्र दुष्कृतकर्माणो नराः पश्यन्ति गालव ।
अत्र वैतरणी नाम नदी वितरणैर्वृता ।। १४ ।।

गालव ! इसी दिशामें पापाचारी मनुष्य नरकोंकी आगमें पकाये जाते हैं। दक्षिणमें ही वह वैतरणी नदी है, जो वैतरणी नरकके अधिकारी पापियों से घिरी रहती है ॥ १४ ॥

अत्र गत्वा सुखस्यान्तं दुःखस्यान्तं प्रपद्यते ।
अप्रावृत्तो दिनकरः सुरसं क्षरते पयः ॥ १५ ॥
काष्ठीं चासाद्य वासिष्ठीं हिममुत्सृजते पुनः ।

मनुष्य इसी दिशामें जाकर सुख और दुःखके अन्तको प्राप्त होता है। इसी दक्षिण दिशामें लौटनेपर (अर्थात् उत्तरायणके अन्तिम भागमें पहुँचकर दक्षिणायनके आरम्भमें आनेपर जब कि वर्षाऋतु रहती है,) सूर्यदेव सुस्वादु जलकी वर्षा करते हैं। फिर वसिष्ठ मुनिके द्वारा सेवित उत्तर दिशामें पहुँच कर (अर्थात् उत्तरायणके प्रारम्भमें जब कि शिशिर ऋतु रहती है,) वे ओले गिराते हैं ॥ १५ ॥

अत्राहं गालव पुरा क्षुधार्तः परिचिन्तयन् ॥ १६ ॥
लब्धवान् युध्यमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ ।

गालव ! पूर्वकालकी बात है, मैं भूखसे पीड़ित होकर भारी चिन्तामें पड़ गया था, परंतु इसी दिशामें आनेपर दो विशाल प्राणी—हाथी और कछुआ मेरे हाथ लग गये, जो आपसमें लड़ रहे थे ॥ १६ ॥

अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः ॥ १७ ॥
विदुर्यं कपिलं देवं येनार्ताः सगरात्मजाः ।

सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि सूर्यसे उत्पन्न हुए 'चक्रधनु' नामक महर्षि इसी दिशामें रहते थे, जिन्हें सब लोग 'कपिलदेव'के नामसे जानते हैं। उन्होंने ही सगरके पुत्रोंको भस्म कर दिया था ॥ १७ ॥

अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १८ ॥
अधीत्य सकलान् वेदांल्लेभिरे मोक्षमक्षयम् ।

इसी दिशामें 'शिव' नामसे प्रसिद्ध कुछ सिद्ध ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारंगत पण्डित थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके (तत्त्वज्ञानद्वारा) अक्षय मोक्ष प्राप्त कर लिया ॥ १८ ॥

अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ॥ १९ ॥
तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च ।

दक्षिणमें ही वासुकिद्वारा पालित तथा तक्षक एवं ऐरावत नागद्वारा सुरक्षित भोगवती नामक पुरी है ।। १९ ।।

अत्र निर्याणकालेऽपि तमः सम्प्राप्यते महत् ।। २० ।।
अभेद्यं भास्करेणापि स्वयं वा कृष्णवर्त्मना ।

मृत्युके पश्चात् इन दिशामें जानेवाले प्राणीको ऐसे घोर अन्धकारका सामना करना पड़ता है, जो साक्षात् अग्नि एवं सूर्यके लिये भी अभेद्य है ।। २० ।।

एष तस्यापि ते मार्गः परिचार्यस्य गालव ।
ब्रूहि मे यदि गन्तव्यं प्रतीचीं शृणु चापराम् ।। २१ ।।

गालव ! तुम मेरे द्वारा परिचर्या पाने (सेवा ग्रहण करने) के योग्य हो, अतः तुम्हें यह दक्षिण मार्ग बताया है; यदि इस दिशामें चलना हो तो मुझसे कहो अथवा अब तीसरी पश्चिम दिशाका वर्णन सुनो ।। २१ ।।

नवाधिकशततमोऽध्यायः ।। १०९ ।।

एक सौ नौवाँ अध्याय ।। १०९ ।।

पश्चिम दिशाका वर्णन

सुपर्ण उवाच

इयं दिग् दयिता राज्ञो वरुणस्य तु गोपतेः ।
सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चादिरेव च ।। १ ।।

गरुड़ कहते हैं—गालव ! यह जो सामनेकी दिशा है, जलके स्वामी दिक्पाल गोपति वरुणको सदा ही अत्यन्त प्रिय है । यही उनका आश्रय और उत्पत्तिस्थान है ।। १ ।।

अत्र पश्चादहः सूर्यो विसर्जयति गाः स्वयम् ।
पश्चिमेत्यभिविख्याता दिगियं द्विजसत्तम ।। २ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! दिनके पश्चात् सूर्यदेव इसी दिशामें स्वयं अपनी किरणोंका विसर्जन करते हैं, इसलिये यह 'पश्चिम' के नामसे विख्यात है ।। २ ।।

यादसामत्र राज्येन सलिलस्य च गुप्तये ।
कश्यपो भगवान् देवो वरुणं स्माभ्यषेचयत् ।। ३ ।।

पूर्वकालमें भगवान् कश्यपदेवने जल-जन्तुओंका आधिपत्य और जलकी रक्षा करनेके लिये इसी दिशामें वरुणका अभिषेक किया था ।। ३ ।।

अत्र पीत्वा समस्तान् वै वरुणस्य रसांस्तु षट् ।
जायते तरुणः सोमः शुक्लस्यादौ तमिस्रहा ।। ४ ।।

अन्धकारका नाश करनेवाले चन्द्रमा वरुणके निकट रहकर छः प्रकारके सम्पूर्ण रसोंका पान करके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको इसी इशामें नूतनताको प्राप्त होकर उदित होते हैं ।। ४ ।।

अत्र पश्चात् कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा ।
निःश्वसन्तो महावातैरर्दिताः सुषुपुर्द्विज ।। ५ ।।

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें वायुदेवने अपने महान् वेगसे यहाँ युद्धमें दैत्योंको पराङ्मुख, आबद्ध और पीड़ित किया था, जिससे वे लम्बी साँस छोड़ते हुए धराशायी हो गये थे ।। ५ ।।

अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः ।
अस्तो नाम यतः संध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति ।। ६ ।।

इसी दिशामें अस्ताचल है, जो अपने प्रीतिपात्र सूर्य देवको प्रतिदिन ग्रहण करता है । वहींसे पश्चिम संध्याका प्रसार होता है ।। ६ ।।

अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये ।
जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवायुषः ।। ७ ।।

इसी दिशासे दिनके अन्तमें मानो जीव-जगत्‌की आधी आयु हर लेनेके लिये रात्रि एवं निद्राका प्राकट्य होता है ।। ७ ।।

अत्र देवीं दितिं सुप्तामात्मप्रसवधारिणीम् ।
विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ।। ८ ।।

इसी दिशामें देवराज इन्द्रने सोयी हुई गर्भवती दितिवेवीके (उदरमें प्रवेश करके उसके) गर्भका उच्छेद किया था, जिससे मरुद्‌गणोंकी उत्पत्ति हुई ।। ८ ।।

अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम् ।
अपि वर्षसहस्रेण न चास्यान्तोऽधिगम्यते ।। ९ ।।

इसी दिशामें हिमालयका मूलभाग सदा मन्दराचलतक फैलकर उसका स्पर्श करता है। सहस्रों वर्षोंमें भी इसका अन्त पाना असम्भव है ।। ९ ।।

अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनाम्बुरुहस्य च ।
उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ।। १० ।।

इसी दिशामें सुवर्णमय पर्वत मन्दराचल तथा स्वर्णमय कमलोंसे सुशोभित क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर सुरभिदेवी अपने दूधका निर्झर बहाती हैं। १०।

अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते ।
स्वर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः ।। १० ।।

पश्चिम दिशामें ही समुद्रके भीतर सूर्यके समान तेजस्वी उस राहुका कबन्ध (धड़) दिखायी देता है, जो सूर्य और चन्द्रमाको मार डालनेकी इच्छा रखता है ।। ११ ।।

सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः ।
अदृश्यस्याप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः ।। १२ ।।

इसी दिशामें पिङ्गलवर्णके केशोंसे सुशोभित, अप्रमेय प्रभावशाली एवं अदृश्यमूर्ति मुनिवर सुवर्णशिरा सामगान करते हैं। उनके उस गीतकी विपुल ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है ।। १२ ।।

अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः ।
आकाशेतिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात् ।। १३ ।।

इसी दिशामें हरिमेधा मुनिकी कुमारी कन्या ध्वजवती निवास करती है, जो सूर्यदेवकी 'ठहरो' 'ठहरो' इस आज्ञासे आकाशमें स्थित है ।। १३ ।।

अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खं चापि गालव ।
आह्निकं चैव नैशं च दुःखं स्पर्शं विमुञ्चति ।। १४ ।।

गालव ! वायु, अग्नि, जल और आकाश ये सब इस दिशामें रात्रि और दिनके दुःखदायी स्पर्शका परित्याग करते हैं (अर्थात् यहाँ इनका स्पर्श सदा सुखद ही होता है) ।। १४ ।।

अतःप्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्तते गतिः ।
अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम् ।। १५ ।।

इसी दिशासे सूर्यदेव तिरछी गतिसे चक्कर लगाना आरम्भ करते हैं। यहीं सम्पूर्ण ज्योतियाँ सूर्यमण्डलमें प्रवेश करती हैं ।। १५ ।।

अष्टाविंशतिरात्रं च चङ्क्रम्य सह भानुना ।
निष्पतन्ति पुनः सूर्यात् सोमसंयोगयोगतः ।। १६ ।।

अभिजित्सहित अट्ठाईस नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येक अट्ठाईसवें दिन सूर्यके साथ विचरण करके अमावस्याके बाद फिर सूर्यमण्डलसे पृथक् हो जाता है ।।१६।।

अत्र नित्यं स्रवन्तीनां प्रभवः सागरोदयः ।
अत्र लोकत्रयस्यापस्तिष्ठन्ति वरुणालये ।। १७ ।।

इसी दिशासे उन अधिकांश नदियोंका प्राकटय हुआ है, जिनके जलसे समुद्रकी पूर्ति होती रहती है । यहींके वरुणालयमें त्रिभुवनके लिये उपयोगी जलराशि संचित है ।। १७ ।।

अत्र पन्नगराजस्याप्यनन्तस्य निवेशनम् ।
अनादिनिधनस्यात्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।। १८ ।।

यहीं नागराज अनन्तका निवास तथा आदि-अन्तसे रहित भगवान् विष्णुका सर्वोत्कृष्ट स्थान है ।। १८ ।।

अत्रानलसखस्यापि पवनस्य निवेशनम् ।
महर्षेः कश्यपस्यात्र मारीचस्य निवेशनम् ।। १९ ।।

इसी दिशामें अग्निदेवके सखा वायुदेवका भवन तथा मारीचिन्दन महर्षि कश्यपका आश्रम है ।। १९ ।।

एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः ।
ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम ।। २० ।।

द्विजश्रेष्ठ गालव ! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपसे पश्चिमका मार्ग बताया है । अब बताओ, तुम्हारा क्या विचार है ? हम दोनों किस दिशाकी ओर चलें ? ।। २० ।।

दशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११० ।।
एक सौ दसवाँ अध्याय ।। ११० ।।

उत्तर दिशाका वर्णन

सुपर्ण उवाच

यस्मादुत्तार्यते पापाद् यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते ।
अस्मादुत्तारणबलादुत्तरेत्युच्यते द्विज ।। १ ।।

गरुड़ कहते हैं—गालव ! इस मार्गसे जानेपर मनुष्यका पापसे उद्धार हो जाता है और वह कल्याणमय स्वर्गीय सुखोंका उपभोग करता है; अतः इस उत्तारण (संसारसागरसे पार उतारने) के बलसे इस दिशाको उत्तरदिशा कहते हैं ।। १ ।।

उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापश्च गालव ।
मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः ।। २ ।।

गालव ! यह उत्तर दिशा उत्कृष्ट सुवर्ण आदि निधियोंकी अधिष्ठान है । यह उत्तर मार्ग पश्चिम और पूर्व दिशाओंका मध्यवर्ती बताया गया है ।। २ ।।

अस्यां दिशि वरिष्ठायामुत्तरायां द्विजर्षभ ।
नासौम्यो नाविधेयात्मा नाधर्मो वसते जनः ।। ३ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! इस गौरवशालिनी दिशामें ऐसे लोगोंका वास नहीं है, जो सौम्य स्वभावके न हों, जिन्होंने अपने मनको वशमें न किया हो तथा जो धर्मका पालन न करते हों ।। ३ ।।

अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः ।
बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्मा च शाश्वतः ।। ४ ।।

इसी दिशामें बदरिकाश्रमतीर्थ है, जहाँ सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायण, विजयशील नरश्रेष्ठ नर और सनातन ब्रह्माजी निवास करते हैं ।। ४ ।।

अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्यमास्ते महेश्वरः ।
प्रकृत्या पुरुषः सार्धं युगान्ताग्निसमप्रभः ।। ५ ।।

उत्तरमें ही हिमालयके शिखरपर प्रलयकालीन अग्निके समान तेजस्वी अन्तर्यामी भगवान् महेश्वर भगवती उमाके साथ नित्य निवास करते हैं ।। ५ ।।

न स दृश्यो मुनिगणैस्तथा देवैः सवासवैः ।
गन्धर्वयक्षसिद्धैर्वा नरनारायणादृते ।। ६ ।।

वे भगवान् नर और नारायणके सिवा और किसीकी दृष्टिमें नहीं आते । समस्त मुनिगण, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध अथवा देवताओंसहित इन्द्र भी उनका दर्शन नहीं कर पाते हैं ।। ६ ।।

अत्र विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रचरणोऽव्ययः ।
सहस्रशिरसः श्रीमानेकः पश्यति मायया ।। ७ ।।

यहाँ सहस्रों चरणों और सहस्रों मस्तकोंवाले एकमात्र अविनाशी श्रीमान् भगवान् विष्णु ही उन मायाविशिष्ट महेश्वरका साक्षात्कार करते हैं ।। ७ ।।

अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाभ्यषिच्यत ।
अत्र गङ्गां महादेवः पतन्ती गगनाच्च्युताम् ।। ८ ।।

प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम ।

उत्तर दिशामें ही चन्द्रमाका द्विजराजके पदपर अभिषेक हुआ था । वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गालव ! यहीं आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको महादेवजीने अपने मस्तकपर धारण किया और उन्हें मनुष्यलोकमें छोड़ दिया ।। ८ ।।

अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ।। ९ ।।
अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च सम्बभुः ।

यहीं पार्वतीदेवीने भगवान् महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या की थी और इसी दिशामें महादेवजीको मोहित करनेके लिये काम प्रकट हुआ । फिर उसके ऊपर भगवान् शंकरका क्रोध हुआ । उस अवसरपर गिरिराज हिमालय और उमा भी वहाँ विद्यमान थीं (इस प्रकार ये सब लोग वहाँ एक ही समयमें प्रकाशित हुए) ।। ९ ।।

अत्र राक्षसयक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव ।। १० ।।

आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः ।
अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः ।। ११ ।।

गालव ! इसी दिशामें कैलास पर्वतपर राक्षस, यक्ष और गन्धर्वोंका आधिपत्य करनेके लिये धनदाता कुबेरका अभिषेक हुआ था । उत्तर दिशामें ही रमणीय चैत्ररथवन और वैखानस ऋषियोंका आश्रम है ।। १०-११ ।।

अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्च द्विजर्षभ ।
अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरभिरक्ष्यते ।। १२ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! यहीं मन्दाकिनी नदी और मन्दराचल हैं । इसी दिशामें राक्षसगण सौगन्धिकवनकी रक्षा करते हैं ।। १२ ।।

शाद्वलं कदलीस्कन्धमत्र संतानका नगाः ।
अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् ।। १३ ।।

विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव ।

यहीं हरी-हरी घासोंसे सुशोभित कदलीवन है और यहीं कल्पवृक्ष शोभा पाते हैं । गालव ! इसी दिशामें सदा संयमनियमका पालन करनेवाले स्वच्छन्दचारी सिद्धोंके इच्छानुसार भोगोंसे सम्पन्न एवं मनोनुकूल विमान विचरते हैं ।। १३ ।।

अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चारुन्धती तथा ।। १४ ।।
अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्रास्या उदयः स्मृतः ।

इसी दिशामें अरुन्धतीदेवी और सप्तर्षि प्रकाशित होते हैं । इसीमें स्वाती नक्षत्रका निवास है और यहीं उसका उदय होता है ।। १४ ।।

अत्र यज्ञं समासाद्य ध्रुवं स्थाता पितामहः ।। १५ ।।
ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः ।

इसी दिशामें ब्रह्माजी यज्ञानुष्ठानमें प्रवृत्त होकर नियमितरूपसे निवास करते हैं । नक्षत्र, चन्द्रमा तथा सूर्य भी सदा इसीमें परिभ्रमण करते हैं ।१५।

अत्र गङ्गामहाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तम ।। १६ ।।

धामा नाम महात्मनो मुनयः सत्यवादिनः ।
न तेषां ज्ञायते मूर्तिर्नाकृतिर्न तपश्चितम् ।। १७ ।।
परिवर्तसहस्राणि कामभोज्यानि गालव ।

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें धाम नामसे प्रसिद्ध सत्यवादी महात्मा मुनि श्रीगङ्गामहाद्वारकी रक्षा करते हैं । उनकी मूर्ति, आकृति तथा संचित तपस्याका परिमाण किसीको ज्ञात नहीं होता है । गालव ! वे सहस्रों युगान्तकालतककी आयु इच्छानुसार भोगते हैं ।। १६-१७ ।।

यथा यथा प्रविशति तस्मात् परतरं नरः ।। १८ ।।

तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव ।
नैतत् केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ ।। १९ ।।

ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम् ।
अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत् ।। २० ।।

द्विजश्रेष्ठ ! मनुष्य ज्यों-ज्यों गङ्गामहाद्वारसे आगे बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे वहाँकी हिमराशिमें गलता जाता है । विप्रवर गालव ! साक्षात् भगवान् नारायण तथा विजयशील अविनाशी महात्मा नरको छोड़कर दूसरा कोई

मनुष्य पहले कभी गङ्गामहाद्वारसे आगे नहीं गया है। इसी दिशामें कैलास-पर्वत है, जो कुबेरका स्थान बताया गया है ॥ १८-२० ॥

अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश ।
अत्र विष्णुपदं नाम क्रमता विष्णुना कृतम् ॥ २१ ॥

त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मन्नुत्तरां दिशमाश्रितम् ।
अत्र राज्ञा मरुत्तेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम ॥ २२ ॥

उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः ।

यहीं विद्युत्प्रभा नामसे प्रसिद्ध दस अप्सराएँ उत्पन्न हुई थीं। ब्रह्मन्! त्रिलोकीको नापते समय भगवान् विष्णुने इसी दिशामें अपना चरण रक्खा था। उत्तर दिशामें भगवान् विष्णुका वह चरणचिह्न (हरिकी पैड़ी) आज भी मौजूद है। द्विजश्रेष्ठ! ब्रह्मर्षे! उत्तर दिशाके ही उशीरबीज नामक स्थानमें, जहाँ सुवर्णमय सरोवर है, राजा मरुत्तने यज्ञ किया था ॥ २१-२२ ॥

जीमूतस्यात्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः ॥ २३ ॥
साक्षाद्धैमवतः पुण्यो विमलः कनकाकरः ।

इसी दिशामें ब्रह्मर्षि महात्मा जीमूतके समक्ष हिमालयकी पवित्र एवं निर्मल स्वर्णनिधि (सोनेकी खान) प्रकट हुई थी ॥ २३ ॥

ब्राह्मणेषु च यत् कृत्स्नं स्वन्तं कृत्वा धनं महत् ॥ २४ ॥
वव्रे धनं महर्षिः स जैमूतं तद् धनं ततः ।

उस सम्पूर्ण विशाल धनराशिको उन्होंने ब्राह्मणोंमें बाँटकर उसका सदुप-योग किया और ब्राह्मणोंसे यह वर माँगा कि यह धन मेरे नामसे प्रसिद्ध हो। इस कारण वह धन 'जैमूत' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २४ ॥

अत्र नित्यं दिशाम्पालाः सायम्प्रातर्द्विजर्षभ ॥ २५ ॥
कस्य कार्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव ।

विप्रवर गालव! यहाँ प्रतिदिन सबेरे और संध्याके समय सभी दिक्पाल एकत्र हो उच्च स्वरसे यह पूछते हैं कि किसको क्या काम है? ॥ २५ ॥

एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यैर्दिगुत्तरा ॥ २६ ॥
उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा ।

द्विजश्रेष्ठ! इन सब कारणोंसे तथा अन्यान्य गुणोंके कारण यह दिशा उत्कृष्ट है और समस्त शुभ कर्मोंके लिये भी यही उत्तम मानी गयी है।

इसलिये इसे उत्तर कहते हैं ।। २६ ।।

एता विस्तरशस्तात तव संकीर्तिता दिशः ।। २७ ।।
चतस्रः क्रमयोगेन कामाशां गन्तुमिच्छसि ।

तात ! इस प्रकार मैंने क्रमशः चारों दिशाओंका तुम्हारे सामने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । कहो, किस दिशामें चलना चाहते हो ? ।। २७ ।।

उद्यतोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः ।
पृथिवीं चाखिलां ब्रह्मंस्तस्मादारोह मां द्विज ।। २८ ।।

द्विजश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें सम्पूर्ण पृथ्वी तथा समस्त दिशाओंका दर्शन कराने के लिये उद्यत हूँ; अतः तुम मेरी पीठपर बैठ जाओ ।। २८ ।।

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।। १११ ।।

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय ।। १११ ।।

गरुड़की पीठपर बैठकर पूर्व दिशाकी ओर जाते हुए गालवका उनके वेगसे व्याकुल होना

गालव उवाच

गरुत्मन् भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज ;
नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी ।। १ ।।

गालवने कहा—गरुत्मन् ! भुजगराजशत्रो ! सुपर्ण ! विनतानन्दन ! तार्क्ष्य ! तुम मुझे पूर्व दिशाकी ओर ले चलो, जहां धर्मके नेत्रस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं ।। १ ।।

पूर्वमेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्तिता ।
देवतानां हि सांनिध्यमत्र कीर्तितवानसि ।। २ ।।

अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक् प्रकीर्तितः ।
इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्दैवतैरहम् ।
भूयश्च तान् सुरान् द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज ।। ३ ।।

जिस दिशाका तुमने सबसे पहले वर्णन किया है, उसी दिशाकी ओर पहले चलो; क्योंकि उस दिशामें तुमने देवताओंका सानिध्य बताया है तथा वहीं सत्य और धर्मकी स्थितिका भी भली भांति प्रतिपादन किया है । अरुणके

छोटे भाई गरुड़ ! मैं सम्पूर्ण देवताओंसे मिलना और पुनः उन सबका दर्शन करना चाहता हूँ ॥ २-३ ॥

नारद उवाच

तमाह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम् ।
ओरुरोहाथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा ॥ ४ ॥

नारदजी कहते हैं—तब विनतानन्दन गरुड़ने विप्रवर गालवसे कहा—'तुम मेरे ऊपर चढ़ जाओ।' तब गालव मुनि गरुड़की पीठपर जा बैठे ॥ ४ ॥

गालव उवाच

क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यन्ते पन्नगाशन ।
भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥ ५ ॥

गालवने कहा—सर्पभोजी गरुड़ ! पूर्वाह्णकालमें सहस किरणोंसे सुशोभित भुवनभास्कर सूर्यका स्वरूप जैसा दिखायी देता है, आकाशमें उड़ते समय तुम्हारा स्वरूप भी वैसा ही दृष्टिगोचर होता है ॥ ५ ॥

पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम् ।
प्रस्थितानामिव समं पश्यामीह गतिं खग ॥ ६ ॥

खेचर ! तुम्हारे पङ्खोंकी हवासे उखड़कर ये वृक्ष पीछे-पीछे चले आ रहे है । मैं इनकी भी ऐसी तीव्र गति देख रहा हूँ, मानो ये भी हमलोगोंके साथ चलनेके लिये प्रस्थित हुए हों ॥ ६ ॥

ससागरवनामुर्वी सशैलवनकाननाम् ।
आकर्षन्निव चाभासि पक्षवातेन खेचर ॥ ७ ॥

आकाशचारी गरुड़ ! तुम अपने पङ्खोंके वेगसे उठी हुई वायुद्वारा समुद्रकी जलराशि, पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको अपनी ओर खींचते से जान पड़ते हो ॥ ७ ॥

समीननागनक्रं च खमिवारोप्यते जलम् ।
वायुना चैव महता पक्षवातेन चानिशम् ॥ ८ ॥

पाँखोंके हिलानेसे निरन्तर उठती हुई प्रचण्ड वायुके वेगसे मत्स्य, जलहस्ती तथा मगरोंसहित समुद्रका जल तुम्हारे द्वारा मानो आकाशमें उछाल दिया जाता है ॥ ८ ॥

तुल्यरूपाननान् मत्स्यांस्तथा तिमितिमिंगिलान् ।
नागाश्वनरवक्त्रांश्च पश्याम्युन्मथितानिव ।। ९ ।।

जिनके आकार और मुख एक से हैं ऐसे मत्स्योंको, तिमि और तिमिंगिलों को तथा हाथी, घोड़े और मनुष्योंके समान मुखवाले जल-जन्तुओंको मैं उन्मथित हुए-से देखता हूँ ।। ९ ।।

महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरे कृते ।
न शृणोमि न पश्यामि नात्मनो वेद्मि कारणम् ।। १० ।।

महासागरकी इन भीषण गर्जनाओंने मेरे कान बहरे कर दिये हैं । मैं न तो सुन पाता हुँ, न देख पाता हूँ, और न अपने बचावका कोई उपाय ही समझ पाता हूँ ।। १० ।।

शनैः स तु भवान् यातु ब्रह्मवध्यामनुस्मरन् ।
न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग ।। ११ ।।

तात गरुड़ ! तुमसे कहीं ब्रह्महत्या न हो जाय, इसका ध्यान रखते हुए धीरे-धीरे चलो । मुझे इस समय न तो सूर्य दिखायी देते हैं, न दिशाएँ सूझती हैं और न आकाश ही दृष्टिगोचर होता है ।। ११ ।।

तम एव तु पश्यामि शरीरं ते न लक्षये ।
मणीव जात्यौ पश्यामि चक्षुषी तेऽहमण्डज ।। १२ ।।

मुझे केवल अन्धकार ही दिखायी देता है । मैं तुम्हारे शरीरको नहीं देख पाता हूँ । अण्डज ! तुम्हारी दोनों आँखें मुझे उत्तम जातिकी दो मणियोंके समान चमकती दिखायी देती हैं ।। १२ ।।

शरीरं तु न पश्यामि तव चैवात्मनश्च ह ।
पदे पदे तु पश्यामि शरीरादग्निमुत्थितम् ।। १३ ।।

मैं न तो तुम्हारे शरीरको देखता हूँ और न अपने शरीरको । मुझे पग-पगपर तुम्हारे अङ्गोंसे आगकी लपटें उठती दिखायी देती हैं ।। १३ ।।

स मे निर्वाप्य सहसा चक्षुषी शाम्य ते पुनः ।
तन्नियच्छ महावेगं गमने विनतात्मज ।। १४ ।।

विनतानन्दन ! तुम उस आगको सहसा बुझाकर पुनः अपने दोनों नेत्रों को भी शान्त करो और तुम्हारी गतिमें जो इतना महान् वेग है, इसे रोको ।। १४ ।।

न मे प्रयोजनं किंचिद् गमने पन्नगाशन ।
संनिवर्त महाभाग न वेगं विषहामि ते ।। १५ ।।

गरुड़ ! इस यात्रासे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, अतः लौट चलो । महाभाग मैं ! तुम्हारे वेगको नहीं सह सकता ।। १५ ।।

गुरवे संश्रुतानीह शतान्यष्टौ हि वाजिनाम् ।
एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम् ।। १६ ।।

मैंने गुरुको ऐसे आठ सौ घोड़े देनेकी प्रतिज्ञा की है, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे युक्त हों और जिनके कान एक ओरसे श्याम रंगके हों ।। १६ ।।

तेषां चैवापवर्गाय मार्गं पश्यामि नाण्डज ।
ततोऽयं जीवितत्यागे दृष्टो मार्गो मयाऽऽत्मनः ।। १७ ।।

किंतु अण्डज ! उन घोड़ोंके दिये जानेका कोई मार्ग मुझे नहीं दिखायी देता है । इसीलिये मैंने अपने जीवनके परित्यागका ही मार्ग चुना है ।। १७ ।।

नैव मेऽस्ति धनं किंचिन्न धनेनान्वितः सुहृत् ।
न चार्थेनापि महता शक्यमेतद् व्यपोहितुम् ।। १८ ।।

मेरे पास थोड़ा भी धन नहीं है, कोई धनी मित्र भी नहीं है और यह कार्य ऐसा है कि प्रचुर धनराशिका व्यय करनेसे भी सिद्ध नहीं हो सकता ।। १८ ।।

नारद उवाच

एवं बहु च दीनं च ब्रुवाणं गालवं तदा ।
प्रत्युवाच व्रजन्नेव प्रहसन् विनतात्मजः ।। १९ ।।

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दीन वचन बोलते हुए महर्षि गालब से विनतानन्दन गरुड़ने चलते हुए ही हँसकर कहा—।। १९ ।।

नातिप्रज्ञोऽसिविप्रर्षे योऽऽत्मानंत्यक्तुमिच्छसि ।
न चापि कृत्रिमः कालः कालो हि परमेश्वरः ।। २० ।।

'ब्रह्मर्षे ! यदि तुम अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहते हो तो विशेष बुद्धिमान् नहीं हो; क्योंकि मृत्यु कृत्रिम नहीं होती (उसका अपनी इच्छासे निर्माण नहीं किया जा सकता) । वह तो परमेश्वर ही स्वरूप है ।। २० ।।

किमहं पूर्वमेवेह भवता नाभिचोदितः ।
उपायोऽत्र महानस्ति येनैतदुपपद्यते ।। २१ ।।

'तुमने पहले ही मुझसे यह बात क्यों नहीं कह दी ? मेरी दृष्टिमें एक महान् उपाय है, जिससे यह कार्य सिद्ध हो सकता है ।। २१ ।।

तदेष ऋषभो नाम पर्वतः सागरान्तिके ।
अत्र विश्रम्य भुक्त्वा च निवर्तिष्याव गालव ।। २२ ।।

'गालव ! समुद्रके निकट यह ऋषभ नामक पर्वत है, जहाँ विश्राम और भोजन करके हम दोनो लौट चलेंगे' ।। २२ ।।

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११२ ।।
एक सौ बारहवाँ अध्याय ।। ११२ ।।

ऋषभ पर्वतके शिखरपर महर्षि गालव और गरुड़की तपस्विनी शाण्डिलीसे भेंट

नारद उवाच

ऋषभस्य ततः शृङ्गं निपत्य द्विजपक्षिणौ ।
शाण्डिलीं ब्राह्मणीं तत्र ददृशाते तपोऽन्विताम् ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर गालव और गरुड़ने ऋषभ पर्वतके शिखपर उतरकर वहाँ तपस्विनी शाण्डिली ब्राह्मणी को देखा ।। १ ।।

अभिवाद्य सुपर्णस्तु गालवश्चाभिपूज्य ताम् ।
तया च स्वागतेनोक्तौ विष्टरे संनिषीदतुः ।। २ ।।

गरुड़ने उसे प्रणाम किया और गालवने उसका आदरसम्मान किया । तदनन्तर उसने भी उन दोनोंका स्वागत करके उन्हें आसनपर बैठनेके लिये कहा । उसकी आज्ञा पाकर वे दोनों वहाँ आसनपर बैठ गये ।। २ ।।

सिद्धमन्नं तया दत्तं बलिमन्त्रोपबृंहितम् ।
भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावनुमोहितौ ।। ३ ।।

तपस्विनीने उन्हें बलिवैश्वदेवसे बचा हुआ अभिमन्त्रित सिद्धान्न अर्पण किया । उसे खाकर वे दोनों तृप्त हो गये और भूमिपर ही सो गये । तत्पश्चात् निद्राने उन्हें अचेत कर दिया ।। ३ ।।

मुहूर्तात् प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया ।
अथ भ्रष्टतनूजाङ्गमात्मानं ददृशे खगः ।। ४ ।।

दो ही घड़ीके बाद मनमें वहाँसे जानेकी इच्छा लेकर गरुड़ जाग उठे । उठनेपर उन्होंने अपने शरीरको दोनों पंखोंसे रहित देखा ।। ४ ।।

मांसपिण्डोपमोऽभूत् स मुखपादन्वितः खगः ।
गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विमनाः पर्यपृच्छत ।। ५ ।।

आकाशचारी गरुड़ मुख और हाथोंसे युक्त होते हुए भी उन पंखोंके बिना मांसके लोंदेसे हो गये । उन्हें उस दशामें देखकर गालवका मन उदास हो गया और उन्होंने पूछा—।। ५ ।।

किमिदं भवता प्राप्तमिहागमनजं फलम् ।
वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति ।। ६ ।।

"सखे ! तुम्हें यहाँ आनेका यह क्या फल मिला ? इस अवस्थामें हम दोनोंको यहाँ कितने समयतक रहना पड़ेगा ? ।। ६ ।।

किं नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
न ह्ययं भवतः स्वल्पो व्यभिचारो भविष्यति ।। ७ ।।

'तुमने अपने मनमें कौन-सा अशुभ चिन्तन किया है, जो धर्मको दूषित करनेवाला रहा है । मैं समझता हूँ, तुम्हारे द्वारा यहाँ कोई थोड़ा धर्मविरुद्ध कार्य नहीं हुआ होगा' ।। ७ ।।

सुपर्णोऽथाब्रवीद् विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज ।
इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः ।। ८ ।।

यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः ।
यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ।। ९ ।।

तब गरुड़ने विप्रवर गालवसे कहा—'ब्रह्मन् ! मैंने तो अपने मनमें यही सोचा था कि इस सिद्ध तपस्विनीको वहाँ पहुँचा दूँ, जहाँ प्रजापति ब्रह्मा हैं, जहाँ महादेवजी हैं, जहाँ सनातन भगवान् विष्णु हैं तथा जहाँ धर्म एवं यज्ञ है, वहीं इसे निवास करना चाहिये ।। ८-९ ।।

सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया ।
मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ।। १० ।।

'अतः मैं भगवती शाण्डिलीके चरणोंमें पड़कर यह प्रार्थना करता हूँ कि

मैंने अपने चिन्तनशील मनके द्वारा आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ही यह बात सोची है ।। १० ।।

तदेवं बहुमानात् ते मयेहानीप्सितं कृतम् ।
सुकृतं दुष्कृतं वात्वं माहात्म्यात् क्षन्तुमर्हसि ।। ११ ।।

'आपके प्रति विशेष आदरका भाव होनेसे ही मैंने इस स्थानपर ऐसा चिन्तन किया है, जो सम्भवतः आपको अभीष्ट नहीं रहा है । मेरे द्वारा यह पुण्य हुआ हो या पाप, अपने ही माहात्म्यसे आप मेरे इस अपराधको क्षमा कर दें' ।। ११ ।।

सा तौ तदाब्रवीत् तुष्टा पतगेन्द्रद्विजर्षभौ ।
न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्ण त्यज सम्भ्रमम् ।। १२ ।।

यह सुनकर तपस्विनी बहुत संतुष्ट हुई । उसने उस समय पक्षिराज गरुड़ और विप्रवर गालवसे कहा—'सुपर्ण! तुम्हारे पंख और भी सुन्दर हो जायँगे; अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये । तुम घबराहट छोड़ो ।।१२।।

निन्दितास्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम् ।
लोकेभ्यः सपदि भ्रश्येद् यो मां निन्देत पापकृत् ।। १३ ।।

'वत्स ! तुमने मेरी निन्दा की है, मैं निन्दा नहीं सहन करती हूँ । जो पापी मेरी निन्दा करेगा, वह पुण्यलोकोंसे तत्काल भ्रष्ट हो जायगा ।। १३ ।।

हीनयालक्षणैः सर्वैस्तथानिन्दितया मया ।
आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा ।। १४ ।।

'समस्त अशुभ लक्षणोंसे हीन और अनिन्दित रहकर सदाचारका पालन करते हुए ही मैंने यह उत्तम सिद्धि प्राप्त की है ।। १४ ।।

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ।। १५ ।।

'आचार ही धर्मको सफल बनाता है, आचार ही धनरूपी फल देता है, आचारसे मनुष्यको सम्पत्ति प्राप्त होती है और आचार ही अशुभ लक्षणोंका भी नाश कर देता है ।। १५ ।।

तदायुष्मन् खगपते यथेष्टं गम्यतामितः ।
न च ते गर्हणीयाहं गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित् ।। १६ ।।

'अतः आयुष्मन् पक्षिराज ! अब तुम यहाँसे अपने अभीष्ट स्थानको

जाओ। आजसे तुम्हें मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। मेरी ही क्यों, कहीं किसी भी स्त्रीकी निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ १६ ॥

भवितासि यथापूर्वं बलवीर्यसमन्वितः।
बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥ १७ ॥

'अब तुम पहलेकी ही भांति बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो जाओगे।' शाण्डिलीके इतना कहते ही गरुड़की पांखें पहलेसे भी अधिक शक्तिशाली हो गयीं ॥ १७ ॥

अनुज्ञातस्तु शाण्डिल्या यथागतमुपागमत्।
नैव चासादयामास तथारूपांस्तुरंगमान् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् शाण्डिलीकी आज्ञा ले वे जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। वे गालवके बताये अनुसार श्यामकर्ण घोड़े नहीं पा सके ॥ १८ ॥

विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवं चाध्वनि स्थितः।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य संनिधौ ॥ १९ ॥

इधर गालवको राहमें आते देख वक्ताओंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी खड़े हो गये और गरुड़के समीप उनसे इस प्रकार बोले—॥ १९ ॥

यस्त्वया स्वयमेवार्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज।
तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् ॥ २० ॥

'ब्रह्मन्! तुमने स्वयं ही जिस धनको देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे देनेका समय आ गया है। फिर तुम जैसा ठीक समझो, करो ॥ २० ॥

प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथा परम्।
यथा संसिध्यते विप्र स मार्गस्तु निशाम्यताम् ॥ २१ ॥

मैं इतने ही समयतक और तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। ब्रह्मन्! जिस प्रकार तुम्हें सफलता मिल सके, उस मार्गका विचार करो' ॥ २१ ॥

सुपर्णोऽथाब्रवीद् दीनं गालवं भृशदुःखितम्।
प्रत्यक्षं खल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥ २२ ॥

तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव।
नादत्त्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयाऽऽसितुम् ॥ २३ ॥

तदनन्तर दीन और अत्यन्त दुखी हुए गालव मुनिसे गरुड़ने कहा—'द्विजश्रेष्ठ गालव! विश्वामित्रजीने मेरे सामने जो कुछ कहा है, आओ, उसके

विषयमें हम दोनों सलाह करें। तुम्हें अपने गुरुको उनका सारा धन चुकाये बिना चुप नहीं बैठना चाहिये' ।। २२-२३ ।।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११३ ।।

एक सौ तेरहवां अध्याय ।। ११३ ।।

गरुड़ और गालवका राजा ययातिके यहां जाकर गुरुको देनेके लिये श्यामकर्ण घोड़ोंकी याचना करना

नारद उवाच

अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः ।
निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ।
यस्माद्धिरण्मयं सर्वं हिरण्यं तेन चोच्यते ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने दीन:दुखी गालव मुनिसे इस प्रकार कहा—'पृथ्वीके भीतर जो उसका सारतत्त्व है, उसे तपाकर अग्निने जिसका निर्माण किया है और उस अग्निको उद्दीप्त करने वाली वायुने जिसका शोधन किया है, उस सुवर्णको हिरण्य कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् हिरण्यप्रधान है; इसलिये भी उसे हिरण्य कहते हैं ।। १ ।।

धत्ते धारयते चेदमेतस्मात् कारणाद् धनम् ।
तदेतत् त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ।। २ ।।

'वह इस जगतको स्वयं तो धारण करता ही है, दूसरोंसे भी धारण कराता है। इस कारण उस सुवर्णका नाम धन, है । यह धन तीनों लोकोंमें सदा स्थित रहता है ।। २ ।।

नित्यं प्रोष्ठपदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ।
मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ।। ३ ।।

अजैकपादहिर्बुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च ।
एवं न शक्यते लब्धुमलब्धव्यं द्विजर्षभ ।।
ऋते च धनमश्वानां नावाप्तिर्विद्यते तव ।। ४ ।।

'द्विजश्रेष्ठ ! पूर्व भाद्रपद और उत्तरभाद्रपद इन दो नक्षत्रोंमेंसे किसी एकके साथ शुक्रवारका योग हो तो अग्निदेव कुबेरके लिये अपने संकल्पसे धनका निर्माण करके उसे मनुष्योंको दे देते हैं। पूर्वभाद्रपदके देवता अजैक-

पाद्, उत्तरभाद्रपदके देवता अहिर्बुध्न्य और कुबेर—ये तीनों उस धनकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार किसीको भी ऐसा धन नहीं मिल सकता, जो प्रारब्धवश उसे मिलनेवाला न हो और धनके बिना तुम्हें श्यामकर्ण घोड़ोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ३-४ ॥

स त्वं याचात्र राजानं कंचिद् राजर्षिवंशजम्।
अपीडय राजा पौरान् हि यो नौ कुर्यात् कृतार्थिनौ ॥ ५ ॥

'इसलिये मेरी राय यह है कि तुम राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुए किसी ऐसे राजाके पास चलकर धनके लिये याचना करो, जो पुरवासियोंको पीड़ा दिये बिना ही हम दोनोंको धन देकर कृतार्थ कर सके ॥ ५ ॥

अस्ति सोमान्ववाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा।
अभिगच्छावहे तं वै तस्यास्ति विभवो भुवि ॥ ६ ॥

'चन्द्रवंशमें उत्पन्न एक राजा हैं, जो मेरे मित्र है। हम दोनों उन्हींके पास चलें। इस भूतलपर उनके पास अवश्य ही धन है ॥ ६ ॥

ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः।
स दास्यति मया चोक्तो भवता चार्थितः स्वयम् ॥ ७ ॥

'मेरे उन मित्रका नाम है राजर्षि ययाति, जो महाराज नहुषके पुत्र हैं। वे सत्यपराक्रमी वीर हैं। तुम्हारे माँगने और मेरे कहनेपर वे स्वयं ही तुम्हें धन देंगे ॥ ७ ॥

विभवश्चास्य सुमहानासीद् धनपतेरिव ।
एवं गुरुधनं विद्वन् दानेनैव विशोधय ॥ ८ ॥

'उनके पास धनाध्यक्ष कुबेरकी भाँति महान् वैभव रहा है। विद्वान्! इस प्रकार दान लेकर ही तुम गुरुदक्षिणाका ऋण चुका दो' ॥ ८ ॥

तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत् क्षमम्।
प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपस्थितौ ॥ ९ ॥

इस प्रकार परस्पर बातें करते और उचित कर्तव्यको मन ही मन सोचते हुए वे दोनों प्रतिष्ठानपुरमें राजा ययातिके दरबारमें उपस्थित हुए ॥ ९ ॥

प्रतिगृह्य च सत्कारैरर्घ्यपाद्यादिकं वरम्।
पृष्टश्चागमने हेतुमुवाच विनतासुतः ॥ १० ॥

राजाके द्वारा सत्कारपूर्वक दिये हुए श्रेष्ठ अर्घ्य-पाद्य आदि ग्रहण करके विनतानन्दन गरुड़ने उनके पूछनेपर अपने आगमनका प्रयोजन इस प्रकार बताया—॥ १० ॥

अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः ।
विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद् वर्षाण्ययुतशो नृप ॥ ११ ॥

'नहुषनन्दन ! ये तपोनिधि गालव मेरे मित्र हैं । राजन् ये दस हजार वर्षोंतक महर्षि विश्वामित्रके शिष्य रहे हैं ॥ ११ ॥

सोऽयं तेनाभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः ।
तमाह भगवन् किं ते ददानि गुरुदक्षिणाम् ॥ १२ ॥

'विश्वामित्रजीने इनका भी उपकार करनेकी इच्छासे इन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी । तब इन्होंने उनसे पूछा—'भगवान् ! मैं आपको क्या गुरु-दक्षिणा दूं ? ॥ १२ ॥

असकृत् तेन चोक्तेन किंचिदागतमन्युना ।
अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥ १३ ॥
एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ १४ ॥
गुर्वर्थो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे ।
इत्येवमाह सक्रोधो विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ १५ ॥

'इनके बार-बार आग्रह करनेपर विश्वामित्रजीको कुछ क्रोध आ गया; अतः इनके पास धनका अभाव है, यह जानते हुए भी उन्होंने इनसे कहा—'लाओ, गुरुदक्षिणा दो । गालव ! मुझे अच्छी जातिमें उत्पन्न हुए ऐसे आठ सौ घोड़े दो, जिनकी अङ्गकान्ति चन्द्रमाके समान उज्जवल और कान एक ओरसे श्याम रंगके हों । गालव ! यदि तुम मेरी बात मानो तो यही गुरु-दक्षिणा ला दो ।' तपोधन विश्वामित्रने यह बात कुपित होकर ही कही थी ॥ १३—१५ ॥

सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः ।
अशक्तः प्रतिकर्तुं तद् भवन्तं शरणं गतः ॥ १६ ॥

'अतः ये द्विजश्रेष्ठ गालव महान् शोकसे संतप्त हो गुरुदक्षिणा चुकानेमें असमर्थ हो गये हैं और इसीलिये आपकी शरणमें आये हैं ॥ १६ ॥

प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः ।
कृत्वापवर्गं गुरवे चरिष्यति महत् तपः ।। १७ ।।

'पुरुषसिंह ! आपसे भिक्षा ग्रहण करके गुरुको पूर्वोक्त धन देकर ये क्लेशरहित हो महान् तपमें संलग्न हो जायँगे ।। १७ ।।

तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते ।
स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ।। १८ ।।

अपनी तपस्याके एक अंशसे ये आपको भी संयुक्त करेंगे । यद्यपि आप अपनी राजर्षिजनोचित तपस्यासे पूर्ण हैं, तथापि ये अपने ब्राह्म तपसे आपको और भी परिपूर्ण करेंगे ।। १८ ।।

यावन्ति रोमाणि हये भवन्तीह नरेश्वर ।
तावन्तो वाजिनो लोकान् प्राप्नुवन्ति महीपते ।। १९ ।।

'नरेश्वर ! भूपाल । यहाँ (दान किये हुए) घोड़ेके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, दान करनेवाले लोगोंको (परलोकमें) उतने ही घोड़े प्राप्त होते हैं ।। १९ ।।

पात्रं प्रतिग्रहस्यायं दातुं पात्रं तथा भवान् ।
शङ्खे क्षीरमिवासिक्तं भवत्वेतत् तथोपमम् ।। २० ।।

'ये गालव दान लेनेके सुयोग्य पात्र हैं और आप दान करनेके श्रेष्ठ अधिकारी हैं । जैसे शङ्खमें दूध रक्खा गया हो, उसी प्रकार इनके हाथमें दिये हुए आपके इस दानकी शोभा होगी' ।। २० ।।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११४ ।।
एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ।। ११४ ।।

राजा ययातिका गालवको अपनी कन्या देना और गालवका उसे लेकर अयोध्यानरेशके यहाँ जाना

नारद उवाच

एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम् ।
विमृश्यावहितो राजा निश्चित्य च पुनः पुनः ।। १ ।।

यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः ।
ययातिः सर्वकाशीश इदं वचनमब्रवीत् ।। २ ।।

नारदजी कहते हैं—गरुड़ने जब इस प्रकार यथार्थ और उत्तम बात कही, तब सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, दाता, दानपति, प्रभावशाली तथा राजोचित तेजसे प्रकाशित होने वाले सम्पूर्ण काशिराज महाराज ययाति ने सावधानीके साथ बारम्बार विचार करके एक निश्चयपर पहुँचकर इस प्रकार कहा ।। १-२ ।।

दृष्ट्वा प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवं च द्विजर्षभम् ।
निदर्शनं च तपसो भिक्षां श्लाघ्यां च कीर्तिताम् । ३ ।

अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसम्भवान् ।
मत्सकाशमनुप्राप्तावेतां बुद्धिमवेक्ष्य च ।। ४ ।।

राजा ने पहले अपने प्रिय मित्र गरुड़ तथा तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप विप्रवर गालवको अपने यहाँ उपस्थित देख और उनकी बतायी हुई स्पृहणीय भिक्षाकी बात सुनकर मनमें इस प्रकार विचार किया—

'ये दोनों सूर्य वंशमें उत्पन्न हुए दूसरे अनेक राजाओंको छोड़कर मेरे पास आये हैं ।' ऐसा विचारकर वे बोले—।। ३-४ ।।

अद्य मे सफलं जन्म तारितं चाद्य मे कुलम् ।
अद्यायं तारितो देशो मम तार्क्ष्य त्वयानघ ।। ५ ।।

'निष्पाप गरुड़ ! आज मेरा जन्म सफल हो गया । आज मेरे कुलका उद्धार हो गया और आज आपने मेरे इस सम्पूर्ण देशको भी तार दिया ।। ५ ।।

वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा ।
न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तं च मे सखे ।। ६ ।।

'सखे ! फिर भी मैं एक बात कहना चाहता हूँ । आप पहलेसे मुझे जैसा धनवान् समझते हैं, वैसा धनसम्पन्न अब मैं नहीं रह गया हूँ । मित्र ! मेरा वैभव इन दिनोंक्षीण हो गया है ।। ६ ।।

न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग ।
न चाशामस्य विप्रर्षेर्वितथीकर्तुमुत्सहे ।। ७ ।।

'आकाशचारी गरुड़ ! इस दशामें भी मैं आपके आगमनको निष्फल करनेमें असमर्थ हूँ और इन ब्रह्मर्षिकी आशाको भी मैं विफल करना नहीं चाहता ।। ७ ।।

तत् तु दास्यामि यत् कार्यमिदं सम्पादयिष्यति ।
अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम् ।। ८ ।।

'अतः मैं एक ऐसी वस्तु दूंगा, जो इस कार्यका सम्पादन कर देगी। अपने पास आकर कोई याचक हताश हो जाय तो वह लौटनेपर आशा भंग करनेवाले राजाके समूचे कुलको दग्ध कर देता है ।। ८ ।।

नातः परं वैनतेय किंचित् पापिष्ठमुच्यते ।
यथाशानाशनाल्लोके देहि नास्तीति वा वचः ।। ९ ।।

'विनतानन्दन ! लोकमें कोई 'दीजिये' कहकर कुछ माँगे और उससे यह कह दिया जाय कि जाओ मेरे पास नहीं है, इस प्रकार याचकी आशाको भंग करनेसे जितना पाप लगता है, इससे बढ़कर पापकी दूसरी कोई बात नहीं कही जाती है ।। ९ ।।

हताशो ह्यकृतार्थः सन् हतः सम्भावितो नरः ।
हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्चाकुर्वतो हितम् ।। १० ।।

'कोई श्रेष्ठ मनुष्य जब कहीं याचना करके हताश एवं असफल होता है, तब वह मरे हुएके समान हो जाता है और अपना हित न करने वाले धनीके पुत्रों तथा पौत्रोंका नाश कर डालता है ।। १० ।।

तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम ।
इयं सुरसुतप्रख्या सर्वधर्मोपचायिनी ।। ११ ।।

'अतः मेरी जो यह पुत्री है, यह चार कुलोंकी स्थापना करनेवाली है। इसकी कान्ति देवकन्याके समान है। यह सम्पूर्ण धर्मोंकी वृद्धि करनेवाली है ।। ११ ।।

सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव ।
काङ्क्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम् ।। १२ ।।

'गालव ! इसके रूप सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर देवता, मनुष्य तथा असुर सभी लोग सदा इसे पानेकी अभिलाषा रखते हैं; अतः आप मेरी इस पुत्रीको ही ग्रहण कीजिये ।। १२ ।।

अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम् ।
किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते ।। १३ ।।

'इसके शुल्कके रूपमें राजालोग निश्चय ही अपना राज्य भी आपको दे देंगे; फिर आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ोंकीतो बात ही क्या है ? ॥ १३ ॥

स भवान् प्रतिगृह्णातु ममैतां माधवीं सुताम् ।
अहं दौहित्रवान् स्यां वै वर एष मम प्रभो ॥ १४ ॥

'अतः प्रभो ! आप मेरी इस पुत्री माधवीको ग्रहण करें और मुझे यह वर दें कि मैं दौहित्रवान् (नातियोंसे युक्त) होऊँ ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ।
पुनर्द्रक्ष्याव इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५ ॥

तब गरुड़सहित गालवने उस कन्याको लेकर कहा—'अच्छा, हम फिर कभी मिलेंगे ।' राजासे ऐसा कहकर गालव मुनि कन्याके साथ वहाँसे चल दिये ॥ १५ ॥

उपलब्धमिदं द्वारमश्वानामिति चाण्डजः ।
उक्त्वा गालवमापृच्छ्य जगाम भवनं स्वकम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर गरुड़ भी यह कहकर कि अब तुम्हें घोड़ोंकी प्राप्तिका यह द्वार प्राप्त हो गया, गालवसे विदा ले अपने घरको चले गये ॥ १६ ॥

गते पतगराजे तु गालवः सह कन्यया ।
चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुल्कतोऽगमत् ॥ १७ ॥

पक्षिराज गरुड़के चले जानेपर गालव उस कन्याके साथ यह सोचते हुए चल दिये कि राजाओंमेंसे कौन ऐसा नरेश है, जो इस कन्याका शुल्क देनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥

सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम् ।
अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ १८ ॥

वे मन-ही-मन विचार करके अयोध्यामें इक्ष्वाकुवंशी नृपतिशिरोमणि महापराक्रमी हर्यश्वके पास गये, जो चतुरङ्गिणी सेनासे सम्पन्न थे ॥ १८ ॥

कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम् ।
प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् ॥ १९ ॥

वे कोष, धन-धान्य और सैनिकबल—सबसे सम्पन्न थे । पुरवासी प्रजा उन्हें बहुत ही प्रिय थी । ब्राह्मणोंके प्रति उनका अधिक प्रेम था । वे प्रजावर्ग

के हितकी इच्छा रखते थे। उनका मन भोगोंसे विरक्त एवं शान्त था। वे उत्तम तपस्यामें लगे हुए थे ।। १६ ।।

तमुपागम्य विप्रः स हर्यश्वं गालवोऽब्रवीत्।
कन्येयं मम राजेन्द्र प्रसवैः कुलवर्धिनी ।। २० ।।
इयं शुल्केन भार्यार्थे हर्यश्व प्रतिगृह्यताम्।
शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा सम्प्रधार्यताम् ।। २१ ।।

राजा हर्यश्वके पास जाकर विप्रवर गालवने कहा—'राजेन्द्र! मेरी यह कन्या अपनी सन्तानोंद्वारा वंशकी वृद्धि करनेवाली है। तुम शुल्क देकर इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करो। हर्यश्व! मैं तुम्हें पहले इसका शुल्क बताऊँगा। उसे सुनकर तुम अपने कर्तव्यका निश्चय करो' ।। २०-२१ ।।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११५ ।।
एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय ।। ११५ ।।

हर्यश्वका दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर ययातिकन्याके गर्भसे वसुमना नामक पुत्र उत्पन्न करना और गालवका इस कन्याके साथ वहांसे प्रस्थान

नारद उवाच

हर्यश्वस्त्वब्रवीद् राजा विचिन्त्य बहुधा ततः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ।। १ ।।
उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु पञ्चसु।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ।। २ ।।

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर नृपतिश्रेष्ठ राजा हर्यश्वने उस कन्याके विषयमें बहुत सोच-विचारकर संतानोत्पादन की इच्छासे गरम-गरम लम्बी साँस खींचकर मुनिसे इस प्रकार कहा—'द्विजश्रेष्ठ! इस कन्याके छः अङ्ग जो ऊँचे होने चाहिये, ऊँचे हैं। पाँच अङ्ग जो सूक्ष्म होने चाहिये, सूक्ष्म हैं। तीन अङ्ग जो गम्भीर होने चाहिये, गम्भीर हैं तथा इसके पाँच अङ्ग रक्तवर्ण के हैं ।। १-२ ।।

स्वरः सत्त्वं च नाभिश्च त्रिगम्भीरं प्रचक्षते।
पाणिपादतले रक्ते नेत्रान्तौ च नखानि च ।।)

'दो नितम्ब, दो जाँघें, ललाट और नासिका—ये छः अङ्ग ऊँचे हैं। अंगुलियोंके पर्व, केश, रोम, नख और त्वचा—ये पाँच अङ्ग सूक्ष्म हैं। स्वर, अन्तःकरण तथा नाभि—ये तीन गम्भीर कहे जा सकते हैं तथा हथेली, पैरोंके तलवे, दक्षिण नेत्रप्रान्त, वाम नेत्रप्रान्त तथा नख—ये पाँच अङ्ग रक्तवर्णके हैं॥

बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना।
बहुलक्षणसम्पन्ना बहुप्रसवधारिणी॥ ३॥

'यह बहुत-से देवताओं तथा असुरोंके लिये भी दर्शनीय है। इसे गन्धर्व-विद्या (संगीत) का भी अच्छा ज्ञान है। यह बहुत से शुभ लक्षणोंद्वारा सुशोभित तथा अनेक संतानोंको जन्म देनेमें समर्थ है॥ ३॥

समर्थेयं जनयितुं चक्रवर्तिनमात्मजम्।
ब्रूहि शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विभवं मम॥ ४॥

विप्रवर! आपकी यह कन्या चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ है; अतः आप मेरे वैभवको देखते हुए इसके लिये समुचित शुल्क बताइये'॥ ४॥

गालव उवाच

एकतः श्यामकर्णानां शतान्यष्टौ प्रयच्छ मे।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम्॥ ५॥
ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा।
अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना॥ ६॥

गालवने कहा—राजन्! आप मुझे अच्छे देश और अच्छी जातिमें उत्पन्न हृष्ट-पुष्ट अङ्गोंवाले आठ सौ ऐसे घोड़े प्रदान कीजिये, जो चन्द्रमाके सम्मान उज्ज्वल कान्तिसे विभूषित हों तथा उनके कान एक ओरसे श्यामवर्णके हों। यह शुल्क चुका देनेपर मेरी यह विशाल नेत्रोंवाली शुभलक्षणा कन्या अग्नियोंको प्रकट करनेवाली अरणीकी भाँति आपके तेजस्वी पुत्रोंकी जननी होगी॥ ५-६॥

नारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राजा हर्यश्वः काममोहितः।
उवाच गालवं दीनो राजर्षिर्ऋषिसत्तमम्॥ ७॥

नारदजी कहते हैं—यह वचन सुनकर काममोहित हुए राजर्षि महाराज हर्यश्व मुनिश्रेष्ठ गालवसे अत्यन्त दीन होकर बोले—॥ ७॥

द्वे मे शते संनिहिते हयानां यद्विधास्तव ।
एष्टव्याः शतशस्त्वन्ये चरन्ति मम वाजिनः ॥ ८ ॥

'ब्रह्मन् ! आपको जैसे घोड़े लेने अभीष्ट हैं, वैसे तो मेरे यहाँ इन दिनों दो ही सौ घोड़े मौजूद हैं; किन्तु दूसरी जातीके कई सौ घोड़े यहाँ विचरते हैं ॥ ८ ॥

सोऽहमेकमपत्यं वै जनयिष्यामि गालव ।
अस्यामेतं भवान् कामं सम्पादयतु मे वरम् ॥ ९ ॥

'अतः गालव ! मैं इस कन्यासे केवल एक संतान उत्पन्न करूँगा। आप मेरे इस श्रेष्ठ मनोरथको पूर्ण करें' ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा कन्या गालवं वाक्यमब्रवीत् ।
मम दत्तो वरः कश्चित् केनचिद् ब्रह्मवादिना ॥ १० ॥
प्रसूत्यन्ते प्रसूत्यन्ते कन्यैव त्वं भविष्यसि ।
स त्वं ददस्व मां राज्ञे प्रतिगृह्य हयोत्तमान् ॥ ११ ॥

यह सुनकर उस कन्याने महर्षि गालवसे कहा—'मुने ! मुझे किन्हीं वेदवादी महात्माने यह एक वर दिया था कि तुम प्रत्येक प्रसवके अन्तमें फिर कन्याही हो जाओगी। अतः आप दो सौ उत्तम घोड़े लेकर मुझे राजाको सौंप दें ॥ १०-११ ॥

नृपेभ्यो हि चतुर्भ्यस्ते पूर्णान्यष्टौ शतानि मे ।
भविष्यन्ति तथा पुत्रा मम चत्वार एव च ॥ १२ ॥

'इस प्रकार चार राजाओंसे दो-दो सौ घोड़े लेनेपर आपके आठ सौ घोड़े पूरे हो जायँगे और मेरे भी चार हीं पुत्र होंगे ॥ १२ ॥

क्रियतामुपसंहारो गुर्वर्थे द्विजसत्तम ।
एषा तावन्मम प्रज्ञा यथा वा मन्यसे द्विज ॥ १३ ॥

'विप्रवर ! इसी तरह आप गुरुदक्षिणाके लिये धनका संग्रह करें, यही मेरी मान्यता है। फिर आप जैसा ठीक समझें, वैसा करें' ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु स मुनिः कन्यया गालवस्तदा ।
हर्यश्वं पृथिवीपालमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

कन्याके ऐसा कहनेपर उस समय गालव मुनिने भूपाल हर्यश्वसे यह बात कही—॥ १४ ॥

इयं कन्या नरश्रेष्ठ हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् ।
चतुर्भागेन शुल्कस्य जनयस्वैकमात्मजम् ।। १५ ।।

'नरश्रेष्ठ हर्यश्व ! नियत शुल्कका चौथाई भाग देकर आप इस कन्याको ग्रहण करें और इसके गर्भसे केवल एक पुत्र उत्पन्न कर लें' ।। १५ ।।

प्रतिगृह्य स तां कन्यां गालवं प्रतिनन्द्य च ।
समये देशकाले च लब्धवान् सुतमीप्सितम् ।। १६ ।।

तब राजाने गालव मुनिका अभिनन्दन करके उस कन्याको ग्रहण किया और उचित देशकालमें उसके द्वारा एक मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त किया ।। १६ ।।

ततो वसुमना नाम वसुभ्यो वसुमत्तरः ।
वसुप्रख्यो नरपतिः स बभूव वसुप्रदः ।। १७ ।।

तदनन्तर उनका वह पुत्र वसुमनाके नामसे विख्यात हुआ । वह वसुओंके समान कान्तिमान् तथा उनकी अपेक्षा भी अधिक धन-रत्नोंसे सम्पन्न और धनका खुले हाथ दान करने वाला नरेश हुआ ।। १७ ।।

अथ काले पुनर्धीमान् गालवः प्रत्युपस्थितः ।
उपसंगम्य चोवाच हर्यश्वं प्रीतमानसम् ।। १८ ।।

तत्पश्चात् उचित समयपर बुद्धिमान् गालव पुनः वहाँ उपस्थित हुए और प्रसन्नचित्त राजा हर्यश्वसे मिलकर इस प्रकार बोले—।। १८ ।।

जातो नृप सुतस्तेऽयं बालो भास्करसंनिभः ।
कालो गन्तुं नरश्रेष्ठ भिक्षार्थमपरं नृपम् ।। १९ ।।

'नरश्रेष्ठ नरेश ! आपको यह सूर्यके समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो गया । अब इस कन्याके साथ घोड़ोंकी याचना करनेके लिये दूसरे राजाके यहां जानेका अवसर उपस्थित हुआ है' ।। १९ ।।

हर्यश्वः सत्यवचने स्थितः स्थित्वा च पौरुषे ।
दुर्लभत्वाद्धयानां च प्रददौ माधवीं पुनः ।। २० ।।

राजा हर्यश्व सत्य वचनपर दृढ़ रहनेवाले थे । उन्होंने पुरुषार्थमें समर्थ होकर भी छः सौ श्यामकर्ण घोड़े दुर्लभ होनेके कारण माधवीको पुनः लौटा दिया ।। २० ।।

माधवी च पुनर्दीप्तां परित्यज्य नृपश्रियम् ।
कुमारी कामतो भूत्वा गालवं पृष्ठतोऽन्वयात् ।। २१ ।।

माधवी पुनः इच्छानुसार कुमारी होकर अयोध्याकी उज्जवल राजलक्ष्मी का परित्याग करके गालव मुनिके पीछे-पीछे चली गयी ।। २१ ।।

त्वय्येव तावत् तिष्ठन्तु हया इत्युक्तवान् द्विजः ।
प्रययौ कन्यया सार्धं दिवोदासं प्रजेश्वरम् ।। २२ ।।

जाते समय ब्राह्मणने राजा हर्यश्वसे कहा—'महाराज ! आपके दिये हुए दो सौ श्यामकर्ण घोड़े अभी आपके ही पास घरोहरके रूपमें रहें ।' ऐसा कहकर गालव मुनि उस राजकन्याके साथ राजा दिवोदासके यहाँ गये ।।२२।।

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११६ ।।

एक सौ सोलहवाँ अध्याय पुरा हुआ ।। ११६ ।।

दिवोदासका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न करना

गालव उवाच

महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः ।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ।। १ ।।

तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः ।
धार्मिकः संयमे युक्तः सत्ये चैव जनेश्वरः ।। २ ।।

मार्गमें गालवने राजकन्या माधवीसे कहा—भद्रे ! काशीके अधिपति भीमसेनकुमार शक्तिशाली राजा दिवोदास महापराक्रमी एवं विख्यात भूमिपाल हैं । उन्हींके पास हम दोनों चलें । तुम धीरे-धीरे चली आओ । मनमें किसी प्रकारका शोक न करो । राजा दिवोदास धर्मात्मा, संयमी तथा सत्य परायण हैं ।। १-२ ।।

नारद उवाच

तमुपागम्य स मुनिर्न्यायतस्तेन सत्कृतः ।
गालवः प्रसवस्यार्थे तं नृपं प्रत्यचोदयत् ।। ३ ।।

नारदजी कहते हैं—राजा दिवोदासके यहाँ जानेपर गालव मुनिका उनके द्वारा यथोचित सत्कार किया गया । तदनन्तर गालवने पूर्ववत् उन्हें भी शुल्क देकर उस कन्यासे एक संतान उत्पन्न करनेके लिये प्रेरित किया ।। ३ ।।

दिवोदास उवाच

श्रुतमेतन्मया पूर्वं किमुक्त्वा विस्तरं द्विज ।
काङ्क्षितो हि मयैषोऽर्थः श्रुत्वैव द्विजसत्तम ।। ४ ।।

दिवोदास बोले—ब्रह्मन् ! यह सब वृत्तान्त मैंने पहलेसे ही सुन रक्खा है । अब इसे विस्तारपूर्वक कहनेकी क्या आवश्यकता है ? द्विजश्रेष्ठ ! आपके प्रस्तावको सुनते ही मेरे मनमें यह पुत्रोत्पादनकी अभिलाषा जाग उठी है ।। ४ ।।

एतच्च मे बहुमतं यदुत्सृज्य नराधिपान् ।
मामेवमुपयातोऽसि भावि चैतदसंशयम् ।। ५ ।।

यह मेरे लिये बड़े सम्मानकी बात है कि आप दूसरे राजाओंको छोड़कर मेरे पास इस रूपमें प्रार्थी होकर आये हैं । निःसंदेह ऐसा ही भावी है ।। ५ ।।

स एव विभवोऽस्माकमश्वानामपि गालव ।
अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि पार्थिवम् ।। ६ ।।

गालव ! मेरे पास भी दो ही सौ श्यामकर्ण घोड़े हैं; अतः मैं भी इसके गर्भसे एक ही राजकुमारको उत्पन्न करूँगा ।। ६ ।।

तथेत्युक्त्वा द्विजश्रेष्ठः प्रादात् कन्यां महीपतेः ।
विधिपूर्वं च तां राजा कन्यां प्रतिगृहीतवान् ।। ७ ।।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर विप्रवर गालवने वह कन्या राजाको दे दी । राजाने भी उसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ।। ७ ।।

रेमे स तस्यां राजर्षिः प्रभावत्यां यथा रविः ।
स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां च वासवः ।। ८ ।।

यथा चन्द्रश्च रोहिण्यां यथा धूमोर्णया यमः ।
वरुणश्च यथा गौर्यां यथा चर्ष्यां धनेश्वरः ।। ९ ।।

यथा नारायणो लक्ष्म्यां जाह्नव्यां च यथोदधिः ।
यथारुद्रश्च रुद्राण्यां यथा वेद्यां पितामहः ।। १० ।।

अदृश्यन्त्यां च वासिष्ठो वसिष्ठश्चाक्षमालया ।
च्यवनश्च सुकन्यायां पुलस्त्यः संध्यया यथा ।। ११ ।।

अगस्त्यश्चापि वैदर्भ्यां सावित्र्यां सत्यवान् यथा ।
यथा भृगुः पुलोमायामदित्यां कश्यपो यथा ।। १२ ।।

रेणुकायां यथाऽऽर्चीको हैमवत्यां च कौशिकः ।
बृहस्पतिश्च तारायां शुक्रश्च शतपर्वणा ।। १३ ।।

यथा भून्यां भूमिपतिरुर्वश्यां च पुरूरवाः ।
ऋचीकः सत्यवत्यां च सरस्वत्यां यथा मनुः ।। १४ ।।

शकुन्तलायां दुष्यन्तो धृत्यां धर्मश्च शाश्वतः ।
दमयन्त्यां नलश्चैव सत्यवत्यां च नारदः ।। १५ ।।

जरत्कारुर्जरत्कार्वां पुलस्त्यश्च प्रतीच्यया ।
मेनकायां यथोर्णायुस्तुम्बुरुश्चैव रम्भया ।। १६ ।।

वासुकिः शतशीर्षायां कुमार्यां च धनंजयः ।
वैदेह्यां च यथा रामो रुक्मिण्यां च जनार्दनः ।। १७ ।।

तथा तु रममाणस्य दिवोदासस्य भूपतेः ।
माधवी जनयामास पुत्रमेकं प्रतर्दनम् ।। १८ ।।

राजर्षि दिवोदास माधवीमें अनुरक्त होकर उसके साथ रमण करने लगे। जैसे सूर्य प्रभावतीके, अग्नि स्वाहाके, देवेन्द्र शचीके, चन्द्रमा रोहिणीके, यमराज धूमोर्णाके, वरुण गौरीके, कुबेर ऋद्धिके, नारायण लक्ष्मीके समुद्र गङ्गाके, रुद्रदेव रुद्राणीके, पितामह ब्रह्मा वेदीके, वसिष्ठनन्दन शक्ति अदृश्यन्तीके, वसिष्ठ अक्षमाला (अरुन्धती) के, च्यवन सुकन्याके, पुलस्त्य संध्याके अगस्त्य विदर्भराजकुमारी लोपामुद्राके, सत्यवान् सावित्रीके, भृगु पुलोमाके, कश्यप अदितिके, जमदग्नि रेणुकाके, कुशिकवंशी विश्वामित्र हैमवतीके, बृहस्पति ताराके, शुक्र शतपर्वाके, भूमिपति भूमिके, पुरूरवा उर्वशीके, ऋचीक सत्यवतीके, मनु सरस्वतीके, दुष्यन्त शकुन्तलाके, सनातन धर्मदेव धृतिके, नल दमयन्तीके, नारद सत्यवतीके, जरत्कारु मुनि नागकन्या जरत्कारुके, पुलस्त्य प्रतीच्याके, ऊर्णायु मेनकाके, तुम्बुरु रम्भाके, वासुकि शतशीर्षाके, धनंजय कुमारीके, श्रीरामचन्द्र विदेहनन्दिनी सीताके तथा भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीदेवीके साथ रमण करते हैं, उसी प्रकार अपने साथ रमण करनेवाले राजा दिवोदासके वीर्यसे माधवीने प्रतर्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ।। ८-१८ ।।

अथाजगाम भगवान् दिवोदासं स गालवः ।
समये समनुप्राप्ते वचनं चेदमब्रवीत् ।। १९ ।।

तदनन्तर समय आनेपर भगवान् गालव मुनि पुनः दिवोदासके पास आये और उनसे इस प्रकार बोले—।। १९ ।।

निर्यातयतु मे कन्यां भवांस्तिष्ठन्तु वाजिनः ।
यावदन्यत्र गच्छामि शुल्कार्थं पृथिवीपते ।। २० ।।

'पृथ्वीनाथ ! अब आप मुझे राजकन्याको लौटा दें। आपके दिये हुए घोड़े अभी आपके ही पास रहें। मैं इस समय शुल्क प्राप्त करनेके लिये अन्यत्र जा रहा हूँ' ॥ २० ॥

दिवोदासोऽथ धर्मात्मा समये गालवस्य ताम्।
कन्यां निर्यातयामास स्थितः सत्ये महीपतिः ॥ २१ ॥

धर्मात्मा राजा दिवोदास अपनी की हुई सत्य प्रतिज्ञापर अटल रहनेवाले थे; अतः उन्होंने गालवको वह कन्या लौटा दी ॥ २१ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥
एक सौ सत्रहवाँ अध्याय ॥ ११७ ॥

उशीनरका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे शिवि नामक पुत्र उत्पन्न करना

नारद उवाच

तथैव तां श्रियं त्यक्त्वा कन्या भूत्वा यशस्विनी।
माधवी गालवं विप्रमभ्ययात् सत्यसंगरा ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर वह यशस्विनी राजकन्या माधवी सत्यके पालनमें तत्पर हो काशीनरेशकी उस राजलक्ष्मीको त्यागकर विप्रवर गालवके साथ चली गयी। १।

गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः।
जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम् ॥ २ ॥

गालवका मन अपने कार्यकी सिद्धिके चिन्तनमें लगा था। उन्होंने मन ही मन कुछ सोचते हुए राजा उशीनरसे मिलनेके लिये भोजनगरकी यात्रा की ॥ २ ॥

तमुवाचाथ गत्वा स नृपतिं सत्यविक्रमम्।
इयं कन्या सुतौ द्वौ ते जनयिष्यति पार्थिवौ ॥ ३ ॥

उन सत्यपराक्रमी नरेशके पास जाकर गालवने उनसे कहा—'राजन् ! यह कन्या आपके लिये पृथ्वीका शासन करनेमें समर्थ दो पुत्र उत्पन्न करेगी ॥ ३ ॥

अस्यां भवानवाप्तार्थो भविता प्रेत्य चेह च।
सोमार्कप्रतिसंकाशौ जनयित्वा सुतौ नृप ॥ ४ ॥

'नरेश्वर ! इसके गर्भसे सूर्य और चन्द्रमाके समान दो तेजस्वी पुत्र पैदा करके आप लोक और परलोकमें भी पूर्णकाम होंगे ।। ४ ।।

शुल्कं तु सर्वधर्मज्ञ हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
एकतः श्यामकर्णानां देयं मह्यं चतुःशतम् ।। ५ ।।

'समस्त धर्मोंके ज्ञाता भूपाल ! आप इस कन्याके शुल्कके रूपमें मुझे ऐसे चार सौ अश्व प्रदान करें, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित तथा एक ओरसे श्यामवर्ण के कानोंवाले हों ।। ५ ।।

गुर्वर्थोऽयं समारम्भो न हयैः कृत्यमस्ति मे ।
यदि शक्यं महाराज क्रियतामविचारितम् ।। ६ ।।

'मैंने गुरुदक्षिणा देनेके लिये यह उद्योग आरम्भ कियाहै अन्यथा मुझे इन घोड़ोंकी कोई आवश्यकता नहींहै । महाराज ! यदि आपके लिये यह शुल्क देना सम्भव हो तो कोई अन्यथा विचार न करके यह कार्य सम्पन्न कीजिये ।। ६ ।।

अनपत्योऽसि राजर्षे पुत्रौ जनय पार्थिव ।
पितृन् पुत्रप्लवेन त्वमात्मानं चैव तारय ।। ७ ।।

'राजर्षे ! पृथ्वीपते ! आप संतानहीन हैं । अतः इससे दो पुत्र उत्पन्न कीजिये और पुत्ररूपी नौकाद्वारा पितरोंका तथा अपना भी उद्धार कीजिये ।। ७ ।।

न पुत्रफलभोक्ता हि राजर्षे पात्यते दिवः ।
न याति नरकं घोरं यथा गच्छन्त्यनात्मजाः ।। ८ ।।

'राजर्षे ! पुत्र जनित पुण्यफलका उपभोग करनेवाला मनुष्य कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिराया जाता और संतान हीन मनुष्य जिस प्रकार घोर नरकमें पड़ते हैं, उस प्रकार यह नहीं पड़ता' ।। ८ ।।

एतच्चान्यच्च विविधं श्रुत्वा गालवभाषितम् ।
उशीनरः प्रतिवचो ददौ तस्य नराधिपः ।। ९ ।।

गालवकी कही हुई ये तथा और भी बहुत-सी बातें सुनकर राजा उशीनर ने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ।। ९ ।।

श्रुतवानस्मि ते वाक्यं यथा वदसि गालव ।
विधिस्तु बलवान् ब्रह्मन् प्रवणं हि मनो मम ।। १० ।।

'विप्रवर गालव ! आप जैसा कहते हैं, वे सब बातें मैंने सुन लीं। परंतु विधाता प्रबल है। मेरा मन इससे सन्तान उत्पन्न करनेके लिये उत्सुक हो रहा है ॥ १० ॥

शते द्वे तु ममाश्वानामीदृशानां द्विजोत्तम।
इतरेषां सहस्राणि सुबहूनि चरन्ति मे ॥ ११ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! आपको जिनकी आवश्यकता है, ऐसे अश्व तो मेरे पास दोसौ ही हैं। दूसरी जातिके तो कई सहस्र घोड़े मेरे यहाँ विचरते हैं ॥११॥

अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि गालव।
पुत्रं द्विज गतं मार्गं गमिष्यामि परैरहम् ॥ १२ ॥

'अतः ब्रह्मर्षि गालव ! मैं भी इस कन्याके गर्भसे एकही पुत्र उत्पन्न करूँगा। दूसरे लोग जिस मार्गपर चले हैं, उसीपर मैं भी चलूँगा ॥ १२ ॥

मूल्येनापि समं कुर्यां तवाहं द्विजसत्तम।
पौरजानपदार्थं तु ममार्थो नात्मभोगतः ॥ १३ ॥

'द्विजप्रवर ! मैं घोड़ोंका मूल्य देकर आपका सारा शुल्क चुका दूँ, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि मेरा धन पुरवासियों तथा जनपदनिवासियोंके लिये है, अपने उपभोगमें लानेके लिये नहीं ॥ १३ ॥

कामतो हि धनं राजा पारक्यं यः प्रयच्छति।
न स धर्मेण धर्मात्मन् युज्यते यशसा न च ॥ १४ ॥

'धर्मात्मन् ! जो राजा पराये धनका अपनी इच्छाके अनुसार दान करता है, उसे धर्म और यशकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥

सोऽहं प्रतिग्रहीष्यामि ददात्वेतां भवान् मम।
कुमारीं देवगर्भाभामेकपुत्रभवाय मे ॥ १५ ॥

'अतः आप देवकन्याके समान सुन्दरी इस राजकुमारी को केवल एक पुत्र उत्पन्न करनेके लिये मुझे दें। मैं इसे ग्रहण करूँगा' ॥ १५ ॥

तथा तु बहुधा कन्यामुक्तवन्तं नराधिपम्।
उशीनरं द्विजश्रेष्ठो गालवः प्रत्यपूजयत् ॥ १६ ॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिकी न्याययुक्त बातें कहनेवाले राजा उशीनरकी विप्रवर गालवने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

उशीनरं प्रतिग्राह्य गालवः प्रययौ वनम्।
रेमे स तां समासाद्य कृतपुण्य इव श्रियम् ॥ १७ ॥

उशीनरको वह कन्या सौंपकर गालव मुनि वनको चले गये। जैसे पुण्यात्मा पुरुष राज्यलक्ष्मीको प्राप्त करे, उसी प्रकार उस राजकन्याको पाकर राजा उशीनर उसके साथ रमण करने लगे ।। १७ ।।

कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च ।
उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च ।। १८ ।।

हर्म्येषु रमणीयेषु प्रासादशिखरेषु च ।
वातायनविमानेषु तथा गर्भगृहेषु च ।। १९ ।।

उन्होंने पर्वतोकी कन्दराओंमें, नदियोंके सुरम्य तटोंपर, झरनोंके आस-पास, विचित्र उद्यानोंमें, वनों और उपवनोंमें, रमणीय अट्टालिकाओंमें, प्रासादशिखरोंपर, वायुके मार्गसे उड़नेवाले विमानोंपर तथा पृथ्वीके भीतर बने हुए गर्भगृहों में माधवीके साथ विहार किया ।। १८-१९ ।।

ततोऽस्य समये जज्ञे पुत्रो बालरविप्रभः ।
शिबिर्नाम्नाभिविख्यातो यः स पार्थिवसत्तमः ।। २० ।।

तदनन्तर यथासमय उसके गर्भसे राजाको एक पुत्र प्राप्त हुआ, जो बाल सूर्यके समान तेजस्वी था। वही बड़ा होनेपर नृपश्रेष्ठ महाराज शिविके नामसे विख्यात हुआ ।। २० ।।

उपस्थाय स तं विप्रो गालवः प्रतिगृह्य च ।
कन्यां प्रयातस्तां राजन् दृष्ट्वान् विनतात्मजम् ।। २१ ।।

राजन् ! तत्पश्चात् विप्रवर गालव राजाके दरबारमें उपस्थित हुए और उस कन्याको वापस लेकर वहाँसे चल दिये। मार्गमें उन्हें विनतानन्दन गरुड़ दिखायी दिये।। २१ ।।

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।। ११८ ।।

एक सौ अठारहवाँ अध्याय ।। ११८ ।।

गालवका छः सौ घोड़ोंके साथ माधवीको विश्वामित्रजीकी सेवामें देना और उनके द्वारा उसके गर्भसे अष्टक नामक पुत्रकी उत्पत्ति

नारद उवाच

गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
दिष्ट्या कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—उस समय विनतानन्दन गरुड़ने गालव मुनिसे हँसते

हुए कहा—'ब्रह्मन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं तुम्हें यहाँ कृतकृत्य देख रहा हूँ' ॥ १ ॥

गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम् ।
चतुर्भागावशिष्टं तदाचख्यौ कार्यमस्य हि ॥ २ ॥

गरुड़की कही हुई यह बात सुनकर गालव बोले—'अभी गुरुदक्षिणाका एक चौथाई भाग बाकी रह गया है, जिसे शीघ्र पूरा करना है' ॥ २ ॥

सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं वदतां वरः ।
प्रयत्नस्ते न कर्तव्यो नैष सम्पत्स्यते तव ॥ ३ ॥

ब वक्ताओंमें श्रेष्ठ गरुड़ने गालवसे कहा—'अब तुम्हें इसके लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिए; क्योंकि तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण नहीं होगा ॥ ३ ॥

पुरा हि कान्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम् ।
भार्यार्थेऽवरयत् कन्यामृचीकस्तेन भाषितः ॥ ४ ॥

'पूर्वकालकी बात है, कान्यकुब्जमें राजा गाधिकी कुमारी पुत्री सत्यवती को अपनी पत्नी बनानेके लिए ऋचीक मुनि राजासे उसे माँगा। तब राजाने ऋचीकसे कहा ॥ ४ ॥

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
भगवन् दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव ॥ ५ ॥
ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्यालयं गतः ।
अश्वतीर्थे हयाँल्लब्ध्वा दत्तवान् पार्थिवाय वै ॥ ६ ॥

'भगवन् ! मुझे कन्याके शुल्करूपमें एक हजार ऐसे घोड़े दीजिये, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हों तथा एक ओरसे उनके कान श्याम रंगके हों' गालव ! तब ऋचीक मुनि 'तथास्तु' कहकर वरुणके लोकमें गये और वहाँ अश्वतीर्थमें वैसे घोड़े प्राप्त करके उन्होंने राजा गाधिको दे दिये ॥ ५-६ ॥

इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु ।
तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्ते तैः पार्थिवैस्तदा ॥ ७ ॥

'राजाने पुण्डरीक नामक यज्ञ करके वे सभी घोड़े ब्राह्मणोंको दक्षिणा रूपमें बाँट दिये। तदनन्तर राजाओंने उनसे दो-दो सौ घोड़े खरीदकर अपने पास रख लिये ॥ ७ ॥

अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम ।
नीयमानानि सन्तारे हृतान्यासन् वितस्तया ॥ ८ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! मार्गमें एक जगह नदीको पार करना पड़ा। इन छः सौ घोड़ोंके साथ चार सौ और थे। नदी पार करनेके लिए ले जाये जाते समय वे चार सौ घोड़े वितस्ता (झेलम) की प्रखर धारामें वह गये ।। ८ ।।

एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तं गालव कर्हिचित् ।
श्यामाश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय ।। ९ ।।
विश्वामित्राय धर्मात्मन् षड्भिरश्वशतैः सह ।
ततोऽसि गतसम्मोहः कृतकृत्यो द्विजोत्तम ।। १० ।।

'गालव ! इस प्रकार इस देशमें इन छः सौ घोड़ोंके सिवा दूसरे घोड़े अप्राप्य हैं। अतः उन्हें कहीं भी पाना असम्भव है। मेरी राय यह है कि शेष दो सौ घोड़ोंके बदले यह कन्या ही विश्वमित्रजीको समर्पित कर दो। धर्मात्मन् ! इन छः सौ घोड़ोंके साथ विश्वामित्रजीकी सेवामें इस कन्याको ही दे दो। द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा करनेसे तुम्हारी सारी घबराहट दूर हो जायगी और तुम सर्वथा कृतकृत्य हो जाओगे' ।। ९-१० ।।

गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः ।
आदायाश्वांश्च कन्यां च विश्वामित्रमुपागमत् ।। ११ ।।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर गालव गरुड़के साथ वे (छः सौ) घोड़े और वह कन्या लेकर विश्वामित्रजीके पास आये ।। ११ ।।

अश्वानां काङ्क्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै ।
शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम् ।। १२ ।।

आकर उन्होंने कहा—'गुरुदेव ! आप जैसे चाहते थे, वैसे ही ये छः सौ घोड़े आपकी सेवामें प्रस्तुत हैं और शेष दो सौके बदले आप इस कन्याको ग्रहण करें ।। १२ ।।

अस्यां राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकास्त्रयः ।
चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तमम् ।। १३ ।।

'राजर्षियोंने इसके गर्भसे तीन धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किये हैं। अब आप भी एक नरश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न कीजिये, जिसकी संख्या चौथी होगी ।। १३ ।।

पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु ते ।
भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्यां यथासुखम् ।। १४ ।।

'इस प्रकार आपके आठ सौ घोड़ों की संख्या पूरी हो जाय और मैं आपसे उऋण होकर सुखपूर्वक तपस्या करूँ, ऐसी कृपा कीजिये' ।। १४ ।।

विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा ।
कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद् वचः ।। १५ ।।

विश्वामित्रने गरुड़सहित गालवकी ओर देखकर इस परम सुन्दरी कन्या पर भी दृष्टिपात किया और इस प्रकार कहा—।। १५ ।।

किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव ।
पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः ।। १६ ।।

'गालव ! तुमने पहले ही इसे यहीं क्यों नहीं दे दिया, जिससे मुझे ही वंशप्रवर्तक चार पुत्र प्राप्त हो जाते ।। १६ ।।

प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै ।
अश्वाश्चाश्रममासाद्य चरन्तु मम सर्वशः ।। १७ ।।

'अच्छा, अब मैं एक पुत्ररूपी फलकी प्राप्तिके लिये तुमसे इस कन्याको ग्रहण करता हूँ । ये घोड़े मेरे आश्रममें आकर सब ओर चरें' ।। १७ ।।

स तया रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः ।
आत्मजं जनयामास माधवीपुत्रमष्टकम् ।। १८ ।।

इस प्रकार महातेजस्वी विश्वामित्र मुनिने उसके साथ रमण करते हुए यथासमय उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया । माधवीके उस पुत्रका नाम अष्टक था ।। १८ ।।

जातमात्रं सुतं तं च विश्वामित्रो महामुनिः ।
संयोज्यार्थैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत् ।। १९ ।।

पुत्रके उत्पन्न होते ही महामुनि विश्वामित्रने उसे धर्म, अर्थ तथा उन अश्वोंसे सम्पन्न कर दिया ।। १९ ।।

अथाष्टकः पुरं प्रायात् तदा सोमपुरप्रभम् ।
निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ ।। २० ।।

तदनन्तर अष्टक चन्द्रपुरीके समान प्रकाशित होनेवाली विश्वामित्रजीकी राजधानीमें गया और विश्वामित्र भी अपने शिष्य गालवको वह कन्या लौटाकर वनमें चले गये ।। २० ।।

गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम् ।
मनसातिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह ।। २१ ।।

जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथापरः ।
सत्यधर्मरतश्चान्यो यज्वा चापि तथापरः ।। २२ ।।

तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः ।
चत्वारश्चैव राजानस्तथा चाहं सुमध्यमे ।। २३ ।।

गरुड़सहित गालव भी गुरुदक्षिणा देकर मन-ही-मन अत्यन्त संतुष्ट हो राजकन्या माधवीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरी ! तुम्हारा पहला पुत्र दानपति, दूसरा शूरवीर, तीसरा सत्यधर्मपरायण और चौथा यज्ञोंका अनुष्ठान करने वाला होगा। सुमध्यमे ! तुमने इन पुत्रोंके द्वारा अपने पिताको तो तारा ही है, उन चार राजाओंका भी उद्धार कर दिया है। अतः अब हमारे साथ आओ' ।। २१-२३ ।।

गालवस्त्वभ्यनुज्ञाय सुपर्णं पन्नगाशनम् ।
पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह ।। २४ ।।

ऐसा कहकर सर्पभोजी गरुड़से आज्ञा ले उस राजकन्याको पुनः उसके पिता ययातिके यहाँ लौटाकर गालव वनमें ही चले गये ।। २४ ।।

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। ११९ ।।

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय ।। ११९ ।।

माधवीका वनमें जाकर तप करना तथा ययातिका स्वर्गमें जाकर सुखभोग

नारद उवाच

स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम् ।
उपगम्याश्रमपदं गङ्गायमुनसंगमे ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर राजा ययाति पुनः माधवीके स्वयंवरका विचार करके गङ्गा-यमुनाके संगमपर बने हुए अपने आश्रममें जाकर रहने लगे ।। १ ।।

गृहीतमाल्यदामां तां रथमारोप्य माधवीम् ।
पुरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ।। २ ।।

फिर हाथमें हार लिये बहिन माधवीको रथपर बिठाकर पूरु और यदु—ये दोनों भाई आश्रमपर गये ।। २ ।।

नागयक्षमनुष्याणां गन्धर्वमृगपक्षिणाम् ।
शैलद्रुमवनौकानामासीत् तत्र समागमः ।। ३ ।।

इस स्वयंवरमें नाग, यक्ष, मनुष्य, गन्धर्व, पशु, पक्षी तथा पर्वत, वृक्ष और वनोंमें निवास करने वाले प्राणियोंका शुभागमन हुआ ।। ३ ।।

नानापुरुषदेश्यानामीश्वरैश्च समाकुलम् ।
ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ।। ४ ।।

प्रयागका वह वन अनेक जनपदोंके राजाओंसे व्याप्त हो गया और ब्रह्माजीके समान तेजस्वी ब्रह्मर्षियोंने उस स्थानको सब ओरसे घेर लिया ।। ४ ।।

निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी ।
वरानुत्क्रम्य सर्वांस्तान् वरं वृतवती वनम् ।। ५ ।।

उस समय जब माधवीको वहाँ आये हुए वरोंका परिचय दिया जाने लगा, तब उस वरवर्णिनी कन्याने सारे वरोंको छोड़कर तपोवनका ही वररूप में वरण कर लिया ।। ५ ।।

अवतीर्य रथात् कन्या नमस्कृत्य च बन्धुषु ।
उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ।। ६ ।।

ययातिनन्दिनी कुमारी माधवी रथसे उतरकर अपने पिता, भाई, बन्धु आदि कुटुम्बियोंको नमस्कार करके पुण्य तपोवनमें चली गयी और वहाँ तपस्या करने लगी ।। ६ ।।

उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा ।
आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ।। ७ ।।

यह उपवासपूर्वक विविध प्रकारकी दीक्षाओं तथा नियमोंका पालन करती हुई अपने मनको राग द्वेषादि दोषोंसे रहित करके वनमें मृगीके समान विचरने लगी ।। ७ ।।

वैदूर्याङ्कुरकल्पानि मृदूनि हरितानि च ।
चरन्ती श्लक्ष्णशष्पाणि तिक्तानि मधुराणि च ।। ८ ।।

स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च ।
पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ।। ९ ।।

वनेषु मृगवासेषु व्याघ्रविप्रोषितेषु च ।
दावाग्निविप्रयुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ।। १० ।।
चरन्ती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी ।

चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्येण संवृतम् ।। ११ ।।

इस क्रमसे माधवी वैदूर्यमणिके अङ्कारोंके समान सुशोभित, कोमल, चिकनी, तिक्त, मधुर एवं हरी-हरी घास चलती, पवित्र नदियोंके शुद्ध, शीतल, निर्मल एवं सुस्वादु जल पीती और मृगोंके आवासभूत, व्याघ्ररहित एवं दावानलशून्य निर्जन वनोंमें मृगोंके साथ वनचारिणी मृगीकी भाँति विचरण करती थी । उसने ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक महान् धर्मका आचरण किया ।।८-११।।

ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः ।
बहुवर्षसहस्रायुर्युयुजे कालधर्मणा ।। १२ ।।

राजा ययाति भी पूर्ववर्ती राजाओंके सदाचारका पालन करते हुए अनेक सहस्र वर्षोंकी आयु पूरी करके मृत्युको प्राप्त हुए ।। १२ ।।

पूरुर्यदुश्च द्वौ वंशे वर्धमानौ नरोत्तमौ ।
ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः ।। १३ ।।

उनके (पुत्रोंमें से) दो पुत्र नरश्रेष्ठ पूरु और यदु उस कुलमें अभ्युदयशील थे । उन्हीं दोनोंसे नहुषपुत्र ययाति इस लोक और परलोकमें भी प्रतिष्ठित हुए ।। १३ ।।

महीपते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः ।
महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्र्यफलभुग् विभुः ।। १४ ।।

राजन् ! महाराज ययाति महर्षियोंके समान पुण्यात्मा एवं तपस्वी थे । वे स्वर्गमें जाकर वहाँके श्रेष्ठ फलका उपभोग करने लगे ।। १४ ।।

बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते ।
राजर्षिषु निषण्णेषु महीयस्सु महर्षिषु ।। १५ ।।

अवमेने नरान् सर्वान् देवानृषिगणांस्तथा ।
ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ।। १६ ।।

इस प्रकार वहाँ अनेक गुणोंसे युक्त कई हजार वर्षोंका समय व्यतीत हो गया । ययातिका चित्त अपना स्वर्गीय वैभव देखकर स्वयं ही आश्चर्यचकित हो उठा । उनकी बुद्धिपर मोह छा गया और वे महान् समृद्धिशाली महत्तम राजर्षियोंके अपने समीप बैठे होनेपर भी सम्पूर्ण देवताओं, मनुष्यों तथा महर्षियोंकी भी अवहेलना करने लगे ।। १५-१६ ।।

ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः ।
ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ।। १७ ।।

तदनन्तर बलसूदन इन्द्रदेवको ययातिकी इस अवस्थाका पता लग गया। वे सम्पूर्ण राजर्षिगण भी उस समय ययातिको धिक्कारने लगे ॥ १७ ॥

विचारश्च समुत्पन्नो निरीक्ष्य नहुषात्मजम्।
को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः ॥ १८ ॥

नहुषपुत्र ययातिको देखकर स्वर्गवासियोंमें यह विचार खड़ा हो गया— 'यह कौन है? किस राजाका पुत्र है? और कैसे स्वर्गमें आ गया है ॥ १८ ॥

कर्मणा केन सिद्धोऽयं क्व वानेन तपश्चितम्।
कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽप्युत ॥ १९ ॥

'इसे किस कर्मसे सिद्धि प्राप्त हुई है? इसने कहाँ तपस्या की है? स्वर्गमें किस प्रकार इसे जाना जाय अथवा कौन यहाँ इसको जानता है?' ॥१९॥

एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः।
दृष्टा पप्रच्छुरन्योन्यं ययातिं नृपतिं प्रति ॥ २० ॥

इस प्रकार विचार करते हुए स्वर्गवासी ययातिके विषयमें एक दूसरेकी ओर देखकर प्रश्न करने लगे ॥ २० ॥

विमानपालाः शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः।
पृष्टा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाब्रुवन् ॥ २१ ॥

सैकड़ों विमानरक्षकों, स्वर्गके द्वारपालों तथा सिंहासनके रक्षकोंसे पूछा गया; किंतु सबने यही उत्तर दिया—'हम इन्हें नहीं जानते' ॥ २१ ॥

सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाभ्यजानन्त तं नृपम्।
स मुहूर्तादथ नृपो हतौजाश्चाभवत् तदा ॥ २२ ॥

उन सबके ज्ञान पर पर्दा पड़ गया था; अतः वे उन राजाको नहीं पहचान सके। फिर तो दो ही घड़ीमें राजा ययातिका तेज नष्ट हो गया ॥ २२ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥
एक सौ बीसवाँ अध्याय ॥ १२० ॥

ययातिका स्वर्गलोकसे पतन और उनके दौहित्रों, पुत्री तथा गालव मुनिका उन्हें पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचानेके लिये अपना-अपना पुण्य देनेके लिये उद्यत होना

नारद उवाच

अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः ।
कम्पितेनेव मनसा धर्षितः शोकवह्निना ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् तत्पश्चात् ययाति अपने सिंहासनसे गिरकर उस स्वर्गीय स्थानसे भी विचलित हो गये। उनका हृदय काँप-सा उठा और शोकाग्नि उन्हें दग्ध करने लगी ॥ १ ॥

म्लानस्रग्भ्रष्टविज्ञानः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ।
विघूर्णन् स्रस्तसर्वाङ्गः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः ॥ २ ॥

उन्होंने जो दिव्य कुसुमोंकी माला पहन रक्खी थी, वह मुरझा गयी। उनकी ज्ञानशक्ति लुप्त होने लगी। मुकुट और बाजूबन्द शरीरसे अलग हो गये। उन्हें चक्कर आने लगा। उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये और वस्त्र तथा आभूषण भी खिसक-खिसककर गिरने लगे ॥ २ ॥

अदृश्यमानस्तान् पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः ।
शून्यः शून्येन मनसा प्रपतिष्यन् महीतलम् ॥ ३ ॥
किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
येनाहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत् ॥ ४ ॥

वे अन्धकारसे आवृत होनेके कारण स्वयं स्वर्गवासियोंको नहीं दिखायी देते थे; परन्तु वे उन्हें बार-बार देखते और कभी नहीं भी देख पाते थे। पृथ्वीपर गिरनेसे पहले शून्य-से होकर शून्य हृदयसे राजा यह चिन्ता करने लगे कि मैंने अपने मनसे किस धर्मदूषक अशुभ वस्तुका चिन्तन किया है, जिसके कारण मुझे अपने स्थानसे भ्रष्ट होना पड़ा है ॥ ३-४ ॥

ते तु तत्रैव राजानः सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा ।
अपश्यन्त निरालम्बं तं ययातिं परिच्युतम् ॥ ५ ॥

स्वर्गके राजर्षि, सिद्ध और अप्सरा—सभीने स्वर्गसे भ्रष्ट हो अवलम्ब-शून्य हुए राजा ययातिको देखा ॥ ५ ॥

अथैत्य पुरुषः कश्चित् क्षीणपुण्यनिपातकः ।
ययातिमब्रवीद् राजन् देवराजस्य शासनात् ॥ ६ ॥

राजन्! इतनेमें ही पुण्यरहित पुरुषोंको स्वर्गसे नीचे गिरानेवाला कोई पुरुष देवराजकी आज्ञासे वहाँ आकर ययातिसे इस प्रकार बोला—॥ ६ ॥

अतीव मदमत्तस्त्वं न कंचिन्नावमन्यसे ।
मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नार्हस्त्वं पार्थिवात्मज ॥ ७ ॥

'राजपुत्र ! तुम अत्यन्त मदमत्त हो और कोई भी ऐसा महान् पुरुष यहाँ नहीं है, जिसका तुम तिरस्कार न करते हो। इस मानके कारण ही तुम अपने स्थानसे गिर रहे हो। अब तुम यहां रहनेके योग्य नहीं हो ॥ ७ ॥

न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत् ।
पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः ॥ ८ ॥

'तुम्हें यहां कोई नहीं जानता है; अतः आओ, नीचे गिरो।' जब उसने ऐसा कहा, तब नहुषपुत्र ययाति तीन बार ऐसा कहकर नीचे जाने लगे कि मैं सत्पुरुषोंके बीचमें गिरूँ ॥ ८ ॥

पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः ।
एतस्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान् ॥ ९ ॥
चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात ह ।

जङ्गम प्राणियोंमें श्रेष्ठ ययाति गिरते समय अपनी गतिके विषयमें चिन्ता कर रहे थे। इसी समय उन्होंने नैमिषारण्यमें चार श्रेष्ठ राजाओंको देखा और उन्हींके बीचमें वे गिरने लगे ॥ ९ ॥

प्रतर्दनो वसुमनाः शिविरौशीनरोऽष्टकः ॥ १० ॥
वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम् ।

वहाँ प्रतर्दन, वसुमना, औशीनर शिबि तथा अष्टक—ये चार नरेश वाजपेययज्ञके द्वारा देवेश्वर को तृप्त करते थे ॥ १० ॥

तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११ ॥
ययातिरुपजिघ्रन् वै निपपात महीं प्रति ।

उनके यज्ञका धूम मानो स्वर्गका द्वार बनकर उपस्थित हुआ था, ययाति उसीको सूंघते हुए पृथ्वीकी ओर गिर रहे थे ॥ ११ ॥

भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीमिव ।
गङ्गां गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः ॥ १२ ॥
श्रीमत्स्ववभृथाग्रेषु चतुर्षु प्रतिबन्धुषु ।
मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु सः ॥ १३ ॥

भूतलसे स्वर्गतक धूममयी नदी-सी प्रवाहित हो रही थी, मानो आकाश-गङ्गा भूमिपर जा रही हों। भूपाल ययाति उसी धूमलेखाका अवलम्बन करके लोकपालोंके समान तेजस्वी तथा अवभृथ स्नानसे पवित्र अपने चारों सम्बन्धियोंके बीचमें गिरे ॥ १२-१३ ॥

चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु ।
पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये ।। १४ ।।

वे चारों श्रेष्ठ राजा उन पर विशाल अग्नियोंके समान तेजस्वी थे, जो हविष्यकी आहुति पाकर प्रज्वलित हो रहे हों । राजर्षि ययाति अपना पुण्य क्षीण होनेपर उन्हींके मध्यभागमें गिरे ।। १४ ।।

तमाहुः पार्थिवाः सर्वे दीप्यमानमिव श्रिया ।
को भवान् कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा ।। १५ ।।

यक्षो वाप्यथवा देवो गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा ।
न हि मानुषरूपोऽसि को वार्थः काङ्क्षयते त्वया ।। १६ ।।

अपनी दिव्य कान्तिसे उद्भासित होनेवाले उन महाराजसे सभी भूपालों ने पूछा—'आप कौन हैं ? किसके भाई-बन्धु हैं तथा किस देश और नगरमें आपका निवासस्थान है ? आप यक्ष हैं या देवता ? गन्धर्व हैं या राक्षस ? आपका स्वरूप मनुष्यों-जैसा नहीं है । बताइये, आप कौन-सा योजन सिद्ध करना चाहते हैं' ।। १५-१६ ।।

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः ।
पतेयं सत्स्विति ध्यायन् भवत्सु पतितस्ततः ।। १७ ।।

ययातिने कहा—मैं राजर्षि ययाति हूँ । अपना पुण्य क्षीण होनेके कारण स्वर्गसे नीचे गिर गया हूँ । गिरते समय मेरे मनमें यह चिन्तन चल रहा था कि मैं सत्पुरुषोंके बीचमें गिरूँ । अतः आपलोगोंके बीचमें आ पड़ा हूँ ।। १७ ।।

राजान ऊचुः

सत्यमेतद् भवतु ते काङ्क्षितं पुरुषर्षभ ।
सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम् ।। १८ ।।

वे राजा बोले—पुरुषशिरोमणे ! आपका यह मनोरथ सफल हो । आप हम सब लोगोंके यज्ञों का फल और धर्म ग्रहण करें ।। १८ ।।

ययातिरुवाच

नाहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो ह्यहम् ।
न च मे प्रवणा बुद्धिः परपुण्यविनाशने ।। १९ ।।

ययातिने कहा—प्रतिग्रह ही जिसका धन है, वह ब्राह्मण मैं नहीं हूँ। मैं तो क्षत्रिय हूँ। अतः मेरी बुद्धि पराये पुण्यका क्षय करनेके लिए उद्यत नहीं है ॥ १९ ॥

नारद उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्याक्रमागताम्।
माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाद्येदमब्रुवन् ॥ २० ॥

किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव।
आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—इसी समय उन राजाओंने अपनी माता माधवीको देखा, जो मृगोंकी भाँति उन्हींके साथ विचरती हुई क्रमशः वहाँ आ पहुँची थी। उसे प्रणाम करके राजाओंने इस प्रकार पूछा—'तपोधने! यहाँ आपके पधारनेका क्या प्रयोजन है? हम आपकी किस आज्ञाका पालन करें? हम सभी आपके पुत्र हैं; अतः हमें आप योग्य सेवाके लिये आज्ञा प्रदान करें ॥ २०-२१ ॥

तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा।
पितरं समुपागच्छद् ययातिं सा ववन्द च ॥ २२ ॥

उनकी ये बातें सुनकर माधवीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने पिता ययातिके पास गयी और उसने उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥

स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान् पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत्।
दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः ॥ २३ ॥

तदनन्तर तपस्विनी माधवीने उन पुत्रोंके सिरपर हाथ रखकर अपने पितासे कहा—'राजेन्द्र! ये सभी आपके दौहित्र (नाती) और मेरे पुत्र हैं, पराये नहीं हैं ॥ २३ ॥

इमे त्वां तारयिष्यन्ति दृष्टमेतत् पुरातने।
अहं ते दुहिता राजन् माधवी मृगचारिणी ॥ २४ ॥

'ये आपको तार देंगे। दौहित्रोंके द्वारा मातामह (नाना) का यह उद्धार पुरातन वेदशास्त्रमें स्पष्ट देखा गया है। राजन् मैं आपकी पुत्री माधवी हूँ और इस तपोवनमें मृगोंके समान जीवनचर्या बनाकर विचरती हूँ ॥ २४ ॥

मयाप्युपचितो धर्मस्ततोऽर्धं प्रतिगृह्यताम् ।
यस्माद् राजन् नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः ।। २५ ।।

तस्मादिच्छन्ति दौहित्रान् यथा त्वं वसुधाधिप ।

पृथ्वीनाथ ! मैंने भी महान् धर्मका संचय किया है । उसका आधा भाग आप ग्रहण करें । राजन् ! सब मनुष्य अपनी संतानोंके किए हुए सत्कर्मोंके फलके भागी होते हैं । इसीलिए वे दौहित्रोंकी इच्छा करते हैं, जैसे आपने की थी' ।। २५ ।।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ।। २६ ।।

अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथाब्रुवन् ।
उच्चैरनुपमैः स्निग्धैः स्वरैरापूर्य मेदिनीम् ।। २७ ।।

मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम् ।

तब उन सभी राजाओंने अपनी माताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और स्वर्ग भ्रष्ट नानाको भी नमस्कार करके अपने उच्च, अनुपम और स्नेहपूर्ण स्वरसे पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए उन्हें तारनेके उद्देश्यसे उनसे कुछ कहनेका विचार किया ।। २६-२७ ।।

अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ।
तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ।। २८ ।।

इसी बीचमें उन वनसे गालव मुनि भी वहाँ आ पहुँचे तथा राजासे इस प्रकार बोलें—'महाराज ! आप मेरी तपस्याका आठवाँ भाग लेकर उसके बलसे स्वर्गलोकमें पहुँच जायँ ।। २८ ।।

एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ।। १२१ ।।
एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय ।। १२१ ।।

दौहित्रोंके पुण्यदानसे ययातिका पुनः स्वर्गारोहण

नारद उवाच

प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः ।
समारुरोह नृपतिरस्पृशन् वसुधातलम् ।। १ ।।

ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः ।

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ।
दिव्यगन्धगुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत् पदा ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—उन सत्पुरुषोंके द्वारा पहचाने जानेमात्रसे नरश्रेष्ठ राजा ययाति पृथ्वीतलका स्पर्श न करते हुए ऊपरकी ओर उठने लगे। उस समय उनकी आकृति दिव्य हो गयी थी। वे शोक और चिन्तासे रहित थे। उन्होंने दिव्य आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा वे दिव्य सुगन्धसे सुवासित हो रहे थे। वे अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं कर रहे थे ॥ १-२ ॥

ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन् वचः ।
ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ॥ ३ ॥

तदनन्तर लोकमें दानपतिके नामसे विख्यात राजा वसुमना पहले उच्च स्वरसे शब्दोंका उच्चारण करते हुए महाराज ययातिसे इस प्रकार बोले—॥ ३ ॥

प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हया ।
तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ४ ॥

'मैंने जगत्में सभी वर्णोंकी निन्दासे दूर रहकर जो पुण्य प्राप्त किया है, वह भी आपको दे रहा हूँ। आप उस पुण्यसे संयुक्त हों ॥ ४ ॥

यत् फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत् फलम् ।
यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ५ ॥

'दानशील पुरुषको जो पुण्यफल प्राप्त होता है, क्षमाशील मनुष्यको जो फल मिलता है तथा अग्निस्थापन आदि वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानसे मुझे जिस फलकी प्राप्ति होनेवाली है; उन सभी प्रकारके पुण्यफलोंसे आप सम्पन्न हों' ॥ ५ ॥

ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः ।
यथा धर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ॥ ६ ॥

प्राप्तवानस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः ।
वीरशब्दफलं चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ७ ॥

तदनन्तर क्षत्रियशिरोमणि प्रतर्दनने यह बात कही—'मैं जिस प्रकार सदा धर्ममें तत्पर रहा हूँ, सर्वदा न्याययुक्त युद्धमें संलग्न होता आया हूँ तथा

संसारमें मैंने जो क्षत्रियवंशके अनुरूप यश एवं वीर शब्दके योग्य पुण्यफलका अर्जन किया है, उससे आप संयुक्त हों' ॥ ६-७ ॥

शिबिरौशीनरो धीमानुवाच मधुरां गिरम् ।
यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च ॥ ७ ॥

संगरेषु निपातेषु तथा तद्व्यसनेषु च ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज ॥ ९ ॥

यथा प्राणांश्च राज्यं च राजन् कामसुखानि च ।
त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज ॥ १० ॥

यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः ।
प्रीतः शतक्रतुश्चैव तेन सत्येन खं व्रज ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् उशीनरपुत्र बुद्धिमान् शिबिने मधुर वाणीमें कहा—'मैंने बालकोंमें, स्त्रियोंमें, हास-परिहासके योग्य सम्बन्धियोंमें, युद्धमें, आपत्तियोंमें तथा सङ्कटोंमें भी पहले कभी असत्यभाषण नहीं किया है । उस सत्यके प्रभाव से आप स्वर्गलोकमें जाइये । राजन् ! मैं अपने प्राण, राज्य एवं मनोवाञ्छित सुखभोगको भी त्याग सकता हूँ, परन्तु सत्यको नहीं छोड़ सकता । उस सत्य के प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये । यदि मेरे सत्यसे धर्मदेव संतुष्ट हैं, यदि मेरे सत्यसे अग्निदेव प्रसन्न हैं तथा यदि मेरे सत्यभाषणसे देवराज इन्द्र भी तृप्त हुए हैं तो उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये' ॥ ८-११ ॥

अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः ।
अनेकशतयज्वानं नाहुषं प्राप्य धर्मवित् ॥ १२ ॥

इसके बाद माधवीके छोटे पुत्र कुशिकवंशी धर्मज्ञ राजर्षि अष्टकने कई सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले नहुषनन्दन ययातिके पास जाकर कहा—॥ १२ ॥

शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्चरिताः प्रभो ।
क्रतवो वाजपेयाश्च तेषां फलमवाप्नुहि ॥ १३ ॥

न मे रत्नानि न धनं न तथान्ये परिच्छदाः ।
क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज ॥ १४ ॥

'प्रभो ! मैंने सैकड़ों पुण्डरीक, गोसव तथा वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया है । आप उन सबका फल प्राप्त करें । मेरे पास कोई भी रत्न, धन

अथवा अन्य सामग्री ऐसी नहीं है, जिसका मैंने यज्ञोंमें उपयोग न किया हो। इस सत्य कर्मके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये' ॥ १३-१४ ॥

यथा यथा हि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ।
तथा तथा वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥ १५ ॥

ययातिके दौहित्र जैसे-जैसे उनके प्रति उपर्युक्त बातें कहते थे, वैसेही वैसे वे महाराज इस भूतलको छोड़ते हुए स्वर्गलोककी ओर बढ़ते चले गये थे ॥ १५ ॥

एवं सर्वे समस्तैस्ते राजानः सुकृतैस्तदा ।
ययातिं स्वर्गतो भ्रष्टं तारयामासुरञ्जसा ॥

इस प्रकार अपने सम्पूर्ण सत्कर्मोंके द्वारा उन सब राजाओंने स्वर्गसे गिरे हुए राजा ययातिको अनायास ही तार दिया ॥ १६ ॥

दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै ।
चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्धनाः ।
मातामहं महाप्रज्ञं दिवमारोपयन्त ते ॥ १७ ॥

अपने वंशकी वृद्धि करने वाले ययातिके वे चारों दौहित्र चार राजवंशों में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने यज्ञ-दानादिजनित धर्मसे उन महाप्राज्ञ मातामह ययातिको स्वर्गलोकमें पहुंचा दिया ॥ १७ ॥

राजान ऊचुः

राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः ।
दौहित्रास्ते वयं राजन् दिवमारोह पार्थिव ॥ १८ ॥

वे राजा बोले—राजन् ! पृथ्वीपते ! हम राजधर्म तथा राजोचित गुणोंसे युक्त, सम्पूर्ण धर्मों तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न आपके दौहित्र हैं। आप हमारे पुण्य लेकर स्वर्गलोकपर आरूढ़ होइये ॥ १८ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥
एक सौ बाईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

४

यवक्रीतोपाख्यानम्

लोमश उवाच

एषा मधुविला राजन् समङ्गा सम्प्रकाशते ।
एतत् कर्दमिलं नाम भरतस्याभिषेचनम् ।। १ ।।

लोमशजी कहते हैं—राजन् ! यह मधुविला नदी प्रकाशित हो रही है । इसीका दूसरा नाम समङ्गा है और यह कर्दमिल नामक क्षेत्र है, जहाँ राजा भरतका अभिषेक किया गया था ।। १ ।।

अलक्ष्म्या किल संयुक्तो वृत्रं हत्वा शचीपतिः ।
आप्लुतः सर्वपापेभ्यः समङ्गायां व्यमुच्यत ।। २ ।।

कहते हैं, वृत्रासुरका वध करके जब शचीपति इन्द्र श्रीहीन हो गये थे, उस समय उस समङ्गा नदीमें गोता लगाकर ही वे अपने सब पापोंसे छुटकारा पा सके थे ।। २ ।।

एतद् विनशनं कुक्षौ मैनाकस्य नरर्षभ ।
अदितिर्यत्र पुत्रार्थे तदन्नमपचत् पुरा ।। ३ ।।

नरश्रेष्ठ ! मैनाक पर्वतके कुक्षि-भागमें यह विनशन नामक तीर्थ है, जहाँ पूर्वकालमें अदिति ने पुत्र-प्राप्तिके लिये साध्यदेवताओंके उद्देश्यसे अन्न तैयार किया था ।। ३ ।।

एनं पर्वतराजानमारुह्य भरतर्षभाः ।
अयशस्यामसंशब्द्यामलक्ष्मीं व्यपनोत्स्यथ ।। ४ ।।

भरतवंशके श्रेष्ठ पुरुषो ! इस पर्वतराज हिमालयपर आरूढ़ होकर तुम सब अयश फैलानेवाली और नाम लेनेके अयोग्य अपनी श्रीहीनताको शीघ्र ही दूर भगा दोगे ।। ४ ।।

एते कनखला राजन्नृषीणां दयिता नगाः ।
एषा प्रकाशते गङ्गा युधिष्ठिर महानदी ।। ५ ।।

युधिष्ठिर ! ये कनखलकी पर्वत-मालाएँ हैं, जो ऋषियोंको बहुत प्रिय लगती हैं । ये महानदी गङ्गा सुशोभित हो रही हैं ।। ५ ।।

सनत्कुमारो भगवानत्र सिद्धिमगात् पुरा ।
आजमीढावगाह्यैनां सर्वपापैः प्रमोक्ष्यसे ।। ६ ।।

यही पूर्वकालमें भगवान् सनत्कुमारने सिद्धि प्राप्त की थी । अजमीढ-नन्दन ! इस गङ्गामें स्नान करके तुम सब पापोंसे छुटकारा पा जाओगे ।। ६ ।।

अपां ह्रदं च पुण्याख्यं भृगुतुङ्गं च पर्वतम् ।
उष्णीगङ्गे च कौन्तेय सामात्यः समुपस्पृश ।। ७ ।।

कुन्तीकुमार ! जलके इस पुण्य सरोवर, भृगुतुङ्ग पर्वतपर तथा 'उष्णीगङ्ग' नामक तीर्थमें जाकर तुम अपने मन्त्रियोंसहित स्नान और आचमन करो ।। ७ ।।

आश्रमः स्थूलशिरसो रमणीयः प्रकाशते ।
अत्र मानं च कौन्तेय क्रोधं चैव विवर्जय ।। ८ ।।

यह स्थूलशिरा मुनिका रमणीय आश्रम शोभा पा रहा है । कुन्तीनन्दन ! यहाँ अहंकार और क्रोधको त्याग दो ।। ८ ।।

एष रैभ्याश्रमः श्रीमान् पाण्डवेय प्रकाशते ।
भारद्वाजो यत्र कविर्यवक्रीतो व्यनश्यत ।। ९ ।।

पाण्डुनन्दन ! यह रैभ्यका सुन्दर आश्रम प्रकाशित हो रहा है, जहाँ विद्वान् भरद्वाजपुत्र यवक्रीत नष्ट हो गये थे ।। ९ ।।

युधिष्ठिर उवाच

कथं युक्तोऽभवदृषिर्भरद्वाजः प्रतापवान् ।
किमर्थं च यवक्रीतः पुत्रोऽनश्यत वै मुनेः ।। १० ।।

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन् ! प्रतापी भरद्वाज मुनि कैसे योगयुक्त हुए थे और उनके पुत्र यवक्रीत किसलिए नष्ट हो गए थे ।। १० ।।

एतत् सर्वं यथावृत्तं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कर्मभिर्देवकल्पानां कीर्त्यमानैर्भृशं रमे ।। ११ ।।

ये सव बातों मैं यथार्थरूपसे ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ । उन देवोपम मुनियोंके चरित्रोंका वर्णन सुनकर मेरे मनको बड़ा सुख मिलता है ।। ११ ।।

लोमश उवाच

भरद्वाजश्च रैभ्यश्च सखायौ सम्बभूवतुः ।
तावूषतुरिहात्यन्तं प्रीयमाणावनन्तरम् ।। १२ ।।

लोमशजीने कहा—राजन् ! भरद्वाज तथा रैभ्य दोनों एक दूसरेके सखा थे और निरन्तर इसी आश्रममें बड़े प्रेमसे रहा करते थे ।। १२ ।।

रैभ्यस्य तु सुतावास्तामर्वावसुपरावसू ।
आसीद् यवक्रीः पुत्रस्तु भरद्वाजस्य भारत ।। १३ ।।

रैभ्यके दो पुत्र थे—अर्वावसु और परावसु । भारत ! भरद्वाजके पुत्रका नाम 'यवक्री' अथवा 'यवक्रीत' था ।। १३ ।।

रैभ्यो विद्वान् सहापत्यस्तपस्वी चेतरोऽभवत् ।
तयोश्चाप्यतुला कीर्तिर्बाल्यात् प्रभृति भारत ।। १४ ।।

भारत ! पुत्रोंसहित रैभ्य बड़े विद्वान् थे । परन्तु भरद्वाज केवल तपस्यामें संलग्न रहते थे । युधिष्ठिर ! बाल्यावस्थासे ही इन दोनों महात्माओंकी अनुपम कीर्ति सब ओर फैल रही थी ।। १४ ।।

यवक्रीः पितरं दृष्ट्वा तपस्विनमसत्कृतम् ।
दृष्ट्वा च सत्कृतं विप्रै रैभ्यं पुत्रैः सहानघ ।। १५ ।।

निष्पाप युधिष्ठिर ! यवक्रीतने देखा, मेरे तपस्वी पिताका लोग सत्कार नहीं करते हैं; परन्तु पुत्रोंसहित रैभ्यका ब्राह्मणोंद्वारा बड़ा आदर होता है ।। १५ ।।

पर्यतप्यत तेजस्वी मन्युनाभिपरिप्लुतः ।
तपस्तेपे ततो घोरं वेदज्ञानाय पाण्डव ।। १६ ।।

यह देख तेजस्वी यवक्रीतको बड़ा संताप हुआ । पाण्डुनन्दन ! वे क्रोधसे आविष्ट हो वेदोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये घोर तपस्यामें लग गये ।। १६ ।।

स समिद्धे महत्यग्नौ शरीरमुपतापयन् ।
जनयामास संतापमिन्द्रस्य सुमहातपाः ॥ १७ ॥

उन महातपस्वीने अत्यन्त प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरको तपाते हुए इन्द्रके मनमें सन्ताप उत्पन्न कर दिया ॥ १७ ॥

तत इन्द्रो यवक्रीतमुपगम्य युधिष्ठिर ।
अब्रवीत् कस्य हेतोस्त्वमास्थिततस्तप उत्तमम् ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर ! तब इन्द्र यवक्रीतके पास आकर बोले—'तुम किसलिये यह उच्चकोटिकी तपस्या कर रहे हो ?' ॥ १८ ॥

यवक्रीत उवाच

द्विजानामनधीता वै वेदाः सुरगणार्चित ।
प्रतिभान्त्विति तप्येऽहमिदं परमकं तपः ॥ १९ ॥

यवक्रीतने कहा—देववृन्दपूजित महेन्द्र ! मैं यह उच्चकोटिकी तपस्या इसलिये करता हूँ कि द्विजातियोंको बिना पढ़े ही सब वेदों का ज्ञान हो जाय ॥ १९ ॥

स्वाध्यायार्थे समारम्भो ममायं पाकशासन ।
तपसा ज्ञातुमिच्छामि सर्वज्ञानानि कौशिक ॥ २० ॥

पाकशासन ! मेरा यह आयोजन स्वाध्यायके लिये ही है । कौशिक ! मैं तपस्याद्वारा सब बातोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ २० ॥

कालेन महता वेदाः शक्या गुरुमुखाद् विभो ।
प्राप्तुं तस्मादयं यत्नः परमो मे समास्थितः ॥ २१ ॥

प्रभो ! गुरुके मुखसे दीर्घकालके पश्चात् वेदोंका ज्ञान हो सकता है । अतः मेरा यह महान् प्रयत्न शीघ्र ही सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये है ॥ २१ ॥

इन्द्र उवाच

अमार्ग एष विप्रर्षे येन त्वं यातुमिच्छसि ।
किं विघातेन ते विप्र गच्छाधीहि गुरोर्मुखात् ॥ २२ ॥

इन्द्र बोले—विप्रर्षे ! तुम जिस राहसे जाना चाहते हो, वह अध्ययनका मार्ग नहीं है । स्वाध्यायके समुचित मार्गको नष्ट करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ! अतः जाओ गुरुके मुखसे ही अध्ययन करो ॥ २२ ॥

लोमश उवाच

एवमुक्त्वा गतः शक्रो यवक्रीरपि भारत ।
भूय एवाकरोद् यत्नं तपस्यमितविक्रमः ।। २३ ।।

लोमशजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! ऐसा कहकर इन्द्र चले गये; तब अत्यन्त पराक्रमी यवक्रीतने भी पुनः तपस्याके लिये ही घोर प्रयास आरम्भ कर दिया ।। २३ ।।

घोरेण तपसा राजंस्तप्यमानो महत् तपः ।
संतापयामास भृशं देवेन्द्रमिति नः श्रुतम् ।। २४ ।।

राजन् ! उसने घोर तपस्याद्वारा महान् तपका संचय करते हुए देवराज इन्द्रको अत्यन्त संतप्त कर दिया; यह बात हमारे सुननेमें आयी है ।। २४ ।।

तं तथा तप्यमानं तु तपस्तीव्रं महामुनिम् ।
उपेत्य बलभिद् देवो वारयामास वै पुनः ।। २५ ।।
अशक्योऽर्थः समारब्धो नैतद् बुद्धिकृतं तव ।
प्रतिभास्यन्ति वै वेदास्तव चैव पितुश्च ते ।। २६ ।।

महामुनि यवक्रीतको इस प्रकार तपस्या करते देख इन्द्रने उनके पास जाकर पुनः मना किया और कहा—'मुने ! तुमने ऐसे कार्यका आरम्भ किया है, जिसकी सिद्धि होनी असम्भव है । तुम्हारा यह आयोजन बुद्धि-संगत नहीं है; किंतु केवल तुमको और तुम्हारे पिताको ही वेदोंका ज्ञान होगा' ।।२५-२६।।

यवक्रीत उवाच

न चैतदेवं क्रियते देवराज ममेप्सितम् ।
महता नियमेनाहं तप्स्ये घोरतरं तपः ।। २७ ।।

यवक्रीतने कहा—देवराज ! यदि इस प्रकार आप मेरे इष्ट मनोरथकी सिद्धि नहीं करते हैं, तो मैं और भी कठोर नियम लेकर अत्यन्त भयंकर तपस्यामें लग जाऊँगा ।। २७ ।।

समिद्धेऽग्नावुपकृत्याहमङ्गमङ्गं होष्यामि वा मघवंस्तन्निबोध ।
यद्येतदेवं न करोषि कामं ममेप्सितं देवराजेह सर्वम् ।। २८ ।।

देवराज इन्द्र ! यदि आप यहाँ मेरी सारी मनोवाञ्छित कामना पूरी नहीं करते हैं, तो मैं प्रज्वलित अग्निमें अपने एक एक अङ्गको होम दूँगा । इस बातको आप अच्छी तरह समझ लें ।। २८ ।।

लोमश उवाच

निश्चयं तमभिज्ञाय मुनेस्तस्त महात्मनः ।
प्रतिवारणहेत्वर्थं बुद्धया संचिन्त्य बुद्धिमान् ।। २९ ।।
तत इन्द्रोऽकरोद् रूपं ब्राह्मणस्य तपस्विनः ।
अनेकशतवर्षस्य दुर्बलस्य सयक्ष्मणः ।। ३० ।।

लोमशजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! उन महामुनिके उस निश्चयको जानकर बुद्धिमान् इन्द्रने उन्हें रोकनेके लिये बुद्धिपूर्वक कुछ विचार किया और एक ऐसे तपस्वी ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया, जिसकी उम्र कई सौ वर्षोंकी थी तथा जो यक्ष्माका रोगी और दुर्बल दिखायी देता था ।। २९-३० ।।

यवक्रीतस्य यत् तीर्थमुचितं शौचकर्मणि ।
भागीरथ्यां तत्र सेतुं वालुकाभिश्चकार सः ।। ३१ ।।

गङ्गाके जिस तीर्थमें यवक्रीत मुनि स्नान आदि किया करते थे, उसीमें वे ब्राह्मणदेवता बालुद्वारा पुल बनाने लगे ।। ३१ ।।

यदास्य वदतो वाक्यं न स चक्रे द्विजोत्तमः ।
वालुकाभिस्ततः शक्रो गङ्गां समभिपूरयन् ।। ३२ ।।

द्विजश्रेष्ठ यवक्रीतने जब इन्द्रका कहना नहीं माना, तब वे बालूसे गङ्गाजी को भरने लगे ।। ३२ ।।

वालुकामुष्टिमनिशं भागीरथ्यां व्यसर्जयत् ।
सेतुमभ्यारभच्छक्रो यवक्रीतं निदर्शयन् ।। ३३ ।।

वे निरन्तर एक-एक मुट्ठी वालू गङ्गाजीमें छोड़ते थे और इस प्रकार उन्होंने येवक्रीतको दिखाकर पुल बाँधनेका कार्य आरम्भ कर दिया ।। ३३ ।।

तं ददर्श यवक्रीतो यत्नवन्तं निबन्धने ।
प्रहसंश्चाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ।। ३४ ।।

मुनिश्वर यवक्रीतने देखा, ब्राह्मण देवता पुल बाँधनेके लिये बड़े यत्नशील हैं, तब उन्होंने हँसते हुए इस प्रकार कहा—।। ३४ ।।

किमिदं वर्तते ब्रह्मन् किं च ते ह चिकीर्षितम् ।
अतीव हि महान् यत्नः क्रियतेऽयं निरर्थकः ।। ३५ ।।

'ब्रह्मन् ! यह क्या है ? आप क्या करना चाहते हैं ? आप प्रयत्न तो महान् कर रहे हैं, परन्तु यह व्यर्थ है' ।। ३५ ।।

इन्द्र उवाच

बन्धिष्ये सेतुना गङ्गां सुखः पन्था भविष्यति ।
क्लिश्यते हि जनस्तात तरमाणः पुनः पुनः ।। ३६ ।।

इन्द्र बोले—तात ! मैं गङ्गाजीपर पुल बाँधूंगा । इससे पार जानेके लिए सुखद मार्ग बन जायगा; क्योंकि पुलके न होनेसे इधर आने-जानेवाले लोगों को बार-बार तैरनेका कष्ट उठाना पड़ता है ।। ३६ ।।

यवक्रीत उवाच

नायं शक्यस्त्वया बद्धुं महानोघस्तपोधन ।
अशक्याद् विनिवर्तस्व शक्यमर्थं समारभ ।। ३७ ।।

यवक्रीतने कहा—तपोधन ! यहाँ अगाध जलराशि भरी है; अतः तुम पुल बाँधनेमें सफल नहीं हो सकोगे । इसलिये इस असम्भव कार्यसे मुंह मोड़ लो और ऐसे कार्यमें हाथ डालो, जो तुमसे हो सके ।। ३७ ।।

इन्द्र उवाच

यथैव भवता चेदं तपो वेदार्थमुद्यतम् ।
अशक्यं तद्वदस्माभिरयं भारः समाहितः ।। ३७ ।।

इन्द्र बोले—मुने ! जैसे आपने बिना पढ़े वेदोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये यह तपस्या प्रारम्भ की है, जिसकी सफलता असम्भव है, उसी प्रकार मैंने भी यह पुल बाँधनेका भार उठाया है ।। ३८ ।।

यवक्रीत उवाच

यथा तव निरर्थोऽयमारम्भस्त्रिदशेश्वर ।
तथा यदि ममापीदं मन्यसे पाकशासन ।। ३९ ।।

क्रियतां यद् भवेच्छक्यं त्वया सुरगणेश्वर ।
वरांश्च मे प्रयच्छान्यान् यैरन्यान् भवितास्म्यति ।। ४० ।।

यवक्रीतने कहा—देवेश्वर पाकशासन ! जैसे आपका वह पुल बाँधनेका आयोजन व्यर्थ है, उसी प्रकार यदि मेरी इस तपस्याको भी आप निरर्थक मानते हैं तो वही कार्य कीजिये जो सम्भव हो, मुझे ऐसे उत्तम वर प्रदान कीजिये, जिनके द्वारा मैं दूसरोंसे बढ़-चढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकूँ ।। ३९-४० ।।

लोमश उवाच

तस्मै प्रादाद् वरानिन्द्र उक्तवान् यान् महातपाः ।
प्रतिभास्यन्ति ते वेदाः पित्रा सह यथेप्सिताः ।। ४१ ।।
यच्चान्यत् काङ्क्षसे कामं यवक्रीर्गम्यतामिति ।
स लब्धकामः पितरं समेत्याथेदमब्रवीत् ।। ४२ ।।

लोमशजी कहते हैं—राजन् ! तब इन्द्रने महातपस्वी यवक्रीतके कथनानुसार उन्हें वर देते हुए कहा—'यवक्रीत ! तुम्हारे पितासहित तुम्हें वेदोंका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त हो जायेगा । साथ ही और भी जो तुम्हारी कामना हो, वह पूर्ण हो जायेगी । अब तुम तपस्या छोड़कर अपने आश्रम को लौट जाओ ।'

इस प्रकार पूर्णकाम होकर, यवक्रीत अपने पिताके पास गये और इस प्रकार बोले ।। ४१-४२ ।।

यवक्रीत उवाच

प्रतिभास्यन्ति वै वेदा मम तातस्य चोभयोः ।
अति चान्यान् भविष्यावो वरा लब्धास्तदा मया ।। ४३ ।।

यवक्रीतने कहा···पिताजी ! आपको और मुझे दोनों को ही सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान हो जायगा । साथ ही हम दोनों दूसरोंसे ऊची स्थितिमें हो जायेंगे—ऐसा वर मैंने प्राप्त किया है ।। ४३ ।।

भरद्वाज उवाच

दर्पस्ते भविता तात वराँल्लब्ध्वा यथेप्सितान् ।
स दर्पपूर्णः कृपणः क्षिप्रमेव विनङ्क्ष्यसि ।। ४४ ।।

भरद्वाज बोले—तात ! इस तरह मनोवाञ्छित वर प्राप्त करनेके कारण तुम्हारे मनमें अहंकार उत्पन्न हो जायगा और अहंकारसे युक्त होनेपर तुम कृपण होकर शीघ्र ही नष्ट हों जाओगे ।। ४४ ।।

अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा देवैरुदाहृताः ।
मुनिरासीत् पुरा पुत्र बालधिर्नाम वीर्यवान् ।। ४५ ।।

इस विषयमें विज्ञजन देवताओंकी कही हुई यह गाथा सुनाया करते हैं—प्राचीनकालमें बालधि मामसे प्रसिद्ध एक शक्तिशाली मुनि थे ।। ४५ ।।

स पुत्रशोकादुद्विग्नस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ।
भवेन्मम सुतोऽमर्त्य इति तं लब्धवांश्च सः ।। ४६ ।।

उन्होंने पुत्र-शोकसे सन्तप्त होकर अत्यन्त कठोर तपस्या की। तपस्याका उद्देश्य यह था कि मुझे देवोपम पुत्र प्राप्त हो। अपनी उस अभिलाषाके अनुसार बालधिको एक पुत्र प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥

तस्य प्रसादो वै देवैः कृतो न त्वमरैः समः ।
नामर्त्यो विद्यते मर्त्यो निमित्तायुर्भविष्यति ॥ ४७ ॥

देवताओंने उनपर कृपा अवश्यकी, परन्तु उनके पुत्रको देवतुल्य नहीं बनाया और वरदान देते हुए यह कहा 'कि मरणधर्मा मनुष्य कभी देवताके समान अमर नहीं हो सकता। अतः उसकी आयु निमित्त (कारण) के अधीन होगी' ॥ ४७ ॥

बालधिरुवाच

यथेमे पर्वताः शश्वत् तिष्ठन्ति सुरसत्तमाः ।
अक्षयास्तन्निमित्तं मे सुतस्यायुर्भविष्यति ॥ ४८ ॥

बलधि बोले—देववरो ! जैसे ये पर्वता सदा अक्षय भावसे खड़े रहते हैं, वैसे ही मेरा पुत्र भी सदा अक्षय बना रहे। ये पर्वत ही उसकी आयुके निमित्त होंगे। अर्थात् जब तक ये पर्वत यहाँ बने रहें तबतक मेरा पुत्र भी जीवित रहे ॥ ४८ ॥

भरद्वाज उवाच

तस्य पुत्रस्तदा जज्ञे मेधावी क्रोधनस्तदा ।
स तच्छ्रुत्वाकरोद् दर्पमृषींश्चैवावमन्यत ॥ ४९ ॥

भरद्वाज कहते हैं—यवक्रीत। तदनन्तर बालधिके पुत्रका जन्म हुआ, जो मेधायुक्त होनेके कारण मेधावी नामसे विख्यात था। वह स्वभावका बड़ा क्रोधी था। अपनी आयुके विषयमें देवताओंके वरदानकी बात सुनकर मेधावी घमण्डमें भर गया और ऋषियोंका अपमान करने लगा ॥ ४९ ॥

विकुर्वाणो मुनीनां च व्यचरत् स महीमिमाम् ।
आससाद महावीर्यं धनुषाक्षं मनीषिणम् ॥ ५० ॥

इतना ही नहीं, वह ऋषि-मुनियोंको सतानेके उद्देश्यसे ही इस पृथ्वीपर सब ओर विचरा करता था। एक दिन मेधावी महान् शक्तिशाली एवं मनीषी धनुषाक्षके पास जा पहुँचा ॥ ५० ॥

तस्यापचक्रे मेधावी तं शशाप स वीर्यवान् ।
भव भस्मेति चोक्तः स न भस्म समपद्यत ॥ ५१ ॥

और उनका तिरस्कार करने लगा। तब तपोबलसम्पन्न ऋषि धनुषाक्षने उसे शाप देते हुए कहा—'अरे तू जलकर भस्म हो जा।' परन्तु उनके कहने पर भी वह भस्म नहीं हुआ ॥ ५१ ॥

धनुषाक्षस्तु तं दृष्ट्वा मेधाविनमनामयम्।
निमित्तमस्य महिषैर्भेदयामास वीर्यवान् ॥ ५२ ॥

शक्तिशाली धनुषाक्षने ध्यानमें देखा कि मेधावी रोग एवं मृत्युसे रहित है। तब उसकी आयुके निमित्तभूत पर्वतोंको उन्होंने भैंसोंद्वारा विदीर्ण करा दिया ॥ ५२ ॥

स निमित्ते विनष्टे तु ममार सहसा शिशुः।
तं मृतं पुत्रमादाय विललाप ततः पिता ॥ ५३ ॥

निमित्तका नाश होते ही उस मुनि कुमारकी सहसा मृत्यु हो गयी। तदनन्तर पिता उस मरे हुए पुत्रको लेकर अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ५३॥

लालप्यमानं तं दृष्ट्वा मुनयः परमार्तवत्।
ऊचुर्वेदविदः सर्वे गाथां यां तां निबोध मे ॥ ५४ ॥

अधिक पीड़ित मनुष्यों की भाँति उन्हें विलाप करते देख वहाँ के समस्त वेदवेत्ता मुनिगण एकत्र हो जिस गाथाको गाने लगे, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ५४ ॥

न दिष्टमर्थमत्येतुमीशो मर्त्यः कथंचन।
महिषैर्भेदयामास धनुषाक्षो महीधरान् ॥ ५५ ॥

'मरणधर्मा मनुष्य किसी तरह दैवके विधानका उल्लङ्घन नहीं कर सकता, तभी तो धनुषाक्षने उस बालककी आयुके निमित्तभूत पर्वतोंका भैंसों द्वारा भेदन करा दिया' ॥ ५५ ॥

एवं लब्ध्वा वरान् बाला दर्पपूर्णास्तपस्विनः।
क्षिप्रमेव विनश्यन्ति यथा न स्यात् तथा भवान् ॥ ५६ ॥

इस प्रकार बालक तपस्वी वर पाकर घमण्डमें भर जाते हैं और शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। तुम्हारी भी यही अवस्था न हो ॥ ५६ ॥

एष रैभ्यो महावीर्यः पुत्रौ चास्य तथाविधौ।
तं यथा पुत्र नाभ्येषि तथा कुर्यास्त्वतन्द्रितः ॥ ५७ ॥

ये रैम्य मुनि महान् शक्तिशाली हैं। इनके दोनों पुत्र भी इन्हींके समान हैं। बेटा ! तुम उन रैभ्यमुनिके पास कदापि न जाना और आलस्य छोड़कर इसके लिये सदा प्रयत्नशील रहना ॥ ५७ ॥

स हि क्रुद्धः समर्थस्त्वां पुत्र पीडयितुं रुषा ।
रैभ्यश्चापि तपस्वी च कोपनश्च महानृषिः ॥ ५८ ॥

बेटा ! तुम्हें सावधान करनेका कारण यह है कि शक्तिशाली तपस्वी महर्षि रैभ्य बड़े क्रोधी हैं। वे कुपित होकर रोषसे तुम्हें पीड़ा दे सकते हैं ॥ ५८ ॥

यवक्रीत उवाच

एवं करिष्ये मा तापं तात कार्षीः कथंचन ।
यथा हि मेभवान् मान्यस्तथा रैभ्यःपिता मम ॥ ५९ ॥

यवक्रीत बोले—पिताजी ! मैं ऐसा ही करूँगा, आप किसी तरह मनमें संताप न करें। जैसे आप मेरे माननीय हैं, वैसे रैभ्यमुनि मेरे लिये पिताके पिता के समान हैं ॥ ५९ ॥

लोमश उवाच

उक्त्वा स पितरं श्लक्ष्णं यवक्रीरकुतोभयः ।
विप्रकुर्वन्नृषीनन्यानतुष्यत् परया मुदा ॥ ६० ॥

लोमशजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! पितासे यह मीठी बातें कहकर यवक्रीत निर्भय विचरने लगे। दूसरे ऋषियोंको सतानेमें उन्हें अधिक सुख मिलता था। वैसा करके वे बहुत संतुष्ट रहते थे ॥ ६० ॥

यवक्रीतोपाख्यानविषयक एक सौ पेंतीसवाँ अध्याय ॥ १३५ ॥
यवक्रीतोपाख्याने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

यवक्रीतका रैभ्यमुनिकी पुत्रवधूके साथ व्यभिचार और रैभ्यमुनिके क्रोधसे उत्पन्न राक्षसके द्वारा उसकी मृत्यु

लोमश उवाच

चङ्क्रम्यमाणः स तदा यवक्रीरकुतोभयः ।
जगाम माधवे मासि रैभ्याश्रमपदं प्रति ॥ १ ॥

लोमशजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! उन दिनों यवक्रीत सर्वथा भयशून्य होकर चारों ओर चक्कर लगाता था। एक दिन वैशाखमासमें वह रैभ्यमुनि के आश्रम में गया ॥ १ ॥

स ददर्शाश्रमे रम्ये पुष्पितद्रुमभूषिते ।
विचरन्तीं स्नुषां तस्य किन्नरीमिव भारत ॥ २ ॥

भारत ! वह आश्रम खिले हुए वृक्षोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित हो अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता था। उस आश्रम में रैभ्य मुनिकी पुत्रवधू किन्नरीके समान विचर रही थी। यवक्रीतने उसे देखा ॥ २ ॥

यवक्रीस्तामुवाचेदमुपातिष्ठस्व मामिति ।
निर्लज्जो लज्जया युक्तां कामेन हृतचेतनः ॥ ३ ॥

देखते ही वह कामदेवके वशीभूत हो अपनी विचार शक्ति खो बैठा और लजाती हुई उस मुनिवधूसे निर्लज होकर बोला—'सुन्दरी ! तू मेरी सेवामें उपस्थित हो' ॥ ३ ॥

सा तस्य शीलमाज्ञाय तस्माच्छापाच्च बिभ्यती ।
तेजस्वितां च रैभ्यस्य तथेत्युक्त्वाऽऽजगाम ह ॥ ४ ॥

वह यवक्रीतके शील-स्वभावको जानकर भी उसके शापसे डरती थी। साथ ही उसे रैभ्य मुनिकी तेजस्विताका भी स्मरण था। अतः 'बहुत अच्छा' कहकर उसके पास चली आयी। ४।

तत एकान्तमुन्नीय मज्जयामास भारत ।
आजगाम तदा रैभ्यः स्वमाश्रममरिंदम ॥ ५ ॥

शत्रुविनाशन भारत ! तब यवक्रीतने उसे एकान्तमें ले जाकर पापके समुद्रमें डुबो दिया। (उसके साथ रमण किया)। इतनेहीमें रैभ्य मुनि अपने आश्रममें आ गये ॥ ५ ॥

रुदतीं च स्नुषां दृष्टवा भार्यामार्तां परावसोः ।
सान्त्वयञ्छ्लक्ष्णया वाचा पर्यपृच्छद् युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

सा तस्मै सर्वमाचष्ट यवक्रीभाषितं शुभा ।
प्रत्युक्तं च यवक्रीतं प्रेक्षापूर्वं तथाऽऽत्मना ॥ ७ ॥

आकर उन्होंने देखा कि मेरी पुत्रवधू एवं परावसुकी पत्नी आर्तभावसे रो रही है। युधिष्ठिर ! यह देखकर रैभ्यने मधुर वाणीद्वारा उसे सान्त्वना

दी तथा रोनेका कारण पूछा। उस शुभलक्षणा बहूने यवक्रीतकी कही हुई सारी बातें श्वसुरके सामने कह सुनायीं एवं स्वयं उसने भलीभाँति सोच-विचारकर यवक्रीतकी बातें माननेसे जो अस्वीकार कर दिया था, वह सारा वृत्तान्त भी बता दिया ॥ ६-७ ॥

शृण्वानस्यैव रैभ्यस्य यवक्रीतविचेष्टितम् ।
दहन्निव तदा चेतः क्रोधः समभवन्महान् ॥ ८ ॥

यवक्रीतकी यह कुचेष्टा सुनते ही रैभ्यके हृदयमें क्रोधकी प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो उठी, जो उनके अन्तःकरणको मानो भस्म किये दे रही थी ॥८॥

स तदा मन्युनाऽऽविष्टस्तपस्वी कोपनो भृशम् ।
अवलुच्य जटामेकां जुहावाग्नौ सुसंस्कृते ॥ ९ ॥

तपस्वी रैभ्य स्वभावसे ही बड़े क्रोधी थे, तिसपर भी उस समय उनके ऊपर क्रोधका आवेश छा रहा था। अतः उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़कर संस्कारपूर्वक स्थापित की हुई अग्निमें होम दी ॥ ९ ॥

ततः समभवन्नारी तस्या रूपेण सम्मिता ।
अवलुच्यापरां चापि जुहावाग्नौ जटां पुनः ॥ १० ॥

उससे एक नारीके रूपमें कृत्या प्रकट हुई, जो रूपमें उनकी पुत्रवधूके ही समान थी। तत्पश्चात् एक दूसरी जटा उखाड़कर उन्होंने पुनः उसी अग्निमें डाल दी ॥ १० ॥

ततः समभवद् रक्षो घोराक्षं भीमदर्शनम् ।
अब्रूतां तौ तदा रैभ्यं किं कार्यं करवावहै ॥ ११ ॥

उससे एक राक्षस प्रकट हुआ, जिसकी आँखें बड़ी डरावनी थीं। वह देखनेमें बड़ा भयानक प्रतीत होता था। उस समय उन दोनोंने रैभ्य मुनिसे पूछा—'हम आपकी किस आज्ञाका पालन करें?' ॥ ११ ॥

तावब्रवीदृषिः क्रुद्धो यवक्रीर्वध्यतामिति ।
जग्मतुस्तौ तथेत्युक्त्वा यवक्रीतजिघांसया ॥ १२ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए महर्षिने कहा—'यवक्रीतको मार डालो।' उस समय 'बहुत अच्छा' कहकर वे दोनों यवक्रीतके वधकी इच्छासे उसका पीछा करने लगे ॥ १२ ॥

ततस्तं समुपास्थाय कृत्या सृष्टा महात्मना ।
कमण्डलुं जहारास्य मोहयित्वेव भारत ॥ १३ ॥

भारत ! महामना रैभ्यकी रची हुई कृत्यारूप सुन्दरी नारीने पहले यवक्रीतके पास उपस्थित हो उसे मोहमें डालकर उसका कमण्डलु हर लिया ।। १३ ।।

उच्छिष्टं तु यवक्रीतमपकृष्टकमण्डलुम् ।
तत उद्यतशूलः स राक्षसः समुपाद्रवत् ।। १४ ।।

कमण्डलु खो जानेसे यवक्रीतका शरीर उच्छिष्ट (जूठा या अपवित्र) रहने लगा । उस दशामें वह राक्षस हाथमें त्रिशूल उठाये यवक्रीतकी ओर दौड़ा ।। १४ ।।

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शूलहस्तं जिघांसया ।
यवक्रीः सहसोत्थाय प्राद्रवद् येन वै सरः ।। १५ ।।

राक्षस शूल हाथमें लिये मुझे मार डालनेकी इच्छासे मेरी ओर दौड़ा आ रहा है, यह देखकर यवक्रीत सहसा उठे और उस मार्गसे भागे, जो एक सरोवरकी ओर जाता था ।

जलहीनं सरो दृष्ट्वा यवक्रीस्त्वरितः पुनः ।
जगाम सरितः सर्वास्ताश्चाप्यासन् विशोषिताः ।। १६ ।।

इसके जाते ही सरोवरका पानी सूख गया । सरोवरको जलहीन हुआ देख यवक्रीत फिर तुरंत ही समस्त सरिताओंके पास गया; परंतु इसके जाने पर वे सब भी सूख गयीं ।। १६ ।।

स काल्यमानो घोरेण शूलहस्तेन रक्षसा ।
अग्निहोत्रं पितुर्भीतः सहसा प्रविवेश ह ।। १७ ।।

तब हाथमें शूल लिये उस भयानक राक्षसके खदेड़नेपर यवक्रीत अत्यन्त भयभीत हो सहसा अपने पिताके अग्निहोत्र-गृहमें घुसने लगा ।। १७ ।।

स वै प्रविशमानस्तु शूद्रेणान्धेन रक्षिणा ।
निगृहीतो बलाद् द्वारि सोऽवातिष्ठत पार्थिव ।। १८ ।।

राजन् ! उस समय अग्निहोत्रगृहके अन्दर एक शूद्रजातीय रक्षक नियुक्त था, जिसकी दोनों आँखें अन्धी थीं । उसने दरवाजेके भीतर घुसते ही यवक्रीतको बलपूर्वक पकड़ लिया और यवक्रीत वहीं खड़ा हो गया ।। १८ ।।

निगृहीतं तु शूद्रेण यवक्रीतं स राक्षसः ।
ताडयामास शूलेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ।। १९ ।।

शूद्रके द्वारा पकड़े गये यवक्रीतपर उस राक्षसने शूलसे प्रहार किया। इससे उसकी छाती फट गयी और वह प्राणशून्य होकर वहीं गिर पड़ा ॥१९॥

यवक्रीतं स हत्वा तु राक्षसो रैभ्यमागमत्।
अनुज्ञातस्तु रैभ्येण तथा नार्या सहावसत् ॥ २० ॥

इस प्रकार यवक्रीतको मारकर राक्षस रैभ्यके पास लौट आया और उनकी आज्ञा ले उस कृत्यास्वरूपा रमणीके साथ उनकी सेवा में रहने लगा ॥ २० ॥

यवक्रीतोपाख्याने षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥
एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

भरद्वाजका पुत्र शोकसे विलाप करना, रैभ्यमुनिको शाप देना एवं स्वयं अग्निमें प्रवेश करना

लोमश उवाच

भरद्वाजस्तु कौन्तेय कृत्वा स्वाध्यायमाह्निकम्।
समित्कलापमादाय प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥ १ ॥

तं स्म दृष्ट्वा पुरा सर्वे प्रत्युत्तिष्ठन्ति पावकाः।
न त्वेनमुपतिष्ठन्ति हतपुत्रं तदाग्नयः ॥ २ ॥

लोमशजी कहते हैं—कुन्तीनन्दन! भरद्वाज मुनि प्रतिदिनका स्वाध्याय पूरा करके बहुत-सी समिधाएँ लिये आश्रममें आये। उस दिनसे पहले सभी अग्नियाँ उनको देखते ही उठकर स्वागत करती थीं, परंतु उस समय उनका पुत्र मारा गया था, इसलिये अशौचयुक्त होनेके कारण उनका अग्नियोंने पूर्ववत् खड़े होकर स्वागत नहीं किया ॥ १-२ ॥

वैकृतं त्वग्निहोत्रे स लक्षयित्वा महातपाः।
तमन्धं शूद्रमासीनं गृहपालमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रगृहमें यह विकृति देखकर उन महातपस्वी भरद्वाजने वहाँ बैठे हुए अन्धे गृहरक्षक शूद्रसे पूछा— ॥ ३ ॥

किं नु मे नाग्नयः शूद्र प्रतिनन्दन्ति दर्शनम्।
त्वं चापि न यथापूर्वं कच्चित् क्षेममिहाश्रमे ॥ ४ ॥
कच्चिन्न रैभ्यं पुत्रो मे गतवानल्पचेतनः।
एतदाचक्ष्व मे शीघ्रं न हि शुद्ध्यति मे मनः ॥ ५ ॥

'दास ! क्या कारण है कि आज अग्नियाँ पूर्ववत् मेरा दर्शन करके प्रसन्नता नहीं प्रकट करती हैं। इधर तुम भी पहले-जैसे समादरका भाव नहीं दिखाते हो। इस आश्रममें कुशल तो है न ? कहीं मेरा मन्द बुद्धि पुत्र रैभ्यके पास तो नहीं चला गया ? यह बात मुझे शीघ्र बताओ; क्योंकि मेरा मन शान्त नहीं हो रहा है' ॥ ४-५ ॥

शूद्र उवाच

रैभ्यं यातो नूनमयं पुत्रस्ते मन्दचेतनः ।
तथा हि निहतः शेते राक्षसेन बलीयसा ॥ ६ ॥

शूद्र बोला—भगवान् ! अवश्य ही आपका यह मन्दमति पुत्र रैभ्यके यहाँ गया था। उसीका यह फल है कि एक महाबली राक्षसके द्वारा मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा है ॥ ६ ॥

प्रकाल्यमानस्तेनायं शूलहस्तेन राक्षसा ।
अग्न्यागारं प्रति द्वारि मया दोर्भ्यां निवारितः ॥ ७ ॥

राक्षस अपने हाथमें शूल लेकर इसका पीछा कर रहा था और यह अग्निशालमें घुसा जा रहा था। उस समय मैंने दोनों हाथोंसे पकड़कर इसे द्वारपर ही रोक लिया ॥ ७ ॥

ततः स विहताशोऽत्र जलकामोऽशुचिर्ध्रुवम् ।
निहतः सोऽतिवेगेन शूलहस्तेन रक्षसा ॥ ८ ॥

निश्चय ही अपवित्र होनेके कारण यह शुद्धिके लिये जल लेनेकी इच्छा रखकर यहाँ आया था, परन्तु मेरे रोक देनेसे यह हताश हो गया। उस दशा में उस शूलधारी राक्षसने इसके ऊपर बड़े वेगसे प्रहार करके इसे मार डाला ॥ ८ ॥

भरद्वाजस्तु तच्छ्रुत्वा शूद्रस्य विप्रियं महत् ।
गतासुं पुत्रमादाय विललाप सुदुःखितः ॥ ९ ॥

शूद्रका कहा हुआ यह अत्यन्त अप्रिय वचन सुनकर भरद्वाज बड़े दुखी हो गये और अपने प्राणशून्य पुत्रको लेकर विलाप करने लगे ॥ ९ ॥

भरद्वाज उवाच

ब्राह्मणानां किलार्थाय ननु त्वं तप्तवांस्तपः ।
द्विजानामनधीता वै वेदाः सम्प्रतिभान्त्विति ॥ १० ॥

भरद्वाजने कहा—बेटा ! तुमने ब्राह्मणोंके हितके लिये भारी तपस्या की थी। तुम्हारी तपस्याका यह उद्देश्य था कि द्विजोंको बिना पढ़े ही सब वेदों का ज्ञान हो जाय ।। १० ।।

तथा कल्याणशीलस्त्वं ब्राह्मणेषु महात्मसु ।
अनागाः सर्वभूतेषु कर्कशत्वमुपेयिवान् ।। ११ ।।

इस प्रकार महात्मा ब्राह्मणोंके प्रति तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त कल्याणकारी था। किसी भी प्राणीके प्रति तुम कोई अपराध नहीं करते थे। फिर भी तुम्हारा स्वभाव कुछ कठोर हो गया था ।। ११ ।।

प्रतिषिद्धो मया तात रैभ्यावसथदर्शनात् ।
गतवानेव तं द्रष्टुं कालान्तकयमोपमम् ।। १२ ।।
यः स जानन् महातेजा वृद्धस्यैकं ममात्मजम् ।
गतवानेव कोपस्य वशं परमदुर्मतिः ।। १३ ।।

तात ! मैंने तुम्हें बार-बार मना किया था कि तुम रैभ्यके आश्रमकी ओर न देखना, परन्तु तुम उसे देखने चले ही गये और वह तुम्हारे लिये काल, अन्तक एवं यमराजके समान हो गया। महान् तेजस्वी होनेपर भी उसकी बुद्धि बड़ी खोटी है। वह जानता था कि मुझ बूढ़ेके तुम एक ही पुत्र हो तो भी वह दुष्ट क्रोधके वशीभूत हो ही गया ।। १२-१३ ।।

पुत्रशोकमनुप्राप्तं एष रैभ्यस्य कर्मणा ।
त्यक्ष्यामि त्वामृते पुत्र प्राणानिष्टतमान् भुवि ।। १४ ।।

बेटा ! आज रैभ्यके इस कठोर कर्मसे मुझे पुत्रशोक प्राप्त हुआ है। तुम्हारे बिना मैं इस पृथ्वीपर अपने परम प्रिय प्राणोंका भी परित्याग कर दूँगा ।। १४ ।।

यथाहं पुत्रशोकेन देहं त्यक्ष्यामि किल्विषी ।
तथा ज्येष्ठः सुतो रैभ्यं हिंस्याच्छीघ्रमनागसम् ।। १५ ।।

जैसे मैं पापी अपने पुत्रके शोकसे व्याकुल हो अपने शरीरका त्याग कर रहा हूँ, उसी प्रकार रैभ्यका ज्येष्ठ पुत्र अपने निरपराध पिताकी शीघ्र हत्या कर डालेगा ।। १५ ।।

सुखिनो वै नरा येषां जात्या पुत्रो न विद्यते ।
ते पुत्रशोकमप्राप्य विचरन्ति यथासुखम् ।। १६ ।।

संसार में वे मनुष्य सुखी हैं, जिन्हें पुत्र पैदा ही नहीं हुआ है; क्योंकि वे पुत्रशोक का अनुभव न करके सदा सुखपूर्वक विचरते हैं ।। १६ ।।

ये तु पुत्रकृताच्छोकाद् भृशं व्याकुलचेतसः ।
शपन्तीष्टान् सखीनार्तास्तेभ्यः पापतरो नु कः ।। १७ ।।

जो पुत्रशोकसे मन-ही-मन व्याकुल हो गहरी व्यथाका अनुभव करते हुए अपने प्रिय मित्रोंको भी शाप दे डालते हैं, उनसे बढ़कर महापापी दूसरा कौन हो सकता है ? ।। १७ ।।

परासुश्च सुतो दृष्टः शप्तश्चेष्टः सखा मया ।
ईदृशीमापदं कोऽत्र द्वितीयोऽनुभविष्यति ।। १८ ।।

मैंने अपने पुत्रकी मृत्यु देखी और प्रिय मित्रको शाप दे दिया । मेरे सिवा संसारमें दूसरा कौन-सा मनुष्य है, जो ऐसी विपत्तिका अनुभव करेगा ।। १८ ।।

लोमश उवाच

विलप्यैवं बहुविधं भरद्वाजोऽदहत् सुतम् ।
सुसमिद्धं ततः पश्चात् प्रविवेश हुताशनम् ।। १९ ।।

लोमशजी कहते हैं – युधिष्ठिर ! इस तरह भाँति-भाँतिके विलाप करके भरद्वाजने अपने पुत्रका दाह-संस्कार किया तत्पश्चात् स्वयं भी वे जलती आगमें प्रवेश कर गये ।। १९ ।।

यवक्रीतोपाख्याने सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।। १३७ ।।
एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय ।। १३७ ।।

५

यादववंशोत्पत्तेराख्यानम्

द्वितीययादववंशोत्पत्तिः—(हरिवंशपुराणे)

ततः प्राह महातेजा विकद्रुर्नयकोविदः ।
कृष्णं कमलपत्राक्षमुग्रसेनस्य शृण्वतः ।
यादवस्यास्य वंशस्य समुद्भवमशेषतः ।
यथा मे कथितः पूर्वं व्यासेन विदितात्मना ।।

आसीद् राजा मनोर्वंशे श्रीमानिक्ष्वाकुसम्भवः ।
हर्यश्व इति विख्यातो महेन्द्रसमविक्रमः ।।
तस्यासीद् दयिता भार्या मधोर्दैत्यस्य वै सुता ।
देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शची यथा ।
दानवेन्द्रकुले जाता सुश्रोणी कामरूपिणी ।
एक पत्नीव्रतधरा खेचरा रोहिणी यथा ।।

ता तमिक्ष्वाकुशार्दूलं कामयामास कामिनी ।
स कदाचिन्नरश्रेष्ठो भ्रात्रा ज्येष्ठेन माधव ।
राज्यान्निरस्तो विश्वस्तः सोऽयोध्यां सम्परित्यजत् ।
स तदाल्पपरिवारः प्रियया सहितो वने ।
रेमे समेत्य कालज्ञः प्रियया कमलेक्षणः ।
भ्रात्रा विनिष्कृतं राज्यात् प्रोवाच कमलेक्षणा ।
एह्यागच्छ नरश्रेष्ठ त्यज राज्यकृतां स्पृहाम् ।
गच्छावः सहितो वीर मधोर्मम पितुर्गृहम् ।

रम्यं मधुवनं नाम कामपुष्पफलद्रुमम् ।
सहितौ तत्र स रंस्यावो यथा दिवि गतौ तथा ।।
पितुर्मेदयितस्त्वं हि मातुर्मम च पार्थिव ।।
मत्प्रियार्थं प्रियतरो भ्रातुश्च लवणस्य मे ।।

तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य पूर्वजं भ्रातरं प्रति ।
कामार्तस्य नरेन्द्रस्य पत्न्यास्तद् सरुरुचे वचः ।
ततो मधुपुरं राजा हर्यश्वः स जगाम च ।
भार्यया सह कामिन्या कामी पुरुषपुङ्गवः ।।

मधुना दानवेन्द्रेण स साम्ना समुदाहृतः ।
स्वागतं वत्स हर्यश्व प्रीतोऽस्मि तवदर्शनात् ।

यादवद्वितीयवंशोत्पत्ति—(हरिवंशपुराण से)

तब नयकोविद (विद्वान्) विकद्रु ने कमलनयन वासुदेव कृष्ण को, उग्रसेन के समक्ष इस (कृष्णकालीन) यादववंश की उत्पत्ति, जैसी कि उसे व्यासजी ने सुनाई थी—इस प्रकार कही—

'मनु के वंश में एक ऐक्ष्वाक राजा हुआ, जिसका नाम 'हर्यश्व' था, जो महेन्द्र के समान पराक्रमी था । उसकी भार्या मधुमती मधु दैत्य की पुत्री थी, जिस प्रकार इन्द्र की पत्नी शची थी । वह असुरकुल में उत्पन्न हुई थी तथा कामिनी सुन्दर अङ्गोंवाली एकपत्नीव्रत को धारण करनेवाली आकाश चारिणी रोहिणी के समान थी । वह ऐक्ष्वाकुसिंह हर्यश्व को चाहती थी (उससे विवाह किया) । वह हर्यश्व किसी कारण बड़े भाई द्वारा अयोध्या राज्य से निकाल दिया गया । वह अयोध्या छोड़कर पत्नी के तथा अन्य परिवार के साथ वन में रहने लगा । वह कमलनयना पत्नी मधुमती भ्राता द्वारा निष्कासित पति से बोली--हे नरश्रेष्ठ आइये, राज्य सम्बन्धी इच्छा छोड़िये । चलिये मेरे पिता मधु के घर चलिये । वहां रम्य यथेच्छ पुष्प-फलादि से युक्त मधुवननाम का उपवन है, वहां मेरे साथ उसी प्रकार रहिये, जिस प्रकार स्वर्ग (नन्दनवन) में रहते हैं । आप मेरे पिता और माता के प्रिय हैं । हे राजन् । मेरे भ्राता को भी आप प्रियतर हैं तथा मेरा प्रिय करने आप वहीं चलिये ।

कामार्त हर्यश्व को अपनी प्रिया की बातें रुचीं । यद्यपि वह अपने भाई के प्रति प्रवृत्त था । तदनुसार पुरुषश्रेष्ठ हर्यश्व अपनी पत्नी के साथ मधुपुर

आ गया। असुरराज मधु ने अपने जामाता मधु का स्वागत किया और सान्त्वनापूर्वक कहा—हे वत्स हर्यश्व। मैं तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न हूं।

यदेतन्मम राज्यं वै सर्वं मधुवनं विना।
ददामि तव राजेन्द्र वासश्चप्रतिगृह्यताम् ।।

वनेऽस्मिंल्लवणश्चायं सहायस्ते भविष्यति।
अमित्रनिग्रहे चैव कर्णधारस्त्वमेष्यति ।।

पालयैनं शुभं राष्ट्रं समुद्रानूपभूषितम्।
गोसमृद्धं श्रिया जुष्टमाभीरप्रायमानुषम् ।।

अत्र ते वसतस्तातदुर्ग गिरपुरं महत्।
भविता पार्थिवावासः सुराष्ट्रविषयो महान् ।।
अनूपविषयश्च समुद्रान्ते निरामयः ।।
आनर्तं नाम ते राष्ट्रं भविष्यत्यायतं महत् ।।
यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम्।
अनु वंशं च वंशस्ते सोमस्य भविताकिल ।।

एव मे विभवस्तात तवेमं विषयोत्तमम्।
दत्त्वा यास्यामि तपसे सागरं लवणालयम् ।।

लवणेन समायुक्तस्त्वमिमं विषयोत्तमम्।
पालयस्वाखिलं तात स्वस्थवंशस्य वृद्धये ।।
बाढ़मित्येव हर्यश्वः प्रतिजग्राह तत् पुरम्।
स च दैत्यस्तपोवासं जगाम वरुणालयम् ।।

हर्यश्वो महातेजा दिव्ये गिरिवरोत्तमे।
निवेशयामास पुरं वासार्थममरोपमः ।।
आनर्तं नाम तद् राष्ट्रं सुराष्ट्रं गोधनायुतम् ।।
अचिरेणैव कालेन समृद्धं प्रत्यपद्यत ।।

तस्यैव च सुवृत्तस्य पुत्रकामस्य धीमतः।
मधुमत्यां सुतो जज्ञेयदुर्नाम महायशाः।
यदुर्नामाभवत् पुत्रो राजलक्षणपूजितः।
यथास्य पूर्वजो राजा पुरुः स सुमहायशाः ।।

स एक एव तस्यासीत् पुत्रः परमशोभनः।
ऊर्जितः पृथिवीभर्त्ता हर्यश्वस्य महात्मनः ।।

हे हर्यश्व । यहाँ जो मेरा राज्य है, उसे मैं, केवल मधुवन छोड़कर तुम्हें देता हूं । महलादि भी लीजिये । मधुवन में (मेरा पुत्र) लवण तुम्हारी सहायता करेगा । वह शत्रुओं के दमन में तुम्हारा कर्णधार बनेगा । इस शुभ समुद्रानूपभूषित राष्ट्र का पालन करो । यहाँ प्रायः आभीर (अहीर) या गोपालक रहते हैं और यह प्रदेश गायों से परिपूर्ण है । यहां रहते हुए यह गिरिनगर (गिरनार) दुर्ग है तथा तुम्हारा राज्य सुराष्ट्र तक रहेगा । अनूप (प्रायद्वीप) क्षेत्र समुद्रपर्यन्त प्रायः निष्कण्टक है । यह आनर्त नाम का राष्ट्र बहुत विशाल है । (यद्यपि आप ऐक्ष्वाकवंशीय हैं, तथापि) यह तुम्हारा वंश अब 'यायातयादववंश' कहलायेगा जो मूल सोमवंश का अनुवर्ती है । मैं यह राज्य तुमको देकर तपहेतु समुद्रतट (या किसी द्वीप) में जाता हूं । तुम लवण के साथ इस राज्य का पालन करो और अपने वंश की वृद्धि करो ।

ऐक्ष्वाक हर्यश्व ने मधु की बातें मानकर वह राज्य और पुर ग्रहण किया तथा वह मधु दैत्य तपस्यार्थ सागर की ओर चला गया । हर्यश्व ने उस गिरिदुर्ग (नगर) को पुनः नये ढंग से बसाया । वह आनर्त नाम का सुराष्ट्र राष्ट्र, जो गोधन से परिपूर्ण था, शीघ्र ही और समृद्ध हो गया ।

अतः राजा हर्यश्व जो श्रेष्ठ चरित्रवाला था, उसका मधुमती से 'यदु' नाम का महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । जिस प्रकार उसका पूर्वज पुरु (या यदु यायात) था, उसी प्रकार वह 'यदुद्वितीय' हर्यश्व का एकमात्र पुत्र परम-श्रेष्ठ था । वह हर्यश्वपुत्र 'यदु' बलशाली होता गया ।

दशवर्षसहस्राणि स कृत्वा राज्यमव्ययम् ।
जगाम त्रिदिवं राजा धर्मेणाप्रतिमोभुवि ।
ततो यदुरदीनात्मा प्रजाभिस्त्वभिषिच्यत ।
पितर्युपरते श्रीमान् क्रमेणार्क इवोदितः ।
शशास चेमां वसुधां प्रशान्तभयतस्कराम् ।
यदुरिन्द्रप्रतीकाशो नृपो येनस्म यादवाः ॥
स कदाचिन्नृपश्चक्रे जलक्रीड़ां महोदधौ ।
दारैः सह गुणोदारैः सतारइव चन्द्रमाः ।
स तत्र सहसा क्षिप्तस्तितीर्षुः सागराम्भसि ।
धूम्रवर्णेन नृपतिः सर्पराजेन वीर्यवान् ॥
सोऽपाकृष्यत वेगेन जले सर्पपुरं महत् ॥
स तं ददर्श राजेन्द्रो विमले सागराम्भसि ।
पन्नगेन्द्रपुरं तोये जगत्यामिव निर्मितम् ॥

स्वच्छं चैव पुरं तत्र प्रविवेश नृपो यदुः ।
अगाधं तोयदाकरं पूर्णं सर्पवधूगणैः ।।
तस्य दत्तं मणिमयं जलजं परमासनम् ।।
स्वास्तीर्ण पद्मपत्रैश्च पद्मसूत्रोत्तरच्छदम् ।।
तमासीनं नृपं तत्र परमे पन्नगासने ।
द्विजिह्वपतिख्यग्रो धूम्रवर्णोऽभ्यभाषत ।।
पिता ते स्वर्गतिं प्राप्तः कृत्वा वंशमिमं महत् ।
भवन्तं तेजसा युक्तमुत्पाद्य वसुधाधिपम् ।
यादवानामयं वंशस्त्वनाम्ना यदुपुङ्गवः ।
पित्रा ते मङ्गलार्थाय स्थापितः पार्थिवाकरः ।।
वंशे चास्मिंस्तव विभो देवानां तनयाव्ययाः ।
ऋषीणामुरगाणां च उत्पत्स्यन्ते नृयोनिजाः ।।
तन्ममेमाः सुताः पंच कुमार्यो वृतसम्मताः ।
उत्पन्ना यौवनाश्वस्य भगिन्यां नृपसत्तमः ।
प्रतीच्छेमाः स्वधर्मेण प्राजापत्येन कर्मणा ।
वरं च ते प्रदास्यामिवरार्हस्त्वं मतो मम ।।

हर्यश्व दशसहस्रवर्ष (=१०००० दिन=लगभग २७ वर्ष) राज्य करके स्वर्ग सिधारा ।

यदुद्वितीय का वृत्तान्त

तब प्रजा ने अदीनात्मा (सुपुष्ट शरीर) यदु का अभिषेक किया । पिता के स्वर्गगमन के पश्चात् वह यदु अपने कर्मों से सूर्य की भांति उदित हुआ । उसने शासन करते हुए प्रजा का भय एवं तस्करों को समाप्त कर दिया । इन्द्र के समान तेजस्वी 'यदु (द्वितीय)' था अब (उत्तरकालीन) उसके वंशज इसी के नाम से 'यादव' कहलाये ।

एक बार वह राजा यदु समुद्र में अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था, जिस चन्द्रमा रोहिणी आदि के साथ हो । वह सहसा पानी (समुद्र) में गिर गया, परन्तु तैरने लगा, तब एक नागराज धूम्रवर्ण ने उसको खींच पकड़ लिया और अपने 'नागपुर' (नागद्वीप) की ओर ले गया । वहां 'यदु' ने समुद्र के मध्य द्वीप में सर्पनगर (नागद्वीप) को देखा, जिस प्रकार धरती पर ही बसा हो । वह उस सुन्दर नगर में घूमने लगा । वह नाग कन्याओं से परिपूर्ण नगर था । वहां नाग कन्याओं ने उसको एक श्रेष्ठ आसन बैठने के

लिये दिया। जो भली-भांति बिछाया गया था। उस मणिमय परमासन पर वह राजा यदु बैठ गया। नागराज धूम्रवर्ण ने शान्त मन से यदु से कहा—हे वत्स। आपके पिता (हर्यश्व) इस वंश की स्थापना करके स्वर्ग चले गये। उन्होंने आप जैसे तेजस्वी पुत्र को उत्पन्न किया। अब यादवों का वंश तुम्हारे नामसे ही यादववंश कहलायेगा। आपके पिता ने कल्याणकामना से यह राजाओं की खान यदुवंश स्थापित किया। अब आप मेरी इन पांच कुमारियों (पांच नागकन्याओं) से विवाह कीजिये। इससे राजर्षियों और नागों के वंश उत्पन्न होंगे। ये मेरी पांचों नागकुमारियां यौवनाश्व (किसी राजा) की भगिनी (मेरी पत्नी) से उत्पन्न हैं। अब आप इन्हें अपनाइये और प्राजापत्याविधि से विवाह कीजिये ओर आप वर पाने योग्य हैं अतः मैं आपको वरदान भी दूंगा। तुम मेरे सम्मत (पूजित) हो।

भैमाश्च कुकुराश्च भोजाश्चान्धकयादवाः।
दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्यातिं यास्यन्ति सप्त ते
स तस्मै धूम्रवर्णो वै कन्याः कन्याव्रते स्थिताः।
जलपूर्णेन योगेन ददाविन्द्रसमाय वै।
स वरं कन्यकाश्चैव लब्ध्वा यदुवरस्तदा।
उदतिष्ठतवेगेन सलिलाच्चन्द्रमा इव।
समाश्वास्य च ताः सर्वाः सपत्नीः पावकोपमाः।
जगाम स्वपुरं राजा प्रीत्या परमया युतः ॥
स तासु नागकन्यासु कालेन महता नृपः।
जनयामास विक्रान्तान् पंच पुत्रान् कुलोद्वहान् ॥

पंचपुत्राः—

मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च।
माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम् ॥
स तान् नृपतिशार्दूलः शार्दूलानिव वेगितान्।
प्रीत्या परमया प्राह सुतान् वीर्यकुतूहलात् ॥
विन्ध्यक्षर्वन्तावभितो द्वे पुर्यो पर्वताश्रये।
निवेशयतु यत्नेन मुचुकुन्दः सुतोमम।
सह्यस्य चोपरिष्टात्तु दक्षिणां दिशमाश्रितः।
पद्मवर्णोऽपि मे पुत्रो निवेशयतु मा चिरम् ॥

तत्रैव परतः कान्ते देशे चम्पकभूषिते ।
सरसो मे पुरं रम्यं निवेशयतु पुत्रकः ।।

हरितोऽयं महाबाहुः सागरे हरितोदके ।
द्वीपं पन्नगराजस्य सुतो मे पालयिष्यति ।।

माधवो मे महाबाहुर्ज्येष्ठपुत्रश्च धर्मवित् ।
यौवराज्येन संयुक्तः स्वपुरं पालयिष्यति ।।
एवेदमेक्ष्वाकुवंशात् तु यदुवंशो विनिःसृत ।
चतुर्धा यदुपुत्रैस्तु चतुर्भिद्यते पुनः ।
स यदुर्माधवेराज्यं विसृज्य यदुपुङ्गवे ।
त्रिविष्टपं गतो राजादेहं त्यक्त्वा महीतले ।।

तुम्हारे सात प्रकार के वंशज क्षत्रियगण प्रसिद्ध होंगे—भैम, कुकुर, भोज, अन्धक, यादव, दाशार्ह और वृष्णि ।' अतः धूम्रवर्ण नागराज ने अपनी पांच कन्याएं जो कन्याव्रत में स्थित थीं, जलपूर्ण व्रतयोग द्वारा इन्द्रतुल्यपराक्रमी यदु को दे दीं ।

यदु कन्या और वरदान प्राप्त करके शीघ्र ही समुद्र (द्वीप) से बाहर निकला, जिस प्रकार पानी से चन्द्रमा निकला था । वह राजा यदु अपनी नागपत्नियों को समाश्वस्त करता हुआ, प्रेमपूर्वक अपने नगर में आया । उसने दीर्घकाल में (यथासमय) उन नागपत्नियों से पांच पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किए—जो वंश प्रवर्तक थे ।

पांच यदुपुत्र

मुचुकुन्द, महाबली पद्मपर्ण, माधव, सारस और हरित ।…

उस राजसिंह यदु ने अपने सिंहतुल्य पांच पुत्रों से बल जिज्ञासाहेतु प्रेमपूर्वक कहा—'यह मुचुकुन्द, विन्ध्य और ऋक्षपर्वतों के दोनों और पर्वत के नीचे दो नगरियां बसाये । सह्यपर्वत के ऊपर दक्षिणादिशा में पद्मवर्ण अपनीराजधानी बनाये । उसके आगे के प्रदेश में शीघ्र ही चम्पकभूषित देश में मेरा पुत्र सारस एक सुन्दर नगर बसायें और मेरा पुत्र हरित हरे सागर सागर के तटवर्ती नागराज धूम्रवर्ण के द्वीप में राज्य करे तथा मेरा पुत्र माधव जो ज्येष्ठ पुत्र है तथा धर्मात्मा है, इसी मेरे नगर (गिरिनगर-गिरनार) में राज्य करेगा ।…

इस प्रकार इक्ष्वाकुवंश से ही यह यदुवंश निकला है और यदु (द्वितीय) के चार पुत्रों द्वारा विभक्त हुआ।

यदु यदुपुङ्गव माधव को राज्य देकर पृथिवी छोड़कर स्वर्ग सिधार गया।

बभूव माधवसुतः सत्वतो नाम वीर्यवान्।
सर्त्ववृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणैः स्थितः॥

सात्वतवंश

सत्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत्।
ये भैमा सुसंवृताः सत्वतात् सात्वताः स्मृता॥
राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन् रामे राज्यं प्रशासति।
शत्रुघ्नो लवणं हत्वा विच्छेद समधोर्वनम्॥
तस्मिन् मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम्।
निवेशयामास विभुःसुमित्रानन्दवर्धनः॥
पर्यये चैव रामस्य भरतस्य तथैव च।
सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम्॥
भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसम्बन्धकारणात्।
स्ववशे स्थापिता पूर्व स्वयमध्यासिता तथा॥
ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि।
अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत्॥
अन्धकस्य सुतो जज्ञे रेवतो नाम पार्थिवः।
ऋक्षोऽपि रेवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्धनि॥
रेवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भा महायशाः।
बभूव पृथिवीपालः पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः॥
तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु केशव।
चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाः शुभाः॥
बसुर्बभ्रुसुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान्।
यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे॥
तैरियं यादवो वंशः पार्थिवैर्बहुलीकृतः॥

(हरिवंशपुराणे:, अध्यायौः, ३७, ३८)

सात्वतवंश

माधव का पुत्र 'सत्वत' हुआ, जो बड़ा बलवान् और सर्व गुणों से सम्पन्न था। उसमें सभी राजगुण भी थे।

सत्वत का पुत्र भीम नाम का महान् राजा हुआ। इसी के नाम से भैम नाम के क्षत्रिय (यादव) और सत्वत से सात्वत क्षत्रिय प्रख्यात हुए। इसी भीम (सात्वत) के समय में रामदाशरथि का राज्यचल रहा था। इसी समय शत्रुघ्न (दाशरथि) ने लवणासुर को मारकर मधुवन को नष्ट कर दिया तथा मधुवन में मथुरापुरी बसाई (वस्तुतः प्राचीन मधुपुरी—मथुरा का शत्रुघ्न ने नवीकरण किया, मधु केनाम से नगरी पहले ही बसी हुई थी) इसी युग में राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने जब वैष्णवपद को प्राप्त किया, तभी भीमसेन सात्वत ने अपने पूर्वराज्य पर पुनः कब्जा कर लिया। कुश के राज्यकाल में और लव के यौवराज्यकालमें भीम के पुत्र अन्धक ने राज्य किया। अन्धक का पुत्र राजा रेवत हुआ। रेवत का पुत्र रम्य ऋक्षपर्वत शिखर पर हुआ, जिसका नाम विश्वगर्भा था, जो पृथिवी पर यशस्वी राजा हुआ। उसकी दिव्यरूपवाली तीन पत्नियों से चार लोकपालों के समान शुभलक्षणयुक्त श्रेष्ठ और बलवान् चार पुत्र उत्पन्न हुए—वसु, बभ्रु, सुषेण और सभाक्ष। ये चारों ही यादववीर चार लोकपालों के समान प्रख्यात थे। इनके द्वारा पृथिवी पर यादववंश का बहुत विस्तार हुआ।

(हरिवंशपुराण, १।३७, ३८ अध्याय)

६

भुवनकोशः

सुदर्शनद्वीप

धृतराष्ट्र उवाच

नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि संजय ।
तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः ।। १ ।।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! नदियों, पर्वतों तथा जनपदोंके ओर दूसरे भी जो पदार्थ इस भूतलपर आश्रित हैं, उन सबके नाम बताओ ।। १ ।।

प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च संजय ।। २ ।।

प्रमाणवेत्ता संजय ! तुम सारी पृथ्वीका पूरा प्रमाण (माप) मुझे बताओ । साथ ही यहाँके वनोंका भी वर्णन करो ।। २ ।।

संजय उवाच

पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ।। ३ ।।

संजय बोले—महाराज ! इस पृथ्वीपर रहनेवाली जितनी भी वस्तुएँ, हैं, वे सब-की-सब संक्षेपसे पञ्चमहाभूत स्वरूप हैं । इसलिए मनीषी पुरुष उन सबको 'सम' कहते हैं ।।

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ।। ४ ।।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि-ये पञ्च महाभूत हैं। आकाशसे लेकर भूमितक जो पञ्चमहाभूतों का क्रम है, उसमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर सब भूतोंमें एक-एक गुण अधिक होते हैं। इन सब भूतोंमें भूमिकी प्रधानता है ॥ ४ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ५ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचोंको तत्ववेत्ता महर्षियोंने पृथ्वीका गुण बताया है ॥ ५ ॥

चत्वारोऽप्सु गुणा राजन् गन्धस्तत्र न विद्यते।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥ ६ ॥

राजन्! जलमें चार ही गुण हैं। उसमें गन्धका अभाव है। तेजके शब्द, स्पर्श तथा रूप—ये तीन गुण है। वायुके शब्द और स्पर्श दो ही गुण है और आकाशका एकमात्र शब्द ही गुण है ॥ ६ ॥

एते पञ्च गुणा राजन् महाभूतेषु पञ्चसु।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥ ७ ॥

राजन्! ये पाँच गुणा सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयभूत पञ्चमहाभूतोंमें रहते हैं। जिनमें समस्त प्राणी प्रतिष्ठित है ॥ ७ ॥

अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥ ८ ॥

ये पांचों गुण जब साम्यावस्थामें रहते हैं, तव एक-दूसरेसे संयुक्त नहीं होते है ॥ ८ ॥

यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम्।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा ॥ ९ ॥

जब ये विषमभावको प्राप्त होते हैं, तब एक दूसरेसे मिल जाते हैं' अन्यथा नहीं ॥ ९ ॥

आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः।
सर्वाण्यरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥ १० ॥

ये सव भूत क्रमसे नष्ट होते और क्रमसे ही उत्पन्न होते हैं, पृथ्वी आदि के क्रमसे इनका लय होता है औन आकाश आदिके क्रमसे इनका प्रादुर्भाव)।

ये सब अपरिमेय हैं। इनका रूप ईश्वरकृत है ॥ १० ॥

तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११ ॥

भिन्न-भिन्न लोकों में पाञ्चभौतिक धातु दृष्टिगोचर होते हैं। मनुष्य तर्कके द्वारा उनके प्रमाणोंका प्रतिपादन करते हैं ॥

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत् तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

परंतु जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हे तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। जो प्रकृतिसे परे है, यही अचिन्त्यस्वरुप है ॥ १२ ॥

सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन।
परिमण्डलोमहाराजद्वीपोऽसौचक्रसंस्थितः ॥ १३ ॥

कुरुनन्दन! अब मैं सुदर्शन नामक द्वीपका वर्णन करूँगा। महाराज! वह द्वीप चक्रकी भाँति गोलाकार स्थित है ॥

नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः।
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥

वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवान्।
लवणेन समुद्रेण समन्तात् परिवारितः ॥ १५ ॥

वह नाना प्रकारकी नदियोंके जलसे आच्छादित, मेघके समान उच्चतम पर्वतोंसे सुशोभित, भाँति-भांतिके नगरों, रमणीय जनपदों तथा फल-फूलसे भरे हुए वृक्षोंसे विभूषित है। यह द्वीप भांति-भांतिकी सम्पदाओं तथा धन-धान्यसे सम्पन्न है। उसे सब ओरसे लवणसमुद्रने घेर रक्खा है ॥

यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः।
एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥ १६ ॥

जैसे पुरुष दर्पणमें अहना मुंह देखता है, उसी प्रकार सुदर्शनद्वीप चन्द्रमण्डलमें दिखायी देता है ॥ १६ ॥

द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान्।
सर्वौषधिसमावायः सर्वतः परिवारितः ॥ १७ ॥

इस के दो अंशमें पिप्पल और दो अंशमें महान् शश दृष्टिगोचर होता है। इनके सब ओर सम्पूर्ण ओषधियोंका समुदाय फैला हुआ है ॥ १७ ॥

आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उच्यते ।
ततोऽन्य उच्यते चायमेनं संक्षेपतः श्रणु ।। १८ ।।

इन सबको छोड़कर शेष स्थान जलमय समझना चाहिये । इससे भिन्न संक्षिप्त भूमिखण्ड बताया जाता है । उस खण्डका मैं संक्षेपसे वर्णन कर हूँ, उसे सुनिये ।। १८ ।।

पञ्चमोऽध्यायः ।। ५ ।।

जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें सुदर्शनद्वीपवर्णनविषयक पाँचवा अध्याय ।।५।।

सुदर्शनके वर्ष, पर्वत, मेरुगिरि, गङ्गानदी तथा शशाकृतिका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद् बुद्धिमंस्त्वया ।
तत्त्वज्ञश्चासि सविस्तरं ब्रूहि संजय ।। १ ।।

धृतराष्ट्र बोले—बुद्धिमान संजय ! तुमने सुदर्शनद्वीपका विधिपूर्वक थोड़ेमें ही वर्णन कर दिया, परंतु तुम तो तत्वोंके ज्ञाता हो; अतः इस सम्पूर्ण द्वीपका विस्तारसे साथ वर्णन करो ।। १ ।।

यावान् भूम्यवकाशोऽयं दश्यते शशलक्षणे ।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ।। २ ।।

चन्द्रमाके शश-चिह्नमें भूमि का जितना अवकाश दृष्टिगोचर होता है, उसका प्रमाण बताओ । तत्पश्चात् पिप्पलस्थानका वर्णन करना ।। २ ।।

वैशम्पायन उवाच

एवं राज्ञा स पृष्टस्तु संजयो वाक्यमब्रवीत् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रके इस प्रकार पुछने पर संजयने कहना आरम्भ किया ।। २ ।।

संजय उवाच

प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।। ३ ।।

संजय बोले—महाराज ! पूर्व दिशासे पश्चिम दिशाकी ओर फैले हुए ये छः वर्ष पर्वत हैं, जो दोनों ओर पूर्व तथा पश्चिम समुद्रमें घुसे हुए हैं ।। ३ ।।

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः ।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसंनिभः ।। ४ ।।

सर्वधातुविचित्रश्च श्रृङ्गवान् नाम पर्वतः ।
एते वै पर्वता राजन् सिद्धचारणसेविताः ।। ५ ।।

उनके नाम इस प्रकार हैं—हिमवान्, हेमकूट, पर्वतश्रेष्ठ निषध, वैदूर्य-मणिमय नीलगिरि, चन्द्रके समान उज्ज्वल श्वेतगिरि तथा सब धातुओंसे सम्पन्न होकर विचित्र शोभा धारण करनेवाला श्रृङ्गवान् पर्वत । राजन् ! ये छः पर्वत सिद्धों तथा चारणोंके निवासस्थान हैं ।। ४-५ ।।

एषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ।। ६ ।।

भरतनन्दन ! इनके बीचका विस्तार सहस्रों योजन है । वहाँ भिन्न-भिन्न बर्ष (खण्ड) हैं और इनमें बहुत से पवित्र जनपद हैं ।। ६ ।।

वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ।। ७ ।।

उनमें सब ओर नाना जातियोंके प्राणी निवास करने हैं उनमेंसे यह भारतवर्ष है । इसके बाद हिमालयसे उत्तर हैमवतवर्ष है ।। ७ ।।

हेमकूटात् परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते ।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।। ८ ।।

प्रागायतो महाभाग माल्यवान् नाम पर्वतः ।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ।। ९ ।।

हेमकूट पर्वतसे आगे हरिवर्षकी स्थिति बतायी जाती है महाभाग ! नीलगिरिके दक्षिण और निषधपर्वतके उत्तर पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैला हुआ माल्यवान् नामक पर्वत है माल्यवान् से आगे गन्धमादन पर्वत है ।। ८-९ ।।

परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावक ।। १० ।।

इन दोनोंके बीचमें मण्डलाकार सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जो प्रातःकालके सूर्यके समान प्रकाशमान तथा धूमरहित अग्निके समान कान्तिमान् है ।। १० ।।

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ।। ११ ।।

उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। राजन् ! वह नीचे भी चौरासी हजार योजनतक पृथ्वीके भीतर घुसा हुआ है ॥

ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् च लोकानावृत्य तिष्ठति।
तस्त पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिताविभो ॥ १२ ॥

प्रभो ! मेरुपर्वत ऊपर- नीचे तथा अगल-बगल सम्पूर्णलोकोंको आवृत करके खड़ा है। उसके पार्श्वभागमें ये चार द्वीप घुसे हुए हैं ॥ १२ ॥

भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ १३ ॥

भारत ! इनके नाम ये हैं—भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप तथ उत्तरकुरु द्वीपमें पुण्यात्मा पुरुषोंका निवास है ॥ १३ ॥

विहगः सुमुखो यस्तु सुपर्णस्यात्मजः किल।
सर्वैविचिन्तयामास सौवर्णान् वीक्ष्य वायसान् ॥ १४ ॥

मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम्।
अविशेषकरो यस्मात् तस्मादेनं त्यजाम्यहम् ॥ १५ ॥

एक समय पक्षिराज गरुड़के पुत्र सुमुखने मेरुपर्वतपर सुनहरे परोवाले कौवोंको देखकर सोचा कि यह सुमेरुपर्वत उत्तम, मध्यम तथा अधम पक्षियोंमें इसको त्याग दूंगा। ऐसा बिचार करके वे वहाँसे अन्यत्र चले गये ॥ १४-१५

तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥

ज्योतिर्मय ग्रहों सर्वश्रेष्ट सूर्यदेव, नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा तथा वायुदेव भी प्रदक्षिणक्रममें सदा मेरुगिरिकी परिक्रमा करते रहते हैं ॥ १६ ॥

स पर्वतो महाराजदिव्यपुष्पफलान्वितः।
भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥

महाराज ! वह पर्वत दिव्य पुष्पों और फलोंसे सम्पन्न है। वहाँके सभी भवन जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित हैं। उनसे घिरे हुए उस पर्वतकी बड़ी शोभा होती है ॥ १७ ॥

तत्र देवगणा राजन् गन्धर्वासुरराक्षसाः।
अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा ॥ १८ ॥

राजन् ! उस पर्वतपर देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा अप्सराएँ सदा क्रीड़ा करती रहती हैं ।। १८ ।।

तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः ।
समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः ।। १६ ।।

वहाँ ब्रह्मा, रुद्र तथा देवराज इन्द्र एकत्र हो पर्याप्त दक्षिणावाले नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते है ।। १६ ।।

तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हहा हुहूः ।
अभिगम्यामरश्रेष्ठांस्तुष्टुर्वुर्विविधैः स्तवैः ।। २० ।।

उस समय तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, हाहा और हूहू नामक गन्धर्व उन देवेश्वरोंके पास जाकर भांति-भांतिके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं ।। २० ।।

सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः ।
तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि ।। २१ ।।

राजन् ! आपका कल्याण हो । वहां महात्मा सप्तर्षिगण तथा प्रजापति कश्यप प्रत्येक पर्वपर सदा पधारते हैं ।। २१ ।।

तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ।। २२ ।।

भूपाल ! उस मेरुपर्वतके ही शिखरपर दैत्योंके साथ शुक्राचार्य निवास करते हैं । ये सब रत्न तथा ये रत्नमय पर्वत शुक्राचार्यके ही अधिकारमें है ।। २२ ।।

तस्मात् कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुषेभ्यः प्रयच्छति ।। २३ ।।

भगवान् कुबेर उन्हींसे धनका चतुर्थ भाग प्राप्त करके उसका उपभोग करते हैं और उस धनका सोलहवां भाग मनुष्यों को देते हैं ।। २३ ।।

पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ।। २४ ।।

सुमेरु पर्वतके उत्तर भागमें समस्त ऋतुओंके फूलोंसे भरा हुआ दिव्य एवं रमणीय कर्णिकार (कनेर वृक्षोंका) वन है, जहां शिलाओंके समूह संचित हैं ।। २४ ।।

तत्र साक्षात् पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।
उमासहायो भगवान् रमते भूतभावनः ।। २५ ।।

कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ।। २६ ।।

वहां दिव्य भूतोंसे घिरे हुए भूतभावन भगवान् पशुपति पैरोंतक लटकनेवाली कनेरके फूलोंकी दिव्य माला धारण किये भगवती उमाके साथ विहार करते हैं । वे अपने तीनों नेत्रोंद्वारा ऐसा प्रकार फैलाते हैं, मानों तीन सूर्य उदित हुए हों ।। २५-२६ ।।

तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ।। २७ ।।

उग्र तपस्वी एवं उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले सत्यवादी सिद्ध पुरुष ही यहां उनका दर्शन करते हैं । दुराचारी लोगोंको भगवान् महेश्वरका दर्शन नहीं हो सकता ।। २७ ।।

तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपापरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ।। २८ ।।

पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा ।
प्लवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ।। २९ ।।

नरेश्वर ! उस मेरुपर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेतधारावाली, विश्वरूपा, अपरिमित शक्तिशालिनी, भयंकर वज्रपातके समान शब्द करनेवाली, परम पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित, शुभस्वरूपा पुण्यमयी भागीरथी गङ्गा बड़े प्रबलवेगसे सुन्दर चन्द्रकुण्डमें गिरती हैं ।। २८-२९ ।।

तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः ।
तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि ।। ३० ।।
शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव पिनाकधृक् ।

वह पवित्र कुण्ड स्वयं गङ्गाजीने ही प्रकट किया है, जो अपनी अगाध जलराशिके कारण समुद्रके समान शोभा पाता है । जिन्हें अपने ऊपर धारण करना पर्वतोंके लिये भी कठिन था, उन्हीं गङ्गाको पिनाकधारी भगवान् शिव एक लाख वर्षोंतक अपने मस्तकपर ही धारण किये रहे ।। ३० ।।

मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो महीपते ।। ३१ ।।
जम्बूखण्डस्तु तत्रैव सुमहान् नन्दनोपमः ।
आयुर्दश सहस्राणि वर्षाणां तत्र भारत ।। ३२ ।।

राजन् ! मेरुके पश्चिम भागमें केतुमालद्वीप है, वहीं अत्यन्त विशाल जम्बूखण्ड नामक प्रदेश है, जो नन्दनवनके समान मनोहर जान पड़ता है। भारत ! वहाँके निवासियोंकी आयु दस हजार वर्षोंकी होती है ।। ३१-३२ ।।

सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ।। ३३ ।।

वहाँके पुरुष सुवर्णके समान कान्तिमान् और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं। उन्हें कभी रोग और शोक नहीं होते। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है ।। ३३ ।।

जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः ।
गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ।। ३४ ।।
संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः ।

वहाँ तपाये हुए सुवर्णके समान गौर कान्तिवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं। गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर गुह्यकोंके स्वामी कुबेर राक्षसोंके साथ रहते और अप्सराओंके समुदायोंके साथ आमोद-प्रमोद करते हैं ।। ३४ ।।

गन्धमादनपादेषु परेष्वपरगण्डिकाः ।। ३५ ।।
एकादश सहस्राणि वर्षाणां परमायुषः ।

गन्धमादनके अन्यान्य पार्श्ववर्ती पर्वतोंपर दूसरी-दूसरी नदियाँ हैं, जहां निवास करनेवाले लोगोंकी आयु ग्यारह हजार वर्षोंकी होती है ।। ३५ ।।

तत्र हृष्टा नरा राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ।। ३६ ।।

राजन् ! वहाँके पुरुष हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी और महाबली होते हैं तथा सभी स्त्रियाँ कमलके समान कान्तिमती और देखनेमें अत्यन्त मनोरम होती हैं ।। ३६ ।।

नीलात् परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् ।
वर्षमैरावतं राजन् नानाजनपदावृतम् ।। ३७ ।।

नील पर्वतसे उत्तर श्वेतवर्ष और श्वेतवर्षसे उत्तर हिरण्यकवर्ष है।

तत्पश्चात् शृङ्गवान् पर्वतसे आगे ऐरावत नामक वर्ष है। राजन् ! वह अनेकानेक जनपदोंसे भरा हुआ है ।। ३७ ।।

धनुःसंस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
इलावृतं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ।। ३८ ।।

महाराज ! दक्षिण और उत्तरके क्रमशः भारत और ऐरावत नामक दो वर्ष धनुषकी दो कोटियोंके समान स्थित हैं और बीचमें पाँच वर्ष (श्वेत, हिरण्यक, इलावृत, हरिवर्ष तथा हैमवत) हैं । इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है ।। ३८ ।।

उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ।
आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ।। ३९ ।।

भारतसे आरम्भ करके ये सभी वर्ष आयुके प्रमाण, आरोग्य, धर्म, अर्थ और काम-इन सभी दृष्टियोंसे गुणोंमें उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं ।। ३९ ।।

समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत ।
एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ।। ४० ।।

भारत ! इन सब वर्षोंमें निवास करनेवाले प्राणी परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं । महाराज ! इस प्रकार यह सारी पृथ्वी पर्वतोंद्वारा स्थिर की गयी है ।। ४० ।।

हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः ।
यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते ।। ४१ ।।

राजन ! विशाल पर्वत हेमकूट ही कैलास नामसे प्रसिद्ध है । जहाँ कुबेर गुह्यकोंके साथ सानन्द निवास करते हैं ।। ४१ ।।

अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः ।। ४२ ।।

कैलाससे उत्तर मैनाक है और उससे भी उत्तर दिव्य तथा महान् मणिमय पर्वत हिरण्यशृङ्ग है ।। ४२ ।।

तस्य पार्श्वेमहद् दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् ।
रम्यं विन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ।। ४३ ।।
द्रष्टुं भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः ।

उसीके पास विशाल, दिव्य, उज्जवल तथा काञ्चनमयी बालुकासे

सुशोभित रमणीय बिन्दुसरोवर है, जहाँ राजा भगीरथने भागीरथी गङ्गाका दर्शन करनेके लिये बहुत वर्षोंतक निवास किया था ।। ४३ ।।

यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ।
तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ।। ४४ ।।

वहाँ बहुत-से मणिमय यूप तथा सुवर्णमय चैत्य (महल) शोभा पाते हैं । वहीं यज्ञ करके महायशस्वी इन्द्रने सिद्धि प्राप्त की थी ।। ४४ ।।

स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः ।। ४५ ।।

उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ।। ४६ ।।

उसी स्थानपर सब ओर सम्पूर्ण जगत्के लोग लोकस्रष्टा प्रचण्ड तेजस्वी सनातन भगवान् भूतनाथकी उपासना करते हैं । नर, नारायण, ब्रह्मा, मनु और पाँचवें भगवान् शिव वहाँ सदा स्थित रहते हैं ।। ४५-४६ ।।

तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।
ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ।। ४७ ।।

ब्रह्मलोकसे उतरकर त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गङ्गा पहले उस बिन्दु-सरोवरमें ही प्रतिष्ठित हुई थी । वहींसे उनकी सात धाराएं विभक्त हुई हैं ।। ४७ ।।

वस्वोकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ।। ४८ ।।

उन धाराओंके नाम इस प्रकार हैं—वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी सरस्वती, जम्बूनदी, सीता, गङ्गा और सिंधु ।। ४८ ।।

अचिन्त्या दिव्यसंकाशा प्रभोरेषैव संविधिः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ।। ४९ ।।

यह (सात धाराओका प्रादुर्भाव जगत्के उपकारके लिये) भगवान्का ही अचिन्त्य एवं दिव्य सुन्दर विधान है। जहाँ लोग कल्पके अन्ततक यज्ञानुष्ठानके द्वारा परमात्माकी उपासना करते हैं ।। ४९ ।।

दृश्यादृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्तगङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।। ५० ।।

इन सात धाराओंमें जो सरस्वती नामवाली धारा है, यह कहीं प्रत्यक्ष दिखायी देती है और कहीं अदृश्य हो जाती है। ये सात दिव्य गङ्गाएँ तीनों लोकोंमें विख्यात हैं ।। ५० ।।

रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ।। ५१ ।।

हिमालयपर राक्षस, हेमकूटपर गुह्यक तथा निषधपर्वतपर सर्प और नाग निवास करते हैं। गोकर्ण तो तपोवन है ।। ५१ ।।

देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मषर्यस्तथा ।
शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसंचरः ।। ५२ ।।

श्वेतपर्वत सम्पूर्ण और असुरोंका निवासस्थान बताया जाता है। निषधगिरिपर गन्धर्व तथा नीलगिरिपर ब्रह्मर्षि निवास करते हैं। महाराज ! शृङ्गवान् पर्वत तो केवल देवताओंकी ही विहारस्थली है ।। ५२ ।।

इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।। ५३ ।।

राजेन्द्र ! इस प्रकार स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण प्राणी इन सात वर्षोंमें विभागपूर्वक स्थित हैं ।। ५३ ।।

तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ।। ५४ ।।

उनकी अनेक प्रकारकी दैवी और मानुषी समृद्धि देखी जाती है। उसकी गणना असम्भव है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उस समृद्धिपर विश्वास करना चाहिये ।। ५४ ।।

स वै सुदर्शनद्वीपो दृश्यते शशवद् द्विधा ।
यां तु पृच्छसि मां राजन् दिव्यामेतां शशाकृतिम् ।
कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ।। ५५ ।।

इस प्रकार वह सुदर्शनद्वीप बताया गया है, जो दो भागोंमें विभक्त होकर चन्द्रमण्डलमें प्रतिबिम्बित हो खरगोशकी-सी आकृतिमें दृष्टिगोचर होता है। राजन् ! आपने जो मुझसे इस शशाकृति (खरगोशकी-सी आकृति) के विषयमें प्रश्न किया है उसका वर्णन करता हूँ, सुनिये। पहले जो दक्षिण और उत्तरमें

स्थित (भारत और ऐरावत नामक) दो द्वीप बताये गये हैं, वे ही दोनों उस शश (खरगोश) के दो पार्श्वभाग हैं। नागद्वीप तथा काश्यपद्वीप उसके दोनों कान हैं ।। ५५ ।।

ताम्रवर्णके वृक्षों और पत्रोंसे सुशोभित श्रीमान् मलयपर्वत ही इसका सिर है । इस प्रकार यह सुदर्शनद्वीपका दूसरा भाग खरगोशके आकारमें दृष्टिगोचर होता है ।। ५६ ।।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि ।
भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।
परिमाणका विवरणविषयक छठा अध्याय

उत्तर कुरु, भद्राश्ववर्ष तथा माल्यवान्का वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

मेरोरथोत्तरं पार्श्वे पूर्वे चाचक्ष्व संजय ।
निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ।। १ ।।

धृतराष्ट्रने कहा—परमबुद्धिमान् संजय ! तुम मेरुके उत्तर तथा पूर्व भागमें जो कुछ है, उसका पूर्ण रूपसे वर्णन करो । साथ ही माल्यवान् पर्वतके विषयमें भी जानने योग्य बातें बताओ ।। १ ।।

संजय उवाच

दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः ।। २ ।।

संजयने कहा—राजन् ! नीलगिरिसे दक्षिण तथा मेरुपर्वतके उत्तर भागमें पवित्र उत्तर कुरुवर्ष है, जहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं ।। २ ।।

तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ।। ३ ।।

वहांके वृक्ष सदा पुष्प और फलसे सम्पन्न होते हैं और उनके फल बड़े मधुर एवं स्वादिष्ट होते हैं । उस देशके सभी पुष्प सुगन्धित और फल सरस होते हैं ।। ३ ।।

सर्वकामफलास्तत्र केचिद् वृक्षा जनाधिप ।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ।। ४ ।।

ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ।। ५ ।।

नरेश्वर ! वहाँके कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं, जो सम्पूर्ण मनोवाच्छित फलोंके दाता हैं । राजन् दूसरे क्षीरी नामवाले वृक्ष हैं, जो सदा षड्विध रसोंसे युक्त एवं अमृतके समान स्वादिष्ट दुग्ध बहाते रहते हैं । उनके फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं ।। ४-५ ।।

सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका ।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप ।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ।। ६ ।।

जनेश्वर ! वहाँकी सारी भूमि मणिमयी है । वहां जो सूक्ष्म वालुके कण हैं, वे सब सुवर्णमय हैं । उस भूमिपर कीचड़का कहीं नाम भी नहीं है । उसकास्पर्श सभी ऋतुओंमें सुखदायक होता है । वहांके सुन्दर सरोवर अत्यन्त मनोरम होते हैं । उनका स्पर्श सुखद जान पड़ता है ।। ६ ।।

देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।। ७ ।।

वहां देवलोकसे भूतलपर आये हुए समस्त पुण्यात्मा मनुष्य ही जन्म ग्रहण करते हैं । ये सभी उत्तम कुलसे सम्पन्न और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं ।। ७ ।।

मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसंनिभम् ।। ८ ।।

वहां स्त्री-पुरुषोंके जोड़े भी उत्पन्न होते हैं । स्त्रयां अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं । उत्तरकुरुके निवासी क्षीरी वृक्षोंके अमृत-तुल्य दूध पीते हैं ।। ८ ।।

मिथुनं जायते काले समं तच्च प्रवर्धते ।
तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ।। ९ ।।

वहां स्त्री-पुसुषोंके जोड़े एक ही साथ उत्पन्न होते और साथ-साथ बढ़ते हैं । उनके रूप, गुण और वेष सब एक-से होते हैं ।। ९ ।।

एकैकमनुरक्तं च चक्रवाकसमं विभो ।
निरामयश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ।। १० ।।

प्रभो ! वे चकवा-चकवीके समान सदा एक दूसरेके अनुकूल बने रहते हैं। उत्तरकुरुके लोग सदा नीरोग और प्रसन्नचित्त रहते है ।। १० ।।

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।
जीवन्ति ते महाराज न चान्योन्यं जहत्युत ।। ११ ।।

महाराज ! वे ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। एक दूसरे कभी त्याग नहीं करते ।। ११ ।।

भरुण्डा नामशकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः।
तान् निर्हरन्तीह मृतान् दरीषु प्रक्षिपन्ति च ।। १२ ।।

वहां भारुण्ड नामके महाबली पक्षी हैं, जिनकी चोंचें बड़ी तीखी होती हैं वे वहांके मरे हुए लोगोंकी लाशें उटाकर ले जाते और कन्दराओंमें फेंक देते हैं ।। १२ ।।

उत्तराःकुरवो राजन्व्याख्यातास्ते समासतः।
मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ।। १३ ।।

राजन् ! इस प्रकार मैंने आपसे थोड़में उत्तरकुरुवर्षका वर्णन किया। अब में मेरुके पूर्वभागमें स्थित भद्राश्ववर्षका यथावत् वर्णन करूँगा ।। १३ ।।

तस्य मूर्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य विशाम्पतेः।
भद्रसालबनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ।। १४ ।।

प्रजानाथ ! भद्राश्ववर्षके शिखरपर भद्रशाल नामका एक वृक्ष है एवं वहां कालाम्र नामक महान् वृक्ष भी है ।। १४ ।।

कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः।
द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः।, १५ ।।

महाराज ! कालाम्र वृक्ष बहुत ही सुन्दर और एक योजन ऊँचा है। उसमें सदा फुल और फल लगे रहते हैं। सिद्ध और चारण पुरुष उसका सदा सेवन करते हैं ।। १५ ।।

तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः।
स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ।।

वहांके पुरुष श्वेतवर्षके होते हैं। वे तेजस्वी और महान् बलवान् हुआ करते हैं। वहांकी स्त्रियां कुमुद-पुष्पके समान गौर वर्णवाली, सुन्दरी तथा देखनेमें प्रिय होती हैं ।। १६ ।।

चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
चन्द्रशीतलगान्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ।। १७ ।।

उनकी अङ्गकान्ति एवं वर्ण चन्द्रमाके समान है । उनके मुखवर्ण चन्द्रके समान मनोहर होते हैं । उनका एक-एक अङ्ग चन्द्ररश्मिके समान शीतल प्रतीत होता है । वे नृत्य और गीतकी कलामें कुशल होती हैं ।। १७ ।।

दश वर्षसहस्राणि तत्रायुर्भरतर्षभ ।
कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ।। १८ ।।

भरतश्रेष्ठ ! वहांके लोगोंकी आयु दस हजार वर्ष की होती है । वे कालम्रवृक्षका रस पीकर सदाजवान बने रहते हैं ।। १८ ।।

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ।। १९ ।।

नीलगिरिके दक्षिण और निषधके उत्तर सुदर्शन नामक एक विशाल जामुनका वृक्ष है, जो सदा स्थिर रहतेवाला है ।। १९ ।।

सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ।। २० ।।

वह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला, पवित्र तथा सिद्धों और चारणोंका आश्रय है । उसीके नामपर यह सनातन प्रदेश जम्बूद्वीपके नामसे विख्यात है ।। २० ।।

योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ ।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ्मनुजेश्वर ।। २१ ।।

भरतश्रेष्ठ ! मनुजेश्वर ! उस वृक्षराजकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है । वह (ऊँचाई) स्वर्गलोकको स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है ।। २१ ।।

अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्चच ।
परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ।। २२ ।।

उसके फलोंमें जब रस आ जाता है अर्थात् जब वे पक जाते हैं, तल अपने-आप टूटकर गिर जाते हैं । उनफलोंकी ऊचाई ढ़ाई हजार अरत्निमानी गयी है ।। २२ ।। ।।

पतमानानि तान्युर्वी कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
सिञ्चति च रसं राजंस्तस्मिन् रजतसंनिभम् ।। २३ ।।

राजन् ! वे फल इस पृथ्वीपर गिरते समय भारी धमाकेकीआवाज करते हैं और उस भूतलपर सुवर्णसदृश रस बहाया करते हैं।

तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप।
मेरु प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान् कुरून्।

जनेश्वर ! उस जम्बूके फलोंका रस नदीके रूपमें परिणत होकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करता हुआ उत्तरकुरुवर्षमें पहुँच जाता है ।। २४ ।।

तत्रतेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप।
तस्मिन् फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ।। २५ ।।

राजन् ! फलोंके उस रसका पान कर लेनेपर वहांके निवासियोके मनमें पूर्ण शान्ति और प्रसन्नता रहती है। उन्हें पिपासा अथवा वृद्धावस्था कभी नहीं सताती है ।। २५ ।।

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्।
इन्द्रगोपसकाशं जायते भास्वरं तु तत् ।। २६ ।।

उस जम्बू नदीसे जम्बूनद नामक सुवर्ण प्रकट होता है, जो देवताओंका आभूषण है। वह इन्द्रगोपके समानलाल और अत्यन्त चमकीला होता है ।।

तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः।
तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा ।। २७ ।।

वहांके लोग प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् होते हैं। माल्यवान् पर्वतके शिखरपर सदा अग्निदेव प्रज्वलित दिखायी देते हैं ।। २७ ।।

नाम्ना संवर्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वपूर्वानुगण्डिका ।। २८ ।।

भरतश्रेष्ठ ! वे वहाँ संवर्तक एवं कालाग्निके नामसे प्रसिद्ध हैं। माल्यवान्के शिखरपर पूर्व-पूर्वकी ओर नदी प्रवाहित होती है ।। २८ ।।

योजनानां सहस्राणि पञ्चषण्माल्यवानथ।
महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ।। २९ ।।

माल्यवान्का विस्तार पाँच छः हजार योजन है। वहाँ सुवर्णके समान कान्तिमान् मानव उत्पन्न होते हैं ।। २९ ।।

ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः।

तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः ।
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ति दिवाकरम् ।। ३० ।।

वे सब लोग ब्रह्मलोकसे नीचे आये हुए पुण्यात्मा मनुष्य हैं । उन सबका सबके प्रति साधूतापूर्ण बर्ताव होता है । वे ऊर्ध्वरेता होते और कठोर तपस्या करते है । फिर समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये सूर्यलोकमें प्रवेश कर जाते हैं ।। ३० ।।

षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिमेव शतानि च ।
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ।। ३१ ।।

उनमेंसे छाछठ हजार मनुष्य भगवान् सूर्यको चारों ओरसे घेरकर अरुणके आगे-आगे चलते हैं ।। ३१ ।।

षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च ।
आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ।। ३२ ।।

वे छाछठ हजार वर्षोंतक ही सूर्यदेवके तापमें तपकर अन्तमें चन्द्रमण्डलमें प्रवेश कर जाते हैं ।। ३२

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि
माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

सातवाँ अध्याय ।। ७ ।।

रमणक, हिरण्यक, शृङ्गवान् पर्वत तथा ऐरावतवर्षका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च संजय ।
आचक्ष्व मे यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ।। १ ।।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुम सभी वर्षों और पर्वतोंके नाम बताओ और जो उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले हैं उनकी स्थितिका भी यथावत् वर्णन करो ।। १ ।।

संजय उवाच

दक्षिणेन तु श्वतेस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ।। २ ।।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।

निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ३ ॥

संजय बोले—राजन् ! श्वेतके दक्षिण और निषधके उत्तर रमणक नामक वर्ष है। वहाँ जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वे उत्तम कुलसे युक्त और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं। वहाँके सब मनुष्य शत्रुओंसे रहित होते हैं ॥ २-३ ॥

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥ ४ ॥

महाराज ! रमणकवर्षके मनुष्य सदा प्रसन्नचित्त होकर साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं ॥ ४ ॥

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु।
वर्षे हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ५ ॥

नीलके दक्षिण और निषधके उत्तर हिरण्मयवर्ष है, जहाँ हैरण्यवती नदी बहती है ॥ ५ ॥

यत्र चायं महाराज पक्षिराट् पतगोत्तमः।
यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥
महाबलास्तत्र जना राजन् मुदितमानसाः।

महाराज ! वही विहंगोंमें उत्तम पक्षिराज गरुड़ निवास करते हैं। वहाँके सब मनुष्य यक्षोंकी उपासना करनेवाले, धनवान्, प्रियदर्शन, महाबली तथा प्रसन्नचित्त होते हैं ॥ ६ ॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप।
आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ॥ ७ ॥

जनेश्वर ! वहाँके लोग साढ़े बारह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥ ७ ॥

शृङ्गाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप ॥ ८ ॥
एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम्।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥

मनुजेश्वर ! वहाँ शृङ्गवान् पर्वतके तीन ही विचित्र शिखर हैं। उनमें से एक मणिमय है, दूसरा अद्भुत सुवर्णमय है तथा तीसरा अनेक भवनोंसे सुशोभित एवं सर्वरत्नमय है ॥ ८-९ ॥

तत्र स्वयंप्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ।। १० ।।
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ।। ११ ।।

वहाँ स्वयंप्रभा नामवाली शाण्डिली देवी नित्य निवास करती हैं। जनेश्वर ! शृङ्गवान् पर्वतके उत्तर समुद्रके निकट ऐरावत नामक वर्ष है। अतः इन शिखरोंसे संयुक्त यह वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा उत्तम है। वहाँ सूर्यदेव ताप नहीं देते हैं और न वहाँके मनुष्य बूढ़े होते हैं ।। १०-११ ।।

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवावृतः ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ।। १२ ।।

नक्षत्रोसहित चन्द्रमा वहाँ ज्योतिर्मय होकर सब ओर व्याप्त-सा रहता है। वहाँके मनुष्य कमलकी-सी कान्ति तथा वर्णवाले होते हैं। उनके विशाल नेत्र कमलदलके समान सुशोभित होते हैं ।। १२ ।।

पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
अनिष्यन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ।। १३ ।।

वहाँके मनुष्योंके शरीरसे विकसित कमलदलोंके समान सुगन्ध प्रकट होती है। उनके शरीरसे पसीने नहीं निकलते। उनकी सुगन्ध प्रिय लगती है। वे आहार (भूख-प्याससे) रहित और जितेन्द्रिय होते हैं ।। १३ ।।

देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ।। १४ ।।
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम ।

वे सबके सब देवलोकसे च्युत होकर वहां शेष पुण्य का उपभोग करते हैं। उनमें रजोगुणका सर्वथा अभाव होता है। भरतभूषण जनेश्वर ! वे तेरह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ।। १४ ।।

क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ।
हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ।। १५ ।।
अष्टचक्रं हि तद् यानं भूतयुक्तं मनोजवम् ।
अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम् ।। १६ ।।

क्षीरसागरके उत्तर तटपर भगवान् विष्णु निवास करते हैं, वे वहां सुवर्णमय रथपर विराजमान हैं। उस रथमें आठ पहिये लगे हैं। उसका वेग मनके

समान है। वह समस्त भूतोंसे युक्त, अग्निके समान कान्तिमान्, परम तेजस्वी तथा जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित है ।। १५-१६ ।।

स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ ।
संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्ता कारयिता तथा ।। १७ ।।

भरतश्रेष्ठ ! वे सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान् विष्णु ही समस्त प्राणियोंका संकोच और विस्तार करते हैं। वे ही करनेवाले और करानेवाले हैं ।। १७ ।।

पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च पार्थिव ।
स यशः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ।। १८ ।।

राजन् ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश सब कुछ वे ही हैं। वे ही समस्त प्राणियोंके लिये यज्ञस्वरूप हैं। अग्नि उनका मुख है ।। १८ ।।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः संजयेन धृतराष्ट्रो महामनाः ।
ध्यानमन्वगमद् राजन् पुत्रान् प्रति जनाधिप ।। १९ ।।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! संजयके ऐसा कहनेपर महामना धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके लिये चिन्ता करने लगे ।। १९ ।।

स विचिन्त्य महातेजाः पुनरेवाब्रवीद् वचः ।
असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत् ।। २० ।।

कुछ देर तक सोच-विचार करनेके पश्चात् महातेजस्वी धृतराष्ट्रने पुनः प्रकार कहा—'सूतपुत्र संजय ! इसमें संदेह नहीं कि काल ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करता है ।। २० ।।

सृजते च पुनः सर्वं विद्यते नेदं शाश्वतम् ।
नरो नारायणश्चैव सर्वशः सर्वभूतहृत् ।। २१ ।।
देवा वैकुण्ठमित्याहुर्नरा विष्णुमिति प्रभुम् ।। २२ ।।

'फिर वही सबकी सृष्टि करता है। यहां कुछ भी सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। भगवान् नर और नारायण समस्त प्राणियोंके सुहृद एवं सर्वज्ञ है। देवता उन्हें वैकुण्ठ और मनुष्य उन्हें शक्तिशाली विष्णु कहते हैं' ।। २१-१२ ।।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माण
पर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

भारतवर्षकी नदियों, देशों तथा जनपदोंके नाम और भूमिका महत्व

धृतराष्ट्र उवाच

यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्छितं बलम्,
यत्रातिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ।। १ ।।
यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः ।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! यह जो भारतवर्ष है, जिसमें यह राजाओंकी विशाल वाहिनी युद्धके लिये एकत्र हुई है, जहांका साम्राज्य प्राप्त करनेके लिये मेरा पुत्र दुर्योधन ललचाया हुआ है, जिसे पानेके लिये पाण्डवोंके मनमें भी बड़ी इच्छा है तथा जिसके प्रति मेरा मन भी बहुत आसक्त है, उस भारतवर्षका तुम यथार्थरूपसे वर्णन करो; क्योंकि इस कार्यके लिये मेरी दृष्टिमें तुम्हीं सबसे अधिक बुद्धिमान् हो ।। १-२ ।।

संजय उवाच

न तत्र पाण्डवा गृद्धाः शृणु राजन् वचो मम ।
गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः ।। ३ ।।

संजयने कहा—राजन् ! आप मेरी बात सुनिये । पाण्डवोंको इस भारत वर्षके साम्राज्यका लोभ नहीं है । दुर्योधन तथा सुबलपुत्र शकुनि ही उसके लिये बहुत लगाये हुए हैं ।। ३ ।।

अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः ।
ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम् ।। ४ ।।

विभिन्न जनपदोंके स्वामी जो दूसरे-दूसरे क्षत्रिय हैं, वे भी इस भारत-वर्षके प्रति गृध्र-दृष्टि लगाये हुए एक दूसरेके उत्कर्षको सहन नहीं कर पाते हैं ।। ४ ।।

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ।। ५ ।।

भारत ! अब मैं यहाँ आपसे उस भारतवर्षका वर्णन करूँगा, जो इन्द्रदेव और वैवस्वत मनुका प्रिय देश है ।। ५ ।।

पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ।। ६ ।।

तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च ।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥ ७ ॥

कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः ।
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च ॥ ८ ॥

अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥ ९ ॥

राजन् ! दुर्धर्ष महाराज ! वेननन्दन पृथु, महात्मा इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, उशीनर-पुत्र शिवि, ऋषभ, इलानन्दन पुरूरवा, राजा नृग, कुशिक, महात्मा गाधि, सोमक, दिलीप तथा अन्य जो महाबली क्षत्रिय नरेश हुए हैं, उन सभीको भारतवर्ष बहुत प्रिय रहा है ॥ ६-९ ॥

तत् ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथायथमरिंदम ।
शृणु मे गदतो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १० ॥

शत्रुदमन नरेश ! मैं उसी भारतवर्षका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ । आप मुझसे जो कुछ पूछते या जानना चाहते हैं वह सब बताता हूँ, सुनिये ॥ १० ॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ ११ ॥

इस भारतवर्षमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत कहे गये हैं ॥ ११ ॥

तेषां सहस्रशो राजन् पर्वतास्ते समीपतः ।
अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः ॥ १२ ॥

राजन् ! इनके आसपास और भी हजारों अविज्ञात पर्वत हैं, जो रत्न आदि सार वस्तुओंसे युक्त, विस्तृत और विचित्र शिखरोंसे सुशोभित हैं ॥ १२ ॥

अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।
आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो ॥ १३ ॥

नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ १४ ॥

शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥ १५ ॥

नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ।। १६ ।।

वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवाहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ।। १७ ।।

इनसे भिन्न और भी छोटे-छोटे अपरिचित पर्वत हैं, जो छोटे-छोटे प्राणियोंके जीवन निर्वाहका आश्रय बने हुए हैं। प्रभो! कुरुनन्दन! इस भारतवर्षमें आर्य, म्लेच्छ तथा संकर जातिके मनुष्य निवास करते हैं। वे लोग यहाँकी जिन बड़ी बड़ी नदियोंके जल पीते हैं, उनके नाम बताता हूँ, सुनिये। गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, महानदी, शतद्रू चन्द्रभागा, महानदी यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलबालुका, वेत्रवती, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा, इक्षुला, कृमि, करीषिणी, चित्रवाहा तथा चित्रसेना नदी ।। १३-१७ ।।

गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम् ।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम् ।। १८ ।।
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च ।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा ।। १९ ।।

शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि ।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ।। २० ।।

गोमती, धूतपापा, महानदी, वन्दना, कौशिकी, त्रिदिवा, कृत्या, निचिता, लोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिक्, शरावती, पयोष्णी, वेणा, भीमरथी, कावेरी, चुलुका, वाणी और शतबला ।। १८-२० ।।

नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप ।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ।। २१ ।।

पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा ।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ।। २२ ।।

करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् ।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ।। २३ ।।

पुरावतीमनुष्णां च शैब्यां कापीं च भारत ।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ।। २४ ।।

नरेश्वर ! नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा (नीरा), भीमा, ओघवती, पाशाशिनी, पापहरा, महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी, असिक्नी, महानदी कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती, पुरावती, अनुष्णा, शैब्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या और महानदी कुशधारा ।। २१-२४ ।।

सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरमतीमपि ।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् ।। २५ ।।
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ।। २६ ।।

उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीराममम्बुवाहिनीम् ।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ।। २७ ।।
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ।। २८ ।।
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम् ।
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् ।। २९ ।।
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् ।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ।। ३० ।।

सदाकान्ता, शिवा, वीरमती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, महानदी पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, महानदी तुंगवेणा, विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, हरिश्रावा, महापगा, शीघ्रा, पिच्छिला, भारद्वाजी नदी, कौशिकी नदी, शोणा, बाहुदा, चन्द्रमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, यवक्षा, रोही तथा जाम्बूनदी ।। २५-३० ।।

सुनसां तामसां दासीं वसामन्यां वराणसीम ।
नीलां घृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ।। ३१ ।।

मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनिम् ।
एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ।। ३२ ।।

सुनसा, तमसा, दासी, वसा, वराणसी, नीला, घृतवती, महानदी पर्णाशा, मानवी, वृषभा, ब्रह्ममेध्या, बृहद्ध्वनि, राजन् ! ये तथा और भी बहुत-सी नदियाँ हैं ।। ३१-३२ ।।

सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मदवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥ ३३ ॥
चित्रोपलां चित्ररथां मञ्जुलां वाहिनीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोषां चापि महानदीम् ॥ ३४ ॥

शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम् ।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥ ३५ ॥

कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ॥ ३६ ॥

भारत ! सदा निरामया, कृष्णा, मन्दगा, मन्दावाहिनी, ब्राह्मणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रोत्पला, चित्ररथा, मञ्जला, वाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरणी, महानदी कोषा, शुक्तिमती, अनंगा, वृषा, लोहित्या, करतोया, वृषका, कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, मन्दाकिनी, सुपुण्या, सर्वा तथा गङ्गा, भारत ! इन नदियोंके जल भारतवासी पीते हैं ॥ ३३-३६ ॥

विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥

राजन् ! पूर्वोक्त सभी नदियाँ सम्पूर्ण विश्वकी माताएँ हैं, वे सबकी सब महान् पुण्य फल देनेवाली हैं । इनके सिवा सैकड़ों और हजारों ऐसी नदियाँ हैं, जो लोगोंके परिचयमें नहीं आयी हैं ॥ ३७ ॥

इत्येताः सरितो राजन् समाख्याता यथास्मृति ।
अत ऊर्ध्वं जनपदान् निबोध गदतो मम ॥ ३८ ॥

राजन् ! जहाँतक मेरी स्मरणशक्ति काम दे सकी है, उसके अनुसार मैंने इन नदियोंके नाम बताये हैं । इसके बाद अब मैं भारतवर्षके जनपदोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ ३८ ॥

तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥ ३९ ॥
मत्स्याःकुशल्याःसौशल्याःकुन्तयः कान्तिकोसलाः ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ४० ॥
उत्तमाश्वदशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरंधराः ॥ ४१ ॥

गोधामद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुक्कुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥ ४२ ॥

कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः ।
गोमन्ता मण्डकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥ ४३ ॥

अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः ।
अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम् ॥ ४४ ॥

भारतमें ये कुरु-पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय-जाङ्गल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्ति, कोसल, चेदि, मत्स्य, करूष, भोज, सिन्धु,-पुलिन्द, उत्तमाश्व, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पञ्चाल, कोसल, नैकपृष्ठ, धुरंधर, गोधा, मद्रकलिंग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुक्कुर, दशार्ण, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य तथा मल्लराष्ट्र ॥३९-४४।

वारवास्यायवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः ।
विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥ ४५ ॥

अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाःसुदेष्णाःप्रह्लादा माहिकाःशशिकास्तथा ॥ ४६ ॥

वाह्लिका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः ॥ ४७ ॥

अटवीशिशराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष ।
उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८ ॥

कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९ ॥

बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः ।
समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥ ५० ॥

वारवास्य, अयवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोमा, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, माहिक, शशिक, बाह्लिक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पञ्चाल, चर्ममण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, स्वराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्रनिष्कुट, बहुसंख्यक अन्ध्र, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर प्रावृषेय तथा भार्गव ॥४५-५०।

पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥ ५१ ॥

दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा ।
तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यकागुणाः ॥ ५२ ॥

तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥ ५३ ॥

अभीसारा उलूताश्च शैवला वाह्लिकास्तथा ।
दार्वी च वानवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४ ॥

बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥ ५५ ॥

वनायवो दशापार्श्वरोमाणः कुशविन्दवः ।
कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥ ५६ ॥

किराता बर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
ओण्ड्राम्लेच्छाःसैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष ॥ ५७ ॥

पुण्ड्र, भर्ग, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैर्ऋत, दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोसल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमान्, सुकन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवाल, बाह्लिक, दार्वी, वानव, दर्व, वातज, आमरथ, उरग, बहुवाद्य, सुदाम, सुमल्लिक, वध्र, करीषक, कुलिन्द, उपत्यक, वनायु, दश, पार्श्वरोम, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकक्ष, जाङ्गल, कुरुवर्णक, किरात, बर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, ओण्ड्र, म्लेच्छ, सैसिरिध्र और पार्वतीय इत्यादि ।

अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्याः मूषिका वनवासिकाः ॥ ५८ ॥

कर्णाटका महिषका विकल्पा मूषकास्तथा ।
झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभ्रकाननाः ॥ ५९ ॥

कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः ।
समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ६० ॥

ध्वजिन्युत्सवसंकेतास्त्रिगर्ताः शाल्वसेनयः ।
व्यूकाः कोकबाकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ॥ ६१ ॥

तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह ।
मालवा बल्लवाश्चैव तथैवापरबल्लवाः ।। ६२ ।।

कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा ।
मूषकाः स्तनबालाश्च सनीपा घटसृंजयाः ।। ६३ ।।

अठिदाः पाशिवाटाश्च तनयाः सुनयास्तथा ।
ऋषिका विदभाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ।। ६४ ।।

उत्तराश्चापरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम ।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ।। ६५ ।।

भरतश्रेष्ठ ! अब जो दक्षिण दिशाके अन्यान्य जनपद है उनका वर्णन सुनिये—द्रविड, केरल, प्राच्य, मूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नमकानन, कौकुट्टक, चोल, कोङ्कण, मालव, नर, समङ्ग, करक, कुकुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सवसंकेत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकबक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्यचूलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, बल्लव, अपरबल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, स्तनबाल, सनीप, घट, सृञ्जय, अठिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तङ्गण, परतङ्गण, उत्तर और क्रूर अपरम्लेच्छ, यवन, चीन तथा जहाँ भयानक म्लेच्छ जातिके लोग निवास करते हैं, वह काम्बोज ।। ५८-६५ ।।

सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ।। ६६ ।।

क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ।। ६७ ।।

खाशीराश्चान्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः ।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ।। ६८ ।।

प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किराताना च जातयः ।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ।। ६९ ।।

सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमण चीन, दशमालिक, क्षत्रियोंके उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रोंके जनपद, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पशु, खाशीर, अन्तचार, पह्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक, कलिङ्ग, किरात जातियोंके जनपद, तोमर, हन्यमान और करभञ्जक इत्यादि ।। ६७-६९ ।।

एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः संकीर्तिता विभो ॥ ७० ॥

राजन् ! ये तथा और भी पूर्व और उत्तर दिशाके जनपद एवं देश मैंने संक्षेपसे बताये हैं ॥ ७० ॥

यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ।
दुह्येत धेनुः कामधुग् भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥ ७१ ॥

अपने गुण और बलके अनुसार यदि अच्छी तरह इस भूमिकाका पालन किया जाय तो यह कामनाओंकीपूर्ति करनेवाली कामधेनु बनकर धर्म, अर्थ और काम तीनोंके महान् फलकी प्राप्ति कराती है ॥ ७१ ॥

तस्यां गृद्धयन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः ।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान् वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥ ७२ ॥

इसीलिये धर्म और अर्थके काममें निपुण शूर-वीर नरेश इसे पानेकी अभिलाषा रखते हैं और धनके लोभमें आसक्त हो वेगपूर्वक युद्धमें जाकर अपने प्राणोंका परित्याग कर देते हैं ॥ ७२ ॥

देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम् ।
अन्योन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेया यथामिषम् ॥ ७३ ॥
राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुंधराम् ।
न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ॥ ७४ ॥

देवशरीरधारी प्राणियोंके लिये और मानवशरीरधारी जीवोंके लिये यथेष्ट फल देनेवाली यह भूमि उनका परम आश्रय होती है। भरतश्रेष्ठ ! जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ेके लिये परस्पर लड़ते और एक दूसरेको नोंचतेहैं, उसी प्रकार राजा लोग इस वसुधाको भोगनेकी इच्छा रखकर आपसमें लड़ते और लूट पाट करते हैं; किंतु आजतक किसीको अपनी कामनाओंसे तृप्ति नहीं हुई ॥ ७३-७४ ॥

तस्मात् परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः ।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥

भारत ! इस अतृप्तिके ही कारण कौरव ओर पाण्डव साम, दान, भेद और दण्डके द्वारा सम्पूर्ण वसुधापर अधिकार पानेके लिये यत्न करते हैं ॥ ७५ ॥

पिता भ्राता च पुत्राश्च रत्नं द्यौश्च नरपुङ्गव ।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना ।। ७६ ।।

नरश्रेष्ठ ! यदि भूमिके यथार्थ स्वरूपका सम्पूर्णरूपसे ज्ञान हो जाय तो यह परमात्मासे अभिन्न होनेके कारण प्राणियोंके लिये स्वयं ही पिता, भ्राता, पुत्र, आकाशवर्ती पुण्यलोक तथा स्वर्ग भी बन जाती है ।। ७६ ।।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि ।
भारतीयनदीदेशादिनामकथने नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

भारतवर्षमें युगोंके अनुसार मनुष्योंकी आयु तथा गुणोंका निरूपण

धृतराष्ट्र उवाच

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च ।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ।। १ ।।

आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ।। २ ।।

धृतराष्ट्रने कहा—संजय । तुम भारतवर्ष और हैमवतवर्षके लोगोके आयु का प्रमाण, बल तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान शुभाशुभ फल बताओ । साथ ही हरिवर्षका भी विस्तारपूर्वक वर्णन करो ।। १-२ ।।

संजय उवाच

चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ ।
कृतं त्रेता द्वापरं ज तिष्यं च कुरुवर्धन ।। ३ ।।

संजयने कहा – कुरुकुलकी वृद्धि करनेवाले भरतश्रेष्ठ ! भारतवर्षमें चार युग होते हैं सत्ययुग' त्रेता, द्वापर और कलियुग ।। ३ ।।

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो ।
संक्षेपाद् द्वापरस्याथ ततस्तिष्यं प्रवर्तते ।।

प्रभो ! पहले सत्ययुग होता है. फिर त्रेतायुग आता है, उसके वाद द्वापर-युग बीतनेपर कलियुगकी प्रवृत्ति होती है ।।

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम ।
आयुःसंख्या कृतयुगं संख्याता राजसत्तम ।। ५ ।।

कुरुश्रेष्ठ ! नृपप्रवर ! सत्ययुगके लोगोंकी आयुका मान चार हजार वर्ष है ।। ५ ।।

तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठति साम्प्रतम् ।। ६ ।।

मनुजेश्वर ! त्रेताके मनुष्योंकी आयु तीन हजार वर्षोंकी बतायी गयी है । द्वापरके लोगोंकी आयु दो हजार वर्षोंकी है, जो इस समय भूतलपर विद्यमान है ।। ६ ।।

न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन् भरतर्षभ ।
गर्भस्थाश्चम्रियन्तेऽत्र तत्र जाता म्रियन्ति च ।। ७ ।।

भरतश्रेष्ठ ! इस कलियुगमें आयु-प्रमाणकी कोई मर्यादा नहीं है । यहाँ गर्भके बच्चे भी मरते हैं और नवजात शिशु भी मृत्युको प्राप्त होते है ।।७ ।।

महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।। ८ ।।

जाताः कृतयुगे राजन् धनिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोधनाः ।। ९ ।।

सत्ययुगमें महाबली, महान् सत्त्वसम्पन्न, बुद्धिमान् धनवान् और प्रियदर्शन मनुष्य उत्पन्न होते हैं और सैकड़ों तथा हजारों संतानोंको जन्म देते हैं, उस समय प्रायः तपस्याके धनी महर्षिगण जन्म लेते हैं ।। ८-९ ।।

महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्धराः ।। १० ।।
वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः ।
त्रेतायां क्षत्रिया राजन् सर्वे वै चक्रवर्तिनः ।

राजन् ! इसी प्रकार त्रेतायुगमें समस्त भूमण्डलकेक्षत्रिय अत्यन्त उत्साही, महान् मनस्वी, धर्मात्मा, सत्यवादी, प्रियदर्शन, सुन्दर शरीरधारी, महापराक्रमी, धनुर्धर, वर पानेके योग्य, युद्धमें शूरशिरोमणि तथा मानवोंकी रक्षा करनेवाले होते हैं ।। १०-११ ।।

सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा चैव च द्वापरे ।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परजयैषिणः ।। १२ ।।

द्वापरमें सभी वर्णोंके लोग उत्पन्न होते हैं एवं वे सदा परम उत्साही, पराक्रमी तथा एक दूसरेको जीतनेके इच्छुक होते हैं ।। १२ ।।

तेजसाल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप ।
लुब्धा अनृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ते भारत ।। १३ ।।

भरतनन्दन ! कलियुगमें जन्म लेनेवालेलोग प्रायःअल्पतेजस्वी, क्रोधी, लोभी तथा असत्यवादी होते हैं ।। १३ ।।

ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायासूया तथैव च ।
तिष्ये भवन्ति भूतानां रागो लोभश्च भारत ।। १४ ।।

भारत ! कलियुगके प्राणियोंमें ईर्ष्या, मान, क्रोध, माया, दोष-दृटि, राग तथा लोभ आदि दोष रहते हैं ।। १४ ।।

संक्षेपो वर्तते राजन् द्वापरेऽस्मिन् नराधिप ।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ।। १५ ।।

नरेश्वर ! इस द्वापरमें भी गुणों कीन्यूनता होती है । भारतवर्षकी अपेक्षा हैमवत तथा हरिवर्षमें उत्तरोत्तर अधिक गुण हैं ।। १५ ।।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि
भारतवर्षे कृताद्यनुरोधेनायुनिरूपणे दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

शाकद्वीपका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह संजय ।
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ।। १ ।।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमने यहाँ जम्बूखण्डका यथावत् वर्णन किया है । अब तुम इसके विस्तार और परिमाणको ठीक-ठीक बताओ ।। १ ।।

समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शनम् ।
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च संजय ।। २ ।।

संजय ! समुद्रके सम्पूर्ण परिमाणको भी अच्छी तरह समझाकर कहो । इसके बाद मुझसे शाकद्वीप और कुशद्वीपका वर्णन करो ।। २ ।।

शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ।
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ।। ३ ।।

गवल्गणकुमार संजय ! इसी प्रकार शाल्मलिद्वीप, क्रौंचद्वीप तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं राहुसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातोंका यथार्थरूपसे प्रतिपादन करो ।। ३ ।।

संजय उवाच

राजन् सुबहवो द्वीपा यैरिदं संततं जगत् ।

सप्तद्वीपान् प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ।। ४ ।।

संजय बोले—राजन् ! बहुतसे द्वीप हैं, जिनसे सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। अब मैं आपकी आज्ञाके अनुसार सात द्वीपोंका तथा चन्द्रमा, सूर्य और राहुका भी वर्णन करूंगा ।। ४ ।।

अष्टादश सहस्राणि योजनानि विशाम्पते ।
षट् शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बूपर्वतः ।। ५ ।।
लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ।। ६ ।।

नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः ।
सिद्धचारणसंकीर्णः सागरः परिमण्डलः ।। ७ ।।

राजन् ! जम्बूद्वीपका विस्तार पूरे १८६०० योजन है। इसके चारों ओर जो खारे पानीका समुद्र है, उसका विस्तार जम्बूद्वीपकी अपेक्षा दूना माना गया है। उसके तटपर तथा टापूमें बहुत-से देश और जनपद हैं। उसके भीतर नाना प्रकारके मणि और मूंगे हैं, जो उसकी विचित्रता सूचित करते हैं। अनेक प्रकारके धातुओंसे अद्भुत प्रतीत होनेवाले बहुसंख्यक पर्वत उस सागरकी शोभा बढ़ाते हैं। सिद्धों तथा चारणोंसे भरा हुआ वह लवणसमुद्र सब ओरसे मण्डलाकार है ।। ५-७ ।।

शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव ।
शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ।। ८ ।।

राजन् ! अब मैं शाकद्वीपका यथावत् वर्णन आरम्भ करता हूँ। कुरुनन्दन ! मेरे इस न्यायोचित कथनको आप ध्यान देकर सुनें ।। ८ ।।

जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप ।
विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ।। ९ ।।

महाराज ! नरेश्वर ! वह द्वीप विस्तारकी दृष्टिसे जम्बूद्वीपके परिमाणसे दूना है ! भरतश्रेष्ठ ! उसका समुद्र भी विभागपूर्वक उससे दूना ही है ।। ९ ।।

क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन सम्परिवारितः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ।। १० ।।

भरतश्रेष्ठ ! उस समुद्रका नाम क्षीरसागर है, जिसने उक्त द्वीपको सब

ओरसे घेर रक्खा है। वहाँ पवित्र जनपद हैं। वहाँ निवास करनेवाले लोगों की मृत्यु नहीं होती ॥ १० ॥

कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षामतेजोयुता हि ते।
शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावद् भरतर्षभ ॥ ११ ॥
उक्त एष महाराज किमन्यत् कथयामि ते।

फिर वहाँ दुर्भिक्ष तो हो ही कैसे सकता है? उस द्वीपके निवासी क्षमाशील और तेजस्वी होते हैं। भरतश्रेष्ठ महाराज! इस प्रकार शाकद्वीपका संक्षेपसे यथावत् वर्णन किया गया है। अब और आपसे क्या कहूँ? ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह संजय ॥ १२ ॥
उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः।

धृतराष्ट्र बोले—महाबुद्धिमान् संजय! तुमने यहाँ शाकद्वीपका संक्षिप्त रूपसे यथावत् वर्णन किया है। अब उसका कुछ विस्तारके साथ यथार्थ परिचय दो ॥ १२ ॥

संजय उवाच

तथैव पर्वता राजन् सप्तात्र मणिभूषिताः ॥ १३ ॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु।

संजय बोले—राजन्! शाकद्वीपमें भी मणियोंसे विभूषित सात पर्वत हैं। वहाँ रत्नोंकी बहुत-सी खानें तथा नदियाँ भी हैं। उनके नाम मुझसे सुनिये ॥ १३ ॥

अतीव गुणवत् सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥ १४ ॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते।
प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥ १५ ॥

जनेश्वर! वहाँका सब कुछ परम पवित्र और अत्यन्त गुणकारी है। वहाँका प्रधान पर्वत है मेरु, जो देवर्षियों तथा गन्धर्वोंसे सेवित है। महाराज! दूसरे पर्वतका नाम मलय है, जो पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैला हुआ है ॥ १४-१५ ॥

ततो मेघाः प्रवर्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः।
ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥ १६ ॥

मेघ वहींसे उत्पन्न होते हैं, फिर वे सब ओर फैलकर जलकी वर्षा करने में समर्थ होते हैं। कुरुनन्दन ! उसके बाद जलधार नामक महान् पर्वत हैं ॥ १६ ॥

ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ।
ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥

जनेश्वर ! इन्द्र वहींसे सदा उत्तम जल ग्रहण करते हैं। इसीलिये वर्षाकालमें वे यथेष्ट जल बरसानेमें समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥

उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता ।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥ १८ ॥

उसी द्वीपमें उच्चतम रैवतक पर्वत है, जहाँ आकाशमें रेवती नामक नक्षत्र नित्य प्रतिष्ठित है। यह ब्रह्माजीका रचा हुआ विधान है ॥ १८ ॥

उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः ।
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! उसके उत्तर भागमें श्याम नामक महान् पर्वत है, जो नूतन मेघके समान श्याम शोभासे युक्त है। उसकी ऊँचाई बहुत है। उसका कान्तिमान् कलेवर परम उज्ज्वल है ॥ १९ ॥

यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर ।

जनपदेश्वर ! वहां रहनेसे ही वहांकी प्रजा श्यामताको प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सुमहान् संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं संजय त्वया ।
प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूतपुत्र संजय ! यह तो तुमने आज मुझसे महान् संशयकी बात कही है। भला, वहां रहने मात्रसे प्रजा श्यामताको कैसे प्राप्त हो गयी ? ॥ २० ॥

संजय उवाच

सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ।
गौरः कृष्णाश्च वर्णौ द्वौ तयोर्वर्णान्तरं नृप ॥ २१ ॥

श्यामोयस्मात् प्रवृत्तो वैतत् ते वक्ष्यामि भारत ।
आस्तेऽत्र भगवान् कृष्णस्तत्कान्त्याश्यामतां गतः । २२ ।

संजयने कहा—महाराज कुरुनन्दन ! सम्पूर्ण द्वीपोंमें गौर, कृष्ण तथा इन दोनों वर्णोंका सम्मिश्रण देखा जाता है । भारत ! यह पर्वत जिस कारणसे श्याम होकर दूसरों में भी श्यामता उत्पन्न करनेवाला हुआ, वह आपको बताता है । यहां भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते है; अतः उन्हींकी कान्तिसे यह श्यामताको प्राप्त हुआ है ।। २१-२२ ।।

ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः ।
केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्तते ।। २३ ।।

कौरवराज ! श्यामगिरिके बाद बहुत ऊँचा दुर्ग शैल है । उसके बाद केसर पर्वत है, जहाँसे चली हुई वायु केसर की सुगन्ध लिये बहती है ।।२३।।

तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः ।
वर्षाणि तेषु कौरव्य सप्तोक्तानि मनीषिभिः ।। २४ ।।

इन सब पर्वतोंका विस्तार दूना होता गया है । कुरुनन्दन ! मनीषी पुरुषोंने उन पर्वतोंके समीप सात वर्ष बताये हैं ।। २४ ।।

महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः ।
जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ।। २५ ।।

महामेरु पर्वतके समीप महाकाश वर्ष है, जलद या मलय के निकट कुमुदोत्तर वर्ष है । महाराज ! जलधार गिरिका पार्श्ववर्ती वर्ष सुकुमार बताया गया है ।। २५ ।।

रेवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः ।
केसरस्याथ, मोदाकी परेण तु महापुमान् ।। २६ ।।

रैवतक पर्वतका कुमारवर्ष तथा श्यामगिरिका मणिकाञ्चनवर्ष है । इसी प्रकार केसरके समीपवर्ती वर्षको मोदाकी कहते हैं । उसके आगे महापुमान् नामक एक पर्वत है ।। २६ ।।

परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च ।
जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ।। २७ ।।

शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदानुगा ।
तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शंकरः ।। २८ ।।

वह उस द्वीपकी लम्बाई और चौड़ाई सबको घेरकर खड़ा है। महाराज! उसके बीचसे शाक नामक एक बड़ा भारी वृक्ष है, जो जम्बूद्वीपके समान ही विशाल है। महाराज! वहाँकी प्रजा सदा उस शाकवृक्षके ही आश्रित रहती है। वहाँ बड़े पवित्र जनपद हैं। उस द्वीपमें भगवान शङ्कर की आराधना की जाती है॥ २७-२८॥

तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च।
धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत॥ २९॥

राजन्! भरतनन्दन! वहाँ सिद्ध, चारण और देवता जीते हैं। वहाँके चारों वर्णोंकी प्रजा अत्यन्त धार्मिक होती है॥ २९॥

वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते।
दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः॥ ३०॥

सभी वर्णके लोग वहाँ अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्म का पालन करते हैं। वहाँ कोई चोर नहीं दिखायी देता महाराज! उस द्वीपके निवासी दीर्घायु तथा जरा और मृत्युसे रहित होते हैं॥ ३०॥

प्रजास्तत्र विवर्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः।
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता॥ ३१॥

जैसे वर्षाऋतुमें समुद्रगामिनी नदियाँ बढ़ जाती हैं, उसी प्रकार वहाँकी समस्त प्रजा सदा वृद्धिको प्राप्त होती रहती है। उस द्वीपमें अनेक पवित्र जलवाली नदियाँ बहती हैं। वहाँ गङ्गा भी अनेक धाराओंमें विभक्त देखी जाती हैं॥ ३१॥

सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा।
महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी॥ ३२॥
चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम।
तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह॥ ३३॥

कुरुनन्दन! भरतश्रेष्ठ! उस द्वीपमें सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला तथा चक्षुर्वर्धनिका आदि पवित्र जलवाली नदियाँ बहती हैं॥ ३२-३३॥

सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः।
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च॥ ३४॥
शक्यन्ते परिसंख्यातु पुण्यान्ता हि सरिद्वराः।
तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः॥ ३५॥

वहाँ लाखों ऐसी नदियाँ हैं, जिनसे जल लेकर इन्द्र वर्षा करते हैं। उनके नाम और परिमाणकी संख्या बताना कठिन ही नहीं, असम्भव है। वे सभी श्रेष्ठ नदियाँ परम पुण्यमयी हैं। उस द्वीपमें लोकसम्मानित चार पवित्र जनपद हैं ।। ३५ ।।

मङ्गाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।
मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ।। ३६ ।।

उनके नाम इस प्रकार हैं—मङ्ग, मशक, मानस तथा मन्दग। नरेश्वर! उनमेंसे मङ्ग जनपदमें अधिकतर ब्राह्मण निवास करते हैं। वे सबके सब अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं ।। ३६ ।।

मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ।
मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ।। ३७ ।।
सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः ।

महाराज! मशक जनपदमें सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले धर्मात्मा क्षत्रिय निवास करते हैं। मानस जनपदके निवासी वैश्यवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हैं। वे सर्वभोगसम्पन्न, शूरवीर, धर्म और अर्थको समझनेवाले एवं दृढ़-निश्चयी होते हैं ।। ३७ ।।

शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ।। ३८ ।।

मन्दग जनपदमें शूद्र रहते हैं। वे भी धर्मात्मा होते हैं ।। ३८ ।।

न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दण्डिकः ।
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ।। ३९ ।।

राजेन्द्र! वहाँ न कोई राजा है, न दण्ड है और न दण्ड देनेवाला है। वहाँके लोग धर्मके ज्ञाता हैं और स्वधर्मपालनके ही प्रभावसे एक दूसरेकी रक्षा करते हैं ।। ३९ ।।

एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ।
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ।। ४० ।।

महाराज! उस महान् तेजोमय शाकद्वीपके सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है और इतना ही सुनना चाहिये ।। ४० ।।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि
शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

कुश, क्रौञ्च और पुष्कर आदि द्वीपोंका वर्णन

संजय उवाच

उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ।। १ ।।

संजय बोले—महाराज ! कुरुनन्दन ! इसके बादवाले द्वीपोंके विषयमें जो बातें सुनी जाती हैं, वे इस प्रकार हैं; उन्हें आप मुझसे सुनिये ।। १ ।।

घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथान्यो जलसागरः ।। २ ।।

क्षीरोद समुद्रके बाद घृतोद समुद्र है । फिर दधिमण्डोदक समुद्र है । इनके बाद सुरोद समुद्र है, फिर मीठे पानीका सागर है ।। २ ।।

परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ।। ३ ।।

महाराज ! इन समुद्रोंसे घिरे हुए सभी द्वीप और पर्वत उत्तरोत्तर दुगुने बिस्तारवाले है ।। ३ ।।

गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मनःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ।। ४ ।।

नरेश्वर ! इनमेंसे मध्यम द्वीपमें मनःशिला (मैनसिल) का एक बहुत बड़ा पर्वत है; जो 'गौर' नामसे विख्यात है । उसके पश्चिममें 'कृष्ण' पर्वत है, जो नारायणको विशेष प्रिय है ।। ४ ।।

तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाभवत् तत्र प्रजानां व्यदधत् सुखम् ।। ५ ।।

स्वयं भगवान् केशव ही वहाँ दिव्य रत्नोंको रखते और उनकी रक्षा करते हैं । वे वहाँकी प्रजापर प्रसन्न हुए थे, इसलिये उनको सुख पहुँचानेकी व्यवस्था उन्होंने स्वयं की है ।। ५ ।।

कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह ।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ।। ६ ।।

नरेश्वर ! कुशद्वीपमें कुशोंका एक बहुत बड़ा झाड़ है, जिसकी वहाँके जनपदोंमें रहनेवाले लोग पूजा करते हैं । उसी प्रकार शाल्मलि द्वीपमें शाल्मलि (सेमर) वृक्षकी पूजा की जाती है ।। ६ ।।

क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः ।
सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ।। ७ ।।

क्रौञ्चद्वीपमें महाक्रौञ्च नामक महान् पर्वत है, जो रत्नराशिकी खान है । महाराज ! वहाँ चारों वर्णोंके लोग सदा उसीकी पूजा करते हैं ।। ७ ।।

गोमन्तः पर्वतो राजन् सुमहान् सर्वधातुकः ।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान् कमललोचनः ।। ८ ।।
मोक्षिभिः संस्तुतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।

राजन् ! वहीं गोमन्त नामक विशाल पर्वत है, जो सम्पूर्ण धातुओंसे सम्पन्न है । वहाँ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले उपासकोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए सबके स्वामी श्रीमान् कमलनयन भगवान् नारायण नित्य निवास करते हैं ।। ८ ।।

कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ।
सुधामा नाम दुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ।। ९ ।।

राजेन्द्र ! कुशद्वीपमें सुधामा नामसे प्रसिद्ध दूसरा सुवर्णमय पर्वत है, जो मूँगोंसे भरा हुआ और दुर्गम है ।। ९ ।।

द्युतिमान् नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ।। १० ।।
चतुर्थः पुष्पवान् नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ।। ११ ।।

कौरव्य ! वहीं परम कान्तिमान् कुमुद नामक तीसरा पर्वत है । चौथा पुष्पवान्, पाँचवाँ कुशेशय और छठा हरिगिरि है । ये छः कुशद्वीपके श्रेष्ठ पर्वत हैं ।। १०-११ ।।

तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणाः सर्वभागशः ।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ।। १२ ।।

इन पर्वतोंके बीचका विस्तार सब ओरसे उत्तरोत्तर दूना होता गया है । कुशद्वीपके पहले वर्षका नाम उद्भिद् है । दूसरेका नाम वेणुमण्डल है ।।१२।।

तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम् ।
धृतिमत् पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ।। १३ ।।

तीसरेका नाम सुरथाकार, चौथेका कम्बल, पाँचवेंका धृतिमान् और छठे वर्षका नाम प्रभाकर है ।। १३ ।।

सप्तमं कपिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः ।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ।। १४ ।।

विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ।। १५ ।।

सातवाँ वर्ष कापिल कहलाता है। ये सात वर्षसमुदाय है। पृथ्वीपते ! इन सबमें देवता, गन्धर्व तथा मनुष्य सानन्द विहार करते है। उनमेंसे किसी की मृत्यु नहीं होती है। नरेश्वर ! वहाँ लुटेरे अथवाम्लेच्छ जातिके लोग नहीं हैं ।। १४-१५ ।।

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव ।
अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ।। १६ ।।

मनुजेश्वर ! इन वर्षोंके सभी लोग प्रायः गोरे और सुकुमार होते हैं। अब मैं शेष सम्पूर्ण द्वीपोंके विषयमें बताता हूँ ।। १६ ।।

यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः श्रृणु ।
क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ।। १७ ।।

महाराज ! मैंने जैसा सुन रक्खा है, वैसा ही सुनाऊँगा। आप शान्तचित्त होकर सुनिये। क्रौञ्चद्वीपमें कौञ्च नामक विशाल पर्वत है ।। १७ ।।

कौञ्चात् परो वामनको वामनादन्धकारकः ।
अन्धकारात् परो राजन् मैनाकः पर्वतोत्तमः ।। १८ ।।
मैनाकात् परतो राजन् गोविन्दो गिरिरुत्तमः ।
गोविन्दात् परतो राजन् निविडो नाम पर्वतः ।। १९ ।।

राजन् । क्रौञ्चके बाद वामनपर्वत है, वामनके बाद अन्धकार और अन्धकारके बाद मैनाक नामक श्रेष्ठ पर्वत है। प्रभो ! मैनाकके बाद उत्तम गोविन्दगिरि है। गोविन्दके बाद निविड नामक पर्वत है ।। १८-१९ ।।

परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्धन ।
देशांस्तत्र प्रयक्ष्यामि तन्मे निगदतः श्रृणु ।। २० ।।

कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले महाराज ! इन पर्वतोंके बीचका विस्तार उत्तरोत्तर दूना होता गया है। उनमें जो देश बसे हुए हैं, उनका परिचय देता हूँ; सुनिये ।। २० ।।

कौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः ।
मनोनुगात् परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ।। २१ ।।

क्रौञ्चपर्वतके निकट कुशल नामक देश है। वामन पर्वतके पास मनोनुग देश है। कुरुकुलश्रेष्ठ। मनोनृगके बाद उष्ण देश आता है ।। २१ ।।

उष्णात् परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः ।
अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशः परः स्मृतः ।। २२ ।।

उष्णके बाद प्रावरक, प्रावरकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद उत्तम मुनिदेश बताया गया है ।। २२ ।।

मुनिदेशात् परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ।
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ।। २३ ।।

एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः ।

मुनिदेशके बाद जो देश है, उसे दुन्दुभिस्वन कहते हैं । यह सिद्धों और चरणोंसे भरा हुआ है । जनेश्वर ! वहाँके लोग प्रायः गोरे होते हैं । इन सभी देशोंमें देवता और गन्धर्व निवास करते हैं ।। २३ ।।

पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ।। २४ ।।

पुष्करद्वीपमें पुष्कर नामक पर्वत है, जो मणियों तथा रत्नोंसे भरा हुआ है ।। २४ ।।

तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः ।
तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ।। २५ ।।
वाग्भिर्मनोऽनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप ।

वहाँ स्वयं प्रजापति भगवान् ब्रह्मा नित्य निवास करते हैं । जनेश्वर ! सम्पूर्ण देवता और महर्षि मनोनुकूल वचनों द्वारा प्रतिदिन उनकी पूजा करते हुए सदा उन्हींकी उपासना में लगे रहते हैं ।। २५ ।।

जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ।। २६ ।।
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम ।
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ।। २७ ।।
आरोग्यायुः प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।

जम्बूद्वीपसे अनेक प्रकारके रत्न अन्यान्य सब द्वीपोंमें वहाँकी प्रजाओंके उपयोगके लिये भेजे जाते हैं । कुरुश्रेष्ठ ! ब्रह्मचर्य, सत्य और इन्द्रियसंयमके प्रभावसे उन सब द्वीपोंकी प्रजाओंके आरोग्य और आयुका प्रमाण जम्बूद्वीपकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूना माना गया है ।। २६ ।।

एको जनपदो राजन् द्वीपेष्वेतेषु भारत ।
उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ।। २८ ।।

भरतवंशी नरेश ! वास्तवमें इन देशोंमें एक ही जनपद है । जिन द्वीपोंमें अनेक जनपद बताये गये हैं, उनमें भी एक प्रकारका ही धर्म देखा जाता है ।। २८ ।।

७

ययातिरथस्येतिवृतम्

ययातिरथ का इतिहास

रथमस्मै ददौ रुद्रः प्रीतः परमभास्वरम् ।
असंङ्गं कांचनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी ।।
युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहत् ।
स तेन रथमुख्येन जिगाय च ततो महीम् ।।
ययातिर्युधि दुर्द्धर्षो देवदानवमानवैः ।
पौरवाणां नृपाणाञ्च सर्वेषां सोऽभवद्रथः ।।
यो वत्सदेशप्रभवः कौरवो जनमेजयः ।
कुरोः पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञःपारीक्षितस्य ह ।।
स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा ।
ततः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद् बृहद्रथः ।।
ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ।।

(वायुपुराणे)

महादेव रुद्र ने प्रसन्न होकर यह परमतेजस्वी रथ, जो स्वर्णमय, निःसंग, दिव्य और जिसमें अक्षय बाण और धनुष रखे होते थे, वह ययाति को दिया। वह रथ मनोजवअश्वों से युक्त था और विवाहित (कन्या) वधूओं को वहन करता था, उससे ययाति ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीता था। ययाति ने देव, दानव और मानवों को युद्ध में जीता था। ययाति के पश्चात् वह रथ

परम्परा से पुरुसे लेकर सभी पौरव राजाओं को प्राप्त हुआ। जनमेजय (द्वितीय) पारीक्षित जो (परिक्षित्) कुरु का [पुत्र था, उसके पास भी यह पुरातन रथ रहा।

तदनन्तर यह दिव्यरथ चेदिपति उपचरवसु को प्राप्त हुआ, इन्द्र के प्रसन्न होने पर। वसुसे वह रथ बृहद्रथ ने (और आगे के आठ बार्हद्रथ राजाओं ने) प्राप्त किया। तदनन्तर, जब भीमसेन पाण्डव ने जरासन्ध मागध को मार दिया तो वह रथ भीम ने प्रेमपूर्वक प्रीतिवश वासुदेव कृष्ण को दे दिया।

(वायु॰)

८

असिग्रहणपरम्परा

असिग्रहणपरम्परा

ततः स शितिकण्ठाय रुद्रायार्षभकेतवे ।
ब्रह्मा ददावसिं तीक्ष्णमधर्मप्रतिवारणम् ।।
असिं धर्मस्य गोप्तारं ददौ सत्कृत्य विष्णवे ।
विष्णुर्मरीचये प्रादान्मरीचिर्भगवानपि ।। ६६ ।।
महर्षिभ्यो ददौ खड्गमृषयो वासवाय च ।
महेन्द्रो लोकपालेभ्यो लोकपालास्तु पुत्रक ।। ६७ ।।
मनवे सूर्यपुत्राय ददुः खड्गं सुविस्तरम् ।। ६८ ।।
मनुः प्रजानां रक्षार्थं क्षुपाय प्रददावसिम् ।
क्षुपाज्जग्राह चेक्ष्वाकुरिक्ष्वाकोश्च पुरूरवाः ।। ६९ ।।
ययातिर्नहुषाच्चापि पुरुस्तस्माच्च लब्धवान् ।। ७० ।।
अमूर्तरयसस्तस्मात् ततो भूमिशयो नृपः ।
भरतश्चापि दौष्यन्तिर्लेभे भूमिशयादसिम् ।। ७१ ।।
तस्माल्लेभे च धर्मज्ञो राजन्नैलविलस्तथा ।
ततस्त्वैलविलाल्लेभे धुन्धुमारो नरेश्वरः ।। ७२ ।।
धुन्धुमाराच्च काम्बोजो मुचुकुन्दस्ततोऽलभत् ।
मुचकुन्दान्मरुत्तश्च मरुत्तादपि रैवतः ।। ७३ ।।
रैवताद् युवनाश्वश्च युवनाश्वात्ततो रघुः ।
इक्ष्वाकुवंशजस्तस्माद्धरिणाश्वः प्रतापवान् ।। ७४ ।।
हरिणाश्वादसिं लेभे शुनकः शुनकादपि ।

उशीनरो वै धर्मात्मा तस्माद् भोजः स यादवः ।। ७५ ।।
यदुभ्यश्च शिबिर्लेभे शिवेश्चापि प्रतर्दनः ।
प्रतर्दनादष्टकश्च पृषदश्वोऽष्टकादपि ।। ७६ ।।
पृषदश्वाद् भरद्वाजो द्रोणस्तस्मात् कृपस्ततः ।। ७७ ।।

(महा० १२।१६६)

ब्रह्मा (प्रजापति) ने तलवार सर्वप्रथम ऋषभकेतु शितिकण्ठ (नीलकण्ठ) रुद्र (शिवमहादेव) को दी, जिससे वे प्रजा में अधर्म को रोक सकें। तदनन्तर वह असि (तलवार) धर्म (राष्ट्र) के रक्षक विष्णु को दी गई। विष्णु ने वह मरीचि भगवान् महर्षि को दी। मरीचि ने महर्षियों (कश्यपादि) को दी। ऋषि (कश्यप) आदि ने वह खड्ग इन्द्र को दिया। महेन्द्र ने लोकपालों को दी। लोकपालों ने सूर्यपुत्र (वैवस्वत) मनु को दी। मनु ने तलवार प्रजा की रक्षार्थ राजा क्षुप को दी। क्षुप ने इक्ष्वाकु को दी। इक्ष्वाकु ने पुरूरवा को, पुरूरवा से नहुष, नहुष से ययाति, ययाति से पुरु ने तलवार प्राप्त की। पुरु से अमूर्तरयागय ने प्राप्त की। उससे भूमिशय नाम के राजा ने प्राप्त की। भूमिशय से दौष्यन्ति भरत ने प्राप्त की। भरत से राजा ऐलविल ने और उससे सम्राट् धुन्धुमार (कुवलाश्व ऐक्ष्वाक) ने प्राप्त की। धुन्धुमार से राजा काम्बोज (द्रुह्युवंशज) ने प्राप्त की। उससे राजा मुचुकुन्द ने और मुचुकुन्द से राजा मरुत्त ने तलवार प्राप्त की। मरुत्त से राजा रैवत ने और उससे युवनाश्व ने तलवार प्राप्त की। युवनाश्व से इक्ष्वाकुवंशज हरिणाश्व ने प्राप्त की। हरिणाश्व से शुनक ने प्राप्त की और शुनक से धर्मात्मा उशीनर ने प्राप्त की, उशीनर से भोज यादव ने प्राप्त की। यादवों से शिवि ने प्राप्त की। शिवि से प्रतर्दन ने प्राप्त की। प्रतर्दन से अष्टक वैश्वामित्रि ने और उससे पृषदश्व ने वह असि प्राप्त की। पृषदश्व से भरद्वाज ने और भरद्वाज से द्रोण ने तथा द्रोण से कृपाचार्य ने यह तलवार प्राप्त की।

६

इतिहासे प्रसिद्धा यज्ञाः

इतिहास में प्रसिद्धयज्ञ

राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतम् ।
तस्यान्ते सुमहद् युद्धमभवत् तारकामयम् ।।
आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः ।
देवासुरं महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम् ।।
हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत् ।
तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् ।।
ततोऽनन्तरमार्येण पाण्डवेनातिदुस्तरः ।
महाभारतआरम्भ सम्भृतोऽग्निरिवक्रतुः ।।
औद्भिजो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपोद्विजः ।
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति ।
तदन्ते तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम् ।
आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः ।।

(हरिवंशे ३।२)

इतिहास में सुना जाता है कि सोम ने सर्वप्रथम **राजसूय यज्ञ** किया था। उसके अन्त में महान् **तारकामय देवासुरसंग्राम** हुआ। तदुपरान्त **वरुण** **(ब्रह्मा)** ने महान् राजसूय क्रतु आयोजित किया, तब भी देवासुर महासंग्राम हुआ, जिसमें सभी प्रकार के प्राणियों का संहार हुआ। तदनन्तर **राजर्षि (सम्राट्) हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाक** ने इस राजसूययज्ञ को सम्पन्न किया। तब अन्त में क्षत्रियों का नाशकारक महान् **आडीबक महायुद्ध** हुआ।

तदनन्तर आर्य पाण्डव धर्मराज युधिष्ठिर ने यह दुस्तर राजसूययज्ञ किया, जिसके पश्चात् महाभारत महायुद्ध हुआ, क्योंकि इस यज्ञ में युद्धाग्नि संभृत (रखी) रहती है।

तदनन्तर कलियुग में कोई औद्भिज (शुङ्ग=पुष्यमित्र) सेनापति काश्यप ब्राह्मण इस (राजसूयमूल) अश्वमेधयज्ञ को करेगा। उसके अन्त में वह कुलीन सेनापति राजसूययज्ञ को भी करेगा। हे राजेन्द्र! (जनमेजय)! **वह यज्ञ यमराज के श्वेतग्रह (मंगल) के समान होगा!**

१०

प्रधाना युगप्रवर्तका महापुरुषाः

(दशावतार)

धर्मान्नारायणस्तस्माद् संभूतश्चाक्षुषेऽन्तरे ।
यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ।।
द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रपुरस्सरः ।
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमेयुगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ।
त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः ।
पंचमः पंचदश्यान्तु त्रेतायां संबभूव ह ।
मान्धातुश्चक्रवर्त्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।
एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत् ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ।
चतुर्विंशे युगे रामो वशिष्ठेन पुरोधसा ।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ।
अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् ।
वेदव्यासस्ततो जज्ञेजातूकर्णपुरस्सरः ।
तथैव नवमो विष्णुरदित्यां कश्यपात्मजः ।
देवक्यां वसुदेवात्तू ब्रह्मगार्ग्यपुरस्सरः ।
अस्मिन्नेव युगे क्षीणो संध्याश्लिष्टे भविष्यति ।

कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।
दशमोभाव्यः संभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः ।।

(वायुपुराणे)

चाक्षुषमन्वन्तरकाल (वैवस्वतमनुसे पूर्व) या वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में चैत्य (देवालय) में **धर्म प्रजापति के पुत्र नारायण साध्यदेव ने** अवतार लेकर यज्ञ का प्रवर्तन किया, (प्रथम परिवर्तयुग में) ।

शिव रुद्र को पुरोहित बनाकर नृसिंह ने (भगवान् का द्वितीय अवतार (चतुर्थ परिवर्तयुगमे) ग्रहण किया ।

सप्तमपरिवर्तयुग में सभी लोकों (देवासुर मानुषगण) के दैत्येन्द्र बलि के अधीन हो जाने पर भगवान् का तृतीय **अवतार वामनविष्णु हुआ । दशम त्रेतायुग (परिवर्तयुग) में भगवान्** दत्तात्रेय चतुर्थ अवतार हुये, जबकि सनातन-धर्म नष्ट प्रायः हो गया था, **उसमें उनके पुरोहित मार्कण्डेयऋषि थे । पंचम अवतार चक्रवर्ती मान्धाता के रूप में** हुआ, उतथ्य उनके पुरोहित थे । वह अवतार **पन्द्रहवें युग** में हुआ । **एक्कीसवें परिवर्तयुग में** सभी क्षत्र (राजा) गण को मारने वाले **जामदग्न्यराम (परशुराम)** छठे अवतार के रूप में हुये, तब विश्वामित्र कौशिक उनके पुरोहित थे ।

चौबीसवें युग में, वासिष्ठ के पौरोहित्य में **दाशरथि राम के रूप में** रावणवधहेतु **सप्तम अवतार** हुआ ।

अट्ठाइसवें परिवर्त युग में भगवान् का अष्टम अवतार पराशर (पाराशर्य द्विप ऋषि) से द्वैपायन पाराशर्य के रूप में हुआ । बेदव्यास के पुरोहित (गुरु) जतूकर्ण (जातूकर्ण्य) थे । इसी युग (अट्ठाइसवें) में भगबान् का **नवम अवतार** अदितिरूपी देवकी से कश्यपात्मज विष्णु (या ईश्वर) **वसुदेव-पुत्र कृष्ण वासुदेव रूप** में प्रकट हुये । गार्ग्य ब्राह्मण उनके पुरोहित (गुरु) थे ।

इसी (कलियुग में, भारतयुद्ध से १२०० वर्ष पश्चात्), कलियुग की समाप्ति पर उसके संधिकाल में कल्कि विष्णुयशा नाम के प्रतापी पाराशर्य गोत्रीय ब्राह्मण विष्णु के दशम अवतार हुये, उनका पुरोहित (गुरु) याज्ञवल्क्य गोत्रीय ब्राह्मण था ।

११

द्वादशदेवासुरसंग्रामाः

बारहदेवासुरयुद्ध

युगं वै दश सङ्कीर्णमासीदव्याहतं जगत् ।
देवासुराणाम् च तदा घोरः क्षयकरो महान् ।
तेषां दायनिमित्तं वै संग्रामा बहवोऽभवन् ।
वाराहेऽस्मिन दश द्वौ च षण्डामर्कावोत्तराः स्मृताः ।
नामतस्तु समासेन श्रुणुष्वतान् विवक्षतः ।
प्रथमो, नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ।।
तृतीयः स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः ।
संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः ।।
षष्ठो तथाडीबकस्तेषां सप्तमस्त्रैपुरः स्मृतः ।
अन्धकारोऽष्टमस्तेषां ज्ञेयस्ततो हालाहलः स्मृतः ।
स्मृतो द्वादशमस्तेषां घोरः कोलाहलोऽपरः ।।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदितः ।
वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे कृते ।
हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु दैवतैः ।
महाबलो महासत्वः संग्रामेष्वपराजितः ।।
दष्ट्रायान्तु वराहेण समुद्राद् भूर्यदाकृता ।
प्रह्लादो जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने ।
विरोचनस्तु प्रह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः ।
इन्द्रेणैव सविक्रम्य निहतस्तारकामये ।

भवादवध्यतां प्राप्य विशेषास्त्रविद्भिस्तु यः ।
स जम्भो निहतः षष्ठे शक्राविष्टेन विष्णुना ।।

अशक्नुवन्तो देवेषु पुरं गोप्तुं त्रिदैवतम् ।
निहता दानवाः सर्वे त्रैपुरे त्र्यम्बकेण तु ।।

अष्टमे त्वसुराश्चैव राक्षसाश्चान्धकारकाः ।
जितदेवमनुष्यैस्तु पितृभिश्चैव सङ्गतान् ।।

दशयुग (दश परिवर्तयुग = ३६०० वर्ष) पर्यन्त जगत् (पृथिवीलोक) में संकट और असुर साम्राज्य रहा ।

देवासुरों में पृथिवी—अधिकार के लिये बारह देवासुर महायुद्ध हुये । वाराहकल्प में ये युद्ध हुये, इनमें षण्डामर्क युद्ध अन्तिम (उत्तर) था । उनके नाम संक्षेप में सुनिये ।

प्रथम नारसिंहयुद्ध था, द्वितीय वामनयुद्ध था, तृतीय वाराह संग्राम था, चतुर्थ अमृतमन्थन युद्ध हुआ । पंचम तारकामय घोर महायुद्ध था । षष्ठ आडीबकयुद्ध, सप्तम त्रैपुरयुद्ध, अष्टम अन्धकार (अन्धक) युद्ध, नवम ध्वज युद्ध दशम वार्तघ्नयुद्ध, एकादश कोलाहलयुद्ध और **अन्तिम बारहवाँ घोर-कोलाहलयुद्ध था ।**

नृसिंह द्वारा दैत्यराज हिरण्यकशिपु मारा गया ! त्रैलोक्य पर अधिकार करने पर वामनविष्णु ने बलि को बाँधा । देवों में हिरण्याक्षदैत्य को द्वन्द्व युद्ध में मारा, वह हिरण्याक्ष महाबली और महान् शरीर वाला था और संग्रामों में अपराजेय था । तब वराह ने समुद्र द्वारा पृथिवी को दो भागों में बाँटा ।

अमृतमन्थन युद्ध में इन्द्रादि देवों द्वारा प्रह्लाद परास्त हुआ । नित्य, इन्द्रवध के लिये तैयार विरोचन प्राह्लादि को तारकामय (पंचम) संग्राम में इन्द्र ने ही मार डाला । महादेवशिव से अवध्यता का वर पाकर विशेष अस्त्रादि से युक्त जम्भासुर षष्ठ देवासुरयुद्ध में इन्द्र शरीर में प्रविष्ट विष्णु ने मारा । देवों के द्वारा अपनी राजधानी की रक्षा में असमर्थ होने पर त्रैपुर युद्ध में त्र्यम्बक महादेव ने सभी असुर दानवों को मारा ।

अष्टम अन्धक देवासुर संग्राम मे, जब मनुष्यों और पितरोंसहित (सहायता से) देवों ने असुरों और राक्षसों को जीत लिया ।

संवृतान् दानवांश्च सङ्गतान् कृत्स्नशश्चतान् ।
तथा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निर्बाहिताः ।।
हतो ध्वजे महेन्द्रण मायाच्छन्नश्च योधयन् ।
ध्वजे लक्ष्यं समाविश्य विप्रचित्तिर्महाभुजः ।
दैत्यांश्च दानवांश्चैव संहतान् कृत्स्नशश्च तान् ।।
रजि कोलाहले सर्वान् दैवैः परिवृतोऽजयत् ।
यज्ञामृतेन विजितौ षण्डामर्कौ तु दैवतैः ।।
एते दैवासुरा वृताःसंग्रामा द्वादशैव च ।।

तब युद्ध के लिये एकत्रित सभी दानवों को विष्णु की सहायता से महेन्द्र ने मार दिया ।

महेन्द्र ने ध्वज को नष्ट कर दिया, क्योंकि माया के बल पर युद्ध करता हुआ महाबली दानवेन्द्र विप्रचित्ति ध्वज के लक्ष्य में छिप गया था । तब इन्द्र ने विप्रचित्ति का वध किया ।

देवों द्वारा परिवारित (रक्षित) नहुषभ्राता रजि ने कोलाहल महायुद्ध में दैत्यों और दानवों को पराजित किया ।

देवों ने (अन्तिम द्वादश संग्राम) में यज्ञामृत (सोम) द्वारा षण्डामर्क (असुरपुरोहितों) को जीत लिया । (और मार दिया ।)

इस प्रकार देवासुरों ने ये द्वादश देवासुर महासंग्राम किये ।

१२

अष्टादश कुलनाशनानृपाः

अठारह कुलनाशक राजा

अष्टादशेमे राजानः प्रख्याता मधुसूदनः ।
ये समुच्चिच्छिदुर्ज्ञातीन् सुहृदश्च सबान्धवान् ।।
असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।
पर्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते कलिरजायत ।।
हैहयानां मुदावर्तो नीपानां जनमेजयः ।
बहुलस्तालजंघानां कृमीणामुद्धतो वसुः ।।
अजबिन्दुः सुवीराणाम् सुराष्ट्राणाम् रुर्षद्धिकः ।
अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ।।
हयग्रीवो विदेहानां वरयुश्च महौजसाम् ।
बाहुः सुन्दर वंशानां दीप्ताक्षाणां पुरूरवाः ।।
सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणाम् वृषध्वजः ।
धारणश्चन्द्रवत्सानां मुकटानां बिगाहनः ।।
शमश्च नन्दिवेगानामित्येते कुलपांसनाः ।
युगान्तेकृष्ण सम्भूताः, कुले कुपुरुषाधमाः ।।
अप्ययं नःकुरूणां स्याद् युगान्ते कालसम्भृतः ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपुरुषः ।।

(महाभारते, उद्योगपर्वणि)

(भीमसेन पाण्डव कहता है) हे मधुसूधन कृष्ण, निम्नलिखित अठारह राजाओं ने अपने जाति भाइयों, मित्रों औ मुच्छेदन किया । तेज (यश) के प्रदीप्त होने पर और समृद्धि के शिखर पर पहुँचने पर धर्म के

पर्यायकाल (कृतयुगान्त) में असुरों में **कलि** उत्पन्न हुआ। हैहय में **मुदावर्त**, नीपों में **जनमेजय** (दौर्मुखि पांचाल), ताlजघों में **बहुल**, कृमि क्षत्रियों में **वसु**, सुवीरों में **अजबिन्दु**, सुराष्ट्रों में, **रुषर्द्धिक**, बलीहों में **अर्कज**, चीनों में **धौतमूलक**, विदेहों में **हयग्रीव**, महीजसों में **वरयु**, सुन्दरवंशियों में **बाहु**, दीप्ताक्ष क्षत्रियों में **पुरूरवा**, चेदिमत्स्यों में **सहज**, प्रवीरों में **वृषध्वज**, चन्द्र वत्सों में **धारण**, मुकट क्षत्रियों में **विगाहन**, और नन्दिवेगों में **शम नाम का राजा** कुलनाशक हुआ ! ये राजा अपने वंश के अन्त (युगान्त) में कुलपांसन और अत्यन्त अधम पुरुष थे।

अब हमारे मध्य कुरुओं में काल द्वारा संभृत (पोषित) यह कुलाङ्गार, जघन्य (नीच) पापी पुरुष **दुर्योधन** है।

१३

कौटिलीये अर्थशास्त्रे अजितेन्द्रिया राजानः

कौटिलीय अर्थशास्त्रमें अजितेन्द्रिय राजा

तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति।

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धु-राष्ट्रो विननाश।

करालश्च वैदेहः।
कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तः।
तालजंघश्च भृगुषु।
लोभादैलश्चातुवर्ण्यमत्याहारयमाणः।
सौवीरश्चाजबिन्दुः।
मानाद्रावणःपरदारानप्रयच्छन्
दुर्योधनो राज्यादंशं च।
मदाड्डम्भोद्भवः।
भृतावमानी हैहयश्चार्जुनः।
हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्।
वृष्णिसंघश्च द्वैपायनमिति॥

(अर्थ० १।१।६)

विरुद्धवृत्ति और अजितेन्द्रिय राजा महान् चक्रवर्ती होने पर भी शीघ्र विनष्ट हो जाता है। यथा **दाण्डक्य** नाम का भोजवंशीय राजा कामवश ब्राह्मणकन्या सेव्यभिचार करने के कारण सबन्धु राष्ट्र सहित विनष्ट होगया। इसी प्रकार **कराल वैदेह** (विनष्ट होगया)। ब्राह्मणों में पराक्रम दिखाने पर

क्रोध के कारण **जनमेजय पारीक्षित** (द्वितीय) और **तालजंघ भार्गवों पर अत्याचार** से नष्ट हो गये। लोभ (धनलोभ) के कारण चातुर्वर्ण्य का धन अपहरण के कारण राजा **पुरूरवाऐल** नष्ट हुआ। सौवीरों में **अजबिन्दु** नष्ट हुआ। अभिमान के कारण **रावण** (दशमुख) परदारा (सीता) को न लौटाने के कारण नष्ट हुआ। **दुर्योधन** राज्य का अंश (भाग) न देने के कारण नष्ट हुआ।

मद (मस्ती) से **दम्भोद्भव** नष्ट हुआ। प्राणियों का अपमान करने वाला हैहय सहस्रार्जुन और अतिहर्षातिरेक के कारण वातापि असुर अगस्त्या को हानि पहुँचाने के कारण तथा कृष्णद्वैपायन का अपमान करने के कारण वृष्णिसंघ (यादवगण) विनष्ट हुये।

समाप्तः

—॰—

शब्दानुक्रमणी

डा० कुँवरलाल व्यासशिष्य का संक्षिप्त परिचय

अभी हाल में हिन्दी अकादमी, दिल्ली ने १९८८–८९ में २८ साहित्यिक पुरस्कारों की घोषणा की है। डा० जैन को ११,१०१ रुपये का पुरस्कार दिया गया। इनमें डा० कुंवरलाल जैन व्यासशिष्य को उनकी विशेष मौलिक एवं क्रांतिकारी विचारों से परिपूर्ण "पुराणों में इतिहास" कृति का चयन हुआ है। लेखक पिछले २९ वर्षों से सच्चे भारतीय इतिहास के अनुसंधान में संलग्न है और इस विषय में उसकी लगभग २१ कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इन कृतियों में भारतीय वाङ्मय के आधार पर विशेषतः संस्कृत वाङ्मय सागर का मन्थन करके अनेक रत्नों की रचना की है, इनमें उक्त कृति का विशिष्ट स्थान है। वेद और पुराण भारतीय-संस्कृति के दो प्रधान स्तम्भ हैं, जिन पर सम्पूर्ण भारतीय-संस्कृति टिकी हुई है। वेद, इतिहास के ग्रन्थ नहीं हैं, परन्तु पुराणग्रन्थ आदिकाल स्वायम्भुवमनु से गुप्तकाल तक के इतिहास के मूल स्रोत हैं, बल्कि आदिम विश्वसंस्कृति का मूल इतिहास पुराणों से ही लिखा जा सकता है। डा० व्यासशिष्य ने "इण्डियन असुराज् कोलानोइज्ड योरोप" पुस्तक में आदिकालीन विश्वइतिहास पर किंचित् प्रकाश डाला है कि यहाँ से जाकर ही असुरों ने योरोप बसाया। अंग्रेजों ने पुराणों के प्रति ऐसी घृणा उत्पन्न की कि प्रायः पढ़ा-लिखा भारतीय "पुराण" नाम सुनते ही भौं सिकोड़ने लगता है। डा० व्यासशिष्य ने मौलिक अनुसंधान करके पुराणों के मौलिक सत्य-पक्ष को उजागर किया है। पुराणों में वंशानुक्रमिक–कालक्रम और "पुराणों में ऐतिहासिक परिवर्तयुग" में यह क्रम जारी है अतः राष्ट्रीय एकता का प्रमुख सूत्रधार है—"सच्चा इतिहास।" हिन्दी अकादमी ने डा० व्यासशिष्य को पुरस्कृत करके विषय के महत्त्व को बढ़ाया है। यहाँ लेखक का संक्षिप्त जीवनवृत्त दिया जारहा है।

जीवनवृत्त

१. नाम — डा० कुंवरलाल व्यासशिष्य

२. जन्मतिथि — २२–१–१९३६

३. जन्मस्थान — सिकन्दरा, आगरा (उत्तरप्रदेश)

४. वर्तमान निवास— बी. २६, धर्मकालोनी, नांगलोई, दिल्ली—४१

५. शिक्षा —
   १. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सन् १९६२ में प्रथमश्रेणी में पूर्वमध्यमा (संस्कृत) उत्तीर्ण की।
   २. वहीं से १९६३ में उत्तरमध्यमा परीक्षा द्वितीयश्रेणी में उत्तीर्ण की।
   ३. वहीं से सन् १९६५ में शास्त्री परीक्षा प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की।
   ४. वहीं से १९६८ में आचार्य परीक्षा (पुराणेतिहास) प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की।
   ५. आगरा विश्वविद्यालय से १९७० में एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की।
   ६. दिल्ली विश्वविद्यालय से १९७७ में पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की। शोध-प्रबन्ध संस्कृतभाषा में लिखा गया—"कात्यायनापस्तम्बश्रौतसूत्रयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्।"
   ७. डी० लिट्० आगरा विश्वविद्यालय पंजीकृत १९८५ में (डायनोस्टिक क्रालोनोलोजी ऑफ इण्डिया इन पुराणाज्)